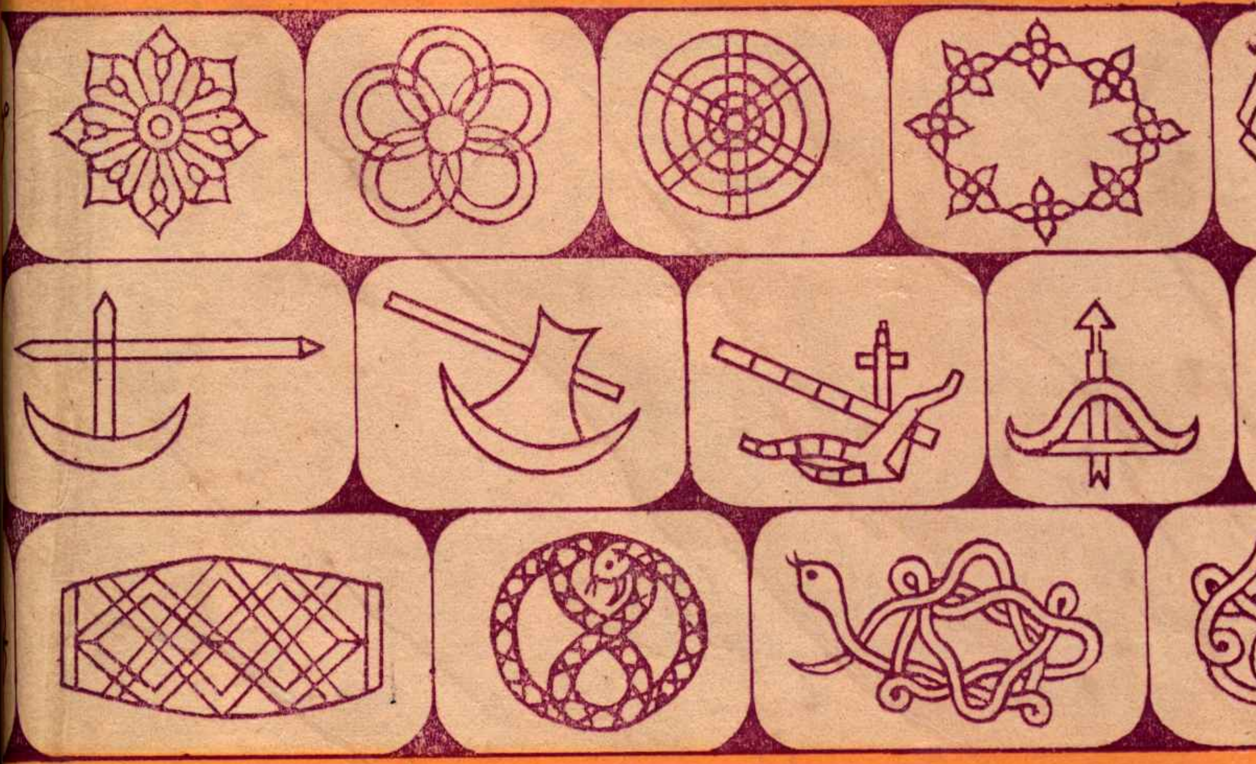
डॉ॰ रामदीन मिश्र

चित्रकाव्य

सैद्धान्तिक विवेचन एवं ऐतिहासिक विकास



बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
पटना - ८००००४

चित्रकाव्य : सैद्धान्तिक विवेचन एवं ऐतिहासिक विकास

लेखक

डा० रामदीन मिश्र

एम० ए०, डी० लिट०

प्रोफेसर, हिन्दी विभाग

पटना विश्वविद्यालय

बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद्

आचार्य शिवपूजन सहाय मार्ग

पटना-८००००४

प्रकाशक
बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद्
आचार्य शिवपूजन सहाय मार्ग
पटना—८०००४

संस्करण : प्रथम, विक्रमाब्द २०४६, शकाब्द १९११, खृष्टाब्द १९८९

~~मूल्य : ८३.०० रुपये~~
संशोधित मूल्य

मुद्रक
रामनरेश सिंह
वाल्मीकि प्रेस
पटना-४

वक्तव्य

डॉ० रामदीन मिश्र प्रणीत 'चित्रकाव्य : सैद्धान्तिक विवेचन एवं ऐतिहासिक विकास' जैसी गवेषणात्मक कृति का प्रकाशन परिषद् के लिए गर्व और उल्लास की बात है। प्रस्तुत पुस्तक में विद्वान लेखक ने ज्ञानगम्भीर एवं ज्ञानवृद्ध भारतीय मनीषियों के गूढ़ चिन्तन-मनन से निःसृत और उदात्त कला भावना से प्रदीप्त 'चित्रकाव्य' के विविध अंगों-उपांगों का विश्लेषणात्मक एवं गवेषणात्मक ढंग से अनुशीलन-परिशीलन किया है। भारतीय चिन्तकों की इस चमत्कारपूर्ण देन से पाश्चात्य साहित्यकारों ने भी अपने साहित्य को समृद्ध एवं समलंकृत किया है।

वस्तुत: चित्रकाव्य कलात्मक उत्कर्ष की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। संस्कृत, हिन्दी और संस्कृत से प्रभावित भारतीय भाषाओं के कवियों ने कुछ ऐसी रचनाएँ की हैं जिनमें वर्णों या शब्दों को विशेष रूप और क्रम से सजाकर लिखने से किसी वस्तु जैसे खड्ग, सर्प, धनु आदि का रूप बन जाता है। यूरोप में भी इस प्रकार की रचनाएँ 'चार्मेन फिगरेतम' अभिधान से लिखी जाती थीं, जिनमें कोई पद्य ईसा के क्रौस या मदिराचषक का रूप धारण करते थे। इनकी विशेषता यह थी कि जिस वस्तु का पद्य में वर्णन होता था, उसी वस्तु का चित्र भी बनता था। यूनान में इन्हें "तैम्ते पैग्नियन" कहते थे। आचार्य मम्मट ने इस प्रकार के काव्य को अधम काव्य माना है:—

शब्दचित्रं वाच्यचित्रमव्यंग्यं त्ववरं स्मृतम्।

इटली में एक प्रकार की "चियारोस्कुरो" रचनाएँ चलीं, जिनका कुछ भाग स्पष्ट रहता था, कुछ अस्पष्ट। इस शैली का प्रवर्तन हुआ उस चित्रकला के द्वारा जिसमें रंगों के बदले केवल प्रकाश और छाया के द्वारा चित्रण किया जाता था। ऐसे ही यूनान में केवल विनोद और खेल में 'पेग्निया' नाम की कविता लिखी जाती थी, जिसके 'प्रेमगीत' (ईरोतोपेग्निया बागातिलेस) और 'चिह्नगीत' (टैक्नोपेग्निया) आदि अनेक रूप थे। ऐसे ही अंग्रेजी का 'लिमेटिक' पद्य होता है। मिल्टन, गेटे और शेक्सपियर जैसे लोगों ने भी ऐसे पद्य लिखे हैं।

इस प्रकार के चित्रकाव्यों में पहेली (रिडिल, पजिल या रोबस अंगुटा), कहावत, बहुध्वनीय (पोलिफोनिक प्रोज, जिसे 1914 ई० में आमीलाबिल ने छन्द, स्वतंत्र पद्य, लय, ध्वनि, अनुप्रास आदि सब का सम्मिश्रण करके बनाया है) आदि हैं।

काव्य की जो तीन श्रेणियाँ मानी गई हैं उनमें चित्रकाव्य को अधम काव्य माना गया है। अधम काव्य उसे कहा गया है जिसमें व्यंग्यार्थ बिल्कुल न हो, केवल शब्दगत अथवा अर्थगत वैचित्र्यमात्र हो। चित्रकाव्य की परिभाषा 'मानक हिन्दी कोश' में इस प्रकार दी गई है—"वह आलंकारिक काव्य जिसके चरणों की रचना ऐसी युक्ति से की गई है कि ये

चरण किसी विशिष्ट क्रम से लिखे जाने पर कमल, खड्ग, घोड़े, रथ, हाथी आदि के चित्रों के समान बन जाते हैं।"

ऐसी रचनाओं में वर्णसाम्य अथवा वर्णावृत्ति की प्रधानता होती है जैसे सम्पूर्ण छन्द में किसी एक ही व्यंजन अथवा स्वर का प्रयोग। फलतः यमक और अनुप्रास की कोटि में भी इनकी परिगणना हो सकती है। विद्याधर ने व्यंजन-चित्र तथा स्वर-चित्र को चित्र मानना स्वीकार नहीं किया है। उनके विचार में व्यंजन-चित्र अनुप्रास का ही एक स्वरूप है। भारविकृत्त 'किरातार्जुनीयम्' के पन्द्रहवें सर्ग में एलेक्जेड़ियन पद्धति के अनुरूप विविध चित्रकाव्य की जंजाल ने रचना को दुरूह बना दिया"। माघ क्लिष्ट चित्र-काव्य के सृजन में भारवि के साथ सफलतापूर्वक टक्कर लेते हैं। 'शिशुपालवध' के उन्नीसवें सर्ग का चौंतीसवाँ पद्य पूर्व पद्य का ही प्रतिलोम पाठ है। संस्कृत साहित्य में इस प्रकार की चित्र रचना के कई विचित्र उदाहरण मिलते हैं जिनमें कवि ने खड्ग बन्ध, पद्मबन्ध एवं चक्रबन्ध की रचना करने की शक्ति प्रदर्शित की है। राजानक रत्नाकर कृत 'हरविजय' महाकाव्य में भी माघ द्वारा प्रदर्शित सभी चित्रबन्धों के सभी प्रकार हैं।

चित्रालंकार को चित्रकाव्य की संज्ञा संस्कृत में ही मिल गई थी। राजशेखर, आचार्य मम्मट, केशव मिश्र, कवि कर्णपूर आदि विद्वानों ने चित्र की विभिन्न रचनाओं के लिए 'चित्रकाव्य' शब्द का ही प्रयोग किया है। हिन्दी में सर्वप्रथम केशवदास ने काव्य-शास्त्र का विवेचन करते हुए 'चित्रकाव्य' का भी विशद् विवेचन किया है। भिखारीदास ने भी चित्रकाव्य का विस्तृत और वैज्ञानिक विवेचन किया है। जगत सिंह ने तो 'चित्रकाव्य' नाम की एक पुस्तक ही लिखी है। इस प्रकार हम देखते हैं कि नवीं शताब्दी से ही चित्रालंकार के लिए 'चित्रकाव्य' शब्द का प्रयोग होने लगा था और उन्नीसवीं शताब्दी तक आते-आते इस प्रकार की रचनाओं के लिए 'चित्रकाव्य' नाम प्रचलित हो गया था। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में चित्रकाव्य की प्रचुर रचना हुई।

इस ग्रन्थ में चित्रकाव्य का प्रयोग उसी अर्थ में किया गया है और लेखक का उद्देश्य प्रमुखतः हिन्दी-रचनाकाव्य का अध्ययन करना है। हिन्दी चित्रकाव्य का अधिकांश भाग संस्कृत से लिया गया है, इसलिए विद्वान लेखक ने संस्कृत चित्रकाव्यों के अध्ययन को आधार बनाकर हिन्दी-चित्रकाव्य के विविध पक्षों का विश्लेषण किया है। लेखक ने विषय-विवेचन को पूर्णता प्रदान करने के लिए भगीरथ प्रयास किया है। ग्रन्थ में चित्रकाव्य के स्वरूप एवं क्रमिक विकास की स्पष्ट रूपरेखा प्रस्तुत की गई है जो इस विषय के अध्येताओं के लिए पर्याप्त उपयोगी सिद्ध होगी।

लेखक की यह अप्रत्यक्ष स्वीकारोक्ति ठीक ही है कि आज का कोई भी प्रकाशक इस अतिव्ययसाध्य शास्त्रीय ग्रन्थ को प्रकाशित करने का उत्साह नहीं दिखाता क्योंकि शास्त्रीय ग्रन्थ होने के कारण इसके पाठक कम होते हैं और प्रकाशन-व्यय अधिक होता है।

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् द्वारा इसी प्रकार के ग्रन्थ अधिकांशतः प्रकाशित किये जाते हैं जिनका शास्त्रीय महत्व होता है और जो प्रकाशकों के लिए स्पृहणीय नहीं रहते। परिषद् का उद्देश्य श्रेण्य साहित्य का प्रकाशन कर हिन्दी साहित्य का भण्डार समृद्ध करना है, इस दृष्टि से ही परिषद् इस शास्त्रीय ग्रन्थ का प्रकाशन कर रही है। विश्वास है, परिषद् के अन्य गौरव ग्रन्थों की तरह साहित्य जगत् में इस शास्त्रीय ग्रन्थ को भी सम्मान और समादर प्राप्त होगा।

शिववंश पाण्डेय
उपाध्यक्ष-सह-निदेशक

लेखकीय

'चित्रकाव्य' भारतीय मनीषा के उस उच्च कलाज्ञान का द्योतक है जहाँ एकाधिक ललितकलाओं के मिश्रण से अद्‌भुत सौन्दर्यभावना की सृष्टि होती थी। नृत्य-संगीत, नृत्य-चित्र, संगीत-काव्य, चित्र-काव्य जैसी एकाधिक कलाओं की मिश्रित कलाभावना भारतीय कलामनीषा के बीच वर्तमान थी। यह उच्च कलाभावना निश्चय ही समृद्ध एवं अवकाशपूर्ण जीवनयापन की संस्कृति से सम्बद्ध रही होगी। कलाक्षेत्र की यह उच्चता प्राचीन भारत की कलात्मक गरिमा के साथ ही कवियों और कलाकारों के बौद्धिक विलास की भी परिचायक है। यह भी उतना ही सत्य है कि इस प्रकार की रचनाएँ सामन्तवादी संस्कृति की उपज हैं। निश्चय ही आज की उपयोगितावादी जीवनपद्धति और जीविकोपार्जन अथवा अर्थोपार्जन में व्यस्त मनुष्य के जीवन में इस प्रकार की रचनाओं के लिये स्थान नहीं है। तथापि इसे समक्ष पाकर आज भी विद्वान इसकी ओर आकृष्ट हुए विना नहीं रहते। इसके सम्बन्ध में अग्निपुराण की उद्‌घोषणा है—

दुःखेन कृतमत्यर्थं कविसामर्थ्य सूचकम्।
दुष्करं नीरसत्वेऽपि विदग्धानां महोत्सवः॥

विदग्धों को आनन्द प्रदान करने के साथ यदि इनसे कवियों को यश न भी मिले तो भी मित्रों को प्रसनता होती है और अमित्रों के खेद का कारण ये नहीं होतीं।—

नामधेयं यदि न चेदमीषु कविकाव्ययोः।
मित्रधेयानि तुष्यन्ति नामित्रः खिद्यते यथा॥

रचना को अपने विषय में स्वतः बोलना चाहिये। विद्वान पाठक ही इसके महत्त्व और साहित्य तथा शास्त्र की दृष्टि से इसके समुचित स्थान के निणयिक होंगे। चूँकि इसमें 'चित्रकाव्य' से सम्बद्ध सिद्धान्तों का विवेचन एवं प्रतिपादन हुआ है, अतः इसका स्थान शास्त्र के अन्तर्गत है। साथ ही इसमें 'चित्रकाव्य' के स्वरूप एवं क्रमिक विकास की रूपरेखा का प्रस्तुतीकरण भी है और 'चित्रकाव्य' के साहित्यिक महत्त्व को भी आँकने की चेष्टा है अतः इतिहास और आलोचना के क्षेत्र से भी यह जुड़ जाती है। इस प्रकार इस रचना के विषयक्षेत्र को हम शास्त्रीय आलोचना कहना चाहें तो समीचीन होगा।

पुस्तक का मूलरूप पटना बिश्वविद्यालय की डी० लिट० की उपाधि के लिय शोध-प्रबन्ध के रूप में १९६५ ई० में तैयार किया गया था। १९६६ ई० में इसपर उक्त उपाधि प्रदत्त हुई। इस क्षेत्र में इस वृहत् आकार में यह पहला कार्य था और जहाँ तक मेरी जानकारी है, बाद में भी और कोई कार्य नहीं हुआ है। अंशविशेष पर कतिपय कार्यों की सूचना है, किन्तु उनका मुद्रित रूप अभी तक देखने में नहीं आया है। मूल पाण्डुलिपि में कुल

१८० बन्धों के चित्र हैं। परिणामतः किसी भी प्रकाशक के लिये इसका प्रकाशन व्ययसाध्य था, साथ ही शास्त्रग्रन्थ होने के कारण इसके पाठक के सीमित होने की सम्भावना थी। १९७५ ई० में बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद् ने इसके प्रकाशन का दायित्व लिया। किन्तु परिषद् और लेखक के बीच प्रकाशन सम्बन्धी अनुबन्ध १९७८ ई० में सम्पन्न हो सका। उसी वर्ष इसके प्रारम्भिक ३२ पृष्ठ मुद्रित भी हो गये। तदुपरान्त इसके प्रकाशन में अनेक प्रकार की रुकावटें आईं और इसका मुद्रण स्थगित करा दिया गया। सबसे बड़ी बाधा चित्रों की संख्या को लेकर थी : प्रकाशन से सम्बद्ध परिषद्-कर्मियों का आग्रह था कि व्ययराशि को ध्यान में रखकर इसमें से आधे चित्र निकाल दिये जाने चाहिये। लेखक की दृष्टि में चित्र ही चित्रकाव्य की आत्मा है, अतः इन्हें निकालना पुस्तक की पूर्णता को खण्डित करना होता। इसी ऊहापोह में ९ वर्ष निकल गये और परिषदकर्मियों का हठ बना रहा। अन्ततः मित्रों की सलाह मानकर तथा 'अरध तजहिं बुध सरबस जाता' के सिद्धान्त को अपनाकर ८१ चित्र एवं तत्सम्बन्धी विवेचन से युक्त २०० पृष्ठों की सामग्री निकाल दी गई। इतने पर भी प्रकाशन की गति इतनी धीमी रही कि एक वर्ष से भी अधिक समय में १६ पृष्ठों का एक फरमा ही मुद्रित हो पाया। इसके मुद्रण में और अधिक विलम्ब होता यदि १९८८ में परिषद् के तत्कालीन प्रभारी, उप-निदेशक, प्रकाशन मित्रवर डा० बजरंग वर्मा ने व्यक्तिगत रुचि नहीं दिखाई होती। उनके सद्प्रयत्न से पुस्तक का चतुर्थांश १९८८ में मुद्रित हो सका। उनके प्रति आभार प्रदर्शित करना उपचार मात्र नहीं है, वे इसके सही अधिकारी हैं। डा० वर्मा केवल परिषद् के अधिकारीमात्र नहीं थे, विद्वान, साहित्यकार और सहृदय कवि होने के नाते उन्होंने पुस्तक के महत्त्व को समझा था।

परिषद् के वर्तमान निदेशक डॉ० शिववंश पाण्डेय जी का मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ। उन्होंने मुद्रक और प्रेस को सारी अपेक्षित सुविधाएँ उपलब्ध कराने के साथ-साथ ऐसी प्रेरक व्यवस्था की कि तीन-चार महीनों के उनके कार्यकाल के अन्तर्गत पुस्तक का शेष तीन चौथाई अंश मुद्रित हुआ है। यह स्फूर्ति परिषद् से अपनी सम्बद्धता की अवधि में मुझे कभी लक्षित नहीं हुई। जिस कार्य का चतुर्थांश दस वर्षों में सम्पन्न हुआ हो, उसकी पूर्णाहुति तीन-चार महीनों में हो, वह निश्चय ही बदली हुई कार्य संस्कृति का परिचायक है।

एक विडम्बना यह भी है कि व्ययराशि की जिस अधिकता के भय से अत्यन्त महत्त्व के एक बड़े अंश को पुस्तक से निकाल देना पड़ा, उसकी व्ययराशि आज उससे कहीं अधिक होगी जो पूर्ण पुस्तक के मुद्रण में पहले लगी होती तथापि मैं आशावान हूँ कि अगले संस्करण में निकाले गये अंश को सम्मिलित कर पुस्तक के वर्तमान स्वरूप का परिवर्द्धन किया जा सकेगा।

पुस्तक के लेखन से लेकर प्रकाशन और मुद्रण के क्रम में जितने लोगों का सहयोग मुझे मिला है, यदि उनकी चर्चा करने लगूँ तो एक लम्बी सूची तैयार हो जायगी। नाम लिये बिना अपने गुरुजनों, सुहृदों, शिष्यों तथा अन्य सभी सम्बद्ध बन्धुओं के प्रति मैं हृदय

से कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिनके अमूल्य सहयोग से इस रचना का प्रस्तुतीकरण सम्भव हो सका है। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् के उन वन्धुओं का मैं आभारी तो हूँ ही जिनका प्रत्यक्ष सहयोग मुझे मिलता रहा है जिनमें वर्तमान प्रकाशनाधिकारी श्री श्रीकृष्ण शाह का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है, उन परिषद्कर्मियों का भी ऋण मेरे ऊपर है जिनके सम्पर्क से मानवमनोविज्ञान के क्षेत्र में मेरा ज्ञानवर्द्धन हुआ है। वाल्मीकि प्रेस की तत्परता एवं चुस्ती से ही इतने अल्प समय में पुस्तक के इतने बड़े अंश का मुद्रण सम्भव हो सका है अतः उसके अधिपति, व्यवस्थापक तथा कर्मचारीगण विशेष धन्यवाद के पात्र हैं।

पुस्तक की त्रुटियों का उत्तरदायित्व मेरा है। मुद्रणतकनीक की विशेषज्ञता नहीं होने के कारण मुद्रण सम्बन्धी त्रुटियां भी होंगी ही। इन सभी के लिए विज्ञ पाठकों के समक्ष मैं क्षमाप्रार्थी हूँ। साथ ही यह अनुरोध भी है कि अपने बहुमूल्य सुझावों द्वारा मुझे अवश्य लाभान्वित करें। पुस्तक के अधिकांश का प्रूफशोधन मैंने स्वयं किया है किन्तु कुछ अंश जो प्रारम्भ में छपे थे उन्हें मैं देख नहीं पाया था। **पुस्तक के पृ० ३० की पाद टिप्पणी ५ और ७ को पाठक पृ० २७ पा० टि० ३, पृ० २८ पा० टि० १-२ और पृ० ३० पा० टि० १ पढ़ें तो बात स्पष्ट हो जायगी। इसी प्रकार पृ० ४२८ पर नीचे** से पाँचवीं पंक्ति में लिखित २९ **को ३० पढ़ा जाय।** प्रूफशोधन की इस भूल के लिये भी मैं क्षमाप्रार्थी हूँ।

एकबार पुनः उन सभी वन्धुओं के प्रति आभार प्रकट करना अपना कर्तव्य समझता हूँ, जिनका कभी किसी रूप में इस पुस्तक के प्रस्तुतीकरण, प्रकाशन एवं मुद्रण से सम्बन्ध रहा है।

इस क्रम में अपनी समभागिनी श्रीमती रुक्मिणी मिश्र का उल्लेख न करना हृदय-हीनता होगी। यह उल्लेख उन्हें अटपटा अवश्य लगेगा क्योंकि आत्मिका शक्ति प्रतिदान की अपेक्षा नहीं रखती। फिर भी अनेक रूपों में योगदान करनेवाली का यह सहज अधिकार तो है ही।

और अन्त में उन सभी चित्रकवियों एवं चित्राचार्यों को मेरा शतशः नमन जिनकी रचनाओं और व्याख्याओं के परिणामस्वरूप ही यह कार्य सम्भव हो सका है। मेरी यह पुस्तक उन्हें ही समर्पित है।

त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पयामि।

पटना **रामदीन मिश्र**

वैशाखी पूर्णिमा, सं० २०४६ वि०

शनिवार, २० मई १९८९ ई०

अनुक्रम

प्रथम अध्याय

द्वितीय अध्याय

तृतीय अध्याय

पृष्ठ संख्या

पृष्ठ संख्या

पंचम अध्याय

पृष्ठ संख्या

प्रथम अध्याय

भूमिका

विषय-सीमा तथा प्रतिपादन-प्रणाली

'चित्र' शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थों में हुआ है। कोशों में इस शब्द के निम्नांकित अर्थ प्राप्त होते हैं—

१. कर्बुर, २. आलेख्य, ३. तिलक रचना, ४. आश्चर्य, विस्मय, ५. विचित्र आदि।[1]

किन्तु काव्य से सम्बद्ध इस शब्द का उल्लेख सर्वप्रथम हमें विशेषण-रूप में महाक्षत्रप रुद्रदामा के गिरनार-शिलालेख (सन् १५० ई०) में मिलता है—

---

१. (क) "चित्रकिर्मीरकल्माषशबलोन्मिश्रकर्बुराः।
करम्बः कबरः शारः सम्पृक्तः खचितः समाः ॥५६॥

× × ×

चित्रमद्भुतमाश्चर्यं विस्मयश्चाद्यमुच्यते ॥६८॥

—अभिधान-रत्नमाला (हलायुध), अध्याय ४, पृ० ७९-८०

(ख) "चित्त-चित्र :
आश्चर्यभूते, नानाप्रकारे, अनेकविधे, आश्चर्यकारिणि, अतिरम्यतयाऽद्भुते, शोभयाऽद्भुतभूते, अनेकरूपवति, विचित्रे, चित्रकारिणि, चित्रवति, भित्त्यादिलेख्ये चित्रमेवहि संसारो, रागादिक्लेशवासितम्। कर्बुरे, वेणुदेववेणुदारिणोः प्रथमे लोकपाले, शंखराजस्य भागिनेये, प्रदेशिराजदूते, श्वेतव्यां, नगर्यां चित्रनामादूतः प्रदेशिराज्ञा प्रेषितः श्रावस्त्यां नगर्यां जितशत्रु समीपे स्वगृहान्निर्गत्य गतः।"

—अभिधानराजेन्द्र, भाग ३, पृ० ११८०

(ग) "चित्रं नपुंसकं पुण्ड्रं स्यादालेख्येऽप्यथ त्रिषु।
आश्चर्ये कर्बुराभिख्यवर्णयुक्तेऽप्यथो पुमान् ॥४१६॥
देवतानुक्रमे प्रोक्त आखुराजे चिरन्तने।
कर्बुराख्यगणेऽथ स्त्री चित्रा हेमन्तरात्रिषु ॥४१७॥"

—नानार्थार्णवसंक्षेपः, द्व्यक्षर काण्ड, पृ० ७८

(घ) "चित्रं किर्मीरकल्माषशबलैताश्चकर्बुरे·······॥१७॥", पृ० ६२

× × ×

"विस्मयोऽद्भुतमाश्चर्यं चित्रमपि·········॥१८॥", पृ० ७८

× × ×

"आलेख्याश्चर्ययोश्चित्रम्····॥१७८॥, पृ० ४२७

—नामलिङ्गानुशासन (अमरकोश)

"………स्फुटलघुमधुरचित्रकान्तशब्दसमयोदारालंकृतगद्यपद्य……"[१] यद्यपि निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि चित्र का प्रयोग यहाँ किस अर्थ में हुआ है, किन्तु डॉ० बूलर ने उपर्युक्त वाक्यखण्ड में उल्लिखित विशेषणों में दण्डी के द्वारा विवेचित वैदर्भमार्ग के

(ङ) "तिलकालेख्याद्भुतेषुचित्रं त्रिषु तु कर्बुरे ॥६८०॥"

—मंत्रकोशष्टीकासारसहितः, पृ० ४९

(च) "तिलकं चित्रके प्राहुर्लामे तिलकालके………॥६०॥"

—विश्वप्रकाश, पृ० ७, कत्रिकम् ('तिलक' शब्द के अर्थ में चित्र का उल्लेख)

(छ) "………चित्रं त्वाश्चर्यं फुल्लमद्भुतम् ॥७८॥ (भूमिकाण्डे, शूद्राध्यायः), पृ० १४२

■ ■ ■

"चित्रं तमालपत्रं स्त्री तिलकोऽस्त्री विशेषकम् ॥१४८॥"

(पातालकाण्डे, पुराध्याय, पृ०१४८)

■ ■ ■

"………चित्रमालेख्यमिश्रयो: ॥३०॥" (द्व्यक्षर काण्डे, नानालिङ्गाध्यायः, पृ० २३२)

—वैजयन्ती

(ज) "चित्र………क्षणिकेक्षणे। लेख्येऽद्भुते।
चित्रं, स्त्री—तिलकम्। आलेख्यम्। अद्भुतम्। कर्बुरवर्णः। अलङ्कार-विशेषः षोडशाक्षरावृत्तिछन्दोभेदः।"

■ ■ ■

"आकाशः कुष्ठविशेषः।"

—शब्दकल्पद्रुम, भाग २, पृ० ४४८

(झ) "चित्रोऽग्निपादपे चित्रमद्भुते शबलेऽपि च ॥", पृ० २५४

■ ■ ■

"पुण्ड्रोऽति मुक्तके चित्रे क्रमौ दैत्येक्षुभेदयोः ॥", पृ० २५७

—शब्दरत्नसमन्वयकोश

(ञ) "चित्र, क्षणिकेलेख्ये अद्भुते च……
चित्र पु०……यमभेदे, अशोकवृक्षे, चित्रक वृक्षे, एरण्ड वृक्षे, आकाशे, कुष्ठभेदे, नानावर्णे च। तद्वति अद्भुते च………। लेख्येतिलके शब्दालङ्कार भेदे च।
—चित्र इवकायतिकैक व्याघ्रभेदे पु०।"

—शब्दस्तोममहानिधि, प्रथम खण्ड, पृ० १८३

(ट) "चित्रं तिलकमिच्छन्ति चित्रमालेख्यमद्भुतम्।
नक्षत्रं च सुभद्रा च चित्रा चित्रं च कर्बुरम् ॥१७॥"

—शाश्वतकोश (अनेकार्थसमुच्चय), पृ० ३

१. Selections from Sanskrit Inscriptions, Part, I, p.2
Girnar Rock Inscription of Rudradaman of Saka Year 72 (150 A.D.)

दसों लक्षणों से समता देखी है[१] और इस क्रम में चित्र का अर्थ ओज लिया है।[२] अपने समर्थन में उन्होंने भरत के द्वारा निर्द्धारित ओज के लक्षण में समाविष्ट विचित्र पद को उद्धृत किया है[3] और चित्र का अर्थ 'Wonderful, exciting wonder' लेकर विचित्र से उसकी समता बैठाई है।[४] किन्तु डॉ० बूलर ने भी चित्र के इस अर्थ की सम्भाव्यता ही देखी है।[५]

मेरे विचार में आश्चर्य का तात्पर्य 'force of expression' नहीं है जैसा कि डॉ० बूलर ने माना है।[६] चित्र का तात्पर्य यहाँ चमत्कारपूर्ण अथवा चमत्कारोत्पादक मालूम पड़ता है। इसके समर्थन में हम प्रस्तुत शिलालेख की भाषा को ही ले सकते हैं, जिसमें अनुप्रास और यमक का चमत्कार बहुलता से प्राप्त हैं।[७] डॉ० बूलर का ध्यान भी इस ओर गया है और अपने निबन्ध में उन्होंने उपर्युक्त शिलालेख में प्रयुक्त अनुप्रास और यमक का विवेचन भी किया है। 'चित्र' शब्द इस प्रकार यहाँ चमत्कारपूर्ण अथवा 'विचित्र' के इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, निश्चित ही जिसका विकास आगे चलकर चित्रालंकार अथवा दुष्कर रचना में हुआ। रुद्रट ने भी अपने काव्यालंकार में चित्र का लक्षण देते हुए इसी अर्थ में 'विचित्र' शब्द

. ...as regards the characteristics which the Pras 'asti' for gadya-padya the compcsition in prose and metrical form' it is to be noted that the essentials agree with those which are given by Dandin for the Vaidarbhi riti, in accordance with an old tradition."

Selections from Sanskrit Inscriptions Vol. I part II

Appendix में संगृहीत **Dr. Buhler** के निबन्ध का अंश, अथवा इण्डियन ऐण्टीक्वेरी, १९१३ में प्रकाशित निबन्ध।

Indian Inscriptions and the Antiquity of Indian Artificial Poetry'.

. 'A fifth characteristic Ojas the force of expression' may probably be meant by the adjective Chitra 'Wonderful, exciting Wonder.' —उपरिवत् पृ० ८८

. In favour of this we can quote Bharat s definition (Chap. XVI);

'समासवद्भिर्विविधैर्विचित्रैश्च पदैर्युतम्।
सातु (साधु) स्वरैरुदारैश्च तदोजः परिकीर्त्यते॥"

—उपरिवत्

४. द्रष्टव्य, उपर्युक्त पाद-टिप्पणी २

५. ध्यातव्य, उपर्युक्त पा० टि० २ में उल्लिखित 'probably'।

६. द्रष्टव्य, उपर्युक्त पा० टि० २ तथा डॉ० बूलर का निबन्ध।

७. प्रहरण-वितरण (१.१३) प्रभृतीनां नदीनां (१.६), कामविषयाणां विषयाणां (१.१०) विधेयानां यौधेयानां (१८१२) आदि। —उपरिवत्, पृ० ४३।

का प्रयोग किया है।[१] दण्डी ने दुष्कर के विवेचन के अन्तर्गत गोमूत्रिकादि के साथ ही स्वर, व्यंजन तथा स्थान-नियमों के लक्षण-उदाहरण भी दिये हैं तथा बाद के आचार्यों ने भी दुष्कर अथवा चित्र के अन्तर्गत इनका विस्तृत विवेचन किया है।[२] इन रचनाओं में वर्ण-साम्य अथवा वर्णावृत्ति की ही प्रधानता होती है, जैसे सम्पूर्ण छन्द में किसी एक ही व्यंजन अथवा स्वर का प्रयोग।[3] फलतः यमक और अनुप्रास की कोटि में इनका भी स्थान हो सकता है। विद्याधर ने इसी आधार पर व्यंजन-चित्र तथा स्वरचित्र को चित्र मानना भी स्वीकृत नहीं किया है। उनके विचार में व्यंजन-चित्र अनुप्रास का ही एक रूप है।[४] दुष्कर के अन्तर्गत दण्डी द्वारा विवेचित इन रचनाओं की ओर डॉ० बूलर का ध्यान सम्भवतः नहीं गया, यही कारण है कि उन्होंने चित्र का अर्थ ओज लिया। दूसरी बात यह थी कि शिलालेख में प्रयुक्त गद्य-पद्य के कतिपय अन्य विशेषणों को देखकर उन्हें पूर्वनिश्चय हो गया था कि प्रस्तुत शिलालेख में दण्डी द्वारा विवेचित वैदर्भमार्ग का ही संकेत है, फलतः उन्होंने अन्य विशेषणों के अर्थ भी प्रयत्न करके दण्डी द्वारा निश्चित वैदर्भमार्ग के दसों लक्षणों की समता में बिठाये हैं। इस आयास के कारण ही वे चित्र का अर्थ ओज कर सके हैं। यह शब्द अन्यत्र इस अर्थ में प्रयुक्त नहीं मिलता।

आगे चलकर काव्यशास्त्र में 'चित्र' शब्द का प्रयोग निम्नांकित तीन अर्थों में हुआ है—

१. शब्दालंकार के अन्तर्गत चित्रालंकार के रूप में ;
२. ध्वनि तथा गुणीभूत व्यंग्य से इतर व्यंग्यहीन काव्य के रूप में तथा
३. अर्थालंकार के अन्तर्गत उत्तर अथवा गूढ़ोत्तर के एक भेद के रूप में।

---

१. "भङ्ग्यन्तरकृततत्क्रमवर्णनिमित्तानि वस्तुरूपाणि।
साङ्कानि विचित्राणि च रच्यन्ते यत्र तच्चित्रम् ॥"—काव्यालंकार ५।१
(यत्र काव्ये वस्तूनां चक्रादीनां रूपाणि संस्थानानि रच्यन्ते निबध्यन्ते तच्चित्र सादृश्यादाश्चर्याद्वा-चित्रं नामालंकारः। —नमिसाधु)

२. काव्यादर्श, अ० ३, श्लोक ७८-९५ तथा प्रस्तुत प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत अग्निपुराण, भोज तथा हेमचन्द्र का विवेचन।

३. जैसे एक व्यंजन का प्रयोग—

"नूनंनून्नानि नानेन नाननेनाननानि नः।
नानेनाननु नानूने नैनेनानानिनीनिनी: ॥
—काव्यादर्श, ३—९५

तथा एक स्वर का प्रयोग—

सामायामा माया मासा मारानायायाना रामा।
यानावारारावानाया मायारामा मारायामा ॥
—काव्यादर्श, ३—८७

४. एकावली, सप्तम उन्मेष, पृ० १९१-९२, साथ ही प्रस्तुत प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय में विद्याधर का विवेचन भी द्रष्टव्य।

संस्कृत-काव्यशास्त्र में चित्रालंकार को शब्दालंकार माना गया है। इस अर्थ में 'चित्र' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग हम रुद्रट में पाते हैं। इसके अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के बन्ध-वर्णविन्यास के द्वारा वस्तुओं का रूपांकन, गजपद, तुरगपद, सर्वतोभद्र, अर्धभ्रम प्रभृति गत्यात्मक वर्णविन्यास, अनुलोम-प्रतिलोम जैसी छन्द-रचना, मात्रादिच्युतक, गूढ़, प्रहेलिका आदि की गणना हुई है।[1]

अग्निपुराण में भी शब्दालंकार के अन्तर्गत ही चित्र का विवेचन हुआ है, किन्तु वहाँ चित्र में प्रश्नोत्तर, प्रहेलिका, च्युत, दत्त, च्युतदत्त, गूढ़ तथा समस्या को ही रखा गया है।[2] वस्तुरूपाकारबन्ध को चित्र से इतर स्वतन्त्र शब्दालंकार दुष्कर का एक भेद माना गया है। अग्निपुराणकार ने दुष्कर के तीन भेद—नियम, विदर्भ तथा बन्ध माने हैं।[3] दण्डी ने भी इस प्रकार की गोमूत्रिकादि गत्यात्मक वर्ण-विन्यास तथा स्वरादि नियम से युक्त रचना को 'दुष्कर' ही कहा है।[4] 'चित्र' शब्द का प्रयोग काव्यादर्श में कहीं नहीं मिलता। दुष्कर शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में ध्वन्यालोक तथा देवीशतक में भी हुआ है।[5] क्रमशः लोचन-कार तथा कैय्यट ने इसी अर्थ में इस शब्द की व्याख्या की है।[6] 'चित्र' शब्द का प्रयोग

---

१. काव्यालंकार, अ० ५, श्लोक १—३

२. अ०पु०, अ० ३४३, श्लोक २२-२३ यथा—

"गोष्ठ्यां कुतूहलाध्यायी वाग्बन्धश्चित्रमुच्यते।
प्रश्नः प्रहेलिका गुप्तं च्युतं दत्तं तथाभयम्॥
समस्या सप्त तद्भेदा............।"

३. "दुःखेन कृतमत्यर्थं कविसामर्थ्यसूचकम्।
दुष्करं नीरसत्वेऽपि विदग्धानां महोत्सवः॥
नियमाच्च विदर्भाच्च बन्धाच्च भवति त्रिधा।"

—अ०पु०, ३४३।२२-२३

४. "इतिदुष्करमार्गेऽपि कश्चिदादर्शितः क्रमः।" —का०द०, ३-९६

५. ध्वनेरात्मभूतः शृंगारस्तात्पर्येण वाच्यवाचकाभ्यां प्रकाश्यमानस्तस्मिन्यमकादीनां यमकप्रकाराणां निबन्धनं दुष्करशब्दभंगश्लेषादीनां शक्तावपि प्रमादित्वम्।"

—ध्वन्यालोक, उद्योत २, कारिका १५ की वृत्ति

× × ×

"येनानन्दकथायां त्रिदशानन्दे च लालिता वाणी।
तेन सुदुष्करमेतत्स्तोत्रं देव्याः कृतं भक्त्या॥"

—दे०श०, श्लोक १०४

६. "दुष्करं मुरजचक्रबन्धादि।" —लोचन, उपरिवत्

× × ×

"सुदुष्करं शोभना दुष्कराश्चक्रबन्धादयो यत्र सुष्ठु वा दुष्करं नान्येन केनचित् कर्त्तुं शक्यमिति।" —उपर्युक्त श्लोक की टीका—कैय्यट

आनन्दवर्धन ने ध्वनिविहीन काव्यमात्र के लिए किया है।[१] इस प्रकार काव्य के क्षेत्र में 'चित्र' शब्द का दूसरा अर्थ प्राप्त होता है। राजशेखर ने 'काव्यमीमांसा' में केवल ९ अलंकारों की चर्चा की है—चार शब्द के, चार अर्थ के तथा एक उभयालंकार, और इनमें चित्र का भी स्थान है। यहाँ यद्यपि शब्दालंकार तथा अर्थालंकार नाम से विभाजन नहीं है, फिर भी एक क्रम में उनका उल्लेख है और चित्र का स्थान शब्दालंकारों के क्रम में ही है।[२] धारा-नरेश भोज ने सरस्वतीकण्ठाभरण में शब्दालंकार-प्रकरण के अन्तर्गत चित्र का बहुत ही विस्तृत विवेचन किया है।[३] भोज ने 'दुष्कर' शब्द का भी प्रयोग किया है, पर वह विशेषण के रूप है।[४] मम्मट तथा रुय्यक ने चित्र के उपर्युक्त दोनों ही अर्थ ग्रहण किये हैं और इनका विवेचन दोनों ही रूपों में किया है। मम्मट ने चित्रकाव्य को अवर अथवा अधम कहा है तथा इसका प्रयोग आनन्दवर्धन के अनुकरण पर अव्यंग्य काव्य के लिए किया है।[५] रुय्यक ने भी इसी प्रकार ध्वनि तथा गुणीभूत से इतर अन्य प्रकार के काव्य को चित्र कहा है।[६] किन्तु शब्दालंकार-प्रकरण में इन दोनों आचार्यों ने चित्र का भी विवेचन किया है।[७] स्पष्ट है कि मम्मट की समन्वयकारी वृत्ति ने दोनों ही परम्पराओं को समाहृत कर इस शब्द का प्रयोग दोनों स्थानों में किया है। यह प्रश्न उनके सम्मुख नहीं आया कि जब 'चित्र' शब्द से सम्पूर्ण अलंकार-काव्य को ही अभिहित किया जा रहा है, फिर उसी शब्द का प्रयोग अलंकार-विशेष के लिए भी हो, इसका औचित्य क्या है? बाद के आचार्यों ने भी इस शब्द का प्रयोग इन्हीं दोनों अर्थों में से किसी एक में अथवा दोनों में किया है। हेमचन्द्र, वाग्भट (प्रथम), जयदेव, विद्यानाथ, विद्याधर, वाग्भट (२), विश्वनाथ प्रभृति आचार्यों ने 'चित्र' का प्रयोग शब्दालंकार-विशेष के लिए ही किया

१. "गुणप्रधानभावाभ्यां व्यंग्यस्यैवं व्यवस्थिते।
काव्ये उभे ततोऽन्यद्यत् तच्चित्रमभिधीयते॥"

—ध्वन्यालोक, तृतीय उद्योत, कारिका ४३

२. "........आनुप्रासिकं प्रचेता, यमो यमकानि, चित्रं चित्रांगदः, शब्दश्लेषं शेषः, वास्तवं पुलस्त्यः, औपम्यमौपकायनः, अतिशयं पाराशरः, अर्थश्लेषमुतथ्यः, उभयालंकारिकं कुबेरः......"

—काव्यमीमांसा, पृ० १

३. सरस्वतीकण्ठाभरण, परि० २

४. "दुष्करत्वात्कठोरत्वाद्दुर्बोधत्वाद्विनावधेः।
दिङ्मात्रं दर्शितं चित्रे शेषमूह्यं महात्मभिः॥"

—स०क०, परि० २, कारिका १४२

५. "शब्दचित्रं वाच्यचित्रमव्यंग्यं त्ववरं स्मृतम्।"

—का० प्र०, उल्लास १, श्लोक ५, कारिका ४

६. "तत्र व्यंग्यस्यप्राधान्याप्राधान्याभ्यां ध्वनिगुणीभूतव्यंग्याख्यौ द्वौ काव्यभेदौ।
व्यंग्यस्यास्फुटत्वेऽलंकारवत्त्वेन चित्राख्यः काव्यभेदस्तृतीयः।"

—अ० स०, पृ० ९ शा० सं० मा० (पृ० १३—१५, काव्यमाला)

७. का० प्र०, उल्लास ९, श्लोक ८५, कारिका १२१
अ० स०, पृ० २० (दोनों ही संस्करणों में)

है।[1] हेमचन्द्र ने एक स्थल पर दुष्कर तथा चित्र दोनों का साथ ही प्रयोग किया है, पर यहाँ दुष्कर चित्र के विशेषण के रूप में प्रयुक्त है।[2] कारण, चित्र के अन्तर्गत ही दुष्कर के अन्तर्गत ली गई रचनाओं का विवेचन हो जाने से इसका अलग कोई महत्त्व नहीं रह जाता। अप्पयदीक्षित ने चित्रमीमांसा में चित्र का प्रयोग अलंकारमात्र अर्थात् व्यंग्यहीन काव्य के अर्थ में ही किया है।[3]

'चित्र' शब्द का प्रयोग एक तीसरे अर्थ में भी अलंकार-ग्रन्थों में मिलता है। विशेषकर संस्कृत के परवर्ती आचार्यों ने अर्थालंकार के अन्तर्गत गूढ़ोत्तर अथवा उत्तर-अलंकार के एक भेद के रूप में चित्र अथवा चित्रोत्तर-अलंकार का विवेचन किया है। इस रूप में चित्र का प्रयोग सर्वप्रथम हमें कुवलयानन्द में प्राप्त होता है।[4] रुद्रट, अग्निपुराणकार तथा हेमचन्द्र ने चित्रालंकार के अन्तर्गत ही प्रश्नोत्तर का भी विवेचन किया है।[5] इन लोगों ने प्रश्नोत्तर को कोई अलग अलंकार नहीं माना। भोजराज ने प्रश्नोत्तर, प्रहेलिका तथा गूढ़ में से प्रत्येक का विवेचन चित्रालंकार से इतर स्वतन्त्र शब्दालंकार के रूप में किया है।[6] किन्तु इसका कारण उनके विभाजन की यान्त्रिक पद्धति है, जिसके अनुसार उन्होंने शब्दालंकार, अर्थालंकार तथा उभयालंकार में से प्रत्येक के २४ भेद माने हैं।[7]

मम्मट ने ही सर्वप्रथम उत्तर-अलंकार का विवेचन अर्थालंकार के अन्तर्गत किया तथा चित्रालंकार में प्रश्नोत्तर को स्थान नहीं दिया। मम्मट के उपरान्त अन्य आचार्यों ने भी उनका अनुकरण किया, जिनमें वाग्भट (प्रथम), विश्वनाथ, पण्डितराज जगन्नाथ आदि परवर्ती

---

१. काव्यानुशासन, अ० ५, सूत्र ४
वाग्भटालंकार, परि० ४, श्लोक २, पृ० २८
चन्द्रालोक, मयूख ५, श्लोक ९
प्रतापरुद्रीय, शब्दालंकार-प्रकरण, पृ० २५१
एकावली, उन्मेष ७, कारिका ८, पृ० १८९
काव्यानुशासन, अ० ४, पृ० ४६
साहित्यदर्पण, परि० १०, पृ० ६८७

२. काव्यानुशासन, अ० ८, सूत्र ६ की वृत्ति।

३. "यद्व्यंग्यमपि चारु तच्चित्रम्।"—चि० मी०, ग्रन्थारम्भ-प्रकरण, पृ० १

४. "प्रश्नोत्तरान्तराभिन्नमुत्तरं चित्रमुच्यते।
"केदारपोषणरताः के खेटाः किं चलं वयः ॥१५०॥"
—कुवलयानन्द, पृ० १५५ (का० मा०), पृ० २४७ (चौखम्बा)

५. काव्यालंकार ५।२४, अग्निपुराण ३४३।२२, काव्यानुशासन, अ० ५, सूत्र ४ की वृत्ति के अन्त में—"गूढादित्यादिपदेन प्रश्नोत्तरप्रहेलिकादुर्वचकादि ग्रहः।"

६. स० कं०, परि० २

७. द्रष्टव्य, का० प्र०, उल्लास १०, श्लोक १२१, कारिका १८८ तथा उल्लास ९, श्लोक ८५, कारिका १२१

आचार्य आते हैं।[1] किन्तु इन आचार्यों ने चित्रोत्तर नाम से किसी भेद का उल्लेख नहीं किया, फिर भी उत्तर-अलंकार के अन्तर्गत प्रश्नोत्तर के ही कतिपय भेदों का विवेचन किया गया। अप्पयदीक्षित के अनुकरण पर बाद में प्रश्नोत्तर अथवा उत्तर के एक भेद के रूप में चित्रोत्तर भी चल पड़ा, जिसे संक्षेप में चित्र भी कहा गया।[2]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि संस्कृत-काव्यशास्त्र में 'चित्र' शब्द का प्रयोग उपर्युक्त तीनों क्षेत्रों में किया गया है।

हिन्दी-काव्यशास्त्र में 'चित्र' शब्द ने कोई नवीन अर्थ ग्रहण नहीं किया, वरन् संस्कृत में गृहीत विभिन्न अर्थों में ही इसका प्रयोग होता रहा। यों भी हिन्दी में काव्यशास्त्र के क्षेत्र में कोई नवीन उद्भावना नहीं हुई। 'चित्र' शब्द का प्रयोग यहाँ भी उपर्युक्त तीनों अर्थों में ही हुआ। फिर भी चूँकि हिन्दी के अधिकांश आलंकारिकों ने चन्द्रालोक तथा कुवलयानन्द का आधार तथा पद्धति ग्रहण की, इसलिए चित्र कहीं-कहीं स्वतन्त्र अर्थालंकार बन गया[3], कहीं चित्रोत्तर के नाम से स्वतन्त्र[4] अथवा कहीं गूढ़ोत्तर के एक भेद के रूप में[5] विवेचित हुआ। संस्कृत-काव्यशास्त्र में अर्थालंकार में चित्र गूढोत्तर अथवा उत्तर के एक भेद के रूप में ही था, पर हिन्दी में स्वतन्त्र अर्थालंकारत्व भी इसे मिल गया।

दूसरी ओर, मम्मट के अनुकरण पर 'व्यंग्यहीन काव्यमात्र' के लिए भी 'चित्र' शब्द का

---

१. वाग्भटालंकार, परि० ४, श्लोक १४४—१४७, सा० द०, परि० १०, श्लोक ८२, रस-गंगाधर, प्रस्तावना, द्वितीय भाग, पृ० ३९ (चौखम्बा)

२. मन्दारमरन्दचम्पू, पृ० १४८

३. (क) मतिराम : ललित ललाम
   (ख) जसवन्त सिंह : भाषाभूषण
   (ग) गोविन्द कवि : कर्णाभरण
   (घ) रामसिंह : अलंकार-दर्पण
   (ङ) गिरिधर दास : भारती-भूषण
   (च) हरिचरण दास : चमत्कार-चन्द्रिका
   (छ) चन्द्रशेखर : अलंकार-प्रवेशिका
   (ज) वन्दीदीन दीक्षित : प्रयागनारायण-विलास

४. (क) गोकुल कवि : दिग्विजयभूषण
   (ख) रघुनाथ : रसिकमोहन
   (ग) गोकुलनाथ : चेतचन्द्रिका
   (घ) भानुकवि : हिन्दी काव्यालंकार
   (ङ) बिहारीलाल भट्ट : साहित्यसागर (भाग २)

५. (क) दूलह : कविकुलकण्ठाभरण
   (ख) ऋषिनाथ : अलंकारमणिमंजरी
   (ग) उमेदराम : वाणीभूषण
   (घ) परमेश्वरानन्द शास्त्री : अलंकार-कौमुदी

प्रयोग हिन्दी-काव्यशास्त्र में हुआ। चिन्तामणि, कुलपतिमिश्र, भिखारीदास आदि कतिपय आचार्यों ने[1] यद्यपि इस अर्थ में भी इस शब्द का प्रयोग किया, पर पद्धति निभाने के लिए ही। उसका कोई विवेचन उन्होंने नहीं किया।

हिन्दी में चित्र का व्यापक विवेचन शब्दालंकार के क्षेत्र में ही हुआ। रीतिकाल की प्रवृत्ति ही चमत्कारोत्पादन की थी, अतः कतिपय कवि-आचार्यों की प्रवृत्ति चित्रकाव्य की रचना में विशेष रूप से रमी। ऐसे आचार्यों में केशवदास तथा भिखारीदास अग्रगण्य हैं। किन्तु हिन्दी में चित्रालंकार ने चित्रकाव्य की संज्ञा धारण की। कतिपय आचार्यों ने तो संस्कृत के अनुकरण पर इसका विवेचन शब्दालंकार के क्रम में ही किया[2], पर अधिकांश आचार्यों ने इसकी रचना तथा विवेचन स्वतन्त्र अध्याय में किया। स्वयं केशवदास ने कविप्रिया के अन्तिम प्रभाव में केवल चित्रकाव्य का ही विवेचन किया है। चित्रालंकार को चित्रकाव्य की यह संज्ञा वस्तुतः संस्कृत में ही मिल गई थी। ईसवी सन् की नवीं शताब्दी में रचित महाकाव्य कप्फिणाभ्युदय में तथा दसवीं शती में आविर्भूत कैय्यट द्वारा आनन्दवर्धन-रचित देवीशतक की टीका में इस संज्ञा का प्रयोग स्पष्टतः इसी अर्थ में किया गया है।[3] राजशेखर की काव्यमीमांसा में प्रयुक्त 'चित्रायोगा' का तात्पर्य भी इस प्रकार की रचनाएँ ही हैं।[4] आचार्य मम्मट ने भी काव्यप्रकाश में चित्रालंकार की वृत्ति में पद्माद्याकारयुक्त रचनाओं के लिए 'चित्रं काव्यम्' पद का प्रयोग किया है।[5] चित्र की विभिन्न रचनाओं के लिए आचार्य केशवमिश्र-रचित 'अलंकारशेखर' में भी 'चित्रकाव्य' शब्द का ही प्रयोग किया गया है।[6] कवि कर्णपूर ने भी 'अलंकार-कौस्तुभ' में इस प्रकार की रचनाओं को चित्रकाव्य की ही संज्ञा

१. (क) पदुमनदास : काव्यमंजरी,
(ख) कुमारमणिशास्त्री : रसिकरसाल,
(ग) लछिराम : रावणेश्वरकल्पतरु
(घ) बिहारीलाल भट्ट : साहित्यसागर
२. चिन्तामणिभूषण, कुलपति मिश्र, पदुमनदास, लछिराम आदि।
३. "विदित बहुकथाश्चित्रकाव्योपदेष्टा............"

—कप्फिणाभ्युदय, २०—४७

× × ×

"...... ...केचित्त्वनेन (केवलेन) गोमूत्रिकाबन्धेन केवलेनैव जालकृति विलिखन्ति तत्र यथानुरूपे युक्तायुक्तविचारे जालस्य प्रयोगतत्त्वविदश्चित्रकाव्यकरणकुशलाः कवयः प्रमाणम्॥"

—देवीशतक, श्लोक-सं० ८१ की टीका (काव्यमाला, नवमगुच्छक)

४. काव्यमीमांसा, अध्याय १०, कविचर्या
५. "सन्निवेशविशेषेण यत्रन्यस्तावर्णाः खड्गमुरजपद्माद्याकारमुल्लासयन्ति, तच्चित्रं काव्यम्॥"

—काव्यप्रकाश, उल्ला १०, पृ० ३२८ (चौखम्बा)

६. "सर्वतोभद्र धेन्वादि गोमूत्रीमुरजादि च।
गतप्रत्यागताद्याहुश्चित्रकाव्यंमुनीश्वराः (कवीश्वराः)॥"

—अ०शे०, मरीचि १०, पृ० २७ (काव्यमाला), पृ० २९ (चौखम्बा)

दी है[१] तथा इनका विस्तृत विवेचन भी किया है। शब्दालंकारों के क्रम में ही विवेचन करते हुए भी उन्होंने इन्हें चित्रालंकार नहीं कहा। 'अलंकार-चिन्तामणि' में अजितसेन ने धीरोष्ठ्य, बिन्दुमत्, बिन्दुच्युतक आदि रचनाओं के लिए 'चित्रविद्या' शब्द का प्रयोग किया है।[२]

हिन्दी में सर्वप्रथम आचार्य केशवदास ने ही काव्यशास्त्र का सर्वांगीण विवेचन किया और उन्होंने चित्रकाव्य का भी पर्याप्त विस्तृत विवेचन किया है। अलंकारों की सूची में यद्यपि उन्होंने चित्र और प्रहेलिका के भी नाम दिये हैं, पर चित्र को उन्होंने चित्रकवित्त ही कहा है, चित्रालंकार नहीं—

यहिविधि औरहु जानियो बुखकर यमक अनेक।
बरणौं **चित्रकवित्त** अब सुनिये सहित विवेक॥

× × ×

केशव **चित्रसमुद्र** में बूड़त परम विचित्र।
ताके बूंदक के कणे बरनत हौं सुनि मित्र॥[३]

इसी प्रकार अन्य आचार्यों ने भी यद्यपि चित्र का नाम शब्दालंकार के अन्तर्गत ही रखा है, तथापि उसका विवेचन या तो स्वतन्त्र अध्याय में किया है या फिर उसे चित्रकवित्त अथवा चित्रकाव्य की संज्ञा से अभिहित किया है। कुलपति मिश्र ने अपने 'रस-रहस्य' नामक ग्रन्थ में चित्र को शब्दालंकार मानकर भी केशवदास के समान ही 'चित्रकवित्त' की संज्ञा दी है—

"लिखिबे ही की चतुरई, उपजै छन्द अनेक।
जहाँ **सुचित्र कवित्त** है, बहुविधि बंधु विवेक॥"[४]

हिन्दी के आचार्यों में भिखारीदास ने चित्रकाव्य का बड़ा ही विस्तृत तथा वैज्ञानिक विवेचन किया है। दास ने 'काव्य-निर्णय' के २१वें परिच्छेद के प्रारम्भ में 'अथ चित्रालंकार वर्णन' लिखकर भी विवेचन के क्रम में चित्रकवित्त तथा चित्रकाव्य नाम रखना ही उपयुक्त समझा है—

दास सुकवि बानी थकै, **चित्रकवित्तनि** माहिँ।
चमत्कार हीनार्थ को, यहाँ दोस कछु नाहिँ॥
बव जय बर्नंनि जानिये, **चित्रकाव्य** में एक,
अर्धचन्द्र को जनिकरो, छूटे लये विवेक॥

---

१. "अथ शब्दालंकार प्रस्तावे प्राप्तावसरतया चित्रकाव्यमपि प्रदर्श्यते॥"
—अलंकार-कौस्तुभ, सप्तम किरण

२. "धीरोष्ठ्य बिन्दुमद्बिन्दुच्युतकादित्वतोऽद्भुतम्।
कवीति यत्तदत्रोक्तं चित्रं चित्रविद्या यथा॥२॥" —परि० २

३. कविप्रिया—प्रभाव ९, श्लोक ६-७; प्रभाव १५, श्लोक ३५, तथा प्रभाव १६, श्लोक १

४. र० र०, पृ० ७६, छन्द ३४

प्रश्नोत्तर पाठान्तरो, पुनि बानी को चित्र।
चारि लेखिनी चित्र को, **चित्रकाव्य** है मित्र॥
शब्दालंकृत पाँच गनि **चित्रकाव्य** इक पाठ।
एकइ रस तादिक सहित, ठीक से ऊपर आठ॥"[१]

स्पष्ट है कि दास को इन रचनाओं के लिए प्रमुखतः 'चित्रकाव्य' संज्ञा ही स्वीकार्य है। यों अपनी इस पुस्तक में दास ने मम्मट का आधार अधिक लिया है और 'काव्य-प्रकाश' के अनुकरण पर ही सप्तम परिच्छेद में काव्य का विभाजन उत्तर, मध्यम तथा अवर के रूप में कर, अवर के 'वचनचित्र' तथा 'अर्थचित्र' दो भेद किये हैं।[२] किन्तु चित्रकाव्य के विवेचन में उन्होंने किसी संस्कृत अथवा हिन्दी-आचार्य का न तो अनुकरण किया है और न आधार ही ग्रहण किया है। चित्रकाव्य का यह विवेचन उनका अपना है और साथ ही पूर्णतः वैज्ञानिक भी है।[3]

जनराज ने 'कवितारसविनोद' में यद्यपि नाम चित्रालंकार ही रखा है, तथापि उसका विवेचन शब्दालंकारों के क्रम में न कर केशवदास के समान ही पुस्तक के २३वें अध्याय में पर्याप्त विस्तार से किया है। यहाँ तक कि पुस्तक में उल्लिखित अलंकारों की नामानुक्रमणिका में चित्र का कोई स्थान भी नहीं है। अतः सिद्ध है कि कवि ने चित्रकाव्य का स्थान अलंकारों से अलग रखा है।

जगतसिंह ने तो 'चित्रकाव्य' नाम से एक पुस्तक ही लिखी है गोकि इस पुस्तक का असल नाम 'चित्रमीमांसा'[४] है, किन्तु उसकी दूसरी संज्ञा 'चित्रकाव्य' भी है। इसकी दो खण्डित हस्तलिखित प्रतियाँ काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के पुस्तकालय में प्राप्य हैं। प्रस्तुत पुस्तक में भी यद्यपि चित्र का उल्लेख शब्दालंकारों में ही है, किन्तु पुस्तक के प्रारम्भ में सबसे पहले लिखा है—

"श्रीगणेशाय नमः अथ चित्रकाव्य लिख्यते।"[५]

विवेचन में भी अन्तिम ५८ छन्दों में चित्रकाव्य की ही रचनाएँ हैं, जिनमें चित्र के प्रायः सभी प्रमुख भेदों के छन्द हैं तथा कतिपय बन्धों की योजना भी है। स्पष्ट है कि पुस्तक का प्रमुख उद्देश्य चित्रकाव्य की रचना ही था और इसीके अनुकूल पुस्तक की दूसरी संज्ञा 'चित्रकाव्य' है।

इस प्रकार हम पाते हैं कि नवीं शताब्दी से ही चित्रालंकार के लिए 'चित्रकाव्य' शब्द का भी प्रयोग हो रहा था। केशवमिश्र जैसे संस्कृत के परवर्त्ती आचार्यों के समय से इस संज्ञा का प्रयोग बहुलता से होने लगा और १९वीं शती तक आते-आते हिन्दी में इस

---

१. भि० ग्रं० (भाग २), काव्यनिर्णय, परि० २१, छन्द १–३ तथा ९३
२. उपरिवत् परि० ७, छन्द २५–२६
३. द्रष्टव्य, प्रस्तुत पुस्तक के द्वितीय अध्याय में भिखारीदास का विवेचन।
४. द्रष्टव्य, प्रस्तुत पुस्तक के पंचम अध्याय में जगतसिंह-रचित प्रस्तुत पुस्तक का विवेचन।
५. आर्यभाषा पुस्तकालय, ना० प्र० स०, काशी, हस्तलेख-संख्या २८५ (सभा-संग्रह)

प्रकार की रचनाओं के लिए 'चित्रालंकार' के स्थान में 'चित्रकाव्य' नाम ही प्रचलित हो गया, यद्यपि चिन्तामणि प्रभृति कतिपय हिन्दी के आचार्यों ने 'चित्रालंकार' ही कहा[1] तथा विवेचन भी उसी के अनुरूप किया।

ईसा की १९वीं शती के उत्तरार्ध अथवा विक्रम की बीसवीं शताब्दी में चित्रकाव्य की प्रचुर रचना हुई और इन रचनाओं को 'चित्र' अथवा 'चित्रकाव्य' ही कहा गया। चित्रालंकार की संज्ञा अब इन रचनाओं के लिए प्रायः लुप्त-सी हो गई। इसी काल में काशि-राज बलवान् सिंह की 'चित्रचन्द्रिका' तथा गोकुल कवि के 'चित्रकलाधर' की रचना हुई। ये दोनों ही ग्रन्थ केवल चित्रकाव्य के ही हैं और इनमें लक्षण-उदाहरण की शैली में चित्रकाव्य का बड़ा ही विस्तृत विवेचन है। इनके अतिरिक्त रसिक बिहारी अथवा रसिकेश-रचित 'काव्य-सुधाकर' तथा साधोगिरि गोस्वामी के 'काव्यशिक्षकग्रन्थ' में भी चित्रकाव्य का विवेचन पर्याप्त विस्तार से किया गया।[2] इन सभी ग्रन्थों में इन रचनाओं की संज्ञा चित्रकाव्य ही रही।[3] 'चित्रचन्द्रिका' में कवि की स्वलिखित टीका (गद्य में) भी है, और उसमें भी 'चित्रकाव्य' शब्द का ही प्रयोग है।[4] इसी काल में लेखराज के 'गंगाभरण' की भी रचना हुई। इस पुस्तक के अन्त में भी चित्रकाव्य की रचनाएँ हैं और कवि ने इसका नाम 'चित्रकाव्य' ही रखा है।[5] गोकुल कवि के 'अष्टयाम-प्रकाश' में भी चित्र की रचनाएँ हैं और वहाँ भी 'चित्रकाव्य' की संज्ञा दीख पड़ती है।[6] बिहारीलाल भट्ट ने भी अपनी पुस्तक 'साहित्यसागर' में चित्रा-लंकार के स्थान में 'चित्रकाव्य' नाम का ही प्रयोग किया है।[7] दरअसल बात यह है कि हिन्दी के अधिकांश आचार्यों ने कुवलयानन्द का आधार अलंकार-विवेचन में ग्रहण किया और शब्दालंकार का विवेचन या तो नहीं किया, या फिर अत्यल्प किया। साथ ही कुवलयानन्द के आधार पर उन्होंने भी उत्तर-अलंकार का एक भेद चित्र अथवा चित्रोत्तर के रूप में रखा। हिन्दी में यह चित्र अथवा चित्रोत्तर स्वतन्त्र अलंकार भी बन गया और महाराज जसवन्त सिंह

१. चिन्तामणि, भूषण, कुलपति मिश्र, पदुमनदास, लछिराम आदि।

२. द्रष्टव्य, प्रस्तुत पुस्तक के पंचम अध्याय में इन पुस्तकों का विवेचन।

३. (क) चित्रचन्द्रिका, पृ० ५, छन्द ५ की टीका तथा पृ० ८, छन्द ८ की टीका।

(ख) चित्रकलाधर, पृ० ५४–५५; छन्द-संख्या २-३ तथा ५।

(ग) काव्यसुधाकर, कला १३, पृ० ३५ (वार्त्ता), दोहा १४।

(घ) का० शि० ग्र०, पृ० ७७, दोहा १५१ :

"वरण युक्ति सों जो रचै चित्र अनेक प्रकार।
चित्रकाव्य ताको कहत साधो बुद्धि अगार॥"

४. द्रष्टव्य, चि० च०, पृ० ५ तथा ८ पर छन्द-संख्या ५ तथा ८ की टीकाएँ।

५. गंगाभरण, पृ० ९०

६. अष्टयाम-प्रकाश, पृ० १८५

७. साहित्यसागर, भाग २, तरंग १०, पृ० ३६४ तथा तरंग १२, पृ० ५११ ; उदाहरणार्थ—

"चित्रकाव्य याकों कहत, भूषण चित्र विवेक।
है अक्षर की चातुरी याके भेद अनेक॥"

प्रभृति आचार्यों ने इसे स्वतन्त्र अर्थालंकार मान लिया ।[१] फलत: जब शब्दालंकार के अन्तर्गत अथवा स्वतन्त्र रूप में चित्र-रचनाओं का विवेचन हुआ तो उसे चित्रालंकार के स्थान में 'चित्रकवित्त' अथवा 'चित्रकाव्य' की संज्ञा मिली । साथ ही हिन्दी की रचनाओं की सीमाओं का ध्यान रखकर इस क्षेत्र में केवल अनुकरण-मात्र नहीं किया गया, वरन् कवियों ने स्वतन्त्र विवेचन तथा विभाजन भी किया । केशवदास प्रभृति आचार्यों ने चित्र का जो विवेचन किया है, वह संस्कृत के आचार्यों का अनुकरण-मात्र नहीं है, वरन् हिन्दी की सीमाओं और शक्तियों को ध्यान में रखकर स्वतन्त्र उद्भावनाएँ भी हैं ।[२] भिखारीदास का विवेचन तथा वर्गीकरण तो पूर्णत: मौलिक है ही । बाद में चलकर 'चित्रचन्द्रिका' अथवा 'चित्रकलाधर' में कवि ने स्वीकार किया है कि उन्होंने संस्कृत तथा हिन्दी के प्रमुख आचार्यों के अनुकरण पर ही चित्रकाव्य का विवेचन तथा रचनाएँ की हैं[३], पर इन ग्रन्थों में भी स्वतन्त्र उद्भावनाएँ पर्याप्त हैं । चित्रकलाधर में तो गोकुल कवि ने पहले अग्निपुराण, मम्मट, केशवदास तथा भिखारीदास के मतों को उद्धृत किया है, और बाद में चित्र के सम्बन्ध में अपना मत देकर रचनाएँ प्रारम्भ की हैं ।[४]

आधुनिक हिन्दी-अलंकार-ग्रन्थों में लेखकों की कोई स्वतन्त्र उद्भावना अथवा विवेचन-विश्लेषण नहीं दीख पड़ता । अलंकारशास्त्र अब केवल पाठ्य-क्रम की वस्तु ही रह गया है । फलत: आधुनिक अलंकार-ग्रन्थों में संस्कृत के आचार्यों का गद्य में अनुवाद-मात्र ही दीख पड़ता है । अत: यद्यपि इन आचार्यों ने चित्र का उल्लेख शब्दालंकार के अन्तर्गत ही किया है तथापि अर्जुनदास केडिया तथा कन्हैयालाल पोद्दार के अतिरिक्त अन्य लेखकों ने इस अलंकार को 'चित्रकाव्य' की संज्ञा ही दी है ।[५] युग-जीवन के दृष्टिकोण में परिवर्त्तन, अतिशय व्यस्तता, जीविकोपार्जन की सतत चिन्ता आदि के परिणामस्वरूप आधुनिक युग में चित्र-रचना का महत्त्व बिलकुल नहीं रह गया है । फलत: अधिकांश अलंकारग्रन्थ-लेखकों ने अपने ग्रन्थों में चित्र का उल्लेख भी नहीं किया है ।[६] इस प्रकार हम पाते हैं कि हिन्दी में बन्धादि चित्र-

---

१. द्रष्टव्य, प्रस्तुत अध्याय के पृ० ८ की पादटिप्पणी सं० ३ और ४ ।

२. द्रष्टव्य, प्रस्तुत ग्रन्थ के द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत हिन्दी-आचार्यों का विवेचन ।

३. "चित्रसमुद्र अपार कोई कवि थाह न ल्यायो
मैं अति ही बुधिहीन कछुक ग्रन्थन बल गायो ।।" —चि० च०, पृ० ५, छन्द ५
चित्रकलाधर में पृ० ५१ से ५५ तक कवि ने अग्निपुराण, काव्यप्रकाश, कविप्रिया तथा काव्यनिर्णय को उद्धृत किया है और इसके बाद ही विवेचन आरम्भ किया है ।

४. उपरिवत्

५. क्रमश: भारतीभूषण तथा काव्यकल्पद्रुम (अलंकारमंजरी) में ।

६. रघुनन्दन शास्त्री : अलंकार-प्रवेशिका
ब्रजेश कवि : रमेश रत्नाकर
लाला भगवानदीन : अलंकार-चन्द्रिका
गोपीनाथ शर्मा : काव्यालोक
गोपाललाल खन्ना : काव्य-कलाप

रचनाओं के लिए 'चित्रालंकार' के स्थान में 'चित्रकाव्य' संज्ञा ही सामान्यतः प्रयुक्त तथा प्रचलित हुई, जिसका क्षेत्र शनैः-शनैः बहुत विस्तृत हो गया।

प्रस्तुत प्रबन्ध में भी चित्रकाव्य का प्रयोग इसी अर्थ में किया गया है। जैसाकि उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है, संस्कृत में तो चित्र-रचनाओं का विशाल साहित्य है ही, हिन्दी में भी इसकी रचना प्रचुर परिमाण में हुई है। चित्रकाव्य प्रमुखतः दरबारी काव्य है और हिन्दी-काव्य में भी एक युग ऐसा है, जो अधिकांशतः दरबारी ही है। फलतः रीतिकाल तथा आधुनिक काल के प्रारम्भ में हमें चित्रकाव्य की पर्याप्त रचनाएँ प्राप्त होती हैं। यों संस्कृत और हिन्दी—दोनों ही में इस काव्य की धारा क्षीण रूप में ही सही, किन्तु आधुनिक युग में भी वर्त्तमान है।[१] यह बात और है कि आज के जीवन में न तो इस प्रकार के काव्य का कोई महत्त्व ही है और न इसकी उपयोगिता ही।

इस ग्रन्थ में मेरा उद्देश्य प्रमुखतः हिन्दी-चित्रकाव्य का अध्ययन करना है। चूँकि हिन्दी-चित्रकाव्य का अधिकांश भाग संस्कृत से ही गृहीत है, इसलिए इस अध्ययन के लिए संस्कृत-चित्रकाव्य का अध्ययन भी अनिवार्य हो जाता है। दूसरी ओर, हिन्दी-कवियों तथा आचार्यों ने इस क्षेत्र में संस्कृत का अनुकरण-मात्र ही नहीं किया है, वरन् उनकी अपनी उद्भावनाएँ भी पर्याप्त हैं। ऐसे भी स्थल कम नहीं हैं, जहाँ हिन्दी-चित्रकवियों ने अपनी रचनाओं में हिन्दी की प्रकृति तथा प्रवृत्ति का ध्यान रखा है और संस्कृत में प्रचलित रचनाओं की पद्धति-विशेष में पर्याप्त परिवर्त्तन कर दिये हैं। प्रस्तुत प्रबन्ध के अन्तर्गत सैद्धान्तिक विवेचन के क्रम में चित्रकाव्य के इन सभी पक्षों पर सतत दृष्टि रखना अनिवार्य रहा है। चूँकि इसके पूर्व इस विषय पर किसी प्रकार का कार्य नहीं हुआ है, इसलिए सिद्धान्त और व्यवहार दोनों ही पक्षों के विवेचन में मुझे प्रत्येक स्थल पर संस्कृत-चित्रकाव्य का भी साथ ही विवेचन करना पड़ा है। फिर भी मैं सर्वत्र सतर्क रहा हूँ कि विवेचन असंतुलित न हो उठे। यही कारण है कि द्वितीय अध्याय अथवा लक्षण-विवेचन तथा पंचम अध्याय अर्थात् स्वरूप और विकास के विवेचन में जहाँ प्रारम्भ में प्रमुख संस्कृत-आचार्यों तथा चित्र-रचयिताओं का विवेचन पृथक् किया गया है, वहाँ चित्रकाव्य के सैद्धान्तिक विवेचन में मैंने केवल हिन्दी-चित्रों का ही अध्ययन किया है। रचना-विशेष के सम्बन्ध में प्रचलित-संस्कृत-पद्धति से तुलना अवश्य की गई है। जहाँ-कहीं तथा जिस-किसी रचना में हिन्दी में संस्कृत की पद्धति को ज्यों-का-त्यों अपना लिया गया है, वहाँ मैंने केवल हिन्दी-रचना का ही विस्तृत विवेचन किया है, संस्कृत की मूल पद्धति का संकेत-भर कर दिया गया है। किन्तु, जहाँ संस्कृत की पद्धति-विशेष में हिन्दी-कवियों ने कुछ परिवर्तन कर दिये हैं, अथवा संज्ञा तो संस्कृत की ही रखी है, पर पद्धति अपनी दी है, वहाँ संस्कृत तथा हिन्दी दोनों ही

वनमाली शर्मा : रीतिरत्न
रामबहोरी शुक्ल : काव्यप्रदीप
देवेन्द्रनाथ शर्मा : अलंकार-मुक्तावली

१. द्रष्टव्य, प्रस्तुत ग्रन्थ के पंचम अध्याय का निष्कर्ष।

रचना-पद्धतियों का विवेचन मैंने तनिक विस्तार से किया है, ताकि दोनों का अन्तर पूर्णतः स्पष्ट हो सके। जो रचनाएँ हिन्दी की अपनी हैं और संस्कृत में वैसी कोई रचना नहीं मिलती, उनके विवेचन के क्रम में मैंने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि चित्रकाव्य के क्षेत्र में ये रचनाएँ हिन्दी की समृद्धि की द्योतक हैं अथवा ह्रास की परिचायिका।

संस्कृत में चित्रकाव्य के प्रमुखतः वर्ण, स्वर, स्थान, आकार अथवा बन्ध तथा गति– ये पाँच भेद हैं। गौण भेदों में प्रश्नोत्तर, च्युत, दत्त तथा च्युतदत्त और गूढ़ का स्थान है।[१] प्रहेलिका तथा समस्या को भी प्रारम्भ के कतिपय आचार्यों ने चित्र के गौण भेदों में गिना है, किन्तु अधिकांश आचार्यों ने इन्हें चित्र के बाहर ही रखा है।[२] कवियों ने भी चित्रकाव्य के क्रम में प्रायः इनकी रचना नहीं की है। हिन्दी में भी प्रहेलिका तथा समस्या को चित्र के अन्तर्गत स्थान नहीं मिला है। अन्य भेदों में यों तो उपर्युक्त सभी भेद सामान्यतः हिन्दी में भी गृहीत हुए हैं, किन्तु हिन्दी-कवियों ने इन्हें ज्यों-का-त्यों नहीं अपनाया है। इनके अनेक उपभेदों में से कुछ ही हिन्दी में प्राप्त होते हैं। कतिपय अन्य उपभेदों की भी हिन्दी में रचना हुई है, किन्तु उनमें हिन्दी-कवियों ने आवश्यकतानुकूल परिवर्तन किये हैं।[३] जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है, कतिपय नवीन उपभेदों की कल्पना भी हिन्दी-कवियों ने की है। अपने विवेचन में मेरी दृष्टि सदा ही हिन्दी-चित्रकाव्य की ओर रही है; कारण, वही पुस्तक का प्रमुख वर्ण्य विषय है, अतः संस्कृत के जिन भेदों अथवा उपभेदों की रचना हिन्दी में प्राप्त नहीं होती, उनके विवेचन की आवश्यकता मैंने नहीं समझी है। स्थिति की अनिवार्यता के अनुकूल यत्र-तत्र उनके सम्बन्ध में भी संकेत अवश्य दे दिये हैं। उपर्युक्त चित्रभेदों के अतिरिक्त भाषा-चित्र, लिपिचित्र, अंकाक्षरी आदि का भी, जो हिन्दी की अपनी रचना है, विस्तृत विवेचन प्रस्तुत पुस्तक में हुआ है।

भोजराज ने चित्र के प्रमुख छह भेद किये हैं और बन्ध तथा आकार-चित्र को अलग-अलग माना है।[४] हिन्दी में भी काशिराज ने उनका अनुकरण किया है[५], किन्तु चूँकि इन दोनों ही चित्रभेदों में किसी प्रकार का तात्त्विक अन्तर नहीं प्रमाणित होता, इसलिए इन दोनों ही चित्रभेदों को अभिन्न मानकर मैंने दोनों ही संज्ञाओं का प्रयोग इन रचनाओं के लिए किया है। यथास्थान इन दोनों चित्रभेदों के पार्थक्य की परीक्षा कर इनकी अभिन्नता अवश्य प्रमाणित की गई है।[६] फलतः 'आकार' तथा 'बन्ध'—ये दोनों ही संज्ञाएँ प्रस्तुत पुस्तक में पर्यायवाची हैं। इसी प्रकार 'वर्ण' शब्द का प्रयोग भी ध्यातव्य है। वर्ण का सामान्य अर्थ अक्षर तो होता ही है, किन्तु चित्रकाव्य में यह शब्द पारिभाषिक भी है। वर्ण-नियम अथवा

---

१. द्रष्टव्य, प्रस्तुत पुस्तक के द्वितीय अध्याय में संस्कृत-आचार्यों के विवेचन का अन्तिम अंश।
२. उपरिवत्
३. उपरिवत्, हिन्दी-आचार्यों का विवेचन।
४. सरस्वती-कण्ठाभरण, परि० २, कारिका १०९
५. चित्रचन्द्रिका
६. द्रष्टव्य, प्रस्तुत पुस्तक के द्वितीय अध्याय में भोजराज, हेमचन्द्र, विद्याधर तथा काशिराज का विवेचन।

वर्णचित्र में 'वर्ण' शब्द का तात्पर्य 'स्वर-रहित व्यंजन' है।[1] आचार्यों ने इस प्रसंग में 'वर्णचित्र' तथा 'व्यंजनचित्र' दोनों ही शब्दों का प्रयोग किया है। प्रस्तुत पुस्तक में भी इन दोनों ही संज्ञाओं का प्रयोग है। इस सम्बन्ध में किसी नियम का पालन नहीं किया गया है।

परम्परा, रचना तथा न्यास-पद्धति को लेकर विभिन्न बन्धों का विस्तृत अध्ययन तो प्रस्तुत ग्रन्थ में है ही, बन्धेतर चित्रों के विवेचन में भी कृपणता से काम नहीं लिया गया है। बन्धेतर चित्रों के जितने भेदोपभेद हिन्दी में प्राप्त हो सके हैं, उन सभी का विवेचन उनके प्रेरणा-स्रोत, उनकी परम्परा तथा रचना-पद्धति की दृष्टि से किया गया है। स्थान-स्थान पर चित्रकाव्य के क्षेत्र में इनका मूल्यांकन भी हुआ है। सम्पूर्ण ग्रन्थ में प्रस्तुत अध्याय के अतिरिक्त छह अध्याय और हैं, जिनमें द्वितीय अध्याय का शीर्षक 'चित्रकाव्य : लक्षण, क्षेत्र-विस्तार तथा भेदोपभेद' है। इस अध्याय के अन्तर्गत चित्रकाव्य के सम्बन्ध में संस्कृत तथा हिन्दी के आचार्यों के मतों तथा उनके द्वारा प्रदत्त लक्षणों का विवेचन किया गया है। इसी क्रम में इन आचार्यों द्वारा गृहीत तथा उदाहृत चित्रकाव्य के भेदोपभेद के आधार पर चित्र-रचना के क्षेत्र-विस्तार की सीमा तथा इस प्रकार की रचनाओं के भेदोपभेदों को निश्चित किया गया है। आचार्यों द्वारा प्रदत्त लक्षणों के विवेचन से चित्र-रचनाओं का उद्देश्य तथा उनकी प्रकृति का स्पष्टीकरण सम्भव हो सका है। प्रस्तुत विवेचन में मैंने पहले संस्कृत के और बाद में हिन्दी के आचार्यों का विवेचन किया है। इन आचार्यों का क्रम भी यथासम्भव इनके रचना-काल के अनुसार ही रखा है, यद्यपि मैंने कहीं किसी तिथि का उल्लेख नहीं किया है। विवेचन की मेरी प्रणाली यह है कि प्रत्येक आचार्य द्वारा प्रदत्त चित्रकाव्य के लक्षण तथा उनके द्वारा विवेचित भेदोपभेदों का उल्लेख कर मैंने यह देखने की चेष्टा की है कि चित्रकाव्य के सम्बन्ध में उनका अभिप्राय क्या है, चित्रकाव्य का असल स्वरूप क्या है, अपने पूर्व आचार्यों द्वारा प्रदत्त लक्षणों से वे कहाँ तक सहमत हैं अथवा अपने लक्षण में उन्होंने कोई विशेष बात कही है, अपने पूर्व के आचार्यों द्वारा विवेचित चित्र के किन भेदों को उन्होंने ग्रहण किया है, किन नवीन भेदों का अपनी ओर से समावेश किया है तथा किन भेदों अथवा उपभेदों को छोड़ दिया है। हिन्दी-आचार्यों के विवेचन-क्रम में मैंने यह भी स्पष्ट करने की चेष्टा की है कि संस्कृत के किस आचार्य का और कितना अनुकरण किसी आचार्य-विशेष ने किया है। साथ ही हिन्दी की प्रकृति अथवा प्रवृत्ति का कितना ध्यान उन्होंने रखा है और इस आधार पर किस नवीनता का समावेश उन्होंने अपने विवेचन में किया है। संस्कृत तथा हिन्दी-आचार्यों के विवेचन के अन्त में क्रमशः मैंने विवेचन का सार तथा उसके आधार पर प्राप्त सामान्य तथ्यों का उल्लेख भी कर दिया है। इसी स्थल पर चित्रकाव्य की सामान्य प्रकृति तथा उसके भेदोपभेदों की निश्चित सीमा भी स्थिर कर दी है। अगले अध्यायों में प्रमुखतः चित्रकाव्य के इन्हीं भेदों का विवेचन हुआ है।

संस्कृत-आचार्यों के विवेचनक्रम में मैंने अग्निपुराण को दण्डी तथा रुद्रट के बाद रखा है। इसका कारण यह है कि अग्निपुराण में 'चित्र' तथा 'दुष्कर' का जैसा विस्तृत विवेचन है

१. "वर्ण शब्देन चात्र स्वराणां पृथङ् निर्देशाद्व्यंजनान्येव प्रगृह्यन्ते।"
—सरस्वतीकण्ठाभरण, परि० २, कारिका १०९ की वृत्ति

तथा उनके जितने भेदों के नाम मिलते हैं, उनके आधार पर इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता कि सम्पूर्ण नहीं तो कम-से-कम यह अंश अवश्य ही रुद्रट के बाद की रचना है। काव्यादर्श, किरातार्जुनीय तथा शिशुपालवध के आधार पर यही निश्चित होता है कि अग्निपुराण में उल्लिखित बाण, बाणासन आदि बन्ध बाद की रचना हैं। यदि इन बन्धों का प्रचलन पहले भी रहा होता तो उपर्युक्त ग्रन्थों में भी इनकी रचना अथवा विवेचन अवश्य होता, जिस प्रकार काव्यादर्श में उन्हीं चित्रभेदों का विवेचन है, जिनकी रचना किरातार्जुनीय में हुई है; कारण, दोनों ही छठी शताब्दी के ग्रन्थ हैं। संस्कृत-काव्यशास्त्र के इतिहास में भी यद्यपि अग्निपुराण का विवेचन प्रारम्भ में ही किया गया है, तथापि लेखक ने इसे बाद की रचना ही माना है।[1]

शीर्षक के अनुकूल ग्रन्थ के तृतीय तथा चतुर्थ अध्यायों में क्रमशः बन्ध तथा बन्धेतर चित्र-रचनाओं का 'सैद्धान्तिक विवेचन' है और पंचम अध्याय में चित्रकाव्य का 'ऐतिहासिक विकास' दिखलाया गया है। इस प्रकार सम्पूर्ण तृतीय अध्याय में केवल विविध बन्धों का ही अध्ययन है। जैसाकि कहा जा चुका है, इस क्रम में मैंने केवल उन्हीं बन्धों को लिया है, जिनकी रचना हिन्दी के कवियों ने की है। किसी विशेष बन्ध-रचना की परम्परा तथा रचना-पद्धति को स्पष्ट करने के क्रम में तुलना की दृष्टि से अवश्य संस्कृत के कतिपय बन्धों की न्यास तथा उद्धार-पद्धतियों का भी विवेचन हुआ है। प्रत्येक बन्ध के विवेचन के साथ ही तत्सम्बन्धी चित्र भी हैं और उसमें छन्दों का न्यास भी है। इन बन्धों की न्यास तथा रचना-विधियों को पूर्णतः स्पष्ट करने के लिए आवश्यकतानुसार मैंने गणित की विधि का भी सहारा लिया है। इस प्रकार किसी वर्णक्रम के स्पष्टीकरण में संख्याओं का व्यवहार हुआ है, अथवा पाठ की गति-विशेष को रेखाचित्रों के सहारे स्पष्ट करने की चेष्टा हुई है। संस्कृत तथा हिन्दी में रचित एक ही बन्ध के अन्तर के स्पष्टीकरण में मुझे गणित की इस पद्धति से बड़ी ही सहायता मिली है। इसके अतिरिक्त चित्र में वर्णों के न्यास के विवेचन में स्थल-स्थल पर आवश्यकतानुसार मैंने उत्तर, दक्खिन, पूर्व, पश्चिम आदि दिशाओं का भी प्रयोग किया है। ऐसी स्थिति में मानचित्र में स्वीकृत पद्धति ही अपनाई गई है, यानी चित्र के शीर्ष की दिशा को उत्तर माना गया है। अन्य दिशाएँ भी इसी के अनुकूल हैं। बन्ध-विशेष की प्रायः सभी प्राप्त न्यास-पद्धतियों का भी विवेचन मैंने किया है। सम्पूर्ण ग्रन्थ में संस्कृत तथा हिन्दी के अनेक आवश्यक चित्र भी दिये गये हैं। संस्कृत के केवल उन्हीं बन्धों के चित्र हैं, तुलना की दृष्टि से जिनकी अतिशय आवश्यकता समझी गई है।

चतुर्थ अध्याय में बन्धेतर चित्रों में सैद्धान्तिक विवेचन के अन्तर्गत भी विवेचन की पूर्व पद्धति ही अपनाई गई है। अर्थात् केवल हिन्दी में रचित चित्रों का ही प्रमुखतः विवेचन किया गया है। संस्कृत की रचनाओं का जो थोड़ा-बहुत विवेचन हुआ है, वह हिन्दी की रचनाओं के अध्ययन की अपेक्षा की दृष्टि से ही। तृतीय अध्याय के समान

---

१. संस्कृत-काव्यशास्त्र का इतिहास : पी० वी० काणे (१९२८), पृ० ५

ही गतिचित्रों के अध्ययन में भी आवश्यकतानुकूल गणित की पद्धति का सहारा लिया गया है, ताकि इन छन्दों की रचनाविधि अथवा पाठ की गति पूर्णतः स्पष्ट हो सके। अंकाक्षरी, लिपिचित्र, अंकचित्र, उदधिबन्ध अथवा कल्पवृक्ष-बन्ध-जैसे हिन्दी में रचित नवीन चित्रों की रचना-पद्धति तथा पाठ की गति को स्पष्ट करने की प्रत्येक सम्भव चेष्टा मैंने की है। इस क्रम में विभिन्न प्रकार की तालिकाओं के रूप में इन रचनाओं के वर्णक्रम को उपस्थित किया गया है। आवश्यकतानुसार एक कोटि की अथवा विभिन्न कोटियों की रचनाओं के वर्णक्रम की तालिकाएँ भी दे दी गई हैं ताकि इनका साम्य अथवा वैषम्य पूर्णतः स्पष्ट हो सके।

ग्रन्थ के पंचम अध्याय में चित्रकाव्य के स्वरूप और इसके विकास को स्पष्ट किया गया है। इस अध्याय में प्रमुख उद्देश्य चित्रकाव्य की उस धारा को स्पष्ट करना है, जो ईसवी सन् की छठी शताब्दी में उत्पन्न होकर अद्यावधि सतत प्रवहमाण रही है। इस अध्याय के प्रारम्भ में संस्कृत-काव्य-कृतियों में चित्रकाव्य की रचनाओं के स्वरूप और विकास को देखा गया है तथा बाद में हिन्दी-काव्य-कृतियों में। संस्कृत में कवि और आचार्य प्रायः अलग-अलग हुए हैं, यद्यपि चित्र-काव्य के क्षेत्र में अधिकांश आचार्यों ने भी उदाहरणों की रचना स्वयं की है। फिर भी इस अध्याय में जो विवेचन किया गया है, उसमें कवियों को आचार्यों से पृथक् रखना सम्भव हो सका है। किन्तु हिन्दी में प्रमुखतः रीतिकाल के सभी आचार्य कवि भी हैं, अतः द्वितीय अध्याय में विवेचित आचार्यों की कृतियों का विवेचन प्रस्तुत स्थल पर भी करना पड़ा है। किन्तु, चूँकि दोनों ही स्थलों पर अध्ययन का उद्देश्य और दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न है, इसलिए पुनरावृत्ति का आभास देकर भी वास्तव में इन विवेचनों में पुनरावृत्ति नहीं है। द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत जहाँ इन आचार्यों द्वारा प्रदत्त चित्रकाव्य के लक्षणों तथा उनके विवेचन का पुनर्विवेचन किया गया है, वहाँ प्रस्तुत अध्याय में उनके द्वारा रचित चित्रकाव्य के स्वरूप तथा उसके प्रवाह को स्पष्ट करने की चेष्टा की गई है। इस सम्बन्ध में एक बात जो ध्यान देने की है, वह है इन कवियों अथवा इनकी रचनाओं से सम्बद्ध तिथियाँ। चूँकि मेरा उद्देश्य चित्रकाव्य के प्रवाह को स्पष्ट करना है, इसलिए तिथियों के सम्बन्ध में मैंने बहुत अधिक निश्चितता नहीं बरती है। सामान्यतः इतिहास-ग्रन्थों अथवा स्वयं रचयिताओं द्वारा दी गई तिथियों के आधार पर ही कवियों अथवा रचनाओं का क्रम रखा है। संस्कृत में प्रमुखतः कीथ तथा कृष्णमाचारियर के इतिहास-ग्रन्थों का आश्रय मैंने लिया है, हिन्दी में रामचन्द्र शुक्ल अथवा विवेच्य ग्रन्थों में उल्लिखित रचना-तिथियों को ही आधार बनाया है। इसी क्रम में यह भी ध्यातव्य है कि यों तो मैंने अपने अध्ययन में ईसवी सन् की शताब्दियों को ही प्रमुखतः आधार बनाया है, किन्तु विवेचन के क्रम में विक्रम-संवत् का भी उल्लेख यत्र-तत्र हुआ है। चूँकि हिन्दी के ग्रन्थों में तिथियाँ अधिकांशतः विक्रम-संवत् में ही हैं, इसलिए, ईसवी सन् के अनुकूल उनको परिवर्त्तित करने की आवश्यकता मैंने नहीं समझी है। इस प्रकार के आग्रह का इस अध्ययन-क्रम में कोई मूल्य भी नहीं है। अध्याय के दोनों ही अंशों के अन्त में क्रमशः मैंने अपने अध्ययन के फलस्वरूप प्राप्त तथ्यों का उल्लेख भी कर दिया है।

षष्ठ अध्याय में चित्रकाव्य की रचना के कारणों तथा उसके साहित्यिक महत्त्व को आँकने का प्रयास किया गया है। चित्रकाव्य के विशाल साहित्य की रचना तथा रचयिताओं से यह स्पष्ट है कि इस साहित्य की रचना संस्कृत और हिन्दी दोनों में ही, प्रमुखतः राजसभाओं अथवा दरबारों में ही हुई है। फलतः मनोरंजन तथा पाण्डित्य-प्रदर्शन ही इसके मूल में है, किन्तु बन्धचित्रों से हमें तत्कालीन कला-भावना के अत्यन्त विकसित रूप का भी परिचय मिलता है।

सबसे अन्त में ग्रन्थ के सप्तम अध्याय में अपने अध्ययन तथा विवेचन के फलस्वरूप प्राप्त तथ्यों का उल्लेख मैंने निष्कर्ष के रूप में किया है। ग्रन्थ में दिये गये उद्धरणों को यथासम्भव ज्यों-का-त्यों रहने दिया गया है। यहाँ तक कि यदि उनमें किसी प्रकार का दोष भी है तो उसका परिहार करना मैंने उचित नहीं समझा है। किन्तु हस्तलेखों में अथवा मुद्रित रचनाओं में भी यदि किसी दोष का कारण मुझे स्पष्टतः लिपिकार अथवा मुद्रण की भूल जान पड़ा है, तो उसे मैंने अवश्य सुधार दिया है।

इस प्रकार अपने अध्ययन और विवेचन को पूर्ण तथा अधिक-से-अधिक स्पष्ट बनाने की मैंने अपनी समझ से हर सम्भव चेष्टा की है।

द्वितीय अध्याय

चित्रकाव्य : लक्षण, क्षेत्र-विस्तार तथा भेदोपभेद

संस्कृत-आचार्यों के मत :

संस्कृत के आचार्यों में दण्डी ने ही सर्वप्रथम चित्र-रचना का विवेचन किया है, गोकि उन्होंने इस प्रकार की रचना के लिए 'दुष्कर' शब्द का प्रयोग किया है। काव्यादर्श के तृतीय परिच्छेद में १८ श्लोकों (७८ से ९५) में चित्र-रचनाओं के लक्षण तथा उदाहरण हैं। इनमें श्लोक-संख्या ७८ में गोमूत्रिका, ८० में अर्धभ्रम तथा सर्वतोभद्र और ८३ में स्वर, स्थान तथा वर्ण-नियमों के लक्षण हैं। अन्य सभी श्लोकों में इनके उदाहरण हैं। सामान्य रूप से 'चित्र' अथवा 'दुष्कर' का कोई लक्षण दण्डी ने नहीं दिया है। केवल उपर्युक्त भेदों के ही लक्षण तथा उदाहरण काव्यादर्श में हैं। श्लोक ९६ में इस प्रकरण को समाप्त करते हुए दण्डी लिखते हैं :

"इति दुष्करमार्गेऽपि कश्चिदादर्शितः क्रमः।"

इससे यह स्पष्ट होता है कि इस प्रकार की यथेष्ट रचनाएँ कवियों के द्वारा की जाती थीं, जिनमें से कुछ को ही यहाँ दिखाया गया है।

संस्कृत के प्राचीन आचार्यों में रुद्रट ने अपनी पुस्तक काव्यालंकार में 'चित्र' का विस्तृत विवेचन किया है। 'चित्र' को शब्दालंकार मानकर[1] काव्यालंकार के सम्पूर्ण पंचम परिच्छेद में इस प्रकार की रचनाओं के लक्षण-उदाहरण दिये गये हैं। नमिसाधु ने काव्यालंकार की टीका में विभिन्न 'बन्धों' के न्यास और उद्धार का भी संकेत दिया है। 'चित्र' का लक्षण रुद्रट ने निम्नांकित श्लोक में दिया है :

"भङ्ग्यन्तरकृततत्क्रमवर्णनिमित्तानि वस्तुरूपाणि।
साङ्कानि विचित्राणि च रच्यन्ते यत्र तच्चित्रम्॥"[2]

इस लक्षण के अनुसार भङ्ग्यन्तर रूप से लोकप्रसिद्ध रचना-परिपाटी के अनुसार वर्णों के द्वारा निर्मित वस्तु-रूपों को ही चित्र कहते हैं। ये (कभी-कभी) कवि नामांक से भी युक्त होते हैं तथा इनमें (वस्तुरूपों के अतिरिक्त) सर्वतोभद्र, अनुलोम-प्रतिलोमादि अन्य

---

१. "वक्रोक्तिरनुप्रासो यमकं श्लेषस्तथा परं चित्रम्।
शब्दस्यालङ्काराः श्लेषोऽर्थस्यापि सोऽन्यस्तु॥"
—काव्यालङ्कार, अध्याय २, श्लोक १३

२. वही, पञ्चम अध्याय, श्लोक १

प्रकार की रचनाएँ भी परिगणित होती हैं। नमिसाधु ने प्रस्तुत श्लोक की टीका में इसे पूर्णतः स्पष्ट किया है :

"यत्र काव्ये वस्तूनां चक्रादीनां रूपाणि संस्थानानि रच्यन्ते निबध्यन्ते तच्चित्र-सादृश्यादाश्चर्याद्वा चित्रं नामालङ्कारः।"[1]

'वस्तुरूप' के विभिन्न विशेषणों को स्पष्ट करते हुए टीकाकार लिखता है : "............भङ्ग्यन्तरेण चक्रादि विच्छित्तिलक्षणेन प्रकारेण कृतः स सकल लोकप्रसिद्धः क्रमो रचनापरिपाटी येषां ते च ते वर्णाश्चाक्षराणि च ते निमित्तं कारणं येषां वस्तुरूपाणां तानि तथोक्तानि। तथा सहाङ्केन स्वनामचिह्नेन वर्त्तन्ते इति साङ्कानि। तथा विचित्राणि चान्यानि च सर्वतोभद्रानुलोमप्रतिलोमादीनि।"[2]

रुद्रट ने काव्यालंकार में, चित्ररचना-सूची में चक्र, खड्ग, मुसल, बाणासन, शक्ति, शूल, हल, मुरज, अनुलोम-प्रतिलोम, अर्धभ्रम, सर्वतोभद्र तथा रथपद, तुरगपद और गजपद का उल्लेख किया है।[3] विवेचन के अन्तर्गत उन्होंने इनके अतिरिक्त पद्म, अनुलोम-विलोम-विपर्यस्ताक्षरपाठ-श्लोक, बिन्दुच्युतक, स्पष्ट तथा प्रच्छन्नार्थ प्रहेलिकाएँ, कारक तथा क्रियागूढ एवं प्रश्नोत्तर को भी स्थान दिया है।[4] इनमें चक्र, खड्ग, मुसल, बाणासन, शक्ति, शूल, मुरज तथा पद्म ही 'वस्तुरूपाकार' चित्र हैं, जिन्हें आगे चलकर बन्ध[5] अथवा आकारचित्र[6] कहा गया। अनुलोम-प्रतिलोम, अर्धभ्रम, सर्वतोभद्र तथा रथ-तुरग-गजपद अन्य प्रकार के चित्र हैं, जिन्हें आगे चलकर 'गतिचित्र' में स्थान मिला।[7] च्युत,

---

१. काव्यालङ्कार, पञ्चम अध्याय, श्लोक १ की टीका नमिसाधु द्वारा (काव्यमाला)

२. उपरिवत्

३. तच्चक्रखड्गमुसलैर्बाणासनशक्तिशूलहलैः ।
चतुरङ्गपीठविरचितरथतुरगगजादिपदपाठैः ॥२॥
अनुलोमप्रतिलोमैरर्धभ्रममुरजसर्वतोभद्रैः ।
इत्यादिभिरन्यैरपि वस्तुविशेषाकृतिप्रभवैः ॥३॥
—काव्यालङ्कार, अध्याय ५

४. पद्म-काव्यालङ्कार, अध्याय ५, श्लोक २१
अनुलोम-विलोम, विपर्यस्ताक्षर पाठ, अध्याय ५, श्लोक २२-२३
स्पष्ट प्रहेलिका ,, ,, श्लोक २९
बिन्दुच्युतक ,, ,, श्लोक २८
कारकक्रियागूढ़ ,, ,, श्लोक ३०
प्रश्नोत्तर ,, ,, श्लोक ३१-३२

५. अग्निपुराण, अध्याय ३४३, श्लोक ३५-३६ :
"अनेकधा वृत्तवर्णविन्यासैः शिल्पकल्पना।
तत्तत्प्रसिद्धवस्तूनां बन्ध इत्यभिधीयते॥"

६. सरस्वतीकण्ठाभरण, परिच्छेद २, चित्रप्रकरण।

७. उपरिवत्

प्रहेलिका, गूढ अथवा गुप्त तथा प्रश्नोत्तर का विवेचन रुद्रट ने इस परिच्छेद के अन्त में किया है तथा इनकी सूची भी अन्य चित्रों की सूची से अलग ही दी है।[१] साथ ही, इन्हें 'क्रीडामात्र' कहकर इनकी महत्त्वहीनता भी प्रदर्शित की है :

"मात्राबिन्दुच्युतके प्रहेलिकाकारकक्रियागूढे।
प्रश्नोत्तरादि चान्यत्क्रीडामात्रोपयोगमिदम् ॥"[२]

फिर भी इन सभी रचनाओं को रुद्रट ने चित्र के अन्तर्गत ही परिगणित किया है। परिच्छेद के अन्तिम श्लोक में वे कहते हैं :

"इत्थं स्थितस्यास्य दिशं निशम्य शब्दार्थवित्क्षोदित चित्रवृत्तः।
आलोच्य लक्ष्यं च महाकवीनां चित्रं विचित्रं सुकविर्विदध्यात् ॥"[३]

दण्डी ने केवल छह प्रकार की रचनाओं का विवेचन किया था, तीन गतिचित्र— गोमूत्रिका, अर्धभ्रम एवं सर्वतोभद्र तथा स्वर, स्थान और वर्णचित्र। अनुलोम-प्रतिलोम को दण्डी ने यमक का ही एक भेद माना[४] तथा प्रहेलिका का विवेचन 'दुष्कर' से इतर स्वतन्त्र रूप में किया। रुद्रट ने दण्डी द्वारा विवेचित केवल अर्धभ्रम और सर्वतोभद्र को ही अपने विवेचन में स्थान दिया तथा अनुलोम-प्रतिलोम को भी चित्र के अन्तर्गत ही माना। रुद्रट द्वारा विवेचित अन्य सभी चित्र-प्रकार नये हैं। यह आश्चर्य का विषय है कि 'गोमूत्रिका' जैसी बहुरचित रचना का उल्लेख रुद्रट ने नहीं किया, यद्यपि दण्डी और रुद्रट दोनों ने यह स्वीकार किया है कि इस प्रकार की रचनाओं में 'कुछ' का ही उल्लेख वे करते हैं।[५] रुद्रट ने तो इनकी संख्या 'अनन्त' बतलाई है :

"भेदैर्विभिद्यमानं सङ्ख्यातुमनन्तमहिमनैतदलम्।
तस्मादेतस्य मया दिङ्मात्रमुदाहृतं कवयः ॥"[६]

अग्निपुराण में इन चित्र-रचनाओं को 'चित्र' तथा 'दुष्कर' नाम से दो वर्गों में बाँटकर दोनों को अलग-अलग स्वतन्त्र शब्दालंकार माना गया है। 'चित्र' का लक्षण देते हुए अग्निपुराणकार ने इसके प्रश्न, प्रहेलिका, गुप्त, च्युत, दत्त, च्युतदत्त तथा समस्या— ये सात भेद माने हैं :

"गोष्ठ्यां कुतूहलाध्यायी वाग्बन्धश्चित्रमुच्यते।
प्रश्नः प्रहेलिका गुप्तं च्युतं दत्ते तथोभयम् ॥
समस्या सप्त तद्भेदा नानार्थस्यानुयोगतः।[७]

---

१. काव्यालङ्कार, अध्याय ५, श्लोक २४
२. उपरिवत्
३. काव्यालङ्कार, अध्याय ५, श्लोक ३३ (अध्याय का अन्तिम श्लोक)
४. काव्यादर्श, परि० ३, श्लोक ७३ से ७७ तक, विशेषकर ७६-७७
५. काव्यादर्श, परि० ३, श्लोक ९६, काव्यालङ्कार, अध्याय २, श्लोक ४
६. काव्यालङ्कार, अध्याय २, श्लोक ४
७. अग्निपुराण, अध्याय ३४३, श्लोक २२-२३

दण्डी ने प्रहेलिका को छोड़कर इन सातों में से किसी का भी विवेचन नहीं किया है। प्रहेलिका का विवेचन भी काव्यादर्श में 'दुष्कर' से इतर स्वतन्त्र रूप में हुआ है। अग्निपुराणकार के द्वारा उल्लिखित उपर्युक्त सातों प्रकारों में से दत्त, च्युतदत्त तथा समस्या के अतिरिक्त अन्य सभी का उल्लेख रुद्रट के काव्यालंकार में हुआ है। ये तीन भेद सर्वप्रथम अग्निपुराण में ही दीख पड़ते हैं। दण्डी द्वारा विवेचित स्वर, स्थान, वर्ण-नियमों तथा रुद्रट द्वारा विवेचित अनुलोम-प्रतिलोम और वस्तुरूपाकार बन्धों को अग्निपुराणकार ने क्रमश: 'नियम', 'विदर्भ' तथा 'बन्ध'[1] नाम से 'दुष्कर' नामक एक स्वतन्त्र शब्दालंकार के रूप में स्थान दिया है और इन्हें 'नीरस', पर 'विदग्धों' के लिए आनन्ददायक तथा 'कवि-सामर्थ्यसूचक' कहा है :

"दुःखेन कृतमत्यर्थं कविसामर्थ्यसूचकम्।
दुष्करं नीरसत्वेऽपि विदग्धानां महोत्सवः॥
नियमाच्च विदर्भाच्च बन्धाच्च भवति त्रिधा।"[2]

'बन्ध' के अन्तर्गत अग्निपुराणकार ने प्रथमतः आठ बन्धों का उल्लेख किया है तथा कतिपय उपभेदों-सहित उनकी न्यासविधि का विवेचन भी किया है। अध्याय के अन्त में इन आठों के अतिरिक्त अन्य १६ बन्धों के नाम दिये गये हैं तथा कहा गया है कि बुधजन इनके अतिरिक्त अन्य बन्धों का ज्ञान भी रखते हैं :[3]

प्रथम आठ बन्ध हैं : १. गोमूत्रिका, २. अर्धभ्रम, ३. सर्वतोभद्र, ४. अम्बुज, ५. चक्र, ६. चक्राब्जक, ७. दण्ड तथा ८. मुरज।[4]

अन्य १६ बन्ध हैं : १. बाण, २. बाणासन (धनुष), ३. व्योम, ४. खड्ग, ५. मुद्गर, ६. शक्ति, ७ द्विशृंगाट, ८. त्रिशृंगाट, ९. चतुःशृंगाट, १०. वज्र, ११. मुशल, १२. अंकुश, १३. रथपद, १४. नाग, १५. पुष्करिणी और १६. असिपुत्रिका।[5] इन बन्धों की न्यासविधि नहीं दी गईहै।

आनन्दवर्धन ने चित्र (बन्धादि रचना के अर्थ में) का लक्षण तो कहीं नहीं दिया है, किन्तु 'देवीशतक' संज्ञक अपनी पुस्तक में 'दुष्कर' नाम से इस प्रकार की बहुत रचनाएँ

१-२. अग्निपुराण, अध्याय ३४३, श्लोक ३२-३३

३. वही, श्लोक ६५—"एते बन्धस्तथा चान्ये एवं ज्ञेया स्वयं बुधैः॥"

४. गोमूत्रिकार्धभ्रमणं सर्वतोभद्रमम्बुजम्।
चक्र चक्राब्जं दण्डो मुरजाश्चेतिचाष्टधा॥
—अ० पु०, अ० ३४३, श्लो ३६-३७

५. बाणबाणासन व्योमखड्गमुद्गरशक्तयः ।
द्विचतुर्थत्रिशृङ्गाटा दम्भोलि मुशलाङ्कुशाः ॥६४॥
पदं रथस्य नागस्य पुष्करिण्यसिपुत्रिका।
एते बन्धास्तथा चान्ये एवं ज्ञेया स्वयं बुधैः ॥ ६५॥
—अ० पु०, अ० ३४३

की हैं। इन रचनाओं में पद्म, मुरज, गोमूत्रिका, सर्वतोभद्र, अर्धभ्रम, जाल, तूण तथा चक्र—ये आठ प्रकार के बन्ध और प्रतिलोमानुलोम, एकाक्षरादि वर्ण-नियम, गूढ़ चतुर्थ, प्रहेलिका, अर्थत्रयवाची, चतुरर्थ, रेफ विवर्त्तिक विभिन्न स्थान-नियम आदि अन्य प्रकार के चित्र हैं।[1] इनमें तूणबन्ध तथा जालबन्ध जैसे चित्रों का उल्लेख आनन्दवर्धन के पूर्व नहीं मिलता। देवीशतक में उल्लिखित 'चक्रबन्ध', जो ३२ आरों का है तथा जिसका निर्माण २० श्लोकों से हुआ है, निश्चित रूपेण उत्कृष्टतम है; कारण, इस प्रकार की रचना न तो इसके पूर्व हुई है और न बाद में ही हो सकी है। इस रचना में निहित कवि की शब्द-गुम्फन-शक्ति को देखकर दंग रह जाना पड़ता है। इसका पूर्ण विवेचन हम आगे करेंगे। पुस्तक के अन्तिम श्लोक में आनन्दवर्धन ने स्वयं स्वीकार किया है कि उन्होंने दुष्कर स्रोतों की रचनाएँ इस पुस्तक में की हैं :

"येनानन्दकथायां त्रिदशानन्दे च लालिता वाणी।
तेन सुदुष्करमेतत्स्तोत्रं देव्याः कृतं भक्त्या॥"[2]

राजशेखर की 'काव्यमीमांसा' के अठारह अधिकरणों में केवल प्रथम अधिकरण ही प्राप्त है, जिसे सम्पूर्ण पुस्तक की भूमिका के रूप में देखा जा सकता है। इस प्रथम अधिकरण में १८ अध्याय हैं। प्रथम अध्याय में सम्भवतः सभी (१८) अधिकरणों में विवेचित विषयों का निर्देश है। इस विषय-निर्देश में केवल ९ अलंकारों के नामों का उल्लेख है, जिनमें 'चित्र' भी एक है।[3] इसके अतिरिक्त चित्र के सम्बन्ध में काव्य-मीमांसा में और कुछ उपलब्ध नहीं होता। सम्भवतः एक स्वतन्त्र अधिकरण में राजशेखर ने 'चित्र' का विवेचन किया होगा। इसके समर्थन में भोजराज के सरस्वतीकण्ठाभरण में उद्धृत कवि-नामांक पद्मबन्ध तथा द्विश्रृंगाटकबन्ध को देखा जा सकता है। पद्मबन्ध के पत्रान्तों में विन्यस्त वर्णों से 'राजशेखर कमल' निःसृत होता है तथा द्विश्रृंगाटक के कोष्ठकों में

---

१. पद्म—दे० श०, पृ० २, श्लोक ४ (काव्यमाला)
मुरज ,, पृ० ५, श्लोक १५
गोमूत्रिका ,, पृ० ६, २५, श्लोक १९, ८७
सर्वतोभद्र ,, पृ० ८, श्लोक २५
अर्धभ्रम ,, पृ० १५, श्लोक ५२
जालबन्ध ,, पृ० २३, श्लोक ८१
तूणबन्ध ,, पृ० २६, श्लोक ९०
चक्रबन्ध (३२ आरों का) श्लोक ८० से ९५ तक तथा ९६, ९७, ९९ और १०० अन्य प्रकार के चित्र देवीशतक में बिखरे हुए हैं। एक ही श्लोक में एकाधिक चित्रों की योजना भी है। उदाहरणार्थ चक्रबन्ध के उपर्युक्त श्लोकों में अलग-अलग कई 'चित्रों' का न्यास है और सम्मिलित रूप में वे चक्र का निर्माण भी करते हैं।

२. दे० श०, पृ० ३०, श्लोक १०४

३. आनुप्रासिकं प्रचेता, यमो यमकानि, चित्रं चित्राङ्गदः, शब्दश्लेषं शेषः, वास्तवं पुलस्त्यः, औपम्यमौपकायः, अतिशयं पाराशरः, अर्थश्लेषमुतथ्यः, उभयालङ्कारिकं कुबेरः, ...
—काव्यमीमांसा, पृ० १

विन्यस्त वर्णों से 'राजशेखरस्य' ।[१] सम्भावना इसी बात की है कि ये रचनाएँ काव्यमीमांसा के रचयिता राजशेखर की ही हैं और इस प्रकार की अन्य अनेक रचनाएँ उन्होंने काव्य-मीमांसा के चित्र-प्रकरण में की होंगी, जो उपलब्ध नहीं हैं ।

भोजराज ने सरस्वतीकण्ठाभरण में 'चित्र' का कोई सामान्य लक्षण नहीं दिया है वरन् उसके छह भेदों का नामोल्लेख कर उन्हें ही चित्र की संज्ञा से अभिहित किया है :

> "वर्णस्थानस्वराकारगतिबन्धान्प्रतीहय : ।
> नियमस्तद्बुधः षोढा चित्रमित्यभिधीयते ॥"[२]

उन्होंने शब्दालंकार, अर्थालंकार तथा उभयालंकार में प्रत्येक के २४ भेद किये हैं, फलस्वरूप उन्हें अन्य आचार्यों के विभाजन से हटकर शास्त्रीय आधार के साथ ही कल्पना का बहुत अधिक सहारा लेना पड़ा है। इतना ही नहीं, प्रत्येक शब्दालंकार के भी उन्होंने छह-छह भेद किये हैं। यही कारण है कि एक ओर सम्भवतः २४ की संख्या की पूर्त्ति के हेतु उन्हें प्रहेलिका, गूढ़ अथवा गुप्त तथा प्रश्नोत्तर को स्वतन्त्र अलंकारों के रूप में रखना पड़ा और दूसरी ओर छह की संख्या बनाने के लिए चित्र के भेदों में आकार-चित्र तथा बन्ध-चित्र की अलग-अलग कल्पना करनी पड़ी, यद्यपि इन दोनों के पारस्परिक वैषम्य के सम्बन्ध में वे मौन हैं। न तो रुद्रट में और न अग्निपुराण में ही इस प्रकार का विभाजन हमें मिलता है। इन दोनों स्थानों में बन्ध के अन्तर्गत ही सभी आकार-चित्रों का विवेचन है। यह बात दूसरी है कि 'बन्धचित्र' के अन्तर्गत भोजराज ने द्विचतुष्चक्र, विवडित तथा शरयन्त्र—इन तीन नवीन बन्धों का विवेचन किया है। सरस्वती-कण्ठाभरण में विवेचित अन्य बन्धों का उल्लेख रुद्रट के काव्यालंकार तथा अग्निपुराण में मिल जाता है।

भोजराज ने चित्र के उपर्युक्त छहों भेदों में भी प्रत्येक के आठ-आठ उपभेद किये हैं। इस यान्त्रिक विभाजन के फलस्वरूप उन्हें 'गोमूत्रिका' तथा 'धेनु' का अलग से विवेचन करना पड़ा है; क्योंकि इन्हें साथ लेने से उपभेदों की संख्या बढ़ जाती और विभाजन में आठ का क्रम टूट जाता। धेनुचित्र को यदि विशिष्ट छन्द-रचना मानकर चित्र के उपर्युक्त छहों भेदों से इतर माना भी जाय, तो भी गोमूत्रिका को विशुद्ध गतिचित्र ही मानना होगा। स्वयं भोजराज का गोमूत्रिका-लक्षण ही इसका साक्षी है :

> गतिरुच्चावचा यत्र मार्गे मूत्रस्य गोरिव ।
> गोमूत्रिकेति तत्प्राहुर्दुष्करं चित्रवेदिनः ॥[३]

---

१. सरस्वती-कण्ठाभरण (काव्यमाला) :
 द्वि० प० : कविनामाङ्क पद्मबन्ध, पृ० २३४, श्लो० २९४
 द्विश्रृङ्गाटकबन्ध, पृ० २३९, श्लो० ३१३
 दोनों के न्यास पुस्तक के अन्त में ।

२. सरस्वतीकण्ठाभरण (का०), पृ० २२७, कारिका १०९

३. स० क०, पृ० २४२, कारिका १२७

अपने विभाजन के इस दोष से लेखक स्वयं भी अपरिचित नहीं है, अतः उन्होंने स्वीकार किया है कि गतिचित्र के 'गोमूत्रिकादि' अन्य प्रकार भी होते हैं :

"तेन गतिविचित्रादि गोमूत्रिकादयोऽन्येऽपि चित्रप्रकारा भवन्ति ।"[1]

अपने इस कथन के अनन्तर ही उन्होंने 'गोमूत्रिका' और 'धेनु' का विवेचन किया है। उपर्युक्त कथन में 'गोमूत्रिकादि' के 'आदि' पद से 'धेनुचित्र' का सीधा सम्बन्ध दीखता है, फलतः लेखक की दृष्टि में 'धेनुचित्र' भी 'गतिचित्र' का ही एक उपभेद दीख पड़ता है, यद्यपि इसकी विचित्रता एक छन्द में से अनेक छन्दों के निःसरण में है। पर यहाँ भी लेखक ने अपने विभाजन में आठ की संख्या बनाये रखने की चेष्टा की है और 'गोमूत्रिका' के आठ उपभेदों के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं, किन्तु 'धेनु' के केवल छह उपभेदों की ही चर्चा हुई है।[2] यों 'गोमूत्रिकाधेनु' नामक एक उपभेद ऐसा है, जिसे 'गोमूत्रिका' और 'धेनु' दोनों ही के अन्दर स्थान दिया जा सकता है। इस प्रकार दोनों को मिलाकर कुल १४ उपभेदों की चर्चा है, पर एक उभयनिष्ठ होने से स्वतन्त्र रूप में दोनों के उपभेद क्रमशः ८ और ७ हो जाते हैं।

दूसरी ओर विभाजन के इस संख्याक्रम का औचित्य बनाये रखने के लिए 'वर्ण' तथा 'स्वर' नियमों के अन्तर्गत लेखक को 'छन्दोक्षर', 'मुरजाक्षर' जैसे वर्णनियम के तथा 'प्रतिव्यंजन विन्यस्त स्वर' जैसे स्वर-नियम के भेदों की कल्पना करनी पड़ी है[3], जिन्हें चित्र के अन्तर्गत स्थान देने में विशेष खींचतान की आवश्यकता होगी। साथ ही जिस आधार पर लेखक ने 'ह्रस्वत्रिस्वर' तथा 'दीर्घचतुःस्वर' को स्वरचित्र के उपभेद माने हैं[4], उसी आधार पर 'दीर्घत्रिस्वर' तथा 'ह्रस्वचतुःस्वर' का भी उल्लेख होना चाहिए था। किन्तु ऐसा करने में उपभेदों की संख्या आठ से बढ़ जाती, अतः लेखक ने इनकी चर्चा ही नहीं की। भोजराज द्वारा विवेचित 'चित्र' के कुल भेद-उपभेद निम्नांकित हैं—

(क) वर्णचित्र : १. चतुर्व्यञ्जन, २. त्रिव्यञ्जन, ३. द्विव्यञ्जन, ४. एकव्यञ्जन, ५ क्रमस्थ सर्वव्यञ्जन, ६. छन्दोक्षर व्यञ्जन, ७. षड्जादिस्वरव्यञ्जन तथा ८. मुरजाक्षर व्यञ्जन।

---

१. सरस्वतीकण्ठाभरण, पृ० २४२, कारिकावृत्ति

२ गोमूत्रिका के भेद –१. पाद गोमूत्रिका, २. युग्मतगोमूत्रिका, ३. अर्धश्लोक गोमूत्रिका, ४. श्लोक गोमूत्रिका, ५. विपरीत गोमूत्रिका, ६. भिन्नछन्द गोमूत्रिका, ७. अर्धगोमूत्रिका-प्रस्तार, ८. गोमूत्रिकाधेनु।

धेनु के भेद—१. शतधेनु, २. सहस्रधेनु, ३. अयुतधेनु, ४. लक्षधेनु, ५. कोटिधेनु, ६. कामधेनु।

३. सरस्वतीकण्ठाभरण, द्वितीय परिच्छेद (काव्यमाला)
छन्दोक्षर, पृ० २२८, श्लोक २६४
मुरजाक्षर, पृ० २२९, श्लोक २६६
प्रतिव्यञ्जनविन्यस्त स्वर, पृ० २३२, श्लोक २८२

४. सरस्वतीकण्ठाभरण, परि० २, पृ० २३२, श्लोक २८०-८१ (का०)

(ख) स्थानचित्र : १. निष्कण्ठ्य, २. निस्तालव्य, ३. निर्दन्त्य, ४. निरोष्ठ्य, ५. निर्मूर्धन्य, ६. त्रिस्थानचित्र (निरोष्ठ्यदन्त्य तथा निरोष्ठ्य मूर्धन्य), द्विस्थान चित्र (दन्त्यकण्ठ्य) तथा ८. एकस्थान-चित्र (कण्ठ्य)।

(ग) स्वरचित्र : ह्रस्वैकस्वर, २. दीर्घैकस्वर, ३. ह्रस्वद्विस्वर, ४. दीर्घद्विस्वर, ५. ह्रस्वत्रिस्वर, ६. दीर्घचतुःस्वर, ७. प्रतिव्यञ्जन विन्यस्त स्वर तथा ८. अपास्त समस्तस्वर।

(घ) आकारचित्र : १. अष्टदल पद्म, २. दूसरा अष्टदलपद्म, ३. तीसरा अष्टपत्रपद्म, ४. चतुष्पत्रपद्म, ५. षोडशपत्रपद्म, ६. कविनामाङ्क अष्टदल-कमल, ७. चक्र तथा ८. चतुरङ्क।

(ङ) गतिचित्र : १. गतप्रत्यागत, २. अक्षरगत, ३. श्लोकान्तर, ४. भाषान्तर, ५. अर्थानुगत, ६. तुरङ्गपद, ७. अर्धभ्रम तथा ८. सर्वतोभद्र।

(च) बन्धचित्र : १. द्विचतुश्चक्रबन्ध, २. द्विश्रृङ्गाटकबन्ध, ३. विविडित बन्ध, ४. शरयन्त्रबन्ध, ५. व्योमबन्ध, ६. मुरजबन्ध, ७. एकाक्षर मुरज तथा ८. मुरजप्रस्तार।

इनके अतिरिक्त गोमूत्रिका तथा धेनु के निम्नांकित भेदों का विवेचन हुआ है :

गोमूत्रिका : १. पाद-गोमूत्रिका, २. अर्धश्लोक-गोमूत्रिका, ३. श्लोक-गोमूत्रिका, ४. विपरीत गोमूत्रिका, ५. भिन्नच्छन्द गोमूत्रिका, ६. समसंस्कृत पाद-गोमूत्रिका, ७. गोमूत्रिका-प्रस्तार तथा ८. गोमूत्रिका-धेनु।

धेनु : १. शतधेनु, २. सहस्रधेनु, ३. अयुत धेनु, ४. लक्षधेनु, ५. कोटिधेनु तथा ६. कामधेनु।[1]

इस विस्तृत विवेचन के बाद भी भोजराज ने स्पष्टतः स्वीकार किया है कि इन दुष्कर, कठोर तथा दुर्बोध रचनाओं का दिङ्मात्र ही विवेचन उन्होंने किया है :

"दुष्करत्वात्कठोरत्वाद्दुर्बोधत्वाद्विनावधेः।
दिङ्मात्रं दर्शितं चित्रे शेषमूह्यं महात्मभिः॥"[2]

प्रहेलिका, गूढ तथा प्रश्नोत्तर का विवेचन सरस्वतीकण्ठाभरण में स्वतन्त्र शब्दालंकारों के रूप में किया गया है तथा इनमें प्रत्येक के छह भेद किये गये हैं। इनके नाम निम्नलिखित हैं :

प्रहेलिका : १. च्युताक्षर, २. दत्ताक्षर, ३. च्युतदत्ताक्षर, ४. अक्षरमुष्टिका, ५. बिन्दुमती, तथा ६. अर्थप्रहेलिका।[3]

---

१. सरस्वतीकण्ठाभरण, परि० २, पृ० २२७—२५० (का०)

२. वही, परि० २, पृ० २५२, कारिका १४२ (का०)

३. "प्रहेलिका सकृत्प्रश्नः सापि षोढा च्युताक्षरा।
दत्ताक्षरोभयं मुष्टिर्बिन्दुमत्यर्थवत्यपि॥"
—स० क०, परि० २, पृ० २५५, कारिका १४५

गूढ : १. क्रियागुप्त, २. कारकगुप्त, ३. सम्बन्धगुप्त, ४. पादगूढ, ५. अभिप्रायगूढ, तथा ६. वस्तुगूढ ।[१]

प्रश्नोत्तर : १. अन्तःप्रश्न, २. बहिःप्रश्न, ३. बहिरन्तःप्रश्न, ४. जातिप्रश्न, ५. पृष्ट प्रश्न तथा ६. उत्तर प्रश्न ।[२]

इस प्रकार हम देखते हैं कि विभाजन की यह यान्त्रिक पद्धति अपनाकर भी भोजराज ने चित्रकाव्य का विस्तृत विवेचन किया है। यह बात और है कि विभाजन की इस पद्धति के कारण उन्हें कहीं तो खींचतान कर निश्चित संख्या पहुँचानी पड़ी है और कहीं उस संख्या को बनाये रखने के लिए कतिपय विवेच्य उपभेदों को बिलकुल छोड़ देना पड़ा है। फिर भी 'चित्रकाव्य' का इतना विस्तृत विवेचन उनके पूर्व तो नहीं ही हुआ था, उनके बाद भी कम ही हुआ है।

मम्मट तथा रुय्यक ने चित्र का लगभग समान लक्षण दिया है :

"तच्चित्रं यत्र वर्णानां खड्गाद्याकृतिहेतुता ।"[३]—मम्मट

"वर्णानां खड्गाद्याकृतिहेतुत्वे चित्रम् ।"[४]—रुय्यक

मम्मट ने चित्र का विवेचन अत्यन्त संक्षेप में किया है। रुद्रट तथा भोज ने चित्र के 'दिङ्मात्र' निदर्शन में भी पर्याप्त विस्तार दिया है, परन्तु मम्मट ने सचमुच ही अपने कथन की रक्षा की है।[५] इस 'कष्टकाव्य' के उन्होंने खड्ग, मुरज, पद्म तथा सर्वतोभद्र—ये चार उदाहरण ही दिये हैं तथा विवेचन के अन्त में निष्कर्ष दिया है कि इनके (चित्र के) अन्य भी अनेक प्रभेद हो सकते हैं, पर ये सभी कवि की शक्तिमात्र के ही द्योतक हैं, काव्य-स्वरूप के नहीं। अतः इनका निरूपण नहीं किया जा रहा है।[६]

मम्मट के समान ही रुय्यक ने भी चित्र का विवेचन अत्यन्त ही संक्षेप में किया है। उपर्युक्त कारिका की वृत्ति में रुय्यक ने केवल एकबन्ध, पद्मबन्ध का ही छन्द उद्धृत किया है तथा 'खड्गादि' शब्द का प्रयोग-भर किया है।[७] यहाँ चित्र के शब्दालंकारत्व

---

१. "क्रियाकारकसम्बन्धे पादाभिप्रायवस्तुभिः ।
गोपितैः षड्विधं प्राहुर्गूढगूढार्थवेदिनः ॥"
—स० क०, परि० २, पृ० २५७, कारिका १४७

२. "अन्तःप्रश्नबहिःप्रश्नबहिरन्तःसमाह्वयैः ।
जातिपृष्टोत्तराभिख्यैः प्रश्नैस्तदपि षड्विधम् ॥"
—स० क०, परि० २, पृ० २५८, कारिका १४९

३. काव्यप्रकाश, नवम उल्लास, पृ० ३२८, कारिका ८५ (चौखम्बा)

४. अलङ्कारसर्वस्व, पृ० २४ (का)
" " पृ० २० (शा० सं० ग्रं०)

५. कष्टं काव्यमेतदितिदिङ्मात्रं प्रदर्श्यते ।
—का० प्र०, नवम उल्लास, पृ० ३२८, कारिका ८५ की वृत्ति (चौखम्बा)

६. उपरिवत्

७. अ० स०, पृ० २४ (का०)
—अ० स०, पृ० २० (शा० सं० ग्र०)

पर विचार किया गया है और बताया गया है कि चित्र में प्रयुक्त वर्ण यद्यपि 'श्रोत्राकाश समवेत' नहीं होते (क्योंकि इनके आनन्द का माध्यम आँख है, कान नहीं), फिर भी 'श्रोताकाश समवेत' वर्णों से ये अभिन्न होते हैं; अतः 'चित्र' भी शब्दालङ्कार ही है :

"यद्यपि लिप्यक्षराणां खड्गादि सन्निवेशविशिष्टत्वं तथापि श्रोत्राकाश समवेत-वर्णात्मकशब्दाभेदेन तेषां लोके प्रतीतेर्वाचकशब्दालङ्कारोऽयम् ।"[1]

अबतक चित्र के शब्दालंकारत्व के सम्बन्ध में कोई प्रश्न नहीं उठा था, पर रुय्यक के इस विवेचन से लगता है कि चित्र के अलंकारत्व पर सम्भवतः अब सन्देह किया जाने लगा था।

मम्मट और रुय्यक के उपर्युक्त लक्षणों से यह स्पष्ट है कि उन्होंने केवल आकार-चित्र को ही चित्र माना है । स्वर, व्यंजन, गूढादि का कोई आभास इन लक्षणों से नहीं मिलता। फिर भी मम्मट द्वारा दी गई वृत्ति में उदाहरणों के बीच सर्वतोभद्र के भी समावेश से यह माना जा सकता है कि कम-से-कम गतिचित्र को उन्होंने चित्र में स्थान दिया है । बहुत सम्भव है, उन्होंने आकार के अन्तर्गत ही सर्वतोभद्र को भी समझा हो,[2] कारण, उनके विवेचन से स्पष्ट है कि उनकी वृत्ति चित्र के विवेचन में नहीं रमी। रुय्यक में तो आकारेतर चित्र के सम्बन्ध में हमें बिलकुल ही कुछ नहीं मिलता ।

हेमचन्द्र सूरि-रचित 'काव्यानुशासन' में हमें चित्र का विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है । भोजराज के समान ही हेमचन्द्र ने भी चित्र के लक्षण-निरूपण में केवल चित्र के विभिन्न भेदों का ही उल्लेख किया है :

"स्वरव्यञ्जनस्थान गत्याकारनियमच्युतगूढादि चित्रम् ।"[3]

प्रस्तुत कारिका की वृत्ति के अन्त में 'गूढादि' शब्द की व्याख्या करते हुए उन्होंने लिखा है :

---

१. उपरिवत् । शारदा संस्कृत ग्रन्थमालावाली प्रति में—शब्दालंकार के स्थान पर वाचकालंकार ।

२. Mammata however differs from them (दूसरे आलङ्कारिकों से) as can be seen from the following definition of *Citra* given by him in Kavya-Prakasa :

"तच्चित्रमत्र वर्णानां खड्गाद्याकृतिहेतुता ।"

But taking into account his commentary, where he has given one example for *'Sarvatobhadra'* too he appears to admit at least *'gati-citra'* over and above *'Akar-Citra'*. So it may be said that according to him the main variety of *'citra'* is, *'akar-citra'*.—from Illustration of Letter Diagram by H. R. Kapadia : Journal of the University of Bombay,

Sept. '54, ARTS NUMBER, 29

३. काव्यानुशासन, पृ० ३०७, कारिका १०८, अध्याय ५, सूत्र ४

"गूढादीत्यादिपदेन प्रश्नोत्तरप्रहेलिकादुर्वचकादिग्रहः ।"[1]

इस प्रकार हेमचन्द्र की दृष्टि में 'चित्र' के निम्नांकित प्रमुख भेद हैं :

१. स्वर-नियम, २. व्यञ्जन-नियम, ३. स्थान-नियम, ४. गतिनियम, ५. आकार-नियम, ६. च्युत तथा ७. गूढ ।

प्रश्नोत्तर तथा प्रहेलिका को उन्होंने चित्र का भेद माना तो, पर गौण । इनके सम्बन्ध में हेमचन्द्र का कथन है :

"एतच्च कष्टकाव्यत्वात्क्रीडामात्रफलत्वाच्च न काव्यरूपतां दधातीति न प्रतन्यते ।"[2]

और इस प्रकार प्रश्नोत्तर तथा प्रहेलिका के विवेचन को वे अपने ग्रन्थ में स्थान नहीं देते ।

हेमचन्द्र द्वारा किया गया चित्र का यह वर्गीकरण अत्यन्त ही वैज्ञानिक दीख पड़ता है । भोजराज की तरह वर्गीकरण में उनका कोई पूर्व-निश्चित आधार नहीं था, अतः भोजराज के वर्गीकरण में जो दोष दीख पड़ते हैं, काव्यानुशासन का वर्गीकरण उनसे मुक्त है । हेमचन्द्र ने भोजराज की तरह आकारचित्र तथा बन्धचित्र में कोई अन्तर नहीं देखा, अतः बन्धचित्र नाम के किसी स्वतन्त्र वर्ग की अपेक्षा उन्होंने नहीं समझी । इसी प्रकार वर्णचित्र, स्थान-चित्र तथा स्वर-चित्रों के उपभेदों में भी उन्होंने वैज्ञानिक पद्धति अपनाई है । दण्डी ने इन तीनों प्रकार के चित्रकाव्यों के चार-चार उपभेद माने थे,[3] हेमचन्द्र ने इनमें से प्रत्येक के केवल तीन ही भेदों की चर्चा की है तथा उनके उदाहरण दिये हैं ।[4] भोजराज ने गूढ, प्रहेलिका तथा प्रश्नोत्तर को चित्रेतर स्वतन्त्र अलंकार माने थे[5], पर हेमचन्द्र ने 'गूढ' को तो चित्र के प्रमुख भेदों में स्थान दिया[6], किन्तु प्रहेलिका और प्रश्नोत्तर को चित्र के ही, पर गौण भेद मानकर उनका विवेचन करना भी उचित नहीं समझा ।[7] गतिचित्र के

---

१. काव्यानुशासन, पृ० ३२३ (उपरिवत्)

२. उपरिवत्

३. यः स्वरस्थानवर्णानां नियमो दुष्करेष्वसौ ।
इष्टश्चतुष्प्रभृत्येषु दर्श्यंते सुकरः परः ॥ ८३॥
—काव्यादर्श, परि० ३, श्लोक ८३

ये चार-चार भेद निम्नलिखित हैं—
चतुःस्वर, त्रिस्वर, द्विस्वर, एकस्वर; चतुःस्थान—कण्ठ, दन्त, तालु तथा मूर्धा; त्रिस्थान—कण्ठ तालु तथा दन्त; द्विस्थान—कण्ठ्य तथा दन्त; एकस्थान केवल कण्ठ्य; चतुर्वर्ण, त्रिवर्ण, द्व्यक्षर, एकाक्षर । —काव्यादर्श, परि० ३, श्लोक ८४ से ९५ तक

४. काव्यानुशासन (अलङ्कारचूडामणि तथा विवेक मिलाकर), पृ० ३०७ से ३१० तक (म० जै० वि०)

५. पादटिप्पणी ३२, ३३ तथा ३४ देखें ।

६. काव्यानुशासन, कारिका १०८, पृ० ३०७, अ० ५, सू० ४

७. पादटिप्पणी ४३ देखें ।

अन्तर्गत काव्यानुशासन में गतप्रत्यागत, सर्वतोभद्र, अर्धभ्रम, तुरंगपद तथा गोमूत्रिका का विवेचन हुआ है। हेमचन्द्र ने गोमूत्रिका को गतिचित्र के अन्दर ही स्थान दिया, जो वास्तव में उचित ही था, भोजराज की तरह अलग से उसका विवेचन नहीं किया।[1]

आकार-चित्र के लक्षण-स्वरूप हेमचन्द्र ने काव्यानुशासन की वृत्ति अलङ्कार-चूडामणि में लिखा है :

"आकारः खड्गमुरजबन्धाद्याकृतिः तच्चित्रम्।"[2]

और इस प्रकार उन्होंने बन्ध को आकार में ही अन्तर्भूत माना है। काव्यानुशासन की वृत्ति तथा टीका, दोनों में मिलाकर हेमचन्द्र ने निम्नांकित बन्धों के उदाहरण दिये हैं तथा उनके न्यास एवं उद्धार की विधि का भी उल्लेख किया है :

१. खड्ग, २. मुरज, ३. मुसल, ४. धनुष्, ५. बाण, ६. चक्र तथा ७. पद्म।

इन बन्धों के छन्द हेमचन्द्र ने रुद्रट के 'काव्यालंकार'[3] तथा आनन्दवर्धन के 'देवी-शतक'[4] से लिये हैं। इनका उल्लेख करते हुए लेखक ने कहा है :

"एवं मुसलधनुर्बाणचक्रपद्मादय उदाहार्या—"[5]

तथा इस कथन में आगे 'आदि' शब्द की व्याख्या करते हुए निम्नांकित बन्धों के नामों का उल्लेख भी लेखक ने किया है :

"आदिग्रहणात् हलशक्तिस्थूल (?) स्वस्तिकनागपाशादयो ज्ञेयाः।"[6]

इस प्रकार आकार-चित्र के उपर्युक्त ७ बन्धों के अतिरिक्त हल, शक्ति, स्वस्तिक तथा नागपाश—इन चार अन्य बन्धों के नाम हमें काव्यानुशासन में मिल जाते हैं।

आकार-चित्र के बाद हेमचन्द्र ने क्रमशः 'च्युत' तथा 'गूढ' का विवेचन किया है और दोनों के ही चार-चार भेद माने हैं :

"च्युतं मात्राबिन्दुवर्णगतत्वेन चतुर्धा।"[7]

तथा "गूढक्रियाकारकसम्बन्धपादविषयत्वेन चतुर्धा।"[8]

यानी च्युत चित्र, मात्राच्युत, अर्धमात्राच्युत, बिन्दुच्युत, तथा वर्णच्युत—ये चार प्रकार के होते हैं, और गूढचित्र के क्रियागूढ, कारकगूढ, सम्बन्धगूढ तथा पादगूढ—ये चार भेद होते हैं।

---

१. गतिर्गतप्रत्यादिका।" .... एवमर्धगतप्रत्यागतश्लोकगत-प्रत्यागत-सर्वतोभद्रार्धभ्रमतुरङ्गपद गोमूत्रिकादीन्युदाहार्याणि।"

—काव्यानुशासन-वृत्ति (अ० पू०), पृ० ३१३ (उपरिवत्)

२. काव्यानुशासन, पृ० ३१३

३-४. काव्यानुशासन (अलङ्कारचूडामणि तथा विवेक-सहित), पृ० ३१३ से पृ० ३२१ तक (उपरिवत्)

५. काव्यानुशासन (अलङ्कारचूडामणि), पृ० ३१५ (उपरिवत्)

६. काव्यानुशासन (विवेक), पृ० ३२१ (उपरिवत्)

७. काव्यानुशासन (अलङ्कारचूडामणि), पृ० ३१५ (उपरिवत्)

८. काव्यानुशासन (अलङ्कारचूडामणि), पृ० ३२२ (उपरिवत्)

काव्यानुशासन में इस प्रकार चित्र का विस्तृत तथा वैज्ञानिक विवेचन हुआ है। काव्यानुशासन के तीन भाग हैं—कारिका, वृत्ति तथा टीका। तीनों हेमचन्द्र द्वारा ही रचित हैं। वृत्ति का नाम 'अलङ्कारचूडामणि' है तथा टीका का 'विवेक'। चित्र का उपर्युक्त विवेचन तीनों को मिलाकर किया गया है; कारण, विवेक केवल टीका ही नहीं है, वरन् वृत्ति का पूरक भी है। अन्य आचार्यों की तरह हेमचन्द्र ने यह कहीं नहीं कहा है कि चित्र का वे 'दिङ्मात्र' ही प्रदर्शन कर रहे हैं। स्पष्ट है कि वे चित्र के अपने इस विवेचन के विस्तार से परिचित थे तथा विवेचन की वैज्ञानिकता की ओर भी पर्याप्त सजग थे।

वाग्भट (प्रथम) ने अपनी पुस्तक वाग्भटालंकार में चित्र का जो लक्षण दिया है, वह केवल आकार-चित्र को ही अपनी सीमा में रखता है। चित्र के अन्य भेद इस लक्षण की सीमा में नहीं आ पाते :

> "यत्राङ्गसन्धितद्रूपैरक्षरैर्वस्तुकल्पना ।
> सत्यां प्रसत्तौ तच्चित्रं तच्चित्रं चित्रकृच्च यत् ॥"[1]

किन्तु उदाहरणों के क्रम में वाग्भट ने चित्र के अन्य भेदों के उदाहरण भी दिये हैं, जो निम्नांकित हैं :[2]

१. षोडशदल पद्मबन्ध और यही श्लोक, २. गोमूत्रिका का भी है, ३. एकस्वर-चित्र, ४. मात्राच्युत, ५. बिन्दुच्युत, ६. एकव्यञ्जन-चित्र तथा ७. वर्णच्युत।

इनके अतिरिक्त प्रथम परिच्छेद के अन्तर्गत चित्र-रचना में कतिपय वर्णों की अभिन्नता के विवेचन के उदाहरण-स्वरूप दो अन्य बन्धों 'हार' तथा 'छत्र' के उदाहरण दिये हैं।[3] इस प्रकार वाग्भटालङ्कार में चित्रकाव्य के कुल आठ छन्द हैं, जिनमें चित्र के १. आकार-चित्र, २. गतिचित्र, ३. स्वर-चित्र, ४. व्यञ्जन-चित्र तथा ५. च्युत चित्र—इन पाँच प्रकारों के उदाहरण हैं। अन्य छन्दों में आकार-चित्र तथा च्युतचित्र के अन्य उपभेदों के ही उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं।[4]

वाग्भटालङ्कार वस्तुतः एक कविशिक्षा का ग्रन्थ है और प्रथम परिच्छेद में काव्य-रचना के क्रम में ध्यातव्य बातों का उल्लेख किया गया है। इसी क्रम में वाग्भट ने यमकचित्र तथा श्लेष से युक्त पदों में कवि के लिए स्वीकृत कतिपय सुविधाओं का उल्लेख भी किया है :

> "यमकश्लेषचित्रेषु ववयोर्डलयोर्न भित् ।
> नानुस्वारविसर्गौ च चित्रभङ्गाय सम्मतौ ॥"[5]

---

१. वाग्भटालंकार, परि० ४, श्लोक ७, पृ० २९ (काव्यमाला)
२. ,, ,, क्रमशः श्लोक ८,९,१०, ११,१२ तथा १३
३. ,, परि० १, श्लोक २४ तथा २५
४. पाद-टिप्पणी २ तथा ३ को सम्मिलित देखें।
५. वाग्भटालंकार, परि० १, श्लोक २०

(यमक श्लेष तथा चित्र में 'ब', 'व'; 'ड', 'ल', अनुस्वार तथा विसर्ग-सहित अथवा रहित वर्णों में कोई अन्तर नहीं देखा जाता।)

चित्ररचना में स्वीकृत वर्णों की इस अभिन्नता का उल्लेख सर्वप्रथम वाग्भट ने ही किया है तथा इस अभिन्नता को उदाहृत करने के लिए उन्होंने 'हारबन्ध' और 'छत्रबन्ध' के दो छन्दों को प्रस्तुत किया है। प्रश्नोत्तर, प्रहेलिका तथा गूढ़ आदि चित्रकाव्य के भेदों का वाग्भट ने उल्लेख नहीं किया है। इस प्रकार यद्यपि वाग्भट ने चित्र का विवेचन अत्यन्त संक्षेप में किया है, फिर भी उसका अपना महत्त्व है।

जयदेव ने भी चन्द्रालोक में चित्र के लक्षण-उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। चन्द्रालोक की निरूपण-पद्धति की विशेषता यह है कि एक ही श्लोक के पूर्वार्द्ध में लक्षण है और उत्तरार्द्ध में उदाहरण। प्रायः प्रत्येक अलंकार के लिए चन्द्रालोककार ने केवल एक ही श्लोक दिया है। चन्द्रालोक की इस विवेचन-पद्धति का अनुकरण हिन्दी के रीतिकालीन आचार्यों ने खूब किया। चित्र के लिए जयदेव ने पंचम मयूख में दो श्लोक दिये हैं और यहाँ भी उन्होंने अपनी पद्धति का निर्वाह किया है। प्रथम श्लोक में तो उन्होंने चित्र का लक्षण दिया है तथा दोनों को मिलाकर खड्गबन्ध का उदाहरण प्रस्तुत किया है। वे श्लोक निम्न हैं:

"काव्यवित्प्रवरैश्चित्रं खड्गबन्धादिलक्ष्यते।
तेष्वाद्यमुच्यते श्लोकद्वयी सज्जनरञ्जिका ॥९॥
कामिनीव भवत्खड्गलेखा चारु करालिका।
काश्मीरसेकारक्ताङ्गी शत्रुकण्ठान्तिकाश्रिता ॥१०॥"[1]

उपर्युक्त लक्षण से यह स्पष्ट नहीं होता कि जयदेव ने केवल आकारचित्र को ही चित्र माना है अथवा चित्र के अन्य भेदों को भी। 'खड्गबन्धादि' के 'आदि' का तात्पर्य तो यहाँ केवल 'बन्धों' से ही दीखता है।

विद्याधर की एकावली में भी चित्र का विवेचन संक्षेप में ही है। विद्याधर ने 'चित्र' का लक्षण तो मम्मट तथा रुय्यक के ही अनुकरण पर केवल आकार-चित्र के रूप में दिया है :

"वर्णानामथ पद्माद्याकृतिहेतुत्वमुच्यते चित्रम्।"[2]

किन्तु वृत्ति के अन्तर्गत गतिचित्र तथा स्थानचित्र को भी स्वीकृत किया है।[3] स्वरचित्र

१. चन्द्रालोक, पञ्चममयूख—श्लोक ९-१०

२. एकावली, सप्तम उन्मेष, कारिका—८

३. "अहो येन क्रमेण गता वर्णपंक्तिस्तेनैव क्रमेण प्रत्यागतेत्याश्चर्यकारित्वाद्वा चित्र मित्यन्वर्थं बलाद्ववर्णानामाकारानुल्लासकत्वेनाव्याप्तावपि गतप्रत्यागतार्द्ध-भ्रमसर्वतोभद्रधेनु प्रभृति गतिचित्रमत्र संगृहीतम्। अभिनव पद पदार्थपर्यालोचनेन मन्दबुद्धीनां चितोज्ञानस्य त्राणाद्वा चित्रमित्यन्वर्थमहिम्ना निष्कण्ठ्य निरोष्ठ्य निस्तालव्यादि स्थानचित्रं च स्वीकृतम्" —उपरिवत्—वृत्ति, पृ० १९१

तथा वर्ण अथवा व्यंजन-चित्र को विद्याधर चित्र के अन्तर्गत स्थान नहीं देते। व्यंजन-चित्र को तो वे 'वृत्यनुप्रास' के भीतर ही देखते हैं[१] तथा स्वरचित्र के लिए उनका निष्कर्ष है कि इस प्रकार की रचना 'बन्ध-शैथिल्य' का उदाहरण होने से दोष के रूप में ही देखी जा सकती है, अलंकार के रूप में कदापि स्वीकृत नहीं हो सकती।[२]

भोजराज के द्वारा किये गये चित्र के वर्गीकरण को ध्यान में रखते हुए विद्याधर ने 'आकारचित्र' और 'बन्धचित्र' को भिन्न मानने के कारण का अनुमान किया है। उनका कहना है कि यद्यपि बन्धचित्र को आकारचित्र से भिन्न माननेवालों ने दोनों के पारस्परिक वैभिन्न्य को नहीं दिखाया है, फिर भी इनका निम्न आधार हो सकता है। ईश्वर द्वारा रचित पद्मशैलादिक वस्तुओं के आकार-रूप में जब चित्रबन्ध की रचना होती है तो उसे आकारचित्र तथा हल, मुसल, मुरज, गोमूत्रिका, चाप, चक्रादि के आकार की चित्र-रचनाओं को, जिनके रचयिता मनुष्य तथा ईश्वर दोनों ही होते हैं, बन्धचित्र कहना सम्भव है।

"अत्र यद्यपि बन्धचित्रमाकार चित्राद्भिन्नंमन्यमानैरपि चिरन्तनैर्न किञ्चिद्भेदकमुक्तं तथापीश्वर कर्त्तृकत्वे सत्यपि यदेक कर्त्तृकतया प्रसिद्धं तत्पद्मशैलादिकमाकार चित्रम्। यत्तु द्विकर्त्तृकं हल मुसल मुरज गोमूत्रिका चाप चक्रादि तद्बन्धचित्रमित्यनयोर्भेदः कल्पयितुं शक्य एवास्माभिः।[3]

किन्तु विद्याधर ने स्वयं भी इस प्रकार का विभाजन आवश्यक नहीं समझा है, कारण आकारचित्र और बन्धचित्र दोनों में ही विशिष्ट वर्ण-विन्यास के द्वारा पद्मादि रूप में चित्र-सादृश्य ही उपस्थित किया जाता है।[४]

उपर्युक्त विवेचन में आकारचित्र और बन्धचित्र की भिन्नता दिखाकर यद्यपि भोजराज के वर्गीकरण के औचित्य पर प्रकाश डाला गया है, परन्तु स्वयं भोजराज ने सम्भवतः इस प्रकार के आधार की कल्पना नहीं की थी। यदि यह बात न होती तो सरस्वती-कण्ठाभरण में 'चक्रबन्ध' का विवेचन आकारचित्र के अन्तर्गत न होकर बन्धचित्र के अन्तर्गत होता, जैसा कि उपर्युक्त पंक्तियों में विद्याधर ने प्रतिपादित किया है। किन्तु भोजराज ने 'चक्र' को आकारचित्र के अन्तर्गत ही परिगणित किया है।[५] दूसरी बात जो हम उपर्युक्त पंक्तियों में पाते हैं वह है गोमूत्रिका का 'बन्धचित्रों' में स्थान। अग्निपुराण को छोड़कर रुद्रट से लेकर हेमचन्द्र तक जितने आचार्यों ने गोमूत्रिका का विवेचन किया है,

---

१. "यत् पुनः स्वरविरहितव्यञ्जनमात्रसादृश्यप्रयुक्तं वर्णचित्रमपरैरभ्यधायि तदस्मिन् दर्शनेवृत्त्यनुप्रास एव।"—उपरिवत्

२. "स्वरचित्रं तु बन्धशैथिल्यकारितया दोष एवेति नालङ्कारतया स्वीकृतम्।" —उपरिवत्, पृ० १९२

३. उपरिवत्, पृ० १९०

४. "आकारचित्रइवेह बन्धचित्रेऽपि वर्णानामाकारोल्लासकत्वात् पद्मादिरुपतयाक्षराणां लिख्यमानत्वेन चित्र सादृश्याच्चित्रमिदमुच्यते।" —उपरिवत्, पृ० १९०-९१

५. स० कं०, परि० २, श्लोक २९६ तथा २९८

सभी ने उसे गतिचित्र ही माना है और उसका वर्ण-विन्यास भी गत्यात्मक ही है, वस्तुरूपात्मक नहीं। यों गोमूत्रिका से एक प्रकार का चित्र भी बनता है, बहुत सम्भव है विद्याधर ने उसे ही ध्यान में रखकर अग्निपुराण के आधार पर इसे बन्धचित्र के अन्तर्गत स्थान दिया हो।[1]

चित्र के इस विवेचन के क्रम में विद्याधर ने चित्र के शब्दालंकारत्व पर भी प्रकाश डाला है और यहाँ रुय्यक के समान ही उनका भी निष्कर्ष होता है। यह सही है कि 'शब्द' आकाश के तत्त्व हैं, अतः काव्य का आनन्द सुनकर लिया जाता है। चित्र-रचनाओं में प्रयुक्त वर्णों का महत्त्व आलेख्य (चित्र) के समान आँखों से देखने में है, अतः 'चित्र-रचनाएँ' शब्दालंकार भला किस प्रकार हो सकती हैं ? इसके उत्तर में विद्याधर का कहना है कि आकाश में रहनेवाले शब्दों को हम ककारादि वर्णों के द्वारा ही जानते हैं और चित्ररचनाओं में भी वे ही वर्ण प्रयुक्त होते हैं, अतः आनन्दोपलब्धि के माध्यम कर्ण और चक्षु में भिन्नता होने पर भी वे वर्ण एक ही हैं, फलतः चित्रालंकार का चमत्कार शब्दाश्रित ही है, और इस प्रकार उसका स्थान शब्दालंकार में ही होगा।[2]

वाग्भट प्रथम के वाग्भटालंकार का आधार लेते हुए विद्याधर ने भी यमक और चित्र की रचनाओं में वर्णयोजना के क्षेत्र में कवियों को मिलनेवाली छूटों का वर्णन किया है :

> "रलयोर्डलयोस्तद्वल्लळयोर्बवयोरपि ।
> नमयोर्णनयोश्चान्ते सविसर्गाविसर्गयोः ॥
> सबिन्दुकाबिन्दुकयोः स्यादभेदेन कल्पनम् ।"[3]

यानी इन रचनाओं में र-ल, ड-ल, ल-ळ, ब-व, न-म, न-ण, सविसर्ग-अविसर्ग तथा सबिन्दु-अबिन्दु में अभिन्नता देखी जाती है। वाग्भट ने केवल ब-व, ड-ल, अनुस्वार तथा विसर्ग-रहित तथा सहित वर्णों के अभेद का ही कथन किया था[4], पर विद्याधर ने इस सूची में उपर्युक्त कई अन्य वर्णों को भी स्थान दिया है। इतना विवेचन करने पर भी विद्याधर ने और आचार्यों की तरह ही चित्र तथा यमक की रचनाओं को दुष्कर, असाधु तथा दूषण कहा है, कारण ये रसोपकारक नहीं होतीं :

> "प्रायशो यमके चित्रे रसपुष्टिर्न दृश्यते
> दुष्करत्वादसाधुत्वमेकमेवात्र दूषणम् ॥"[5]

---

१. द्रष्टव्य पाद-टिप्पणी ३ (पृ० ३४) से सम्बद्ध प्रबन्ध का अंश

२. कर्णशष्कुल्यवच्छिन्नाकाश समवेतैः ककारादिभिरभेदेनग्रहणाल्लिप्यक्षरेष्वप्ययं ककारइत्यैक्यप्रतीतेः शब्दालङ्कारत्वमत्रौपचारिकम्।"

—एकावली, सप्तम उन्मेष, कारिका ५ से ८ तक की वृत्ति, पृ० १८९

३. एकावली, सप्तम उन्मेष, कारिका ६ तथा ७।१

४. पाद-टिप्पणी ५, पृ० ३२ देखें।

५. एकावली, उन्मेष ७, कारिका ५

विद्याधर के पूर्व के आचार्यों ने इन रचनाओं को दुष्कर तथा कष्टकाव्य तो कहा था, पर 'दूषण' किसी ने भी नहीं कहा। विद्याधर का कथन है कि ये चित्र-रचनाएँ 'गड्डुभूत' होती हैं[१] यानी रसास्वादन में गाँठ का काम करती हैं। आगे चलकर विश्वनाथ कविराज तथा अन्य आलंकारिकों ने भी इन्हें गड्डुभूत कहा है।[२] चित्र के सम्बन्ध में विद्याधर का उक्त विवेचन संक्षिप्त होते हुए भी पर्याप्त महत्त्वपूर्ण है। कारण अपने पूर्व के विभिन्न आचार्यों का आधार लेकर भी उन्होंने नवीन व्याख्या की है। गतिचित्र तथा स्थानचित्र को चित्र मानने के जिन कारणों का उल्लेख वे करते हैं, वे पर्याप्त तर्कपूर्ण न होते हुए भी (तथा जिनसे सहमत नहीं हुआ जा सकता), इस क्षेत्र में नवीन हैं।[3] अन्य किसी आचार्य ने इस ओर कुछ कहने की चेष्टा नहीं की।

विद्यानाथ ने 'प्रतापरुद्रयशोभूषण' में शब्दालंकार के अन्तर्गत ही चित्र के लक्षण-उदाहरण दिये हैं, किन्तु कोई नवीन बात नहीं कही। उनका लक्षण भी मम्मट, रुय्यक और विद्याधर की शब्दावली में ही है।[४] उदाहरण में उन्होंने तीन बन्धों का उल्लेख किया है—अष्टदलपद्म, चक्र तथा नाग। नागबन्ध का उल्लेख अभी तक किसी आचार्य ने नहीं किया था। इसके अतिरिक्त विद्यानाथ ने चित्र के सम्बन्ध में और कुछ नहीं कहा है।

वाग्भट(द्वितीय)-रचित काव्यानुशासन में भी चित्र के सम्बन्ध में कोई नई उद्भावना नहीं मिलती। काव्यानुशासन वस्तुतः एक कविशिक्षा का ग्रन्थ है, अतः वाग्भट ने अपने पूर्व के आचार्यों का आधार ही अधिक ग्रहण किया है, अपनी ओर से कोई विशेष बात नहीं कहीं। प्रथम परिच्छेद में दो सूत्रों में उन्होंने चित्र के अन्तर्गत मानी जानेवाली ब-व, ड-ल तथा अनुस्वार और विसर्ग-रहित तथा सहित वर्णों की अभिन्नता का उल्लेख किया है।[५] वे सूत्र वाग्भट प्रथम के वाग्भटालंकार के आधार पर ही लिखे गये हैं। विसर्ग तथा ल-र की अभिन्नता से युक्त उदाहरण में भी वाग्भटालंकार में उद्धृत हारबन्धवाले श्लोक को ही उद्धृत किया गया है।[६] चित्र का लक्षण तथा उसके वर्गीकरण का आधार वाग्भट (द्वितीय) ने हेमचन्द्र को बनाया है :

१. "एतच्चकाव्ये गड्डुभूतमिति नेह प्रतीयते।"
—उपरिवत्, कारिका ५ से ८ की वृत्ति, पृ० १९१

२. "काव्यान्तर्गतगड्डुभूततया तु नेह प्रपञ्चयते।"
साहित्यदर्पण, परि० १०, पृ० ६८२ (चौखम्बा)

३. पाद-टिप्पणी ३ (पृ० ३३) देखें।

४. "पद्माद्याकारहेतुत्वे वर्णानां चित्रमुच्यते।"
—प्रतापरुद्रीयम्, शब्दालङ्कार-प्रकरण, पृ० २५१ (वा० म०, मद्रास)

५. "बवयोर्डलयोरैक्यम्॥"
"नानुस्वारविसर्गौ चित्रभङ्गाय।"
—काव्यानुशासन (वाग्भट द्वितीय), अध्याय १, पृ० १४ (काव्यमाला)

६. "चन्द्रेडितं चटुलित स्वरधीश(त) साररत्नासनं रभसकल्पित शोकजातम्।
पश्यामिपापतिमिरक्षयकारकायमल्पेतरामलतपः कचलोचलोपम्॥"
—काव्यानुशासन (वाग्भट द्वितीय), प्रथम अध्याय, पृ० १४
वाग्भटालङ्कार (वाग्भट प्रथम), परि० १, पृ० १३, श्लोक २४

"आकार गति स्वर व्यञ्जन स्थान नियमच्युत गुप्तादिभेदैरनेकधा चित्रम् ।"[१]

इस प्रकार वाग्भट (द्वितीय) के मत में हेमचन्द्र के समान ही आकार, गति, स्वर, व्यंजन, स्थान, च्युत तथा गुप्त चित्र के ये ही प्रमुख प्रकार हैं। विवेचन के अन्त में वाग्भट (द्वितीय) ने उपर्युक्त 'आदि' शब्द की व्याख्या करते हुए कहा है :

"आदि शब्दात्प्रश्नोत्तर प्रहेलिका दुर्वचकादयोऽपि भवन्ति ।
परं कष्टकाव्यत्वात्क्रीड़ामात्रफलत्वान्नात्रप्रपञ्चिताः ।।"[२]

हेमचन्द्र के भी प्रश्नोत्तर और प्रहेलिका के सम्बन्ध में यही विचार थे।[3] स्पष्ट है कि चित्र के विवेचन में वाग्भट (द्वितीय) ने हेमचन्द्र के काव्यानुशासन से ही प्रेरणा ली है और उसीका अनुकरण भी किया है।

चित्र के विभिन्न उपभेदों के सम्बन्ध में भी वाग्भट (द्वितीय) का विवेचन हेमचन्द्र के समान ही पर्याप्त स्पष्ट है। आकार चित्रों के भेदों में कवि ने २० बन्धों का उल्लेख किया है। निम्न पंक्तियों में हमें खड्ग, धनुष, बाण, मुसल, शूल, शक्ति, हल, छत्र, पद्म, मुरज, चक्र तथा स्वस्तिक—इन १२ बन्धों के नाम मिलते हैं :

"बन्धस्यखड्गधनुर्बाणमुसलशूलशक्तिहलछत्रपद्ममुरजचक्रस्वस्तिकाद्याकारसादृश्यादाकार चित्रम् ।"[४]

इन बन्धों के उदाहरण तथा उनका विवेचन भी पुस्तक में है। इन बन्धों के अतिरिक्त वाग्भट (द्वितीय) ने काव्यानुशासन की स्वरचित टीका में उपर्युक्त पंक्ति में आगत 'आदि' शब्द की व्याख्या करते हुए अन्य आठ बन्धों का भी उल्लेख किया है :

१. अष्टार चक्र, २. द्वादशार चक्र, ३. सप्तचक्रिका, ४. गोमूत्रिका, ५. नन्द्यावर्त, ६. भृङ्गार, ७. चामर तथा ८. घण्टा ।[५]

उपर्युक्त बीसों बन्धों में स्वस्तिक, सप्तचक्रिका, नन्द्यावर्त्त, भृंगार, चामर तथा घण्टाबन्ध नये हैं। अन्य बन्धों का विवेचन वाग्भट (द्वितीय) से पूर्व के आचार्यों द्वारा हो चुका है। प्रस्तुत उद्धरण में हम पाते हैं कि विद्याधर की तरह, गोमूत्रिका को, वाग्भट (द्वितीय) ने बन्धों की पंक्ति में स्थान दिया है, किन्तु गतिचित्र के प्रसंग में 'गोमूत्रिका' को गतिचित्र ही माना है :

"गतिचित्रंसर्वतोभद्रगतप्रत्यागतगोमूत्रिकार्द्धभ्रम रथपदतुरगपदगजपदादि भेदैरनेकधा भवति ।"[६]

---

१. काव्यानुशासन (वाग्भट), अ० ४, पृ० ४६ (उपरिवत्)
२. काव्यानुशासन ,, ,, पृ० ४९ (टीका में)
३. पाद-टिप्पणी १-२, पृ० ३० देखें।
४. काव्यानुशासन (वाग्भट), अ० ४, पृ० ४६ (काव्यमाला)
५. उपरिवत्
६. उपरिवत्, पृ० ४७ (टीका में)

ऐसा सम्भवतः इसलिए हुआ है कि स्वतन्त्र विवेचन न कर वाग्भट (द्वितीय) ने अपने विवेचन में विभिन्न आचार्यों का आधार ग्रहण किया है, फलतः विवेचन में एकसूत्रता वे नहीं रख सके। लेखक ने गतिचित्र के उपर्युक्त सभी भेदों का उदाहरण नहीं दिया है, वरन् केवल सर्वतोभद्र के दो छन्द देकर अन्य के लिए :

'एवमन्यदपि'[1]

लिखकर समाप्त कर दिया है। इसी प्रकार स्वर, व्यंजन, स्थान, च्युत तथा गुप्त चित्रों के लक्षण तथा एकाध उदाहरण देकर इस प्रसंग को समाप्त कर दिया है। इन चित्रों के लक्षण के क्रम में ही इनके भेदों का उल्लेख भी हो जाता है :

स्वरचित्र :

"ह्रस्वादि स्वर नियमो स्वरचित्रम्।"[2]

व्यंजनचित्र :

"एकद्वित्र्यादिव्यञ्जननियमो व्यञ्जनचित्रम्।"[3]

स्थानचित्र :

"कण्ठतालुमूर्धदन्तोष्ठादिस्थाननियमः स्थानचित्रम्।"[4]

च्युतचित्र :

"मात्राबिन्दुर्वर्णादिभेदैश्च्युतमनेकधा।"[5]

तथा गुप्तचित्र :

"गुप्तकं क्रियाकारक सम्बन्ध विषयत्वेन चतुर्धा।"[6]

इस प्रकार वाग्भट (द्वितीय) ने कोई नवीन बात न कहकर पूर्वाचार्यों का ही शतशः अनुकरण किया है। एक बात अवश्य है कि उन्होंने केवल किसी एक ही आचार्य का अनुकरण न कर हेमचन्द्र, वाग्भट (प्रथम) तथा विद्याधर जैसे एकाधिक आचार्यों का आधार ग्रहण किया है।

आचार्य देवेश्वर की 'कविकल्पलता' 'काव्यशिक्षा' का ग्रन्थ है। जैसा कि आचार्य ने स्वयं स्वीकार किया है :

"कविशिक्षा मतं वीक्ष्य कवीन्द्रानुपजीव्य च।
निबद्धेयं मया धीरास्त्वरितश्लोक सिद्धये ॥५॥
सुवृत्तरम्यस्तवका सदालिपरिशीलिता।
कविकल्पलताख्येयं कविशिक्षा निषेव्यताम् ॥६॥"[7]

१. उपरिवत्, पृ० ४७ (टीका में)
२. उपरिवत्
३. उपरिवत्
४. उपरिवत्, पृ० ४८
५. उपरिवत्
६. उपरिवत्
७. कविकल्पलता, पृ० २-३, श्लोक ५-६ (कलकत्ता)

फलतः प्रस्तुत ग्रन्थ का उद्देश्य शास्त्रीय विवेचन नहीं, वरन् नये अभ्यासार्थी कवियों को काव्यरचना में निष्णात बनने में सहायता प्रदान करना है। उद्देश्यानुरूप ही प्रस्तुत पुस्तक के 'चित्रस्तवक' नामक प्रकरण में कवियों को विभिन्न चित्रों की रचना-विधि से परिचित कराया गया है। उक्त प्रकरण के प्रारम्भ में ही 'चित्रकाव्य' की रचना के उपयुक्त 'एकार्थक अनुलोम-प्रतिलोम' तथा 'अन्यार्थक अनुलोम-प्रतिलोम' शब्दों की सूची दी गई है, फिर क्रियादिगूढ, बिन्दुच्युतकादि, प्रश्नोत्तरादि के लक्षण-उदाहरण हैं। इस विवेचन में किसी प्रकार के किसी क्रम का ध्यान नहीं रखा गया है। वक्रोक्ति, प्रहेलिका, यमक के कतिपय भेदों के लक्षण-उदाहरण भी इस प्रकरण में हमें मिलते हैं। बन्धचित्रों में, पट्टिश, अष्टदल पद्म तथा षोडशदल पद्म—इन तीन बन्धों के ही श्लोक हैं।[1] बाद में गत-प्रत्यागतादिक के उदाहरण हैं। गोमूत्रिका के नाम में कुछ ऐसे भी छन्दों का उल्लेख है, जिनमें किसी भी प्रकार का गोमूत्रिका-क्रम नहीं दीखता।[2] प्रस्तुत प्रकरण का अन्तिम छन्द कवि नामांक षडर चक्रबन्ध में निबद्ध है और इस चक्र से 'देवेश्वर कवि वाग्भट नन्दनः' 'अंक' निःसृत होता है। चित्र-रचनाओं के इस विवेचन में किसी निश्चित क्रम का सर्वथा अभाव है।

कविकल्पलता की तरह धर्मदास-कृत विदग्ध-मुखमण्डन भी कवि-शिक्षा की ही पुस्तक है। इसका प्रमुख उद्देश्य विद्वानों को सभा-चतुर बनने में सहायता देना है। इस सम्बन्ध में कवि की स्पष्ट उक्ति है :

"प्रीत्यै सतां तदनुभाव गतावसादः
सन्त्यज्य गूढ रचनां प्रतिभानुरूपम्।
क्षिप्रावबोध करणक्षममीक्षितार्थं
वक्ष्येविदग्धमुखमण्डनम् प्रपञ्चम् ॥"

तथा

"यद्यस्ति सभामध्ये स्थातुं वक्तुं मनस्तदा सुधियः।
ताम्बूलमिव गृहीत्वा विदग्धमुखमण्डनं विशत॥"[3]

विदग्धमुखमण्डन में बड़े ही विस्तार से केवल प्रश्नोत्तर तथा प्रहेलिका की ही रचनाएँ हैं। पुस्तक के चार परिच्छेदों तथा कुल २७२ श्लोकों में ४३ जातियों के प्रश्नोत्तर का विवेचन है।[4] इनमें से कुछ प्रश्नोत्तर बन्धों के आकार के रूप में भी नियोजित

१. कविकल्पलता, पृ० १४६, श्लोक २६, २७, २८
२. कविकल्पलता, पृ० १४८-१४९, श्लोक ३४, ३५, ३६ तथा ३७
३. काव्यसंग्रह, भाग ३, पृ० ८९, वि० मु० म०, परि० १, श्लोक ७ (जीवानन्द विद्यासागर)
काव्यसंग्रह, भाग ३, पृ० ९०, वि० मु० म०, परि० १, श्लोक ८ (जीवानन्द विद्यासागर)
४. "प्राहुर्व्यस्तं समस्तं च द्विर्व्यस्तं द्विःसमस्तकम्।
तथा व्यस्त समस्तं च द्विर्व्यस्तं द्विःसमस्तकम् ॥९॥
सद्विःसमस्तकव्यस्तमेकालापं प्रभिन्नकम्।

हैं—जैसे शृंखलोत्तर, नागपाशोत्तर, काकपद आदि। चतुर्थ परिच्छेद में प्रहेलिका के विभिन्न भेदों का ही उल्लेख है और उनमें 'च्युत' तथा 'गुप्त' को भी आकलित किया गया है। सरस्वतीकण्ठाभरणकार, 'हेमचन्द्र', वाग्भट (द्वितीय) प्रभृति आचार्यों ने प्रहेलिका और प्रश्नोत्तर को 'गूढ' तथा 'गुप्तादि' से भिन्न माना था। हेमचन्द्र तथा वाग्भट (द्वितीय) ने तो इन्हें 'क्रीडामात्र' तथा 'कष्टकाव्य' कहकर इनका विवेचन भी अपेक्षित नहीं समझा,[1] किन्तु वि० मु० म० में धर्मदास ने केवल प्रश्नोत्तर और प्रहेलिका का ही विवेचन किया है।

विश्वनाथ कविराज ने भी अपने ग्रन्थ 'साहित्यदर्पण' में 'चित्र' के सम्बन्ध में कुछ नये विचार नहीं दिये। 'चित्र' का लक्षण भी उन्होंने रुय्यक, मम्मट आदि अन्य आचार्यों के अनुकरण पर ही दिया :

"पद्माद्याकार हेतुत्वे वर्णानां चित्रमुच्यते।"[2]

प्रस्तुत परिभाषा निश्चित रूप से केवल आकार-चित्रों को ही चित्र मानती है। अन्य प्रकार के चित्र इस परिभाषा की सीमा में नहीं आते। प्रहेलिका के अलंकारत्व का विश्वनाथ ने खण्डन किया है, फिर भी उसे एक स्वतन्त्र अलंकार माना है। दण्डी ने ही सर्वप्रथम प्रहेलिका को 'दुष्कर' से अलग माना था। 'भोज' ने अपने विभाजन का औचित्य बनाये रखने के लिए प्रहेलिका का स्वतन्त्र अलंकार के रूप में विवेचन किया। अन्य आचार्यों ने यदि प्रहेलिका को चित्र के अन्दर स्थान दिया भी, तो भी उसे क्रीड़ामात्र

भेद्यभेदकमोजस्वि सालङ्कारं सकौतुकम् ॥१०॥
प्रश्नोत्तरसमं पृष्टप्रश्नं भग्नोत्तरं तथा।
आदिमध्योत्तराख्येद्वे अन्त्योत्तरमतः परम् ॥११॥
कथितापह्नुतिचैव विषमं वृत्तनामकम्।
नामाख्यातं च तार्क्ष्यं च सौत्रं शाब्दीयशास्त्रजे ॥१२॥
वर्णवाक्योत्तरे तद्वत् श्लोकोत्तरमतः परम्।
खण्डपादोत्तरे चक्रं पद्मं काकपदं तथा ॥१४॥
शृङ्खलां नागपाशं च चित्रं संशुद्धिमेव च।
प्रहेलिकां तथा हृदयं कालसारादि वर्णितम् ॥१५॥
अजमारादिकं गूढं पदपादार्थगूढकम्।
स्तुतिनिन्दां तथा द्व्यर्थं सहापह्नुति बिन्दुमत् ॥१६॥
क्रियाकारक सम्बन्ध गुप्तान्यामन्त्रितस्य च।
गुप्तं तथा समासस्य लिङ्गस्य वचनस्य च ॥१७॥
मात्राबिन्दुविसर्गाणां च्युतकान्यक्षरस्य च।
स्थानव्यञ्जनयोश्चापि च्युतदत्ताक्षरं तथा ॥१८॥

—काव्यसंग्रह, भाग ३, पृ० ९०—९२
विदग्धमुखमण्डन, परि १, श्लोक ९—१८

१. द्रष्टव्य उपर्युक्त पाद-टिप्पणी २, पृ० ३० तथा २, पृ० ३०
२. परि० १०, पृ० ६८० (चौखम्बा)

अथवा कष्टकाव्य कहकर उसके प्रति उपेक्षा ही दिखाई ।[1] विश्वनाथ ने चित्र के उदाहरण-स्वरूप केवल एक पद्मबन्ध का ही पुस्तक में उल्लेख किया है तथा चित्र को 'गड्डभूत' बताकर अधिक विवेचन की आवश्यकता नहीं समझी है :

"काव्यान्तर्गतगड्डभूततया तु नेह प्रपञ्च्यते ।"[2]

केशव मिश्र ने अपने अलंकारशेखर में सरस्वतीकण्ठाभरण का आधार लेकर आठ शब्दालंकारों में चित्र, गूढ, प्रश्नोत्तर तथा प्रहेलिका में प्रत्येक का स्वतन्त्र अलंकार के रूप में विवेचन किया है।[3] अन्य चार अलंकार हैं—वक्रोक्ति, अनुप्रास, श्लेष और यमक। चित्र के सम्बन्ध में उनका कथन है :

"तत्र कौतुकविशेषकारि चित्रम् । तच्च खड्गपद्मादिभेदादनन्तम् ।"[4]

चित्रकाव्य के अन्य भेदों की चर्चा करते हुए शेखरकार का कहना है :

"सर्वतोभद्र धेन्वादि गोमूत्री मुरजादि च।
गत प्रत्यागताद्याहुश्चित्रकाव्यं मुनीश्वराः (कवीश्वराः) ॥"[5]

इस प्रकार चित्रकाव्य के भेदों के रूप में केशव मिश्र ने सर्वतोभद्र, धेनु, गोमूत्रिका, मुरज, गतप्रत्यागत आदि का ही नामोल्लेख किया है। यहाँ स्पष्ट है कि इनमें केवल आकारचित्र और गतिचित्र के भेदों का ही उल्लेख है। 'आदि' शब्द का प्रयोग भी इन्हीं के अन्य भेदों के लिए है। स्वर, व्यंजन तथा स्थानचित्र का कोई उल्लेख हमें यहाँ नहीं मिलता। शेखरकार ने चित्र के सम्बन्ध में इससे अधिक और कुछ नहीं कहा है। उदाहरण के लिए वे केवल यह कहकर :

"तच्च माघादौ सुव्यक्तत्वान्नेहोदाह्रियते ।"[6]

आगे बढ़ गये हैं।

रसगंगाधरकार पण्डितराज जगन्नाथ ने चित्रकाव्य को अधमाधम काव्य कहना उपयुक्त समझा है और इसे काव्य के पंचम वर्ग में रखा है। पण्डितराज के मत में 'रमणीयार्थ प्रतिपादक शब्द' ही काव्य होते हैं और चित्र-रचनाओं में 'रमणीयार्थ' तो नहीं ही होता, फलतः ये रचनाएँ काव्य की कोटि में नहीं आतीं। इनकी रचना केवल प्राचीनों के अनुकरण पर परिपाटी निभाने के लिए होती है। पर पण्डितराज के विचार से आँख

१. द्रष्टव्य—प्रस्तुत अध्याय की पाद-टिप्पणी २, पृ० २२; २, पृ० ३०, तथा २, पृ० ३०

२. साहित्यदर्पण, परिच्छेद १०, पृ० ६८८ (चौखम्बा)

३. "चित्रवक्रोक्त्यनुप्रास गूढश्लेष प्रहेलिकाः ।
प्रश्नोत्तरं च यमकमष्टालङ्कृतयो ध्वनौ ।"
—अलङ्कारशेखर, मरीचि १०, पृ० २० (काव्यमाला)

४. उपरिवत्

५. उपरिवत्, क्रमशः पृ० २० तथा पृ० २९, काव्यमाला तथा चौखम्बा की प्रति में।

६. उपरिवत्

मूँदकर प्राचीनों का अनुकरण करना ठीक नहीं।[1] इस क्रम में पण्डितराज ने जिन चित्ररचनाओं के नाम दिये हैं उनमें एकाक्षर पद्य तथा पद्मबन्ध तो 'व्यंजनचित्र' तथा 'आकारचित्र' के द्योतक हैं, पर बीच का अर्द्धावृत्ति यमक सूचित करता है कि या तो यमक को भी पण्डितराज ने चित्र के साथ अधमाधम काव्य में ही गिना है अथवा इसे चित्र का ही एक भेद माना है। यह कहना कठिन है कि उन्होंने अर्द्धावृत्ति यमक का ही उल्लेख क्यों किया और उसे एक क्रम में न रख एकाक्षर और पद्मबन्ध—दोनों चित्रों के बीच में क्यों रखा। उनके सम्मुख छन्द का भी कोई आग्रह न था, कारण उनका विवेचन गद्य में है।

कृष्ण कवि-रचित 'मन्दार मरन्द चम्पू' में हम चित्र का विवेचन विस्तार से पाते हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में कवि ने चित्र और बन्ध को अलग मानकर दोनों का विवेचन अलग-अलग अध्यायों में किया है, पर उनकी परिभाषा के अनुसार ये दोनों एक ही हैं, बल्कि केवल आकारचित्रों को ही उन्होंने परिभाषा में स्थान दिया है :

"चित्रं स्याद्यदि वर्णानां पद्माद्याकार हेतुता।
तच्चित्रं बहुधात्रास्य दिङ्गमात्रं दर्शयामहे॥"[2]

स्पष्ट है कि प्रस्तुत परिभाषा में मम्मट, रुय्यक आदि आचार्यों का अनुकरण है और चित्र के अन्य भेदों का बोध इससे नहीं हो पाता। किन्तु 'चित्रबिन्दु' (चित्र-प्रकरण) के अन्त में कवि ने अन्य प्रकार के चित्रकाव्यों का भी उल्लेख किया है, यद्यपि उनके लक्षण-उदाहरण नहीं दिये हैं :

"अक्षरमात्राबिन्दुच्युतकानुलोमप्रतिलोमादयोऽपि।"[3]

इस विवेचन में मन्दार-मरन्द-चम्पू की विचित्रता यह है कि कवि ने व्याकरणसम्मत कुछ सूत्रों की ओर इंगित किया है, 'जिनकी योजना से भी चित्र बनते हैं।' श्लोक निम्न हैं :

"विना वर्गेष्वाद्य वर्णाद्वितीयं शषसा न च।
हलादीनां कृदन्तानां पदानां विनियोजने।
तत्र चित्रं भवेदस्य स्वौजसन्तपदान्वयात्॥
धातोर्लोटोमध्यमस्य परस्मैपदिनः सकृत्।

१. "यद्यपि यत्रार्थ चमत्कृति सामान्यशून्याशब्दचमत्कृतिस्त पञ्चमधमाधममपि काव्यविधासु गणयितुमुचितं यथैकाक्षरपद्यार्द्धावृत्ति यमकपद्मबन्धादि तथापि रमणीयार्थ प्रतिपादक शब्दतारूप काव्य सामान्यलक्षणानाक्रान्ततया वस्तुतः काव्यत्वाभावेन महाकविभिः प्राचीनपरम्परानुरुन्धानैस्तत्र तत्र काव्येषु निबद्धमपि नास्माभिर्गणितं वस्तुस्थितिरेवानुरोध्यत्वात्।"
—रसगङ्गाधर, पृ० ३४ (बी० एस० एस० १९०३)

२. 'मन्दारमरन्द चम्पू', चित्रबिन्दु : पृ० ४२ (काव्यमाला)

३. उपरिवत्, पृ० ४८

उक्तस्यैव पदोद्भेदात् स्वौजसन्तेषु चान्वयात् ॥
पृष्ठतोन्युपसर्गादि राज्याद्यन्त सुयोजने ।
चित्रं भवेद्भिन्न लिङ्ग स्वावाद्यन्त समन्वयात् ॥
इनीदन्तपदैर्योगे रेफादि पदपृष्ठतः ।
भवेच्चित्रं भिन्नलिङ्ग स्वौशसन्तसमन्वयात् ॥
आदन्तोत्तरतोऽज्वादेः सन्ध्या शब्दस्य गुम्फने ।
भवेच्चित्रं लिङ्गभेदादेक द्विवचनान्वयात् ॥
अजन्तानां हलन्तानां यथायोगं नियोजने ।
विभक्तिभेदाच्चित्रं स्यात्स्वावमटादिपदान्वयात् ॥[1]

किन्तु इन स्थापनाओं के समर्थन में कवि ने स्वयं जो उदाहरण दिये हैं वे भी इनकी पूर्ति कुछ दूर तक ही कर पाते हैं। दूसरी बात यह कि न तो कृष्ण कवि के पूर्व के किसी आचार्य ने चित्र के अन्तर्गत इस प्रकार की रचनाओं का उल्लेख किया है और न बाद में ही किसी ने चित्ररचनाओं के अन्तर्गत इन श्लोकों के अनुसार रचनाएँ की हैं, न किसी आचार्य ने कृष्ण कवि का समर्थन ही किया है। अतः चित्र के सम्बन्ध में उपर्युक्त श्लोकों का कोई औचित्य नहीं दीखता। अन्यत्र कहीं भी चित्र-रचनाओं के लिए व्याकरण के उपर्युक्त सूत्रों का सहारा नहीं लिया गया, न इसकी ओर इंगित ही किया गया।

'बन्धबिन्दु' के अन्तर्गत कवि ने ११ बन्धों के उदाहरण दिये हैं। इन बन्धों में लक्षण (अथवा न्यासविधि) केवल नागबन्ध तथा द्वादशदल पक्ष्मबन्ध के ही दिये गये हैं।[2] अन्यबन्ध, जिनके केवल श्लोक ही दिये गये हैं, वे निम्न हैं :

षोडशदल पद्म, अष्टदल पद्म, गजबन्ध, चक्रबन्ध, छत्रबन्ध, चामरबन्ध, मर्दलबन्ध, रथबन्ध तथा गोमूत्रिका बन्ध।

यहाँ कवि ने गोमूत्रिका को बन्ध अथवा आकारचित्र के अन्तर्गत ही स्थान दिया है। 'गजबन्ध' तथा 'चामरबन्ध' का उल्लेख सर्वप्रथम हमें यहीं दीखता है। 'रथबन्ध' भी नया ही है, यों गतिचित्र के अन्तर्गत 'रथपद' की चर्चा पहले हुई है।[3] पर श्लोकों को देखने से दोनों में अन्तर दीखता है। यों भी इसका उल्लेख बन्धबिन्दु के अन्तर्गत होने से रथाकारचित्र से ही इसका सम्बन्ध दीखता है। चित्रकाव्य के विवेचन और विभाजन में इसके अतिरिक्त कृष्ण कवि ने कोई योग नहीं दिया। व्याकरण के सूत्रों को चित्र के अन्तर्गत लाकर उन्होंने हेमचन्द्रादि के द्वारा सुविवेचित तथा सुचिन्तित चित्र-प्रकरण को और अधिक उलझा दिया।

---

१. उपरिवत्, पृ० ४२ से ४५ तक।

२. मन्दारमरन्द चम्पू : बन्धबिन्दु, नागबन्ध का लक्षण, पृ० ४९-५०
मन्दारमरन्द चम्पू : द्वादशपद्मबन्ध का लक्षण, पृ० ५१

३. द्रष्टव्य टिप्पणी ३, पृ० २१; टि० ५, पृ० २३ तथा काव्यानुशासन (हेमचन्द्र), पृ० ३१३
"आदिग्रहणाद्गजपदरथपदादीनि ज्ञातव्यानि—(विवेक)

जैनाचार्य 'अजित सेन' के 'अलंकार-चिन्तामणि' में भी चित्र का विस्तृत विवेचन है। अजितसेन ने हेमचन्द्र के 'काव्यानुशासन' तथा धर्मदास के 'विदग्धमुखमण्डन'—दोनों की पद्धतियों को अपने विवेचन में स्थान दिया है। यह पुस्तक अलंकार से अधिक काव्यशिक्षा की है। अतः शास्त्र के रूप में स्वतन्त्र उद्भावना तो हमें इसमें नहीं मिलती पर अनेक नवीन बन्धों के श्लोक तथा चित्र मिलते हैं। लेखक ने शब्दालंकार के केवल चार भेद माने हैं : चित्र, वक्रोक्ति, अनुप्रास तथा यमक,[1] और पुस्तक के सम्पूर्ण द्वितीय परिच्छेद में, १८६ श्लोकों में चित्र का ही विवेचन किया है। किन्तु इतना विस्तृत विवेचन होने पर भी न तो चित्र का कोई वैज्ञानिक वर्गीकरण ही लेखक ने किया है, और न इनके विवेचन में किसी वैज्ञानिक क्रम का ही पालन हुआ है। परिच्छेद के प्रारम्भ में विदग्धमुखमण्डन के अनुसार प्रश्नोत्तर के विभिन्न भेदों, जैसे—व्यस्त-समस्त, द्विर्व्यस्त-द्विः-समस्त, एकालाप, प्रभिन्नक, भेद्यभेदक, कौतुक, सालंकार, पद्मोत्तर, काकपदोत्तर, गोमूत्रिकोत्तर, शृंखलोत्तर आदि, च्युत तथा प्रहेलिका का विवेचन किया गया है।[2] बाद में कुल ३३ बन्धों के श्लोक हैं।[3] लेखक ने इन बन्धों में आधिकांश की न्यासविधि भी दी है। पुस्तक के अन्त में इन बन्धों के चित्र भी हैं। इन ३३ बन्धों में ७ तो गोमूत्रिका ही हैं, ६ मुरज, ३ पद्म, २ चक्र, २ ब्रह्मदीप तथा १३ अन्यान्यबन्ध हैं। इनमें तालवृन्त, पट्ट, निस्साल, ब्रह्मदीप, यान तथा परशु—इतने बन्ध बिलकुल नवीन हैं। पूर्वाचार्यों में किसी ने भी इन बन्धों का उल्लेख नहीं किया है। बीच-बीच में एकाक्षर, द्व्यक्षर जैसे वर्णचित्रों की रचना भी दीख पड़ती है। सब मिलाकर अलंकार-चिन्तामणि में लेखक ने चित्र-विवेचन को पर्याप्त विस्तार दिया है तथा धर्मदास की प्रश्नोत्तर तथा अन्य आचार्यों की बन्धादि—दोनों ही शैलियों को स्थान दिया है। विवेचन में किसी क्रम का न होना अतिशय खटकता है और अजितसेन के आचार्यत्व पर सन्देह के लिए पर्याप्त स्थान प्रदान करता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि चित्र-रचनाओं के क्षेत्र में संस्कृत-आचार्यों के तीन प्रमुख वर्ग हैं। प्रथम वर्ग में दण्डी, रुद्रट, अग्निपुराण, भोज, हेमचन्द्र प्रभृति आचार्य आते हैं, जिन्होंने चित्र का विस्तार से तथा सर्वांगीण विवेचन किया है। इन आचार्यों के अनुसार चित्र की एकाधिक कोटियाँ हैं तथा इनके प्रमुख भेद हैं—स्वर, स्थान, व्यंजन (वर्ण), गति तथा आकारचित्र। गौण भेदों में च्युत, दत्त, गूढ, प्रहेलिका तथा प्रश्नोत्तर आते हैं। प्रहेलिका के सम्बन्ध में इन आचार्यों के कथन का सार यही है कि इनका महत्त्व चित्र में नहीं होना चाहिए, फलतः दण्डी ने प्रहेलिका का विवेचन स्वतन्त्र रूप में किया, रुद्रट ने संक्षेप में कर महत्त्वहीन घोषित किया, भोज ने स्वतन्त्र

---

१. "अथ तावद्ब्रुवे शब्दालङ्कारं तं चतुर्विधम्।
चित्र वक्रोक्त्यनुप्रासयमकाश्रितभेदतः ॥१॥ —अलङ्कारचिन्तामणि, परिच्छेद २

२. अलङ्कारचिन्तामणि, परि० २, श्लोक ३ से ७५ तक।

३. वही, श्लोक ७६ से परिच्छेद २ के अन्त तक।

अलंकाररूप में किया, हेमचन्द्र ने इसका विवेचन करना उचित ही नहीं समझा। यही दशा प्रश्नोत्तर की भी है।

द्वितीय कोटि में मम्मट, रुय्यक, जयदेव, विद्याधर, विश्वनाथ आदि आते हैं, जिन्होंने चित्रकाव्य को केवल आकारचित्र तक ही सीमित रखा। अन्य प्रकार के चित्रों का न तो इन आचार्यों ने विवेचन ही किया और न इनके सम्बन्ध में किसी प्रकार का मत ही दिया। मम्मट के उदाहरणों में सर्वतोभद्र का एक छन्द मिलने से यह निष्कर्ष भले लिया जा सकता है कि उन्होंने कम-से-कम गतिचित्र को माना है[1], किन्तु इस सम्बन्ध में मम्मट स्वयं मौन हैं। इस काल तक चित्र के शब्दालंकारत्व पर सन्देह किया जाने लगा था, फलतः रुय्यक ने उसका निराकरण किया है, विद्याधर और विश्वनाथ ने भी इसमें रुय्यक का ही अनुकरण किया है।

चित्रकाव्य का विवेचन करनेवाले आचार्यों की तीसरी कोटि में धर्मदास, देवेश्वर, अजितसेन तथा विश्वेश्वर[2] आते हैं, जिन्होंने प्रमुख रूप से प्रश्नोत्तर तथा प्रहेलिका के भेदोपभेदों का ही विवेचन किया है। इन आचार्यों का उद्देश्य कवि-शिक्षक-ग्रन्थ लिखना था, जिसका अनुकरण कर कोई भी कवि राजदरबार में सम्मान प्राप्त कर सके।[3] चित्र के अन्य भेदों का विवेचन भी इन्होंने किया है, पर बहुत ही कम।

इस प्रकार चित्रकाव्य-विवेचन में संस्कृत-आचार्यों के प्रमुख तीन वर्ग हैं, जिनका आधार हिन्दी के आचार्यों ने अपने विवेचन में लिया है। वस्तुतः चित्र का मौलिक विवेचन हमें मम्मट तक ही प्राप्त होता है, बाद के आचार्यों ने पिष्टपेषण-मात्र किया है। प्रश्नोत्तर के क्षेत्र में धर्मदास मौलिक विवेचक हैं, अन्यों ने उनका अनुकरण-मात्र किया है। लगभग उपर्युक्त सभी आचार्यों ने स्वीकार किया है कि चित्रकाव्य अत्यन्त कठिन काव्य है तथा इसके अनन्त भेद हो सकते हैं, फलतः उन्होंने इनका दिङ्मात्र ही निदर्शन किया है।[4]

जहाँ तक उपर्युक्त आचार्यों द्वारा विवेचित चित्रकाव्य के क्षेत्र-विस्तार का प्रश्न है, वह बहुत विस्तृत है। इस सम्बन्ध में भोजराज तथा हेमचन्द्र के विवेचन को आधार बनाया जा सकता है। स्वरचित्र के अन्तर्गत किसी भी छन्द में एक से लेकर चार स्वरों तक की योजना को स्थान मिला है, एक भेद सर्वस्वरयुक्त छन्द को भी माना जा सकता है। व्यंजन-चित्र के अन्तर्गत केवल एक से लेकर चार व्यंजनों तथा सर्वव्यंजनों से युक्त छन्द ही परिगणित होते हैं। भोज ने संगीत में प्रयुक्त सप्तस्वरोंवाले सप्तवर्णों के योग से भी

१. द्रष्टव्य—पादटिप्पणी-संख्या ९, पृ० २९

२. "कवीन्द्रकर्णाभरण' : आचार्य विश्वेश्वर की रचना है, जिसमें चित्र-रचनाओं की प्रचुरता है। इसका प्रकाशन काव्यमाला के अष्टम गुच्छक में हुआ था।

३. द्रष्टव्य—पादटिप्पणी-संख्या ७, पृ० ३८ तथा ३, पृ० ३९

४. दण्डी, रुद्रट, भोज, मम्मट, विश्वनाथ आदि लगभग सभी प्रमुख आचार्यों ने (हेमचन्द्र को छोड़कर)।

छन्द बनाकर व्यंजन-चित्र के एक भेद के रूप में रखा है।[1] इस आधार पर हिन्दी में भी रचना हुई है। स्थानचित्र में भी इसी प्रकार एकस्थानीय, द्विस्थानीय........सर्वस्थानीय व्यंजनों से निर्मित छन्द आते हैं। गतिचित्र के भेदों की कोई निश्चित सीमा नहीं दी जा सकती, कारण इसके अन्तर्गत ऐसे छन्द आते हैं, जिनके वर्णविन्यास में गत्यात्मकता होती है तथा अनेक भंगिमाओं से पढ़ने पर भी वे छन्द पूर्ण हो जाते हैं। ऐसे छन्दों में प्रमुखतः सर्वतोभद्र, अर्धभ्रम, गोमूत्रिका, धेनु, रथपद, तुरगपद, गजपद आदि का आकलन होता है, तथा इसी प्रकार की विचित्रताओं से युक्त अन्य अनेक उपभेदों की कल्पना की जा सकती है। अनुलोम-प्रतिलोम को भी गतिचित्र के अन्दर रखा जाता है, हलाँकि दण्डी ने इसे यमक में स्थान दिया था। आकारचित्र अथवा बन्धचित्र की सीमा-रेखा को तो निश्चित किया ही नहीं जा सकता। विश्व में जितनी भी वस्तुएँ हैं, उन सभी के आकार के रूप में वर्ण-विन्यास को इसके अन्तर्गत देखा जा सकता है।[2] यों इस वर्ण-विन्यास की कतिपय पद्धतियाँ आचार्यों तथा कवियों ने निश्चित कर दी हैं, किन्तु इस क्षेत्र में भी कोई बन्धन नहीं है और विभिन्न कवि अपने इच्छानुसार वर्ण-विन्यास करते हैं। इसका विस्तृत विवेचन आगे किया जायगा।[3] प्रश्नोत्तर तथा प्रहेलिका की संख्या भी निश्चित नहीं की जा सकती। प्रहेलिका को तो आचार्यों ने चित्र के अन्तर्गत रखना भी नहीं चाहा है तथा विश्वनाथ कविराज तक आते-आते इसे स्वतन्त्र शब्दालंकारत्व भी प्राप्त हो गया था, जिसका खण्डन उन्होंने किया है।[4] अतः इसका विवेचन चित्रकाव्य के अन्तर्गत हमारे लिए अपेक्षित नहीं है। प्रश्नोत्तर के प्रायः सभी सम्भव भेदों का विवेचन 'विदग्धमुखमण्डन' में हुआ है,[5] फिर भी इसको निश्चित सीमा-रेखा में आबद्ध नहीं किया जा सकता। च्युत तथा दत्त के प्रायः चार-चार भेद निश्चित हैं—वर्ण, मात्रा, बिन्दु तथा विसर्ग। इनके अतिरिक्त कहीं-कहीं अर्द्धमात्रा की भी कल्पना की गई है। गूढ के कुछ अधिक भेदों की कल्पना की गई है जैसे सभी कारक गूढ, सम्बन्ध गूढ, क्रिया गूढ, पद-पादगुप्त आदि। इस प्रकार यह स्पष्ट हैं कि चित्रकाव्य के क्षेत्र को किसी सुनिश्चित सीमा में आबद्ध करना सम्भव नहीं, फिर भी अध्ययन तथा विवेचन की सुविधा के लिए आचार्यों ने इसके उपर्युक्त भेद निर्धारित किये हैं।

हिन्दी के आचार्यों के मत

संस्कृत-आचार्यों के द्वारा दिये गये चित्र के लक्षणों और उनके विवेचन में हमने देखा है कि चित्रकाव्य का कोई एक लक्षण नहीं है। अधिकांश आचार्यों ने लक्षण के अन्तर्गत चित्र-रचना के विभिन्न प्रकारों का नामोल्लेख ही किया है। चित्रकाव्य का क्षेत्र भी इतना

१. सरस्वतीकण्ठाभरण, परि० २, श्लोक २६४, पृ० २२९ (काव्यमाला)
२. द्रष्टव्य—पादटिप्पणी-संख्या ४, पृ० ३४
३. द्रष्टव्य—तृतीय अध्याय में बन्धचित्रों का विवेचन।
४. द्रष्टव्य—साहित्यदर्पण, परि० १०, प्रहेलिका का विवेचन।
५. द्रष्टव्य—पादटिप्पणी-संख्या ४, पृ० ३९

अधिक विस्तृत है कि उसकी सीमा निश्चित नहीं की जा सकती। इस क्षेत्र में कवियों को पूर्ण स्वतन्त्रता है कि वे चाहे जिस प्रकार के चित्र की रचना करें। हिन्दी के कवियों ने इस स्वतन्त्रता का उपयोग खूब किया है। यों भी हिन्दी भाषा के विश्लेषणात्मक होने के कारण इन रचनाओं का ठीक-ठीक अनुकरण कठिन था। साथ ही युग-परिवर्त्तन के साथ सामाजिक महत्त्व की वस्तुओं में भी परिवर्त्तन स्वाभाविक था। रुद्रट ने जिन आकारों का उल्लेख किया है, वे वस्तुएँ अधिकांशत: युद्ध के अस्त्र-शस्त्र हैं या फिर पद्म आदि जैसी वस्तु। किन्तु हिन्दी में दिन-प्रति-दिन काम आनेवाली वस्तुओं के बन्ध अधिक दीख पड़ते हैं।

हिन्दी के आचार्यों ने भी चित्रकाव्य का पर्याप्त विवेचन किया है। यह बात और है कि उनके विवेचन में संस्कृत का अनुकरण अधिक तथा विवेचन और वर्गीकरण की वैज्ञानिकता कम है। केशवदास हिन्दी के प्रथम आचार्य हैं, जिन्होंने काव्यशास्त्र का सर्वांगीण विवेचन किया है। कविप्रिया के सम्पूर्ण १६वें प्रभाव में केवल चित्रकाव्य का ही विवेचन है। हिन्दी के रीतिकालीन आचार्यों की यह विशेषता है कि लक्षण भले ही उन्होंने किसी अन्य से लिये हों, पर उदाहरण की रचना स्वयं की है। यों केशवदास ने कविप्रिया में अधिकतर दण्डी का आधार ग्रहण किया है, पर चित्रकाव्य-प्रकरण में उन्होंने किसी एक आचार्य को आधार नहीं बनाया है। इसके अतिरिक्त उनकी अपनी कल्पना भी दीख पड़ती है। हिन्दी की प्रकृति का उन्होंने सदा ही ध्यान रखा है और उसी के अनुकूल विवेचन किया है।

संस्कृत के आचार्यों के चित्र-विवेचन की दृष्टि से, स्पष्टतः तीन वर्ग हैं, जिनका विवेचन हो चुका है। केशवदास ने अपने को इन वर्गों में से किसी एक में न रखकर सभी से थोड़ा-बहुत लिया है तथा कुछ अपनी ओर से भी मिलाया है। किन्तु इस सम्मिश्रण से केशव के विवेचन में क्रम तथा वैज्ञानिकता का अभाव हो गया और सारी रचनाएँ बिखरी-बिखरी-सी दीख पड़ती हैं। सम्भवतः यही कारण है कि चित्रकाव्य का कोई लक्षण देना केशव के लिए सम्भव न हो सका। लक्षण के स्थान पर प्रस्तुत विवेचन के प्रारम्भ में केशव ने केवल इतना ही लिखा है :

"केशव चित्र समुद्र में बूड़त परम विचित्र।
ताके बूंदक के कणे बरनत हौं सुनिमित्र ॥१॥"[१]

प्रस्तुत दोहा से चित्रकाव्य के क्षेत्र-विस्तार के सम्बन्ध में केशव के विचार से हम अवगत होते हैं। इसके उपरान्त उन्होंने चित्र-रचनाओं में कवि को मिली स्वतन्त्रता का उल्लेख किया है :

"अध ऊरध बिनु बिन्दुयुत, जति, रसहीन, अपार।
बधिर, अन्ध, गन अगन के गनिय न नगन विचार ॥

१. कविप्रिया, प्रभाव १६, छन्द-संख्या १

केशव चित्र समुद्र में इनके दोष न देख।
अक्षर मोटे पातरे ब व ज य एकै लेख ॥"[१]

इस प्रकार अनुस्वार, विसर्ग, यति, रसहीनता, बधिर, अन्ध, गणागण प्रभृति दोष आदि की गणना चित्रकाव्य में नहीं होती। साथ ही ह्रस्व-दीर्घ, ब-व, ज-य आदि वर्णों को एक ही समझा जा सकता है और उनमें परस्पर परिवर्त्तन भी सम्भव है।

चित्र-रचना में स्वीकृत इन छूटों का आधार केशव ने वाग्भट[२], विद्याधर[3] प्रभृति आचार्यों से ग्रहण किया है, पर हिन्दी की प्रकृति को ध्यान में रखकर इनमें बधिरादिक दोष, गणागण, यति, ह्रस्व-दीर्घ आदि को केशव ने स्वयं स्थान दिया है। किन्तु केशव ने कवियों को सतर्क किया है कि इन अधिकारों को पाकर भी वे यथासाध्य अपनी रचनाओं को निर्दोष बनायें, इनका दुरुपयोग न करें :

"अति रति गति मति एक करि बहु विवेक युत चित्त।
ज्यों न होय क्रमभंग त्यों वरणौ चित्र कवित्त ॥"[४]

केशव ने अपने चित्र-विवेचन में किसी प्रकार का निश्चित वर्गीकरण नहीं किया है और भेदों-उपभेदों की कोई निश्चित संख्या भी नहीं रखी है। जैसाकि उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है कि चित्र-समुद्र की एक बूंद के एक कण का ही वर्णन वे करते हैं, अतः प्राचीनाचार्यों द्वारा कथित चित्र के भेदों-उपभेदों में कुछ का ही वर्णन उन्होंने किया है और इस कुछ के लेने का कोई आधार भी नहीं दीखता, केशव की इच्छा ही सब कुछ है। यों केशव ने स्थानचित्र, स्वरचित्र, व्यंजनचित्र, गतिचित्र और बन्धचित्र के अतिरिक्त प्रश्नोत्तर के भी भेदोपभेदों को अपने विवेचन के अन्तर्गत रखा है, पर उपर्युक्त चित्र-रचनाओं में कुछ को लेने तथा अन्य को छोड़ने का कोई निश्चित कारण तथा आधार नहीं दीखता।

च्युत तथा दत्त का विवेचन तो संस्कृत के आचार्यों ने ही नहीं के बराबर किया, तथा आगे चलकर हिन्दी में भी इस प्रकार की रचनाएँ प्रायः नहीं के बराबर ही हुईं। केशव ने भी इनका उल्लेख नहीं किया है। प्रहेलिका को स्वतन्त्र अलंकारत्व प्राप्त हो जाने के कारण वह भी कविप्रिया में विवेचित चित्र-प्रकरण में स्थान न पा सकी। गूढ अथवा गुप्त के केवल एक भेद चरणगुप्त (पादगूढ) को ही हिन्दी में स्थान मिल सका और केशव ने भी उसका उल्लेख किया है,[५] पर इसका आकलन भी गतिचित्र के अन्तर्गत ही हो जाता है।

स्थानचित्र में केशव ने केवल निरोष्ठ का ही विवेचन किया है, किन्तु उदाहरण का छन्द सदोष है। केशव ने उ, ऊ तथा पवर्ग के वर्णों से छन्द को मुक्त रखने का ध्यान तो रखा

१. उपरिवत्, छं० सं० २-३
२. द्रष्टव्य—पादटिप्पणी-संख्या ५, पृ० ३२
३. द्रष्टव्य—पादटिप्पणी-संख्या ३, पृ० ३५
४. कविप्रिया, प्रभाव १६, छन्द-संख्या ४
५. कविप्रिया, प्रभाव १६, छन्द-सं० ७१, पृ० ४३४ (भगवानदीन, प्रथम संस्करण)

है पर 'उ' की मात्रा, 'ओ' की मात्रा तथा 'व' का प्रयोग किया है फ़लतः लक्षण की दृष्टि से छन्द सदोष हो गया है। 'उ' की मात्रा तो स्पष्टतः ओष्ठ्य है ही, 'ओ' और 'व' के उच्चारण में भी ओष्ठ का सहारा लिया जाता है। केशव का ध्यान सम्भवतः इस ओर नहीं गया। संस्कृत के आचार्यों ने अपने उदाहरणों में इन सभी वर्णों का ध्यान रखा है, पर इस क्षेत्र में केशव ने स्वतन्त्रता ली है। केशव की योग्यता पर तो सन्देह किया ही नहीं जा सकता, फिर इन वर्णों का प्रयोग या तो उन्होंने जानबूझकर किया होगा अथवा असावधानीवश। उपर्युक्त वर्णों के प्रयोग का आधिक्य ही सूचित करता है कि ऐसा असावधानी के कारण नहीं हुआ।

छन्द निम्न है—

"**लो**क लीक नीकी, लाज लीलत हैं नंदलाल,
लोचन ललित **लो**ल लीला के निकेत हैं।
सौंहन **को सो**च न स**को**च **लो**का**लो**कनि को,
देत **सु**ख, ता**को** सखी **दू**नों **दु**ख देत हैं।
के**शो**दास कान्हर कनेर ही के केरक से,
वाह्य रंग राते अंग, अंतस **में** सेत हैं।
देखि देखि हरि की हरनता हरिन नैनी,
देखत ही दे**खो** नहीं हि**यो** हरि लेत हैं॥"[1]

प्रस्तुत छन्द का एक अन्य पाठ भी है, पर उसमें अन्तर इतना ही है कि—

"वाह्य रंग राते अंग, अंतस में सेत हैं"

के स्थान पर

"अंग रंग राते रंग अंग अति सेत हैं"[2]

है। एक तीसरे पाठ में—

"अंग अति सेत हैं"

के स्थान पर—

"अंत अति सेत हैं"[3]

है। प्रस्तुत पाठ से 'व' वर्ण का लोप तो हो जाता है पर मात्राएँ जैसी की तैसी रहती हैं। केशव ने प्रस्तुत निरोष्ठ रचना में केवल 'पवर्ग' के वर्णों पर ही ध्यान दिया है, मात्राओं को उन्होंने नहीं लिया। निरोष्ठ का उनका लक्षण भी बहुत कुछ इसी ओर संकेत करता है—

१. कविप्रिया, छन्द संख्या ६, पृ० ३९०
२. उपरिवत्, प्रभाव १६, छन्द सं० ६, पृ० ३०४ (सरदार कवि)
३. केशव ग्रन्थावली, खण्ड १, पृ० २१९, कविप्रिया, प्रभाव १६, छन्द ६ (विश्वनाथ प्र० मिश्र)

"पढ़त न लागै अधर सों अधर बरण त्यों मंडि ।
और बरण वरणौ सबै उप वर्गहि सब छंडि ।।"[१]

प्रस्तुत दोहे के एकाधिक पाठ हैं—

"पढ़त न लागै अधर सों अधर बरण त्यों मंड ।
और वर्ण बरनो सबै इक पवर्ग को छंड ।।"[२]

अन्य—

"पढ़त न लागै अधर सों अधर बरन त्यों मंडि ।
बरनहुँ एक व बरन जहँ एक प वर्गहिं छंडि ।।"[३]

उपर्युक्त दोहों में दिये गये निरोष्ठ के लक्षण का तात्पर्य भी यही है कि केशव ने केवल पवर्ग के वर्णों से ही निरोष्ठ रचना को मुक्त किया है। प्रथम दोहे में तो 'उ' का अलग से भी उल्लेख है पर अन्य दोहों में केवल 'पवर्ग' ही है। मात्राओं की ओर कोई संकेत नहीं दीखता। इसका कारण यह है कि इन छन्दों की रचना में केशव ने आचार्यों का आधार न लेकर संस्कृत कवियों का आधार लिया है। संस्कृत में भी माघादि कवियों ने स्थानचित्र के श्लोकों में मात्राओं का कोई बन्धन स्वीकार नहीं किया है। स्थानचित्र के अन्तर्गत केशव ने अन्य किसी भी भेद की चर्चा नहीं की है।

इसी प्रकार कविप्रिया में 'स्वरचित्र' के भेदों में केवल अमात्रिक की ही रचना की गई है। निरोष्ठ अथवा अमात्रिक को स्थानचित्र अथवा स्वरचित्र की संज्ञा केशव ने कहीं नहीं दी है। किसी प्रकार का वर्गीकरण तो उन्होंने किया ही नहीं। अमात्रिक का उनका लक्षण है—

"एकै स्वर जहँ बरनिये अद्भुत रूप "अ" वर्ण।
कहिये मात्रारहित सो मित्र चित्र आभर्ण ।।"[४]

अमात्रिक छन्द बिलकुल निर्दोष है।

नियमाक्षर नाम से केशव ने एक नवीन प्रकार की रचना का विवेचन किया है। 'नियम' शब्द का प्रयोग संस्कृत आचार्यों के द्वारा स्वर, व्यंजन तथा स्थानचित्रों के साथ हुआ है, जैसे स्वरनियम, व्यंजननियम अथवा स्थाननियम।[५] इस नाम से चित्रकाव्य की कोई कोटि अथवा वर्ग नहीं है। कविप्रिया में भी इस शब्द का प्रयोग सम्भवतः सम्पादक (लाला भगवान दीन) के द्वारा हुआ है कारण अन्य सम्पादकों के द्वारा सम्पादित

१. कविप्रिया, प्रभाव १६, छन्द सं० ५ (भगवान दीन)
२. कविप्रिया, प्रभाब १६, छन्द सं० ५ (सरदार कवि)
३. कविप्रिया, प्रभाव १६, छन्द सं० ५ पृ० २१८ (वि० प्र० मि०)
४. कविप्रिया, प्रभाव १६, छं० सं० ७ (भ)
५. भोज, हेमचन्द्र आदि के द्वारा

संस्करणों में इस शब्द का उल्लेख नहीं मिलता। स्वयं लाला भगवान दीन ने भी इस शब्द को कोष्ठक में ही रखा है पर उन्होंने तो प्रत्येक शीर्षक-उपशीर्षक को कोष्ठक में ही रखा है। इस वर्ग की रचनाओं की नवीनता यह है कि इनमें प्रयुक्त प्रत्येक शब्द की वर्ण-संख्या समान होगी। सम्पूर्ण छन्द में या तो केवल एक ही वर्ण वाले शब्दों का प्रयोग होगा या दो वर्ण वाले या तीन या चार। चार वर्णों से बने शब्दों तक के प्रयोग का ही विवेचन केशव ने किया है। इस 'नियमाक्षर' का निम्न लक्षण केशव ने दिया है—

"एक आदि दै वरण बहु बरणै शब्द बनाय।
अपने अपने बुद्धिबल समझें सब कबिराय॥"[1]

उदाहरणस्वरूप केशव ने केवल 'चार-वर्णों' से बने शब्दों तक का ही प्रयोग किया है। किन्तु उपर्युक्त लक्षण के अनुसार ऐसे भी छन्दों को इस वर्ग में आकलित किया जाता है जिनमें अधिक वर्णों से बने शब्द हों, शर्त केवल यही है कि छन्द में प्रयुक्त सभी शब्दों की वर्णसंख्या समान हो। इस प्रकार की रचना के एकाध उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

एकाक्षर शब्द रचना—

"गो, गो, गं, गो, गी, अ, आ, श्री, धी, ह्री, भी, भा, न।
भू, ख, बि, स्व, ज्ञा, द्यौ, हि, हा, नौ, ना, सं, भं, मा, न, ॥"[2]

अथवा त्र्यक्षर शब्द रचना—

"श्रीधर, भूधर, केशिहा, केशव, जगत, प्रमाण।
माधव, राधव, कंसहा, पूरण, पुरुष, पुराण॥"[3]

इसी प्रकार अन्य छन्द भी हैं। संस्कृत में कहीं भी इस प्रकार की रचनाओं का उल्लेख नहीं मिलता। इस प्रकार की रचना संस्कृत में सम्भव भी नहीं है। संश्लेषणात्मक भाषा होने तथा अतिशय सन्धि और समास के प्रयोग के कारण शब्दों को तोड़कर अलग-अलग रखने की सुविधा संस्कृत में नहीं है, जबकि विश्लेषणात्मक प्रवृत्ति के कारण हिन्दी में सारे शब्द अलग-अलग लिखे जाते हैं। यहाँ हमें केशव के आचार्यत्व का परिचय मिलता है जिन्होंने हिन्दी की प्रवृत्ति को पहचान कर उसके अनुकूल इस प्रकार की चित्ररचनाओं की व्यवस्था दी है, आँख मूदकर संस्कृत का अनुकरण नहीं किया।

संस्कृत के वर्णचित्र अथवा व्यंजनचित्र के अन्तर्गत विवेचित एकाक्षर, द्वयक्षरादि का विवेचन केशव ने बड़े विस्तार से किया है। जहाँ दण्डी ने इसके केवल चार उपभेद—एकाक्षर, द्वयक्षर, त्र्यक्षर तथा चतुरक्षर ही माने थे वहाँ केशव ने २६ वर्णों तक के छन्दों के उदाहरण दिये हैं।[4] चमत्कार अथवा चित्रता वस्तुतः तीन-चार अक्षरों तक के प्रयोग

१. कविप्रिया, प्र० १६, छं० सं० ९
२. उपरिवत्, छं० सं०-१०
३. उपरिवत्, छं० सं० १२
४. उपरिवत्, छं० सं० १५ से ४२ तक

में ही है। अधिक अक्षरों को लेकर तो किसी भी छन्द की रचना बड़ी आसानी से की जा सकती है। इसीलिये आगे चलकर भिखारीदास ने केवल ७ अक्षरों वाले छन्दों तक के ही उदाहरण दिये हैं यद्यपि केशव के ही अनुकरण पर उन्होंने भी स्वीकार किया है कि २६ वर्णों तक का प्रयोग इन रचनाओं में होता है।[१] इसी वर्ग में संस्कृत के अनुकरण पर केशव ने अर्धांश एकाक्षरी (एकाक्षरार्ध) तथा चतुरांश एकाक्षरी (एकाक्षरपाद) के भी उदाहरण दिये हैं।[२]

इस वर्णचित्र के उपरान्त केशव ने प्रश्नोत्तर के विभिन्न भेदों का विवेचन किया है। संस्कृत के प्रमुख आचार्यों ने प्रश्नोत्तर को चित्र में गौण स्थान देकर उनका विवेचन नहीं किया था।[३] केवल धर्मदास आदि[४] ने ही अपनी कविशिक्षा की पुस्तकों में विद्वानों और कवियों को सभाचतुर बनाने के उद्देश्य से प्रश्नोत्तर का विस्तृत विवेचन किया। रीतिकालीन कवि और आचार्य अधिकांश दरबारी थे अतः दरबारी प्रवृत्ति के अनुसार प्रश्नोत्तर की महत्ता बढ़ी और हिन्दी के कवियों ने चित्रविवेचन में इन्हें भी स्थान दिया। प्रश्नोत्तर के निम्न भेदों का विवेचन केशव ने किया है—

१. बहिर्लापिका, २. अंतर्लापिका, ३. गूढ़ोत्तर, ४. एकानेकोत्तर, ५. व्यस्त-समस्तश्रृंखलोत्तर, ६. गतागत व्यस्त उत्तर, ७. गतागत व्यस्तसमस्तोत्तर, ८. विपरीत व्यस्त समस्त प्रश्नोत्तर, ९. शासनोत्तर, तथा १०. प्रश्नोत्तर।[५]

शासनोत्तर के अतिरिक्त यद्यपि इन सारे भेदों का विवेचन संस्कृत में हुआ है, किन्तु केशवदास ने इन्हें उसी रूप में स्वीकार नहीं किया है। उपर्युक्त सूची में प्रश्नोत्तर के भेदों के जो नाम आए हैं, उनमें कुछ तो संस्कृत में उसी रूप में हैं तथा कुछ दूसरे नाम से विवेचित हैं। इन भेदों में कतिपय के रचना-क्रम में भी परिवर्तन किया गया है। चतुर्थ अध्याय में प्रश्नोत्तर के अन्तर्गत इनका विस्तार से विवेचन हुआ है। इस क्षेत्र में केशवदास ने प्रमुखतः विदग्धमुखमण्डन का आधार ग्रहण किया है। बहिर्लापिका और अन्तर्लापिका का उल्लेख विदग्धमुखमण्डन, कवि-कल्पलता अथवा अलंकार चिंतामणि में[६] नहीं है, परन्तु संस्कृत में इनकी रचना भी प्रचुर परिमाण में हुई है।[७] वहीं से केशवदास ने इन्हें लिया है।

प्रश्नोत्तर के उपरान्त केशव ने गतिचित्र के विभिन्न भेदों का विवेचन किया है। गतिचित्र के भेदों में कविप्रिया में—१. भिन्न छन्द अनुलोम-प्रतिलोम, २. एक छन्द अनुलोम-

१. काव्यनिर्णय, छं० सं० ४८ से ५५ (भिखारी दास ग्रन्थावली, खण्ड-२, वि० प्र० मिश्र), परि-२१

२. कविप्रिया, प्रभाव-१६, छन्द सं० ४१ तथा ४२

३. द्रष्टव्य, पृ० ३०, पा० टि०-२, पृ० ३७, पा० टि०-२, पृ० ४०, पा० टि०-२।

४. विदग्ध-मुखमण्डन, देवेश्वर रचित कवि कल्पलता, विश्वेश्वर रचित कवीन्द्रकर्णाभरण, अजित सेन रचित अलंकारचिन्तामणि में प्रश्नोत्तरादि का विवेचन विस्तार से हुआ है।

५. कविप्रिया, प्रभाव-१६, छन्द संख्या ४३ से ६५ तक

६. लेखक धर्मदास, देवेश्वर तथा अजित सेन।

७. द्रष्टव्य, सुभाषित-रत्न-भाण्डागार, चित्र प्रकरण

प्रतिलोम, ३. गोमूत्रिका, ४. कपाटबद्ध, ५. अश्वगति, ६. चरण गुप्त, ७. गतागत चतुर्पदी, ८. त्रिपदी, ९. द्वितीय चरणगुप्त तथा १०. सर्वतोभद्र (दो प्रकार के) का विवेचन हुआ है।[१] गोमूत्रिका और कपाटबद्ध को बन्धों के अन्तर्गत भी रखा जा सकता है जैसा कि अन्य कतिपय आचार्यों ने माना भी है। केशव ने वर्गीकरण की चेष्टा ही नहीं की अतः उनके विचार के सम्बन्ध में कुछ कहना कठिन है। फिर भी इनका स्थान उन्होंने गतिचित्रों के बीच ही रखा है।

इन गतिचित्रों के उपरान्त केशव ने अन्य छह चित्रबन्धों की रचना भी की है। वे हैं—चक्रबन्ध, कमलबन्ध, धनुषबन्ध, पर्वतबन्ध, हारबन्ध, तथा डमरूबन्ध।[२] इनमें सर्वतोमुख और मंत्रीगति तो निश्चितरूपेण गतिचित्र हैं, अन्य आकारचित्र हैं। इन छन्दों से ही अन्य बन्धों का न्यास भी किया जा सकता है, जैसे—कमल और हार बन्ध से परस्पर हार और कमल बन्ध, पर्वतबन्ध से छत्रबन्ध, डमरूबन्ध से चौकीबन्ध के चित्र बनाये जा सकते हैं।

केशव ने चित्र रचना के सम्बन्ध में अपना उद्देश्य भी स्पष्ट कर दिया है। चित्र की संख्या तो अनन्त है, उन्होंने केवल राह भर दिखाई है। आचार्यों का कर्त्तव्य भी तो यही होता है। इस सम्बन्ध में केशव का कथन है—

"यहि विधि केशव जानिये चित्र कवित्त अपार।
वरणन पंथ बताय मैं दीन्हों बुधि अनुसार॥"[3]

चित्रकाव्य-विवेचन में केशव ने सदा ही हिन्दी का ध्यान रखा है। उन्होंने उन्हीं भेदों और चित्रों को अपने विवेचन में स्थान दिया है, जो हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल हैं तथा जिनकी रचना हिन्दी में हुई है। संस्कृत के प्रति मोह रखकर तथा संस्कृत के अधीत व्यक्ति होकर भी केशव ने संस्कृत के पिष्टपेषण के प्रति ममता नहीं दिखाई। इस क्षेत्र में यह केशवदास के महत्त्व का सूचक है। साथ ही केशव ने हिन्दी में प्रचलित चित्रकाव्य के उन भेदों का भी विवेचन किया, संस्कृत में गौण या क्रीड़ामात्र कहकर जिनकी उपेक्षा की गई।[४] **चिन्तामणि** ने कविकुल-कल्पतरु में चित्र का निम्न लक्षण दिया है—

"खड्ग आदि दै कर वरत्त्व कामधेनु दै आदि।
चित्रालंकृत बहुविधि वरनत सुकवि अनादि॥"[५]

प्रस्तुत लक्षण में भी चित्रबन्धों के नामों का उल्लेख ही है। चिन्तामणि ने अपने विवेचन का आधार मम्मट को बनाया है, फलतः वे चित्र को अधिक महत्त्व नहीं देते। उनके विचार में भी चित्र "अधम" है अतः इसके बहुत अधिक विवेचन की आवश्यकता नहीं—

१. क० प्रि०, प्रभाव-१६, छन्द संख्या ६६ से ७७ तक
२. उपरिवत्, छन्द संख्या ७८ से ८४ तक
३. उपरिवत्, छन्द संख्या ८६
४. द्रष्टव्य, पृ० ३०, षा० टि०-२, पृ० ३७, पा० टि०-२
५. द्वितीय प्रकरण, छन्द संख्या २९

"सब्द चित्र इत ए सबै अधम कवित पहिचानि।
जेते हैं ध्वनिहीन तें अर्थ चित्र सो मानि॥"[1]

यद्यपि यह दोहा शब्दालंकार प्रकरण के उपसंहार स्वरूप है पर चिन्तामणि का तात्पर्य यहाँ अलंकारमात्र से है और मम्मट के अनुकरण पर ही उन्होंने ऐसा लिखा है।

चित्र के चिन्तामणि ने केवल तीन छन्दों की रचना की, जिनमें एक आकारचित्र को उदाहृत करता है और दो गतिचित्र को। आकारचित्र के इस छन्द से १. खड्ग, २. कपाट, ३. कमल, ४. अश्वगति तथा ५. गोमूत्रिका—पाँच बन्धों का निर्माण हो सकता है। अत: चिन्तामणि ने एक ही छन्द के द्वारा ५ बन्धों के उदाहरण दिये हैं। छन्द है—

"जोर घोर पर पीर हर सर वरधरधर धीर।
मेर तूर पर ढेर कर सर कर धर नरधीर॥"[2]

इसके लिए चिन्तामणि ने स्वयं लिखा है—

"खड्ग बन्ध कपाट बन्ध कमल बन्ध अस्वगति गोमूत्रिका बन्ध इतने बन्ध या दोहा में देखिये।"

गतिचित्र के दोनों छन्दों में चिन्तामणि ने क्रमश: कामधेनु तथा सर्वतोभद्र के उदाहरण दिये हैं, किन्तु दोनों ही छन्द कामधेनु के ही बन गये हैं। संस्कृत में सर्वतोभद्र की जो न्यासविधि थी उसमें गतागत वर्णविन्यास की व्यवस्था थी किन्तु चिन्तामणि के द्वारा उल्लिखित छन्द में गतागत वर्णविन्यास के लिए स्थान ही नहीं है।[3] सर्वतोभद्र से उनका तात्पर्य इसीसे हो सकता है कि छन्द में जहाँ से भी चाहे प्रारम्भ करने से छन्द पूर्ण हो जाता है। किन्तु कामधेनु में भी तो यही होता है। यों कामधेनु का लक्षण चिन्तामणि के अनुसार निम्न है—

"एक छन्द में छन्द बहु कामधेनु है सोइ॥
बहु छन्दन भाखों बहुत यहौ कहत कवि कोइ॥"[4]

इस प्रकार एक छन्द में ही अनेक छन्दों की योजना में कामधेनु चित्र होता है। इस दृष्टि से कामधेनु और सर्वतोभद्र में थोड़ा अन्तर है किन्तु व्यवहार में हिन्दी के अनेक कवियों ने दोनों को एक ही बना दिया है। अपने कामधेनु के उदाहरण में चिन्तामणि ने यह उल्लेख नहीं किया है कि इस छन्द से कितने अथवा कौन-कौन अन्य छन्द निकलते हैं। अधिकांश आलंकारिकों ने हिन्दी में केवल छन्द देकर छोड़ दिया है, कुछ ने उसे केवल टुकड़ों में बाँट दिया है, अत: सिद्धान्त में चाहे कामधेनु और सर्वतोभद्र में जो अन्तर हो, व्यवहार में कोई अन्तर नहीं रह जाता।

१. कवि कुल कल्पतरु, प्रकरण-२ छन्द संख्या ३६
२. उपरिवत्, छन्द संख्या ३०
३. उपरिवत्, छन्द संख्या ३३
४. उपरिवत्, छन्द संख्या ३१

भूषण ने भी शब्दालंकार के क्रम में चित्र का लक्षण-उदाहरण दिया है, किन्तु बहुत ही संक्षेप में। केशवदास की तरह भूषण चित्र का विस्तृत विवेचन नहीं करते, पर उनका लक्षण बहुत ही सटीक है—

"लिखे सुने अचरज बढ़े रचना होय विचित्र।
कामधेनु आदिक घने भूषण बरनत चित्र॥"[1]

अन्य आचार्यों की तरह भूषण ने चित्रकाव्य के केवल कतिपय भेदों का नामोल्लेख कर ही लक्षण नहीं दिया, न इसकी अनन्तता बताकर इसके विवेचन की ओर बढ़ गये हैं, वरन् चित्र की रचना-प्रकृति को पहचान कर इसका लक्षण किया है। यह रचना विचित्र होती है जिसके लिखने-सुनने से आश्चर्य बढ़ता है। वस्तुतः चित्र का प्रमुख उद्देश्य मनोरंजन ही रहा है और कवियों की मनोरंजनात्मक वृत्ति तथा शक्ति-प्रदर्शन के मोह के कारण ही इन विचित्र रचनाओं का आविर्भाव हुआ। दोहे के पूर्वार्ध में ही भूषण ने दोनों बातों को समाविष्ट कर दिया है। इस प्रकार हम पाते हैं कि लक्षण की दृष्टि से भूषण का यह चित्र-लक्षण पूर्ण है। उदाहरण-स्वरूप भूषण ने केवल एक ही छन्द कामधेनु की रचना की है। बन्धों या अन्य प्रकार के चित्रों की रचना हम भूषण में नहीं पाते। कामधेनु का यह छन्द भी सामान्य कोटि का ही है, इसमें से कुल २८ छन्द निःसृत हो सकते हैं। सरस्वती कण्ठाभरण में शतधेनु, लक्षधेनु, कोटिधेनु के उदाहरण भी हैं, कामधेनु की तो बात ही दूसरी है।

कुलपति मिश्र के 'रसरहस्य' में भी शब्दालंकार के अन्तर्गत चित्र का विवेचन है। रसरहस्य में चित्र का लक्षण निम्न दोहे में दिया गया है—

"लिखिवे ही की चतुरई, उपजै भेद अनेक।
जहाँ सुचित्र कवित्त है, बहुविध बन्धु विवेक॥"[2]

'लिखने की चतुरता से ही अनेक भेद बनते हैं', यह कहकर चित्र के क्षेत्र-विस्तार की ओर कवि ने इंगित किया है। यह कवि की शक्ति के ऊपर है। चित्र में लेखन-चातुरी ही अधिक है, काव्य कम। लक्षण के उपरान्त उदाहरण के लिये कुलपति मिश्र ने छः छन्दों की रचना की है। प्रथम तीन छन्दों में दो प्रकार के खड्गबन्ध की योजना है[3] और अन्य छन्दों में क्रमशः 'गोमूचका', 'शातधेनु', तथा 'रंग वरन चित्र' की योजना की गई है।[4] 'गोमूचका', गोमूत्रिका को कहा गया है। कुलपति मिश्र ने कामधेनु की

---

१. कवि कुल कल्पतरु, छन्द ३८ से ४१ तक
२. भूषण ग्रन्थावली, (ना० प्र० स०—संपादक—मिश्रबंधु)
शिवराज भूषण—पृ० १०७, छन्द सं० ३६७
३. रसरहस्य, पृ० ७६, छन्द—३४
४. उपरिवत्, पृ० ७७, छन्द संख्या ३५, ६६ तथा ३७

रचना न कर 'शातधेनु' (शतधेनु) की रचना की है।[१] किन्तु उनका यह छन्द वास्तविक अर्थ में धेनु की रचना है। साथ ही इस छन्द का नाम भी पूर्णतः सार्थक है। इस छन्द से कुल १२७ छन्द निःसृत होते हैं जिनमें २७ तो निरर्थक हैं किन्तु १०० छन्द सार्थक हैं, फलतः 'शतधेनु' यह नाम पूर्ण सार्थक है।

धेनु के उपरान्त रसरहस्य में 'रंगवरनचित्र' के नाम में दो दोहे हैं। इस नाम की कोई रचना संस्कृत में दीख नहीं पड़ती। हिन्दी में भी इस प्रकार की रचना और कहीं नहीं मिलती। इन दोहों में किसी विशेष प्रकार की 'चित्रता' भी दीख नहीं पड़ती। केवल 'लाल' और 'श्याम' इन दोनों रंगों के नाम आये हैं और उनका अर्थ कृष्ण से है। यहाँ यदि कोई चमत्कार है भी तो 'यमक' और 'श्लेष' का ही है, चित्रकाव्य के क्षेत्र में ये दोहे नहीं आ पाते। दोहे निम्न हैं—

"लाल लगे लालच हर्‌यो, हियरा लेरी डीठि।
श्याम प्रान श्यामा चलो, अब लगि राखे नीठि॥
भई लाल लखि लाल की, लालचि रातीवात।
दुहिरी तिहरी चौहिरी, कही श्याम मुसिक्यात॥"[२]

इस प्रकार हम पाते हैं कि कुलपति मिश्र ने चित्र के अन्तर्गत केवल आकारचित्र तथा गतिचित्र का ही विवेचन किया है।

पदुमनदास रचित 'काव्यमंजरी' में हम चित्र का कुछ विस्तृत विवेचन पाते हैं। 'काव्यमंजरी' में अधिक आधार मम्मट तथा केशव का ग्रहण किया गया है। कवि का उद्देश्य है बालकवियों को काव्यकला में निष्णात बनाना—

"प्रगट कियो कवि मंजरी पदुमन रुचिते भाषि।
कवि कुल बालक श्रृंग सम प्रौढ़ होहु रस चाखि॥"[3]

पदुमनदास ने शब्दालंकार के आठ भेद माने हैं और उनमें चित्र, गूढ़, प्रहेलिका तथा प्रश्नोत्तर को अलग-अलग अलंकारत्व प्रदान किया है—

"चित्र यमक अनुप्रास अरु, गूढ़ श्लेष बखान।
प्रहेलिका प्रश्नोत्तरा बक्र उक्ति अनुमान॥"[४]

स्पष्ट है कि कवि का यह विभाजन सरस्वती कण्ठाभरण का आधार लेकर चलता है, अन्यत्र कहीं भी प्रश्नोत्तर और गूढ़ को चित्र से इतर शब्दालंकार नहीं माना गया है। प्रश्नोत्तर को उत्तर अलंकार का भेद मानकर अर्थालंकार में स्थान अवश्य मिलता है। शब्दालंकारों के इस क्रम में प्रथम स्थान चित्र को ही दिया गया है और काव्यमंजरीकार ने

१. रसरहस्य, छन्द—३९
२. उपरिवत्, छन्द संख्या ४०-४१
३. काव्यमंजरी, पृ०—१, छन्द संख्या—५
४. उपरिवत्, पृ० १०७, छन्द संख्या २

चित्र का विवेचन भी अन्य अलंकारों की अपेक्षा अधिक विस्तार से किया है। प्रकरण के प्रारम्भ में ही चार दोहों में कवि ने चित्र के गुण और भेदों का वर्णन किया है, किन्तु कोई सामान्य लक्षण देने की चेष्टा नहीं की है—

"चित्र विविध परकार के, अक्षर सुभग सुहात।
वर्णत कठिन विलोकते, अद्भुत रस ह्वै जात॥
बिबिध बंध होय चित्र में कमल मेरु असि छत्र।
सिंहासन चामर मुरज सुरगवि सुरतरु तत्र॥
हयगति मंत्रीगति चलै, गतप्रत्यागत जान।
गदा बंध गोमूत्रिका, वदन सर्वतो मान॥
इत्यादिक बहु बंध है, चित्र समुद्र अपार।
कछुक कहै संक्षेप ते, बूझहु मति अनुसार॥"[1]

प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने स्वीकार किया है कि चित्र का वर्णन करना कठिन है, इस अपार चित्र-समुद्र में से कुछ का ही वर्णन वे करते हैं और वह भी संक्षेप में ही। यहाँ केशव का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। इस सूची में यद्यपि १५ बन्धों तथा अन्य प्रकार की चित्ररचनाओं के नाम आये हैं, किन्तु पुस्तक में विवेचन केवल ११ चित्रों का हुआ है; वे हैं—१ : द्वादशदलकमलबन्ध, २ : मेरुबन्ध, ३ : असिबन्ध, ४ : छत्रबन्ध, ५ : चामरबन्ध, ६,७,८; अश्वगति, मन्त्रीगति, तथा गोमूत्रिका (एक ही छन्द में) ९ : गत-प्रत्यागत, १० : कपाटबन्ध तथा ११ : हारबन्ध। इन चित्र रचनाओं में कपाट तथा हार दो बन्ध ऐसे हैं जिनका उल्लेख उपर्युक्त सूची में नहीं है। एक अन्य 'तड़ाग बन्ध' के सम्बन्ध में सम्पादक की टिप्पणी है कि उनकी भूल से वह बन्ध पुस्तक में छप नहीं सका।[2] इस प्रकार पुस्तक के विवेचनक्रम में कुल १२ चित्रों का ही समावेश हो पाया है। इन चित्रों में वर्गीकरण की दृष्टि से केवल आकारचित्र तथा गतिचित्र के कुछ भेदों की ही रचना हुई है। व्यंजन, स्थान अथवा स्वरचित्र का एक भी छन्द पुस्तक में नहीं है।

गूढ़, प्रश्नोत्तर तथा प्रहेलिका में प्रत्येक को यद्यपि कवि ने स्वतन्त्र शब्दालंकार माना है पर इनका विवेचन अत्यन्त ही संक्षेप में किया है। प्रहेलिका को तो संस्कृत में ही स्वतन्त्र अलंकारत्व प्राप्त हो गया था, केशव ने भी उसे अक्षुण्ण रखा,[3] पर प्रश्नोत्तर और गूढ़ को केशव ने चित्र के भेद के रूप में ही स्वीकृत किया। संस्कृत में भी भोजराज के अतिरिक्त प्रायः सभी आचार्यों ने (जिन्होंने इनका उल्लेख किया है) इन्हें चित्र के गौण भेदों के रूप में ही देखा।[4] पदुमनदास द्वारा कथित गूढ़ का लक्षण अत्यन्त अस्पष्ट है।

१. काव्यमंजरी, पृ० १०७, छन्द संख्या ३ से ६
२. उपरिवत्, पृ० १२४
३. कविप्रिया, प्रभाव—८, छन्द संख्या—६
४. रुद्रट, हेमचन्द्र, वाग्भट आदि। द्रष्टव्य, पृ० २२ पा० टि०-२, पृ० ३० पा० टि०-२, पृ० ३७ पा० टि०-२

"अर्थ दुरायो होय जहँ, बूझत हूजे मूढ़ ।।
भाव मेटिए बुद्धिबल, तासो कहिये गूढ़ ।।"[१]

संस्कृत में गूढ़ अथवा गुप्त के अन्तर्गत छन्द में कारक, सम्बन्ध, क्रिया, पद, पदादि की इस प्रकार योजना होती थी कि सामान्यतः देखने से उनका पता नहीं चलता था, पर छन्द में ही उनकी अवस्थिति होती थी जो कभी विभिन्न स्थलों से वर्ण लेने पर या कभी शब्द अथवा पदों का सभंग रूप में अन्वय करने पर प्रकट हो जाते थे। प्रस्तुत लक्षण में वैसा कुछ दीख नहीं पड़ता है। अर्थ की दृष्टि से भी उपर्युक्त दोहा अत्यन्त अस्पष्ट है। उदाहरण से भी इस लक्षण के स्पष्टीकरण में अथवा गूढ़ के समझने में कोई सहायता नहीं मिलती—

"भेद कहै जो देह को, तासो कहिए न भेद ।।
यद्यपि प्रेम परिचारिका, तदपि निवारत वेद ।।"[२]

प्रस्तुत दोहे में यमक का चमत्कार तो है पर 'गूढ़' की योजना कहीं नहीं दीखती।

प्रश्नोत्तर को प्रस्तुत पुस्तक में 'प्रश्नोत्तरा' कहा गया है और इसके दो भेदों—अन्तर्लापिका तथा बहिर्लापिका की चर्चा की गई है।[3] इन्हीं दोनों के दो उदाहरण भी दिये गये हैं। प्रश्नोत्तर के अन्य भेदों की चर्चा नहीं है। इस प्रकार कुल मिलाकर पदुमनदास ने आकारचित्र, गतिचित्र, प्रश्नोत्तर तथा गूढ़ का विवेचन काव्यमंजरी में किया है।

पदुमनदास के उपरान्त देव के शब्दरसायन (काव्य रसायन) में चित्रकाव्य का विवेचन मिलता है। इस क्षेत्र में शब्दरसायन की यह विचित्रता है कि देव ने सम्पूर्ण शब्दालंकार को ही चित्र मान लिया है—

"अलंकार जे शब्द के ते कहि काव्य सुचित्र,
अर्थ समर्थ न पाइयत अक्षर बरन विचित्र।
अधम काव्य, ताते कहत, कवि प्राचीन नवीन,
सुन्दर छंद अमंद रस, होत प्रसन्न प्रवीन।"[४]

देव के पूर्व अन्य किसी अचार्य अथवा कवि ने शब्दालंकारमात्र को चित्रकाव्य नहीं कहा था। आनन्दवर्धन ने सम्पूर्ण ध्वनिविहीन काव्य के लिये 'चित्र' शब्द का प्रयोग अवश्य किया पर उसके अन्तर्गत शब्दालंकार के साथ ही सम्पूर्ण अर्थालंकार की भी गणना हुई,[५] मम्मट ने भी अवर अथवा अधम काव्य की संज्ञा सम्पूर्ण अलंकार-काव्य को ही दी थी।[६]

१. काव्य मंजरी, पृ० १२८, छन्द २९
२. उपरिवत्, छन्द संख्या ३०
३. उपरिवत्, पृ० १३०, छन्द संख्या ३५, ३६ तथा ३७
४. शब्दरसायन, अष्टम प्रकाश, पृ० ८४
५. द्रष्टव्य, प्रस्तुत प्रबन्ध की भूमिका
६. "शब्दचित्रं वाच्यचित्रमव्यंग्यं त्ववरं स्मृतम् ।।५।।"—काव्य प्रकाश, प्रथम उल्लास
"चित्रमिति गुणालङ्कारयुक्तम्।"

देव ने या तो मम्मट और आनन्दवर्धन को समझा ही नहीं या फिर अर्थालंकारयुक्त काव्य को वे अधम काव्य नहीं मानना चाहते। दूसरी ओर देव ने चित्रकाव्य को ही एकमात्र शब्दालंकार माना है और 'अनुप्रास और यमक' को उसका मूल माना है—

"अक्षर चित्र विचित्रता, दरसन रसन विशेषि,
न्या नभ सी तृनधान की, कनिक तनिक दुखदेखि।
अनुप्रास अरु यमक ये चित्रकाव्य के मूल,
इनहीं के अनुसार सों सकल चित्र अनुकूल।"[1]

प्रथम पंक्ति में देव का कथन स्पष्ट है कि अक्षर की चित्र-विचित्रताएँ, जिनमें 'दृश्य-आनन्द' ही विशेष रूप से है, चित्रकाव्य है। इस प्रकार देव के मत में चित्र ही एकमात्र अलंकार है तथा अनुप्रास और यमक उसी के पुष्टिकारक हैं। अष्टम प्रकाश के अन्त में शब्दालंकार का उपसंहार करते हुए भी देव ने इसी बात की पुन: पुष्टि की है कि 'चित्र' से उनका तात्पर्य सम्पूर्ण शब्दालंकार से ही है—

"शब्द अलंकारौ द्विविधि, रूपचित्र गतिछन्द,
अर्थ अलंकारनि बरनि, कहि हौं छंद अमंद।"[2]

देव का चित्र-विवेचन अत्यन्त ही अस्पष्ट है तथा उदाहरण के छन्द भी बहुत ही भ्रष्ट हैं। किसी छन्द का अर्थ ठीक से स्पष्ट नहीं हो पाता। चित्र-प्रकरण तो और भी अधिक भ्रष्ट है। सम्पादन के दोष भी बहुत ही अधिक हैं, फलत: देव जैसा उत्कृष्ट कवि इस विवेचन में पर्याप्त असफल दीख पड़ता है। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि परिपाटी निभाने के लिये उन्होंने भले ही शब्दालंकार का वर्णन किया, किन्तु इस प्रकार की रचनाओं में उनकी वृत्ति नहीं रमी। इस प्रसंग में यह बात विचारणीय है कि यदि उन्हें परम्परा का ही पालन करना था तो केवल पहले से चली आती हुई परिपाटी के अनुकूल ही वर्णन करते। सम्पूर्ण शब्दालंकार को ही 'चित्र' कहकर मौलिकता-प्रतिपादन की भला क्या आवश्यकता थी? स्पष्ट है कि देव अपने विवेचन की ओर से सजग थे और यह असफलता इस प्रसंग में उनकी असफलता ही है। उपर्युक्त दोहे के अनुसार उन्होंने शब्दालंकार के केवल दो भेद किये हैं—रूप (आकार) चित्र, तथा गतिछन्द यानी गतिचित्र, साथ ही उन्होंने 'यमक और अनुप्रास को चित्रकाव्य का मूल' कहा। इस प्रकार वे इस बात के लिये सन्देह का स्थान बिलकुल नहीं रहने देते कि चित्रकाव्य से उनका तात्पर्य चित्रालंकार से ही है और अन्य सारे शब्दालंकार उसी में अन्तर्भूत हैं।

शब्दरसायन में देव ने चित्रों की एक सूची दी है यद्यपि विवेचन उन्होंने बहुत कम भेदों का किया है। वह सूची निम्न है—

१. शब्दरसायन, प्रकाश—८, पृ० ८४
२. शब्दरसायन, प्रकाश—८, पृ० ९४

"पर्वत हार कपाट धनु कमल आदि बहु बंध,
कामधेनु अरु सर्वतोभद्रादिक रसगंध।
एक दु अक्षर आदि बहु, अस अनुलोम विलोम,
अंतर्लाप प्रहेलिका, ललित बरन रस होम।
कहत जथारथ, न्याय करि, करत नहीं अवलेप,
सहत न बिस्तर ग्रंथ को, कहो चाहि संक्षेप।"[१]

प्रस्तुत सूची में पर्वत, हार, कपाट, धनुष, कमल आदि बन्ध, कामधेनु, सर्वतोभद्र आदि गतिचित्र, एकाक्षरादि वर्णचित्र तथा अंतर्लापिकादि प्रश्नोत्तर और प्रहेलिका का उल्लेख है। किन्तु देव ने विवेचन के अन्तर्गत केवल कामधेनु, सर्वतोभद्र, एकाक्षर-द्वयक्षर, अनुलोम-विलोम, अन्तर्लापिका तथा प्रहेलिका की ही रचना की है।[२] बन्धों का कोई उदाहरण उन्होंने नहीं दिया है। उपर्युक्त चित्रों के भी जो उदाहरण हैं वे अत्यन्त ही अशुद्ध हैं। कामधेनु के छन्द तो अत्यन्त ही भ्रष्ट हैं।[3] इनके अतिरिक्त देव ने गूढ़ार्थ चित्र, प्रगटार्थ चित्र के एक-एक तथा वैराग्य रस चित्र के छह छन्द दिये हैं,[४] किन्तु इनमें क्या चित्रत्व है इसे कहीं

१. शब्द रसायन, प्रकाश—८, पृ० ९०

२. उपरिवत्, पृ० ९१ से ९३ तक।

३. उपरिवत्, पृ० ९१

कामधेनु के दो छप्पय देव ने दिये हैं। इन छप्पयों के साथ सम्पादक की टिप्पणी भी है कि—"दोनों छप्पय छंद तथा भाषा की दृष्टि से भ्रष्ट हैं, परन्तु तीनों प्रतियों में इसी प्रकार मिलते हैं।"

दोनों छप्पय निम्न हैं—

"दान जग्य जप जाप न, पान पदीउ सबै लहु,
नैन बन, सब बसहु, अहू आराधं हू रहु,
प्यास-प्यास ध्रुवधाम बसावे, बसर भौन कनु,
ध्यावहु हियहि त्रिध्यान, कर्षि सज्जनता में मन,
तन व्यापा मैन स्वर हनत, दारा ? लिराक घर,
वासना नंद पर चढ़ति रस, नाक बास मद रुचि भदर।"

द्वितीय छप्पय—

"सरल सरस रम तुमा, काम रस गमक भाव कनि,
आराधो निज बस्तु लहो, जन पहो मतोमनि,
रत्न जन्म निज होतु, हिये तुहि नैनन निज जल,
नैन सरस रस लगत, नरन हियहि करक बढ़ बज।
दास हुव ध्यन स्वदर, बजनि निज वरद चरन ध्यावहु सदा,
जानहु वकन रस सर निमत, तुम निरस सरनि, कबहू न जा।"

कामधेनु छन्द की विशेषता यही है कि एक छन्द से अनेक छन्द निकलते हैं, किन्तु इन पदों से अन्य छन्द निकल पाते हों, ऐसी सम्भावना नहीं दीखती। देव ने स्वयं कुछ इस सम्बन्ध में कहा भी नहीं है।

४. उपरिवत्, पृ० ८७-८९

स्पष्ट नहीं किया है। प्रगटार्थ, गूढ़ार्थ तथा वैराग्य रस का नाम चित्र के प्रसंग में देव के पूर्व अन्यत्र कहीं नहीं आया है, बाद में भी नहीं है। देव का 'गूढ़ार्थ' परम्परा से प्रचलित 'गूढ़' नहीं है। किसी अन्य चमत्कार का प्रतिपादन भी इन छन्दों में नहीं मिलता।

उपर्युक्त विवेचन में हम पाते हैं कि देव का चित्र-विवेचन अस्पष्ट तो है ही, अत्यन्त असफल भी है। देव अपने को यहाँ बिलकुल ही स्पष्ट नहीं कर सके हैं। विवेचन में न कोई तारतम्य है और न एकसूत्रता ही। देव की वृत्ति इन रचनाओं के अनुकूल थी भी नहीं। इस सम्बन्ध में उन्होंने अपने विचार पूर्णतः स्पष्ट कर दिये हैं—

"सरस वाक्य पद अरथ तजि, शब्द-चित्र समुहात,
दधि, घृत, मधु पायस तजति बायसु चाम चबात।
अपनी अपनी रीति के, काव्य और कवि रीति।
शब्द चित्र तद्यपि मधुर, सरल भाव प्रभु प्रीति॥"[1]

यहाँ देव संस्कृत आचार्य कविकर्णपूर के मत[2] का अनुकरण करते हुए यह स्वीकार करते हैं कि ईश्वरप्रेम से युक्त 'शब्दचित्र' भी मधुर होता है, अन्यथा सरस काव्य को छोड़कर शब्दचित्र का आराधक तो उसी कौए के समान है जो दधि, घृत, मधु और पायस छोड़कर चाम चबाना ही अधिक पसन्द करता है।

कुमारमणि ने अपने 'रसिक रसाल' नामक ग्रन्थ में चित्र के विभिन्न भेदों के उदाहरण तो दिये हैं पर लक्षण बिलकुल नहीं दिया है। पुस्तक में सम्भवतः शब्दालंकार-मात्र के लिये 'चित्रकाव्य' शब्द का प्रयोग है, किन्तु स्पष्टतः कवि ने कुछ कहा नहीं है। चित्रकाव्य के उदाहरण के रूप में केवल एक सवैया है जिसमें अनुप्रास के अतिरिक्त अन्य कोई चमत्कार नहीं है। आकारचित्र का निम्न लक्षण 'रसिक रसाल' में प्राप्त होता है—

"खड्ग प्रभृति के आकृतिहिं, वर्ण रचत जहँ देखि।
तिहि बंधहि के नाम सों चित्र अलंकृति लेखि॥"[3]

यहाँ लेखक ने आकारचित्र को 'चित्र अलंकृति' अथवा चित्रालंकार कहा है। आकारचित्र के सम्बन्ध में इस लक्षण के अतिरिक्त एक भी उदाहरण की रचना नहीं की गई है। इस दोहे के बाद उदाहरण के स्थल पर कवि ने लिखा है—

"विस्तार-भय तें इहाँ न लिखे।"

अन्य चित्रों के केवल उदाहरण के छन्द ही हैं, लक्षण नहीं। इन उदाहरणों में—एकाक्षर, द्वयक्षर, त्र्यक्षर, चतुरक्षर, दन्त्य, निरोष्ठक, गूढ़चतुर्थपाद, प्रश्नोत्तर तथा भिन्न-

१. शब्द रसायन, प्रकाश ८, पृ० ९०

२. "चित्रं नीरसमेवाहुर्भंगवद्विषयं यदि।
तदा किंचिच्च रसवदयथे क्षोः सर्व्वचर्व्वनम्॥"—अलंकार कौस्तुभ, सप्तमकिरण, पृ० ४८७

३. रसिक रसाल, पृ० १३८, छं० सं० ३६

प्रश्न के छन्द हैं।[१] इस प्रकार उदाहरणों के द्वारा कवि ने वर्णचित्र, स्थानचित्र, गूढ़ तथा प्रश्नोत्तर का विवेचन किया है। 'भिन्न प्रश्न' के बाद 'प्रश्नोत्तर' के अन्य भेदों के लिए कवि ने लिखा है—

"ऐसे अन्तर्लापिक, बहिर्लापिक, अनुलोम, प्रतिलोम आदि भेद
'विदग्धमुखमण्डनादि' तें जानिये।"[२]

पुस्तक की जो प्रति[3] उपलब्ध है, उसकी भूमिका में सम्पादक ने स्वीकार किया है कि उन्होंने प्रकाशन के लिये पाण्डुलिपि में बहुत से परिवर्तन कर दिये हैं, फलतः कहा नहीं जा सकता कि चित्र के विवेचन की अस्पष्टता सम्पादक के परिवर्तन के कारण है अथवा पाण्डुलिपियों में विवेचन इसी प्रकार थे। जिस कारण से भी हो, चित्र-विवेचन की दृष्टि से रसिक रसाल का कोई विशेष महत्व नहीं दीख पड़ता।

चित्र-विवेचन के क्षेत्र में भिखारीदास हिन्दी के सबसे अधिक प्रौढ़ आचार्य हैं। इनके विवेचन में कहीं भी अस्पष्टता नहीं है। लक्षण और उदाहरण दोनों ही दृष्टियों से भिखारीदास का विवेचन हेमचन्द्र की तरह ही सुव्यवस्थित, सुविभाजित तथा अत्यन्त स्पष्ट है। हेमचन्द्र और भिखारीदास में यदि कुछ अन्तर है तो यह कि हेमचन्द्र जहाँ केवल आचार्य थे वहाँ भिखारीदास कवि भी थे। हेमचन्द्र ने उदाहरण के श्लोक दूसरों से लिये हैं, दास के सारे उदाहरण स्वरचित हैं और उनमें अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि के चित्रकाव्य की रचना है। संस्कृत में रचित चित्र-बन्धों की समता में हिन्दी के बन्ध यदि रखे जा सकते हैं तो केवल दास के ही।

काव्यशास्त्र की अपनी पुस्तक 'काव्यनिर्णय' में यों भिखारीदास ने काव्यप्रकाश का आधार लिया है पर विवेचन में उन्होंने आँख मूँद कर अनुकरण नहीं किया। चित्र-काव्य प्रकरण में सरस्वतीकण्ठाभरण, काव्यानुशासन (हेमचन्द्र), विदग्ध-मुख-मण्डन तथा कविप्रिया से प्रेरणा ग्रहण की गई है, किन्तु उनका अनुकरण कहीं नहीं किया गया है। भिखारीदास का चित्र-विवेचन पर्याप्त मौलिक है। चित्ररचनाओं का वर्गीकरण भी उन्होंने स्वयं अपनी बुद्धि से किया है। इस वर्गीकरण के अन्तर्गत तत्कालीन सभी प्राचीन-नवीन हिन्दी चित्र-रचनाओं का आकलन हो इसका ध्यान भी दास ने रखा है। साथ ही यह विभाजन विस्तृत न होकर अधिक चुस्त है, जिससे पाठक को समझने में कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता। ग्रन्थ के २१वें अध्याय के प्रारम्भ में ही (जिसके अन्तर्गत केवल चित्र-काव्य का ही विवेचन है) दास ने चित्र की प्रकृति, इस क्षेत्र में कवियों को प्राप्त कुछ विशेष अधिकार अथवा छूट, तथा चित्रकाव्य के विभिन्न भेदों का उल्लेख कर दिया है—

१. रसिक रसाल, पृ० १३६ से १३८ तक, छन्द संख्या २५ से ३५ तक

२. उपरिवत्, पृ० १३८

३. सम्पादक—कण्ठमणि शास्त्री, विशारद, प्रकाशक (श्री द्वारकेश कविमंडल) श्रीविद्याविभाग, कांकरोली, सं० १९९४

"दास सु कवि बानी थकै, चित्र कबित्तनि माहिं।
चमत्कार हीनार्थ को, इहाँ दोष कछु नाहिं॥
ब व ज य बर्ननि जानिये, चित्र काव्य में एक।
अर्धचंद्र को जनि करौ, छूटे लगे बिबेक॥
प्रश्नोत्तर पाठांतरो, पुनिबानी को चित्र।
चारि लेखनी चित्र को, चित्रकाव्य है मित्र॥"[१]

प्रस्तुत पंक्तियों में दास ने स्पष्ट कर दिया है कि चित्रकाव्य की रचना अत्यन्त कठिन होती है और इसमें अच्छे-अच्छे कवियों की भी वाणी थक जाती है। इसके बाद उनका कथन है कि इस क्षेत्र में कुछ छूट कवियों के लिये है जैसे हीनार्थादि दोष की गणना नहीं होती, साथ ही ब-व तथा ज-य में अन्तर नहीं देखा जाता, अर्धचन्द्र यदि छोड़ देना पड़े या लगाना पड़े तो भी इसमें कोई अन्तर नहीं आता। यहाँ भिखारीदास का वर्णन केशवदास से बिलकुल साम्य रखता है, फिर भी केशवदास के अनुकरण की बात नहीं उठती क्योंकि चित्र रचनाओं के ये नियम हैं और उनका उल्लेख संस्कृत में भी हुआ ही है। इन नियमों से अनभिज्ञ कवि भला चित्रकाव्य की रचना कैसे कर सकता है? भिखारीदास जैसे उत्कृष्ट कवि और अधीत आचार्य के लिये अनुकरण की बात नहीं उठती, फिर भी कविप्रिया को उन्होंने देखा तो था ही।

भिखारीदास ने चित्र का वर्गीकरण एक नवीन ढंग से कर इस क्षेत्र में अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। संस्कृत के आचार्यों ने चित्र का पर्याप्त विवेचन और विश्लेषण किया था, किन्तु वह विवेचन संस्कृत रचनाओं के आधार पर हुआ। हिन्दी में कतिपय नवीन प्रकार की चित्ररचनाएँ हुई और कवियों ने संस्कृत में प्रचलित कतिपय रचनाओं को हिन्दी के अनुकूल न पाकर छोड़ दिया। अतः आचार्यों के द्वारा नवीन वर्गीकरण की आवश्यकता हुई जिसमें इन नवीन रचनाओं को समुचित स्थान दिया जा सके। केशवदास ने भी अपने विवेचन में इसका ध्यान रखा था और उन्हीं रचनाओं का उन्होंने विवेचन भी किया जो हिन्दी में प्रचलित थीं। इसी कारण उन्होंने प्रश्नोत्तर के विभिन्न भेदों को अपने चित्रविवेचन में स्थान दिया, अन्यथा संस्कृताचार्यों ने तो उसकी उपेक्षा ही की थी। किन्तु केशवदास ने अपने विवेचन में चित्ररचनाओं का कोई वर्गीकरण नहीं किया। भिखारीदास ने सर्वप्रथम हिन्दी में यह काम किया और पर्याप्त स्पष्टता तथा मौलिकता का परिचय इस वर्गीकरण में दिया। उन्होंने संस्कृत के विभाजन स्वर, वर्ण तथा स्थाननियम, आकार तथा गतिचित्र और गूढ़, प्रश्नोत्तर, तथा प्रहेलिका का अनुकरण न कर चित्ररचनाओं को प्रश्नोत्तर, पाठान्तर, वाणीचित्र तथा लेखनी-चित्र, इन चार वर्गों में ही रखा। प्रहेलिका को चित्र के अन्तर्गत उन्होंने स्थान नहीं दिया इन्हीं चार वर्गों में चित्र की सारी रचनाएँ आकलित हो जाती हैं। आगे उन्होंने इन वर्गों के उपभेद किये हैं और उनके लक्षण उदाहरण दिये हैं।

१. काव्य निर्णय, परिच्छेद-२१, दोहा संख्या-१, २ तथा ३

दास ने प्रत्येक वर्ग का विवेचन करने के पूर्व उसके उपभेदों की सूची दे दी है तथा सूची में उल्लिखित क्रम के अनुसार ही विवेचन में भी उन उपभेदों को स्थान दिया है। विवेचन-विश्लेषण की यह वैज्ञानिकता हमें आश्चर्य में डाल देती है। किसी भी तत्कालीन आचार्य में यह वैज्ञानिकता हमें देखने को नहीं मिलती। प्रश्नोत्तर के उपभेदों की सूची निम्न दोहों में दास देते हैं—

"प्रश्नोत्तर चित्रित करै, सज्जन सुमति उमंग।
द्वै बिधि अंतरलापिका, बहिरलापिका संग॥
गुप्तोत्तर उर आनि कै, व्यस्त समस्तहि जान।
एकानेकोत्तर बहुरि, नागपास पहिचानि॥
है क्रमव्यस्तसमस्त पुनि, कमलबंधवत मित्र।
सुद्ध गतागतसृंखला, नवम जानिये चित्र॥
अगनित अंतरलापिका, यों बरनत कविराइ।
बहिरलापि जानो उतर, छंद बाहिरे पाइ॥"[1]

प्रस्तुत सूची के अनुसार दास ने प्रश्नोत्तर के केवल दो भेद माने हैं—अंतर्लापिका तथा बहिर्लापिका। पुनः अंतर्लापिका के केवल ९ भेदों का विवेचन किया है, यद्यपि उसके अगणित भेद होते हैं। जिन भेदों का विवेचन हुआ है प्रस्तुत सूची के अनुसार उनके नाम हैं—

१. गुप्तोत्तर, २. व्यस्तसमस्तोत्तर, ३. एकानेकोत्तर, ४. नागपाशोत्तर, ५. क्रम-व्यस्तसमस्तोत्तर, ६. कमलबंधोत्तर, ७. गतागतउत्तर, ८. शृंखलोत्तर, तथा ९. चित्रोत्तर। इसके उपरान्त बहिर्लापिका का केवल एक ही छन्द है।

प्रश्नोत्तर के उपरान्त कवि ने पाठान्तर का विवेचन किया है। पाठान्तर के केवल निम्न तीन भेदों का ही उल्लेख भिखारीदास ने किया है—

"बरन लुपे बदले बढ़े चमत्कार ठहराइ।
सो पाठांतर चित्र है, सुनो सुमति समुदाइ॥"[2]

इस प्रकार प्रमुखतः 'वर्णलोप', 'वर्णवृद्धि' तथा 'वर्ण परिवर्तन' पाठान्तर के तीन भेदों का ही विवेचन कवि ने किया है, किन्तु 'वर्णलोप' के भी 'आदि वर्णलोप' तथा 'मध्यवर्णलोप' दो भेद पुस्तक में हैं। यों इसी के आधार पर 'अन्तवर्णलोप' तथा 'वर्णविपर्यय' को भी पाठान्तर के भेदों में स्थान मिल सकता था, किन्तु कवि ने इनका उल्लेख नहीं किया है।

पाठान्तर के ये भेद 'वर्ण-लोप', 'वर्णवृद्धि' तथा 'वर्णपरिवर्तन' वस्तुतः संस्कृत में रचित तथा विवेचित क्रमशः च्युत, दत्त तथा च्युतदत्त ही हैं। अन्तर केवल इतना है

१. काव्यनिर्णय, परिच्छेद-२१, दोहा संख्या ४ से ७ तक
२. उपरिवत्, परि-२१, दोहा संख्या ३४

कि 'च्युतादि' के जहाँ मात्रा, वर्ण, विसर्ग, तथा बिन्दु के अनुसार चार-चार भेद होते थे वहाँ 'पाठान्तर' के तीनों हो भेदों में केवल वर्ण को ही लिया गया है। 'वर्णलोप' में भी इच्छित अर्थ की प्राप्ति के लिये छन्द से किसी वर्ण को हटा देना पड़ता है और 'वर्णच्युत में भी वर्ण को हटाकर ही इष्ट अर्थ की प्राप्ति होती है। 'वर्णपरिवर्तन' में इसी प्रकार इच्छित अर्थ की प्राप्ति के लिये किसी वर्ण को परिवर्त्तित कर देते हैं और 'च्युतदत्त' भी लगभग यही है क्योंकि इसमें भी एक वर्ण च्युत होता है तथा दूसरा दिया जाता है। किन्तु 'वर्णपरिवर्तन' और 'च्युतदत्त' में एक अन्तर यह होता है कि 'वर्णपरिवर्तन' के अन्तर्गत जहाँ जिस वर्ण को हटाते हैं उसी स्थान पर दूसरा वर्ण दिया जाता है, वहाँ 'च्युतदत्त' में 'च्युत' और 'दत्त' वर्णों के स्थान भिन्न-भिन्न भी हो सकते हैं। भिखारीदास के इस नामकरण से स्पष्ट है कि उन्होंने संस्कृत का अनुकरण नहीं किया है। 'पाठान्तर' नाम रखकर उन्होंने अपने वर्गीकरण तथा नामकरण की पूर्ण सार्थकता भी सिद्ध कर दी है।

केशवदास ने एक दूसरे प्रकार के 'चित्र' का विवेचन भी किया था, जिसका उल्लेख संस्कृत काव्यशास्त्र में नहीं मिलता। वह था एक अक्षर, दो अक्षर अथवा इसी प्रकार तीन तथा चार वर्णों से बने शब्दों से ही सम्पूर्ण छन्द की रचना।[1] भिखारीदास ने केशव के द्वारा विवेचित इस प्रकार की रचनाओं को अपने विवेचन में स्थान नहीं दिया है, न इनका उल्लेख ही किया है।

दास द्वारा विवेचित 'चित्र' का तीसरा प्रकार 'वाणीचित्र' है। 'वाणीचित्र' के निम्न भेदों का विवेचन 'काव्यनिर्णय' में हुआ है—

"बरनि निरोष्ठ अमत्त पुनि, होत निरोष्ठामत्तु।
पुनि अजिह्व नियमित बरन, बानी चित्रहि तत्तु॥"[2]

अर्थात् 'निरोष्ठ', 'अमत्त' (अमात्रिक), 'निरोष्ठामत्त', 'अजिह्व' तथा 'नियमित वर्ण' के विभिन्न भेद 'वाणीचित्र' के अन्तर्गत आये हैं। यहाँ हम पाते हैं कि पूर्वाचार्यों द्वारा विवेचित 'स्वरचित्र', 'स्थानचित्र' तथा 'व्यंजनचित्र' का ही समावेश 'वाणीचित्र' में हुआ है। संस्कृत में 'स्वरचित्र' के अन्तर्गत सम्पूर्ण छन्द में केवल एक स्वर अथवा दो स्वर अथवा तीन या चार स्वरों की योजना होती थी। हिन्दी में 'स्वरचित्र' के अन्तर्गत केवल 'अमात्रिक' की रचना ही बच गई, अन्य प्रकार के 'स्वरचित्रों' की रचनाएँ लगभग नहीं हुईं। 'स्थानचित्र' के अन्तर्गत भी हिन्दी कवियों को 'निरोष्ठ' ही अधिक प्रिय रहा, अन्य प्रकार की रचनाओं से उन्हें बहुत प्रेम न रहा। 'व्यंजनचित्र' अथवा 'वर्णचित्र' के लिये भिखारीदास ने 'नियमित' शब्द का प्रयोग किया है। केशवदास ने एक से लेकर २६ वर्ण वाले छन्दों की रचना की थी। भिखारीदास ने केशव के आधार पर ही यद्यपि स्वीकार किया है कि 'नियमित' की रचना एक से २६ वर्णों तक की होती है पर वे एक

१. कविप्रिया, प्रभाव १६ छन्द १०, ११, १२ और १३
२. काव्यनिर्णय, परि० २१ दोहा संख्या ३९

से लेकर ७ वर्णों से निर्मित छन्दों का ही उदाहरण देते हैं।[१] 'निरोष्ठ', 'अमत्त' तथा 'नियमित' के अतिरिक्त भिखारीदास ने 'निरोष्ठामत्त' तथा 'अजिह्व' का विवेचन भी किया है। 'निरोष्ठामत्त' तो स्पष्ट है अर्थात् ऐसा छन्द जो 'अमात्रिक' के साथ 'निरोष्ठ्य' वर्णों से ही निर्मित है[२] पर 'अजिह्व' का उदाहरण सदोष दीख पड़ता है। 'अजिह्व' की परिभाषा देते हुए उन्होंने कहा है कि जिस छन्द में 'अ', 'कवर्ग' तथा 'ह्' वर्णों को छोड़कर अन्य वर्ण न आवें, वही छन्द 'अजिह्व' कहलाता है—

"जित ह् बर्न अ-कवर्ग तित और न आवै कोइ।
ताहि अजिह्व बखानहीं, जिह्वा चलित न होई॥"[३]

किन्तु उदाहरण में उन्होंने 'इ', 'ई', 'ए', 'ऐ', 'ओ' आदि स्वरों का भी प्रयोग किया है।[४] यदि उपर्युक्त दोहे में 'अ-कवर्ग' से 'अवर्ग' तथा 'कवर्ग' का अर्थ लिया जाय तो इस परिभाषा के आधार पर छन्द तो शुद्ध होगा, किन्तु परिभाषा ही गलत सिद्ध होगी, कारण 'इ' 'ई' का उच्चारणस्थान 'तालु' है तथा 'ए-ऐ' का 'कण्ठ-तालु'। अतः इन वर्णों के उच्चारण में जिह्वा का परिचालन तो होगा ही। व्याकरण में 'क' से 'म' तक के सभी वर्णों को 'स्पर्श' ही कहा गया है, ऐसी दशा में यदि स्वरों को अजिह्व माना भी जाय तो 'कवर्ग' के वर्ण अजिह्व नहीं होते। मात्राओं के बन्धन को यदि न माना जाय तो यह छन्द पूर्णतः कण्ठस्थानीय है। यों भी इसकी इस संज्ञा (अजिह्व) का बहुत औचित्य नहीं दीखता, कारण जिह्वा का परिचालन प्रायः सभी वर्णों के उच्चारण में आवश्यक है।

अन्त में लेखक ने 'लेखनीचित्र' का वर्णन किया है तथा इसके अन्तर्गत खड्ग, कमल, कंकण, डमरू, 'चन्द्र, चक्र, धनुष, हार, मुरज, छत्र, पर्वत, वृक्ष तथा किवार इन १३ 'बन्धों' का, गतागत, मन्त्रिगति, त्रिपदी, अश्वगति, विमुख (सुमुख), सर्वतोमुख, कामधेनु प्रभृति 'गतिचित्रों' का तथा अक्षरगुप्त, चरणगुप्त जैसे 'गुप्त' अथवा 'गूढ़चित्रों' का विवेचन किया है—

"खड्ग कमल कंकन डमरु चंद्र चक्र धनु हार।
मुरज छत्रजुत बंध बहु, पर्बत बृक्ष कंवार॥
बिबिध गतागत मंत्रिगति, त्रिपदि अस्वगति जानि।
बिमुख सर्बतोमुख बहुरि, कामधेनु उर आनि॥

१. काव्यनिर्णय, परि-२१, छन्द संख्या ४८ से ५५ तक
२. उपरिवत्, छन्द संख्या ४५
३. उपरिवत्, छन्द संख्या ४६
४. "खाइ है घीअ अघाइ है हीअ गहागहे गीअ अहे कहा खंगा।
है है कहाँ की कहाँ की है खैं खैं ए गेह के गाहक खेह है अंगा।
काहे को धाइ गहै अघओघ कों काक की कीक कहा किए कंगा।
गाइए गंगा कहाइए गंगा क ही गहे गंगा अहे कहे गंगा॥४७॥"
—उपरिवत्, परि-२१

अक्षर गुप्त समेत हैं, लेखनि चित्र अपार ।
बरनन पंथ बताइ मैं दीन्हों मति अनुसार ।।"[१]

प्रस्तुत सूची में यह स्पष्ट है कि भिखारीदास ने संस्कृत में गृहीत 'आकारचित्र', 'गतिचित्र' तथा 'गुप्त' (गूढ़) इन तीन चित्रप्रकारों को 'लेखनीचित्र' में ही समाविष्ट कर दिया है। 'आकारचित्र' के भेदों की संख्या अनन्त है अतः सभी का विवेचन कदापि सम्भव नहीं है। दास ने भी केवल इन चित्रों का 'बरनन पंथ' हीं बताया है। बन्धों के उदाहरणस्वरूप जो छन्द दास ने रचे हैं वे न्यास की दृष्टि से अत्यन्त शुद्ध हैं। हिन्दी के अन्य किसी भी कवि के बन्धों के छन्द अथवा चित्र इतने उत्कृष्ट नहीं हैं। इस प्रकार चित्रकाव्य-विवेचन के क्षेत्र में तथा रचना के क्षेत्र में भी दास का स्थान अत्यन्त महत्त्व का है। विवेचन तथा विभाजन की वैज्ञानिकता की दृष्टि से हिन्दी के कवि-आचार्यों में दास का स्थान निस्सन्देह सर्वोच्च है। अन्य आचार्यों ने जहाँ संस्कृत के आचार्यों का पिष्टपेषण किया है अथवा विवेचन को अत्यन्त अस्पष्ट तथा विशृंखल बना दिया है, वहाँ दास का विवेचन अत्यन्त स्पष्ट, सुव्यवस्थित तथा पर्याप्त मौलिक है।

जनराज के 'कविता-रस-विनोद' तथा जगतसिंह के 'चित्रकाव्य' अथवा 'चित्र-मीमांसा' में भी चित्र का विस्तृत वर्णन है। वर्णन की परिपाटी, इन दोनों ही पुस्तकों में, लक्षण तथा उदाहरणवाली ही है, किन्तु शास्त्रीय विवेचन की दृष्टि से इनका बहुत अधिक महत्त्व नहीं दीख पड़ता। 'चित्रकाव्य' का सामान्य लक्षण बहुत कम कवियों ने दिया है और यही बात जनराज तथा जगतसिंह में भी है। यों जगतसिंह ने एक स्थल पर लिखा है—

"श्रुतिविचित्र रचना वरन चित्र कहत सब कोइ।
अलंकार शब्दावहे वरनत पंडित लोइ ।।"[२]

प्रस्तुत पुस्तक अभी अप्रकाशित है तथा पाण्डुलिपि खण्डित तथा जीर्ण अवस्था में है।[3] पुस्तक की एक दूसरी हस्तलिखित प्रति से[४] जिसमें 'चित्रमीमांसा' अथवा 'चित्रकाव्य' के केवल ३८ छन्द (४ से ४१ तक) ही प्राप्य हैं, 'चित्रकाव्य' के सम्बन्ध में जगतसिंह के विचार का पता चलता है। उपर्युक्त दोहे से स्पष्ट है कि जगतसिंह ने 'चित्र' का प्रयोग शब्दालंकार के रूप में किया है। इतना ही नहीं, 'अथ चित्रकाव्य के नाम'—उपशीर्षक के अन्तर्गत जगतसिंह ने अनुप्रास, यमक, प्रतीकासपुनरुक्त तथा चित्र, इन सभी शब्दालंकारों के नाम गिनाये हैं। इसी क्रम में उन्होंने अनुप्रास के छेक, वृत्ति, लाट, अस्फुट तथा अर्थ, इन पाँच भेदों के नाम भी लिये हैं। किन्तु प्रस्तुत स्थल पर इन भेदों को अनुप्रास के भेद के रूप में नहीं वरन् स्वतन्त्ररूप में रखा गया है। इस प्रकार हम पाते हैं कि 'चित्रकाव्य' से जगतसिंह का तात्पर्य शब्दालंकार मात्र से है।

---

१. काव्यनिर्णय, परि-२१, छन्द संख्या ५६-५८

२. हस्तलिखित—ना० प्र० स०, दोहा-१५

३. सभा संग्रह, आर्य भाषा पुस्तकालय, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, हस्तलिखित पु० सं० २८५

४. उपरिवत्, हस्तलेख संख्या २८७

जनराज ने 'चित्र' का लक्षण तो नहीं दिया है किन्तु उसके भेदोपभेद के लक्षण तथा उदाहरण दिये हैं।[1] दोनों ही ग्रन्थों में 'चित्र' के अधिकांश भेदों के उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं, जिनमें 'बन्ध' तथा 'बन्धेतर', दोनों ही वर्गों की रचना है। पहले कहा जा चुका है कि 'स्थानचित्र' में हिन्दी के कवियों को 'निरोष्ठ' से ही अधिक प्रेम रहा, तथा 'स्वरचित्र' में 'अमात्रिक' से। अक्सर ही हिन्दी में 'निरोष्ठ' और 'अमात्रिक' को एक ही छन्द में समाविष्ट कर दिया गया है। 'स्थानचित्र' तथा 'स्वरचित्र' के अन्य प्रकारों की रचना हमें हिन्दी में बहुत ही कम मिलती है। इन दोनों कवियों ने भी 'स्थान' तथा 'स्वरचित्र' में केवल 'निरोष्ठ' तथा 'अमात्रिक' की ही रचना की है।[2] जगतसिंह ने तो दोनों को मिलाकर ही छन्द की रचना की है।[3] इसके अतिरिक्त 'प्रश्नोत्तर' के विभिन्न भेदों, जैसे बहिर्लापिका तथा अन्तर्लापिका में शासनोत्तर, प्रश्नोत्तर, अनेकोत्तर, शृंखलोत्तर, व्यस्तसमस्त, आद्यक्षरी, मध्याक्षरी तथा गतागत के छन्द भी इन्होंने लिखे हैं।[4] 'गतिचित्र' में अश्वगति, गोमूत्रिका, त्रिपदी तथा कामधेनु का विवेचन भी दोनों कवियों में मिलता है।[5] 'बन्ध' अथवा 'आकारचित्र' के विवेचन में कुछ अन्तर दोनों में है और वह स्वाभाविक है, फिर भी बहुत अधिक बन्ध समान ही हैं। 'कविता-रस-विनोद' में हमें—१. कपाटबन्ध, २. धनुषबन्ध, ३. खड्गबन्ध, ४. हार बन्ध, ५. पर्वत बन्ध, ६. पायजेब बन्ध, ७. डोरी बन्ध, ८. थन बन्ध, ९. वृक्ष बन्ध, १०. कलंगी बन्ध, ११. घण्टा बन्ध, १२. नाग बन्ध, १३. नागयुग्म बन्ध, १४. चौपड़ बन्ध, १५. छत्र बन्ध तथा १६. मुरज बन्ध के चित्र मिलते हैं।[6] जगतसिंह ने भी इसी प्रकार १. कपाट, २. हार, ३. धनुष, ४. कमल, ५. चौकी, ६. खड्ग, ७. मुरज, ८. मेरु, ९. डमरू तथा १०. चतुर्दलकमल जैसे बन्धों की योजना की है।[7] पुस्तक के खण्डित होने के कारण कहा नहीं जा सकता कि अन्य कितने प्रकार के बन्धों की योजना इस पुस्तक में थी। इनके अतिरिक्त कामधेनु, सर्वतोभद्र, चरणगुप्त आदि चित्र दोनों ही पुस्तकों में हैं।[8]

इन दोनों पुस्तकों (कविता-रस-विनोद तथा चित्रकाव्य) का विवेचन अत्यन्त ही क्रमहीन तथा अस्पष्ट है। भाषा भी अत्यन्त ही अशुद्ध है। 'चित्रकाव्य' के विवेचन तथा

१. आर्य भाषा पुस्तकालय, ना० प्र० सभा काशी, याज्ञिक संग्रह, हस्तलेख संख्या ९७/२५, पत्रांक २७३ से ३०० तक
२. चित्रमीमांसा, छन्द संख्या १०२; कविता-रस-विनोद, पत्रांक २७६, छन्द संख्या ८ तथा पत्रांक २८१, छन्द संख्या २४, २५
३. उपरिवत्
४. उपरिवत्, छन्द संख्या १०८ से १४७ तक; कविता-रस-विनोद (जनराज), विनोद २-३, पत्रांक २८५ से २९० तक
५. उपरिवत्
६. पत्रांक २९० से ३०० तक
७. चित्रमीमांसा, छन्द संख्या १४७ से १५७ तक
८. कविता-रस-विनोद, पत्रांक २८४, २९४, २९५, २९३; चित्रमीमांसा, छन्द संख्या १५१, १५२, १५५-१५६

स्पष्टीकरण में इन पुस्तकों से कोई अधिक सहायता नहीं मिलती। 'बन्धों' की योजना में भी कोई विशेष चमत्कार नहीं है। एक ही छन्द से कई बन्ध बनाये गये हैं, पर उनमें उत्कृष्टता नहीं आती। उदाहरणतः 'गोमूत्रिका' के छन्द को लेकर ही 'अश्वगति' की रचना।[१] 'गोमूत्रिका' में दोहे की दोनों ही पंक्तियों में (क्रमशः प्रथम तथा चतुर्थ चरणों में) हर दूसरा वर्ण समान होता है अतः 'अश्वगति' चित्र तो बनेगा ही पर उसमें कोई चमत्कार न होगा। इसी प्रकार 'षोडशदल कमल' के छन्द में, जहाँ प्रत्येक युग्मवर्ण एक होता है, 'गोमूत्रिका' और 'अश्वगति' स्वतः है। किन्तु इस छन्द से इनकी योजना में कोई चमत्कार नहीं आता।

जनराज ने 'कविता-रस-विनोद' में 'चित्रकाव्य' के प्रसंग में ही एक छन्द 'यमक' और एक 'श्लेष' का तथा आदि मध्य 'सिंहावलोकन' के भी कुछ छन्द दिये हैं। इस प्रकार की योजना विवेचन की अव्यवस्था का परिचायक है। इसी प्रकार 'षष्ठ', 'सप्त' तथा 'अष्ट विधान' तथा 'अष्यर चितावनीं' नाम से तीन छन्द हैं। चित्रकाव्य में इस प्रकार की रचनाओं का कहीं उल्लेख नहीं हैं और न इसका औचित्य ही है। स्वयं जनराज ने भी इनके विषय में बहुत अधिक कुछ नहीं कहा है। विधान का उनका लक्षण है—

"क्रम ते वरने क्रम जथा तेई कहत विधांन।
षट विधि है पुनि सप्त विधि अष्ट विधांन सुजान ॥"[२]

प्रस्तुत लक्षण अत्यन्त अस्पष्ट है। उदाहरण से केवल इतना स्पष्ट होता है कि छन्द की प्रथम पंक्ति में ६, ७ अथवा ८ वस्तुओं के नाम आते हैं और अन्य पंक्तियों में इन्हीं वस्तुओं से सम्बद्ध नाम इसी क्रम में होते हैं। 'अक्षर चिंतामणि' तो केवल बुझौवल है। अतः इनका 'चित्रकाव्य' में कोई महत्त्व नहीं। सब मिलाकर इन दोनों पुस्तकों से 'चित्रकाव्य' के विवेचन में कोई विशेष सहायता नहीं मिलती।

हरिकवि रचित 'कविवल्लभ' अमृतकवि रचित 'चित्रविलास' तथा रूपप्रधान रचित 'चित्रकाव्य' में भी चित्रकाव्य का विवेचन हुआ है। 'कविवल्लभ' प्रधानतः 'काव्यदोषों' के वर्णन के उद्देश्य से लिखा गया था किन्तु अन्त में कुछ छन्द 'चित्रकाव्य' के भी हैं।[3] इनमें कुछ छन्द हैं तथा कुछ केवल चित्र ही हैं। 'चित्रकाव्य' के लक्षण की दृष्टि से इसका कोई विशेष महत्त्व नहीं है, पर हरिकवि ने 'चित्र' के अन्तर्गत 'भाषा-समावेश' की बहुत अधिक रचना की है।[४] कई भाषाओं के शब्दों को मिलाकर छन्दरचना ही 'भाषा-समावेश' कहलाती है। इस प्रकार 'चित्रकाव्य' का विस्तार एक और क्षेत्र में होता है।

---

१. चित्रमीमांसा, छन्द संख्या १४७

२. कविता-रस-विनोद, पत्रांक २७६, छन्द संख्या १४

३. "तनै रामधन सूर कों हरि कवि किय मनुवास।
कवि वल्लभ ग्रंथहि रच्यो कविता दोष प्रकाश ॥"३९॥
—कविवल्लभ, हरिकवि, पृ० १२६, हस्तलिखित—आर्यभाषा पुस्तकालय, ना० प्र० स०, काशी, रत्नाकर संग्रह

४. उपरिवत्, पृ० ११९ से १२३ तक

'चित्रविलास' का प्रथम पत्र नहीं होने के कारण 'चित्र' के लक्षण के सम्बन्ध में कवि का विचार ज्ञात नहीं होता। सम्पूर्ण पुस्तक 'चित्रकाव्य' की ही है, किन्तु प्रारम्भ के कुछ छन्द 'चित्रकाव्य' के नहीं हैं। छन्द संख्या ६५ से 'चित्रकाव्य' की रचना हुई है। पुस्तक के चित्र-विवेचन में किसी क्रम का निर्वाह नहीं है, शैली लक्षण और उदाहरण वाली है। प्रस्तुत पुस्तक में 'बन्धचित्रों' की रचना नहीं है। अमात्रिक, निरोष्ठ्य, ओष्ठ्य के अतिरिक्त अन्तर्लापिका, बहिर्लापिका अथवा प्रश्नोत्तर के विभिन्न भेदों के लक्षण तथा उदाहरण हैं।[1] लक्षण तथा क्षेत्रविस्तार की दृष्टि से अमृतकवि की यह रचना विशेष महत्त्व नहीं रखती। इसमें वर्णित 'चित्र' के सारे भेद भी पहले ही आ गये हैं। यदि कुछ अतिरिक्त वर्णन प्रस्तुत पुस्तक में हैं भी तो वह 'चित्रकाव्य' की रचना नहीं है। उसके अन्तर्गत कतिपय छन्दों में विभिन्न वस्तुओं जैसे स्वामिकार्तिक बाहन, लाहोरकोट, बैलगाड़ी आदि का रूपवर्णन है।

रूपप्रधान रचित 'चित्रकाव्य के प्रारम्भिक पाँच छन्द नहीं हैं, फलतः 'चित्र' का कोई लक्षण प्राप्त नहीं होता। पुस्तक बहुत छोटी है और इसमें गतागतअनेकोत्तर, व्यस्तसमस्त, अन्तर्लापिका, बहिर्लापिका, मन्त्रीगति, अश्वगति, कपाटबन्ध, त्रिपदी, अर्धगुप्त, चरणगुप्त, पर्वतबन्ध, चक्रबन्ध (चतुरर), सर्वतोमुख, कमलबन्ध, धनुषबन्ध तथा डमरुबन्ध चित्र हैं।[2] कैथी लिपि में होने से भाषा अशुद्ध है। कहीं लक्षण है, कहीं केवल उदाहरण। लक्षण-विवेचन या अन्य दृष्टियों से इसका कोई महत्त्व नहीं है।

'चित्रकाव्य' के विवेचन की दृष्टि से काशिराज की 'चित्रचन्द्रिका' का स्थान सर्वोपरि है। सम्पूर्ण ग्रन्थ में केवल 'चित्रकाव्य' की ही रचना, विवेचन तथा विश्लेषण है। ग्रन्थ का प्रमुख आधार 'सरस्वतीकण्ठाभरण' है, यत्र-तत्र अन्य ग्रन्थों से भी सहायता ली गई है। काशिराज ने स्वयं अपनी ओर से भी कुछ नवीन चित्ररचनाओं का समावेश किया है। अन्य आचार्यों की तरह काशिराज ने भी 'चित्र' का कोई लक्षण नहीं दिया वरन् लक्षण का नाम लेकर भी, 'चित्र' के विभिन्न भेदों का नामोल्लेख ही किया है। प्रारम्भ में कवि ने केशवदास तथा भिखारीदास के समान ही 'चित्रसमुद्र' के विस्तार तथा अगम्यता का बोध कराते हुए चित्ररचनाओं की विभिन्न मान्यताओं का उल्लेख किया है—

"चित्र समुद्र अपार कोई कवि थाह न ल्यायो।
मैं अति ही बुधिहीन कछुक ग्रंथन बल गायो॥
अध ऊरध बिनु विंदु युत एकहि जानो।
रल डल सष वब य ज हि सकल समता करि मानो॥

---

१. चित्रविलास, रचयिता अमृतकवि, हस्तलेख—आर्य भाषा पुस्तकालय, ना० प्र० सभा, काशी, याज्ञिक संग्रह, सं० २२८/२५ (निरोष्ठ्य, अमात्रिक आदि छन्द संख्या ६५, ६६, ६७ तथा प्रश्नोत्तरादि, छन्द संख्या ८५ से १०८ तक)

२. चित्रकाव्य, आर्य भाषा पुस्तकालय, सभा संग्रह, हस्तलेख संख्या ७८६

अक्षर मोटे पातरे इनको दोष न देखिये।
क्रम भग होय नहिं चित्र को सो विचार उर लेखिये॥"[1]

'चित्रचन्द्रिका' में 'चित्रकाव्य' का विभाजन एक नवीन ढंग पर किया गया है। आनन्दवर्धन ने 'चित्रकाव्य' के 'शब्दचित्र' और 'अर्थचित्र' दो भेद किये थे। किन्तु 'चित्र' से उनका तात्पर्य सम्पूर्ण अलंकारकाव्य का था और इस प्रकार 'शब्दचित्र', 'अर्थचित्र' और 'उभयचित्र' का तात्पर्य 'शब्दालंकार', 'अर्थालंकार' तथा 'उभयालंकार' है। भूमिका में स्पष्ट किया जा चुका है कि सम्प्रति 'चित्रकाव्य' संज्ञा चित्रालंकार में परिगणित रचनाओं के अर्थ में रूढ़ हो गई है। काशिराज ने संस्कृत में गृहीत 'चित्रकाव्य' के इस अर्थ को तो छोड़ दिया है, पर विभाजन के नामकरण को अपनाकर 'चित्रकाव्य' के तीन भेद 'शब्दचित्र', 'अर्थचित्र' तथा 'संकरचित्र' किये हैं—

"अब शब्दचित्र बखानु। पुनि अर्थचित्रहि जानु।
संकर सुचित्रहि मानु। त्रय भेद चित्रहि आनु॥"[2]

हिन्दी के अन्य किसी भी आचार्य ने 'चित्रकाव्य' को इन वर्गों में विभाजित नहीं किया है। इस विभाजन का परिणाम यह हुआ कि चित्रचन्द्रिका में 'चित्रकाव्य' का क्षेत्र इतना अधिक विस्तृत बन गया है कि इसके अन्दर ही श्लेष तथा यमक अपने सारे भेदों के साथ समाविष्ट हो गये हैं। यह इस विभाजन का दोष है।

'शब्दचित्र' के छह भेदों का उल्लेख कवि ने किया है और ये सारे भेद 'सरस्वती-कण्ठाभरण' से लिये गये हैं। इनके उल्लेख का क्रम भी भोज का ही है—

"वर्ण स्थान स्वर गनो आकृति गति पुनिबंध।
चित्र भेद षट् जानिये वरनत कवि करसंध॥"[3]

भोज ने 'आकारचित्र' तथा 'बन्धचित्र' के पारस्परिक अन्तर को स्पष्ट नहीं किया था। बाद में विद्याधर ने उसके अन्तर को स्पष्ट करने की चेष्टा की पर इस विभाजन की निरर्थकता से वे भी सहमत हैं।[4] काशिराज ने भी इन दोनों चित्रभेदों के अन्तर को स्पष्ट करने की आवश्यकता समझी है किन्तु इस स्पष्टीकरण में उन्होंने विद्याधर का ही सहारा लिया है। शैली उन्होंने प्रश्नोत्तर की अपनाई है, ताकि इस प्रकार की शंकाओं का समाधान हो सके—

प्रश्न—

"आकृति बंध विभेद तें, कहे चित्र द्वै रीति।
तिनके लखियत रूप सम कहौ भेद करि नीति॥

---

१. चित्रचन्द्रिका, पृ० ५, छन्द संख्या ५

२. उपरिवत्, पृ० ६, प्रकाश १, छन्द संख्या १

३. उपरिवत्, पृ० ६-७, प्रकाश १, छन्द संख्या ६

४. द्रष्टव्य, एकावली, सप्तम उन्मेष, कारिका ८ की वृत्ति तथा प्रस्तुत पुस्तक की पृष्ठ संख्या ३४ की पाद टिप्पणी ३ और ४

जो आकार सुबंध है बंधु सु है आकार।
द्वै प्रकार कैसे बनें कवि कुल करो विचार॥

उत्तर—

"जो आकृति विधि नें रची ताही क्रम अनुसार।
न्यास वर्ण को कीजिये सो जानो आकार॥
विधि कृत वारिज में लखो प्रथम कोश पुनि पात।
त्योंही पढ़िये वर्ण तहँ यह आकृति अबदात॥
या क्रम को तजि बुद्धि बल कीजे और प्रकार।
वर्ण न्यास जा चित्र में सोई बंध विचार॥"[1]

विद्याधर के अनुसार विधाता की रचनाओं के आकार के रूप में यदि वर्णविन्यास किया जाय तो वह 'आकारचित्र' होता है और यदि मनुष्य द्वारा रचित वस्तुरूपाकार वर्णविन्यास हो तो उसे 'बन्धचित्र' की संज्ञा मिलेगी। काशिराज इससे एक पग और आगे बढ़कर कहते हैं कि विधाता द्वारा रचित वस्तु के रूप में भी यदि वर्णविन्यास हो पर उसके उद्धार का क्रम दूसरा हो तो वह 'बन्धचित्र' ही कहा जायगा। उदाहरण के रूप में उन्होंने कमल को रखा है। विधाता के द्वारा रचित कमल में पहले कोश होता है फिर पंखुड़ियाँ होती हैं। अतः यदि वर्णों का न्यास इस रूप में हो कि उद्धारक्रम में पहले कोश के वर्ण पढ़े जायँ फिर पंखुड़ियों के, तब यह कमल 'आकारचित्र' के अन्तर्गत होगा। इस क्रम के अतिरिक्त यदि वर्णविन्यास तथा उद्धार का क्रम कोई अन्य हो तो कमलाकार चित्र होने पर भी वह 'बन्धचित्र' ही होगा। सिद्धान्त में भले ही काशिराज ने विद्याधर के समान दोनों चित्रप्रकारों में अन्तर देखा है पर व्यवहार में उन्होंने भी इस विभाजन की व्यर्थता ही पाई है। यही कारण है कि जहाँ उन्होंने 'बन्धचित्र' के अन्तर्गत ३५ बन्धों का विवेचन किया है, वहाँ 'आकारचित्र' में केवल अष्टदलकमलाकार तथा कदलीवृक्षाकार के ही उदाहरण दिये हैं।[2]

'बन्धचित्र' के अन्तर्गत 'गुणबन्धचित्र' नामक एक नवीन प्रभेद की कल्पना काशिराज ने की है।[3] भोजराज ने 'चित्र' के छह भेदों के अतिरिक्त 'गोमूत्रिका' तथा 'धेनु' का अलग से विवेचन किया था। 'गुणबन्ध' के अन्तर्गत ही काशिराज ने 'धेनु' को भी स्थान

१. चित्रचन्द्रिका, प्रकाश-४, पृ० ३०-३१, छन्द संख्या १ से ५ तक
२. उपरिवत्, पृ० ३३-३४, छन्द-९, १०-११
३. "आकृति अथवा गुननि सों कवि बाँधे जहँ छन्द।
बंधचित्र तासूं कहत जिनकी बुद्धि अमंद॥"

—उपरिवत्, प्रकाश ६, पृ० ५८ छन्द १

काहू गुण को बाँधिये जहँ आकृति को छोड़ि।
सो गुणबंध विचित्र यह चित्र कहत कवि जोड़ि॥१॥"

—उपरिवत्, प्रकाश-७, पृ० १११

दिया है, किन्तु 'धेनु' के केवल एक ही भेद 'शतधेनु' का उल्लेख 'चित्रचन्द्रिका' में हो सका है।[१] इस वर्ग में विवेचित अन्य चित्रबन्ध, जैसे 'वृक्ष' अथवा 'स्थाननामगुणबन्ध', 'भाषा छलगुणबन्ध', 'अनेकभाषागुणबन्ध', 'एकाधिकभाषागुणबन्ध' तथा 'कल्पवृक्षबन्ध', बिल्कुल नवीन हैं।[२] इनका विवेचन अन्यत्र नहीं हुआ है। इनमें 'वृक्ष' अथवा 'स्थाननाम-गुणबन्ध' की विचित्रता यही है कि छन्द में अनेक वृक्षों अथवा स्थानों के नाम दीख पड़ते हैं किन्तु अर्थ करने में वे सारे नाम लुप्त हो जाते हैं। अन्य शब्दों के साथ अन्वित होकर छन्द में ही खो जाते हैं।[३] इसे वस्तुतः श्लेष का ही एक रूप कहा जा सकता है। इसी प्रकार 'भाषाछलगुणबन्ध' के अन्तर्गत ऐसे छन्द आते हैं जो प्रथम दृष्टि में यह आभास देते हैं कि उनमें एकाधिक भाषाओं का प्रयोग है, किन्तु अर्थ करने पर वे किसी एक ही भाषा के सिद्ध होते हैं।[४] 'अनेकभाषा' अथवा 'एकाधिकभाषागुणबन्ध' की रचना तो बहुत पहले से होती रही है[५] किन्तु शास्त्रीय-विवेचन में इन्हें विधिवत् स्थान काशि-राज ने ही दिया है। इनके अन्तर्गत ऐसे छन्दों का स्थान है जिनमें एक से अधिक अथवा अनेक भाषाओं के शब्दों का प्रयोग एक साथ ही किया जाता है। 'कल्पवृक्षगुणबन्ध' का उल्लेख 'चित्रचन्द्रिका' के पूर्व नहीं मिलता। यह बन्ध 'धेनु' का ही एक अन्य रूप है। 'धेनु' और 'कल्पवृक्ष' में अन्तर यही है कि 'धेनु' में जहाँ केवल एक ही छन्द होता है और उसी के अन्दर से अनेक छन्द निःसृत होते हैं, वहाँ 'कल्पवृक्ष' में कई छन्दों को साथ मिलाकर लिखा गया है। पुनः उनके अन्दर से एकाधिक भाषाओं के अन्य अनेक छन्द निकलते हैं। काशि-राज ने 'कल्पवृक्षगुणबन्ध' का निम्न लक्षण दिया है—

"सूधे क्रम तें बाँचि पुनि काहू-काहू रीति।
भाषा छन्द अनेक जहँ कल्पवृक्ष की नीति॥"[६]

इस प्रकार 'कल्पवृक्षचित्र' 'अनेकभाषाचित्र', 'गति' तथा 'धेनुचित्रों' का सम्मिलित रूप है।

'वर्णचित्र' के भेदों के विवेचन में काशिराज ने 'सरस्वतीकण्ठाभरण' का पूर्णतः अनुकरण किया है। एकाक्षर, द्वयक्षर, त्र्यक्षर, चतुरक्षर, सर्वाक्षर तथा स्वरव्यंजन (स्वराक्षर) इन छह उपभेदों में बाँटकर 'वर्णचित्र' का विवेचन 'चित्रचन्द्रिका' में हुआ है।[७]

१. चित्रचन्द्रिका, प्रकाश ७, पृ० १४५, छन्द संख्या ३६
२. उपरिवत्, छन्द संख्या २ से १२ तक
३. उपरिवत्, छन्द संख्या ३-४
४. उपरिवत्, छन्द संख्या ५ से १० तक
५. रूद्रट में भी इसका उल्लेख; भट्टिकाव्य में सम्पूर्ण १३वें सर्ग में इसकी रचना; भोज के सरस्वतीकण्ठाभरण, हेमचन्द्र के काव्यानुशासन आदि में इसकी योजना।
६. चित्रचन्द्रिका, प्रकाश ७, पृ० १२१, छन्द संख्या ११
७. "इक व्यंजन ते चारि लगि स्वर व्यंजन सब भाखि।
अरु सरिगम व्यंजन कह्यो ग्रन्थन मत रस चाखि॥७॥"
—उपरिवत् प्रकाश १, पृ० ७, छन्द संख्या ७

ये सारे के सारे उपभेद 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में हैं। भोज के 'मुरजाक्षर' तथा 'छन्दोक्षर व्यंजन' को यहाँ छोड़ दिया गया है। हिन्दी में इनकी रचना हुई भी नहीं। 'स्थानचित्र' के अन्तर्गत काशिराज ने दस उपभेदों का वर्णन किया है। वे हैं—

१. निष्कण्ठ्य, २. निस्तालव्य, ३. निर्मूर्द्धन्य, ४. निर्दन्त्य, ५. निरोष्ठ, ६. कण्ठ्य, ७. तालव्य, ८. मूर्द्धन्य, ९. दन्त्य तथा १०. ओष्ठ्य।[१]

'स्थानचित्र' के छन्दों की रचना का आधार उच्चारणस्थान होता है, जैसे किसी विशेष स्थान से उच्चरित वर्णों से ही सम्पूर्ण छन्द की रचना अथवा किसी छन्द में किसी विशेष स्थान से उच्चरित वर्णों का राहित्य। इसी आधार पर काशिराज ने उपर्युक्त दस भेदों की कल्पना की है।

'स्वरचित्र' के विवेचन में 'चित्रचन्द्रिका' में हिन्दी की प्रकृति और रचनाप्रणाली का पूर्ण ध्यान रखा गया है। यही कारण है कि संस्कृत आचार्यों का अन्धानुकरण न कर लेखक ने तीन प्रकार के 'स्वरचित्रों' का विवेचन किया है—

१. सर्वलघु स्वरचित्र, २. सर्वगुरु स्वरचित्र, तथा ३. निर्मात्रिक।[२] इसके उपरान्त 'आकारचित्र' के दो भेदों अष्टदलकमलाकार तथा कदलीवृक्षाकार के लक्षण-उदाहरण हैं, जिनका विवेचन हो चुका है।

'गतिचित्र' के १८ भेदोपभेद दिये गये हैं जिनके अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के गतागत, प्रतिलोमानुलोम, डमरूगति, नवकोष्टगति, समस्त, सर्वतोभद्र, रथगति तथा अश्वगति का विवेचन हुआ है। साथ ही 'गतागत' के निम्न भेदों का विवेचन किया गया है—

(क) पादानुपाद गतागत, (ख) स्वस्तिक गतागत, (ग) अर्द्ध गतागत, (घ) तदक्षर तदर्थ गतागत, (ङ) भिन्नपदार्थ गतागत, (च) भाषान्तर गतागत तथा (छ) समस्तव्यस्त गतागत।[3]

'बन्धचित्र' के अन्तर्गत काशिराज ने कुल मिलाकर ३५ बन्धों का विवेचन किया है। इन बन्धों में 'गतिचित्र' के कुछ उपभेद जैसे त्रिपदी, गोमूत्रिका, अश्वगति, चरणगुप्त भी सम्मिलित कर लिए गये हैं। 'गोमूत्रिका' को तो हिन्दी के अधिकांश आचार्यों ने 'बन्धचित्र' के ही अन्तर्गत रखा है कारण इसका न्यास हमारे सम्मुख एक आकार प्रस्तुत करता है, किन्तु संस्कृत में वर्णों की गत्यात्मक प्रवृत्ति के अनुकूल इसे 'गतिचित्र' में ही स्थान

१. "निष्कंठहि कों आदि दै पंच स्थानी चित्र।
इक इक थानी पुनि कह्यो समुझि लीजियो मित्र॥"१॥
—चित्रचन्द्रिका, प्रकाश २, पृ० १६, छंद १

२. "गुरु लघु मत्ताभेद करि रचिये छन्द प्रवीन।
अति विचित्र स्वरचित्र यह कहत रसिक रस लीन।"
—उपरिवत्, प्रकाश ३, पृ० २६, छन्द १

३. उपरिवत्, प्रकाश ५ पृ० ३६ से ५६ तक

मिला था। 'त्रिपदी', 'अश्वगति' तथा 'चरणगुप्त' 'बन्धचित्र' के अन्तर्गत कदापि नहीं आ सकते। काशिराज ने 'बन्धचित्र' के दो प्रमुख भेद कर दिये हैं—'आकृतिबन्ध', तथा 'गुणबन्ध'।[1]

'गुणबन्ध' के अन्तर्गत विवेचित रचनाओं का उल्लेख ऊपर हो चुका है। विवेचन के औचित्य की दृष्टि से 'गुणबन्ध' की ये रचनाएँ 'बन्धचित्र' के अन्तर्गत नहीं गिनी जा सकतीं। 'आकारचित्र' और 'बन्धचित्र' का अन्तर स्पष्ट करते हुए 'बन्धचित्र' की जो रूपरेखा कवि ने निश्चित की है (जिसका विवेचन किया जा चुका है), उसकी सीमा में 'गुणबन्ध' का कोई भेद परिगणित नहीं हो पाता। वस्तुतः 'गुणबन्ध' नाम से काशिराज को 'शब्दचित्र' के एक सप्तम भेद की कल्पना करनी चाहिए थी, किन्तु भोजराज के अनुकरण पर चित्र के केवल छह भेद ही उन्होंने रखे। फलतः एक ओर तो उन्होंने 'आकारचित्र' और 'बन्धचित्र' के कृत्रिम तथा भ्रामक अन्तर को स्वीकार किया और दूसरी ओर 'गुणबन्ध' जैसे स्वतन्त्र वर्ग को 'बन्धचित्र' में ही अन्तर्भूत कर दिया।

इनके अतिरिक्त 'बन्धचित्र' के अन्तर्गत जिन चित्रों की रचना तथा विवेचन कवि ने किया है वे निम्न हैं—

१. विंशतिपत्र कमल, २. अष्टदल कमल, ३. चामर, ४. हल की कूंडि, ५. करमुष्टिका, ६. कमठ, ७. कपाट, ८. सरपत्र, ९. चटाई, १०. अग्निकुण्ड, ११. पर्वत, १२. चक्र, १३. द्विचतुष्चक्र, १४. विवडित चक्र, १५. बीढ़ी या विडिका, १६. द्विश्रृंगाटक, १७. छत्र, १८. द्वितीय छत्र, ((क) एकदण्ड छत्र (ख) द्विदण्डछत्र), १९. पताका, २० ध्वजा, २१. चौपड़, २२. मुरज, २३. धनुष, २४. खड्ग, २५. माला, २६. मयूर, तथा २७. कामधेन्वाकार।[2]

प्रस्तुत सूची में कई बन्ध ऐसे हैं जिनका उल्लेख पूर्वाचार्यों द्वारा नहीं हुआ है। 'गतिचित्र' तथा 'बन्धचित्र' के उपभेदों के वर्णन में लेखक ने पर्याप्त सावधानी नहीं रखी है, फलतः एक ओर जहाँ 'बन्धचित्र' के अन्तर्गत उन्होंने 'त्रिपदी', 'अश्वगति' और 'चरणगुप्त' को सम्मिलित कर लिया है, वहीं 'स्वस्तिक' तथा 'डमरूबन्ध' को 'गतिचित्र' में स्थान दिया है। 'स्वस्तिक' को संस्कृत में भी 'बन्धचित्र' ही माना गया है।[3] 'डमरूचित्र' की

१. "आकृति अथवा गुननि सों कवि बांधे जहँ छन्द।
बन्धचित्र तासूं कहत जिनकी बुद्धि अमन्द॥"
—चित्रचन्द्रिका, प्रकाश ६, पृ० ५८, छन्द १

२. उपरिवत्, प्रकाश ६, पृ० ५८ से १११ तक।

३. द्रष्टव्य, प्रो० एच० आर० कपाडिया द्वारा लिखित बम्बई विश्वविद्यालय जरनल, सितम्बर, १९५५, कला संख्या ३० में प्रकाशित निबन्ध—'इलस्ट्रेशन्स आफ लेटर डायग्राम्स' पृ० १११, छन्द संख्या ९३ तथा चित्र संख्या ४३

रचना संस्कृत में नहीं मिलती, यह हिन्दी का बन्ध है, किन्तु किसी आचार्य अथवा कवि ने इसे 'गतिचित्र' के अन्तर्गत नहीं रखा।

काशिराज ने अन्य आचार्यों की लीक से हटकर 'चित्रकाव्य' में 'अर्थचित्र' तथा 'संकरचित्र' की भी कल्पना की है।[१] उपर्युक्त छह भेद केवल 'शब्दचित्र' के ही थे। भोज ने केवल इन्हीं छह प्रकार की रचनाओं को 'चित्र' के अन्तर्गत माना था। 'अर्थचित्र' के अन्तर्गत काशिराज ने केशव द्वारा निर्देशित 'नियमाक्षर' (एकाक्षरादि शब्द) को प्रथम स्थान दिया है, किन्तु इन्हें उन्होंने 'एकाक्षर', 'द्वयक्षर' आदि की ही संज्ञा दी है।[२] इस संज्ञा के कारण 'वर्णचित्र' के अन्तर्गत विवेचित 'एकाक्षर', 'द्वयक्षर', से इस प्रकार की रचनाओं की अभिन्नता का भ्रम उत्पन्न होता है। ध्यातव्य है कि इन रचनाओं में भी चमत्कार वर्णाश्रित ही है, और इन्हें 'अर्थचित्र' के भेद के रूप में रखने का कोई औचित्य नहीं दीखता। केशवदास ने भी इनका स्थान 'वर्णचित्र' के अन्तर्गत ही दिया है। काशिराज के ऐसा करने का कारण सम्भवत: उनके नामकरण का दोष है।

इन रचनाओं के अतिरिक्त 'अर्थचित्र' के अन्तर्गत काशिराज ने 'प्रहेलिका', 'गूढ़काव्य', 'सूक्ष्मालंकार', 'बहिर्लापिका', 'अन्तर्लापिका' 'प्रश्नोत्तर' के विभिन्न भेद जैसे 'शासनोत्तर', 'प्रश्नोत्तर', 'एकानेकोत्तर', 'श्रृंखलोत्तर', 'अपह्नुति' तथा 'श्लेष' को स्थान दिया है।[3] इनमें 'सूक्ष्म', 'अपह्नुति' तथा 'श्लेष' निश्चित रूप से स्वतन्त्र शब्द अथवा अर्थ के अलंकार हैं और इनके सम्बन्ध में किसी प्रकार के मतभेद के लिए स्थान नहीं। काशिराज ने इनका विवेचन 'चित्र' के अन्तर्गत कर अपने विवेचन की सदोषता का ही प्रमाण दिया है। इस प्रकरण में विवेचित 'चित्र' के अन्य भेदों (प्रहेलिका, प्रश्नोत्तरादि) को 'अर्थचित्र' कहा जा सकता है, कारण इनका चित्रत्व बहुत दूर तक अर्थाश्रित भी होता है। 'श्लेष' का कुछ सीमित विचार 'चित्र' के अन्तर्गत भी सम्भव है। यद्यपि किसी अन्य आचार्य ने 'श्लेष' को 'चित्र' के अन्तर्गत स्थान नहीं दिया, परन्तु कवियों ने अपने काव्य में अन्य चित्ररचनाओं के साथ एकाध छन्द ऐसे भी रचे हैं जिनके दो से अधिक अर्थ होते हैं। माघ के 'शिशुपालवध' तथा आनन्दवर्धन के 'देवीशतक' जैसे ग्रन्थों में भी चित्ररचनाओं के क्रम में अर्थत्रयवाची श्लोकों का स्थान है।[४] हिन्दी के 'प्रवीनसागर' प्रभृति ग्रन्थों में तथा केशव की 'रामचन्द्रिका' में ऐसे छन्दों की रचना है जिनके तीन से लेकर सात अर्थ तक हैं।[५] सम्भवत: काशिराज ने इन्हीं रचनाओं को ध्यान में रखकर 'श्लेष' को 'चित्र' के अन्तर्गत स्थान दिया है। उदाहरण के रूप में उन्होंने जो छन्द उद्धृत किये हैं, उनमें दो, तीन, चार, पांच, छह तथा सात

---

१. चित्रचन्द्रिका, प्रकाश ८-९

२. उपरिवत्, प्रकाश ८, पृ० १४९ से १५२, छन्द सं० २ से ६ तक

३. उपरिवत्, प्रकाश ८

४. शिशुपालवध, सर्ग १९, छन्द ११६; देवीशतक, छन्द संख्या २९; चतुर्थ—छन्द संख्या १०३

५. प्रबीनसागर, लहर ६६, छन्द संख्या ६ (सात अर्थ), छन्द संख्या ७ (तीन अर्थ), छन्द संख्या १० (पाँच अर्थ); रामचन्द्रिका, पूर्वार्ध, प्रकाश १५, छन्द संख्या ११ (तीन अर्थ)

अर्थ तक निकलते हैं।[1] फिर भी 'श्लेष' का विवेचन स्वतन्त्र अलंकार के रूप में ही अपेक्षित है, 'चित्र' के एक भेद के रूप में नहीं। संस्कृत तथा हिन्दी के अन्य सभी आचार्यों ने दो से अधिक अर्थोंवाले 'श्लेष' को भी 'श्लेष अलंकार' के अन्तर्गत ही माना है।

'संकरचित्र' के अन्तर्गत काशिराज ने 'यमक' के विभिन्न भेदों का विवेचन किया है। काशिराज द्वारा कथित 'चित्र' का यह वर्ग बिल्कुल अर्थहीन है। कारण काव्यशास्त्र में 'यमक' का विवेचन प्रारम्भ से ही स्वतन्त्र अलंकार के रूप में हुआ है। इतना अवश्य है कि 'देवीशतक', 'लक्ष्मीसहस्र' आदि काव्यग्रन्थों में चित्ररचनाओं के साथ ही 'यमक' की रचनाएँ भी सम्मिलित हैं। 'प्रतिलोमानुलोमश्लोक' को दण्डी ने 'यमक' के अन्तर्गत ही स्थान दिया था, किन्तु अन्य आचार्यों ने उसे 'गतिचित्र' मान लिया। काशिराज ने भी 'प्रतिलोमानुलोम' को 'गतिचित्र' ही माना है। 'यमक' के अन्य भेदों को 'चित्रकाव्य' में परिगणित नहीं किया जा सकता।

चित्रकाव्य-विवेचन के क्षेत्र में गोकुल कवि के 'चित्रकलाधर' का विशिष्ट स्थान है। चित्र-वर्णन के प्रारम्भ में कवि ने पहले 'काव्यप्रकाश' 'अग्निपुराण', 'कविप्रिया' तथा 'काव्यनिर्णय' के विचारों को उद्धृत किया है, पुनः इस सम्बन्ध में अपने विचार लिखे हैं। चित्रविवेचन में गोकुल कवि ने प्रमुखतः भिखारीदास का आधार लिया है। विभाजन भी लगभग उन्हीं का स्वीकार किया है। 'लेखनीचित्र' को छोड़कर अन्य सभी 'चित्र', 'प्रश्नोत्तर', 'पाठान्तर' तथा 'वाणीचित्र' को कवि ने ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया है। 'लेखनीचित्र', 'बन्धचित्र' अथवा 'आकारचित्र' इन नामों में से गोकुल कवि ने किसी का भी प्रयोग नहीं किया है, वरन् सामान्यतः 'चित्रकावत्त' के नाम से ही सभी बन्धचित्रों को अभिहित किया है। इन बन्धचित्रों के अन्तर्गत गतिचित्रों को भी लिया गया है। 'चित्र' के लक्षण के सम्बन्ध में कवि ने स्वीकार किया है कि इसका कोई एक सामान्य लक्षण नहीं हो सकता, 'चित्र' के आकार तथा न्यास को देखकर ही लक्षण समझ लेना चाहिए—

"जो है आषर चित्र को सोई लक्षण जानि।
चमत्कार अवलोकिकै मन आनंद को मानि॥"[2]

इसके उपरान्त कवि ने पैंतालिस चित्रों की सूची दी है—

"कवि ग्रन्थन के पंथ लहि निजमति के अनुसार।
रचि पैंतालिस चित्र को जामे भेद अपार॥"[3]

सूची निम्न है—

"मध्याक्षर असि सिपर कटारी। धनु मुद्गर तिरसूल विचारी॥
चक्र दोय अंकुश मूसल कहि। चौकि पताका चंद्र दोय लहि॥

---

१. चित्रचन्द्रिका, प्रकाश ८, पृ० १७३ से पृ० २०३ तक

२. चित्रकलाधर, पृ० ५४, छन्द संख्या ४

३. उपरिवत्, पृ० ५५, छन्द संख्या ६

गिरि सुमेर डमरू द्वै कमलय । बाग अरन्य तड़ाग जंत्र द्वय ॥
छत्र दोय दुर्ग नाग मुकुट लहि । हार सितार मृदंग वृक्ष कहि ॥
चौपरि गज हय हयगति जानौ । गोमुषिका कपाट पहिचानौ ॥
मंत्रीमति अरु मंत्रि अश्वगति । कामधेनु पद आदि वरन जति ॥
शुभग सर्वतोभद्र बखानौ । रचि पैंतालिस चित्र बषानौ ॥
या में भेद अनेकन कीन्हें । मति अनुसार सुकवि मत लीन्हें ॥"[1]

इस प्रकार यद्यपि सूची में केवल ४५ ही चित्रों का नामोल्लेख किया गया है परन्तु पुस्तक में ६२ चित्रों का विवेचन हुआ है तथा उनके चित्र भी दिये गये हैं। इनमें से अधिकांश तो उपरिलिखित बन्धों के ही उपभेद हैं, किन्तु कुछ ऐसे भी हैं जो स्वतन्त्र चित्र हैं जैसे 'गजबन्ध' तथा 'अश्वबन्ध'।[2]

बन्धचित्रों के अतिरिक्त भिखारीदास की शब्दावली में ही गोकुल कवि ने 'प्रश्नोत्तर', 'पाठान्तर' तथा 'वाणीचित्र' का उल्लेख किया है। इन चित्रों के भेदोपभेद तथा परिभाषाएँ भी लगभग भिखारीदास की शब्दावली में ही हैं—

"प्रश्नोत्तर पाठांतरो अरु बानी के चित्र ।
तीनि प्रकार बखानिए चित्र कवित्त विचित्र ॥
प्रश्नोत्तर में भेद द्वै बरनै सुकवि प्रसंग ।
यक है अन्तरलापिका बहिरलापिका संग ॥
गुप्तो उत्तर जानिए व्यस्त समस्त बखानि ।
एकानेकोत्तर कहौ नागपाश पहिचानि ॥
है पुनि व्यस्तसमस्तक्रम कमलबन्ध को ठानि ।
शुद्ध गतागत शृंखला नौ विधि कहो बखानि ॥
बहुविधि अंतरलापिका शब्द अर्थ में होइ ।
बहिरलापिका बाहिरै छंदहि से कहि सोइ ॥"[3]

इनमें से कई उपभेदों के लिये कवि ने भिखारीदास द्वारा प्रदत्त लक्षण को ही उद्धृत किया है, अपनी ओर से उनमें कोई भी परिवर्तन नहीं किया है।[4] उपर्युक्त सूची में क्रम भी 'काव्यनिर्णय' का ही है। 'प्रश्नोत्तर', 'पाठान्तर' तथा 'वाणीचित्र' के उन्हीं उपभेदों की चर्चा गोकुल कवि ने भी की है, जिनका उल्लेख भिखारीदास ने किया है। 'वाणी-चित्र' के अन्तर्गत जहाँ भिखारीदास ने केशवदास के समान 'नियमित रचना' में २६ वर्णों से

१. चित्रकलाधर, छन्द संख्या ७
२. उपरिवत्, पृ० ९२-९३, चित्र संख्या ४४ तथा ४५
३. उपरिवत्, पृ० १०१, छन्द संख्या १ से ५ तक
४. व्यस्तसमस्तोत्तर, अनेकोत्तर, कमलबन्धोत्तर, शृंखलोत्तर, चित्रोत्तर, वाणीचित्र तथा अजिह्व-वर्णन

बने छन्द तक को ही स्थान दिया है, गोकुल कवि ने वर्णों की संख्या ३६ तक रखी है। इस प्रकार केवल स्वरों को छोड़कर नागरीलिपि के समस्त व्यंजनों का समावेश 'नियमित छन्द' में हो जाता है। यहाँ यह विचारणीय है कि जब किसी भी छन्द में ३६ वर्णों तक, यानी सभी व्यंजनों का प्रयोग होगा ही (मात्राएँ तो 'नियमित' में स्वीकृत हैं ही) फिर उस छन्द में चित्रता ही क्या होगी ? यों तो २६ या उससे कुछ कम वर्णों से रचित छन्दों के सम्बन्ध में भी यही कहा जा सकता है। संस्कृत के आचार्यों ने 'वर्णचित्र' के अन्तर्गत चार वर्णों तक के प्रयोग की ही व्यवस्था दी थी, किन्तु केशवदास ने उसे २६ तक बढ़ाया और गोकुल कवि ने ३६ तक। वर्णों की इस वृद्धि के कारण 'वर्णचित्र' अथवा 'नियमित' के चमत्कार का ह्रास ही हुआ। रीतिकवियों की परिपाटी के अनुसार ही गोकुल कवि ने इस प्रकरण में विभिन्न चित्रभेदों के लक्षण तो 'काव्यनिर्णय' से लिये हैं किन्तु उदाहरण उनके अपने हैं।

'व्यंकट बिहारि तुलसीभूषण' में बिहारीलाल चौबे ने 'चित्र' का लक्षण निम्न शब्दों में किया है—

"पद्म खड्ग आदिक विविध होत जहां आकार।
बरननि ते बरणत तहां कवि चित्रालंकार।।"[1]

स्पष्ट है कि लेखक ने प्रस्तुत लक्षण में मम्मट का आधार लिया है। प्रस्तुत पुस्तक की विशेषता यह है कि लक्षण तो कवि द्वारा रचित हैं किन्तु अधिकांश उदाहरण कवि ने तुलसी तथा बिहारी से लिये हैं। 'चित्र' के उदाहरण के लिए भी उन्होंने तुलसी की पंक्ति ही उद्धृत की है—

"मारु मारु धरु धरु धरु मारू।
सीस तोरि गहि भुजा उपारू।।"[2]

प्रस्तुत चौपाई से 'खड्गबन्ध' की रचना हो सकती है। इससे अधिक चित्रविवेचन में कवि ने कुछ नहीं लिखा है, केवल अन्त में 'कपाटबन्ध', 'अश्वगति', 'गोमूत्रिका' तथा 'चक्र' का नामोल्लेख कर दिया है।

लेखराज के 'गंगाभरण' में भी 'चित्रकाव्य' नाम से एक अलग अध्याय पुस्तक के अन्त में है, जिसमें 'शासनोत्तर', 'कमलवत्प्रश्नोत्तर', 'श्रृंखलोत्तर', 'व्यस्त-समस्त', 'अन्तादिवर्णप्रश्नोत्तर' तथा 'एकाक्षर' के लक्षण-उदाहरण हैं।[3] 'चित्र' की न तो कोई परिभाषा लेखराज ने दी है और न 'गंगाभरण' में किसी 'बन्ध' की ही योजना है।

'रसिक विहारी' अथवा 'रसिकेश' द्वारा रचित 'काव्यसुधाकर' में 'चित्र' के सम्बन्ध में हमें एक नवीन विवेचन मिलता है। प्रस्तुत ग्रन्थ में कवि ने अलंकार के 'चित्रालंकार', 'अर्थालंकार' तथा 'शब्दालंकार' तीन भेद माने हैं। 'चित्रालंकार' के अन्तर्गत उन्होंने केवल 'बन्धचित्रों' को स्थान दिया है। इस प्रकार चित्रालंकार-प्रकरण में कवि

---

१. व्यंकट बिहारी तुलसीभूषण, पृ० ६, छन्द २०

२. उपरिवत्, पृ० ६

३. गंगाभरण, पृ० ९७ से १०० तक

ने 'पीठबन्ध', 'कमलबन्ध' 'चक्रबन्ध' (दो प्रकार के) 'त्रिशूलबन्ध', 'खड्गबन्ध', 'मेरुबन्ध', 'नागबन्ध', 'छत्रबन्ध' तथा 'सारिकाबन्ध' इन दस बन्धों के छन्द तथा चित्र दिये हैं। इस सम्बन्ध में कवि का कथन है—

"अलंकार सो त्रिविध है, चित्र शब्द अरु अर्थ ।।
लक्षण लक्ष्य बखानहूँ, जानो सुजन समर्थ ।।
चित्र विरचि तिहि मध्य लिखि, छंद सु कोउ प्रकार ।।
पढ़ो जाय जो जुक्ति सों, सो चित्रालंकार ।।"[१]

दूसरी नवीनता जो कवि ने अपने विवेचनक्रम में दिखाई है वह है 'प्रश्नोत्तर' तथा उसके भेदों को 'चित्रालंकार' से इतर 'शब्दालंकार' के भेदों के रूप में देखना। संस्कृत तथा हिन्दी के लगभग सभी अन्य आचार्यों ने 'प्रश्नोत्तर' को 'चित्र' का ही एक भेद माना है किन्तु इस तथ्य से अवगत रहकर भी रसिकेश जी ऐसा नहीं मानते—

"अंतर्लापिकादि बहु जेते, रसिक बिहारी बरनौं तेते।
पै इन में शंका है भारी, सो किहि भाँति जाय निरवारी ।।
काऊ इन्हें चित्र में राखैं, कोऊ सुकवि शब्द में भाषैं ।।
कोऊ कहै अर्थ बिच धरिये, किहि के वचन प्रमानन करिये ।।
मैं निजमत में सबै दिढायो, यह विचार करिके ठहरायो ।।
इहाँ शब्द को मुख्य बखाने, शब्दालंकारहि में मानें ।।"[२]

अन्तर्लापिकादि के अन्तर्गत रसिकबिहारी ने 'अन्तर्लापिका', 'बहिर्लापिका' तथा इन दोनों के 'आद्यक्षरी', 'मध्याक्षरी' तथा 'अन्ताक्षरी' (तीन-तीन भेद), 'अनेकार्थ', 'एकार्थ' तथा अनेक प्रकार के 'कूट' का उल्लेख किया है और इनके लक्षण-उदाहरण दिये हैं। रसिकबिहारी द्वारा विवेचित 'अनेकार्थ' भिखारीदास का 'कमलबन्धोत्तर' तथा 'एकार्थ,' भिखारीदास का 'एकानेकोत्तर' और केशवदास का 'शासनोत्तर' है।[3]

१. काव्यसुधाकर, भाग २, पृ० ३४, कला १३, छन्द २, ३
२. उपरिवत्, पृ० ४५, कला-१४, छन्द संख्या ३३, ३४, ३५
३. तुलनीय :—

(क) काव्य सुधाकर, भाग २, कला १४, पृ० ४८, छन्द ४९ एवं काव्यनिर्णय, परि २१, छन्द २४-२५

(ख) "प्रश्न अनेकन को जहाँ उत्तर एकहि होय।
लखि जथार्थ बोधक सबै, एकारथ है सोय ।।"

—काव्यसुधाकर, भाग २, कला १४, पृ० ४८, छन्द ५०

"बहुत भाँति के प्रश्न को उत्तर एक बखानि।
एकानेकोत्तर वही, अनेकार्थ बलमानि ।।"

—काव्यनिर्णय, परि २१, छन्द १४

"दोय तीनि शासननि को एकहि उत्तर जानि।
शासन उत्तर कहत हैं बुध जन ताहिं बखानि ।।"

—कविप्रिया, प्रभाव १६, छन्द १६

तीसरी बात जो 'रसिकेश' के विवेचन में ध्यान देने की है वह है निश्चित वर्ण-संख्या वाले 'वर्णचित्रों' का छन्द के अन्तर्गत आकलन। केशवदास द्वारा विवेचित एकाक्षरादि 'वर्णचित्र' को जिसे भिखारीदास ने 'नियमित' की संज्ञा दी है, रसिकबिहारी ने छन्द-प्रकार के अन्तर्गत रखा है।[1] दण्डी से लेकर संस्कृत के लगभग सभी प्रमुख आचार्यों ने (जिन्होंने 'वर्णचित्र' का विवेचन किया है) इस प्रकार की रचनाओं को 'वर्णचित्र' की संज्ञा दी है तथा 'चित्र' के अन्तर्गत ही इनका विवेचन किया है। केशवदास की तरह ही रसिकबिहारी ने एकाक्षरादि क्रम में एक से लेकर २५ वर्णों की संख्या वाले छन्दों की रचना की है। इनके अरिरिक्त 'काव्यसुधाकर' में 'चित्रकाव्य' के सम्बन्ध में कोई महत्त्व-पूर्ण बात नहीं दीखती।

लछिराम ने 'रावणेश्वर कल्पतरु' में 'चित्र' का कुछ विस्तार से वर्णन किया है, किन्तु 'चित्र' के सम्बन्ध में उन्होंने कोई नई बात नहीं कही है। उनके द्वारा वर्णित 'चित्र' के लगभग सारे भेद पूर्वाचार्यों द्वारा विवेचित हो चुके हैं। लक्षण में भी उन्होंने कुछ विशेष नहीं कहा है। 'चित्र' के सम्बन्ध में उनका कथन है :—

"चित्राभूषण को यही कियो सुकवि संचार।
बरन दगध वृति विरति को नहिं विचार व्यवहार॥"[2]

वर्गीकरण के क्षेत्र में भी लछिराम ने किसी क्रम का अनुसरण नहीं किया है। न उन्होंने संस्कृताचार्यों द्वारा विभाजित 'वर्ण', 'स्थान', 'स्वर', 'आकार' तथा 'गतिचित्र' को ही ध्यान में रखा है और न हिन्दी आचार्यों के द्वारा कथित 'प्रश्नोत्तर', 'पाठान्तर', 'वाणी-चित्र' तथा 'लेखनीचित्र' जैसे वर्ग के रूप में ही अपने विवेचन को रखा है। 'चित्र' की उनकी सारी रचनाएँ मिली हुई हैं। प्रारम्भ में 'अमात्रिक' का एक उदाहरण है, फिर 'प्रश्नोत्तर' के बहिर्लापिका, अन्तर्लापिका, व्यस्तसमस्त, शृंखला, कमलबन्धोत्तर, प्रश्नोत्तर, गुप्तोत्तर, शासनोत्तर तथा नागफाँसोत्तर जैसे भेदों का वर्णन है। इसके उपरान्त पुनः एकाक्षर, द्वयक्षर का उदाहरण है, जिनका स्थान 'वर्णचित्र' के अन्तर्गत है। आगे कामधेनु, त्रिपदी, अश्वगति, गोमूत्रिका, मित्रगति, दुमुख आदि का वर्णन है जो 'गतिचित्र' के अन्तर्गत परि-गणित होते हैं। 'आकारचित्र' में—

१. कपाट, २. एकविंशदलपद्म, ३. डमरू (दो प्रकार के), ४. चौकी (दो प्रकार के), ५. चतुर्दल पद्म, ६. धनुष, ७. खड्ग, ८. ढाल, ९. वृक्ष, १०. छत्र, (दो प्रकार के), ११. मेरु, १२. चन्द्र, १३. चरणगुप्त तथा १४. हारबन्ध के छन्द तथा चित्र हैं। लछिराम ने चित्र-प्रकरण में बहुत कम स्थलों पर लक्षण दिये हैं, अधिकांश रचनाओं के छन्द तथा चित्र ही हैं।

'रावणेश्वर कल्पतरु' के उपरान्त गंगाधर अर्थात् 'द्विजगंग' द्वारा रचित 'महेश्वर-भूषण' में भी चित्र के दो-चार छन्द मिलते हैं, किन्तु लक्षण अथवा वर्गीकरण की दृष्टि से

१. काव्यसुधाकर, कला १६
२. रावणेश्वर कल्पतरु, एकादश कुसुम, पृ० २८९

इनका कुछ विशेष महत्त्व नहीं दीखता। अधिकतर पिष्टपेषण ही इस पुस्तक में हुआ है। 'गूढ़ोत्तर', 'प्रश्नोत्तर', 'खड्गबन्ध', 'कामधेनुबन्ध', 'पर्वतबन्ध' तथा 'मध्याक्षरी' के छन्द ही प्रस्तुत पुस्तक में उपलब्ध हैं।[१]

चित्रविवेचन के क्षेत्र में साधोगिरि गोस्वामी रचित 'कविशिक्षक' ग्रन्थ का भी थोड़ा महत्त्व है। जैसा कि पुस्तक के शीर्षक से ही प्रकट है, प्रस्तुत पुस्तक का उद्देश्य कवियों को शिक्षा देना है, अतः इस पुस्तक में बहुत सारे विषयों का समावेश है। लेखक ने 'दृष्टिकूट', 'पहेली' और 'अन्तर्लापिका' तथा 'बहिर्लापिका' को 'चित्रकाव्य' से अलग माना है। 'चित्रकाव्य' के अन्तर्गत उन्होंने केवल 'वर्णचित्र' तथा 'आकारचित्र' को ही स्थान दिया है।[२] लेखक द्वारा कथित 'चित्रकाव्य' का लक्षण निम्न है :—

"बरण युक्ति सों जो रचे चित्र अनेक प्रकार।
चित्र काव्य ताको कहत साधो बुद्धि अगार॥"[3]

'वर्णचित्र' के अन्तर्गत साधोगिरि ने एकाक्षरादि की रचना नहीं की है। उनका 'वर्णचित्र' अँगरेजी में प्रचलित acrostic (एक्रोस्टिक) का ही प्रतिरूप है, जिसे 'आद्यक्षरी' के एक भेद के रूप में देखा जा सकता है।[४] इस प्रकार की रचना में किसी भी कविता के समस्त चरणों के प्रथमाक्षर को लेने से निश्चित मनुष्य अथवा स्थानविशेष के नाम आते हैं। साधोगिरि द्वारा उदाहृत छन्द से भी कवि के ग्राम तथा जिला का नाम इसी पद्धति से निःसृत होता है। इस प्रकार की रचनाओं का प्रचलन कवि के काल में बहुत अधिक था।

प्रस्तुत पुस्तक में कवि ने 'भाषासमावेश' की रचना का भी एक उदाहरण दिया है।[५] इस उदाहरण को उस समय होनेवाली 'भाषासमावेश' की रचनाओं का प्रतिनिधि उदाहरण कहा जा सकता है। अँगरेजी, फारसी तथा हिन्दी के शब्दों के मिश्रण से प्रस्तुत छन्द में अत्यधिक चमत्कार आ गया है। इन रचनाओं के अतिरिक्त कवि ने 'अन्तादि-मुख-चित्र', 'कपाटबन्ध', 'कुठारबन्ध', 'नागबन्ध' तथा 'खड्गबन्ध' के उदाहरण भी दिये हैं।[६]

ब्रजभाषा में लिखनेवाले हिन्दी के अन्तिम आचार्य बिहारीलाल भट्ट ने अपने 'साहित्य सागर' में 'चित्रकाव्य' का विवेचन तनिक विस्तार से किया है। मम्मट ने एक ओर शब्दालंकार में 'चित्रालंकार' को स्थान दिया था और दूसरी ओर आनन्दवर्धन

१. महेश्वरभूषण, पंचम उल्लास
२. कविशिक्षक, पृ० ७७ छन्द १५१ से पृ० ८२ छन्द १५७ तक
३. उपरिवत्, पृ० ७७ छन्द १५१
४. उपरिवत्, पृ० ७७ छन्द १५२
५. उपरिवत्, पृ० ११६ छन्द ८७
६. उपरिवत्, पृ० ७८ से पृ० ८२ तक

के अनुकरण पर समस्त ध्वनिविहीन काव्य को 'चित्रकाव्य' कहा था। भट्ट जी ने इन दोनों को एक में ही समाहित कर दिया है। यों 'चित्र' को वे शब्दालंकार के अन्तर्गत भी रखते हैं :—

"शब्दालंकारन महै चित्रकाव्य हू होत,
आगे कहिहौं भेद युत, छमियौ बुद्धि उदोत।"[1]

यहाँ आगे से उनका तात्पर्य 'ध्वनिविहीन अधमकाव्य' के प्रसंग से है क्योंकि उसी स्थल पर उन्होंने 'चित्रकाव्य' की रचना की विभिन्न मान्यताओं तथा इस क्षेत्र में कवि को मिले विशेष अधिकारों का उल्लेख किया है।[2] यहाँ पर कवि ने 'चित्र' की परिभाषा दी है तथा उसके कतिपय भेदों के नाम गिनाये हैं :—

"चित्रकाव्य—तृतीय श्रेणी"

"यामें ध्वनि अरु व्यंग को चमत्कार नहिं होय,
तासें काव्य निकृष्ट यह भाषत सब कबि लोय।
चित्रकाव्य याकों कहत, भूषन चित्र विवेक,
है अक्षर की चातुरी या के भेद अनेक।"[3]

इसके उपरान्त कवि ने निरोष्ठ, अमात्रिक, एकाक्षर, द्वयक्षर, तृतीयाक्षर, चतुरक्षर, अन्तर्लापिका, बहिर्लापिका, प्रश्नोत्तर, प्रहेलिका, गतागत, प्रतिलोमानुलोम, चरणगुप्त, गोमूत्रिका, द्विपदी, त्रिपदी, चक्रबन्ध, धनुबन्ध, सर्वतोभद्र कमलबन्ध, असिबन्ध, धेनुबन्ध तथा तरुबन्ध का नामोल्लेख किया है।[4] कवि का कथन है कि 'चित्रकाव्य' के भेद

१. साहित्यसागर, भाग-२, तरंग १०, पृ० ३६४

२. "अर्ध बिन्दु नहिं लेखिये अरु विसर्ग अनुस्वार।
गुरु लघु होय न होय कछु यामें नहीं विचार॥
अंध बधिर क्रम रस रहित स्वर गुन होय न होय।
द्विगन गनागन आदि को यामें दोष न कोय॥
बव ज य र ल ड ल श ष स की या में समता जान।
इनमें भेद न मानिए कोविद करत बखान॥"
—उपरिवत्, तरंग १२, पृ० ५१२

३. उपरिवत्, तरंग—१२, पृ० ५११

४. एक निरोष्ठ कहावही, एक अमत्त बखान,
एकाक्षर उभयाक्षरी, तृतीय चतुर पहचान।
अंतर बाहिरलापिका प्रश्नोत्तर महँ जान,
पुनि प्रहेलिका गतागत अरु अनुलोम प्रमान।
चरनगुप्त, गोमूत्रिका, द्विपदी, त्रिपदी, लेख,
चक्रबन्ध धनुबन्ध अरु भद्रसर्बतो देख।
कमल बन्ध, असिबन्ध अरु धेनुबन्ध, तरुबन्ध,
औरों बन्ध अनेक हैं, जानत रचित प्रबन्ध।"
—उपरिवत्, तरंग १२, पृ० ५१२

यहीं समाप्त नहीं हो जाते वरन् और भी उनके अनेक भेद हैं—

"औरों बंध अनेक हैं, जानत रचित प्रबंध।
कछु कछु कहे इत निज मति के अनुसार,
है विचित्र गतिचित्र की, को कहि पावे पार।"[१]

भट्ट जी ने तृतीय काव्यप्रकार को उपर्युक्त 'चित्रकाव्य' से अभिन्न माना है। इसके सम्बन्ध में उनका कथन है--

"ध्वनि प्रधान जहँ काव्य है, सो उत्तम ठहराय,
गुनीभूत जहँ व्यंग है, सो मध्यम मन भाय।
जामे रचना वरन को करत चित्र बन जाय,
व्यंग भाव भूषन नहीं, भूषन चित्र कहाय।
केवल रचना वरन की ऊपर से दिखरात,
अक्षर अर्थ निकारिये, तब सब गुन दरसात।
हैं स्वतन्त्र याके नियम जानत चतुर सुजान,
चित्र काव्य यह काव्य को रूप तीसरो जान॥"[२]

यह सही है कि वर्ण-रचना के द्वारा ही जहाँ चित्र बनता है उसे 'चित्रकाव्य' कहते हैं गोकि इस प्रकार केवल बन्धों की ही रचना होती है, किन्तु यहाँ यह विचारणीय है कि यदि व्यंग्य, भाव तथा अलंकार से शून्य काव्य ही 'चित्रकाव्य' है तो केवल अलंकार-युक्त काव्य का स्थान कहाँ होगा ? स्पष्ट है कि भट्ट जी ने संस्कृताचार्यों के वर्गीकरण के औचित्य को नहीं समझा। साहित्यसागर में सर्वतोभद्र, कमल, धनुष, कामधेनु, चामर, असि, व्याघ्र तथा बन्दूक इन आठ बन्धों के चित्र भी दिये गये हैं।[३] उपर्युक्त सूची में चामर, व्याघ्र तथा बन्दूक अथवा आग्नेयास्त्र का नाम नहीं है। भट्ट जी ने यद्यपि उपर्युक्त चित्रकाव्य-सूची में 'प्रहेलिका' को भी रखा है किन्तु उन्होंने 'प्रहेलिका' तथा 'भाषासमावेश' का विवेचन स्वतन्त्र शब्दालंकारों के रूप में भी किया है।[४] भट्ट जी के विवेचन की ये

---

१. साहित्यसागर, भाग २, तरंग १२, पृ० ५१२

२. उपरिवत्

३. उपरिवत्, पृ० ५१३ से ५२० तक

४. सो शब्दालंकार के दस बिधि नाम विकास,
अनुप्रास अरु चित्र कह पुनरुक्ती परकास।
बदाभासपुनरुक्ति कह अरु प्रहेलिका सोय,
भाषासमक यमक सहित, वक्रोक्ती पुनि होय।
संयुत बिप्सा श्लेष यह दस बिधि नाम बखान,
उदाहरन लच्छन सहित आगे करत बखान।"

—साहित्यसागर, भाग २, पृ० ३५६-५७

प्रहेलिका विवेचन—उपरिवत्, दशम तरंग, पृ० ३६५
भाषा समक विवेचन—उपरिवत्, दशम तरंग, पृ० ३६७

कतिपय त्रुटियाँ यहाँ स्पष्ट दीख पड़ती हैं।

ईसा की बीसवीं शताब्दी में युग की प्रवृत्ति बदली तथा खड़ीबोली में अलंकार का कोई भी मौलिक ग्रन्थ नहीं लिखा जा सका। विवेचन-विश्लेषण का माध्यम व्रजभाषा के बदले अब खड़ीबोली-गद्य हो गया। जो कतिपय अलंकार के ग्रन्थ लिखे भी गये उनका एकमात्र उद्देश्य विद्यार्थियों की शिक्षा था, फलतः मौलिक विवेचन को उनमें स्थान न मिल सका। अलंकारों का काव्य के क्षेत्र में भी अब कोई महत्व न रह गया था, परिपाटी निभाने भर को ही कुछ अलंकारग्रन्थ बने। 'चित्र' को तो संस्कृत में ही 'कष्टकाव्य' कहा गया था, आधुनिक काल में युग की प्रवृत्ति चित्ररचना के अनुकूल बिल्कुल न रही और 'कष्टकाव्य' तथा 'नीरसकाव्य' कहकर इन रचनाओं की उपेक्षा की गई।[1] यहाँ तक कि जो

१. "प्राचीन कमलाकार धनुषाकार इत्यादि रूप में काव्य लिखे जायें उनको चित्र काव्य कहकर, शब्दालंकार के प्रभेद मानते हैं सो भूल है, क्योंकि शब्द में रहकर काव्य को शोभा करे वह शब्दालंकार है। सो उक्त काव्यों की लेखक्रिया काव्य की कुछ भी शोभा नहीं करती। यह तो अष्टवधानादि साधनवत् कवि की क्रिया-चातुरी मात्र है। ऐसे ही एकाक्षर काव्य को जानना चाहिए।"

'जसवंत भूषण'—ले० मुरारिदान, पृ० ७९

× × ×

हिन्दी अलंकार साहित्य—डॉ० ओम प्रकाश—पृ० २२९

अर्जुन दास केडिया के सम्बन्ध में विवेचन के क्रम में लेखक का निम्न कथन इस दृष्टि से ध्यातव्य—

'चित्र का इतना विस्तार खटकता है, पुराने आचार्यों की यह प्रवत्ति तो क्षम्य थी, परन्तु गद्य में अलंकारों के लक्षण लिखने वाला आचार्य यदि एक चित्र अलंकार में ११ पृष्ठ लगावे तो यह उसका पाठक के प्रति अत्याचार ही है।"

× × ×

उपरिवत्, पृ० २१८—"समय की प्रवृत्ति के अनुसार भानुकवि ने चित्र को सूक्ष्म नहीं बनाया।"

× × ×

'ध्वनि सम्प्रदाय और उसके सिद्धान्त',—भाग-१,—डॉ० भोला शंकर व्यास पृ० ३५२—"तृतीय कोटि (मध्यम) में समस्त अर्थालंकारमय काव्यों को तथा चतुर्थ (अधम) कोटि में शब्दाडम्बरमय काव्यों को लेंगे। प्रहेलिका या बन्धकाव्यों को हम भी काव्य नहीं मानते।"

× × ×

अलंकार मंजूषा, लालाभगवान दीन, पृ० १२

× × ×

द्रष्टव्य, पाद टिप्पणी ४, पृष्ठ ८७

× × ×

"— — — —शब्दालंकारों का अनुवाद करते समय आठ प्रकार के बन्धों का अनुवाद छोड़ दिया गया है। इसका एक कारण यह है कि इस समय हिन्दी कविता में इस पद-चातुरी को विशेष महत्व नहीं दिया जाता। ... ... यह कार्य कष्ट-साध्य तो है ही, आज के युग के लिये नितान्त असामयिक तथा अनुपयोगी भी है।"—अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग, भूमिका—पृ० २२, अनु०—राम लाल वर्मा

थोड़े बहुत अलंकारग्रन्थ लिखे भी गये उनमें से अधिकांश में 'चित्र' का नामोल्लेख तक नहीं किया गया।[1] जिन कतिपय ग्रन्थों में 'चित्र' का विवेचन हुआ भी वहाँ भी लेखक ने संस्कृत के आचार्यों के लक्षणों का अनुवाद ही किया है तथा उदाहरण हिन्दी के प्राचीन कवियों से दिये हैं। लेखक का अपना कुछ दीख नहीं पड़ता। अपवादस्वरूप केवल डॉ० रामशंकर शुक्ल 'रसाल' ने अपने ग्रन्थ 'अलंकार पीयूष' में चित्ररचनाओं के विवेचन-विश्लेषण की थोड़ी चेष्टा की है। किन्तु अपने अन्य ग्रन्थ 'चित्रचन्द्रिका' में 'चित्र' के पूर्ण विवेचन की प्रतिज्ञा कर वे प्रस्तुत स्थल पर इसे अधूरा ही छोड़ देते हैं,[2] गोकि 'चित्रचन्द्रिका' कभी लिखी नहीं जा सकी। यथास्थान हम इसका विवेचन करेंगे।

इस दृष्टि से खड़ी बोली में लिखे गये अलंकारग्रन्थों में सर्वप्रथम जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' अथवा 'भानुकवि' के 'हिन्दी काव्यालंकार' का स्थान है। 'भानुकवि' ने 'चित्र' का विवेचन शब्दालंकार के अन्तर्गत किया है तथा 'चित्र' के अन्तर्गत कमलबन्ध, निरोष्ठ, अमत्त, अन्तर्लापिका, बहिर्लापिका, दृष्टिकूटक, लोम-विलोम, गतागत तथा सिंहावलोकन, इन ९ भेदों का उल्लेख किया है।[3] 'प्रहेलिका' तथा 'भाषासमक' का विवेचन 'भानुकवि' ने स्वतन्त्र शब्दालंकारों के रूप में किया है। 'चित्र' की परिभाषा देते हुए वे कहते हैं—

"चित्र वर्ण विन्यास है, पदमादिक आकार।
गोरख धन्धा सम निरस, त्यागत सुकवि विचार॥"[4]

प्रस्तुत परिभाषा मम्मट के लक्षण का अनुवाद मात्र ही है। दोहे की दूसरी पंक्ति में निहित लेखक के विचार युग की प्रवृत्ति को द्योतित करते हैं। उदाहरण के छन्द अधिकांश केशव से लिये गये हैं। प्रस्तुत विवेचन में लेखक की कोई मौलिकता दृष्टिगोचर नहीं होती।

इसके अतिरिक्त 'भानुजी' के दूसरे ग्रन्थ 'काव्यप्रभाकर' में 'चित्र' का विवेचन तनिक विस्तार से हुआ है, किन्तु कोई नवीन बात वहाँ भी नहीं मिलती।

प्रस्तुत क्रम में दूसरा स्थान लाला भगवान दीन रचित 'अलंकार मंजूषा' का है। इस ग्रन्थ में भी 'चित्र' का कोई मौलिक विवेचन हमें नहीं मिलता। 'हिन्दी काव्यालंकार'

---

१. द्रष्टव्य, भूमिका, पृ० १२, पाद टिप्पणी १
२. अलंकारपीयूष (उत्तरार्ध), पृ० ३८७, आवश्यक नोट—"चित्रालंकारों तथा कुतूहलकारी काव्य-कला के कौतुकों का सांगोपांग विवेचन हम अपने दूसरे ग्रन्थ में जिसका नाम 'चित्रचन्द्रिका' है, दे रहे हैं। पाठक उसी में उन्हें देख सकते हैं।"
३. हिन्दी काव्यालंकार, पृ० १२ से १६ तक
४. उपरिवत्, पृ० १२

के चित्रविवेचन से दीन जी का विवेचन पूर्ण प्रभावित दीख पड़ता है। यहाँ तक कि चित्र-लक्षण की शब्दावली भी एक ही दीख पड़ती है—

"चित्र बरण विन्यास है कमलादिक आकार।
गोरखधंधा सम निरस त्यागत सुकवि विचार॥"[१]

निश्चित है कि दीनजी द्वारा उद्धृत उदाहरण भी केशव आदि प्राचीन कवियों के ही हैं। भूमिका में दीनजी ने यह स्वीकार भी किया है।[२] 'अलंकार मंजूषा' में कमल, चामर तथा धनुषबन्ध, निरोष्ठ, अमत्त, अन्तर्लापिका, बहिर्लापिका, लोमविलोम, गतागत, कामधेनु तथा दृष्टिकूटक, 'चित्र' के इतने ही भेदों का विवेचन है जिनमें किसी प्रकार की नवीनता नहीं दीखती। 'भाषासमक' और 'प्रहेलिका' का विवेचन 'अलंकार मंजूषा' में भी स्वतंत्र शब्दालंकार के रूप में हुआ है।[3]

पंडित रामदहिन मिश्र ने अपने ग्रन्थ 'साहित्यालंकार' में शब्दालंकारों के मध्य 'चित्रकाव्य' को भी स्थान दिया है किन्तु उसका विवेचन नहीं किया है। इस सम्बन्ध में केवल अपने विचार दिये हैं जो निम्न हैं—

"जहाँ अक्षरों की रचना कमल, धनुष, चामर, छत्र आदि के आकारों में की जाती है वहाँ चित्रालंकार होता है। इसीके भीतर अन्तर्लापिका, बहिर्लापिका, दृष्टिकूटक आदि भेद आ जाते हैं। इसमें रसपाक न होने से इसकी गणना अधम काव्यों में होती है। अब इसकी तथा इसके कर्त्ता की कदर जाती रही। ऐसा काव्य कवियों का गोरख-धन्धा कहा जा सकता है। ऐसी रचना आजकल नहीं होती।"[४]

इसके अतिरिक्त मिश्र जी ने प्रस्तुत ग्रन्थ में 'चित्र' के सम्बन्ध में और कुछ नहीं कहा।

सही अर्थों में 'चित्रकाव्य' का थोड़ा विश्लेषण हमें डॉ० राम शकर शुक्ल 'रसाल' रचित 'अलंकारपीयूष' में मिलता है। रसालजी ने चित्ररचनाओं का ऐतिहासिक तथा मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया है तथा इस प्रकार की रचनाओं के पीछे काम करनेवाली मनोवृत्तियों का विवेचन भी किया है। उन्होंने चित्ररचनाओं के लिये 'वर्ण-कौतुक' संज्ञा का प्रयोग किया है। चित्ररचनाओं की इस संज्ञा की उपयुक्तता के समर्थन में वे कहते हैं—

---

१. अलंकार मंजूषा, पृ० १२
२. उपरिवत्, भूमिका, पृ० (ख)
३. उपरिवत्, पृ० १७-१८
४. साहित्यालंकार, पृ० ९

"यह संज्ञा अवश्यमेव काव्यालंकार शास्त्र के क्षेत्र में नितान्त ही नवीन है, किन्तु हमारी समझ में यही नाम उपयुक्त ठहरता है, क्योंकि इसमें और कोई अन्य प्रकार का विशिष्ट चमत्कार नहीं होता, केवल वर्णों के साथ कला-कुशल कवि एक विचित्र प्रकार का, कुतूहल उत्पन्न करनेवाला खेल या कौतुक ही करता है, इसी कौतुक से मानवमन को आनन्द प्राप्त होता है।"[१]

वर्ण-कौतुक की परिभाषा 'रसाल' जी ने निम्न शब्दों में दी है—

"काव्य में जहाँ वर्णों की विचित्र व्यवस्था के द्वारा चातुर्य चमत्कार का सौंदर्य एवं कला कौशल का परिचय दिया जाता है और इसी के द्वारा कौतुक तथा कुतूहल प्रेमी मन या मस्तिष्क को आनन्द प्राप्त कराया जाता है, वहाँ वर्ण-कौतुक अलंकार कहा जा सकता है।"[२]

'रसाल' जी ने चित्रकाव्य का विवेचन करते हुए इस प्रकार की रचनाओं के पीछे काम करनेवाली मानव-मनोवृत्तियों का विश्लेषण भी किया है। चित्रकाव्य-रचना का प्रधान उद्देश्य मनोरंजन, विनोद तथा पाण्डित्य-प्रदर्शन ही होता है। लेखक ने इन्हीं विभिन्न मनोवृत्तियों के आधार पर 'वर्णकौतुक' का वर्गीकरण किया है। उनके अनुसार इन मनोवृत्तियों को निम्न रूप में देखा जा सकता है[3]—

१. वैचित्र्य-विनोद— यह मनुष्य का स्वभाव है कि वह विचित्रता के द्वारा विनोद प्राप्त करता है, किसी वस्तु के विचित्र रूप को देखकर या किसी वस्तु को विचित्र रूप देकर मनुष्य आनन्द प्राप्त करता है। चित्रकाव्य-रचना में यह प्रवृत्ति दो रूपों में मिलती है—

(क) **क्रम-वैचित्र्य**—इसके अन्तर्गत चित्रकाव्य के विभिन्न आकारबन्ध आते हैं। यहाँ किसी आकार के रूप में वर्णों का विचित्रता से विन्यास होता है जैसे कमलबन्ध, अस्त्रबन्ध आदि।

(ख) **व्यवस्था वैचित्र्य**—इसके द्वारा किसी छन्द की वर्ण-व्यवस्था में विचित्रता देखी जाती है और इस प्रकार हमारे मन को उस विचित्रता से थोड़ी प्रसन्नता होती है। इसके अन्तर्गत गतागत, प्रतिलोमानुलोम आदि आते हैं।

२. दूसरी मनोवृत्ति जिसके कारण चित्र के कई भेदों की जैसे अन्तर्लापिका, बहिर्लापिका, अक्षरच्युतक, मात्राच्युतक, गूढ़ आदि की रचना होती है, वह है 'गुप्तोद्घाटन' की। किसी छिपी हुई चीज को खोज निकालना तथा किसी चीज को छिपाकर रख देना ताकि दूसरे उसे ढूँढ़े, यह मानवस्वभाव की एक प्रवृत्ति है और इसके सहारे वह आनन्द प्राप्त करता है।

---

१. अलंकारपीयूष (पूर्वार्ध), पृ० १६७

२. उपरिवत्

३. उपरिवत्, पृ० १६८

३. हमारी तीसरी मनोवृत्ति वचनवक्रता का भी चित्ररचनाओं में बहुत बड़ा हाथ है। सम्पूर्ण अलंकारशास्त्र में मनुष्य की इस मनोवृत्ति का बड़ा ही महत्त्व है।

४. **जिज्ञासा**—इस चौथी मानव-मनोवृत्ति के सहारे भी कई प्रकार की चित्ररचनाएँ होती हैं। यदि जिज्ञासा न हो तो चित्ररचनाओं को कोई पढ़ना ही नहीं चाहेगा।

५. **वाक्छल** (शब्दछल, वाक्यछल तथा भाषाछल) के द्वारा भी कवियों ने कई प्रकार की चित्ररचनाएँ की हैं।

६. **व्यवस्थान्वय छल**—इस प्रवृत्ति का भी चित्ररचनाओं में काफी हाथ है। शब्दों की विचित्र व्यवस्था से छल करना और फिर उनके सही अन्वय से अर्थ स्पष्ट कर देना; कूटादि रचनाओं में इस प्रवृत्ति को देखा जा सकता है।

चित्ररचना में काम करनेवाली उपर्युक्त मनोवृत्तियों का विश्लेषण करते हुए 'रसाल' जी ने 'वर्ण-कौतुक' अथवा चित्ररचनाओं का वर्गीकरण किया है। 'रसाल' जी द्वारा गृहीत 'चित्र' के भेदोपभेद निम्न हैं[1]—

१. **वर्णविरोधक**—(इसमें वर्णवहिष्कार की प्रमुखता होती है)

१. अमत्ता, २. अकण्ठ, ३. अतालव्य, ४. अदन्त, ५. अमूर्धा, ६. अनौष्ठ्य, ७. अजिह्व।

२. **चित्रालंकार-बन्ध**—

१. कमल, २. छत्र, ३. कपाट, ४. मेरु, ५. धनुष, ६. ढाल, ७. खड्ग, ८. हार, ९. वृक्ष, १०. डमरू, ११. गोमूत्रिका, १२. चौकी, १३. चक्र, १४. चन्द्र, १५. कंकण, १६. मुरज, १७. मूर्त्ति (हनुमान)।

३. **वर्ण संख्यावरोध**—(केशव द्वारा गृहीत एक से लेकर २६ वर्णों तक की छन्द-रचना)

४. **क्रम-वैचित्र्य**—

१. अनुलोम, २. प्रतिलोम, ३. गतागत, ४. व्यवस्थान्वय वैचित्र्य

(क) देहली दीपक, (ख) वाक्छल—१. वर्णछल, २. पदछल, ३. शब्दछल

५. **वर्णलोप**—

१. मात्रा, २. स्वर, ३. व्यंजन, ४. त्याज्यवर्ण

६. **वर्णसंचय और वर्णान्वेषण**—

१. प्रहेलिकागत, २. साधारण, ३. कूटगत

---

१. अलंकारपीयूष (पूर्वार्ध), पृ० २७३ से २७६ तक

७. प्रहेलिका—

१. पहेली, २. पहेला, ३. मुकरी, ४. प्रश्नात्मक—(क) दत्तोत्तर, (ख) अन्तर्लापिका, (ग) अदत्तोत्तर, (घ) बहिर्लापिका ५. अप्रश्नात्मक

८. गोपन कौतुक—

१. वर्णात्मक, २. शब्दात्मक, ३. पदात्मक

उपर्युक्त वर्गीकरण में 'रसाल' जी ने 'वर्ण-कौतुक' का प्रयोग एक व्यापक अर्थ में किया है। इसके अन्तर्गत चित्ररचनाएँ तो आती ही हैं, साथ ही अन्य कई प्रकार की रचनाएँ, जैसे देहलीदीपक, मुकरी आदि भी आकलित हुई हैं, जिनको 'चित्र' के अन्तर्गत नहीं माना जाता। इसके अतिरिक्त प्रहेलिका, कूट, वाक्छल को भी 'रसाल' जी ने यहाँ स्थान दिया है। विभिन्न आचार्यों ने इनके सम्बन्ध में विभिन्न विचार व्यक्त किये हैं। संस्कृत में प्रहेलिका को तो 'चित्र' के अन्तर्गत परिगणित किया गया है, पर कूट अथवा वाक्छल को 'चित्र' के अन्तर्गत स्थान नहीं मिला। हिन्दी में कुछ परवर्ती आचार्यों ने कूट को तो 'चित्र' के एक भेद के रूप में देखा, किन्तु वाक्छल अथवा भाषासमक को स्वतन्त्र शब्दालंकार माना।[१] प्रहेलिका को भी परवर्ती संस्कृत-काव्य-शास्त्र में स्वतंत्र अलंकार के रूप में देखा गया तथा हिन्दी में भी इसीका अनुकरण हुआ।[२] 'रसाल' जी ने इन सभी प्रकार की विचित्रता-धायक रचनाओं को अपने विवेचन में स्थान दिया है, फलतः उन्होंने 'चित्र' की संज्ञा को बदलकर 'वर्ण-कौतुक' नाम दिया। इस नामकरण की उपयुक्तता के विषय में लेखक का कथन ऊपर उद्धृत किया जा चुका है। 'चित्र' के इस सीमा-विस्तार को ध्यान में रखकर 'वर्ण-कौतुक' संज्ञा तो उपयुक्त है, किन्तु 'चित्र' का यह विस्तार स्वतः वांछनीय नहीं है। रुद्रट आदि संस्कृत के आचार्यों ने ही प्रहेलिकादि को 'क्रीडामात्र' कहकर उनकी

---

१. जगन्नाथ प्रसाद भानु—हिन्दी काव्यालंकार (कूट का आकलन तो नहीं पर भाषासमक स्वतन्त्र अलंकार के रूप में)
लाला भगवान दीन—अलंकार मंजूषा
पं० रामदहिन मिश्र—साहित्यालंकार
डॉ० राम शंकर शुक्ल 'रसाल'—अलंकारपीयूष, आदि

२. साहित्य दर्पण—विश्वनाथ
अलंकार शेखर—केशव मिश्र, आदि
कविप्रिया—केशवदास
काव्यमंजरी—पदुमनदास
साहित्यसागर—बिहारी लाल भट्ट
हिन्दीकाव्यालंकार—जगन्नाथ प्रसाद 'भानु'
अलंकार मंजूषा—लाला भगवान 'दीन'
साहित्यालंकार—राम दहिन मिश्र

उपेक्षा की थी,[1] यद्यपि 'चित्र' के गौण भेदों के रूप में इन्हें उन्होंने देखा था। स्पष्ट है कि 'चित्र' के अन्य प्रमुख भेदों का उनकी दृष्टि में अधिक महत्व था और उन्हें कौतुक मात्र नहीं कहा जा सकता। आज की दृष्टि से हम उनका सही मूल्यांकन नहीं कर सकते। रुय्यक के समय में ही 'चित्र' में अलंकारत्व का प्रश्न उठा था और रुय्यक, विद्याधर तथा विश्वनाथ ने उसका प्रतिपादन किया था।[2] ध्वनि की दृष्टि से भले ही 'चित्र' का महत्व न हो, किन्तु यदि ध्वनि से इतर चमत्कार का भी काव्य में महत्व है तो निश्चय ही चित्ररचनाओं का भी महत्व है। प्रहेलिका, गूढ़ आदि में चमत्कार उतना उत्कट नहीं होता फलतः पहले तो उन्हें गौण स्थान मिला, पर बाद में 'चित्र' के क्षेत्र से उन्हें बहिष्कृत कर दिया गया।

'रसाल' जी ने 'देहलीदीपक' को भी अपने वर्गीकरण में स्थान दिया है। 'देहलीदीपक' को आचार्यों ने एक स्वर से दीपक अलंकार का एक भेद माना है और उसे प्रमुख अर्थालंकारों में स्थान दिया है। 'रसाल' जी ने 'देहलीदीपक' को 'वर्ण-कौतुक' में स्थान देने के कारण पर भी कोई प्रकाश नहीं डाला है। सम्भवतः इस अलंकार में किसी पद का अन्वय दो वाक्यों में साथ ही होने के कारण उसे वर्णाश्रित उन्होंने समझ लिया है, किन्तु ऐसा वे कैसे समझ सके यह आश्चर्य का विषय है। इस प्रकार यद्यपि 'रसाल' जी ही एक आचार्य हैं जिन्होंने खड़ीबोली-गद्य में चित्ररचनाओं का विवेचन-विश्लेषण किया है, किन्तु उनका विवेचन भी पूर्णतः निर्दोष नहीं है। साथ ही उन्होंने 'चित्र' की संज्ञा बदलकर इसके क्षेत्र को अवांछनीय विस्तार दे दिया है।

'रसाल' जी के उपरान्त जिन दो आचार्यों ने अपनी पुस्तकों में 'चित्र' का उल्लेख किया है वे हैं अर्जुनदास केडिया तथा कन्हैया लाल पोद्दार। पोद्दार जी के ग्रन्थ 'काव्य-कल्पद्रुम' में इस सम्बन्ध में कोई विशेष बात नहीं दीखती। उन्होंने 'चित्र' का केवल एक दोहा उद्धृत किया है और उसी को लेकर कमलबन्ध तथा चामरबन्ध का चित्र भी दिया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने लिखा है—

"इस दोहे में प्रत्येक दूसरा वर्ण 'न' है। यह दोहा दर्पण, चक्र, मुष्टिका, हार, हल-कुण्डी, चामर, चौकी, कपाटबन्ध आदि बहुत से चित्रबन्धों का उदाहरण है।"[3]

किन्तु सत्य यह है कि उद्धृत दोहे से कमल तथा चामर को छोड़कर अन्य कोई बन्ध नहीं बन सकता। हार, मुष्टिका तथा कपाट आदि किसी प्रकार बना भी लिया जाय, परन्तु चक्र तथा चौकी तो कदापि नहीं बन सकता। परिभाषा के क्षेत्र में भी पोद्दार जी ने मम्मट का गद्य में अनुवादमात्र ही किया है, अपनी ओर से कोई विशेष बात नहीं कही। यों उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया है कि चित्ररचनाओं का महत्व उनके विचार में कुछ विशेष

१. द्रष्टव्य, प्रस्तुत पुस्तक, पृ० २२ टि० २, पृ० ३० टि० २ तथा पृ० ३७ टि० २
२. द्रष्टव्य, प्रस्तुत पुस्तक, पृ० २९ टि० १, पृ० ३५ टि० २ तथा साहित्यदर्पण में चित्रालंकार का विवेचन
३. काव्य कल्पद्रुम, सप्तम स्तवक, पृ० २६९

नहीं है, अतः वे इनका अधिक विवेचन नहीं करते ।[1]

केडिया जी ने अपने ग्रन्थ 'भारती भूषण' में 'चित्र' का कुछ अधिक विवेचन किया है। उन्होंने 'चित्र' को दो भागों में बाँट दिया है तथा प्रथम के अन्तर्गत बन्ध और गति-चित्रों को रखा है और द्वितीय के अन्तर्गत वर्ण, स्थान, स्वर तथा प्रश्नोत्तर के कतिपय उदाहरण दिये हैं। इस प्रकार पूर्वाचार्यों द्वारा विवेचित हिन्दी में गृहीत 'चित्र' के लगभग सभी प्रमुख भेदों का विवेचन उन्होंने किया है। 'बन्धचित्र' के अन्तर्गत लेखक ने केवल एक दोहे से तीन चित्रों— कमल, धनुष तथा चामर के उदाहरण दियें हैं।[2] 'गतिचित्र' में सर्वतोभद्र तथा कामधेनु का विवेचन किया गया है। सर्वतोभद्र का वलयाकार चित्र भी दिया गया है तथा कामधेनु छन्द का न्यास गाय के चित्र में भी दिखाया गया है। 'स्वरचित्र' के अन्तर्गत हिन्दी के अधिकांश कवियों की तरह केवल अमात्रिक के दो उदाहरण हैं एक लेखक द्वारा रचित तथा दूसरा भिखारीदास से गृहीत। इसी प्रकार 'वर्ण' तथा 'स्थान' चित्रों के क्रमशः केवल एकाक्षर तथा निरोष्ठ के उदाहरण दिये गये हैं, जिनमें एक-एक लेखक द्वारा रचित भी हैं। 'प्रश्नोत्तर' में अन्तर्लापिका बहिर्लापिका के उदाहरण हैं। इन चित्रों के अतिरिक्त 'दृष्टिकूटक' का विवेचन भी 'चित्र' के अन्तर्गत ही हुआ है। ऊपर स्पष्ट हो चुका है कि दृष्टिकूट को न तो संस्कृत के आचार्यों ने और न हिन्दी के प्रमुख आचार्यों ने ही 'चित्र' के अन्तर्गत स्थान दिया है, किन्तु ईसा की बीसवीं शती में एकाएक 'चित्र' की सीमा के अन्तर्गत दृष्टिकूट का भी विवेचन होने लगता है। 'चित्र' के इस विस्तार का कोई कारण भी नहीं दीख पड़ता। लाला भगवान दीन ने 'अलंकारमंजूषा' में 'कूट' के शब्दालंकारत्व की ओर संकेत अवश्य किया है[3] किन्तु इसका स्थान चित्रान्तर्गत ही हो, इसके लिये उन्होंने कोई प्रमाण नहीं दिया, गोकि विवेचन उन्होंने भी चित्र-भेद के रूप में ही किया है। केडिया जी ने भी इस ओर कोई प्रकाश नहीं डाला है।

केडिया जी प्रदत्त 'चित्र' की परिभाषा में यद्यपि कोई नवीनता नहीं है किन्तु उसमें पूर्णता और स्पष्टता पर्याप्त मात्रा में है—

"जहाँ पद्यरचना में निपुणता से ऐसे अक्षर रखे जायँ जिनसे 'कमल' आदि अनेक चित्र एवं 'अन्तर्लापिका' आदि अनेक प्रकार की मनोरंजक कविताएँ बन जायँ; वहाँ चित्रालंकार होता हैं।"[4]

---

१. काव्य कल्पद्रुम, सप्तम स्तवक, पृ० २६९

२. दोहा निम्न है—

"आन मान बिनमान बिन ठान मान अनजान।
मीन हीन बन दीन तन छीन प्राण मन जान॥"

—भारती भूषण, पृ० ४१

३. "इसमें अर्थ कठिनता अत्यधिक रहती है, इसलिये कवि लोग ऐसी कविता की गणना अधम काव्य में करते हैं, परन्तु विचार करने से उसके शब्दों में अलंकारता अवश्य पाई जाती है। अतः इसे अलंकार मानना ही चाहिए।"

—अलंकार मंजूषा, पृ० १८

४. भारती भूषण, पृ० ४१

इस प्रकार खड़ी बोली में 'चित्र' का विवेचन करने वाले अर्जुनदास केडिया ही अन्तिम आचार्य हैं जिन्होंने कुछ दूर तक 'चित्र' का विधिवत् विवेचन किया है।

महेशचन्द्र प्रसाद द्वारा रचित 'गाँधी-भूषण' में भी, जिसमें सभी अलंकारों के उदाहरण गाँधीचरित्र का आश्रय लेकर ही बनाये गये हैं, 'चित्र' के लिए एक पद्मबन्ध का दोहा है।[1] 'चित्र' का स्थान पुस्तक में शब्दालंकारों के बीच है। इस दोहे में किसी प्रकार की विशेषता नहीं है, १९ दल पद्म का सामान्य चित्र इससे बनता है। इसके अतिरिक्त न किसी प्रकार का विवेचन ही इस पुस्तक में है और न कोई अन्य चित्र ही।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि चित्रकाव्य के क्षेत्र में हिन्दी के आचार्यों ने मात्र संस्कृताचार्यों का अनुकरण नहीं किया है वरन् हिन्दी की प्रकृति को पहचान कर तथा हिन्दी की चित्ररचनाओं को ध्यान में रखकर ही 'चित्रकाव्य' का विवेचन-विश्लेषण किया है। ये आचार्य स्वयं ही कवि भी थे अतः चित्रकाव्य के जिन भेदों की रचना वे कर सके, उनका ही विवेचन भी किया। फलतः अधिकांश आचार्यों ने 'चित्रकाव्य' का सर्वांगीण विवेचन नहीं किया और कतिपय भेदों को ही उनके विवेचन में स्थान मिल सका। इसका एक कारण यह भी है कि संस्कृतकाल से ही 'चित्रकाव्य' को 'दुष्कर' तथा 'कष्टकाव्य' के रूप में देखा जाने लगा था, अतः कतिपय कवियों की या तो चित्तवृत्ति इस प्रकार की रचनाओं में नहीं रमी या फिर उनकी प्रतिभा इनकी रचना में समर्थ न हो सकी।

संस्कृत की तरह ही हिन्दी में भी 'चित्रकाव्य' का कोई निश्चित लक्षण नहीं दिया जा सका। अधिकांश आचार्यों ने या तो कोई लक्षण दिया ही नहीं, या मम्मट, रुय्यक आदि का ही अनुकरण किया जिसकी सीमा में केवल 'आकारचित्र' को ही स्थान मिल पाता है। किन्तु विवेचन में इन आचार्यों ने मम्मट का अनुकरण न कर 'चित्र' के अन्य भेदों को भी स्थान दिया। फिर भी भूषण, कुलपति मिश्र, गोकुल कवि तथा साधोगिरि गोस्वामी द्वारा दिये गये 'चित्रकाव्य' के लक्षणों में पर्याप्त स्पष्टता है तथा ये लक्षण 'चित्रकाव्य' के अधिक विस्तृत क्षेत्र को अपने में समेट लेने में समर्थ हैं।[2]

हम देख चुके हैं कि 'चित्रकाव्य' के विवेचन की दृष्टि से संस्कृत के आचार्यों के तीन स्पष्ट वर्ग हो जाते हैं।[3] रुद्रट, भोज आदि आचार्यों ने 'चित्रकाव्य' का विस्तृत विवेचन तो किया है पर प्रश्नोत्तर, गूढ़, प्रहेलिकादि को या तो गौण स्थान दिया या 'चित्र' से इतर अन्य अलंकार के रूप में देखा। मम्मट प्रभृति आचार्यों ने 'चित्र' की सीमा केवल आकारचित्रों तक

---

१. "दिन दिन छन छन छीन तन दीन खीन धन हीन।
शान मान धन रैन हन, चैन लीन तन पीन॥"
—गाँधी भूषण, पृ० ३३

२. द्रष्टव्य, प्रस्तुत अध्याय, पृ० ५५ टि० २-३, पृ० ७७ टि० २ तथा पृ० ८२ टि० ३

३. प्रस्तुत अध्याय, पृ० सं० ४४-४५

ही रखी। धर्मदास आदि आचार्यों ने 'चित्र' के तथाकथित गौणभेद प्रश्नोत्तर, प्रहेलिकादि का ही विस्तृत विवेचन किया। हिन्दी में, संस्कृत में गृहीत वर्ण, स्वर, स्थान, गति तथा आकार चित्रभेदों के साथ ही प्रश्नोत्तर का भी विस्तृत विवेचन हुआ। 'चित्रकाव्य' के क्षेत्र में रीतिकालीन कवि-आचार्यों ने अपनी शक्ति तथा हिन्दी की प्रकृति को ध्यान में रखकर उपर्युक्त चित्रभेदों के कतिपय उपभेदों को ही अपनी रचना तथा विवेचन में स्थान दिया। आवश्यकतानुसार उन्होंने अन्य नवीन उपभेदों की सृष्टि कर कतिपय उपभेदों की संख्या भी बढ़ाई और हिन्दी में होनेवाली नवीन प्रकार की रचनाओं को भी 'चित्र' में आकलित किया। हिन्दी के प्रथम कवि-आचार्य केशवदास ने जहाँ एक ओर 'स्थानचित्र' के अन्तर्गत केवल निरोष्ठ तथा 'स्वरचित्र' में केवल अमात्रिक को ही स्थान दिया, वहाँ 'वर्णचित्र' में १ से लेकर २६ वर्णों तक से बनने वाले छन्दों की रचना की। इसी प्रकार 'गतिचित्र' में भी उन्होंने त्रिपदी-द्विपदी आदि की कल्पना की, जो नवीन है।[१] 'गुप्तचित्र' में हिन्दी में केवल चरणगुप्त गृहीत हुआ। 'नियमाक्षर' नाम से केशवदास ने एक बिल्कुल नवीन प्रकार की चित्ररचनाओं का विवेचन किया।[२] भिखारीदास द्वारा रचित 'मध्याक्षरगुप्त' की रचना भी हिन्दी की अपनी है जिसमें कवि ने अपना विस्तृत परिचय छिपाकर रख दिया है।[३] ये रचनाएँ हिन्दी की हैं और संस्कृत काव्य में इनकी कोई परम्परा नहीं मिलती। प्रश्नोत्तर के भेदों में भी आद्यक्षरी, मध्याक्षरी तथा अन्ताक्षरी की रचना संस्कृत में नहीं के बराबर हुई है। विदग्ध-मुख-मण्डन में धर्मदास ने प्रश्नोत्तर का अत्यन्त विस्तृत विवेचन किया है किन्तु हिन्दी में प्रश्नोत्तर के ९-१० भेदों से अधिक का न तो विवेचन हुआ है और न रचना ही। 'स्थानचित्र' में भी केवल काशिराज ने ही सभी स्थानों से उच्चरित वर्णों को लेकर तथा छोड़कर १० भेदों की रचना की है,[४] अन्यथा हिन्दी में केवल निरोष्ठ ही गृहीत हुआ है। केशव की तरह ही 'स्वरचित्र' में भी सम्पूर्ण हिन्दी चित्रकाव्य में केवल अमात्रिक को ही ग्रहण किया गया। इस क्षेत्र में भी काशिराज ने 'सर्वगुरुस्वर' तथा 'सर्वलघु-स्वर' नामक दो अन्य उपभेदों का विवेचन किया।[५] ये उपभेद भी संस्कृत में नहीं मिलते। अमात्रिक तथा निरोष्ठ को मिलाकर 'निरोष्ठामत्त' नामक रचना का प्रचलन भी हिन्दी में हुआ। कतिपय आचार्यों ने इसका विवेचन किया है।[६] कई आचार्यों ने 'सर्वतोभद्र' की रचना वलयाकार चित्र में की है तथा वर्णविन्यास इस प्रकार किया है कि चाहे जहाँ

१. कविप्रिया, प्रभाव १६, छन्द ७३
२. उपरिवत्, छन्द संख्या १०, ११, १२ तथा १३
३. काव्यनिर्णय, परि० २१, अन्तिम छन्द
४. द्रष्टव्य, प्रस्तुत अध्याय, पृ० ७४ टि० १
५. द्रष्टव्य, उपरिवत्, टि० २
६. भिखारीदास—काव्यनिर्णय, छन्द संख्या ४४-४५
जगत सिंह—चित्रमीमांसा, छन्द संख्या १०१-१०२
गोकुल कवि—चित्रकलाधार, पृ० ११४, छन्द संख्या ४८-४९

से पढ़ें एक पूर्ण छन्द बन जाय ।[1] स्पष्ट है कि न्यासविधि की भिन्नता के अतिरिक्त हिन्दी में गृहीत कामधेनु तथा इस प्रकार के सर्वतोभद्र में कोई अन्तर नहीं है ।

'बन्धचित्र' के क्षेत्र में संस्कृत बन्धों तथा हिन्दी बन्धों में पर्याप्त अन्तर दीख पड़ता है । यों तो संस्कृत और हिन्दी दोनों ही के आचार्यों ने यह स्वीकार किया है कि चित्रबन्ध के अनन्त भेद हो सकते हैं, अतः कुछ का विवेचन ही सम्भव हो सका है, फिर भी जो बन्ध उन्होंने दिये हैं उनमें तथा न्यासविधि में संस्कृत और हिन्दी में अन्तर आ जाता है । उदाहरणार्थ जहाँ संस्कृत में पद्म के चतुर्दल, अष्टदल, द्वादशदल, षोडशदल तथा कवि-नामांक जैसे भेद हैं तथा इनकी न्यासविधियाँ अलग-अलग हैं, वहाँ हिन्दी में गृहीत पद्मबन्ध के दलों की संख्या तो निश्चित नहीं है (वे १९-२१ भी हो सकते हैं) किन्तु उनकी न्यास-विधि अधिकांशतः षोडशदल कमल की है । स्पष्ट है कि यह न्यासविधि सरलतम है, कारण छन्द में यदि सभी युग्मवर्ण एक ही हों तो यह चित्र स्वतः बन जाता है । अन्य विशिष्ट न्यासविधियों वाले पद्मबन्ध की रचना हिन्दी में कम ही दीख पड़ती है । यही बात अन्य प्रकार के बन्धों के सम्बन्ध में भी है । बन्ध-विन्यास के क्षेत्र में संस्कृत से हिन्दी की प्रवृत्ति सरलता की ओर है फलतः चमत्कार भी बहुत कम हो जाता है । इसका एक कारण भाषा की प्रकृति भी है । संस्कृत के संश्लेषणात्मक होने के कारण शब्दनिर्माण तथा अर्थपरिवर्तन की जो सुविधा वहाँ है, हिन्दी में विश्लेणात्मक होने के कारण उनका अभाव है । फलतः हिन्दी के बन्ध-विन्यास में ऋजुता अधिक आ जाती है । इसका एक मात्र अपवाद चक्रबन्ध तथा नागबन्ध के कुछ चित्र हैं जिनमें संस्कृत के समान चमत्कार के स्तर को बनाये रखने में कवियों को सफलता मिली है ।[2] कतिपय अन्य चित्र भी सम्भव हैं पर अपवाद रूप में । हिन्दी में चित्ररचना की एक विशिष्ट प्रवृत्ति है—एक ही छन्द में कई चित्रों की योजना ।[3] किन्तु

१. चिन्तामणि—कविकुल कल्पतरु, प्रकरण २, पृ० २१, छन्द संख्या ३३
देव—शब्दरसायन, प्रकाश ८, पृ० ९२
जनराज—कवितारसविनोद, पत्रांक २९३, छन्द संख्या ३५ (हस्तलिखित)
रूपप्रधान—चित्रकाव्य, छन्द संख्या ३२-३३ (हस्तलिखित)
काशिराज—चित्रचन्द्रिका, प्रकाश ५, पृ० ५३, छन्द संख्या २५

२. चक्रबन्ध, काव्यनिर्णय—भिखारीदास
चक्रबन्ध, चित्रकाव्य (हस्तलिखित पुस्तक)—खण्डित प्रति, केवल दो पन्ने—आर्य भाषा पुस्तकालय, ना० प्र० स० काशी, सभा-संग्रह, हस्तलेख सं० १४२८
नागबन्ध, प्रबीन सागर—लहर ६४, पृ० ६१९ चित्र संख्या ३३

३. केशवदास—कविप्रिया, प्रकाश १६, छन्द ७१ से गोमूत्रिका, कपाटबन्ध, अश्वगति तथा त्ररणगुप्त की रचना
चिन्तामणि, कविकुल कल्पतरु—प्रकरण २, पृ० २०, छन्द सं० ३० से खड्ग, कपाट, कमल, अश्वगति तथा गोमूत्रिका की रचना
कन्हैया लाल पोद्दार—काव्य कल्पद्रुम, पृ० २६९ पर दिये गये दोहे से दर्पण, चक्र, मुष्टिका, हार आदि चित्रों की योजना
अर्जुनदास केडिया—भारतीभूषण, पृ० ४१ पर दिये गये दोहे से कमल, धनुष तथा चँवर के चित्र की योजना

ऐसा करने से चित्र की उत्कृष्टता नहीं रह पाती। हिन्दी में गृहीत कमलबन्ध में तो गोमूत्रिका रहती ही है किन्तु कवि का महत्त्व तथा चित्र का चमत्कार तो तब है जब गोमूत्रिका के लिये इस प्रकार का छन्द-विन्यास हो कि छन्द के पंक्तियुग्म के युग्माक्षर परस्पर समान हों न कि पद्मबन्ध की तरह वे सभी एक ही हों। संस्कृत में कहीं भी षोडशदल पद्म के छन्द को गोमूत्रिका के अन्तर्गत नहीं देखा गया। यदि ऐसा हो तो फिर चमत्कार ही क्या रह जायगा ? यह प्रवृत्ति हिन्दी चित्रकाव्य की ऋजुता, निकृष्टता तथा कवि की असमर्थता की द्योतक है।

'बन्धचित्रों' की संख्या न तो संस्कृत में और न हिन्दी में ही निश्चित की जा सकी है। 'चित्र-समुद्र' की 'थाह' नहीं पायी जा सकती।[1] रुद्रटादि संस्कृत के आद्याचार्यों ने जहाँ युद्ध से सम्बद्ध अस्त्र-शस्त्रों के आकार के चित्रों का अधिक विवेचन किया है, वहाँ बाद में चित्रबन्धों का क्षेत्र बढ़ता गया और सामान्य जीवन में प्रयोग में आनेवाली वस्तुओं के आकार में भी रचनाएँ होने लगीं। फलतः जहाँ रुद्रटादि में चित्रबन्धों की संख्या सीमित दीख पड़ती है वहाँ उसमें उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई तथा आज इस संख्या का अनुमान लगाना भी कठिन है। अतः सैद्धान्तिक-विवेचन के अन्तर्गत केवल कतिपय प्रतिनिधि चित्र-बन्धों का विवेचन ही सम्भव हो सकेगा।

१. कविप्रिया, प्रकाश १६ छन्द १
चित्रचन्द्रिका, प्रकाश १, पृ० ५, छन्द संख्या ५

तृतीय अध्याय

चित्रकाव्य : सैद्धान्तिक विवेचन (विविध बन्ध)

द्वितीय अध्याय में 'चित्रकाव्य' के क्षेत्र-विस्तार का विवेचन करते हुए हमने देखा है कि चित्ररचनाएँ एक विस्तृत क्षेत्र तक फैली हुई हैं और इन्हें किसी निश्चित सीमा में आबद्ध करना असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य है। संस्कृत में रुद्रट, भोजराज तथा हेमचन्द्र ने 'चित्रकाव्य' का व्यवस्थित विवेचन किया है तथा 'चित्र' के पर्याप्त विस्तृत क्षेत्र को अपने विवेचन का लक्ष्य बनाया है।[१] रुद्रट ने तो चित्र का कोई वर्गीकरण नहीं किया पर भोजराज तथा हेमचन्द्र ने इनके विवेचन को एक सुनियोजित वर्गीकरण में आबद्ध किया है। भोजराज ने वर्ण, स्थान, स्वर, आकार, गति तथा बन्ध, 'चित्र' के ये छह वर्ग किये हैं[२] जबकि हेमचन्द्र ने इन्हें स्वर, व्यंजन, स्थान, गति, आकार, च्युत, गूढ़ आदि वर्गों में विभाजित किया है।[३] 'आदि' से उनका तात्पर्य प्रश्नोत्तर तथा प्रहेलिका से है।[४] भोजराज ने गूढ़, प्रश्नोत्तर तथा प्रहेलिका का स्वतन्त्र शब्दालंकार के रूप में विवेचन किया है।[५] रुद्रट ने च्युत, गूढ़, प्रश्नोत्तर तथा प्रहेलिका को क्रीड़ामात्र कहकर इनकी उपेक्षा की।[६] दूसरी ओर धर्मदास, विश्वेश्वर आदि पण्डितों ने केवल क्रीड़ामात्र कहे जानेवाले इन प्रश्नोत्तरादि भेदों

---

१. काव्यालंकार, पंचम अध्याय
सरस्वतीकण्ठाभरण, द्वितीय परिच्छेद
काव्यानुशासन, पंचम अध्याय, कारिका १०८, वृत्ति तथा टीका

२. "वर्णस्थानस्वराकारगतिबन्धान्प्रतीहयः ।
नियमस्तद्बुधैः षोढा चित्रमित्यभिधीयते ॥"
स० क०, परि २, कारिका १०९

३. "स्वरव्यंजनस्थानगत्याकारनियमच्युतगूढादि चित्रम् ।"
काव्यानुशासन, अ० ५, कारिका १०८

४. "गूढ़ादीत्यादिपदेन प्रश्नोत्तर प्रहेलिका दुर्वचकादिग्रहः ।"
उपर्युक्त कारिका की वृत्ति के अन्त में।

५. प्रहेलिका—सं० कं०, परि २, कारिका १४५-१४६
गूढ़—सं० कं०, परि २, कारिका १४७
प्रश्नोत्तर—सं० कं०, परि २, कारिका १४८-१४९

६. "मात्राबिन्दु च्युतके प्रहेलिका कारक क्रियागूढे ।
प्रश्नोत्तरादि चान्यत्क्रीडामात्रोपयोगमिदम् ॥"
—काव्यालंकार, अ० ५, श्लोक २४

का ही विश्लेषण-विवेचन किया।[१] हिन्दी में 'चित्र' के इनमें से अधिकांश भेद गृहीत हुए। हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल न होने के कारण च्युत की रचना हिन्दी में प्रायः नहीं हुई तथा प्रहेलिका को स्वतन्त्र अलंकारत्व मिल जाने के कारण चित्ररचनाओं में परिगणित नहीं किया गया। अन्य सारे वर्गों के अन्तर्गत रचनाएँ हुईं, उपभेदों की संख्या में परिवर्तन अवश्य किये गये। इनका विस्तृत विवेचन द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत हो चुका है।

पिछले अध्याय में हम यह भी देख चुके हैं कि भोजराज द्वारा कथित 'आकार' और 'बन्ध' चित्रों में वस्तुतः कोई अन्तर नहीं है।[२] उनका क्षेत्र एक ही है और आचार्यों ने इन दोनों नामों का प्रयोग एक ही प्रकार की रचनाओं के लिये किया है। हेमचन्द्र ने भी केवल 'आकार' का ही उल्लेख किया है और भोजराज द्वारा विवेचित 'बन्धों' का विवेचन भी इसी में किया।[3] प्रस्तुत विवेचन में भी इनमें कोई अन्तर नहीं रखा गया है और दोनों ही संज्ञाओं का प्रयोग पर्यायवाची रूप में हुआ है। प्रस्तुत अध्याय में हम केवल 'बन्धचित्रों' का सैद्धान्तिक विवेचन करेंगे, 'चित्र' के अन्य प्रकारों का अध्ययन अगले अध्याय में किया जायगा।

'चित्र' के सामान्य लक्षण के समान ही उसके अंग-उपांगों के लक्षण भी बहुत कम आचार्यों ने दिये हैं। 'बन्धचित्रों' के लिये रुद्रट ने 'वस्तुरूप' शब्द का प्रयोग किया है।[४] रुद्रट ही प्रथम आचार्य हैं जिन्होंने वस्तुरूपचित्रों की परिभाषा दी है—

"यन्नाम नाम यत्स्यात्तदाकृतिर्लक्षणं मतं तस्य।
तल्लक्ष्यमेव दृष्ट्वावधार्यमखिलं तदन्यदपि॥"[५]

प्रस्तुत लक्षण के अनुसार प्रसिद्ध वस्तुओं की (चक्रादिक) आकृति ही उनके लक्षण हैं। तात्पर्य यह कि जिन नामों से युक्त बन्धों की रचना कवि करना चाहता है, उन्हीं वस्तुओं के आकार के रूप में वर्णों का विन्यास होना चाहिये। उदाहरणार्थ यदि चक्रबन्ध की रचना अपेक्षित है तो चक्र के अंगों जैसे परिधि (नेमि), केन्द्र, तथा आरों के स्थान में वर्णों का विन्यास करना होगा। इस प्रकार अपेक्षित बन्धों का आकार बनाकर उनमें विशिष्ट क्रम से वर्णों का विन्यास ही 'बन्धचित्रों' का लक्ष्य होता है। अग्निपुराणकार ने 'बन्ध' का लक्षण देते हुए इस बात को अधिक स्पष्ट रूप में रखा है—

१. धर्मदास—विदग्धमुखमण्डनम्
विश्वेश्वर—कवीन्द्रकर्णाभरणम्
२. अध्याय, २, (सं० कं० तथा एकावली के विवेचन के क्रम में)
३. काव्यानुशासन, पंचम अध्याय, कारिका १०८ की वृत्ति तथा टीका।
४. "वस्तुरूपाणां विरचने लक्षणम्"—अ० ५, श्लोक ५ के पूर्व
५. अध्याय ५, श्लोक ५

"अनेकधावृत्त वर्णविन्यासैः शिल्पकल्पना ।
तत्तत्प्रसिद्ध वस्तूनां बन्ध इत्यभिधीयते ॥"[1]

यहाँ यह स्पष्ट है कि प्रसिद्ध वस्तुओं की शिल्पकल्पना के रूप में विन्यस्त वर्णों की विचित्रता अनेक प्रकार से उनकी आवृत्ति में है और यही 'बन्धचित्रों' के चमत्कार का प्रमुख आधार है। वाग्भट (प्रथम) ने भी अपने 'वाग्भटालंकार' में इसी से मिलता-जुलता बन्ध का लक्षण दिया है—

"यत्राङ्गसन्धितद्रूपैरक्षरैर्वस्तुकल्पना ।
सत्यां प्रसत्तो तच्चित्रं तच्चित्रं चित्रकृच्चयत् ॥"[2]

वाग्भट (द्वितीय) ने अपने 'काव्यानुशासन' में इन प्रसिद्ध वस्तुओं में से कतिपय के नाम देकर इस लक्षण को और अधिक स्पष्ट कर दिया है—

"बन्धस्य खड्गधनुर्बाणमुसलशूलशक्तिहलच्छत्रपद्ममुरजचक्रस्वस्तिकाद्याकार सादृश्यादाकारचित्रम् ।"[3]

संस्कृत के अन्य आचार्यों ने 'बन्ध' का कोई विशेष लक्षण नहीं दिया है। उदाहरणार्थ हेमचन्द्र ने "आकारः खड्गमुरजबन्धाद्याकृतिः"[4] कहकर 'बन्धचित्रों' का विवेचन प्रारम्भ कर दिया है। भोजराज ने 'बन्ध' की अथवा 'आकार' की कोई परिभाषा नहीं दी है, केवल उदाहरण ही दिये हैं।[5]

हिन्दी के आचार्यों ने भी 'बन्धचित्र' का अलग कोई लक्षण नहीं दिया है। 'चित्र' के सामान्य लक्षण के क्रम में ही कतिपय हिन्दीआचार्यों ने विभिन्न बन्धों का नामोल्लेख भर कर दिया है। अलग से 'बन्धचित्र' का लक्षण देने वाले हिन्दी में केवल दो आचार्य हैं—कुमारमणि शास्त्री तथा काशिराज। कुमारमणि शास्त्री ने 'रसिकरसाल' में 'आकारचित्र' का निम्न लक्षण दिया है, यद्यपि उन्होंने 'बन्धचित्र' का एक भी उदाहरण अपनी पुस्तक में नहीं दिया—

१. अग्निपुराण, अध्याय ३४३, श्लोक ३५-३६
२. वाग्भटालकार, परि० ४, श्लोक ●
३. काव्यानुशासन (वा०), अध्याय ५, पृ० ४६ (काव्यमाला)
४. काव्यानुशासन (हेयचन्द्र), अध्याय ५, कारिका १०८ की वृत्ति पृ० ३१३ (म० जै० वि०)
५. सरस्वती कण्ठाभरण, परि० २, वृत्ति, श्लोक २८४ तथा ३११ (काव्यमाला)

"खड्ग प्रभृति के आकृतिहिं वर्ण रचत जहँ देखि ।
तिहि बंधहि के नाम सों चित्र अलंकृति लेखि ॥"[१]

काशिराज ने भोजराज के आधार पर 'आकारचित्र' तथा 'बन्धचित्र' को 'चित्र' के दो विभिन्न उपभेद माने, फलत: उनके अन्तर को स्पष्ट करने के क्रम में उन्होंने 'बन्धचित्र' का लक्षण दिया है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि जहाँ भोजराज ने 'आकारचित्र' और 'बन्धचित्र के केवल अलग-अलग उदाहरण भर ही दिये हैं, लक्षण के स्थान पर वे मौन हैं, वहाँ काशिराज ने उनके अन्तर को विधिवत् स्पष्ट करने की चेष्टा की है। यह बात और है कि इस प्रयत्न के बाद भी 'आकार' और 'बन्ध' के बीच वे कोई निश्चित सीमारेखा नहीं खींच पाते। इसका विवेचन द्वितीय अध्याय में हो चुका है। काशिराज प्रदत्त 'बन्ध' का लक्षण निम्न है—

"जो आकृति विधि ने रची ताही क्रम अनुसार ।
न्यास वर्ण को कीजिये सो जानो आकार ॥"[२]

× × ×

या क्रम को तजि बुद्धिबल कीजै और प्रकार ।
वर्ण न्यास जा चित्र में सोई बन्ध विचार ॥"[३]

इसको स्पष्ट करने के हेतु पद्मबन्ध के न्यास का उदाहरण देते हुए काशिराज का कथन है—

"जहाँ पत्र ते कोश में वर्ण पाठ की रीति ।
पद्म चित्र सो बन्ध है सुकवि विवक्षा नीति ॥"[४]

काशिराज ने 'बन्धचित्र' के 'आकृतिबन्ध' तथा 'गुणबन्ध' दो भेद माने हैं, अत: 'बन्धचित्र' के लक्षण में 'गुणबन्ध' को समाविष्ट करते हुए आगे उनका कहना है—

"आकृति अथवा गुणनि सों कवि बाँधे जहँ छन्द ।
बन्धचित्र तासूँ कहत जिनकी बुद्धि अमन्द ॥"[५]

१. रसिकरसाल, पृ० १३८, उल्लास ७ (द्वारकेश कविमंडल, कांकरौली)
२. चित्रचन्द्रिका, प्रकाश ४, छन्द ३, पृ० ३०
३. उपरिवत्, छन्द संख्या ५, पृ० ३१
४. उपरिवत्, छन्द संख्या ६
५. उपरिवत्, प्रकाश ६, छन्द संख्या १, पृ० ५८

काशिराज के इस वर्गीकरण के औचित्य का विचार पूर्व अध्याय में किया जा चुका है।

भिखारीदास ने 'चित्र' का विभाजन दूसरी पद्धति से किया तथा 'चित्र' के प्रश्नोत्तर, पाठान्तर, वाणीचित्र तथा लेखनीचित्र ये चार भेद माने।[1] लेखनीचित्र के अन्तर्गत उन्होंने 'बन्धचित्र' के अन्तर्गत आनेवाली समस्त रचनाओं का आकलन किया।[2] फलतः 'बन्धचित्र' की परिभाषा का उनके सम्बन्ध में प्रश्न ही नहीं उठता। यों लेखनीचित्र की परिभाषा के रूप में भी उन्होंने कोई लक्षण न देकर उसके अन्तर्गत परिगणित चित्र-रचनाओं में से कतिपय का नामोल्लेखमात्र ही किया है।[3] केशवदास ने भी 'चित्रकाव्य' के अन्य भेदोपभेदों का लक्षण तो दिया है किन्तु 'बन्धचित्र' के लक्षण के सम्बन्ध में मौन रह जाना ही उचित समझा है यद्यपि उदाहरणस्वरूप उन्होंने आठ बन्धों के छन्द दिये हैं।[4]

संस्कृत और हिन्दी के अधिकांश आचार्यों द्वारा 'बन्धचित्र' का कोई लक्षण नहीं दिये जाने का कारण यह है कि इन चित्रों का न्यास आलेख्य के रूप में होता है। अतः जब दृश्यरूप में ये चित्ररचनाएँ अपने स्वरूप का बोध कराने में स्वतः समर्थ हैं, फिर शब्दतः लक्षणकथन की आवश्यकता नहीं रह जाती। आगे हम हिन्दी में रचित प्रमुख 'बन्धचित्रों' का विवेचन करेंगे।

कमलबन्ध—

'बन्धचित्रों' में 'कमलबन्ध' कवियों का एक प्रिय बन्ध रहा है। दलों के अनुसार इसके कई भेद होते हैं। संस्कृत में अधिकांशतः चार, आठ, बारह तथा सोलह दलों वाले 'कमलबन्ध' की ही रचना मिलती है (यों ४८, ९६, १०० दलों के 'कमलबन्ध' का भी उल्लेख मिलता है) जबकि हिन्दी में इस बन्ध में दलों की संख्या निश्चित नहीं रही। ९, १०,

---

१. "प्रश्नोत्तर पाठांतरो, पुनि बानी को चित्र।
चारि लेखिनी-चित्र को चित्रकाव्य है मित्र ॥३॥"
—काव्यनिर्णय, अध्याय २१

२. "खड्ग कमल कंकन डमरु, चंद्र चक्र धनु हार।
मुरज छत्रजुत बन्ध बहु पर्वत वृक्ष कँवार ॥५६॥"
—काव्यनिर्णय, अध्याय २१

३. उपरिवत्, छन्द संख्या ५७ तथा ५८

४. कविप्रिया, प्रभाव १६, छन्द संख्या ७१ से आगे

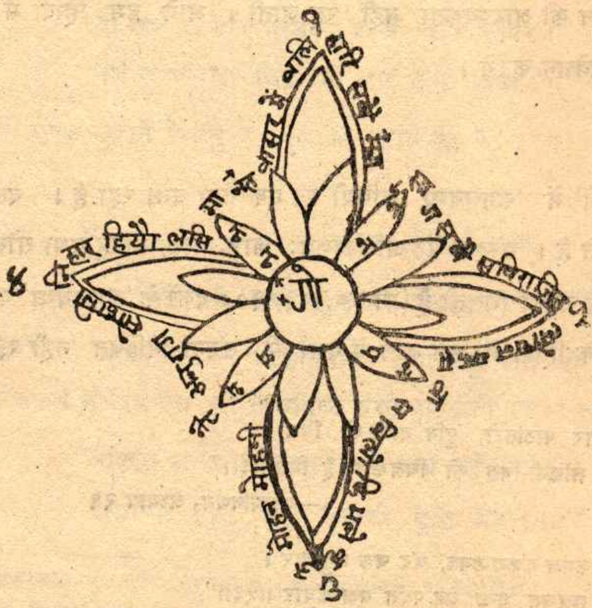
१२, १८, २१, २४ आदि संख्याओं में भी कमलदलों की व्यवस्था हुई, साथ ही वर्ण-विन्यास में भी एकरूपता नहीं रह सकी। संश्लिष्टभाषा होने के कारण संस्कृत में जहाँ वर्णावृत्ति और समास की अधिक सुविधा है वहाँ हिन्दी में विश्लेषणात्मक प्रकृति के कारण इच्छित शब्दनिर्माण में अधिक कठिनाई है। फलतः न्यास की जो उत्कृष्टता संस्कृत बन्धों में दीख पड़ती है वह हिन्दी में न रह गई।

(क) चतुर्दल कमल

चित्र संख्या-१

न्यास का छन्द

"गोननमानत वासर में वलिहारि सबै मग साननगो।
गोनन साग सबै सविराजित लोचन वंक सवान पगो॥
गोपन वास विलोकि भले वृज मोहन मोहनी तैं न मगो।
गोमन तैं अनुराग सोहागि निहार हियो लसि माननगो॥"



चतुर्दल कमल - १

गुणन चिह्न (×) न्यास के आरम्भबिन्दु को संकेतित करता है।

इस बन्ध की रचना सर्वप्रथम हमें रुद्रट के 'काव्यालंकार' में मिलती है।[१] 'अग्नि-पुराण' में भी इसका वर्णन है तथा इसकी न्यासविधि निम्न श्लोक में दी गई है—

"कर्णिकान्ते लिखेदूर्ध्वं पत्राकाराक्षरा वलिम्।
प्रवेशयेत्कर्णिकायां चतुष्पत्र सरोरुहे॥"[२]

'अग्निपुराण' में किसी भी बन्ध के उदाहरण के छन्द नहीं दिये गये हैं केवल न्यासविधि ही दी गई है। किन्तु रुद्रट में चतुष्पत्र पद्म का श्लोक है।[3] भोजराज के 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में 'अग्निपुराण' की ही न्यासविधि है तथा बन्ध के श्लोक भी हैं।[४] हिन्दी में भी चतुर्दलकमल के लिये उपर्युक्त न्यासविधि ही अपनाई गई है। अन्तर यह है कि संस्कृत में छोटे श्लोक होने के कारण जहाँ चित्र के न्यास में अधिक स्पष्टता रहती थी, वहाँ हिन्दी का छन्द बड़ा होने के कारण न्यास में उतनी स्पष्टता नहीं रह जाती। विवेचन के लिये 'रावणेश्वर कल्पतरू' का निम्न छन्द द्रष्टव्य है—

"गोननमानत वासर में बलिहारि सबै मग साननगो।
गोनन साग सबै सविराजित लोचन वंक सवान पगो।
गोपन वास विलोकि भले वृज मोहन मोहनी तै न मगो।
गोमन तें अनुराग सोहागि निहार हियो लसि माननगो॥"[५]

---

१. काव्यालंकार, पंचम अध्याय, श्लोक २१

२. अध्याय ३४३, श्लोक संख्या ४५

३ "या पात्यपायपतितानवतारिताया
यातारितावपतिवाग्भुवनानिमाया ।
यामानिना वपतु वो वसु सा स्वगेया
यागे स्वसासुररिपोर्जयपात्यपाया ॥२१॥"
—काव्यालंकार, अ० ५।

४. न्यासविधि—
"कर्णिकातो नयेदूर्ध्वं पत्राकाराक्षरावलीम्।
प्रवेशयेत्कर्णिकायां पद्ममेतच्चतुर्दलम् ॥२९१॥"

बन्ध का श्लोक—
"सासवा त्वा सुमन सा सा नता पीवरोर सा।
सारधामेति सहसा साहसर्ध सुवाससा ॥२९०॥"
—स० क०, परि० २

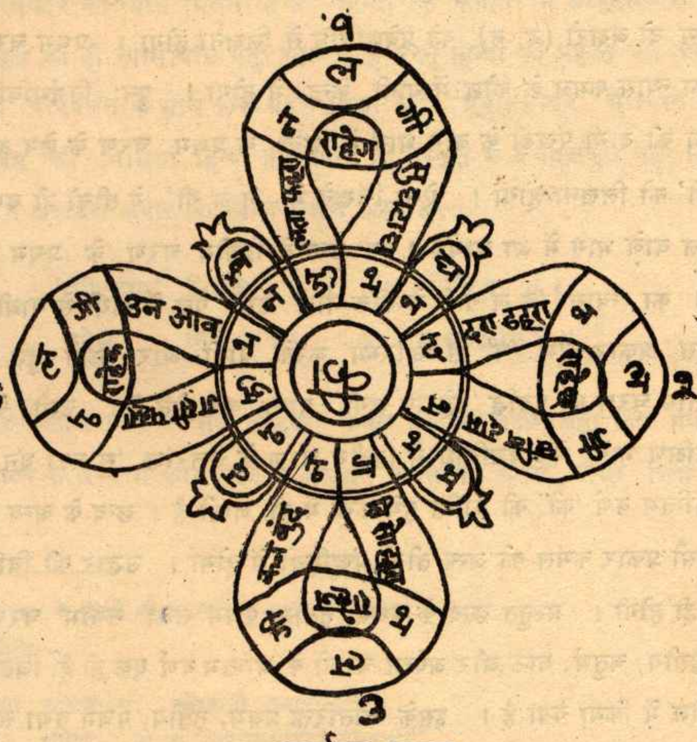
५. कुसुम ११, पृ० ६

प्रस्तुत छन्द का चित्र में न्यास 'अग्निपुराण' तथा 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में कथित उपर्युक्त विधि के अनुसार ही होगा।[१] मध्य अथवा कोश में '**गो**' अक्षर लिखकर ऊपर की ओर दो दलों के संधिस्थल पर '**न**', '**न**', '**मा**', ये तीन अक्षर निर्गम विधि से लिखने होंगे। फिर दायीं ओर की पंखुड़ी के किनारे-किनारे उपर्युक्त छन्द की प्रथम पंक्ति के अन्य भागों को लिखना होगा। केवल अन्तिम तीन वर्ण '**सा**', '**न**', '**न**', को पुनः पत्रों के अगले सन्धिस्थल पर प्रवेश विधि से लिखना होगा और कोश में प्रवेश करते हुए '**गो**' पुनः पढ़ना होगा। इस प्रकार कमल की एक पंखुड़ी के किनारे-किनारे छन्द की प्रथम पंक्ति का न्यास होगा। अन्य तीन पंक्तियों का न्यास भी इसी प्रकार किया जायगा। इस न्यास में कमल के कोश में लिखित वर्ण **गो** छन्द की प्रत्येक पंक्ति का प्रथम तथा अन्तिम वर्ण है तथा दलों के सन्धि-स्थलों पर लिखे तीनों वर्णों को दो बार पढ़ना होगा—एक बार पूर्व पंक्ति के अन्तिम भाग को पढ़ते हुए प्रवेश विधि से और पुनः उत्तर पंक्ति के आदि में निर्गम विधि से। इस प्रकार चित्र में विन्यस्त इस छन्द का उद्धार होगा। इस न्यास तथा उद्धारक्रम को गणित की रीति से अधिक आसानी से समझा जा सकता है—

मान लें कि क, ख, ग, तथा घ कमल के चार दल हैं तथा प उसका केन्द्र है। अब प्रस्तुत छन्द की प्रथम पंक्ति के प्रथम अक्षर 'गो' को प पर लिखें। पुनः 'गो' के बाद के तीन वर्ण 'न न मा', घ तथा क के सन्धिस्थल पर निर्गम दिशा में लिखे जायेंगे। अब छन्द की प्रथम पंक्ति के बचे हुए वर्णों में से 'नत वासर में वलिहारि सबै मग' क दल के किनारे-किनारे लिखे जायेंगे। पुनः उपर्युक्त पंक्ति का अन्तिम अंश 'सानन' प्रवेशविधि से क तथा ख के सन्धिस्थल पर लिखा जायगा और इस प्रकार पंक्ति का अन्तिम वर्ण 'गो' पुनः प पर आ जायगा। तदनन्तर छन्द की दूसरी पंक्ति के लिये पुनः हम केन्द्र प से आरम्भ करेंगे और क और ख के सन्धिस्थल पर विन्यस्त तीनों वर्णों को निर्गमविधि से पढ़ते हुए पंक्ति के बचे अंश को ख दल के किनारे-किनारे लिखेंगे। पुनः पंक्ति के अन्तिम अंश से तीन वर्ण ख और ग के सन्धिस्थल पर प्रवेशविधि से लिखे जायेंगे तथा अन्तिम वर्ण 'गो' पुनः प पर आ जायगा। इसी प्रकार निर्गम तथा प्रवेश विधि से चारों दलों में सम्पूर्ण छन्द का विन्यास होगा तथा छन्द की अन्तिम पंक्ति के उपान्त्य तीनों वर्णों को प्रवेशविधि से घ और क के सन्धिस्थल पर पढ़ते हुए जिनका विन्यास आदि में ही हो चुका था, अन्तिम वर्ण को प पर पढ़ेंगे। यही क्रम छन्द के उद्धार का भी होगा।

१. द्रष्टव्य, चित्र संख्या १

चित्र संख्या-२



चतुर्दल कमल-२

गुणन चिह्न (×) न्यास के आरम्भबिन्दु को संकेतित करता है।

हिन्दी में उपलब्ध चतुर्दल कमल का उपर्युक्त चित्र एक दूसरे प्रकार का है।[१] संस्कृत में इस प्रकार की न्यासविधि हमें नहीं मिलती। राजा महिरामन सिंह लिखित 'प्रबीनसागर' में इस चित्र की व्यवस्था है। इसका छन्द निम्न है—

"बन की जु लता फहरान लगी, गहेरान लगी सु घटा घन की।
घन की ददरा डहरान लगी, छहेरान लगी छवि दामन की॥
मन की गति सो हहरान लगी, जहेरान लगी कन बुंदन की।
दन की जुग सी पहेरान लगी, कहेरान लगी उन आवन की॥"[२]

१. द्रष्टव्य, उपर्युक्त चित्र संख्या २
२. लहर ६४, छन्द ५, पृ० ६२८

प्रस्तुत चित्र में कमल की चार पंखुड़ियों के अतिरिक्त उन चारों के मध्य में केशर की चार छोटी कर्णिकाएँ भी निकली हुई हैं। न्यास के लिये प्रथम हमें एक केशरकर्णिका में छन्द के प्रथम दो अक्षरों (ब, न) को प्रवेशविधि से लिखना होगा। प्रथम चरण के तीसरे वर्ण 'की' का न्यास कमल के कोश में यानी केन्द्र में होगा। पुनः निर्गमविधि से उक्त केशरकर्णिका की दायीं पंखुड़ी के बाम भाग में छन्द के प्रथम चरण के शेष अश 'जु लता फहरान लगी' को लिखना होगा। ऐसा लिखने में 'न ल गी' ये तीनों ही वर्ण पंखुड़ी के ऊपर के गोल वाले भाग में आ जायेंगे। पुनः छन्द के द्वितीय चरण के प्रथम तीन वर्णों (ग, हे, रा) का न्यास 'न ल गी' के ठीक नीचे उसी पत्र में दायीं से बायीं ओर को होगा। इस प्रकार हम 'ग' से आरम्भ करके बायीं ओर चलते हुए दक्षिणावर्त रीति से द्वितीय चरण का पूर्वार्द्ध 'गहेरान लगी' प्राप्त कर लेते हैं। उसी के साथ उसी पंखुड़ी के दक्षिण भाग में प्रवेशविधि से द्वितीय चरण के उत्तरांश 'सु घटा घन' का न्यास करते हुए अन्तिम वर्ण 'की' की प्राप्ति हमें केन्द्र में हो जाती है। छन्द के अन्य छहों चरणों का न्यास इसी प्रकार कमल की अन्य तीनों पंखुड़ियों में होगा। उद्धार की विधि भी न्यास के अनुकूल ही होगी। प्रस्तुत छन्द के प्रथम, तृतीय, पंचम तथा सप्तम चरणों के तृतीय वर्ण तथा द्वितीय, चतुर्थ, षष्ठ और अष्टम चरणों के अन्तिम वर्ण एक ही हैं, जिनका विन्यास कमल के कोश में किया गया है। इसके अतिरिक्त प्रथम, तृतीय, पंचम तथा सप्तम चरणों के अन्तिम तीन वर्ण और द्वितीय, चतुर्थ, षष्ठ तथा अष्टम चरणों के चतुर्थ, पंचम तथा षष्ठ वर्ण भी समान ही हैं, जिनका न्यास कमल के दलान्त में किया गया है। इन वर्णों की समानता ही आवृत्ति क्रम से प्रस्तुत चित्र में चमत्कार पैदा करती है।

(ख) अष्टदल कमल

अष्टदल कमल के कई प्रकार के चित्र हिन्दी में मिलते हैं। संस्कृत में भी इसके एकाधिक न्यास हैं। 'अग्निपुराण' में अष्टदल कमल की न्यासविधि दी गई है।[1] भोजराज ने भी 'अग्निपुराण' के आधार पर अष्टदल कमल का न्यास किया है।[2] इसके अतिरिक्त इस

१. अध्याय ३४३, श्लोक ४६

२. स० क०, परि० २, श्लोक २८५

"कर्णिकायां न्यसेदेकं द्वे द्वे दिक्षु विदिक्षु च।
प्रवेश निर्गमौ दिक्षु कुर्यादष्टदलाम्बुजे॥"

बन्ध के दो प्रकार के अन्य चित्र भी 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में दिये गये हैं।[१] 'कप्फिणाभ्युदयम्' में भी एक अन्य प्रकार का न्यास मिलता है।[२] हिन्दी के कवियों ने अष्टदल-पद्म के चित्र में बिलकुल संस्कृत की ही न्यासविधि नहीं अपनाई है वरन् हिन्दी की प्रकृति को ध्यान में रखकर कतिपय परिवर्तन के साथ इन्हें ग्रहण किया है। 'प्रबीनसागर' में न्यस्त कतिपय पद्मबन्ध के चित्र की विधियाँ हिन्दी की अपनी हैं; संस्कृत में वे बिलकुल नहीं मिलतीं। अग्निपुराणकार ने अष्टदल कमल का निम्न लक्षण दिया है—

"कर्णिकायां लिखेदेकं द्वे द्वे दिक्षु विदिक्षु च।
प्रवेश निर्गमौदिक्षु कुर्यादष्टच्छदेऽम्बुजे॥"[3]

'सरस्वतीकण्ठाभरण' में भी अष्टदल कमल का एक लक्षण यही दिया गया है।[४] हिन्दी में चित्रकाव्य के आचार्य काशिराज ने अष्टदल कमल का इससे थोड़ा भिन्न लक्षण दिया है—

---

१. दोनों प्रकार के चित्रों की न्यासविधि तथा श्लोक निम्न हैं—
न्यासविधि—

"अष्टधा कर्णिकावर्णः पत्रेष्वष्टौ तथापरे।
तेषां संधिषु चाप्यष्टावष्टपत्रसरोरुहे ॥२८७॥"

श्लोक—

"चरस्फार वरक्षार वरकार गरज्वर।
चलस्फाल वलक्षालवल कालगलज्वल ॥२८६॥"

न्यासविधि—

"प्राक्कर्णिकां पुनः पर्णं पर्णाग्रं पर्णकर्णिके।
प्रतिपर्णं व्रजेद्वीभानिह त्वष्टदलाम्बुजे ॥२८९॥"

श्लोक—

"न शशीशनवे भावे नमत्काम नतव्रत।
नमामि माननमनं ननु त्वानुनयन्नयम् ॥२८८॥"

—स० क०, परि० २

२. सर्ग १८, श्लोक ७४, चित्र पृ० १५९

३. द्रष्टव्य, पृ० १०५, टि० १

४. द्रष्टव्य, उपरिवत्, टि० २

"षोड़श वर्ण कुं एक करि धरो कोश में मित्र।
त्रय त्रय वर्ण जुं पत्र में कमल अष्टदल चित्र ।।"[१]

काशिराज द्वारा प्रदत्त अष्टदल कमल का छन्द निम्न है—

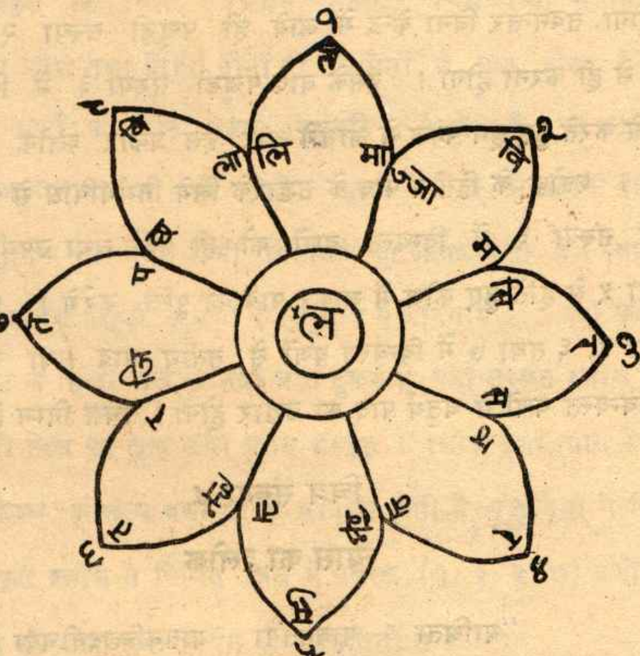
"ललित माल लज्जाविमल लसि रस लल वर वाल ।
लखै सुताल लहो तरल लज़ित पलल छवि लाल ।।"[२]

लक्षण के अनुसार चित्र में प्रस्तुत छन्द के न्यास[3] के हेतु प्रथम कमल के कोश यानी केन्द्र में 'ल' वर्ण लिखना होगा। पुनः कमल की आठो पंखुड़ियों में से प्रत्येक में छन्द के प्रारम्भ से 'ल' वर्ण के अतिरिक्त अन्य वर्णों में से क्रमशः तीन-तीन वर्ण रखने होंगे। पंखुड़ियों में विन्यस्त तीनों वर्णों में न्यास का क्रम इस प्रकार होगा—बीच का वर्ण ऊपर पंखुड़ियों की नोक पर मध्य में तथा अन्य दो वर्ण एक रेखा में मध्यवर्ण के ठीक नीचे जिनमें प्रथम वर्ण बायीं ओर तथा तृतीय दायीं ओर। उद्धार के लिए हमें प्रथम कोश के 'ल' वर्ण से आरम्भ करना होगा। यदि हम पंखुड़ियों की क्रमसंख्या १, २, ३, ………… ८ रखें तो हमें कोश के वर्ण से आरम्भ कर संख्या १ की पंखुड़ी में विन्यस्त बायीं ओर का वर्ण फिर ऊपर का वर्ण निर्गमविधि से पढ़ना होगा। पुनः प्रवेशविधि से दायीं ओर का वर्ण पढ़ते हुए कोश में आ जाना होगा। इस प्रकार प्रत्येक पंखुड़ी और कोश को मिलाकर पाँच वर्णों का पाठ होगा, जिनमें प्रथम तथा पंचम वर्ण (कोश में विन्यस्त) एक ही होंगे। सम्पूर्ण छन्द के इस प्रकार के आठ टुकड़े होते हैं और वे आठों पंखुड़ियों में विन्यस्त हैं। प्रस्तुत चित्र संख्या ३ की पंखुड़ी संख्या १ में इस प्रकार 'ललित माल' का पाठ होता है, जिनमें 'ल' (प्रथम तथा पंचम) का न्यास केन्द्र में है, 'त' पंखुड़ी की नोक पर उसके नीचे (पंखुड़ी में ही) बायीं ओर 'लि' तथा दायीं ओर 'मा' एक ही सीधी रेखा में हैं। अब 'ल' से आरम्भ कर 'लि' होते हुए 'त' तक निर्गम विधि से पाठ होता है पुनः 'मा' तथा कोश में विन्यस्त 'ल' का पाठ प्रवेशविधि से होगा। प्रत्येक पंखुड़ी में वर्णों का न्यास और उद्धार इसी क्रम में होगा तथा पंखुड़ी संख्या ८ में विन्यस्त वर्णों के पाठ के पश्चात् जब हम कोश में प्रवेश करेंगे तो छन्द पूर्ण हो जायगा। निम्नलिखित चित्र संख्या ३ में इसे देखा ज" सकता है।

---

१. चित्रचन्द्रिका, प्रकाश ४, छन्द ८, पृ० ३२
२. उपरिवत्, छन्द ९, पृ० ३३
३. द्रष्टव्य, चित्र संख्या ३

चित्र संख्या ३



अष्टदल कमल –१

गुणन चिह्न (×) न्यास के आरम्भबिन्दु को संकेतित करता है।

उपर्युक्त लक्षण के अनुकूल संस्कृत में विन्यस्त अष्टदल कमल के चित्र से इस चित्र के न्यास और पाठ में थोड़ा अन्तर आता है। संस्कृत का छन्द है—

"यांश्रिता पावनतया यातनच्छिदनीचया।
याचनीया धिया माया यामायासंस्तुता श्रिया॥"[1]

भोजराज के 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में विन्यस्त चित्र[2] के अनुकूल इस छन्द के चारों पादों के आदि तथा अन्त में लिखित 'या' वर्ण की आवृत्ति होती है। इस 'या' का न्यास कोश में है। 'या' के अतिरिक्त सम्पूर्ण श्लोक में १६ वर्णों का प्रयोग किया गया है, ये १६ वर्ण आठों पंखुड़ियों में निर्गमविधि से विन्यस्त हैं। चित्र की विचित्रता इसके उद्धार में है।

१. स० क०, परि० २, श्लोक २८४

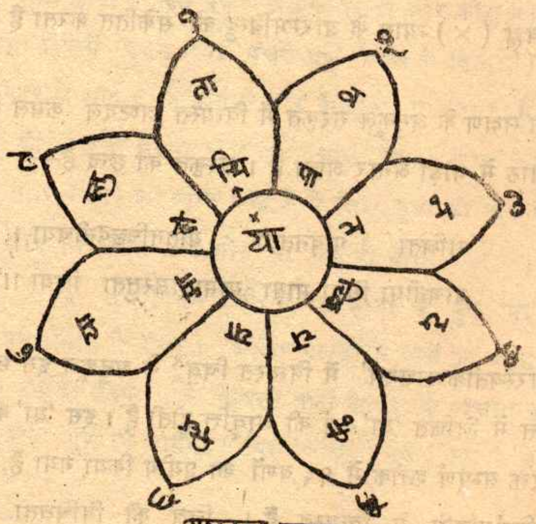
२. उपरिवत् (काव्यमाला) के अन्त में न्यस्त प्रथम चित्र तथा प्रस्तुत चित्र संख्या ४

यदि चित्र संख्या-३ की तरह पंखुड़ियों की संख्या १, २, ३,……८ रखें तो उद्धार के लिये हमें प्रथम केन्द्र के 'या' से चलना होगा। पुनः निर्गमविधि से पंखुड़ी संख्या १ के वर्णों को पढ़ना होगा, तदनन्तर बिना केन्द्र में आये ही पंखुड़ी संख्या २ के वर्णों का पाठ भी निर्गमविधि से ही करना होगा। इसके बाद पंखुड़ी संख्या ३ में विन्यस्त वर्णों का पाठ प्रवेशविधि से करते हुए हम कोश में आयेंगे और इस प्रकार श्लोक के प्रथम पाद का उद्धार होगा। श्लोक के द्वितीय पाद के उद्धारके लिये निर्गमविधि से पुनः कोश से आरम्भ कर पंखुड़ी संख्या ३ में विन्यस्त वर्णों को ही पढ़ेंगे तथा उपर्युक्त क्रम से ही पढ़कर पंखुड़ी संख्या ५ से होते हुए कोश में जाकर पाद की पूर्त्ति करेंगे। इसी प्रकार क्रमशः पंखुड़ी संख्या ५, ६ तथा ७ में विन्यस्त वर्णों से तृतीय पाद तथा पंखुड़ी संख्या ७, ८ तथा १ में विन्यस्त वर्णों से चतुर्थ पाद का उद्धार होगा। चित्र निम्न है—

चित्र संख्या-४

न्यास का श्लोक

"याश्रिता पावनतया यातनच्छिदनीचया।
याचनीया धिया माया यामायासंस्तुताश्रिया॥"



अष्टदल कमल -२

गुणनचिह्न (×) न्यास के आरम्भबिन्दु को संकेतित करता है।

संस्कृत तथा हिन्दी में विन्यस्त अष्टदल कमल के प्रस्तुत दोनों ही चित्रों में अन्तर स्पष्ट है। संस्कृत के चित्र में प्रथम, तृतीय, पंचम तथा सप्तम पंखुड़ियों में विन्यस्त वर्णों का प्रवेश तथा निर्गम दोनों हीं विधियों से पाठ होता है, शेष पंखुड़ियों में लिखित वर्णो का पाठ केवल निर्गमविधि से होता है तथा इनके साथ कोशस्थ वर्ण के पाठ की आवश्यकता भी नहीं होती। हिन्दी के चित्र में प्रत्येक पंखुड़ी में विन्यस्त वर्णों के पाठ में निर्गम तथा प्रवेश दोनों विधियों की आवश्यकता है। स्वभावतः कोशस्थ वर्ण का पाठ भी प्रत्येक पंखुड़ी के वर्णों के आद्यन्त में अनिवार्य है। यही कारण है कि चित्र में न्यास की दृष्टि से हिन्दी छन्द के जहाँ आठ टुकड़े हैं वहाँ संस्कृत श्लोक के केवल चार। दूसरी ओर हिन्दी चित्र का छन्द तथा न्यास संस्कृत के श्लोक तथा न्यास से सरल है कारण हिन्दी चित्र में केवल कोशस्थ वर्णों की ही आवृत्ति होती है, पंखुड़ियों में विन्यस्त वर्णों की नहीं, जबकि संस्कृत श्लोक से निर्मित चित्र में पत्रस्थ (१, ३, ५, ७) वर्णों की भी आवृत्ति होती है और वह भी प्रवेश तथा निर्गम दोनों विधियों से।

'प्रबीनसागर' में अष्टदल कमल के अन्य तीन प्रकार के बन्धों की व्यवस्था है।[1] यद्यपि ये तीनों ही बन्ध न्यास की दृष्टि से सुगम हैं, किन्तु चमत्कार की दृष्टि से इनका अपना महत्त्व है। संस्कृत में 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में अष्टदल कमल के दो अन्य प्रकार के चित्र भी मिलते हैं[2] किन्तु हिन्दी में उनकी रचना नहीं हुई। 'प्रबीनसागर' में चित्रित तीनों ही बन्ध क्रमशः नीचे दिये जाते हैं—

प्रथम चित्र का छन्द-

''बदले बदले धुरवा धुरवा,
विरही विरही सरिहे सरिहे।

१. पृ० ६२६ लहर ६४, चित्र संख्या ४०
पृ० ६२८, लहर ६४, चित्र संख्या ४३
पृ० ६५३, लहर ६५, चित्र संख्या ७९

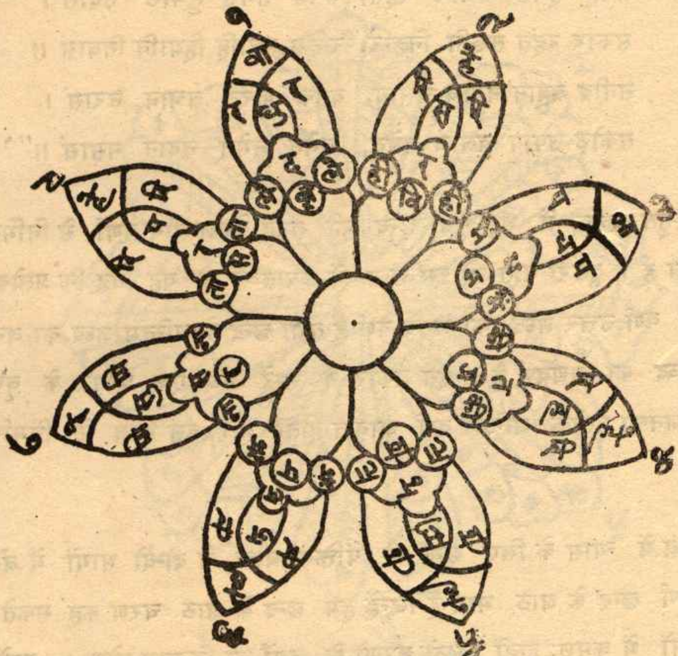
२. स० क० (काव्यमाला) के अन्त में न्यस्त चित्र संख्या ३ तथा ६
इन चित्रों में न्यस्त श्लोक हैं—
परि० २, श्लोक संख्या २८८ तथा २९४

नभमें नभमें चपला चपला,
गतकी गतकी हरिहे हरिहे ॥
विनता विनता सुनिहे सुनिहे,
पलमे पलमे जरिहे जरिहे ।
रसना रसना सुमिरे सुमिरे,
सरता सरता परिहे परिहे ॥"[1]

प्रस्तुत छन्द में हम देखते हैं कि सम्पूर्ण छन्द में केवल तीन वर्णों से निर्मित शब्दों का प्रयोग है तथा प्रत्येक शब्द की एक बार आवृत्ति हुई है । चित्र में इसका न्यास भी सरल है । विवेचन के लिये हम कमल के आठों दलों को क्रमशः $प_१$, $प_२$, $प_३$, $प_४$, $प_५$, $प_६$, $प_७$ तथा $प_८$ की संज्ञा से अभिहित करते हैं । प्रस्तुत न्यास में केन्द्र अथवा कोश में कोई वर्ण नहीं है । प्रत्येक दल में दलमध्य तथा दलान्त में चार-चार वर्णों का विन्यास किया गया है । सर्वप्रथम $प_१$ के मध्य में 'बदले' शब्द के तीनों वर्णों का न्यास इस प्रकार हुआ है कि 'ब' तथा 'द' निर्गमविधि से क्रमशः नीचे तथा ऊपर एकही सीध में हैं । पुनः 'ले' अक्षर को इन दोनों वर्णों (ब, द) के बीच में बायीं तथा दायीं ओर दो बार एक ही सीध में लिखा गया है । इस प्रकार दलमध्य में 'ब', 'द', 'ले' 'ले' इन चार वर्णों का न्यास है । पुनः $प_१$ के ही दलान्त में 'धुरवा' शब्द के तीनों वर्णों को इस प्रकार रखा गया है कि 'धु' और 'वा' निर्गमविधि से क्रमशः नीचे और ऊपर एक सीध में हैं तथा 'र' इनके बीच में बायीं तथा दायीं ओर एक सीध में ही दो बार आया है । इस प्रकार $प_१$ के दलान्त में भी 'धु', 'वा', 'र', 'र' इन चार वर्णों का न्यास है । इसी विधि से छन्द के द्वितीय चरण के शब्द 'विरही' तथा 'सरिहे' का न्यास क्रमशः $प_२$ के दलमध्य तथा दलान्त में चार-चार वर्णों में किया गया है । अन्य दलों में भी उसी क्रम से छन्द के अन्य चरणों के वर्णों का विन्यास हुआ है और इस प्रकार छन्द के आठों चरणों के वर्णों का विन्यास कमल के आठों पत्रों में सम्पन्न हो जाता है । निम्नलिखित चित्र संख्या ५ में इसे देखा जा सकता है ।

१. प्रबीनसागर, पृ० ६२६, लहर ६४

चित्र संख्या-५



अष्टदल कमल—३

गुणन चिह्न (×) उद्धार के आरम्भबिन्दु को संकेतित करता है।

उद्धार के लिए हम प$_{१}$ के मध्य में अवस्थित 'ब' वर्ण से आरम्भ करेंगे तथा निर्गम विधि से 'द' को पढ़ते हुए बायीं ओर नीचे 'ले' को पढ़कर 'बदले' शब्द का पाठ पूर्ण करेंगे। पुनः 'ब' से आरम्भ कर 'द' को पढ़ते हुए दायीं ओर 'ले' पर आकर दुबारा 'बदले' शब्द का पाठ करेंगे। तदनन्तर दलान्त में स्थित 'धु' वर्ण से आरम्भ कर बायीं ओर के 'र' को पढ़ते हुए निर्गमविधि से 'वा' वर्ण पढ़कर 'धुरवा' शब्द का पाठ पूर्ण होगा। पुनः 'धु' से आरम्भ कर दायीं ओर के 'र' को पढ़ते हुए 'वा' पर जाने से 'धुरवा' शब्द की आवृत्ति होगी और इस प्रकार प$_{१}$ में विन्यस्त वर्णों से छन्द के प्रथम चरण 'बदले बदले धुरवा धुरवा' का उद्धार होगा। इसी विधि से क्रमशः प$_{२}$ प$_{3}$............प$_{८}$ में विन्यस्त वर्णों से छन्द के अन्य आठों चरणों का उद्धार होगा तथा छन्द का पाठ पूर्ण हो जायगा।

द्वितीय चित्र का छन्द—

"सनेह हमेस समार रहंत, तपंत तनंसु सुभाउ उदासं।
सकार रहंत तरूनि निहार, रतिस सदाहि हियानि निवासं ॥
सनीब्र ब्रहान नराच चलाय, यनेक करंत तचान नरासं।
सकोउ उपाय यलाज जमेन, नमेन नमेन नदान नसासं ॥"[१]

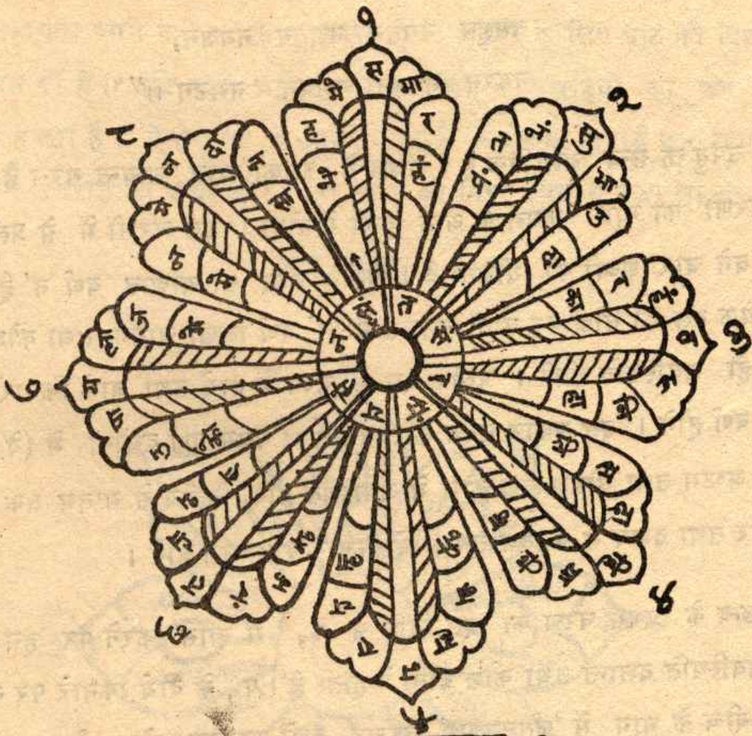
प्रस्तुत छन्द में भी पूर्व छन्द की तरह केवल तीन वर्णों से निर्मित शब्दों का प्रयोग हुआ है। दूसरी बात जो इस छन्द में ध्यातव्य है वह यह कि प्रत्येक पूर्व शब्द का अन्तिम वर्ण उत्तर शब्द का आदि वर्ण है तथा छन्द के अन्तिम शब्द का अन्त्यवर्ण छन्द के प्रथम शब्द का आद्यवर्ण है। इस प्रकार ये सारे शब्द एक प्रकार के वृत्त की सृष्टि करते हैं जिनका प्रत्येक अन्तिम वर्ण आवृत्त होता है। इस चित्र के निर्माण का यही रहस्य है।

चित्र में न्यास के लिए छन्द की पंक्तियाँ बीच से दो-दो भागों में बँटी हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण छन्द के आठ भाग हैं जिन्हें हम छन्द के आठ चरण कह सकते हैं। कमल के आठों दलों में क्रमशः इन्हीं आठों चरणों के वर्णों का विन्यास होगा। दलों की संख्या यदि पूर्व की तरह ही प$_१$, प$_२$, प$_३$ ....प$_८$ रखें, तो प$_१$ में छन्द के प्रथम चरण के वर्णों का विन्यास इस प्रकार होगा—

प$_१$ के आदि में (जहाँ कोश से दल फूटते हैं) बायीं ओर प्रथम चरण का आदि वर्ण 'स' लिखा जायगा। तदनन्तर निर्गमविधि से प$_१$ के वाम भाग में किनारे-किनारे चरण के द्वितीय, तृतीय तथा पंचम वर्ण लिखे जायेंगे। षष्ठ वर्ण दलान्त में होगा। पुनः अष्टम, नवम तथा एकादश वर्ण की अवस्थिति प$_१$ के दक्षिण भाग में प्रवेशविधि से होगी। चरण का द्वादश अथवा अन्तिम वर्ण दलादि में प्रथम वर्ण 'स' के साथ ही दायीं ओर अवस्थित होगा। इस प्रकार प्रथम चरण के वर्णों का न्यास प$_१$ में होगा। यहाँ ध्यातव्य यह है कि इस न्यास में आवृत्तिवाले वर्ण केवल एक ही बार लिखे जायेंगे, किन्तु उद्धार में उनके द्वित्व का ध्यान रखा जायगा। छन्द के आठों चरणों का न्यास इसी विधि से क्रमशः अन्य आठों दलों में होगा। चित्र निम्न है—

१. प्रवीनसागर, लहर ६४, पृ० ६२८

चित्र संख्या-६



अष्टदल कमल-४

गुणन चिह्न (×) उद्धार के आरम्भबिन्दु को संकेतित करता है।

छन्द के उद्धार के लिये न्यासविधि की तरह ही प१ के दलादि के वाम भाग में न्यस्त छन्द के प्रथम वर्ण से पाठ आरम्भ कर निर्गमविधि से दल के किनारे-किनारे बायीं ओर बढ़ेंगे। इस प्रकार पत्र में न्यस्त प्रत्येक तीसरे वर्ण का पाठ दो बार करना होगा। इसी विधि से दलान्त पर जाकर पुनः दल के दायें किनारे के वर्णों का पाठ प्रवेशविधि से करते हुए दलादि में आ जायेंगे। इस तरह छन्द के प्रथम चरण अथवा प्रथम पंक्ति के पूर्वार्द्ध का पाठ पूर्ण होगा। क्रमशः आठों दलों में विन्यस्त वर्णों का पाठ इसी विधि से करते हुए हम सम्पूर्ण छन्द का उद्धार कर सकेंगे।

तृतीय चित्र का छन्द—

"नजतन नवघन नवषन नचरन,
नगहन नकलन नडरन नवधन।
नरमन नवसन नव्रवन नललन,
नसदन नटरन नभवन नरहन॥

नहटन नटरन नत्यमन नचवन,
नतरन नसमन नबदन नभव्रन।
नसहन नमतन नलहन नयजन,
नगरन नगरन नभवन नमउन॥"[1]

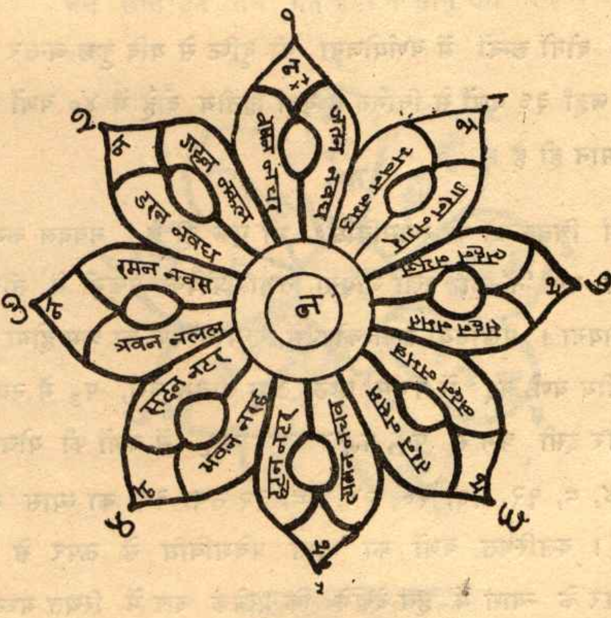
उपर्युक्त छन्द अमात्रिक है। चित्र में इसका न्यास अत्यन्त सरल है।[2] छन्द के आठों चरणों का न्यास कमल के आठ दलों में होगा। इन चरणों में से प्रत्येक में चार वर्णों से बने चार शब्दों की योजना है। प्रत्येक शब्द का आद्यन्त वर्ण 'न' है। न्यास के लिए प्रत्येक दल की नोक पर यानी दलान्त में 'न' वर्ण लिखा जायगा तथा कोश में भी 'न' वर्ण की ही अवस्थिति होगी। प्रत्येक दल के मध्य में दायें तथा बायें किनारों पर क्रमशः छह-छह वर्ण होंगे। इस प्रकार चरण का प्रथम तथा नवम वर्ण दलान्त में (ये वर्ण एक ही हैं) और अष्टम तथा षोडश वर्ण कोश में अवस्थित होंगे, द्वितीय से सप्तम तक दल के दायें किनारे पर तथा दशम से पंचदश तक बायें किनारे पर न्यस्त होंगे।

छन्द के प्रथम चरण का इस विधि से प१[3] में न्यास करने पर हम पाते हैं कि 'न' की अवस्थिति दलान्त तथा कोश दोनों में होती है। प१ के दायें किनारे पर दलान्त तथा कोश के बीच के भाग में 'जतननवघ' इन छह वर्णों का न्यास होता है तथा बायें किनारे पर उसी स्थान में 'वषननचर' इन छह वर्णों का। उद्धार के लिए सर्वप्रथम हम दलान्त के 'न' का पाठ करेंगे पुनः दलमध्य में स्थित दायें किनारे के वर्णों 'जतननवघ' का प्रवेश-विधि से पाठ करते हुए कोशस्थ 'न' पर आ जायेंगे। इस प्रकार चरण के पूर्वार्द्ध 'नजतन नवघन' की प्राप्ति हमें हो जाती है। चरण के उत्तरार्द्ध का उद्धार भी इसी क्रम से होगा। प्रथम हम पुनः दलान्त में स्थित वर्ण 'न' का पाठ करेंगे, फिर दलमध्य के बायें किनारे पर स्थित वर्णों 'वषननचर' का पाठ प्रवेशविधि से करते हुए कोशस्थ वर्ण 'न' पर आकर उसे समाप्त करेंगे। इस प्रकार चरण का उत्तरार्द्ध 'नवषन नचरन' हमें प्राप्त होगा। पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध को मिलाकर सम्पूर्ण चरण की प्राप्ति हमें इस पत्र में स्थित वर्णों के पाठ से हो जाती है। न्यास और उद्धार की इसी विधि से इस छन्द की अवस्थिति इस चित्र में होती है। प्रस्तुत चित्र में पंखुड़ियों का क्रम ($प_1$ $प_2$ $प_3$ $प_4$..............$प_8$)

१. प्रबीनसागर, लहर ६५, पृ० ६५३
२. द्रष्टव्य चित्र संख्या ७, पृ० ११७
३. यहाँ कमल के दलों को प१ प२ प३..........प८ से अभिहित किया गया है।

दायें से बायें है जबकि पूर्व विवेचित अन्य चित्रों[१] में उनका क्रम बायें से दायें है। यह न्यासकर्ता की इच्छा पर निर्भर है कि चित्र का न्यास किस दिशा से आरम्भ करे। सिद्धान्त की कोई अनिवार्यता इसमें नहीं। इतना अवश्य है कि उद्धार के लिए पाठ की दिशा वही होगी जो न्यास की है। यदि कोई चाहे तो प्रस्तुत चित्र में पंखुड़ियों का क्रम बायें से दायें भी रख सकता है। ऐसी दशा में प्रत्येक दल में चरण के पूर्वार्द्ध का न्यास बायीं ओर होगा और उत्तरार्द्ध का दायीं ओर। इस न्यास को निम्न चित्र में देखा जा सकता है।

चित्र संख्या-७



अष्टदल कमल-५

गुणन चिह्न (×) उद्धार के आरम्भबिन्दु को संकेतित करता है।

(ग) नवदल तथा दशदल कमल

'प्रबीनसागर' तथा 'चित्रचन्द्रिका' में क्रमशः नवदल तथा दशदल कमल का चित्र मिलता है। संस्कृत में इस प्रकार के न्यास का उल्लेख नहीं मिलता। इन दोनों ही चित्रों की न्यासविधि एक ही है, केवल छन्द में चार वर्ण अधिक होने से कमल के चित्र में एक दल की वृद्धि हो गई है। 'प्रबीनसागर' में उल्लिखित बन्ध में निम्न छन्द न्यस्त है—

१. चित्र संख्या ५ तथा ६ में

"मैन बान हन रैन दिन भान छीन तन लीन।
चैन छीन उन तेन मन क्यों न भान उन लीन॥"[1]

प्रस्तुत छन्द में प्रत्येक युग्मवर्ण एक ही 'न' है। संस्कृत में इस विधि से नियोजित श्लोक का उपयोग षोडशदल कमल[2] बन्ध के लिए किया जाता रहा है। 'चित्रचन्द्रिका' में विन्यस्त दशदल कमल का छन्द भी इसी प्रकार का है जिसका प्रत्येक युग्मवर्ण 'ल' है—

"भाल लाल गलमाल, भल छल वल थल चल हाल।
ख्याल लाल मिल ताल, जल दल मल पल पल वाल॥"[3]

उपर्युक्त दोनों छन्दों में वर्णयोजना की दृष्टि से यदि कुछ अन्तर है तो केवल यह कि प्रथम छन्द जहाँ ३६ वर्णों से निर्मित है वहाँ द्वितीय दोहे में ४० वर्णों की योजना है। वर्णों का क्रम समान ही है।

इन दोनों चित्रबन्धों की न्यासविधि[4] भी एक ही है। नवदल कमलबन्ध में कोश में अनेकधाआवृत्त वर्ण 'न' को रखा जायगा तथा प्रत्येक पंखुड़ी में तीन-तीन वर्णों का विन्यास किया जायगा। पंखुड़ियों तथा कोश में विन्यस्त वर्ण का क्रम होगा $प_१$[5] में प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय वर्ण, $प_२$ में पंचम, षष्ठ तथा सप्तम वर्ण, $प_३$ में नवम, दशम तथा एकादश वर्ण और इसी क्रम से $प_४$, $प_५$.................$प_८$ में वर्णों की योजना होगी। छन्द की वर्ण संख्या ४, ८, १२, १६, २०, २४, २८, ३२ तथा ३६ का न्यास कोश में होगा जो एक ही हैं। दलस्थित वर्णों का न्यास प्रवेशविधि से ऊपर से नीचे की ओर होगा। इस प्रकार के न्यास में हम देखेंगे कि प्रत्येक दल में स्थित मध्य वर्ण भी 'न' ही है।

---

१. लहर ६५, पृ० ६४९

२. "विष्वग्विषमवर्णानां तावत्पत्रावलीजुषाम्।
मध्ये समाक्षरन्यासः सरोजे षोडशच्छदे॥४७॥"
—अग्निपुराण, अध्याय ३४३

"गोमूत्रिका क्रमेणस्युःवर्णाः सर्वे समाः समाः।
मध्येमवर्णविन्यासात् पद्मोऽयं षोडशच्छदः॥२९३॥"
—सरस्वतीकण्ठाभरण, परि० २

३. चित्रचन्द्रिका, प्रकाश ६, पृ० ६०

४. द्रष्टव्य, चित्र संख्या ८ तथा ९

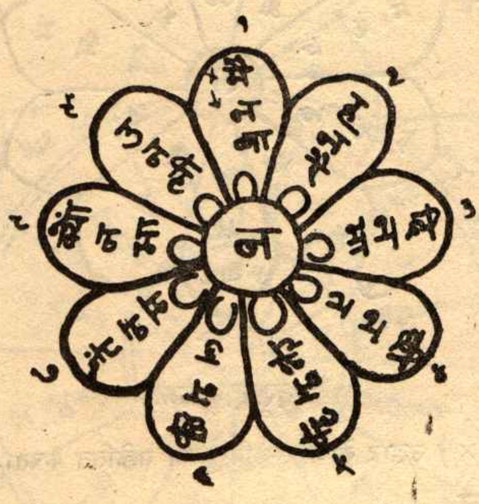
५. कमलदलों को क्रमशः प१ प२ प३ प४...........प९ अथवा प१० की संज्ञा दी गई है।

उद्धार के लिए हमें पहले प१ में स्थित वर्ण को प्रवेशविधि से पढ़कर कोश तक आना होगा। इस प्रकार हम छन्द के प्रथम चार वर्णों का पाठ कर लेते हैं, पुनः प२ में स्थित वर्णों का इसी विधि से अध्ययन करते हुए कोश तक आकर छन्द के अगले चार वर्णों का पाठ होता है। इसी क्रम से सभी दलों में विन्यस्त वर्णों के अन्त में कोशस्थ वर्ण को लगाकर हम सम्पूर्ण छन्द की प्राप्ति कर लेंगे। इस क्रम में निम्न चित्र द्रष्टव्य है।

चित्र संख्या-८

न्यास का छन्द

"मैन बान हन रैन दिन भान छीन तन लीन।
चैन छीन उन तैन मन क्यों न भान उन लीन॥"



नवदल कमल

गुणन चिह्न (×) उद्धार के आरम्भबिन्दु को संकेतित करता है।

चित्रचन्द्रिकास्थित दशदल कमल के चित्र का न्यास तथा उद्धारविधि भी बिलकुल यही है। इस चित्र के कोश में 'न' के स्थान पर 'ल' का न्यास है तथा इस छन्द में वर्णों की संख्या चार अधिक होने से कमल में एक दल और अधिक आ जाता है। इस चित्र के न्यास के लिए चित्रचन्द्रिकाकार ने स्वयं संकेत दिया है—

"प्रथम पत्र पुनि कोश पुनि पत्रकोश पढ़ि मित्र।
कवि कोविद सब कहत हैं कमलबन्ध यह चित्र॥"[1]

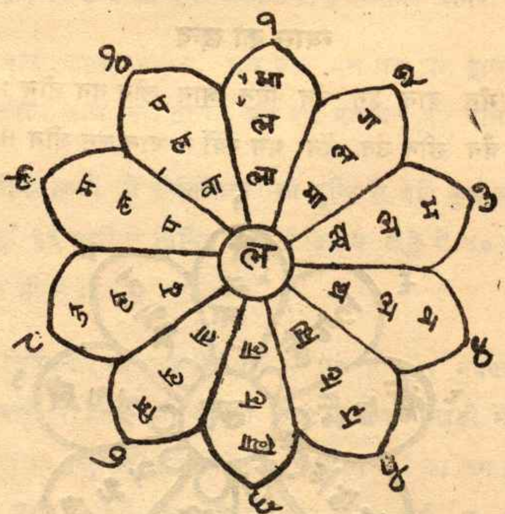
१. चित्रचन्द्रिका, पृ० ५९ प्रकाश ६, छन्द संख्या २

निम्नलिखित चित्र में यह न्यास द्रष्टव्य है ।

चित्र संख्या-९

न्यास का छन्द

"भाल लाल गलमाल, भल छल वल थल चल हाल ।
ख्याल लाल मिल ताल, जल दल मल पल पल वाल ॥"



दशदल कमल

गुणन चिह्न (×) उद्धार के आरम्भबिन्दु को संकेतित करता है ।

(घ) द्वादश दल कमल

द्वादशदल कमल के आकार में भी हिन्दी के कतिपय कवियो[1] ने बन्धचित्रों की रचना की है । संस्कृत में केवल 'कप्फिणाभ्युदयम्' में ही एक चित्र द्वादशदल पद्म का है ।[2] किन्तु हिन्दी में विन्यस्त द्वादशदलकमल बन्ध के चित्र से 'कप्फिणाभ्युदयम्' के इस चित्र का कोई साम्य नहीं है । किसी प्रकार का सम्बन्ध न तो छन्दरचना की दृष्टि से और न चित्रन्यास की दृष्टि से ही इनमें देखा जा सकता है । 'चित्रकलाधर' में दो प्रकार के द्वादशदलकमल के चित्र हैं, एक है सामान्य तथा दूसरा नामांक । सामान्य चित्र निम्न है—

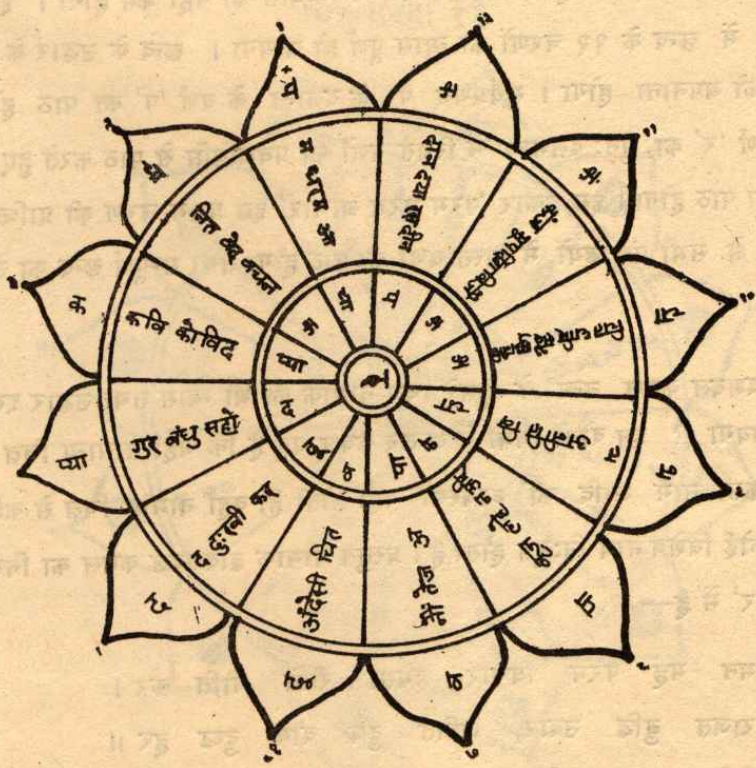
१. गोकुलकवि, चित्र कलाधर, पृ० ७३-७४, चित्र संख्या २५-२६
जनराज, कवितारस विनोद (ह०) पत्र २९२/२
पदुमनदास, काव्यमंजरी, पृ० ११०
दीनदयाल गिरि, दीनदयाल गिरि ग्रन्थावली, वैराग्यदिनेश, पृ० १८८ और १९१
सन्तकवि सुन्दरदास, सुन्दर ग्रन्थावली, पृ० ९०८ तथा ९६६

२. कप्फिणाभ्युदयम्, सर्ग १८, श्लोक ७४, चित्र पृ० १९० पर

चित्र संख्या-१०

न्यास का छन्द

"परम धरम आचार, चार नित वेद वचन कर।
कर कवि कोविद प्यार, प्यार गुर बंधु सहोदर॥
दरद दुखी कर दूर, दूर अन्देसी चितवर।
बरनौं तेज अपार पार वृंज लहे न अरिनर॥
न रत अनीति विचार चार चित धारि सदैं सुभ नीतिकर।
करकंज भूप दिगविजै कर कर दानदया रस दीन पर॥"[1]



द्वादशदलकमल

गुणन चिह्न (×) उद्धार के आरम्भबिन्दु को संकेतित करता है।

प्रस्तुत चित्र का न्यास अत्यन्त सरल है। सम्पूर्ण छन्द में छह पक्तियाँ हैं। द्वादश-दलों में इनका न्यास करने में स्वाभावतः प्रत्येक पंक्ति दो भागों में बँट जाती है।

---

१. चित्रकलाधर, पृ० ७३

इस प्रकार सम्पूर्ण छन्द में १२ चरण प्राप्त होते हैं। निश्चित है कि इनमें से प्रत्येक चरण क्रम से कमल के प्रत्येक दल में विन्यस्त होगा। यदि मान लिया जाय कि कमल के दलों की संख्या $प_१, प_२, प_३ \cdots\cdots प_{१२}$ है तो $प_१$ में छन्द की प्रथम पंक्ति के पूर्वार्द्ध का न्यास होगा। सर्वप्रथम प्रथम चरण का आदि वर्ण 'प' दलान्त में लिखा जायगा। पुनः चरण का अन्तिम वर्ण 'र' कमल के कोश में लिखा जायगा। चूँकि छन्द के सभी चरणों का अन्त 'र' वर्ण से ही होता है अतः सभी दलों में न्यस्त वर्णों के साथ कोशस्थ 'र' का पाठ होगा। फिर चूँकि प्रत्येक चरण का दूसरा वर्ण 'र' ही है अतः दलान्त के बाद पाठ के लिये कोशस्थ 'र' को लेना होगा। पुनः दल के मध्य में चरण के तृतीय वर्ण से लेकर उपान्त्य वर्ण तक का अंश प्रवेशविधि से विन्यस्त होगा। प्रत्येक दल में विन्यास का यही क्रम होगा। इस प्रकार १२ दलों में छन्द के १२ चरणों का न्यास पूर्ण हो जायगा। छन्द के उद्धार के लिये भी इसी क्रम को अपनाना होगा। सर्वप्रथम $प_१$ के दलान्त के वर्ण 'प' का पाठ होगा फिर कोशस्थ वर्ण 'र' का, पुनः दलमध्य में स्थित वर्णों का प्रवेशविधि से पाठ करते हुए कोशस्थ वर्ण 'र' का पाठ होगा। इस प्रकार 'परम धरम आचार' इस प्रथम चरण की प्राप्ति होगी। इसी क्रम से सभी पंखुड़ियों में न्यस्त वर्णों का पाठ होगा तथा सम्पूर्ण छन्द का उद्धार हो जायगा।

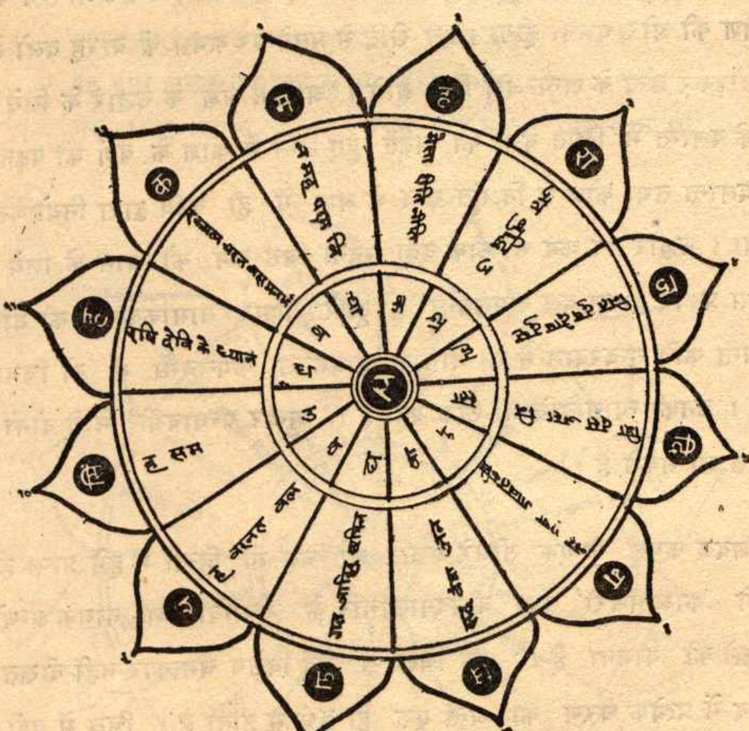
द्वादशदल कमल बन्ध के दूसरे चित्र नामांक का भी न्यास तथा उद्धार इसी विधि से किया जायगा।[1] इन दोनों चित्रों में अन्तर केवल यह है कि जहाँ सामान्य चित्र में कवि के द्वारा किसी नाम आदि की व्यवस्था नहीं होती है, वहाँ नामांक चित्र से कवि द्वारा नियोजित कोई विशेष नाम निःसृत होता है। प्रस्तुत नामांक द्वादशदल कमल का निम्न छन्द 'चित्रकलाधर' में है—

"मन महँ परम विचार, हमेसा रीति नीति कर।
राजत बुद्धि उदार, जनित दुष दोष दुष्ट हर॥
दिशि दस जस विस्तार, गनत गुन गावत कवि नर॥
विसद वंश जनवार, जगत जाहिर छत्रिन घर।
यह वरनत वलवर सिंह सम उर, हरषि देवि के ध्यान धर॥
कर कमल चरनवस मन भँवर, महराज दिगविजय सिंह कर॥"[2]

१. द्रष्टव्य, चित्र संख्या ११
२. पृ० ७४

प्रस्तुत छन्द आद्यक्षरी अन्तर्लापिका है। इसका न्यास द्वादशदल कमल चित्र में इस प्रकार होता है कि बारहों दलों की नोक पर स्थित वर्णों को पढ़ने से छन्द का अन्तिम चरण 'महराज दिगविजय सिंह कर' निःसृत होता है। 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में भी भोजराज ने एक अष्टदल कमल बन्ध का चित्र दिया है जो कविनामांक है तथा इसी प्रकार इस चित्र में भी आठों दलों की नोक पर विन्यस्त वर्णों से 'राजशेखर कमल' यह नाम निःसृत होता है।[1] किन्तु इन दोनों ही चित्रों में न्यास की दृष्टि से किसी प्रकार की समानता नहीं है। 'चित्रकलाधर' में निर्मित द्वादशदल नामांक कमल का चित्र तथा उपर्युक्त छन्द का न्यास निम्न है—

चित्र संख्या ११



द्वादशदल कमल

नामांक द्वादशदल कमल

प्रस्तुत नामांक द्वादशदल कमल का न्यास भी पूर्वविधि से ही होगा। अन्तर इतना ही है कि पूर्व छन्द में जहाँ छह पंक्तियों के दो-दो भाग थे, वहाँ प्रस्तुत छन्द में प्रथम चार पंक्तियों के तो पूर्व की तरह ही दो-दो भाग होंगे, किन्तु पंचम पंक्ति के तीन भाग तथा

१. परि० २, श्लोक संख्या २९४, पुस्तक के अन्त में चित्र संख्या ६

षष्ठ पंक्ति के पूर्वार्द्ध को ही लिया जायगा। षष्ठ पंक्ति का उत्तरार्द्ध चित्र से स्वतः निःसृत होगा। इन सभी टुकड़ों का अन्त 'र' वर्ण से होगा जिसका न्यास कमल के कोश में होगा। अब छन्द के इन १२ भागों (प्रथम चार पंक्तियों के दो-दो भाग, पंचम के तीन तथा षष्ठ का एक केवल पूर्वार्द्ध) का न्यास कमल के बारहों दलों में इस प्रकार किया जायगा कि प्रत्येक भाग का आद्यवर्ण दलान्त में, उपान्त्य दलादि में तथा अन्त्यवर्ण कोश में हो। अन्य जितने भी वर्ण हैं वे दलमध्य में प्रवेशविधि से लिखे जायेंगे। इस प्रकार छन्द की षष्ठ पंक्ति के उत्तरार्द्ध (महाराज दिगविजय सिंह कर) को छोड़कर अन्य सभी अंशों का न्यास चित्र में होगा।

उद्धार के लिये प्रत्येक दल की नोक पर स्थित (दलान्त के) वर्ण से प्रारम्भ कर प्रवेश-विधि से कोश की ओर चलना होगा। इस रीति से पढ़ने पर कमल के बारह दलों से अन्तिम चरण को छोड़कर छन्द के अन्य अंश प्राप्त होंगे। अन्तिम अंश के उद्धार के लिये कमल के सभी दलों के दलान्त में स्थित वर्णों को पढ़ते हुए अन्त में कोश के वर्ण को पढ़ना होगा। इस प्रकार दलान्त तथा कोश से निःसृत छन्द के अंश में ही कवि द्वारा नियोजित नामांक का पाठ होगा। उद्धार का क्रम भी ठीक वही रहेगा जिस क्रम को न्यास के लिये अपनाया जायगा। इस प्रकार द्वादश दल कमलबन्ध के दूसरे प्रकार नामांककमल की योजना पूर्ण होती है। सन्त कवि सुन्दरदास ने भी नामांक द्वादशदल कमलबन्ध के दो चित्रबन्धों की रचना की है। उनकी न्यासविधि भी ठीक यही है। 'सुन्दर ग्रन्थावली' में ये दोनों ही छन्द तथा चित्र देखे जा सकते हैं।[1]

द्वादशदल कमल के एक तीसरे प्रकार का चित्र भी हिन्दी में हमें प्राप्त होता है। पदुमनदास की 'काव्यमंजरी' तथा दीनदयालगिरि के 'वैराग्यदिनेश' नामक ग्रन्थों में इस प्रकार के चित्रों की योजना है।[2] इन चित्रों में कोई विशेष चमत्कार नहीं दीखता। १२ चरणों के छन्द में प्रत्येक चरण का अन्त एक ही वर्ण से होता है। चित्र में यही अन्तिम वर्ण कोश में लिखा गया है, तथा अन्तिम वर्ण को छोड़कर छन्द के १२ चरणों को क्रमशः १२ दलों में प्रवेशविधि से लिख देते हैं और चित्र पूर्ण हो जाता है। उद्धार के लिये भी न्यास

---

१. सुन्दर ग्रन्थावली, पृ० ९६५-६६, चित्र, पृ० ९०८ तथा ९८० पर
यहाँ नमांक है-'सुंदर सबसुख हरि सरन' तथा 'प्रगट निकट हरि विश्व भर।' प्रस्तुत चित्र के छन्द चरणगुप्त कोटि के हैं।

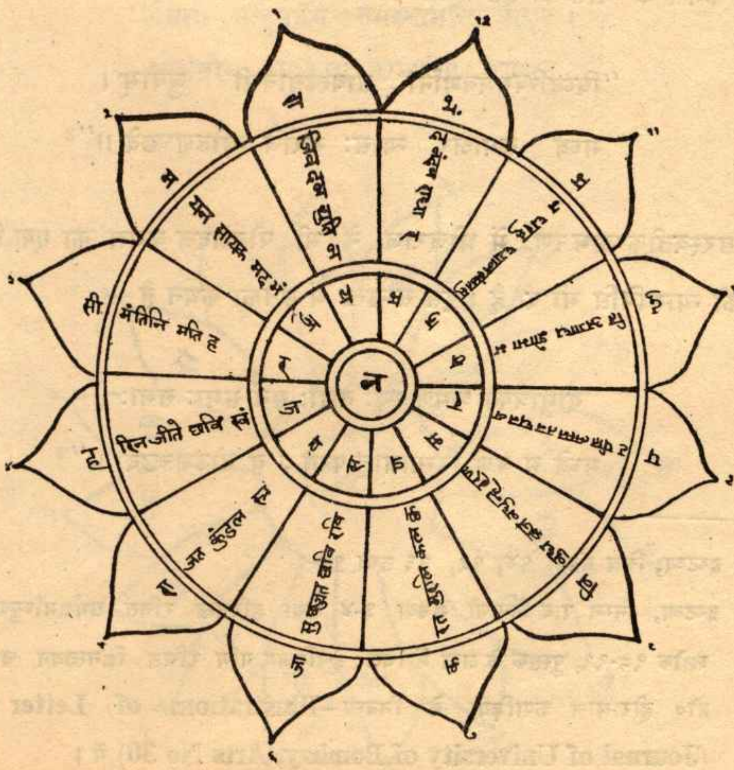
२. द्रष्टव्य, पृ० १२०, टि० १

के अनुकूल ही प्रथम दल से आरम्भ करते हैं और प्रवेशविधि से पढ़ते हुए कोश तक जाकर पुनः द्वितीय दल में न्यस्त वर्ण को प्रवेशविधि से ही पढ़ते हैं तथा अन्त कोशस्थ वर्ण से करते हैं। इसी प्रकार सभी दलों में विन्यस्त वर्णों को अन्त में कोशस्थ वर्ण के साथ मिलाकर पढ़ते हैं तथा छन्द पूर्ण हो जाता है। उदाहरण के लिये पदुमनदास रचित उपर्युक्त द्वादशदल कमल का छन्द एवं चित्र द्रष्टव्य हैं—

चित्र संख्या १२

न्यास का छन्द

"राजिवदल द्युति नयन, मयन सायक मद भंजन।
सीमंतिनि मति हरन, हरिन जीते छवि खंजन॥
राजत कुंडल स्रवन, जासु छज्जत छबि रविसन।
करत मुरलि कल क्वणन. विबुध व्रज वधुन्ह हरण मन॥
पट पीत लसत तन घन वरन, दुति अगाध शोभा भवन।
मन धरहु ध्यान सन्तत सुजन नंद नंदन राधा रमन॥"[१]



द्वादशदल कमल

१. काव्यमंजरी, पृ० ११०

प्रस्तुत छन्द में १२ चरण हैं। प्रत्येक चरण का अन्त 'न' वर्ण से होता है। यही 'न' वर्ण कमल के कोश में रखा जायगा। पुनः प्रथम चरण के 'राजिवदल द्युतिनय' अंश को कमल के प्रथम दल में प्रवेशविधि से लिखा जायगा। इसी प्रकार अन्य चरणों के वर्णों को भी क्रमशः कमल के अन्य दलों में लिखा जायगा। उद्धार के लिये दलस्थ 'राजिवदल द्युतिनय' को कोशस्थ 'न' वर्ण के साथ मिलाकर पढ़ने से प्रथम चरण की प्राप्ति होगी। इसी प्रकार छन्द के अन्य चरणों का भी उद्धार होगा।

(ङ) षोडशदल कमल

षोडशदल कमल के चित्रनिर्माण की हिन्दी कवियों ने चार विधियाँ अपनाई हैं।[1] संस्कृत में षोडशदल कमल की रचना प्रिय थी और उसके न्यास की एकाधिक विधियाँ भी हैं।[2] किन्तु एक ही न्यासविधि सर्वाधिक प्रचलित रही है। अग्निपुराणकार ने षोडशदल कमल के न्यास की इस विधि का निम्न लक्षण दिया है—

"विष्वग्विषमवर्णानां तावत्पत्रावली जुषाम्।
मध्ये समाक्षर न्यासः सरोजे षोडशच्छदे॥"[3]

'सरस्वतीकण्ठाभरण' में भोजराज ने भी षोडशदल कमल का एक चित्र दिया है तथा उसकी न्यासविधि भी दी है। इस सम्बन्ध में उनका कथन है—

"गोमूत्रिका क्रमेण स्युः वर्णाः सर्वे समाः समाः।
मध्ये म वर्ण विन्यासात् पद्मो ऽ यं षोडशच्छदः॥"[4]

---

१. द्रष्टव्य, चित्र संख्या १४, १५, १६ तथा १७

२. द्रष्टव्य, निम्न पाद टिप्पणी संख्या ३-४ तथा हरिचन्द्र रचित धर्मशर्माभ्युदय, पृ० १३९ श्लोक ९८-९९, पुस्तक के अन्त में चित्र; हेमविजय गणि रचित जिनस्तवन चतुर्विंशतिका— प्रो० हीरालाल कपाड़िया के निबन्ध—**Illustrations of Letter Diagrams (Journal of University of Bombay, Arts No 30)** में।

३. अध्याय ३४३, श्लोक ४७

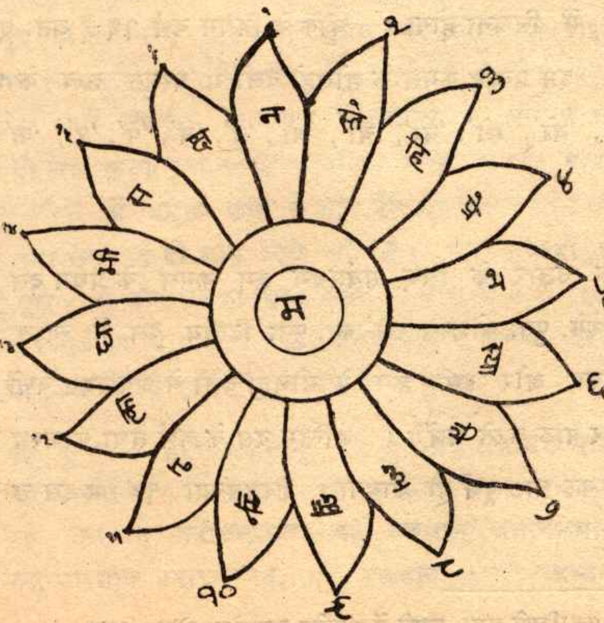
४. परि० २, श्लोक २९३

इस प्रकार संस्कृत के इन न्यास लक्षणों के अनुसार षोडशदल कमल के छन्द में प्रत्येक युग्म वर्ण को एक ही होना चाहिये। कमल के कोश में इस समाक्षर का न्यास होगा तथा १६ दलों में अन्य १६ वर्णों का। इस प्रकार इस छन्द में केवल ३२ वर्णों का ही उपयोग हो सकेगा। षोडशदलकमल की यह विधि हिन्दी में भी अपनाई गई है। किन्तु हिन्दी में इस न्यासविधि से बने कमल के दलों की संख्या पर कोई बन्धन नहीं लगाया गया है, वे १६, १८, २० तथा अधिक संख्या में भी रह सकते हैं। 'सरस्वती कण्ठाभरण' में उपलब्ध चित्र तथा उसमें न्यस्त श्लोक निम्न हैं—

चित्र संख्या—१३

न्यास का श्लोक

"नमस्ते महिमप्रेम नमस्यामति मद्दम।
क्षामसोम नमत्काम धामभीम समक्षम॥"



षोडशदल कमल

षोडशदलकमल के न्यास के लिए इस विधि को हिन्दी में जगतसिंह ने अपने 'चित्रकाव्य' अथवा 'चित्रमीमांसा' नामक ग्रन्थ में अपनाया है। उनका छन्द निम्न है—

"तोरी डोरी तोरि करि, जोरि वोरि सोरि नारि।
चोरी चोरी हरि घरी, परि ररी करि कारि॥"[१]

प्रस्तुत छन्द में जगत सिंह ने चित्रकाव्य में कवियों को मिली हुई स्वतन्त्रता का उपयोग किया है। चित्ररचनाओं में उ-ऊ तथा इ-ई में कोई अन्तर नहीं माना जाता।[२] यहाँ भी कवि ने 'रि' और 'री' को एक मानकर ही छन्द की रचना की है और तभी चित्र बन भी सकता है।

उपर्युक्त लक्षण के अनुसार छन्द के युग्माक्षर को एक ही होना चाहिये और तभी उनकी अवस्थिति कमलचित्र के कोश में हो सकेगी। प्रस्तुत छन्द में भी प्रत्येक युग्म वर्ण 'रि' अथवा 'री' है, जो एक ही है। चित्र में या तो 'रि' लिखा जायगा का 'री' ही। कोश में इस 'रि' अथवा 'री' का न्यास कर अन्य विषम वर्णों को क्रमशः कमल के पत्रों में लिखना होगा। चूँकि ये विषम वर्ण १६ हैं अतः एकपत्र में एक वर्ण लिखा जायगा। इस प्रकार कमल के सोलहों दलों में प्रस्तुत छन्द के क्रमशः 'तो' 'डो, 'तो', 'क', 'जो', 'वो', 'सो', 'ना', 'चो', 'चो', 'ह', 'घ', 'प', 'र', 'क' तथा 'का' का विन्यास होगा।

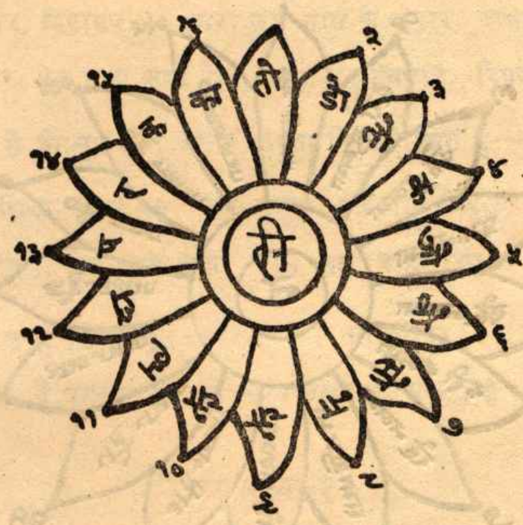
छन्द के उद्धार के लिए सर्वप्रथम हम कमल के प्रथम दल में अवस्थित वर्ण 'तो' का पाठ करेंगे, पुनः कोशस्थ 'री' का, पुनः द्वितीय दल में न्यस्त 'डो' का, पुनः कोशस्थ 'री' का, और इसी क्रम से सोलहों दलों में अवस्थित वर्णों के साथ कोशस्थ 'री' को मिलाकर पाठ करते चलेंगे। अन्तिम दल के वर्ण तथा कोशस्थ 'री' के पाठ के साथ ही छन्द का पाठ पूर्ण हो जायगा। चित्रसंख्या १४ में इस छन्द का न्यास देखा जा सकता है।

---

१. नागरी प्रचारिणी सभा, काशी में संगृहीत हस्तलेख, दोहा—१४७

२. द्रष्टव्य, द्वितीय अध्याय में वाग्भट (प्रथम), विद्याधर, केशवदास तथा भिखारीदास से सम्बद्ध विवेचन

चित्र संख्या—१४



षोडशदल कमल

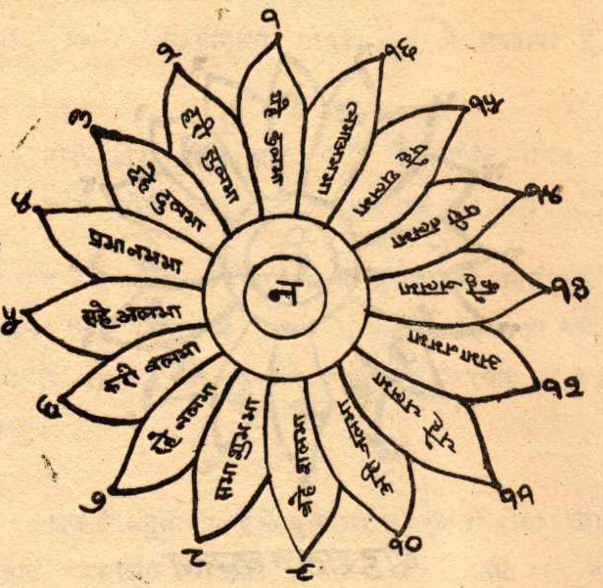
'प्रबीनसागर' में षोडशदल कमल के कई चित्रों की योजना है, जिनमें उपर्युक्त चित्र तो नहीं, किन्तु अन्य तीन प्रकार के न्यास मिलते हैं। इनमें एक प्रकार के न्यास में चित्र संख्या १२ में विन्यस्त द्वादशदल कमल की विधि अपनाई गई है। अन्तर केवल इतना है कि चित्र संख्या १२ में कमल के दल १२ हैं और यहाँ कमल के दल सोलह हैं। अतः जहाँ उपर्युक्त द्वादशदल कमलबन्ध के छन्द में छह पँक्तियाँ हैं और उनमें प्रत्येक के दो भाग करके कुल बारह भागों का न्यास क्रमशः बारह दलों में हुआ है, वहाँ प्रस्तुत चित्र में प्रयुक्त छन्द में चार पँक्तियाँ अथवा आठ चरण हैं और प्रत्येक चरण के पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध दो भाग किये गये हैं। इन सोलहों चरणार्द्धों (भागों) का अन्तिम वर्ण एक ही है और उसका न्यास कमल के कोश में है। इस अन्तिम वर्ण को छोड़कर प्रत्येक चरणार्द्ध का न्यास उसी प्रकार प्रवेशविधि से क्रमशः सोलहों दलों में है। पाठ की विधि भी ठीक वही है। छन्द एवं चित्र निम्न हैं—

"यहे कुलभान हरी सुलभान, दहे दुलभान प्रभानभ भान।
सहे अलभान करीवलभान, रहे नलभान सभा शुभभान॥
व्रहे शलभान अरीजलभान, चहे चलभान अभानभभान।
कहे जलभान परीतलभान, पहे थलभान लभा अभभान॥"[1]

---

१. प्रबीनसागर, लहर ६३, पृ० ६०६

चित्र संख्या—१५



षोडशदल कमल

'प्रबीनसागर' में उल्लिखित षोडशदल कमल के द्वितीय प्रकार के चित्र[1] में भी न्यास की विधि तो यही है, किन्तु कमल का प्रत्येक दल दो भागों में बँटा है। कोश के वर्ण के अतिरिक्त प्रत्येक दल में न्यस्त होने वाले छन्द के प्रत्येक भाग के दो आदिवर्ण प्रत्येक दल के अन्त में नोक की ओर वाले भाग में लिखे गए हैं। यहाँ भी पूर्वोक्त छन्द की तरह ही चार पंक्तियों का छन्द है और प्रत्येक पंक्ति चार भागों में बँटी है। छन्द के सभी भागों का अन्तिम वर्ण 'र' है जो कोशस्थ है। बीच के वर्णों की अवस्थिति दल के दूसरे भाग (दलादि की ओर) प्रवेशविधि से है। इस प्रकार यद्यपि न्यास की दृष्टि से पूर्वोक्त षोडशदल कमल तथा इसमें कोई अन्तर नहीं है, पर उद्धार की दृष्टि से इनमें पर्याप्त अन्तर है। वह यह कि प्रस्तुत कमल के प्रत्येक दल के दलान्त में विन्यस्त दोनों वर्णों का पाठ क्रमशः करने पर हमें एक सोरठे की प्राप्ति होती है, जो इसी छन्द के अन्दर से निःसृत होता है। पूर्वोक्त चित्रों में इस प्रकार का कोई गर्भस्थ छन्द नहीं है। प्रस्तुत चित्र का छन्द निम्न है—

१. द्रष्टव्य, चित्र संख्या १६

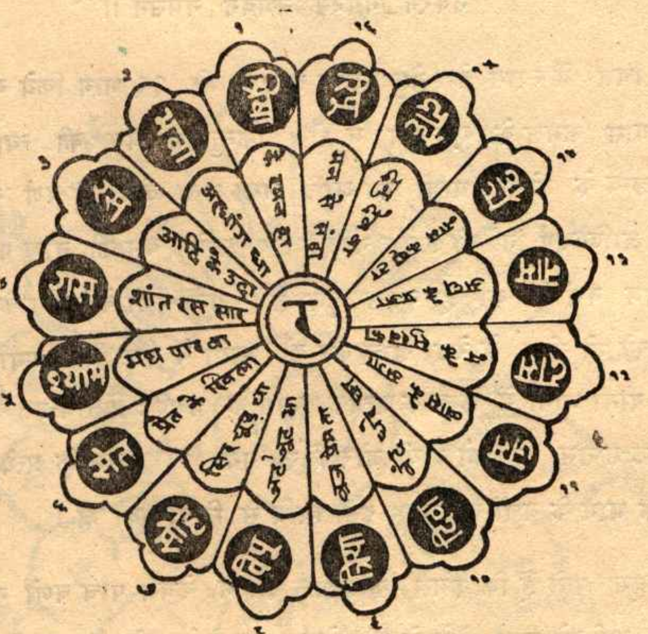
"श्रिया के रमनहार भवाअरधांगधार, रस आदि के उदार, रास शान्त रससार ।
श्याम मथ पारवार, सेतप्रेत के खिलार, सोहेसिर चूड़चार, बिपू जट जूट भार ॥
त्रिया व्रज प्रेम तार, दिवावंद धरे छार, जस बास के अगार, दासन के सुखकार ।
नाम अघ के प्रजार, लेत नाम कष्ट टार, दाहे दनु देववार, रिपूमन से संचार ॥"[२]

और इस चित्र के गर्भ से निःसृत होने वाला सोरठा निम्नलिखित है—

"श्रिया भवा रस रास, श्याम सेत सोहे विपू ।
त्रिया दिवा जस दास, नाम लेत दाहे रिपू ॥"

चमत्कार तो यह है कि प्रस्तुत सोरठा भी गोमूत्रिका[१] के अन्दर निबद्ध है। निम्न चित्र (संख्या १६) में प्रस्तुत छन्द का न्यास देखा जा सकता है।

चित्र संख्या-१६



षोडशदल कमल

१. प्रवीनसागर, लहर ६५, पृ० ६५२
२. द्रष्टव्य, चतुर्थ अध्याय में गोमूत्रिका का विवेचन

चित्र के काले प्रखण्डों में लिखित उजले वर्णों का पाठ करने पर उपर्युक्त सोरठा निःसृत होता है। पाठ का क्रम पत्र १ से लेकर १६ तक होगा।

षोडशदल कमल का एक तृतीय न्यास भी 'प्रबीनसागर' में मिलता है। इसका छन्द पूर्वोद्धृत अष्टदल कमल[1] में प्रयुक्त छन्द ही है—

"नजतन नवघन नवषन नचरन,
नगहन नकलन नडरन नवधन।
नरमन नवसन नत्रयन नललन,
नसदन नढरन नभवन नरहन॥
नहटन नटरन नत्यवन नचवन,
नतरन नसमन नवदन नभन्नन॥
नसहन नमतन नलहन नयजन,
नगरन नगरन नभवन नमउन॥"[2]

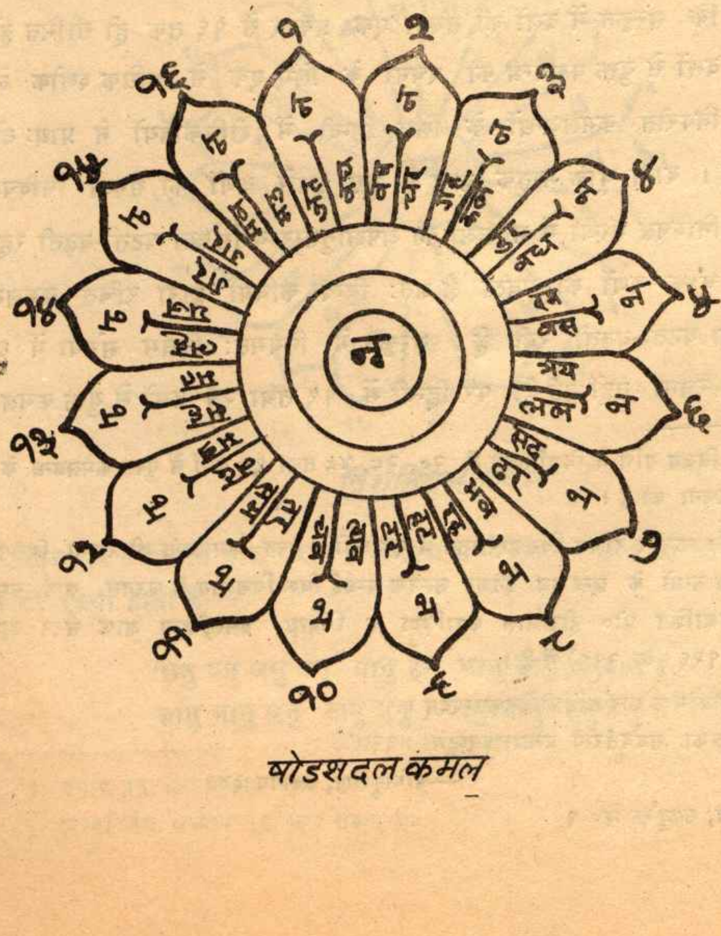
इस चित्र में न्यास के हेतु प्रस्तुत छन्द के भी १६ भाग किये गये हैं, ताकि एक भाग का विन्यास कमल के एक दल में हो। किन्तु इस चित्र की न्यासविधि में अन्तर है। प्रस्तुत छन्द के सोलहों भागों का आदि तथा अन्त दोनों ही वर्ण 'न' है। कमल के कोश में यहाँ आदि वर्ण 'न' को लिखा गया है तथा प्रत्येक दल की नोक पर छन्द के प्रत्येक भाग के अन्तिम वर्ण 'न' का ही न्यास हुआ है। अन्य वर्णों के न्यास के लिए प्रत्येक दल के दलमध्य को भी बीच से रेखा खींच कर दो भागों में बाँट दिया गया है। प्रत्येक दल-मध्य के इन दोनों भागों में छन्द के प्रत्येक भाग के क्रमशः द्वितीय-तृतीय वर्ण को बायीं ओर तथा षष्ठ-सप्तम वर्ण को दायीं ओर लिखा गया है। कमल के प्रत्येक दल में क्रमशः छन्द के प्रत्येक भाग के वर्णों का न्यास इसी विधि से किया गया है।

यहाँ हम पाते हैं कि कमल के प्रत्येक दल में केवल पाँच वर्णों का न्यास होता है और कोशस्थ वर्ण को साथ लेने से भी केवल छह वर्ण आते हैं, जबकि छन्द के प्रत्येक भाग के वर्णों की संख्या आठ है। इसका कारण है कि छन्द के प्रत्येक भाग के प्रथम, चतुर्थ, पंचम तथा अष्टम वर्ण समान हैं। उद्धार में इन वर्णों की आवृत्ति होती है और

१. द्रष्टव्य, चित्र संख्या ७
२. प्रबीनसागर, लहर ६५, पृ० ६५५

यही इस न्यास की विचित्रता है। चित्र संख्या १७ में कमल के कोश में 'न' वर्ण को लिखा गया है। यह 'न' वर्ण छन्द के उपर्युक्त १६ भागों का आदि वर्ण है अतः इसका पाठ कमल के सोलहों दलों में विन्यस्त वर्णों के साथ होगा। इस प्रकार छन्द के प्रथम अंश 'नजतन नवघन' के प्रथम वर्ण 'न' का पाठ हम कमल के कोश में करते हैं। द्वितीय तथा तृतीय वर्ण 'ज', 'त' का न्यास निर्गमविधि से कमल की प्रथम पंखुड़ी के वाम भाग में हुआ है अतः उसे पढ़ते हुए चतुर्थ वर्ण 'न' को हम पंखुड़ी की नोक पर पढ़ते हैं। ठीक इसी प्रकार पंचम वर्ण 'न' को हम पुनः कोश में पढ़ते हैं तथा षष्ठ और सप्तम वर्ण 'व' और 'घ' को दलमध्य में दायीं ओर निर्गमविधि से पढ़ते हुए अष्टम वर्ण 'न' की प्राप्ति पुनः हमें दल की नोक पर होती है। इस प्रकार एकदल में स्थित वर्णों के पाठ में दो बार कोश के वर्ण तथा दो बार दलान्तस्थित वर्ण की आवृत्ति होती है। न्यास तथा उद्धार का यही क्रम क्रमशः प्रत्येक दल में रहेगा, तथा इस प्रकार दलों की संख्या बायीं से दायीं ओर को बढ़ती हुई छन्द को पूर्ण करेगी।

चित्र संख्या-१७



षोडशदल कमल

अठारह, बीस तथा अधिक दलों से युक्त कमलबन्ध

हिन्दी कवियों ने सोलह से अधिक दलों से युक्त कमलबन्धों की भी रचना की है। यों संस्कृत में भी १६ से अधिक दलों के कमलबन्ध की रचना हुई है पर अपवाद स्वरूप ही।[1] हिन्दी में कवियों ने दलों की कोई सीमा नहीं रखी है, किन्तु कमल में दल चाहे जितने हों उनकी न्यासविधि में कोई अन्तर नहीं पड़ता। 'अग्निपुराण' अथवा 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में कथित षोडशदल कमल की न्यासविधि ही इन कवियों ने अपनाई है, जिसके अनुकूल छन्द के सभी युग्माक्षर एक ही होते हैं तथा जिनका न्यास कमल के कोश में होता है। विषमाक्षर का लेखन क्रमशः एक-एक कर दलों में किया जाता है तथा इस प्रकार चित्रबन्ध की रचना पूर्ण हो जाती है।

संस्कृत में कमलबन्ध के लिए सामान्यतः अनुष्टुप श्लोक का व्यवहार किया जाता रहा है[2] चूँकि अनुष्टुप की वर्ण संख्या ३२ होती है अतः कमल के चित्र में उपर्युक्त न्यासविधि को अपनाकर दल की संख्या १६ से अधिक नहीं रखी जा सकती। यही कारण है कि संस्कृत में दलों की संख्या एक प्रकार से १६ तक ही सीमित हो गई। इससे अधिक दलों से युक्त पद्मबन्ध की रचना के लिए एक से अधिक श्लोक लेने पड़े हैं।[3] इसके विपरीत कमलबन्धों के लिए हिन्दी में रीतिकवियों ने प्रायः दोहा का प्रयोग किया है। दोहा चूँकि मातृक छन्द है अतः इसमें वर्णों की संख्या निश्चित नहीं होती। फलतः निश्चित संख्या में मात्राओं की अपेक्षानुसार वर्णसंख्या घटती-बढ़ती रहती है। बन्धचित्र में चूँकि वर्णों का महत्व है अतः हिन्दी कवियों द्वारा रचित कमलबन्ध में दलों की संख्या घटती-बढ़ती रही है। संस्कृत में नियमतः विषम संख्या में दलवाले कमलबन्ध की रचना नहीं हुई है, पर हिन्दी में १९ तथा २१ दलों से युक्त कमल बन्धों

---

१. उदय विजय गणि ने विज्ञप्तिपत्र में २०, २८, ४८ तथा ९६ दलों से युक्त कमलबन्ध के श्लोकों की रचना की है।

जय तिलकसूरि रचित चित्रहारास्तव में २४ दलों से युक्त कमलबन्ध की रचना मिलती है। प्रस्तुत बन्धों के छन्द तथा इनका उल्लेख बम्बई विश्वविद्यालय के जरनल, आर्ट नम्बर ३० में प्रकाशित प्रो० हीरालाल कपाड़िया के निबन्ध 'इलस्ट्रेशन्स आफ लेटर डायग्राम्स' (पृ० १२६ तथा १११) में है।

२. "द्वितीयं चक्र शार्दूलविक्रीडितकसम्पदम्।
गोमूत्रिका सर्ववृतैरन्ये बन्धास्त्वनुष्टुभा ॥६२॥"

—अग्निपुराण, अध्याय ३४३

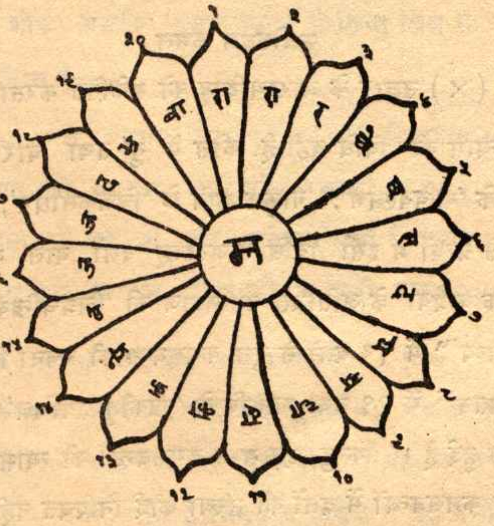
३. द्रष्टव्य, उपर्युक्त टि० १

की रचना भी पर्याप्त मात्रा में हुई है। हिन्दी में कमलचित्र की यही न्यासविधि सर्वाधिक प्रचलित रही है। केशवदास तथा भिखारीदास जैसे प्रौढ़ और हिन्दी के शीर्ष आचार्य ने भी कमलबन्ध के उदाहरणस्वरूप इसी प्रकार के छन्द की रचना की है। 'कविप्रिया' में कमलबन्ध का निम्न छन्द हमें मिलता है—

"राम राम रम छेम छम सम दम यम श्रम धाम।
दाम काम क्रम प्रेम बम जम जम दम भ्रम बाम॥"[1]

प्रस्तुत छन्द में कुल वर्ण ४० हैं जिनमें २० युगमाक्षर तो केवल 'म' हैं अन्य २० विषमाक्षर हैं। इस 'म' की अवस्थिति कमल के कोश में होगी तथा अन्य विषमाक्षरों का का न्यास बीसों दलों में। इस प्रकार इस कमलबन्ध के चित्र में २० दल होंगे। चित्र निम्न है—

चित्र संख्या-१८



विंशतिदल कमल

इसी प्रकार भिखारीदास द्वारा रचित कमलबन्ध के निम्न छन्द से उन्नीस दलों से युक्त कमल की रचना होती है—

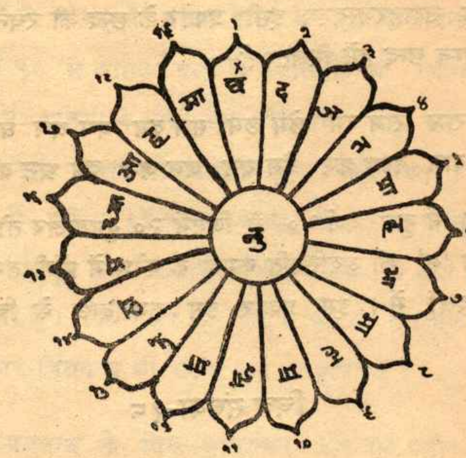
"छनु दनु जनु तनु प्रानु हनु भानु मानु हनुमान।
ज्ञानु मानु जनु ठानु प्रनु ध्यानु आनु हनुमानु॥"[2]

---

१. प्रभाव १६, छन्द संख्या ७९

२. काव्यनिर्णय, अध्याय २१, छन्द संख्या ६०

चित्र संख्या-१९



उन्नीसदल कमल

गुणन चिह्न (×) उद्धार के आरम्भबिन्दु को संकेतित करता है।

यहाँ भी न्यास की विधि वही है, कोश में 'नु' तथा चारों ओर दलों में अन्य अक्षर। हरि कवि के 'कविवल्लभ',[1] गोकुल कवि के 'चित्रकलाधर',[2] बिहारीलाल भट्ट के 'साहित्यसागर'[3] जैसे ग्रन्थों में इसी विधि से अठारह दलों वाले कमलबन्ध की रचना हुई है। केशव की 'कविप्रिया' के अतिरिक्त काशिराज की 'चित्रचन्द्रिका'[4] में २० दल तथा रूपप्रधान के 'चित्रकाव्य'[5] में १९ दलों से युक्त कमलबन्ध की रचना मिलती है। लछिराम कृत 'रावणेश्वर कल्पतरु'[6] में २१ तथा रुद्रकवि के 'रुद्रकौतुकविचित्र'[7] में २४ दलों वाले कमलबन्ध की योजना हुई है। किन्तु इन सभी कमलबन्धों की न्यासविधि उपर्युक्त ही है। स्पष्ट है कि हिन्दी में कमलबन्धों में दलों की संख्या कोई निश्चित नहीं रही है।

---

१. नागरी प्रचा० सभा, काशी में संगृहीत हस्तलेख, पृ० ८८, छन्द संख्या १८
२. पृ० ७२, चित्र संख्या २४
३. भाग २, द्वादश तरंग, पृ० ५१४
४. प्रकाश ६, पृ० ६०
५. ना० प्र० स० काशी में संगृहीत हस्तलेख, छन्द संख्या ३७
६. कुसुम ११, पृ० ३
७. पुस्तक के अन्त में दिये गये चित्रों में कमल गति बन्ध का चित्र। इन चित्रों की न तो पृष्ठ संख्या है न छन्द संख्या ही।

विविध कमलबन्ध

कमलबन्ध के उपर्युक्त भेदों के अतिरिक्त राजा महिरामन सिंह रचित 'प्रबीनसागर' में कमलबन्ध से मिलते जुलते पाँच प्रकार के चित्रों का और भी न्यास मिलता है। इनमें एक चित्र में कमल के ग्यारह दल हैं तया इसका शीर्षक 'अन्तचरण गुप्त कमल' है।[१] प्रस्तुत पुस्तक की चित्र संख्या ११ में विवेचित द्वादशदलकमल से इसका कोई अन्तर नहीं है केवल चित्र संख्या ११ में दलों की संख्या बारह है जबकि इस चित्र में दलों की संख्या ग्यारह है। इस चित्र का छन्द भी उसके समान ही प्रतिपद आद्यक्षरी है और इन आद्यक्षरों का न्यास भी उसी के समान कमल के सभी दलों के दलान्त में होता है। दलान्त में स्थित वर्णों को साथ लेने पर छन्द का अन्तिम चरण प्राप्त हो जाता है। सभी चरणों का अन्तिम वर्ण एक ही है और उसका न्यास कोश में होता है। चित्र संख्या ११ की तरह ही अन्य वर्णों को प्रवेशविधि से दलों में विन्यस्त किया जाता है।

द्वितीय चित्र का शीर्षक यद्यपि 'सुमन प्रबन्ध' है किन्तु चित्र में कमल के आकार के ही पाँच दल हैं। **छन्द निम्न है—**

"लवे ददरान गले डगरान, घटा घहेरान सखी चिखरान ।।
स्रवे बदरान कले बगरान, पटा थहेरान सखी विखरान ।।
झ्रवे अदरान चले जगरान, छटा फहेरान सखी लिखरान ।।
प्रवे ददरान मले सगरान, छटा छहेरान सखी चखरान ।।"[२]

चित्र संख्या २० में इसका न्यास देखा जा सकता है। चित्र में बीच में कोश है तथा चारों ओर पुष्प की पाँच पंखुड़ियाँ परस्पर एक दूसरे को काटती हुई अर्द्धवृत्ताकार रूप में कोश से निकलती हैं। प्रस्तुत छन्द में चार पंक्तियाँ तथा आठ चरण हैं। प्रत्येक चरण के भी पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दो समान अंश हैं जिनमें से प्रत्येक में छह वर्णों की योजना है।

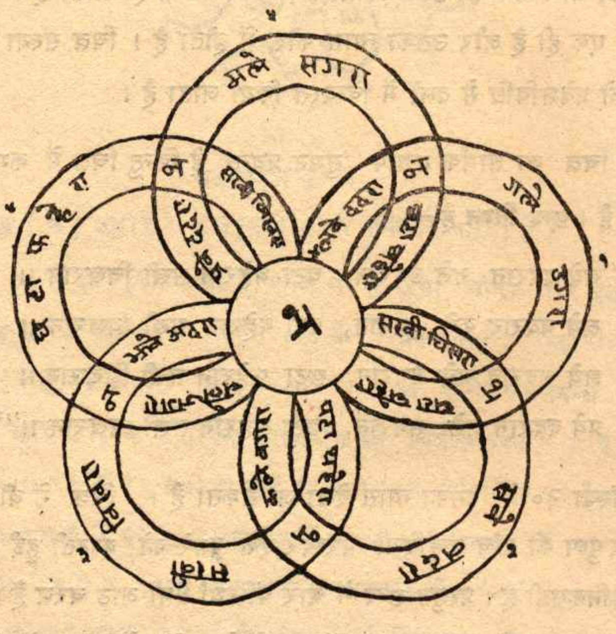
---

१. प्र० सा०, लहर ६५, पृ० ६७४, प्रस्तुत बन्ध का छन्द निम्न है—
"चन्द्र बदन जग रचहि रसा जब लग अनंत ग्रहि।
हर उमया अघ बसहि, जीव जबलों सुधा स्रवहि ।।
बरन भारति करहि पवन जबलगि ?गवन? रवहि।
रमा रमन हरि रमहि, बीन जब लो नारद लहि ।।
नगनाक अचल नीरद छलहि, तरन तेज जब लग तपहि।
हिल्लोर गंग जब लग तबहि, चरह जीव परवीन तुहि ।।

२. प्र० सा०, लहर ६४, पृ० ६३०

इन सभी अंशों का अन्तिम वर्ण 'न' है। चित्र में कोश में 'न' का न्यास किया गया है तथा प्रथम पंखुड़ी में बायीं ओर से 'लवे ददरान' के 'ल' से आरम्भ कर आगे बढ़ते हुए कोश में आकर 'घटा घहेरान' तक का न्यास हो जाता है। द्वितीय पंखुड़ी में इसी प्रकार 'सखी चिखरान' से आरम्भ कर 'कले बगरान' तक विन्यस्त हो जाता है। पुनः तृतीय, चतुर्थ तथा पंचम पंखुड़ियों में इसी प्रकार 'छटा छहेरान' तक के अंशों का विन्यास हो जाता है। छन्द का अन्तिम अंश 'सखी चखरान' बच जाता है, जिसका न्यास द्वितीय पटल के प्रारम्भ में न्यस्त 'सखी चिखरान' की अभिन्नता में सम्पन्न होता है। चित्र में जहाँ-जहाँ दो पंखुड़ियाँ एक दूसरे को काटती हैं उन उभयनिष्ठ स्थानों पर 'न' वर्ण का न्यास स्वतः हो जाता है।

चित्र संख्या-२०



सुमनबंध

गुणन चिह्न (×) उद्धार के आरम्भबिन्दु को संकेतित करता है।

इस वर्ग के अन्तर्गत आनेवाले तृतीय प्रकार के चित्र का शीर्षक लेखक ने 'कमलाकार पुष्पान्तरेचक्राकृतिभेद' दिया है।[1] प्रस्तुत चित्र का आकार तो कमल का है परन्तु न्यास-पद्धति चक्र की अपनाई गई है। सम्भवतः यही कारण है कि कमलबन्ध के अन्तर्गत इसे स्थान मिल सका है। चित्र का छन्द निम्न है—

---

१. प्र० सा०, लहर ६५, पृ० ६६२

"नव रसमय दनुदलन, नलीनज जिनपे वंदित ।।
नट विहार बर करन, नमत ईश्वर नेहाचित ।।
नग सुधार धारान, नडर झर बर षतही घन ।।
नरतत मधि मधुविपन, नकट सब रहे गोपी जन ।।
नव रमानाथ रमनी रमन, नर देही निहचे सुमन ।।
नत्यहि प्रत्य न बीसरहि, नगम बरन नजबीन धुन ।।"[१]

प्रस्तुत छन्द में ६ पंक्तियाँ हैं और प्रत्येक पंक्ति के दो चरण । इस प्रकार छन्द में कुल १२ चरण हैं । इन्हीं १२ चरणों का न्यास चित्र के १२ दलों में होता है । कमल के केन्द्र में न वर्ण का न्यास किया गया है । चूंकि छन्द के प्रत्येक चरण का आदि वर्ण 'न' है अत: केन्द्र के इस 'न' से ही निर्गमविधि से उनका विन्यास आरम्भ होगा । सम्पूर्ण कमलपुष्प के अन्तर्गत कोश को केन्द्र मानकर चार वलय बनाये गये हैं, यानी प्रत्येक दल को पाँच भागों में बाँटा गया है । इन बलयों में वर्णों का न्यास क्रमशः निम्न है—

(क) केन्द्र में चरण का प्रथम वर्ण 'न'
(ख) केन्द्र से सटे दल के प्रथम भाग में चरण का द्वितीय-तृतीय वर्ण
(ग) दल के द्वितीय भाग में चरण का चतुर्थ वर्ण
(घ) दल के तृतीय भाग में चरण का पंचम तथा षष्ठ वर्ण
(ङ) दल के चतुर्थ भाग में चरण का सप्तम वर्ण
(च) दल के पंचम तथा अन्तिम भाग यानी दलान्त में चरण के शेष सारे वर्ण

इसी क्रम से छन्द के प्रत्येक चरण के वर्णों का न्यास क्रमशः कमल के प्रत्येक दल में हुआ है । इस न्यास में हम पाते हैं कि द्वितीय तथा चतुर्थ वलय में पड़ने वाले प्रत्येक कमलदल के अंशों में केवल एक-एक क्रमशः चतुर्थ तथा सप्तम वर्ण का ही विन्यास किया गया है । सम्पूर्ण छन्द के उद्धार की रीति भी वही है जो न्यास की है, यानी केन्द्र से आरम्भ कर निर्गमविधि से क्रमशः प्रत्येक दल में न्यस्त वर्णों का पाठ ।

इस चित्र की विशेषता यह है कि कोशस्थ वर्ण 'न' के साथ निर्गमविधि से ही द्वितीय तथा चतुर्थ वलयों में न्यस्त वर्णों का पाठ करने से हमें छन्द के गर्भ से निम्न सोरठा प्राप्त होता है—

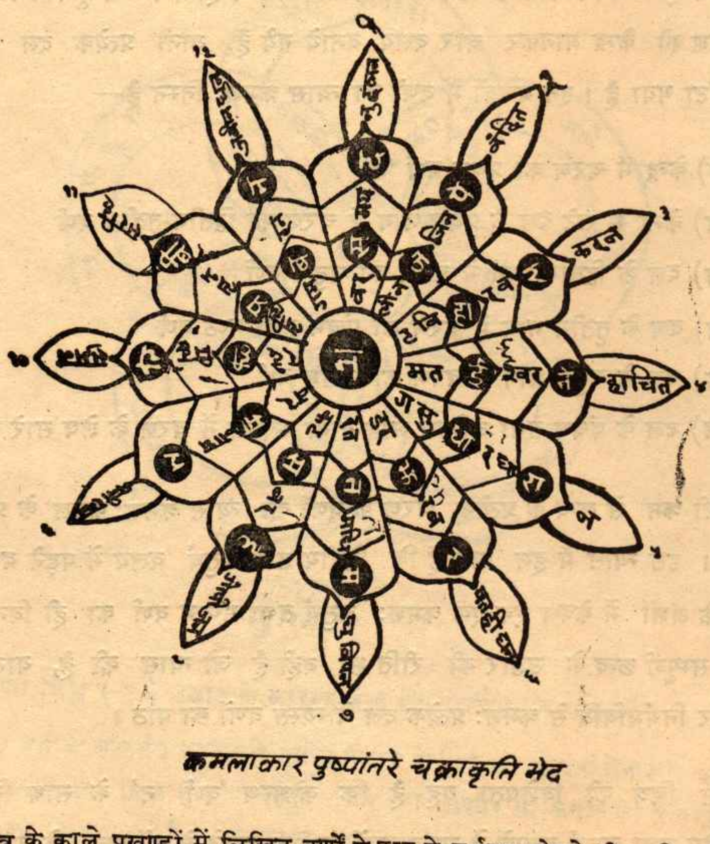
---

१. प्रबीनसागर, लहर ६५, पृ० ६६२; द्रष्टव्य, चित्र संख्या २१

"नसदन जपे न हार, नई नेन धारा न झर।
नतमन सहे न मार, नहीं चेन प्रबीन बन ॥"[1]

इस सोरठे को प्राप्त करने के लिए हम सर्वप्रथम कोशस्थ वर्ण 'न' का पाठ करते हैं। पुनः द्वितीय वलय में स्थित प्रथम दल के चतुर्थ वर्ण 'स' को लेते हैं, पुनः चतुर्थ वलयस्थित प्रथम दल के ही सप्तम वर्ण 'द' का पाठ करते हैं। इस प्रकार प्रथम दल से 'न', 'स', 'द', इन तीन वर्णों का पाठ होता है। पुनः केन्द्र के वर्ण 'न' पर हम आते हैं तथा क्रमशः द्वितीय और चतुर्थ वलयस्थित द्वितीय दल के चतुर्थ तथा सप्तम वर्णों का पाठ कर 'न', 'ज', 'पे', प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार केन्द्र के वर्ण के साथ द्वितीय तथा चतुर्थ वलयस्थित क्रमशः अन्य दलों के भी चतुर्थ तथा सप्तम वर्णों का पाठ करने से उपर्युक्त सोरठा हमें प्राप्त हो जाता है।

चित्र संख्या-२१



कमलाकार पुष्पांतरे चक्राकृति भेद

चित्र के काले प्रखण्डों में लिखित वर्णों के पाठ से गर्भस्थ सोरठे की प्राप्ति होती है।

---

१. द्रष्टव्य, चित्र संख्या २१ के काले प्रखण्डों में लिखित वर्ण

उपर्युक्त चित्रों के अतिरिक्त दो अन्य प्रकार के कमलाकार चित्र भी 'प्रबीनसागर' में मिलते हैं। इन्हें क्रमशः 'कार्णिकाद्य मध्यान्त कमल'[1] तथा 'कमल प्रबन्ध चित्र भेद'[2] कहा गया है। इन चित्रों में छन्द का न्यास कुछ इतना अस्पष्ट तथा उलझे हुए रूप में है कि इनका विवेचन चित्र को सम्मुख रखकर ही किया जा सकता है। फलतः हमने इनके न्यास को स्पष्ट करने के लिए संख्याओं का अधिक सहारा लिया है। चित्र में ये संख्याएँ छोटे अंकों के रूप में दिखाई गई हैं। 'कर्णिकाद्य मध्यान्त कमल' का छन्द निम्न है—

"परसे पुरवा धुरवा धरसे, धरसे बढ़ि बेल चढ़ी तरसे ॥
तरसे चित चातुक के हर से, हर से दुति दामिनि अंबर से ॥
बरसे घनघोर घटा झर से, झरसे धुनि बाढ़त दादर से ॥
दरसे बिनमित ब्रह्म सरसे, सरसे दिन सागर जू पर से ॥"[3]

प्रस्तुत छन्द सिंहावलोकन युक्त है तथा आठ चरणों में विभक्त है। प्रत्येक चरण में १२ वर्ण हैं। छन्द से सम्बद्ध चित्र में १६ पंखुड़ियाँ हैं, जिनमें आठ नीचे के तल में हैं तथा आठ उनके ऊपर के तल में। विवेचन की सुविधा के लिए इन पंखुड़ियों की क्रम संख्या १ से १६ तक मान ली गई है। ये पंखुड़ियाँ चित्र में इस प्रकार न्यस्त हैं कि संख्या १ तथा संख्या २ के ऊपर ९ संख्या आ जाती है, तथा संख्या २ तथा संख्या ३ के ऊपर संख्या १० आती है। इसी क्रम से संख्या १६ का आधा भाग संख्या १ के ऊपर आता है। इस प्रकार प्रथम दल के दलान्त का कुछ अंश ही हमें दीख पड़ता है, क्योंकि उसके ऊपर बायीं ओर संख्या १६ का अर्द्धांश तथा दायीं ओर संख्या ९ का अर्द्धांश आ जाता है। इसी प्रकार संख्या २ के नीचे के अंश को बायीं ओर संख्या ९ तथा दायीं ओर संख्या १० ढक लेती है, केवल उसका दलान्त ही दृष्टिगोचर हो पाता है।

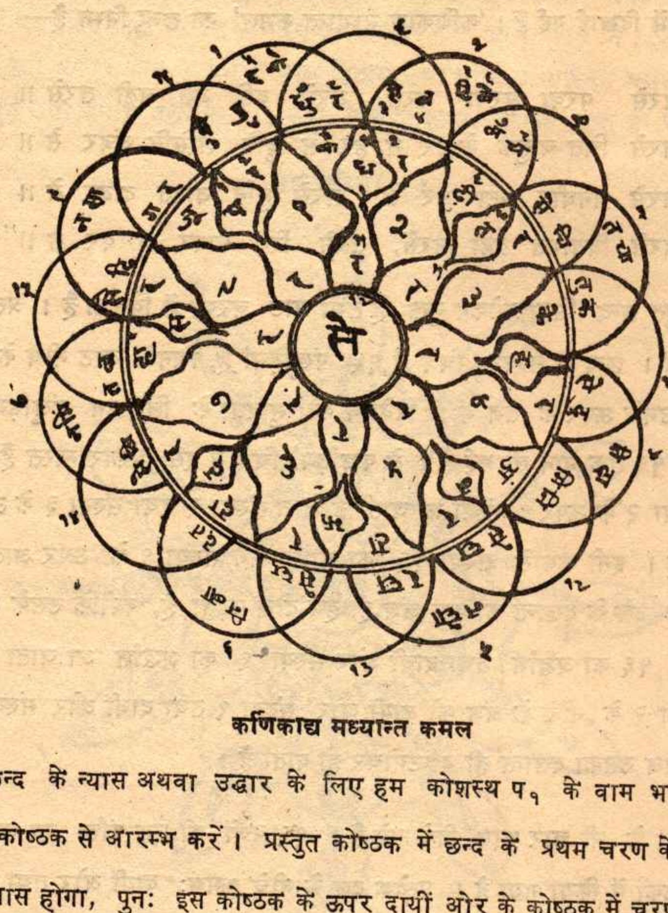
कोश के भी चार भाग किये गये हैं। १६ वर्णों की एक पंक्ति का न्यास दलादि में बने कोष्ठकों में किया गया है। प्रत्येक दल के नीचे क्रमशः दायीं ओर तथा बायीं ओर दो-दो कोष्ठकों का निर्माण किया गया है। इन दोनों कोष्ठकों के मध्य में केन्द्र तथा इन कोष्ठकों के बीच दो अन्य कोष्ठकों की व्यवस्था है। इन्हीं कोष्ठकों तथा पंखुड़ियों में

---

१. प्र० सा०, लहर ६४, पृ० ६२०
२. उपरिवत्, पृ० ६२४
३. द्रष्टव्य, उपरिवत्, पृ० ६२०, चित्र सं० २२

छन्द का न्यास किया गया है। कोश के अन्दर भी न्यास के विवेचन की सुविधा के लिए संख्याओं का उपयोग किया गया है; ये संख्याएँ दलों की संख्या ही हैं। दल की संख्याओं का बोध प१ प२ प३..........आदि से होगा।

चित्र संख्या-२२



कर्णिकाद्य मध्यान्त कमल

छन्द के न्यास अथवा उद्धार के लिए हम कोशस्थ प१ के वाम भाग में स्थित ऊपर के कोष्ठक से आरम्भ करें। प्रस्तुत कोष्ठक में छन्द के प्रथम चरण के आदि वर्ण 'प' का न्यास होगा, पुनः इस कोष्ठक के ऊपर दायीं ओर के कोष्ठक में चरण का द्वितीय वर्ण 'र' न्यस्त होगा। इसके ऊपर प१ पर प१६ के आये हुए अंश में चरण के तृतीय तथा चतुर्थ वर्ण 'से', 'पु' का न्यास किया जायगा। तदनन्तर प१ के दृष्ट दलान्त में चरण के पाँचवें तथा छठे वर्ण 'र', 'वा' को लिखा जायेगा। पुनः प१ पर आए हुए प२ के अंश में चरण के सप्तम तथा अष्टम वर्ण 'धु', 'र' लिखे जायँगे। इसके ठीक नीचे कोशस्थ कोष्ठक

में नवम वर्ण 'वा' का स्थान है। इस 'वा' के नीचे $प_1$ के दक्षिण भाग में स्थित ऊपर तथा नीचे के दोनों कोष्ठकों में क्रमशः चरण के दसवें तथा ग्यारहवें वर्ण 'ध', 'र' लिखे जायँगे तथा बारहवें यानी अन्तिम वर्ण 'से' का न्यास कोश के केन्द्र में किया जायगा। इस प्रकार छन्द के प्रथम चरण के वर्णों का न्यास पूर्ण होगा। इसी विधि से $प_2$ से $प_8$ तक में क्रमशः छन्द के आठों चरणों के वर्णों का न्यास होगा। उद्धार का क्रम भी ठीक यही रहेगा जिसमें प्रत्येक चरण का आरम्भ अपने पूर्व चरण के दसवें वर्ण से होगा और अन्त चित्र के केन्द्र में न्यस्त 'से' वर्ण में।

कमलप्रबन्ध चित्रभेद

प्रस्तुत चित्रबन्ध में कमल की पंखुड़ियों की योजना नहीं है वरन् केवल कोश में ही कोष्ठकों का विन्यास किया गया है।[1] बन्ध का छन्द निम्न है—

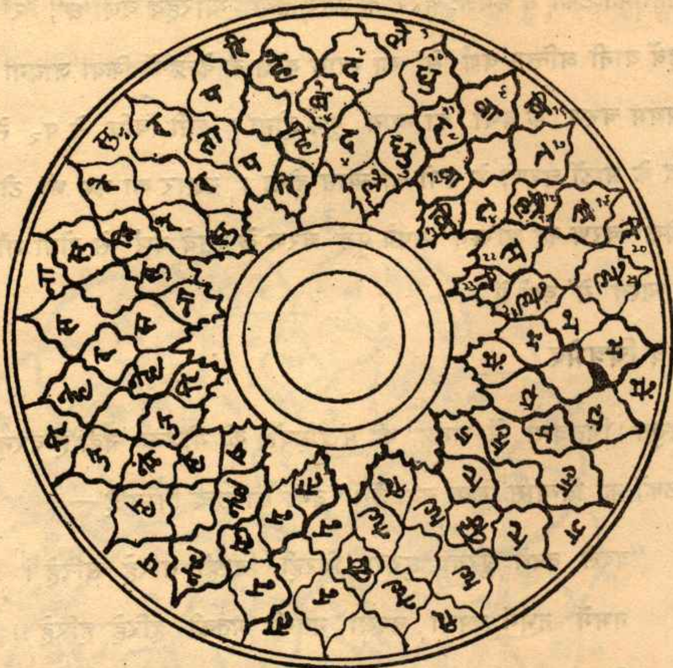
"बदले बदले धुरवा धुरवा बिरही बिरही सरिहे सरिहे।
नभमें नभमें चपला चपला गतकी गतकी हरिहे हरिहे॥
बिनता बिनता नसुहे नसुहे पलमे पलमे जरिहे जरिहे।
रसना रसना सुमिरे सुमिरे सुरता सुरता परिहे परिहे॥"[2]

प्रस्तुत छन्द की प्रत्येक पंक्ति में २४ वर्ण हैं तथा प्रत्येक शब्द तीन वर्णों का है। साथ ही छन्द में प्रयुक्त प्रत्येक शब्द की पुनरुक्ति हुई है। चित्र में इस छन्द का न्यास कोष्ठकों में कुछ इस प्रकार बिखरा हुआ है कि सामान्य पाठक के लिये इसका उद्धार कठिन हो जाता है। यही कारण है कि न्यासविधि को स्पष्ट करने के लिये प्रथम पंक्ति के वर्णों के साथ ही कोष्ठकों में उनकी संख्या भी लिख दी गई है। अन्य तीन पंक्तियों के वर्णों का न्यास भी प्रथम पंक्ति के वर्णों की तरह ही है। प्रथम पंक्ति के न्यास का रहस्य पा लेने के उपरान्त छन्द के अन्य अंशों का उद्धार फिर कठिन नहीं रह जाता। चित्र निम्न है—

---

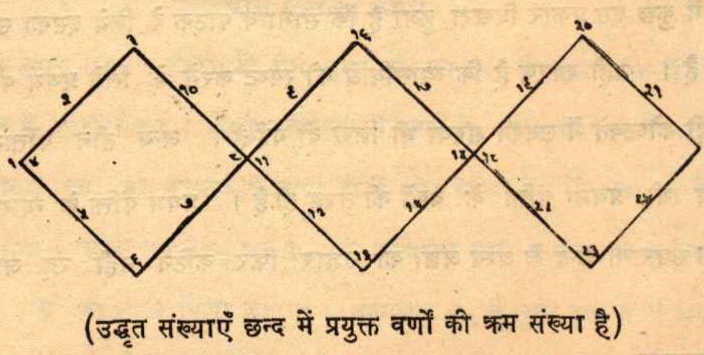
१. द्रष्टव्य, चित्र संख्या २३
२. प्र० सा०, लहर ६४, पृ० ६२४

चित्र संख्या-२३



-कमल प्रबंध चित्र भेद

चित्र में न्यस्त वर्णों के क्रम तथा स्थान को ध्यान से देखने पर सीधी रेखा में उनका निम्न गतिचित्र उपस्थित होता है। इस गतिचित्र के अनुसार वर्णों का पाठ करने पर न्यस्त छन्द के उद्धार में कोई कठिनाई नहीं होती। छन्द की प्रथम पंक्ति के वर्णों का गतिचित्र निम्न है—



(उद्धृत संख्याएँ छन्द में प्रयुक्त वर्णों की क्रम संख्या है)

प्रस्तुत गतिचित्र में हम पाते हैं कि प्रथम पंक्ति की वर्ण संख्या १-४, ८-११, १५-१८ की स्थति युग्म रूप से क्रमशः एक-एक कोष्ठक में है। चूंकि ये वर्ण समान हैं अतः उद्धार के

समय केवल इनका दो बार पाठ होगा। यहाँ यह भी स्पष्ट है कि ये वर्णयुग्म मध्य के कोष्ठकों में ही हैं, अन्य वर्णों का न्यास स्वतन्त्र कोष्ठकों में किया गया है। चित्र में वर्णों के न्यास की यही रीति है और इसी विधि से हम छन्द की अन्य तीन पंक्तियों का न्यास तथा उद्धार भी कर सकेंगे।

चक्रबन्ध

पद्मबन्ध की तरह ही चक्रबन्ध की रचना भी कवियों के लिये बड़ी प्रिय रही है। चित्ररचना के प्रारम्भ से ही इस बन्ध की रचना होती रही है। कालक्रम के अनुसार चक्रबन्ध की प्रथम रचना हमें 'शिशुपालवध' में मिलती है।[1] चक्रबन्ध के महत्त्व तथा अधिकांश कवियों द्वारा विरचित होने का एक बड़ा कारण यह है कि कवियों ने अधिकांशत: चक्रबन्ध में ही अपना तथा अपनी कृति का परिचय गुह्य रूप से दिया है। माघ द्वारा 'शिशुपालवध' में न्यस्त चक्रबन्ध से 'माघ काव्यमिदं शिशुपाल वधः' कवि-काव्य-नाम निःसृत होता है। इसी प्रकार रुद्रट द्वारा विरचित तथा 'काव्यालंकार' में संगृहीत चक्रबन्ध के अन्तर्गत रुद्रट का परिचय छिपा है।[2] 'देवीशतक' के द्वात्रिंशतर चक्र में छिपे श्लोक से भी आनन्दवर्धन का पूर्ण परिचय प्राप्त हो जाता है।[3] बाद के अधिकांश चक्रबन्धों में भी कवि अथवा काव्य अथवा इस प्रकार का कोई अन्य नाम मिलता है। चक्रबन्ध की रचना में ही अधिकांश कवियों ने अपने रचना-कौशल का परिचय दिया है। रुद्रट ने उन्हीं आठों श्लोकों से चक्रबन्ध की रचना की है जिनसे स्वतन्त्ररूप में अलग-अलग खड्ग (दो श्लोकों में), मुसल, धनु, शर, शूल, शक्ति तथा हलबन्ध की रचना हुई है।[4] इसी प्रकार देवीशतक में रचित ३२ आरों

---

१. शिशुपालवध, सर्ग १९, श्लोक १२०

२. "शतानन्दापराख्येन भट्टवामुकसूनुना।
साधितंरुद्रटेनेदं सामाजा धीमतां हितम्॥"
—द्रष्टव्य, चित्र संख्या २९

३. "देव्या स्वप्नोद्गमादिष्टदेवीशतक संज्ञया।
देशितानुपमामाधादेतां नोणसुतोनुतिम्॥"
—देवी शतक, श्लोक १०१; द्रष्टव्य, चित्र संख्या ९७

४. काव्यालंकार, अ० ५ श्लोक ६-७ खड्गबन्ध
८ मुसल
९ धनुष
१० शर
११ शूल
१२ शक्ति
१३ हल
और इन आठों से चक्र

वाले चक्र में २० श्लोक हैं, जिनमें चार श्लोक तो परिधि में हैं तथा १६ श्लोकों को एक बार परिधि से केन्द्र की ओर लिखकर १६ आरे बनाये गये हैं और उन्हीं १६ श्लोकों को पुनः केन्द्र की ओर से परिधि की ओर लिखकर अन्य १६ आरे बनाये गये हैं।[1] इस चक्र के

---

१. ये बीस श्लोक निम्न हैं—

"त्वं वादे शास्त्र संगिन्यां भासि वाचि दिवौ कसः।
तवादे शास्त्रसंस्काराज्जयन्ति वरदे द्विषः ॥८०॥
सदा ऽ व्याजवशिष्याताः सदात्तजपशिक्षिताः।
ददास्यजस्रं शिवताः सूदात्ताजदिशि स्थिताः ॥८१॥
हरेः स्वसारं देवि त्वा जनताश्रित्य तत्त्वतः।
वेत्ति स्वसारं देवि त्वा योगेन क्षपिताशुभा ॥८२॥
सदाप्नोति यतिर्ज्योतिस्तादृशं त्वत्प्रभावतः।
प्रभावतः समो येन कल्पते मोहनुत्तितः ॥८३॥
त्वं सद्गतिः सितापारा पराविद्योत्तितीर्षतः।
संसारादत्र चाम्ब त्वं सत्त्वं पासि विपत्तितः ॥८४॥
परमा या तपोवृत्तिरार्यायास्तां स्मृति जनाः।
परमायात पोषाय धियां शरणमादृताः ॥८५॥
प्रवादिमतभेदेषु दृश्यस्ते महिमामयः।
भान्ति त्वत्रिशिखस्येव शिखानामसमाश्रयः ॥८६॥
यच्चेष्टया तव स्फीतमुदारवसुधामतः।
यच्चेतो यात्यवहितमुदारवसुधामतः ॥८७॥
सुरेदेशस्य ते कीर्ति मण्डनत्वं नयन्ति येः।
वरदे शस्यते धीरैर्भवती भुविदेवता ॥८८॥
तत्त्वं वीतावततत्तुत्तत्त्वं ततवती ततः।
वित्तं वित्तव वित्तत्वं वीतावीतवतां बत ॥८९॥
तारे शरणमुद्यन्ती सुरेशरणमुद्यमैः।
त्वं दोषापासिनोदग्रस्वदोषा पासि नोदने ॥९०॥
सुमातरक्षयालोक रक्षयात्तमहामनाः।
त्वं धैर्ये जननीपासि जननीतिगुणस्थितीः ॥९१॥
ख्यातिकल्पनदक्षेका त्वं सामर्ग्यजुषामितः।
सदा सरक्षा सांमुख्यदानवानामसुस्थितिः ॥९२॥

अन्दर से ही वह श्लोक निःसृत होता है जिसमें आनन्दवर्धन का परिचय प्राप्त होता है।[१] हिन्दी में कई छन्दों के योग से बने चक्रबन्ध के उदाहरण तो नहीं मिलते किन्तु उत्कृष्ट चक्रबन्ध की रचना हिन्दी में भी पर्याप्त हुई है।

आरों की संख्या के आधार पर ही प्रमुखतः चक्रबन्ध के भेद निर्धारित किये गये हैं, जैसे चतुरर[२] षडर[३] अष्टार[४] आदि। इनके अतिरिक्त संस्कृत में चक्रबन्ध के द्विचतुष्कचक्र,[५] विवडित चक्र[६] जैसे भेद भी हैं। हिन्दी में चतुरर, षडर, अष्टार, द्विचतुष्कचक्र, तथा विवडित चक्र के अतिरिक्त रथचक्र का चित्र भी प्राप्त होता है। आठ से अधिक आरों वाले चक्र की रचना हिन्दी में नहीं हुई है। हिन्दी में रचित चक्रबन्ध के प्रमुख भेदों का विवेचन निम्न है—

सिता संसत्सु सत्तास्ते स्तुतेस्ते सततं सतः।
तताऽस्तितैति तस्तेति सूतिः सूतिस्ततोऽसि सा ॥९३॥

त्वदाज्ञया जगत्सर्वं भासितं मलनुद्यतः।
सदा त्वया सगन्धर्वं समिद्धमरिनुत्तितः ॥९४॥

यतोयाति ततोऽत्येति यया तां तायतां यतैः।
मातामितोत्तमतमा तमोतीतां मतिं मम ॥९५॥"

उपर्युक्त १६ श्लोकों से चक्र के ३२ आरे बनते हैं, निम्न चार श्लोक परिधि में न्यस्त होंगे—

"महत्तां त्वं श्रिता दासजनं मोहच्छिदावस।
यच्छुद्धत्वं गतः पापमन्यस्य प्रसभं जयः ॥९६॥

त्वं साज्ञासु जगन्मातः स्पष्टज्ञाता सुवर्त्मसु।
प्रज्ञा मुख्या समुद्भासि तत्पृथुत्वं प्रदर्शय ॥९७॥

हन्त्वयोरुपः क्षमा एताः सदक्षोभास्तमुन्नतः।
सतेहितः सेवते ताः सततं यः स ते हितः ॥९९॥

करोषि तास्त्वमुत्खातमोहस्थाने स्थिरा मतीः।
पदं यतिः सुतपसा लभतेऽतः सशुक्लिम ॥१००॥

न्यास के लिये द्रष्टव्य पंचम अध्याय में चित्र संख्या ९७

१. द्रष्टव्य, पृ० १४५ टि० ३

२. अग्निपुराण, अध्याय ३४५, श्लोक ४८

३. उपरिवत् तथा शिशुपालवध, सर्ग १९, श्लोक १२०

४. रुद्रट, काव्यालंकार, अ० ५

५. स० क०, परि० २, श्लोक ३११ तथा ३१५

६. उपरिवत्,

(क) चतुरर चक्र

प्रस्तुत चक्र में जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, छन्द का न्यास इस प्रकार होता है कि परिधि तथा चार आरे बन जाते हैं। ये चारों आरे एक केन्द्र पर इस प्रकार मिलते हैं कि वे योग का चिह्न (+) बनाते हैं यानी ये परस्पर समकोण बनाते हुए मिलते हैं। सर्वप्रथम 'अग्निपुराण' में इस 'चक्रबन्ध' का उल्लेख मिलता है।[१] किन्तु संस्कृत काव्य में चतुरर चक्र की रचना वेंकट रंगनाथ देशिक के 'पादुकासहस्र'[२] तथा वेंकटध्वरि के 'लक्ष्मीसहस्र'[३] के पूर्व दीख नहीं पड़ता। हिन्दी में इसकी रचना केशवदास से ही प्रारम्भ हो जाती है। केशवदास ने जिन आठ बन्धों की रचना की है उनमें एक चक्रबन्ध भी है और वह चतुरर ही है। 'कविप्रिया' में रचित 'चक्रबन्ध' का निम्न छन्द है—

> "मुरलीधर मुख दरसि मुख, संमुख मुख श्रीधाम।
> सुनि सारसनैनी सिखै जी सुखपूजै काम॥"[४]

प्रस्तुत छन्द के न्यास के लिए सर्व प्रथम हमें चक्र के आकार का एक वृत्त बनाना होगा।[५] इस वृत्त के केन्द्र से गुजरते हुए दो व्यास इस प्रकार खींचे जायेंगे कि वे परस्पर केन्द्र पर समकोण बनाते हुए एक दूसरे को काटें। अब केन्द्र से परिधि तक चारों दिशाओं में जो चार त्रिज्याएँ निकलती हैं वे ही चक्र के चारों आरे हैं। प्रस्तुत चित्र में दोहे के पहले वर्ण 'मु' को केन्द्र में रखना होगा। पुनः अगले तीन वर्णों 'र', 'ली', 'ध' को दायीं ओर के आरे में न्यस्त करना होगा। पाँचवा वर्ण 'र' दायीं ओर ही आरा तथा परिधि के मिलनबिन्दु पर लिखा जायगा। यदि हम संख्या का प्रयोग करते हुए इस दायीं ओर के आरे को $अ_१$ मान लें तो अन्य आरों की संख्याएँ भी स्वभावतः $अ_२$ $अ_3$ तथा $अ_४$ होंगी और इन आरों की अवस्थिति बायीं से दायीं ओर यानी घड़ी की सूई की गति की दिशा में होगी। उपर्युक्त छन्द का षष्ठ वर्ण पुनः 'मु' है जिसका न्यास केन्द्र में हो चुका है। इसके बाद के चार वर्णों (ख, द, र, सि) का न्यास $अ_२$ में होगा, जिसमें 'सि' की अवस्थिति $अ_२$ तथा परिधि के मिलनबिन्दु पर होगी। इसी प्रकार पुनः छन्द का ग्यारहवाँ वर्ण 'मु' है और वह केन्द्र में ही स्थित है

१. अ० ३४३, श्लोक ४८
२. पद्धति [चित्र] ३२, श्लोक १७, पृ० ३१०
३. स्तवक [चित्र] २२, श्लोक १७ क, पृ० ६९६
४. प्रभाव १६, छन्द ७८
५. द्रष्टव्य, चित्र संख्या २४

तथा बारहवें से लेकर पन्द्रहवें वर्ण तक (ख, सं, मु, ख) का न्यास $अ_3$ में होगा। निश्चय ही अन्तिम 'ख' का स्थान परिधि पर होगा। छन्द के पूर्वार्द्ध का बाकी अंश भी इसी प्रकार $अ_4$ में न्यस्त होगा जिसमें 'मु' की स्थिति तो केन्द्र में है ही, अन्य चार वर्णों (ख, श्री, धा म) को $अ_4$ पर लिखा जायगा जिनमें 'म' $अ_4$ तथा परिधि के मिलनबिन्दु पर होगा। अब प्रस्तुत दोहे के पूर्वार्द्ध का न्यास चक्र में इस प्रकार हो गया कि प्रथम, षष्ठ, ग्यारहवें तथा सोलहवें वर्ण की, जो एक ही हैं, स्थिति केन्द्र में है तथा अन्य वर्णों की स्थिति उपर्युक्त रीति से आरों में है जिनमें क्रमशः 'र', 'सि', 'ख' तथा 'म' ये चार वर्ण $अ_1$ $अ_2$ $अ_3$ तथा $अ_4$ और परिधि के मिलनबिन्दुओं पर हैं।

दोहे के उत्तरार्द्ध का न्यास पूर्णतः परिधि में होगा। उपर्युक्त चारों त्रिज्याओं (आरों) के परिधि से मिलने के कारण परिधि के भी चार भाग हो गए हैं। $अ_4$ तथा $अ_1$ के बीच की परिधि के अंश से न्यास का आरम्भ होगा। उत्तरार्द्ध के प्रथम तीन वर्ण 'सु', 'नि', 'सा' परिधि के इस अंश में रखे जायेंगे, चौथा वर्ण 'र' $अ_1$ पर है ही। पुनः अगले तीन वर्णों (स, नँ, नी) का न्यास $अ_1$ तथा $अ_2$ से बने चाप पर होगा तथा चौथा वर्ण 'सि' पुनः $अ_2$ पर मिल जाता है। इसी प्रकार आरों तथा परिधि के मिलन-बिन्दुओं पर न्यस्त वर्ण छन्द के उत्तरार्द्ध में मिलते जायेंगे तथा अन्य वर्णों का न्यास इन आरों से बने चापों पर क्रमशः होता जायगा, और सम्पूर्ण दोहे का न्यास इस बन्ध में हो जायगा।

उद्धार के लिए भी न्यास की इसी पद्धति का सहारा लेना होगा। 'चित्रचन्द्रिका' में काशिराज ने इस सम्बन्ध में निम्न दोहा लिखा है—

"मूढ़ा ताको जोड़िये अरा चारि हू मित्र।
अर्द्ध नेमि में बाँचिये चक्रबंध सो चित्र॥"[1]

तात्पर्य यह कि केन्द्र के वर्ण को प्रत्येक आरे में विन्यस्त वर्णों के आदि में मिला-कर पढ़ें, इस प्रकार दोहे का पूर्वार्द्ध निकल आयगा। दोहे के उत्तरार्द्ध की प्राप्ति हमें नेमि अथवा परिधि में न्यस्त वर्णों के पाठ से होगी। पाठ का आरम्भ उसी स्थल से होगा जहाँ पूर्वार्द्ध की समाप्ति होगी, यानी परिधि पर $अ_4$ के बाद बायीं से दायीं ओर को। और इस प्रकार सम्पूर्ण दोहे का उद्धार हो जायगा।

---

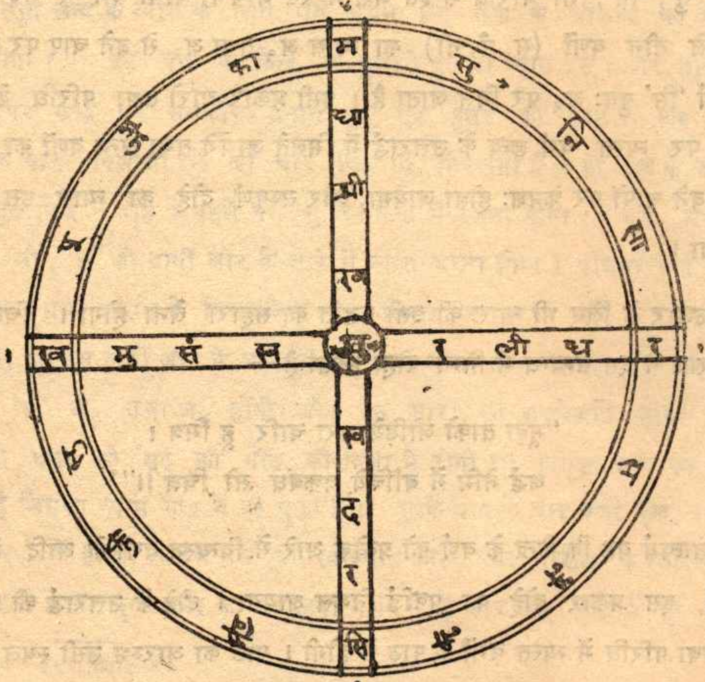
१. चि० चं०, प्रकाश ६, पृ० ७६ छन्द २७

प्रस्तुत चित्र में चमत्कार यही है कि केन्द्रस्थित वर्ण का पाठ चार बार चारों आरों के वर्णों के आदि में होता है। पुनः चारों आरों पर स्थित अन्तिम वर्णों (परिधि तथा आरा के मिलनबिन्दुओं पर स्थित) का पाठ एक बार तो आरा के पाठ के साथ होगा तथा पुनः नेमि अथवा परिधि में विन्यस्त वर्णों के साथ होगा। साथ ही प्रत्येक आरा तथा परिधि के प्रत्येक चाप में विन्यस्त वर्णों की संख्या बराबर है। निम्न चित्र संख्या २४ में न्यास और उद्धार का यह क्रम स्पष्ट रूप से देखा जा सकेगा।

चित्र संख्या—२४

न्यास का छन्द

"मुरलीधर मुख दरसि मुख, संमुख मुख श्रीधाम।
सुनि सारस नैनी सिखै जी सुख पूजै काम॥"



चतुरर चक्र

गुणन चिह्न (×) उद्धार के आरम्भबिन्दु को संकेतित करता है।

चतुरर चक्रबन्ध में छन्द का न्यास एक दूसरे क्रम से भी मिलता है। यहाँ न्यास का आरम्भ केन्द्र से न कर परिधि से करते हैं। षडर तथा अष्टार चक्र में अधिकांशतः इस विधि का अनुकरण किया जाता है। चित्र संख्या २५ से यह बात अधिक स्पष्ट होगी। यहाँ आरों का क्रम चित्र संख्या २४ के क्रम से भिन्न होगा, न्यास की दिशा भी भिन्न हो जायगी। इस प्रकार के चक्रबन्ध का छन्द निम्न है—

"पावस परम पुनीत, सदन रहें प्यारे जहाँ।
पावत सब सुख रीत प्रीतम संग विहार करि ॥"[1]

सर्व प्रथम हमें केन्द्र की बायीं ओर की परिधि से न्यास आरम्भ करना होगा और केन्द्र से होते हुए पुनः दायीं ओर की परिधि में जाकर समाप्त करना होगा। इस प्रकार $अ_1$ तथा $अ_3$ का निर्माण होगा।[2] पुनः चक्र के शीर्ष में परिधि से आरम्भ करके केन्द्र से होते हुए हम नीचे की परिधि तक आवेंगे तथा इस प्रकार $अ_2$ तथा $अ_4$ का निर्माण होगा। प्रस्तुत चित्र में $अ_1$ तथा $अ_3$ में दोहे का प्रथम चरण ऋजुगति से लिख दिया गया है। इसी प्रकार $अ_2$ तथा $अ_4$ में दोहे का द्वितीय चरण न्यस्त है। केन्द्र में छन्द के इन दोनों चरणों का मध्यवर्ण है। दोहे का उत्तरार्द्ध परिधि में न्यस्त होगा। प्रथम वर्ण 'पा' का न्यास $अ_1$ के आदि वर्ण के रूप में हो चुका है, पुनः घड़ी की सूई की गतिदिशा में चलकर प्रथम चाप ($अ_1$-$अ_2$ के बीच का) में 'व', 'त' इन दो वर्णों का न्यास हुआ है, 'स' वर्ण $अ_2$ का आदि वर्ण है ही। पुनः इसी क्रम में आगे चलकर हम दोहे के उत्तरार्द्ध का न्यास कर लेते हैं। उद्धार का क्रम भी यही है कि परिधि पर न्यस्त $अ_1$ के आद्यवर्ण से आरम्भ कर परिधि पर न्यस्त $अ_3$ के वर्ण तक चले जायँ। इस प्रकार छन्द के प्रथम चरण की प्राप्ति होती है। इसी विधि से द्वितीय चरण की प्राप्ति हमें $अ_2$ तथा $अ_4$ में विन्यस्त वर्णों के ऊपर से नीचे की ओर पाठ करने से होती है। दोहे का उत्तरार्द्ध हमें परिधि में मिल जाता है। कतिपय वर्ण जो आरों के आदि अथवा अन्तिम वर्ण के रूप में पूर्व से ही परिधि में लिखे हैं, उनका पाठ भी दोहे के इस उत्तरार्द्ध में यथास्थान होता है।

---

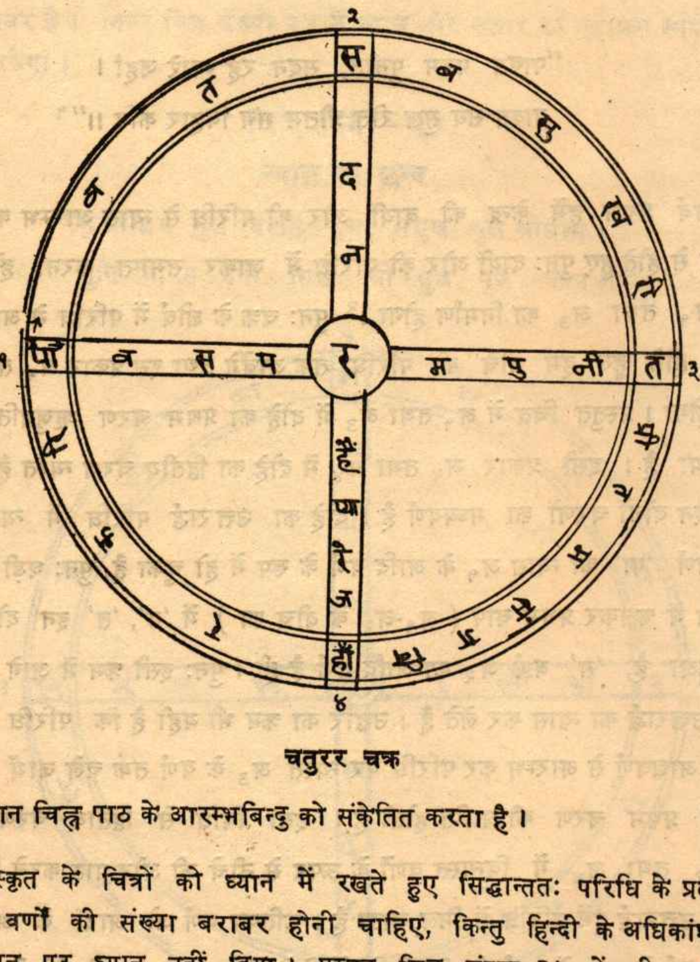
१. रसिक बिहारी रचित काव्य सुधाकर, पृ० ३४, छन्द ७

२. अ१, अ२, अ३ तथा अ४—आरों की संज्ञा हैं।

चित्र संख्या-२५

न्यास का छन्द

पावस परम पुनीत, सदन रहे प्यारे जहाँ ॥
पावत सब सुख रीत प्रीतम संग विहार करि ॥



चतुरर चक्र

गुणन चिह्न पाठ के आरम्भबिन्दु को संकेतित करता है।

संस्कृत के चित्रों को ध्यान में रखते हुए सिद्धान्ततः परिधि के प्रत्येक चाप में न्यस्त वर्णों की संख्या बराबर होनी चाहिए, किन्तु हिन्दी के अधिकांश कवियों ने इस बन्धन पर ध्यान नहीं दिया। प्रस्तुत चित्र संख्या २५ में भी सभी चापों में स्थित वर्णों की संख्या बराबर नहीं है। यह हिन्दी में चित्ररचना के ह्रास का सूचक है।

•यद्यपि भाषा की संश्लेषणात्मकता के कारण संस्कृत कवियों को इस प्रकार की रचनाओं में अधिक सुविधा प्राप्त थी, किन्तु हिन्दी में भी इस दोष को बचाया जा सकता

था। भिखारीदास प्रभृति कवियों ने अन्य प्रकार के चक्रों की रचना में इस प्रकार के किसी दोष को आने नहीं दिया है तथा उत्कृष्ट कोटि का चक्रबन्ध उपस्थित किया हैं। रसिक बिहारी की प्रस्तुत रचना इस प्रकार निर्दोष नहीं रह पाती। परिधि और केन्द्र के बीच विभिन्न आरों में स्थित वर्णसंख्या की समानता का निर्वाह भी रसिक विहारी ने नहीं किया है। यों संस्कृत में भी कतिपय स्थानों में सिद्धान्त से स्खलन दीख पड़ता है, पर अपवाद-स्वरूप ही।

(ख) षडर चक्र

संस्कृत में प्रस्तुत बन्ध की रचना यथेष्ट हुई है। 'शिशुपाल वध' में नियोजित चक्र-बन्ध का श्लोक, जिसे संस्कृत में रचित चक्रबन्ध का प्रथम श्लोक कहा जा सकता है, षडर ही है।[१] संस्कृत में षडर चक्र की दो प्रकार की रचनाएँ मिलती हैं—(१) नामांक चक्रबन्ध तथा (२) सामान्यचक्रबन्ध। चक्रबन्ध के ये दोनों ही प्रकार केवल षडर के ही नहीं वरन् अष्टार अथवा अन्य संख्या में आरों वाले चक्रों में भी हैं। इन चक्रों में जैसा कि संज्ञा से ही स्पष्ट है, एक वृत्त अथवा परिधि तथा अभीष्ट संख्या में आरे होते हैं। हिन्दी में षडर चक्र के चित्र में संस्कृत के चित्र से थोड़ी भिन्नता दीख पड़ती है। केवल एक ही वृत्त (परिधि के रूप में) तथा छह आरों से युक्त चित्र को हिन्दी में चन्द्रबन्ध कहा गया है,[२] चक्रबन्ध नहीं। षडर चक्र के चित्र में हिन्दी कवियों ने परिधि के अतिरिक्त एक अन्य अन्तर्वृत्त की योजना भी की है।[३] संस्कृत में षडर चक्र का यह रूप नहीं पाया जाता। दूसरी ओर हिन्दी में नामांक चक्रबन्ध का न्यास उसी प्रकार नहीं होता जिस प्रकार संस्कृत में होता है। सामान्य चक्रबन्ध की न्यासविधि भी हिन्दी में संस्कृत से किंचित् भिन्न ही है। भिखारीदास ने काव्यनिर्णय में षडर घक्रबन्ध का निम्न छन्द दिया है—

"कर नराच धनुधरन नरकदारनो निरंजन।
जदुकुल सरसिज भानु नयरित्यन गारो गंजन॥
लाख दुअन दल दरन मध्य तू नीर जुगल तन।
चकित करन बर नरन बनक बर सरस दरस छन॥

१. सर्ग १९, श्लोक १२०, द्रष्टव्य, चित्र संख्या २७

२. भिखारीदास, काव्यनिर्णय, अध्याय—२१, छन्द ६४
गोकुल कवि, चित्रकलाधर, पृ० ६६-६७
शम्भुनाथ, काव्यनिधि अथवा शम्भु प्रकास, तरंग १०, पत्र ९६/२ (हस्तलिखित)

३. भि० दा०, का० नि०, अ०—२१, छन्द संख्या ६६
गोकुल कवि, चि० क०, पृ० ६१
रामसहाय दास, हस्तलिखित, पृ० ४ (ना० प्र० स०, काशी के संग्रहालय में, हस्तलेख सं० १४२८)
शम्भुनाथ, काव्यनिधि, पत्र ९६/२ (हस्तलिखित)

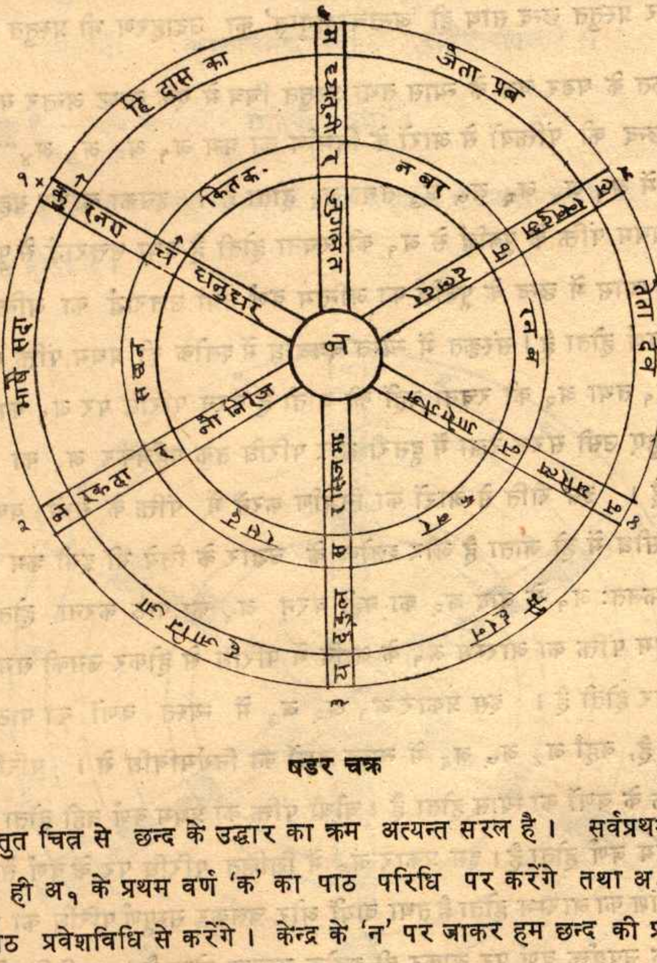
कहि दास काम जेता प्रबल, तेता देवन भय हरन।
यह जानि जान भाषै सदा कमल नयन चरनन सरन ॥"[१]

निम्नलिखित चित्र संख्या २६ के सहारे प्रस्तुत छन्द का न्यास समझा जा सकता है। न्यास के लिये प्रथम तीन पंक्तियों के छह भाग किये गये हैं, और उनका न्यास क्रमशः छहों आरों में किया गया है। 'कर नराच धनुधरन' छन्द की प्रथम पंक्ति के इस पूर्वार्द्ध का न्यास चित्र में इस प्रकार होता है कि प्रथम अक्षर 'क' की अवस्थिति प्रथम आरा (जिसे $अ_१$ कहा गया है) तथा परिधि के मिलनस्थल पर होती है। तदनन्तर 'र' 'न' 'रा' इन तीन वर्णों का न्यास परिधि तथा अन्तर्वृत्त के बीच में पड़ने वाले $अ_१$ के भाग में किया जाता है। उपर्युक्त छन्दांश का पाँचवाँ वर्ण 'च' पुनः $अ_१$ तथा अन्तर्वृत्त के मिलनस्थल पर लिखा जाता है और इसके आगे के चार वर्ण 'ध', 'नु', 'ध', 'र' का न्यास केन्द्र तथा अन्तर्वृत्त के बीच पड़ने वाले $अ_१$ के भाग में होता है। छन्दांश के अन्तिम वर्ण 'न' की अवस्थिति केन्द्र में होती है और चक्र के प्रथम आरे अथवा $अ_१$ का न्यास पूर्ण हो जाता है। अन्य पाँच आराओं $अ_२$, $अ_३$, $अ_४$, $अ_५$ तथा $अ_६$ में छन्द की प्रथम तीन पंक्तियों के अन्य अंशों का न्यास भी इसी विधि से होता है। छन्द की अन्तिम तीन पंक्तियों में निहित वर्णों "चकित..........सरन" का न्यास दोनों ही वृत्तों में (परिधि तथा अन्तर्वृत्त में) किया जाता है। इस न्यास की विधि यह है कि सर्वप्रथम अन्तर्वृत्त तथा $अ_१$ के मिलनस्थल पर स्थित वर्ण 'च' से आरम्भ करते हैं तथा घड़ी की सूई की गतिदिशा में अन्तर्वृत्त के साथ-साथ वर्णों का न्यास करते चलते हैं। $अ_१$ तथा $अ_६$ के बीच के अन्तर्वृत्त के चाप में छन्द की चतुर्थ पंक्ति के दूसरे, तीसरे तथा चौथे अक्षर 'कि', 'त', 'क', का न्यास होता है, पाँचवाँ अक्षर 'र' $अ_२$ तथा अन्वृत्त के मिलनस्थल पर पहले से ही विन्यस्त है। इसी प्रकार $अ_६$-$अ_५$, $अ_५$-$अ_४$, $अ_४$-$अ_३$, $अ_३$-$अ_२$, तथा $अ_२$-$अ_१$ के बीच के अन्तर्वृत्त के चापों में क्रमशः आगे के तीन-तीन वर्णों का विन्यास होता है। बीच-बीच में अन्तर्वृत्त तथा आरों के मिलनस्थल पर लिखे वर्णों का पाठ होता चलता है। इस प्रकार अन्तर्वृत्त में छन्द की सम्पूर्ण चतुर्थपंक्ति न्यस्त हो जाती है। पुनः हम चक्र की परिधि तथा $अ_१$ के मिलनस्थल पर विन्यस्त 'क' वर्ण से प्रारम्भ करते हैं। यह 'क' वर्ण छन्द की पाँचवी पंक्ति का प्रथम वर्ण भी है। अन्तर्वृत्त में किये गये विन्यासों की विधि के अनुकूल ही तथा उसी दिशा में परिधि में हम छन्द की पंचम पंक्ति तथा षष्ठ पंक्ति के पूर्वार्द्ध के वर्णों का न्यास कर पाते

१. अध्याय २१, छन्द संख्या ६६

हैं। इस न्यास तथा अन्तर्वृत्त के न्यास में केवल एक अन्तर यह है कि जहाँ दो-दो आरों के मध्य के अन्तर्वृत्त के खण्डों में तीन-तीन वर्णों को लिखा गया था, वहाँ परिधि के खण्डों में चार-चार वर्ण न्यस्त हैं। छन्द की अन्तिम पंक्ति के उत्तरार्द्ध का न्यास भी चक्र में न्यस्त छन्द के उपर्युक्त अंशों में ही गुप्त रूप से हो जाता है।

चित्र संख्या-२६



षडर चक्र

प्रस्तुत चित्र से छन्द के उद्धार का क्रम अत्यन्त सरल है। सर्वप्रथम न्यासविधि के अनुकूल ही अ१ के प्रथम वर्ण 'क' का पाठ परिधि पर करेंगे तथा अ१ में विन्यस्त वर्णों का पाठ प्रवेशविधि से करेंगे। केन्द्र के 'न' पर जाकर हम छन्द की प्रथम पंक्ति का पूर्वार्द्ध प्राप्त कर लेते हैं। इसी प्रकार अ२, अ३, अ४, अ५ तथा अ६ में विन्यस्त वर्णों को केन्द्र के वर्ण 'न' से मिलाकर पढ़ने पर हमें छन्द की प्रथम तीन पंक्तियों की प्राप्ति हो जाती है। पुनः अ१ तथा अन्तर्वृत्त के मिलनस्थल पर न्यस्त वर्ण 'च' से प्रारम्भ कर घड़ी की सूई की गतिदिशा में पढ़ने पर अन्तर्वृत्त में हमें छन्द की चौथी पंक्ति मिल जाती है।

छन्द की पाँचवीं पंक्ति तथा छठी के पूर्वार्द्ध की प्राप्ति हमें परिधि में अ$_{१}$ के प्रथम वर्ण 'क' से प्रारम्भ कर घड़ी की सूई की गतिदिशा में बढ़ते हुए परिधि में विन्यस्त वर्णों के पाठ से होती है। पुनः परिधि तथा अ$_{१}$ के मिलनस्थल के वर्ण से प्रारम्भ कर सभी आरों तथा परिधि के मिलनस्थलों के वर्ण, तदनन्तर सभी आरों और अन्तर्वृत्त के मिलनस्थलों के वर्णों का पाठ घड़ी की सूई की गतिदिशा में करते हुए केन्द्रस्थ वर्ण 'न' पर आकर हम छन्द के अन्तिम शेष अंश (छठी पंक्ति के उत्तरार्द्ध) की प्राप्ति भी कर लेते हैं। इस प्रकार प्रस्तुत छन्द साथ ही 'अन्तचरणगुप्त' का उदाहरण भी प्रस्तुत करता है।

संस्कृत के षडर चक्र के न्यास तथा प्रस्तुत चित्र में एक स्पष्ट अन्तर यह है कि जहाँ हिन्दी में छन्द की पंक्तियों से आरों के निर्माण का क्रम अ$_{१}$ अ$_{२}$ अ$_{३}$ अ$_{४}$....अ$_{६}$ होता है वहाँ संस्कृत में अ$_{१}$ अ$_{४}$ अ$_{२}$ अ$_{५}$ अ$_{३}$ तथा अ$_{६}$ होता है। इसका कारण यह है कि हिन्दी में छन्द की प्रथम पंक्ति के पूर्वार्द्ध से अ$_{१}$ की रचना होती है तथा उत्तरार्द्ध से पुनः अ$_{२}$ की। इस प्रकार के न्यास में छन्द के पूर्वार्द्ध का अन्तिम वर्ण तथा उत्तरार्द्ध का अन्तिम वर्ण दोनों ही केन्द्र का वर्ण होता है। संस्कृत में न्यस्त चक्रबन्ध में श्लोक की प्रथम पंक्ति को दो टुकड़ों में बाँटकर अ$_{१}$ तथा अ$_{२}$ की रचना नहीं की जाती है वरन् परिधि पर अ$_{१}$ का प्रारम्भ कर केन्द्र से होते हुए उसी सरल रेखा में दूसरी ओर परिधि तक पहुँचकर अ$_{४}$ का निर्माण कर लिया जाता है। इस रीति से आरों का निर्माण करने में पंक्ति के सभी वर्णों का न्यास साथ ही एक सीध में हो जाता है और श्लोक के उद्धार के लिये भी इसी क्रम को अपनाना पड़ता है। फलतः अ$_{१}$ के बाद अ$_{२}$ का नहीं वरन् अ$_{४}$ का पाठ करना होता है, क्योंकि श्लोक की प्रथम पंक्ति का आरम्भ अ$_{१}$ के आदि में परिधि से होकर उसकी समाप्ति अ$_{४}$ के साथ परिधि पर होती है। इस प्रकार अ$_{१}$ अ$_{२}$ अ$_{३}$ में न्यस्त वर्णों का पाठ जहाँ प्रवेश विधि से होता है, वहाँ अ$_{४}$ अ$_{५}$ अ$_{६}$ में न्यस्त वर्णों का निर्गमविधि से। परिधि में श्लोक की चौथी पंक्ति के वर्णों का न्यास होता है। चौथी पंक्ति का प्रथम वर्ण वही होता है जो तृतीय पंक्ति का अन्तिम वर्ण होता है। इस प्रकार अ$_{६}$ में लिखित परिधि पर के वर्ण से ही नेमि में विन्यस्त श्लोकांश का आरम्भ होता है तथा दायीं ओर चलकर सम्पूर्ण परिधि का भ्रमण करते हुए पुनः अ$_{६}$ के उपर्युक्त वर्ण पर आकर ही श्लोक समाप्त होता है। परिधि के न्यास में अ$_{१}$ अ$_{२}$ अ$_{३}$ आदि में न्यस्त वर्ण का यथास्थान पाठ होता चलता है तथा इन आरों से बने परिधिखण्डों में न्यस्त वर्णों की संख्या भी लगभग समान होती है। निम्नलिखित चित्र संख्या २७ में न्यास की यह विधि देखी जा सकती है।

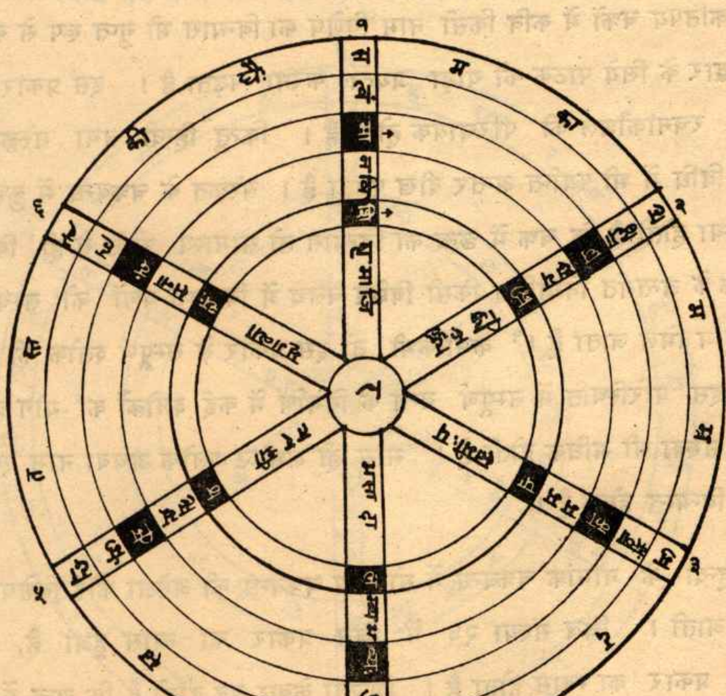
चित्र संख्या-२७

न्यास का श्लोक

सत्वं मान विशिष्टमाजिरभसादालम्ब्य भव्यः पुरो
लब्धा घक्षयशुद्धिरुद्धरतर श्रीवत्सभूमिर्मुदा।
मुक्त्वा काममपास्तभीः परमृगव्याध. स नादं हरे—
रेकीघैः समकालमभ्रमुदयी रोपैस्तदातस्तरे॥

गर्भांक है—'माघ काव्यमिदं शिशुपाल वधः'।

चक्र के तृतीय एवं पंचम वलयों के काले प्रखण्डों में न्यस्त वर्णों के पाठ से यह गर्भांक निःसृत होता है।



षडर चक्र (माघ)

इस प्रकार चित्र-निर्माण तथा न्यास की दृष्टि से हिन्दी तथा संस्कृत के षडर चक्र में मौलिक अन्तर है।

हिन्दी में मिलने वाले षडर चक्रबन्धों में सर्वत्र दो वृत्तों की योजना (परिधि तथा अन्तर्वृ त्त की) दीख पड़ती है जबकि संस्कृत में केवल परिधि ही होती है। छह आरों का निर्माण तो दोनों में होता ही है इसके अतिरिक्त ऊपर के न्यास में हमने देखा है कि हिन्दी छन्द की अन्तिम पंक्ति के उत्तरार्द्ध का न्यास चक्र में अलग से नहीं किया जाता, वरन् अन्य अंशों के न्यास में ही उसका भी न्यास हो जाता है। संस्कृत के षडर चक्रों में हमें यह बात नहीं मिलती। वहाँ सम्पूर्ण श्लोक का न्यास आदि से अन्त तक होता है। यह बात दूसरी है कि स्थान विशेष में विन्यस्त होने के कारण कतिपय वर्णों की एक से अधिक बार आवृत्ति होती है। केन्द्र में विन्यस्त वर्ण हिन्दी तथा संस्कृत दोनों में अनिवार्यतः एक ही होता है तथा पाठ में उसकी बार-बार आवृत्ति होती है।

कतिपय चक्रों में कवि किसी नाम विशेष का विन्यास भी गुप्त रूप से करता है और उसके उद्धार के लिये पाठक को थोड़ा प्रयत्न करना पड़ता है। इस प्रकार की योजना कवि के रचनाकौशल की परिचायक होती है। किन्तु हिन्दी तथा संस्कृत के नामांक चक्रों की विधि में भी पर्याप्त अन्तर दीख पड़ता है। संस्कृत के चक्रबन्ध में कुछ इस प्रकार की व्यवस्था होती है कि चक्र में छन्द का विन्यास तो सामान्य रीति से ही किया जाता है किन्तु चक्र के अन्तर्गत नियोजित किसी विशेष वलय में विन्यस्त वर्णों को साथ पढ़ने पर अभीष्ट नाम मिल जाता है।[1] कभी-कभी तो इस प्रकार से सम्पूर्ण श्लोक की प्राप्ति होती है, किन्तु इस परिस्थिति में सम्पूर्ण बन्ध के निर्माण में कई श्लोकों का योग होता है तथा आरों की संख्या भी अधिक होती है। साथ ही अभीष्ट श्लोक अथवा नाम एक से अधिक वलयों में विन्यस्त होता है।[2]

हिन्दी के नामांक चक्रबन्ध में सामान्य चक्रबन्ध की अपेक्षा कोई विशेष बात देखने में नहीं आती। चित्र संख्या २६ में जिस प्रकार का न्यास हुआ है, नामांक में भी उसी प्रकार का न्यास होता है। भिन्नता केवल यह होती है कि छन्द में ही अन्तिम

---

१. द्रष्टव्य, चित्र संख्या २७, यहाँ चित्र के तृतीय तथा पंचम वलयों से 'माघकाव्यमिदं शिशुपालवधः निःसृत होता है।

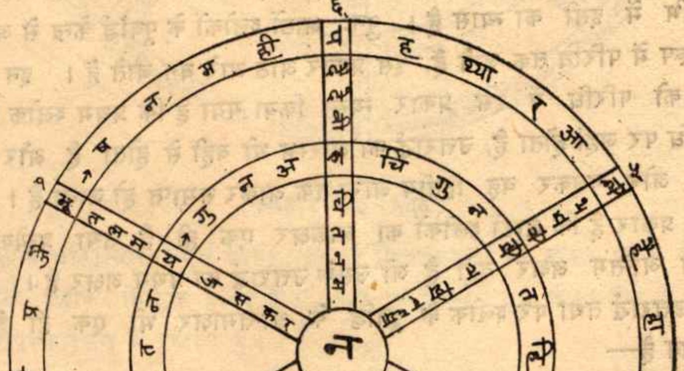
२. द्रष्टव्य, चित्र संख्या २९

गुप्त चरण के स्थान पर किसी नामविशेष का प्रयोग होता है और चित्र संख्या २६ की विधि से ही उसका न्यास तथा उद्धार भी होता है। फलतः रचना-कौशल की दृष्टि से प्रस्तुत योजना का कोई महत्त्व नहीं। छन्द में किसी अंश का परिवर्तन कर इस विधि से तो कुछ भी लिखा जा सकता है। निम्नांकित चित्र संख्या २८ में न्यस्त 'चित्रकलाधर' के छन्द में यह देखा जा सकता है। प्रस्तुत चित्र में क्रमशः परिधि, अन्तर्वृत्त एवं आरों के मिलनस्थलों पर न्यस्त वर्णों के पाठ से छन्द के अन्तिम चरण 'भूप दिगविजय रुचि सदय' की प्राप्ति होती है।

चित्र संख्या-२८

न्यास का छन्द

भूतलमयजसकरन जनित भय दोषी गंजन।
विकसे वदन सरोज भान गति हित सर परिजन॥
दिन प्रति चित थिर ध्यान पदै देवी रुचितनमन।
यगुन अरुचि गुन चितहि वसत छवि दरस मयन तन॥
भूषन महीप हथ्यार आदि है हाथी राग विनोदकय।
विधि वेद साज पालै प्रजै भूप दिगविजय रुचि सदय॥



षडर नामांक चक्र

(ग) अष्टार चक्र

अष्टार चक्र का चित्र संस्कृत में सर्वप्रथम हमें रूद्रट के काव्यालंकार में मिलता है। यह एक अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि का बन्ध है, जिसकी रचना में आठ श्लोकों का योग है।

रुद्रट चित्ररचना में कितने कुशल थे इसका प्रमाण हमें प्रस्तुत बन्ध से मिल जाता है। इन आठों श्लोकों से एक ओर जहाँ अलग-अलग खड्ग, मुसल, धनुष, शर, शूल, शक्ति तथा हल बन्ध की रचना होती है, वहाँ समवेत रूप से इनसे अष्टार चक्र की रचना भी होती है। साथ ही यह चक्र कवि नामांक है और चित्र से निम्न श्लोक निःसृत होता हैं जिसमें रुद्रट का परिचय है :

"शतानन्दा पराख्येन भट्टवामुकसूनुना।
साधितं रुद्रटेनेदं सामाजा धीमतां हितम् ॥"

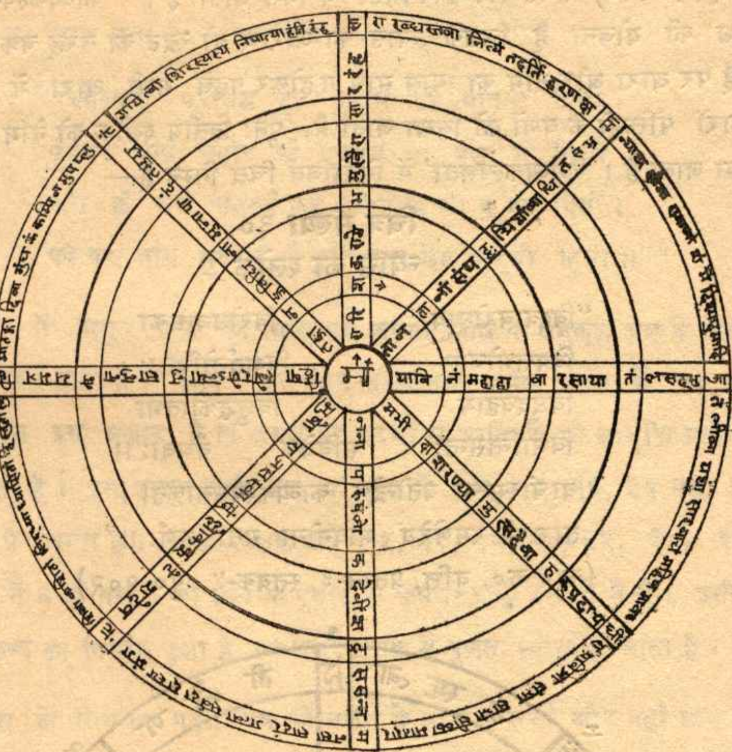
इस बन्ध की रचनाविधि का अनुकरण हिन्दी में नहीं दीखता। प्रस्तुत चित्र में न्यास का प्रारम्भ चक्र की नाभि से होता है। आठों श्लोकों का आद्यक्षर 'मा' है और नाभि में इसी का न्यास है। पुनः आठों श्लोकों के पूर्वार्द्ध केन्द्र से आरम्भ होकर आरों के रूप में परिधि तक जाते हैं, इस प्रकार आठ आरे बन जाते हैं। इन श्लोकों के उत्तरार्द्ध को परिधि में इस प्रकार न्यस्त किया गया है कि प्रथम श्लोक के पूर्वार्द्ध का अन्त परिधि पर जहाँ होता है, उत्तरार्द्ध का आरम्भ भी वहीं से होता है और परिधि में ही दायीं ओर चलकर वह द्वितीय आरा तक आकर समाप्त हो जाता है। श्लोकों की रचना इस प्रकार है कि आठों श्लोकों का आद्यक्षर एक ही है तथा प्रत्येक श्लोक के पूर्वार्द्ध का अन्तिम अक्षर वही है जो उसके उत्तरार्द्ध का प्रथम अक्षर है। साथ ही पूर्व श्लोक के उत्तरार्द्ध तथा पर श्लोक के पूर्वार्द्ध के अन्तिमाक्षर भी एक ही हैं।[1] चित्र निम्नलिखित है—

---

१. रुद्रट द्वारा रचित चक्रबन्ध के आठों श्लोक निम्न हैं—

"मारारिशक्ररामेभमुखैरासार रंहसा।
सारारब्धस्तवा नित्यं तदर्ति हरणक्षमा ॥६॥
मातानतानां संघटः श्रियां बाधित संभ्रमा।
मान्याथ सीमा रामाणां शं मे दिश्यादुमादिजा ॥७॥
मायाविनं महाहावा रसायातं लसद्भुजा।
जातलीला यथासार वाचं महिष मावधीः ॥८॥
मामभीदा शरण्या मुत्सदैवारुक्प्रदा चधीः।
धीरा पवित्रा संत्रासात्त्रासीष्ठामातरारम ॥९॥

चित्र संख्या २६



अष्टार चक्र (रुद्रट)

चक्र के चारों वलयों एवं आठों आरों के मिलनस्थलों पर न्यस्त वर्णों के पाठ से निम्न गर्भांक श्लोक निःसृत होता है। पाठ का आरम्भ एवं दिशा तीर के चिह्न द्वारा केन्द्र के समीपस्थ वलय में द्रष्टव्य है।

"शतानन्दा पराख्येन भट्टवामुक सूनुना।
साधितं रुद्रटेनेदं सामाजा धीमतां हितम् ॥"

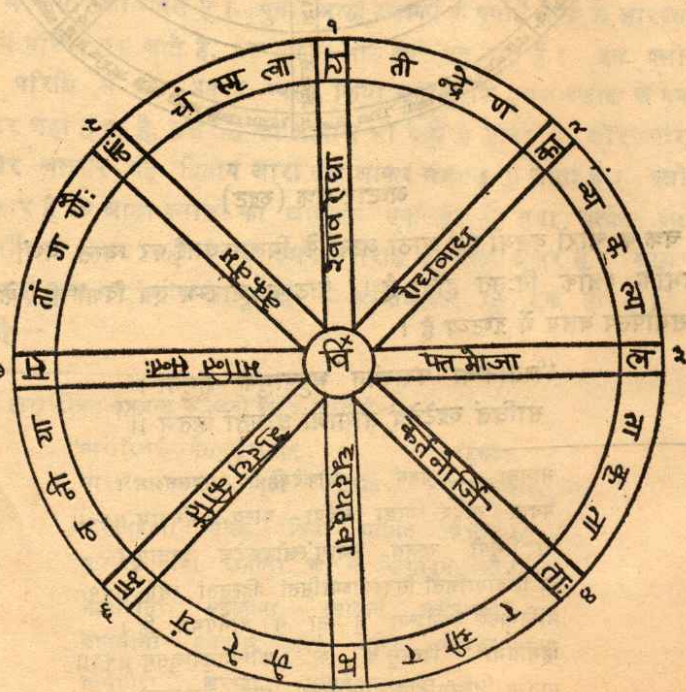
मानना परुषं लोकदेवीं सद्रससन्नम।
मनसा सादरं 'गत्वा सर्वदा दास्य मंगताम् ॥१०॥
मा मुषो राजस स्वासूं ल्लोककूटेश देवताम्।
तां शिवावाशितां सिद्ध्याध्यासितां हिस्तुतां स्तुहि ॥११॥
माहिषाख्ये रणेऽन्या नु सा नु नानेयमत्र हि।
हिमातंगा दिवामुंच कं कम्पिनमुपप्लुतम् ॥१२॥
मातंगा नंगविधि नामुना पादं तमुद्यतम्।
तंगयित्वा शिरस्यस्य निपात्याहन्तिरंहसा ॥१३॥
काव्यालंकार, अध्याय ५

अष्टार चक्र के न्यास के लिये हिन्दी में जो विधि अपनाई गई है, वह हमें अमरचन्द्र सूरि (१२९७ वि०) रचित 'काव्यकल्पलता' में मिल जाती है। 'काव्यकल्पलता' में एक चक्रबन्ध की योजना है जिसके न्यास का आरम्भ तो रुद्रट की तरह चक्र के केन्द्र से ही होता है पर आरा और नेमि का न्यास साथ न होकर पहले सभी आरों में प्रथम श्लोक की चारों पंक्तियों के वर्णों को लिखा जाता है, पुनः द्वितीय श्लोक को नेमि अथवा परिधि में लिखा जाता है। 'काव्यकल्पलता' में नियोजित चित्र निम्न है—

चित्र संख्या ३०

न्यास का श्लोक

"विश्वावरोधाय विरोधबाधका
विपत्तभोजाल विकर्तनोर्जिताः।
विधूदयद्धाम विशुद्धकीर्तिभा
विभान्तिसन्तः सविवेक वैभवाः॥
वाचं स्मृत्वा यतीन्द्रेण काव्यकल्पलताकृता।
तार श्री रमणेरेयं भावनीया सतां गणैः॥"
(का० क०, वृत्ति, प्रतान-३, स्तवक-५, पृ० १०२)



अष्टार चक्र (काव्यकल्पलतावृत्ति)

हिन्दी में भी न्यास का यही क्रम गृहीत हुआ है। भिखारीदास द्वारा रचित अष्टार चक्र का निम्न छन्द तथा न्यासविधि द्रष्टव्य है—

"परमेस्वरी परसिद्ध है पसुनाथ की पतिनी प्रियो।
परचंड चाप चढ़ाइ कै परसैन छै पल में कियो॥
खल छै करी सबक्वै कहै सरिजाहि की न कहूँ बियो।
पद पद्म चारु सुध्याई कै करि दास छेम भर्यो हियो॥"[1]

चित्र में प्रस्तुत छन्द का न्यास पूर्व कथित विधि के अनुकूल चक्र के केन्द्र अथवा नाभि से आरम्भ होता है। छन्द में कुल चार चरण तथा प्रत्येक चरण में २० वर्ण हैं। वर्णों का क्रम इस प्रकार है कि प्रथम दो चरणों में आदिवर्ण की आवृत्ति प्रत्येक पाँचवें स्थान में होती है। इस प्रकार आदि वर्ण 'प' छन्द में १, ६, ११, १६, २१ २६, ३१ तथा ३६वें स्थान पर आता है। छन्द के उत्तरार्द्ध में ५, १०, १५, २०, २५, ३०, ३५ तथा ४०वें स्थान में वे ही वर्ण हैं जो छन्द के पूर्वार्द्ध में क्रमश· इन्हीं स्थानों में हैं। इसी योजना पर प्रस्तुत छन्द का निर्माण हुआ है, जो अष्टार चक्र में पूर्णतः न्यस्त हो जाता है।

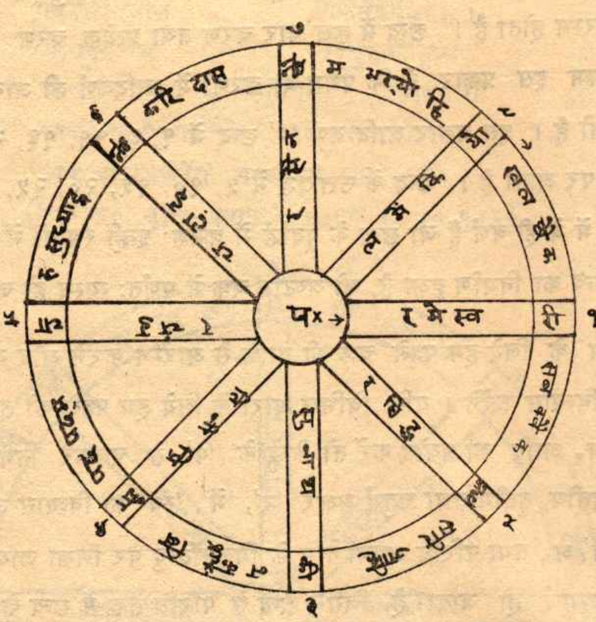
न्यास के लिये हम पहले चक्र की नाभि से आरम्भ करेंगे और वहाँ छन्द के आदि वर्ण 'प' का विन्यास करेंगे। यदि विभिन्न आरों के लिये हम पहले की तरह ही संकेत रूप में $अ_1$ $अ_2$ $अ_3$ आदि का प्रयोग करें तो केन्द्र के 'प' से चलकर निर्गमविधि से प्रथम चरण के द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ अक्षर 'र', 'में', 'स्व' का विन्यास $अ_1$ में होगा तथा पंचमाक्षर 'री' $अ_1$ तथा परिधि अथवा नेमि के मिलनबिन्दु पर लिखा जायगा। इस प्रकार $अ_1$ का न्यास पूर्ण हो जाता है जिसमें केन्द्र से परिधि तक में छन्द के प्रथम पाँच वर्णों का विन्यास होता है। पुनः इसी विधि से $अ_2$ में छन्द के द्वितीय पंचाक्षर का विन्यास होगा जिसका प्रथम वर्ण 'प' केन्द्र में तथा पंचम वर्ण 'है' परिधि पर होगा। इसी प्रकार अन्य ६ आरों में छन्द के पूर्वार्द्ध का विन्यास हो जायगा। आरों का क्रम बायें से दायें को होगा यानी $अ_2$ की स्थिति $अ_1$ के दायें होगी और इसी दिशा में $अ_3$, $अ_4$ आदि होंगे।

छन्द के उत्तरार्द्ध का न्यास परिधि में होगा। इस न्यास के लिये हम $अ_8$ के बाद $अ_8$ तथा $अ_1$ के द्वारा बने चाप से आरम्भ करेंगे तथा प्रत्येक चाप में चार-चार वर्णों का

१. भि० ग्र०, का० नि०, अ० २१, छन्द संख्या ६५ पृ० २०४

विन्यास करते हुए दायीं ओर को बढ़ेंगे। हम देख चुके हैं कि छन्द के उत्तरार्द्ध का प्रत्येक पंचमाक्षर वही है जो छन्द के पूर्वार्द्ध का है तथा जिनका न्यास आरों के सिरे पर परिधि में हो चुका है। अतः परिधि में छन्द के उत्तरार्द्ध का न्यास करते समय ये विन्यस्त वर्ण स्वतः अपने स्थान पर आते जायेंगे। इस प्रकार चक्र पूर्ण हो जायगा। निम्नलिखित चित्र संख्या ३१ में यह न्यास द्रष्टव्य है।

चित्र संख्या-३१



अष्टार चक्र

गुणन चिह्न (×) पाठ के आरम्भबिन्दु को संकेतित करता है।

चित्र से छन्द के उद्धार का क्रम भी यही होगा। केन्द्र से आरम्भ कर हम निर्गम-विधि से क्रमशः $अ_१$, $अ_२$, $अ_३$ .... $अ_८$ में विन्यस्त वर्णों को पढ़ेंगे पुनः $अ_८$ के परिधि-वाले सिरे से आरम्भ कर परिधि में विन्यस्त वर्ण का पाठ घड़ी की सूई की गतिदिशा में करते हुए परिधि के साथ ही छन्द की भी पूर्त्ति कर लेंगे। हिन्दी में अष्टार चक्र की केवल यही विधि अपनाई गई है। संस्कृत में इसका न्यास षडर चक्र की विधि से भी होता है।

गोकुल कवि के 'चित्रकलाधर' में भी एक अष्टार चक्रबन्ध की योजना है जो उपर्युक्त चित्र से पूर्णतः साम्य रखता है ।[1]

(घ) द्विचतुष्क चक्रबन्ध

द्विचतुष्क चक्रबन्ध की रचना हिन्दी में केवल काशिराज ने अपनी 'चित्रचन्द्रिका' में की है । संस्कृत में 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में इस चित्र की योजना है । भोजराज ने निम्न श्लोक में इसकी न्यासविधि बताई है—

"इह शिखर सन्धि मालां बिभृयादर्धंसमाश्रितैर्वर्णैः ।
द्विचतुष्कचक्रबन्धे नेमिविधौचापरं भ्रमयेत् ॥"[2]

काशिराज प्रदत्त लक्षण भोजराज के इस लक्षण का अनुवाद मात्र ही है—

"सन्धि अरनि से अर्द्ध पढ़ि अर्द्धनेमि में बाँधि ।
चक्र बन्ध द्विचतुष्क को कहत सुकवि जन जाँचि ॥"[3]

किन्तु 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में दिये श्लोक से बने चित्र तथा काशिराज की 'चित्र-चन्द्रिका' में बने चित्र[4] में बहुत अधिक अन्तर दीख पड़ता है । असल में प्रस्तुत लक्षण का क्षेत्र इतना व्यापक है कि कई प्रकार के न्यास के लिये अवकाश निकल आता है । प्रस्तुत लक्षण में उद्धार के लिये पाठ के किसी निश्चित क्रम की व्यवस्था नहीं दीख पड़ती । भोजराज के श्लोक से बने चित्र से चित्रचन्द्रिका के चित्र में अन्तर

---

१. चित्र कलाधर, पृ० ६१, चित्र संख्या ११

छन्द निम्न है—

"परचंड जै परताप सो परतच्छ को पहिचानिए ।
परसी न कंप निहारते पग परैं नै पर सिर दिए ॥
दिगविजै सिंह महीप सो समताहि को जग दीजिए ।
तन तेज कंज के बंधु तैं वृज यो भनै कीरति लिए ।"

२. परि-२, श्लोक ३१२, पृ० २३९

३. चि० चं०, प्रकाश ६, छन्द संख्या २९, पृ० ७८

४. द्रष्टव्य, चित्र संख्या ३२

होने का एक कारण यह भी है कि वर्णवृत्त होने के कारण श्लोक के दोनों ही अर्द्धों में वर्णों की संख्या जहाँ समान है वहाँ 'चित्रचन्द्रिका' के छन्द में उत्तरार्द्ध के वर्ण पूर्वार्द्ध की अपेक्षा तीन कम हैं। फलतः चित्र के न्यास में पर्याप्त अन्तर आ जाता है। दोनों चित्र देखने में भी एक दूसरे से नितान्त भिन्न हैं, फिर भी यदि काशिराज के छन्द के दोनों ही अर्द्धों में वर्णों की संख्या समान होती तो इसका न्यास 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में बने चित्र के रूप में भी हो जाता। चित्र संख्या ३२ तथा ३३ में दोनों ही न्यासों का अन्तर देखा जा सकता है। काशिराज ने प्रस्तुत बन्ध में निम्न छन्द को न्यस्त किया है—

"विनद घन वरसि नचत शिखि दरस।
विशद भान रन होत देखि रस॥"[१]

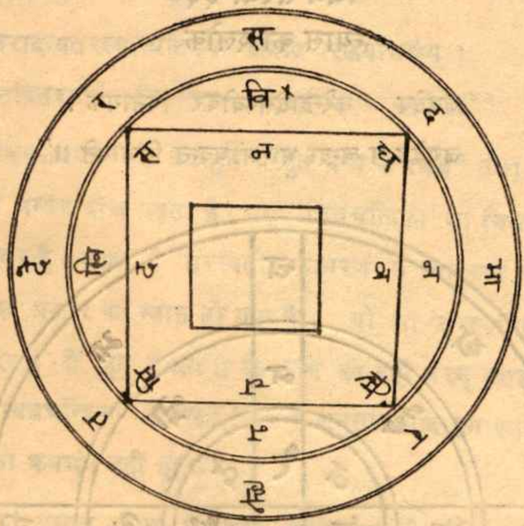
न्यास के लिये चित्र में एक ही केंद्र पर दो वृत्त बनाये गये हैं तथा अन्तर्वृत्त के अन्दर दो वर्ग (एक दूसरे के अन्दर)। इस प्रकार चित्र में तीन कोष्ठकों का निर्माण हो जाता है; एक दोनों परिधियों के बीच, दूसरा अन्तर्वृत्त की परिधि तथा बड़े वर्ग के बीच तथा तीसरा छोटे और बड़े वर्ग के बीच। इन्हीं तीनों कोष्ठकों में छन्द का विन्यास किया गया है। विवेचन की सुविधा के लिये हम इन तीनों कोष्ठकों के स्थान पर क्रमश $क_1$, $क_2$, $क_3$ का प्रयोग संकेत रूप में करेंगे।

न्यास के लिये सर्वप्रथम ऊपर की ओर $क_2$ के मध्य में छन्द का प्रथमाक्षर 'वि' रखा गया है। ठीक उसके नीचे $क_3$ में दूसरा अक्षर 'न' लिखा गया है। तीसरे अक्षर 'द' का न्यास $क_1$ में दायीं ओर बर्गों के कोण के ठीक ऊपर किया गया है तथा चौथे अक्षर 'घ' की अवस्थिति $क_3$ में 'द' के ठीक नीचे है। पांचवा अक्षर 'न' पुनः दायीं ओर $क_2$ के बीच में है और अगला वर्ण 'व' उसीके ठीक नीचे $क_3$ में। इसी प्रकार आगे भी वर्ग के कोने की सीध में दायीं ओर $क_1$ में 'र' तथा ठीक उसके नीचे $क_3$ में 'सि' को रखा गया है। नीचे की ओर $क_2$ के मध्य में 'न' तथा $क_3$ के मध्य में 'च' का न्यास किया गया है। पुनः बायीं ओर नीचे के कोने में $क_1$ में 'त' तथा $क_3$ में 'सि' को लिखा गया है। बायीं ओर ही मध्य में $क_2$ में 'खि' तथा $क_3$ में 'द' और ऊपर की ओर कोने पर $क_1$ में 'र' तथा $क_3$ में 'स' का न्यास किया गया है। न्यास के इस क्रम का अनुकरण करते हुए हम छन्द के पूर्वार्द्ध का पाठ कर लेते हैं। छन्द के उत्तरार्द्ध के न्यास के लिये प्रस्तुत चित्र में $क_1$ में ऊपर की ओर मध्य में 'वि' के ऊपर 'स', दायीं ओर 'न' के

१. चि० चं०, प्रकाश ६, छन्द संख्या ३०, पृ० ७९

ऊपर 'भा', नीचे 'न' के नीचे 'हो' तथा बायी ओर 'खि' के ऊपर 'दे' को लिखना होगा। छन्द के उत्तरार्द्ध के पाठ के लिये सर्वप्रथम $क_2$ में स्थित 'वि' से आरम्भ करना होगा, फिर ऊपर $क_1$ में स्थित 'स' तथा दायी और 'द' और 'भा' पाठ करते हुए $क_2$ के 'न' का पाठ करना होगा। आगे $क_1$ में स्थित 'र', $क_2$ में नीचे की ओर मध्य में स्थित 'न', पुनः $क_1$ में स्थित 'हो', 'त' तथा 'दे' का पाठ करते हुए $क_2$ में स्थित 'खि' पर आना होगा। अन्त में $क_1$ में स्थित 'र' तथा $क_3$ में स्थित 'स' के पाठ के साथ ही छन्द का उत्तरार्द्ध भी पूर्ण हो जायगा। चित्र निम्न है—

चित्र संख्या—३२



द्विचतुष्क चक्र

गुणन चिह्न (×) पाठ के आरम्भबिन्दु का द्योतक है।

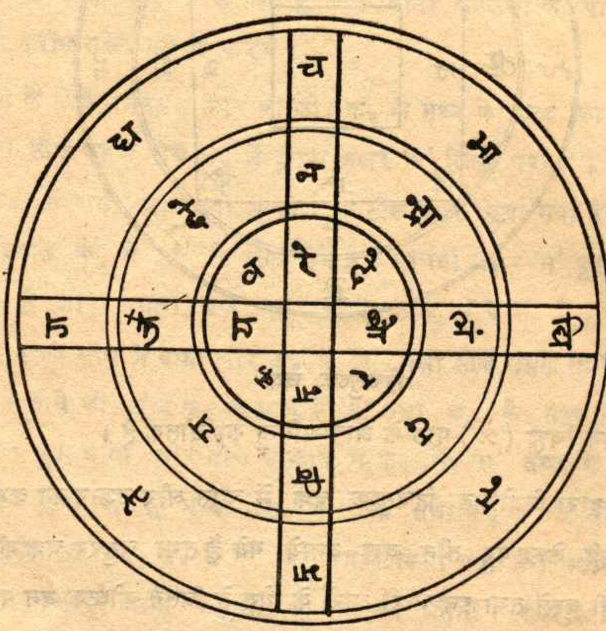
भोजराज द्वारा नियोजित द्विचतुष्क चक्र में न्यास और उद्धार का क्रम दूसरा है। वहाँ चित्र में एक ही केन्द्र पर तीन वृत्त बनाये गये हैं तथा चतुरर चक्र की तरह चार आरे भी। तीनों ही वृत्तों तथा इन चारों आरों के योग से जितने कोष्ठक बन पाते हैं, उन्हीं में एक-एक वर्ण का न्यास होता है। उद्धार के लिये मध्य-वृत्त के शीर्ष में बने कोष्ठक के वर्ण से पाठ प्रारम्भ करते हैं तथा एक मध्यवृतस्थ कोष्ठक के वर्ण, पुनः उसी सीध में अन्तर्वृत्तस्थ कोष्ठक के वर्ण, पुनः दायीं ओर के मध्यवृत्तस्थ वर्ण, पुनः अन्तर्वृत्तस्थ वर्ण

और इसी क्रम से समस्त मध्य वृत्तस्थ तथा अन्तर्वृत्तस्थ वर्णों का पाठ करने से श्लोक का पूर्वार्द्ध निकल आता है। श्लोक के उत्तरार्द्ध की प्राप्ति के लिये पूर्वविधि से ही मध्य-वृत्तस्थ कोष्ठक से आरम्भ कर एक मध्यवृत्तस्थ, पुनः एक बाह्यवृत्तस्थ (उसी सीध में), पुनः मध्यवृत्तस्थ, पुनः बाह्यवृत्तस्थ और इसी क्रम से इन दोनों वृत्तों में स्थित सभी वर्णों का पाठ करना होगा। न्यास तथा उद्धार की दिशा बायें से दायें होगी। यहाँ हम पाते हैं कि संस्कृत में न्यस्त द्विचतुष्क चक्रबन्ध का यह न्यास और उद्धार कहीं अधिक वैज्ञानिक दीख पड़ता है। कहा जा चुका है कि यदि हिन्दी छन्द के दोनों अर्द्धों में भी समान वर्ण होते तो उनका न्यास इस प्रकार का भी हो पाता। भोजराज द्वारा नियोजित चित्र निम्न है—

चित्र संख्या-३३

न्यास का श्लोक

"जयदेव नरेन्द्रादेलम्बोदर विनायक।
जगदेध न चन्द्रा भा लंघिदन्त विभायते ॥"



द्विचतुष्क चक्र बन्ध (भोजराज)

गुणन चिह्न (×) पाठ के आरम्भबिन्दु का द्योतक है।

(ङ) विवडित चक्रबन्ध-चित्र

प्रस्तुत बन्ध की योजना भी हिन्दी में हमें काशिराज रचित 'चित्रचन्द्रिका' में ही मिलती है। निम्न दोहे में लेखक ने चित्र की न्यासविधि बताई है—

'शिखर ग्रंथि पुनि ग्रंथि भनि शिखर ग्रंथि पढ़ वक्र।
उत्तरार्द्ध लिख नेमि में विवडित बंध सुचक्र॥"[१]

प्रस्तुत दोहे की टीका में काशिराज ने बताया है कि प्रस्तुत चक्र विवडित नाम की किसी देवी का आयुध है और इसीलिये इसका यह नाम है।

न्यासविधि से सम्बद्ध काशिराज का प्रस्तुत दोहा भोजराज द्वारा 'सरस्वती-कण्ठाभरण' में रचित निम्न श्लोक का अनुवाद है—

"शिखरादन्यतरस्मात्प्रतिपर्वं भ्रमति रेखयाद्यर्धम्।
नेमौतदितरमर्धे विवडित चक्राभिधे बन्धे॥"[२]

किन्तु 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में उदाहृत प्रस्तुत बन्ध के चित्र[3] तथा काशिराज की 'चित्रचन्द्रिका' के चित्र में अन्तर दीख पड़ता है। यहाँ 'चित्रचन्द्रिका' का चित्र ही न्यासविधि के अनुकूल बना दीख पड़ता है। लगता है 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में चित्रकार की असावधानी के कारण चित्र में इस प्रकार का न्यास हो गया है। यों भी 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में उद्धृत चित्र का न्यास देखने से ही लगता है कि कवि की नहीं वरन् न्यासकर्ता की भूल क्रमभंग का कारण है। 'चित्रचन्द्रिका' में न्यस्त चित्र के अनुसार यदि हम श्लोक को बिठाते हैं, तो कहीं किसी तरह का क्रमभंग नहीं होता।

'चित्रचन्द्रिका' में प्रस्तुत चित्र के लिये काशिराज ने निम्न दोहे की रचना की है—

"समारपी तिय त्योंभा मानो रतिमय भास।
सरसानो वर पीति में मन रात्यो यों हास॥"[४]

चित्र की न्यासविधि निम्न है—[५]

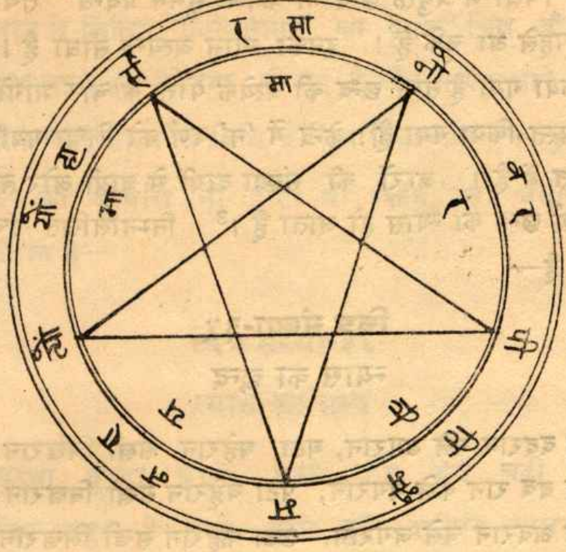
---

१. चि० चं०, प्रकाश ६, छन्द संख्या ३१, पृ० ७९-८०
२. परि-२, श्लोक ३१६, पृ० २४०
३. पुस्तक के अन्त में न्यस्त चित्र सं० १२ (काव्यमाला ९५)
४. चि० चं०, प्रकाश ६, छन्द संख्या ३२, पृ० ८०
५. द्रष्टव्य, चित्र संख्या ३४

दो वृत्तों से बने एक चक्र में एक तारे के आकार का पंचकोण चित्र लेते हैं तथा उसी में वर्णों का न्यास किया जाता है। न्यास के लिये सर्वप्रथम हम पंचकोण के एक कोण के शीर्ष पर नेमि के अन्दर छन्द के प्रथम वर्ण 'स' को रखेंगे। पुनः छन्द के अगले दो वर्णों (द्वितीय, तृतीय) का न्यास अन्तःपरिधि तथा कोणों के योग से बने कोष्ठकों में से शीर्ष के दक्षिण के दो कोष्ठकों में क्रमशः करेंगे। चतुर्थ अक्षर का न्यास पुनः नेमि में तृतीय कोण पर होगा। पुनः अगले दो वर्ण (पंचम तथा षष्ठ) दायीं ओर के अगले दो कोष्ठकों में रखे जायेंगे और सप्तम वर्ण का न्यास पंचम कोण के शीर्ष पर नेमि में होगा। अष्टम वर्ण इसी प्रकार अगले कोष्ठक में न्यस्त होगा तथा नवम वर्ण वही है जो छन्द का द्वितीय वर्ण था। दसवें वर्ण का न्यास नेमि में दूसरे कोण पर होगा तथा ग्यारहवाँ और बारहवाँ वर्ण क्रमशः छन्द के तीसरे और पाँचवे वर्ण की आवृत्ति ही हैं और जो पहले ही कोष्ठकों में न्यस्त हो चुके हैं। तेरहवें वर्ण को चौथे कोण के शीर्ष पर नेमि में लिखा जायगा तथा चौदहवाँ और पन्द्रहवाँ वर्ण पुनः छन्द के छठे तथा आठवें वर्ण की क्रमशः आवृत्ति ही हैं और उनका न्यास कोष्ठकों में यथास्थान हो चुका है। सोलहवाँ वर्ण वही है जो छन्द का प्रथम वर्ण है और उसका न्यास भी शीर्ष कोण पर हो चुका है। इस प्रकार दोहे के पूर्वार्द्ध का न्यास सम्पन्न होता है। अब स्थिति यह है कि दोहे के पूर्वार्द्ध के सभी वर्णों में से चित्र के पंचकोण से बने पाँचों कोष्ठों तथा नेमि में पाँचों कोणों के शीर्ष पर एक-एक वर्ण रखे जा चुके हैं। अन्य वर्ण इन्हीं में न्यस्त वर्णों की आवृत्ति मात्र हैं।

छन्द के उत्तरार्द्ध का न्यास केवल नेमि में ही घड़ी की सूई की गतिदिशा में होगा। नेमि में पाँचों कोणों के शीर्ष पर पाँच वर्ण न्यस्त हो चुके हैं और इनके बीच के स्थान खाली हैं। छन्द के उत्तरार्द्ध का प्रथम वर्ण भी वही है जो पूर्वार्द्ध का था। अतः उसी वर्ण से नेमि में आरम्भ कर पुनः उसी वर्ण में आकर उत्तरार्द्ध का न्यास समाप्त होगा। खाली स्थानों में उत्तरार्द्ध के क्रमशः दूसरे-तीसरे, पाँचवे-छठे, आठवें-नवें, ग्याहरवें-बारहवें, तथा चौदहवें-पन्द्रहवें वर्णों के पाँच युग्म रखे जायेंगे। पहले, चौथे, सातवें, दसवें, तेरहवें तथा सोलहवें वर्णों का न्यास नेमि में पंचकोणों पर स्थित पूर्वार्द्ध के वर्णों में ही हो चुका है क्योंकि ये वर्ण वे ही हैं। इस प्रकार नेमि में न्यस्त सभी वर्णों का पाठ दायीं ओर की गतिदिशा में करने पर सम्पूर्ण उत्तरार्द्ध का उद्धार होगा। काशिराज द्वारा नियोजित चित्र निम्न है—

चित्र संख्या-३४



विवर्डित चक्र बन्ध

गुणन चिह्न (×) पाठ के आरम्भबिन्दु का द्योतक है।

'सरस्वतीकण्ठाभरण' में न्यस्त चित्र[1] में पंचकोण के स्थान पर षट्कोण बना दिया गया है, फलतः कोष्ठकों की संख्या में भी एक की वृद्धि हो जाती है, किन्तु श्लोक का वर्ण-क्रम ठीक वैसा ही है जैसा उपर्युक्त दोहे में है। श्लोक तथा दोहा दोनों में वर्णों की संख्या ३२ है, जो १६-१६ के हिसाब से दो अर्द्धों में बँटे हैं। इन रचनाओं में समान वर्णों की योजना निम्नक्रम में है, जिससे पाठ में उनकी आवृत्ति होती चलती है और न्यास एक आकार पकड़ लेता है—

वर्ण संख्या १, १६, १७ तथा ३२, २-९, ३-११, ४-२३, ५-१२, ६-१४, ७-२९, ८-१५, १०-२० तथा १३-२६ समान हैं।

अन्य वर्णों का प्रयोग केवल एक ही बार हुआ है और उनकी आवृत्ति नहीं होती।

स्पष्ट है कि चित्रचन्द्रिकाकार ने इस रचना में भोजराज का ही अनुकरण किया है और उनके आधार पर ही चित्र की योजना भी की है। अतः 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में विन्यस्त चित्र के न्यास में क्रमभंग के लिये कोई स्थान नहीं रह जाता। निश्चितरूपेण यह न्यासकर्त्ता की भूल है।

(च) रथचक्र चित्र

राजा महिरामन सिंह लिखित 'प्रबीनसागर' में नियोजित चित्रों में रथचक्र के नाम

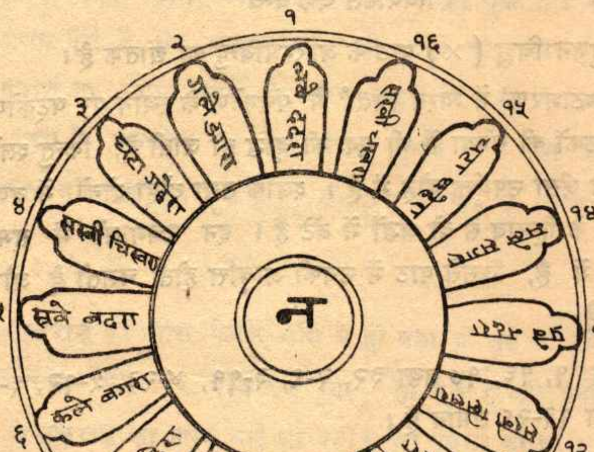
१. द्रष्टव्य, पाद टिप्पणी-३, पृ० १६९

से दो प्रकार के चित्र हैं। इन चित्रों के न्यास में किसी विशेष प्रकार के कौशल के दर्शन नहीं होते। दोनों ही चित्रों में प्रयुक्त छन्द भी क्रमशः सुमन प्रबन्ध[1] तथा कर्णिकाद्यमध्यान्त कमल[2] के अन्तर्गत पहले आ चुके हैं। इनका न्यास अत्यन्त सीधा है। एक चक्र में १६ आरों का निर्माण किया गया है तथा छन्द की प्रत्येक पंक्ति के चार भागों को प्रवेश विधि से इन आरों में विन्यस्त किया गया है। केन्द्र में 'न' वर्ण को लिखा गया है जो छन्द के इन सोलहों भागों के अन्त में है। आरों की संख्या दायीं से बायीं ओर को चलती है। इस प्रकार चित्र में सम्पूर्ण छन्द का न्यास हो जाता है।[3] निम्नलिखित चित्र में इस न्यास को देखा जा सकता है—

चित्र संख्या-३५

न्यास का छन्द

लवे ददरान गले डगरान, घटा घहेरान सखी चिखरान।
स्रवे बद रान कले बगरान, पटा थहेरान सखी बिखरान॥
झवे अदरान चले जगरान, छटा फहेरान सखी लिखरान।
प्रवे नदरान मले सगरान, छटा छहेरान सखी चखरान॥



रथचक्र-१

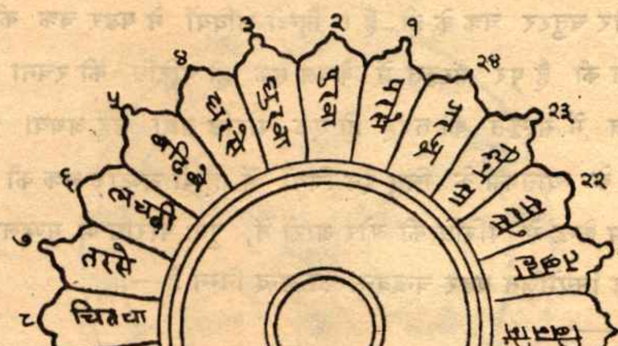
१. द्रष्टव्य, चित्र संख्या २०
२. द्रष्टव्य, चित्र संख्या २२
३. प्रवीनसागर, लहर, ६४, पृ० ६३२

रथचक्र के नाम से चित्रित 'प्रबीनसागर' का दूसरा चित्र और भी सरल है। केवल एक चक्र में २४ आरों की योजना की गई है और प्रत्येक आरे में छन्द के आदि से लेकर क्रमशः तीन-तीन वर्णों को प्रवेश विधि से लिख दिया गया है। पूर्वचित्र में कम-से-कम केंद्रस्थ वर्ण 'न' की आवृत्ति भी होती थी किन्तु यहाँ वैसी भी कोई योजना नहीं हैं।[1] चित्र निम्न है—

चित्र संख्या-३६

न्यास का छन्द

परसे पुरवा धुरवा धरसे, धरसे बढ़ि बेल चढ़ी तरसे।
तरसे चित चातुक के हरसे, हरसे दुति दामिनि अम्बर से॥
बरसे घनघोर घटा झर से, झरसे धुनि बाढ़त दादर से।
दरसे बिन मिन्त ब्रह्म सरसे, सरसे दिन सागर जू परसे॥



रथचक्र-२

१. प्रबीनसागर, लहर ६४, पृ० ६२३

'प्रबीनसागर' की चित्र संख्या ५७, ६६ तथा ९५[१] और 'दीन दयाल गिरि ग्रन्थावली' (प्र० ४ पृ० १८९)[२] में बने चित्र में चक्रबन्ध के नाम पर षोडशदल कमलबन्ध की विधि से बने सामान्य चित्रों की योजना है, जिनके छन्दों का प्रत्येक युग्म वर्ण समान है। इनका न्यास केन्द्र में तथा अतिरिक्त अन्य वर्णों का पंखुड़ियों में होता है। यहाँ केवल नाम का अन्तर है, छन्द और चित्र में किसी प्रकार का अन्तर नहीं है। फलतः इन चित्रों का विवेचन यहाँ अपेक्षित नहीं है। 'प्रबीनसागर' में इनके अतिरिक्त चक्रबन्ध के नाम में एकाधिक अन्य चित्रों की भी योजना है[3] पर चक्रबन्ध के न्यास के अनुकूल न होने तथा किसी प्रकार के विशेष चमत्कार से रहित होने के कारण वे बिल्कुल महत्त्वहीन हैं अतः उनका विवेचन अपेक्षित नहीं।

(छ) चन्द्रबन्ध

भिखारीदास के 'काव्यनिर्णय',[४] गोकुल कवि के 'चित्रकलाधर'[५] तथा लछिराम के 'रावणेश्वर कल्पतरु'[६] में चन्द्रबन्ध नाम से कतिपय चित्रबन्धों की रचना है किन्तु ये चित्र वस्तुतः षडर और चतुरर चक्र के ही हैं। हिन्दी कवियों ने षडर चक्र की रचना में दो वृत्तों की योजना की है पर संस्कृत में केवल एक ही परिधि की रचना होती रही है। चन्द्रबन्ध के चित्र में संस्कृत की तरह ही एक परिधि तथा छह अथवा चार आरों की रचना है। वर्णों के न्यासक्रम के लिए इन चित्रों में हिन्दी अष्टार चक्र की विधि अपनाई गई है, यथा प्रथम केन्द्र से परिधि की ओर आरों में, पुनः परिधि में मण्डलाकार रूप में। भिखारीदास द्वारा नियोजित षडर चन्द्रबन्ध का छन्द निम्न है—

---

१. लहर ६४, पृ० ६४२
लहर ६५, पृ० ६४८
लहर ६५, पृ० ६६८

२. वैराग्य दिनेश, प्रकाश-४, पृ० १८९

३. लहर ६२, पृ० ५९६-९७
लहर ६४, पृ० ६३८
लहर ६५, पृ० ६६१

४. अ० २१, छन्द संख्या ६३-६४

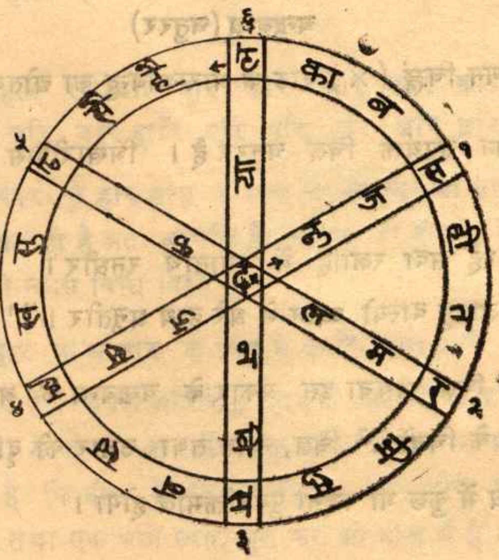
५. पृ० ६६-६७

६. कुसुम ११, पृ० १३

"दनुज सदल मरदन बिसद, जसहृद करन दयाल।
लहै सैन सुख हस्त बस, सुमिरत ही सब काल॥"[१]

चित्र में इस छन्द के न्यास के लिए सर्वप्रथम हम केन्द्र में छन्द के पूर्वार्द्ध का प्रथम वर्ण 'द' लिखते हैं। छन्द के पूर्वार्द्ध में वर्णों की योजना इस प्रकार है कि प्रथम वर्ण से प्रारम्भ कर प्रति तीन वर्णों के उपरान्त 'द' वर्ण की आवृत्ति होती है। इन तीन वर्णों में प्रथम दो तो आरों में न्यस्त होते हैं तथा तीसरा आरा तथा परिधि के मिलनबिन्दु पर। प्रत्येक आरे का आरम्भ केन्द्रस्थ वर्ण 'द' से होता है। इस प्रकार छठवें आरे में विन्यस्त अन्तिम वर्ण 'ल' के साथ छन्द के पूर्वार्द्ध का अन्त हो जाता है। अन्य चक्रों की तरह ही उत्तरार्द्ध का न्यास परिधि में होता है जिसके बीच-बीच में आरों में विन्यस्त वर्ण का पाठ भी होता चलता है। परिधि में विन्यस्त वर्णों के पाठ की दिशा यहाँ दायीं से बायीं ओर है जबकि आरों की संख्या की दिशा बायीं से दायीं ओर। चित्र निम्न है—

चित्र संख्या-३७



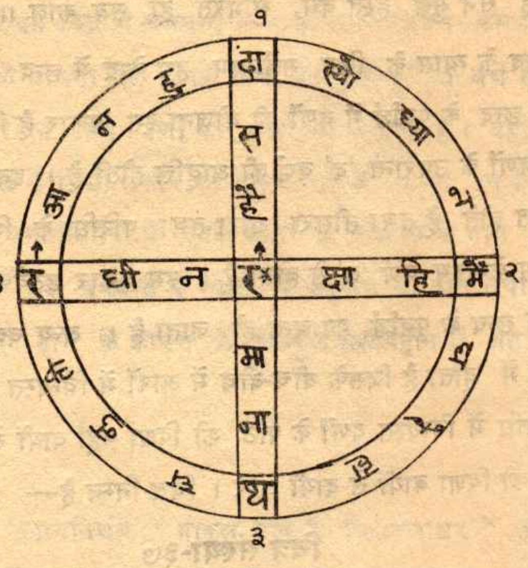
चन्द्रबन्ध (षडर)

गुणन चिह्न (×) पाठ के आरम्भबिन्दु का द्योतक है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि चन्द्रबन्ध का उपर्युक्त चित्र षडर चक्र का ही चित्र है अतः हमने इसका विवेचन चक्र के अन्तर्गत ही किया है।

१. का० नि०, अ० २१, छन्द ६४

चित्र संख्या-३८



चन्द्रबन्ध (चतुरर)

गुणन चिह्न (×) पाठ के आरम्भबिन्दु का द्योतक है।

चन्द्रबन्ध का उपर्युक्त चित्र चतुरर है। भिखारीदास ने इसका निम्न छन्द दिया है—

"रहै सदा रक्षाहि में रमानाथ रनधीर।
आनहु दास्यो ध्यान में धरे हाथ धनुतीर॥"[१]

प्रस्तुत छन्द से बने चित्र अथवा इस प्रकार के चन्द्रबन्ध के अन्य चित्रों में तथा पूर्व विवेचित चतुरर चक्र के चित्रों में[२] चित्र, न्यास तथा उद्धार की दृष्टि से बिलकुल अभिन्नता है। अतः इस सम्बन्ध में कुछ भी कहना पुनरुक्तिमात्र होगा।

हारबन्ध

हारबन्ध का सर्वप्रथम उल्लेख हमें वाग्भट प्रथम के 'वाग्भटालंकार' में मिलता है।[३] इसके पूर्व के किसी आचार्य अथवा कवि में इसकी रचना नहीं मिलती। वाग्भट ने

१. का० नि०, अ० २१, छन्द ६३
२. द्रष्टव्य, चित्र संख्या २४
३. वाग्भटालंकार, परि–१, श्लोक संख्या २४

भी चित्ररचना में स्वीकृत 'ल' तथा 'ड' के अभेद प्रतिपादन से सम्बद्ध उदाहरण में ही इस बन्ध की योजना की है, फलतः उन्होंने इस चित्र की न्यासविधि पर कोई प्रकाश नहीं डाला। आगे चलकर जैन कवियों को यह बन्ध अधिक रुचिकर प्रतीत हुआ और उन्होंने तरह-तरह के हारबन्ध की रचना की। जयतिलक सूरि तथा समयसुन्दर गणि ने क्रमशः 'चतुर्हारावली' तथा 'हारबन्ध स्तोत्र' की रचना की है,[1] जिनमें केवल हारबन्ध के ही श्लोक हैं। अन्य कवियों जैसे जिनप्रभ सूरि, कुलमण्डन सूरि, जयसागर उपाध्याय, उदय विजय, अजित सेन प्रभृति ने भी हारबन्ध के कितने ही भेदों की रचना की है।[2] कुलमण्डन सूरि ने 'पंचजिन हारस्तव' नामक स्तोत्र ग्रन्थ में एक ऐसे हार की रचना की है जिसमें २१ श्लोकों से बनी ४२ मणियाँ हैं। इसी प्रकार अन्य चित्रों में भी एक से अधिक श्लोकों से बनी मणियाँ प्रयुक्त हैं।[3]

हिन्दी में हारबन्ध की रचना सर्वप्रथम हमें केशवदास में मिलती है। किन्तु केशवदास द्वारा रचित हारबन्ध के छन्द में बन्ध की वह उत्कृष्टता नहीं है जो संस्कृत कवियों की रचनाओं में है। इसका एक कारण यह है कि केशवदास कृत दोहे में संस्कृत में प्रचलित षोडशदल कमल के छन्द की रचनाविधि ही अपनाई गई है, जिसमें छन्द का प्रत्येक युग्मवर्ण एक ही होता है तथा विषमवर्ण अलग-अलग। केशवदास कृत दोहा निम्न है—

"हरि हरि हरि ररि दौरि दुरि फिरि फिरि करि करि आरि।
मरि मरि जरि जरि हारि परि परि हरि अरि तरि तारि॥"[4]

प्रस्तुत दोहे को तीन प्रकार से हार बन्ध के चित्र में सजाया जा सकता है। चूँकि दोहे का प्रत्येक युग्मवर्ण एक ही है अतः आवृत्ति के स्थानों को बनाने में सरलता होती है। तीनों प्रकार के चित्रों की न्यास विधि निम्न है—

चित्र (क)[5]—हार के आकार के चित्र में बायीं तथा दायीं ओर क्रमशः तीन-तीन कोष्ठक बनाये गये हैं। इनके अतिरिक्त हार के लटकने वाले निम्न भाग में एक कोष्ठक बनाया गया है। ये कोष्ठक हार में प्रयुक्त मणियों के स्थानापन्न हैं। इन कोष्ठकों का निर्माण इस प्रकार है कि बीच के सूत्र से कटकर इनके तीन भाग हो जाते हैं, दो भाग सूत्र के दोनों ओर तथा एक भाग स्वतः सूत्र का, जो बीच में है। न्यास में सर्वप्रथम

---

१. जे० यू० बी०, आर्ट न० ३०, सितम्बर, १९५५ में संगृहीत प्रो० हीरालाल कपाडिया का निबन्ध
२. उपरिवत्
३. उपरिवत्
प्रस्तुत टिप्पणी संख्या १, २ तथा ३ से सम्बद्ध हारबन्धों के विशेष विवेचन के लिए द्रष्टव्य पंचम अध्याय में इन पुस्तकों का विवेचन
४. कविप्रिया, प्रभाव १६, छन्द संख्या ८३
५. द्रष्टव्य, चित्रसंख्या ३९

बायीं ओर सूत्र के ऊपर के भाग में दोहे के प्रथम वर्ण 'ह' को लिखा गया, पुनः द्वितीय वर्ण 'रि' उसके ठीक नीचे प्रथम कोष्ठक के मध्य में लिखा गया। कोष्ठक के दायें-बायें के दोनों भागों में क्रमशः तृतीय तथा पंचम वर्ण (ह, ह) का विन्यास किया गया, तथा कोष्ठक के नीचे सूत्र में सप्तम वर्ण 'र' को लिखा गया। पुनः उपर्युक्त रीति से ही द्वितीय कोष्ठक में दायें-बायें क्रमशः नवम तथा एकादश वर्ण 'दो' और 'दु' को लिखा गया तथा मध्य में युग्मवर्ण 'रि' का न्यास किया गया। न्यास की इस विधि का अनुकरण करते हुए हम सप्तम कोष्ठक तक आ पहुँचते हैं जिसके मध्य में तो युग्म वर्ण 'रि' का ही न्यास होता है तथा बायें-दायें क्रमशः उनतालीसवाँ तथा एकतालीसवाँ वर्ण 'अ' और 'त' न्यस्त होते हैं। कोष्ठक के ऊपर सूत्र में ४३वाँ वर्ण 'ता' को रखा जाता है तथा हार के शीर्ष में अन्तिम वर्ण 'रि' का न्यास होता है। इस प्रकार बन्ध का चित्र पूर्ण हो जाता है। यहाँ ध्यातव्य है कि प्रथम तीन कोष्ठकों में वर्णों के न्यास का क्रम दायें-बायें था जबकि अन्तिम तीन कोष्ठकों में (हार के दायें भाग में) वह बायें-दायें है। मध्य के कोष्ठक (चतुर्थ) में न्यास का क्रम ऊपर-नीचे है। चित्र निम्न है—

चित्र संख्या-३६



हारबन्ध–१

गुणन चिह्न (×) न्यास के आरम्भबिन्दु का द्योतक है।

इस चित्र में छन्द के उद्धार के लिये सर्वप्रथम हम प्रथम कोष्ठक के ऊपर सूत्र में न्यस्त वर्ण 'ह' का पाठ करेंगे, पुनः कोष्ठक के मध्यस्थित वर्ण 'रि' का, पुनः कोष्ठक के दायें भाग में न्यस्त वर्ण 'ह' का, पुनः मध्यस्थित 'रि' का, पुनः बायें भाग में स्थित 'ह' का तथा अन्त में पुनः मध्यस्थित वर्ण 'रि' का पाठ करेंगे। इस विधि से मध्यस्थित वर्ण 'रि' का पाठ तीन बार होगा तथा हमें छन्द के अंश 'हरि हरि हरि' की प्राप्ति हो जायगी। प्रत्येक कोष्ठक में न्यस्त वर्णों का पाठ यही होगा और उससे हमें छन्द के छह वर्णों की प्राप्ति होगी, जिनमें युग्मवर्णों के स्थान पर 'रि' वर्ण होगा। चतुर्थ कोष्ठक की पाठविधि हार में नीचे की ओर होने के कारण दायें-बायें न होकर ऊपर-नीचे होगी तथा अन्तिम तीन कोष्ठकों की बायें-दायें। मध्यस्थ वर्ण की पाठविधि वही होगी और उसका पाठ तीन बार होगा। इस विधि से पाठ करते हुए हम उपान्त्य वर्ण पर आ पहुँचते हैं जो सूत्र में है। उपान्त्य तथा अन्तिम वर्ण का पाठ सूत्र में नीचे-ऊपर एक सीध में और एक बार ही होगा। इस प्रकार हमें सम्पूर्ण छन्द की प्राप्ति हो जायगी।

चित्र (ख)[1]—प्रस्तुत दोहे से जो दूसरे प्रकार का चित्र बनता है उसमें मणियों के स्थान पर अण्डाकार कोष्ठक होते हैं। हार में जिस प्रकार मणियाँ एक सूत्र में आबद्ध होती हैं उसी प्रकार ये कोष्ठक भी चित्र में एक सूत्र में आबद्ध होकर एक दूसरे से मिले हुए हैं। इस चित्र का न्यास और उद्धार अत्यन्त सरल है। प्रत्येक कोष्ठक में तीन वर्णों का न्यास है, प्रथम वर्ण ऊपर, मध्य में द्वितीय अथवा युग्मवर्ण तथा नीचे तृतीय विषम वर्ण, किन्तु पाठ के समय इन तीनों वर्णों से चार वर्णों का पाठ होता है। प्रस्तुत चित्र की प्रथम मणि में (जो शीर्ष में है), दोहे का प्रथम वर्ण 'ह' ऊपर, मध्य में 'रि' तथा नीचे 'ह' लिखा गया है। पढ़ने के समय हम एक बार ऊपर से नीचे की ओर 'हरि' पढ़ेंगे, पुनः नीचे से ऊपर की ओर 'हरि' पढ़ेंगे। यहाँ 'रि' उभयनिष्ठ है। इसी प्रकार द्वितीय मणि में (हार के बायें भाग में) ऊपर पंचम वर्ण 'ह', मध्य में षष्ठ वर्ण 'रि' तथा नीचे सप्तम वर्ण 'र' का न्यास है तथा पाठ के समय इससे हम एक बार ऊपर से नीचे 'हरि' तथा दूसरी बार नीचे से ऊपर 'ररि' पढ़कर चार वर्ण पढ़ते हैं। इसी विधि से प्रत्येक मणि का ऊपर वाला वर्ण १-५-९-१३……के क्रम का कोई विषम वर्ण होगा, बीच में उसका अगला सम वर्ण

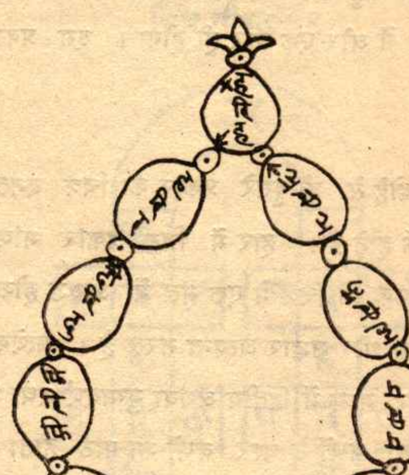
१. द्रष्टव्य, चित्र संख्या ४०

तथा नीचे उसके आगे का विषम वर्ण होगा। पाठ के समय बीच का सम वर्ण आवृत्त होकर दो सम वर्णों के स्थान की पूर्त्ति करेगा। इस प्रकार प्रस्तुत दोहे से बने चित्र में ग्यारह मणियाँ बन जातो हैं, जिनमें विन्यास तो कुल ३३ वर्णों का होता है पर पाठ सम्पूर्ण दोहा यानी ४४ वर्णों का होता है। नीचे के चित्र में यह न्यास देखा जा सकता है।

चित्र संख्या-४०

न्यास का छन्द

"हरि हरि हरि ररि दौरि दुरि फिरि फिरि करि करि आरि।
मरि मरि जरि जरि हारि परि परि हरि अरि तरि तारि॥"



हारबन्ध-२

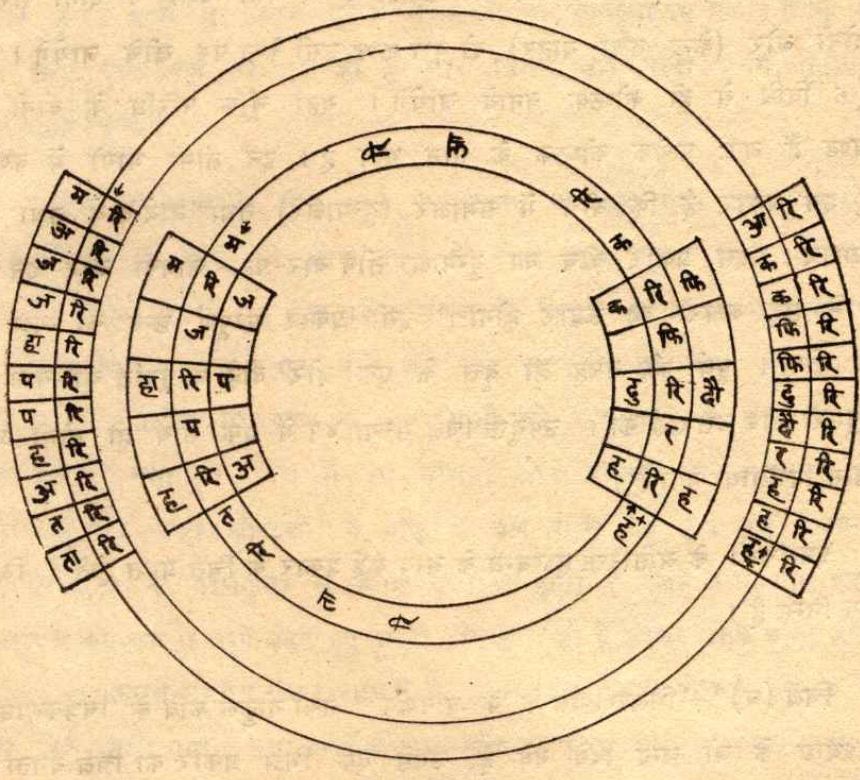
गुणन चिह्न (×) पाठ के आरम्भबिन्दु का द्योतक है

चित्र (ग)—प्रस्तुत दोहे से एक तीसरे प्रकार का चित्र भी बन सकता है। यथा निम्नांकित चित्र—

चित्र संख्या-४१

न्यास का छन्द

"हरि हरि हरि ररि दौरि दुरि फिरि फिरि करि करि आरि ।
मरि मरि जरि जरि हारि परि परि हरि अरि तरि तारि ॥"



हारबन्ध-३

गुणन चिह्न (×) पाठ के आरम्भबिन्दु का द्योतक है ।

इस चित्र के लिये प्रथम हम दो वृत्त एक ही केंद्र पर खींचेंगे । दोनों की परिधि एक दूसरे के निकट ही होगी । पुनः इन वृत्तों के दायें तथा बायें हम दो वृत्त खंड उसी केन्द्र पर खींचेंगे । दोनों ही ओर इन वृत्त खण्डों तथा दोनों परिधियों को मिलाकर ग्यारह-ग्यारह कोष्ठक बनाये जायेंगे । बाह्यवृत्त की परिधि के द्वारा ये सारे कोष्ठक दो भागों में बँट जाते हैं । इन कोष्ठकों में एक ओर तो छन्द के विषम वर्ण लिखे जायेंगे तथा दूसरी ओर युग्माक्षरों का न्यास होगा । पाठ का क्रम यह होगा कि पहले एक कोष्ठक के

दोनों भागों में न्यस्त विषमाक्षर तथा युग्माक्षर को पढ़ें, पुनः द्वितीय कोष्टक के, पुनः तृतीय के और इसी प्रकार सारे कोष्ठकों में न्यस्त अक्षरों को पढ़ लेने से सम्पूर्ण छन्द निःसृत होगा। दोहे के पूर्वार्द्ध का न्यास वृत्त के एक ओर तथा उत्तरार्द्ध का दूसरी ओर होगा।

इस चित्र को छोटा भी बनाया जा सकता है। वैसी दशा में दोनों परिधियों के दोनों ओर (केन्द्र तथा बाहर) दो वृत्त खण्ड उसी केन्द्र पर खींचे जायेंगे। फिर उपर्युक्त विधि से ही कोष्ठक बनाये जायेंगे। यहाँ चूँकि परिधि के दोनों ओर वृत्तखण्ड हैं अतः प्रत्येक कोष्ठक के तीन भाग हैं। इन तीनों भागों में वर्णों का न्यास इस प्रकार है कि बीच में समाक्षर (युग्माक्षर) तथा बायें-दायें तथा ऊपर विषमाक्षर। इस प्रकार बीच का युग्माक्षर तीन बार पढ़ा जायगा और इन चारों वर्णों से छह अक्षरों का उद्धार होगा। इसी प्रकार सम्पूर्ण छन्द का न्यास तथा उद्धार होगा। पूर्व की तरह ही वृत्त के एक ओर दोहे के पूर्वार्द्ध का न्यास होगा तथा दूसरी ओर उत्तरार्द्ध का। उपर्युक्त चित्र संख्या ४१ में एक साथ ही दोनों प्रकार का न्यास दिखलाया गया है।

इन चित्रों के अतिरिक्त हारबन्ध के अन्य कई प्रकार के चित्र प्राप्त होते हैं, जिनका विवेचन निम्न है।

चित्र (घ)[१]—भिखारीदास के 'काव्यनिर्णय'[२] तथा गोकुल कवि के 'चित्रकलाधर'[३] में हारबन्ध के जो छन्द दिये गये हैं, उनसे एक भिन्न प्रकार का चित्र बनता है। 'काव्यनिर्णय' में उल्लिखित हारबन्ध का निम्न दोहा है—

"सुनि सुनि पनु हनुमानु किय, सिय हिय धनि धनि मानि।
धरि करि हरि गति प्रीति अति, सुख रुख दुख दिय भानि॥"

---

१. द्रष्टव्य, चित्र संख्या ४२

२. काव्य निर्णय, अध्याय २१, छन्द संख्या ६८

३. चित्रकलाधर का छन्द निम्न है—

"बसि ससि सिर पर प्यार है, अहि लहि वर गर हार।
बिष दुष सुष नित प्रीति अति, छल बल षल हर मार॥"

—पृ० ८६

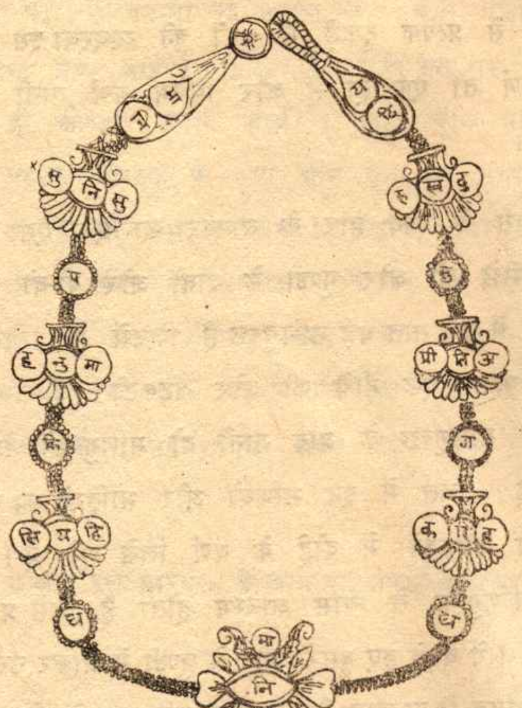
प्रस्तुत दोहे में वर्णों का क्रम इस प्रकार है कि आदि के चार अक्षरों में समाक्षर एक ही वर्ण 'नि' है, प्रथम तथा तृतीय वर्ण भी 'सु' है किन्तु ये दोनों दो वर्ण भी रह सकते हैं। इसी प्रकार दोहे के अन्तिम चार वर्ण एक दूसरे से भिन्न हैं। इन वर्णों के अतिरिक्त जिन वर्णों का प्रयोग दोहे में है उनमें एक निश्चित क्रम की व्यवस्था है। ये अतिरिक्त वर्ण छह-छह वर्णों के छह टुकड़ों में बँटे हैं। इनमें से प्रत्येक टुकड़े में वर्णों की व्यवस्था इस प्रकार है कि द्वितीय, चतुर्थ तथा षष्ठ वर्ण तो एक ही हैं और विषम वर्ण यानी प्रथम, तृतीय तथा पंचम अलग-अलग हैं।

चित्र में न्यास के लिये हार के आकार का एक ऐसा चित्र बनाया गया है जिसमें गले में पीछे की ओर घुण्डी के दोनों ओर दो-दो छोटी मणियाँ हैं। इसके बाद सम्पूर्ण हार में कुल सात बड़े मणिगुच्छ हैं जिनमें से प्रत्येक में तीन-तीन दाने हैं। इन मणियों का क्रम है एक नीचे की ओर लटकती हुई तथा तीन-तीन इसके दोनों ओर। प्रत्येक मणिगुच्छ के बाद यानी दो मणिगुच्छों के बीच में एक-एक मोती पिरोया गया है। चित्र में इन मणियों और मोतियों का स्थान गोल कोष्ठकों ने लिया है और इन्हीं कोष्ठकों में दोहे के वर्ण लिखे गये हैं। सर्व प्रथम बायीं ओर के ऊपर के मणिगुच्छ से न्यास आरम्भ होता है जिसे प्रथम मणि कह सकते हैं, वहीं से क्रम-क्रम से आगे बढ़ते हुए दूसरी ओर से घुण्डी में आकर उसके दोनों ओर वर्णों का न्यास कर न्यास समाप्त किया जाता है। प्रथम मणिगुच्छ में बीच के कोष्ठक में युग्म अक्षर 'नि' लिखा गया है तथा बायीं से दायीं ओर को क्रमशः प्रथम और तृतीय अक्षर 'सु' तथा 'सु' लिखा गया है। इसके बाद नीचे की ओर हम बढ़ते हैं और बीच में स्थित मोती में पंचम अक्षर 'प' का न्यास करते हैं। पुनः द्वितीय मणिगुच्छ में बीच की मणि में 'नु' तथा बायीं-दायीं मणियों में क्रमशः सातवें तथा नौवें अक्षर 'ह' तथा 'मा' का न्यास करते हैं। इसी विधि से अगले मोती में ग्यारहवें अक्षर 'कि' का न्यास होता है तथा तीसरे मणिगुच्छ के मध्य में 'य' का। बायें-दायें १३वाँ और पन्द्रहवाँ वर्ण 'सि' तथा 'हि' न्यस्त होता है। हार के सातों मणिगुच्छों तथा उनके बीच-बीच में स्थित मोतियों में न्यास का यही क्रम अपनाते हुए हम छन्द के सभी ४० वर्णों का न्यास कर लेते हैं। अन्तिम चार वर्ण के लिये कहा जा चुका है कि वे घुण्डी के दोनों ओर दो-दो अकेले मोती के रूप में स्थित हैं। चित्र निम्नलिखित है—

चित्र संख्या-४२

न्यास का छन्द

"सुनि सुनि पनु हनुमानु किय, सिय हिय धनि धनि मानि।
धरि करि हरि गति प्रीति अति, सुख रुख दुख दिय भानि॥"



हारबन्ध-४

गुणन चिह्न (×) पाठ के आरम्भबिन्दु का द्योतक है।

उद्धार के लिए न्यासस्थल से ही हम आरम्भ करेंगे। पहले मणिगुच्छ के बायें दाने में स्थित 'सु' वर्ण पढ़ेंगे, पुनः मध्यस्थित 'नि' वर्ण पढ़ेंगे, पुनः दायें दाने में लिखित 'सु' वर्ण पढ़ेंगे और अन्त में पुनः मध्यस्थित 'नि' वर्ण पढ़कर नीचे की ओर के मोती में लिखा हुआ 'प' वर्ण का पाठ करेंगे। इस 'प' के उपरान्त हम द्वितीय मणिगुच्छ के मध्य में स्थित 'नु' का पाठ करेंगे, पुनः मणिगुच्छ की बायीं ओर के दाने में स्थित वर्ण 'ह' पढ़ेंगे, पुनः मध्यस्थित वर्ण 'नु', पुनः दायीं ओर स्थित 'मा' वर्ण का पाठ होगा तथा पुनः मध्यस्थित वर्ण पढ़ा जायगा। इस प्रकार मध्यस्थित वर्ण 'नु' का पाठ तीन बार होगा—ऊपर के अकेले मोती के

वर्ण के बाद, मणिगुच्छ के बायें दाने में स्थित वर्ण के बाद तथा मणिगुच्छ के दक्षिण भाग में स्थित दाने में न्यस्त वर्ण के बाद। इसी रीति से पुनः अगले मोती में स्थित वर्ण पढ़ा जायगा, तदुपरान्त तीसरे मणिगुच्छ के मध्य में स्थित वर्ण। आगे भी पाठ के पूर्व क्रम को ही अपनाया जायगा और प्रत्येक मणिगुच्छ के मध्य में स्थित वर्ण का पाठ तीन बार तथा ऊपर अथवा नीचे तथा दायें-बायें के वर्णों का पाठ एक-एक बार होगा। अन्त के चार वर्णों का पाठ सीधे होगा तथा चित्र से सम्पूर्ण छन्द की प्राप्ति हो जायगी।

चित्र (ङ)[1]—हारबन्ध के एक अन्य चित्र के अनुकूल एक छन्द की रचना काशिराज ने अपनी 'चित्रचन्द्रिका' में की है। संस्कृत में इस प्रकार के चित्र की रचना जैन कवि समयसुन्दर गणि द्वारा उनकी पुस्तक 'अर्थरत्नावली' में संगृहीत हारबन्ध स्तोत्र में की गई है।[2] 'चित्रचन्द्रिका' के प्रस्तुत छन्द में भी वर्ण का वही क्रम अपनाया गया है जिसे समयसुन्दर गणि ने अपनाया है। 'चित्रचन्द्रिका' का छन्द निम्न है—

"मा सरक्ष मा सुर विलोकि छवि छकि मोहन सुमोहन उपमा न उक्त मा।
भाव रति भा सुर सुवास लसु वास परखि रूप सखि सुकुमार सुख मा॥
भावित सुभाषित हहा तुम हठतु चित वैन चितवै तासूं मान ता समा।
मा रहि रमा बहिन तेरे मन प्यारे प्यारी ते जु प्यारे तेर समासु रक्षमा॥"[3]

प्रस्तुत छन्द से बनने वाले हार में १५ मणिगुच्छों की योजना है। निर्माणविधि के लिये स्वयं कवि काशिराज ने निम्नलिखित संकेत दिये हैं—

"डोरा क्रम सो तीनि पढ़ि गोल क्रम सों चारि।
पाँच वरण मनियो धरो सात पढ़ो निरधारि॥
सूधे प्रथम सुमेर सों मनियाँ बाँचो मित्र।
पुनि सुमेर उलटो पढ़ो मालाबंध सु चित्र॥"[4]

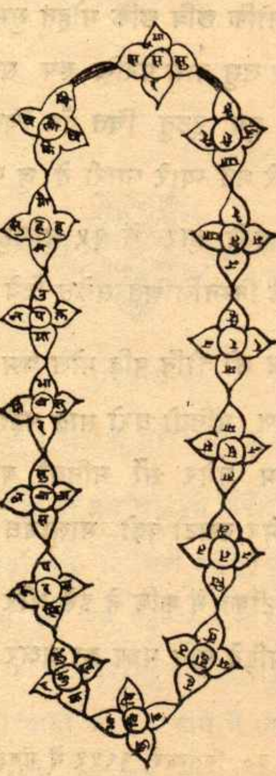
प्रस्तुत उद्धार-क्रम की टीका में कवि ने इसे और अधिक स्पष्ट किया है—"डोरा की रीतिसों तीन अक्षर ठाढ़े पढ़िये पुनि मध्य का अक्षर छोड़ि के दक्षिणावर्त करिके चारि

१. द्रष्टव्य, चित्र संख्या ४३
२. जे० यू० बी०, आर्ट ब० ३०, सितम्बर, १९५५ में संगृहीत प्रो० हीरालाल कपाडिया का निबन्ध, पृ० १२३
३. चि० चं०, प्रकाश—६, छन्द संख्या ५२, पृ० १०५
४. उपरिवत्, छन्द संख्या ५०-५१, पृ० १०१

अक्षर पढ़िये याही क्रमते सुमेरु सों एक-एक मनियाँ पढ़िये पुनि अन्त्य में सुमेर को डोरा उलटो पढ़िये पुनि दक्षिणावर्त सुमेरु के चार अक्षर पढ़िये सो माला बंध चित्र जानिये।"

तात्पर्य यह कि चित्र की १५ मणियों में से एक तो सुमेरु के स्थान में स्थित है तथा अन्य १४ हार में। प्रत्येक मणि में छन्द के पाँच अक्षर लिखे गये हैं किन्तु पाठ का क्रम ऐसा है कि इनसे सात अक्षर निकलते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण छन्द के, प्रारम्भ से ७-७ अक्षरों को लेकर टुकड़े कर दिये गये हैं और मणियों में से प्रत्येक में इन टुकड़ों में से एक विन्यस्त है। केवल सुमेरु की मणि में छन्द का प्रथम तथा अन्तिम दोनों ही टुकड़ा विन्यस्त है किन्तु उनके पाठ की गति परस्पर विपरीत है। अतः प्रथम मणि (सुमेरु) में केवल पाँच अक्षर 'मा', 'स', 'र', 'क्ष', 'सु' लिखे होने पर भी उनसे छन्द के प्रथम सात अक्षरों (मा स र क्ष मा सु र) का उद्धार होता है। उपर्युक्त पाँचों अक्षर मणि में इस प्रकार लिखे गये हैं कि प्रथम तीन अक्षर 'मा', 'स', 'र' तो सूत्र के साथ ही उपर-नीचे हैं, तथा 'क्ष' और 'सु' मध्य अक्षर 'स' के बायें-दायें लिखे गये हैं। इस प्रकार मणि में न्यस्त होकर ये पाँचों अक्षर योग का चिह्न (+) बनाते हैं। नीचे के चित्र में इस न्यास को देखा जा सकता है।

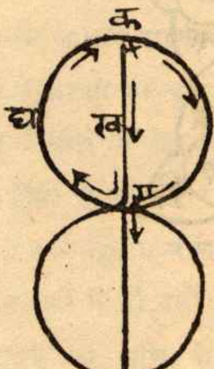
चित्र संख्या—४३

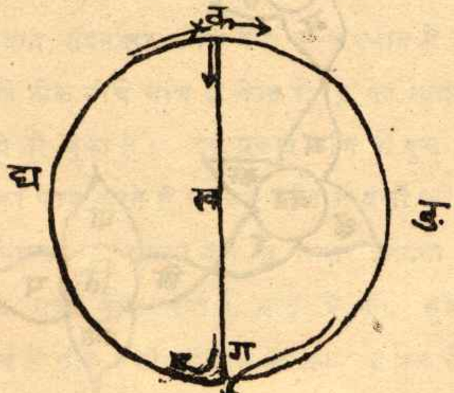


हारबन्ध—५

गुणन चिह्न (×) पाठ के आरम्भ का द्योतक है।

उद्धार के लिये जैसा कि काशिराज ने उपर्युक्त पंक्तियों में संकेत किया है पहले हम सूत्र के सहारे लिखे गये तीनों वर्णों का ऊपर से नीचे की ओर पाठ करेंगे, पुनः निचले अथवा तीसरे वर्ण से बायीं ओर मुड़कर दक्षिणावर्त क्रम से मध्य के वर्ण को छोड़कर अन्य सभी वर्णों को पढ़ेंगे। पाठ के इस क्रम में सूत्रक्रम में स्थित ऊपर तथा नीचे के वर्ण 'मा' तथा 'र' की आवृत्ति होगी। इस प्रकार पाँच वर्णों के न्यास से सात वर्णों का पाठ होगा। इसी विधि से प्रत्येक मणि में न्यस्त वर्णों का पाठ करते हुए हम पुनः सुमेरु पर पहुँचेंगे। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है छन्द के अन्तिम टुकड़े का न्यास भी सुमेरु में न्यस्त वर्णों में ही है। यहाँ हम सूत्रक्रम से वर्ण को ऊपर से नीचे के बदले नीचे से ऊपर को पढ़ेंगे और ऊपर के वर्ण 'मा' से पुनः दक्षिणावर्त के क्रम में मुड़कर पुनः 'मा' पर आकर छन्द समाप्त करेंगे। पाठविधि का संकेतात्मक रेखाचित्र निम्नरूप में होगा—



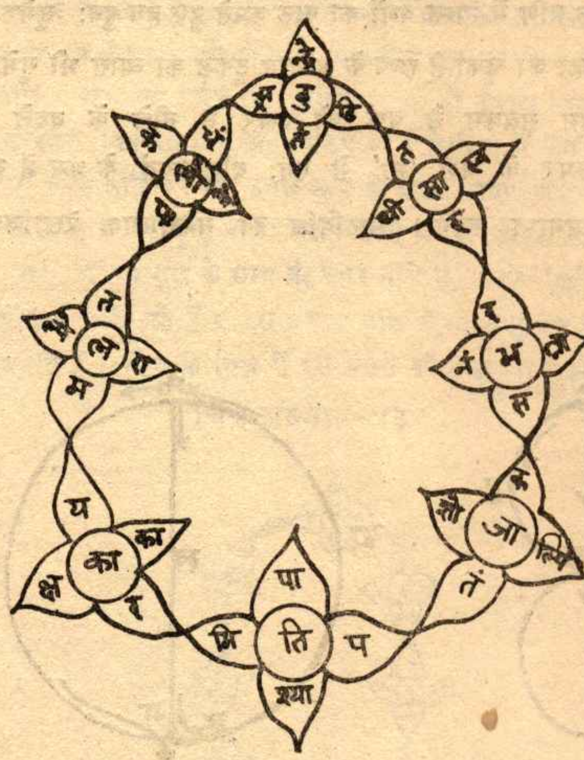


यदि हम प्रत्येक मणि में न्यस्त पाँचों वर्णों को क, ख, ग, घ तथा ङ मान लें तो उपर्युक्त रेखाचित्र के अनुसार क, ख, ग एक सीध में होगा तथा घ और ङ क्रमशः ख के बायें ओर दायें। पाठ की गति क से सीधे ख होती हुई ग तक फिर तीर की दिशा में मुड़कर घ फिर क से होती हुई ङ और अन्त में ग पर आकर रुक जायगी। यही क्रम प्रत्येक मणि में न्यस्त वर्णों का होगा।

चित्र (च)—वागभट् प्रथम के 'वाग्भटालंकार' में उल्लिखित श्लोक से हार के चित्र का जो न्यास होता है उसकी विधि उपर्युक्त सभी विधियों से भिन्न है। चित्र निम्नलिखित है—

चित्र संख्या-४४
न्यास का श्लोक

"चन्द्रे डितं चटुलित स्वरधीतसार—
रत्नासनं रभसकल्पित शोकजातम् ।
पश्यामि पाप तिमि रक्षय कारकाय-
मल्पेतराम लतपः कचलोपलोचम् ॥"



हारबन्ध—६ (वाग्भट)

गुणन चिह्न (×) पाठ के आरम्भ का द्योतक है ।

इस विधि के आधार पर पदुमन दास ने 'काव्यमंजरी' में हारबन्ध का जो छन्द दिया है, वह निम्न है—

"इंदु हलधर देव वाजी हर देह जंभ, भेदी सेज हनु जंघु से जनम जाहि की ।
क्वार घन नाकी रिषि हीर क्षीर कै पियूषि, थरहर थिरामाहि वारिवर साहिकी ॥
दधिज है कै धौआ छेदहि कै धौम हि भरि, पूरन हिम कपूर सुत छवि ताहिकी ।
वासुकी तारागण सबही जीति जग रही, वरण मधहि कै धौ कीरति हि वाहिकी ॥"[1]

१. का० मं, पृ० १२४, छन्द संख्या १८

प्रस्तुत छन्द से बने चित्र में दस मणियाँ हैं। प्रत्येक मणि में ९ वर्णों का न्यास किया जाता है जो पाठक्रम में ग्यारह हो जाते हैं, कारण उनमें से दो की पुनरावृत्ति होती है। सुमेरु में एक ऐसी मणि है जिसमें केवल पाँच वर्णों का न्यास होता है तथा इनमें से किसी वर्ण की आवृत्ति नहीं होती। सुमेरुवाले सन्धिस्थल को छोड़कर मणियों के अन्य सभी सन्धिस्थलों पर एक-एक स्वतन्त्र वर्ण का न्यास है जिन्हें मोती के रूप में देखा जा सकता है। न्यास की विधि निम्न है—

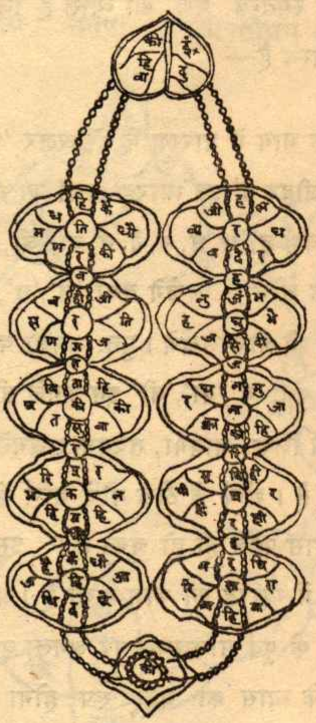
सर्वप्रथम सुमेरु के एक भाग में प्रारम्भ के दो अक्षर 'इंदु' न्यस्त होंगे। इसके बाद प्रथम मणि में 'हलधर देव वाजीहर दे' इन ग्यारह वर्णों का न्यास इस प्रकार किया जायगा कि लिखे तो जायेंगे केवल ९ वर्ण ह, ल, ध, र, दे, व, वा, जी, र, पर पाठ में सभी आयेंगे। इन ९ वर्णों में 'ह' को मणि के शीर्ष में लिखेंगे तथा 'ल', 'ध', 'र', इन तीन अगले वर्णों को दायें किनारे पर ऊपर से नीचे की ओर लिखेंगे। पुनः अगला वर्ण 'दे', 'र' की बायीं ओर 'ह' के ठीक नीचे लिखा जायगा। पुनः 'व', 'वा', 'जी' इन अगले तीन वर्णों को नीचे से ऊपर की दिशा में मणि के वाम पार्श्व में लिखा जायगा, तदनन्तर अगले वर्ण 'ह' के स्थान में शीर्ष में प्रथम वर्ण लिखा ही जा चुका है। शीर्ष के ठीक नीचे मणि के केन्द्र में 'र' का न्यास करेंगे तथा केन्द्र के नीचे 'दे' का न्यास पहले ही हो चुका है। इस प्रकार मणि में कुल ९ वर्णों का न्यास होता है जो उद्धार में ग्यारह का काम करते हैं। प्रथम मणि में वर्णों का न्यास कर लेने के बाद द्वितीय मणि के पूर्व सन्धिस्थल पर अगला वर्ण 'ह' लिखा जायगा। हार की अन्य मणियों में भी वर्णों के न्यास का यही रूप होगा। अन्त में पुनः सुमेरु पर आकर सुमेरु की मणि के वाम पार्श्व में तीन वर्णों को नीचे से ऊपर के क्रम में लिखा जायगा तथा चित्र में वर्णों का न्यास पूर्ण हो जायगा। प्रस्तुत चित्र में इसे देखा जा सकता है—

चित्र संख्या-४५

न्यास का छन्द

"इन्दु हलधर देव वाजीहर देह जंभ,
भेदी सेज हनु जंघु से जनम जाहि की।
क्वार घन नाकी रिषि हीरक्षीर कै पियूषि
थरहर थिरामाहि वारिवर साहिकी॥

दधिज है कै धौआ छेदहि कै धौमहि भरि
पूरन हिम कपूर सुत छवि ताहि की।
वासुकी तारागण सबही जीति जग रही,
वरण मधहि कै धौ कीरति हि वाहि की।"

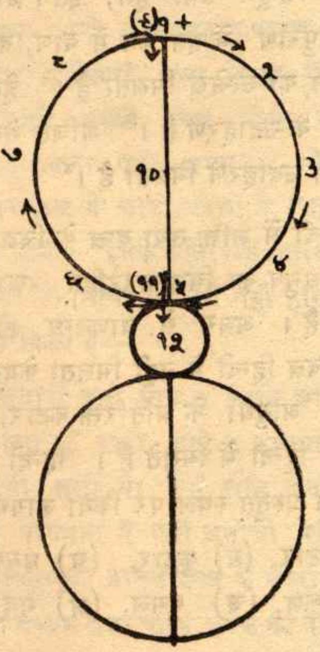


हारबन्ध-७

गुणन चिह्न (×) पाठ के आरम्भ का द्योतक है।

चित्र से छन्द के उद्धार के लिये प्रथम सुमेरु में स्थित 'इंदु' से प्रारम्भ करेंगे, पुनः प्रथम मणि के शीर्ष में न्यस्त वर्ण 'ह' का पाठ करेंगे। तदनन्तर दक्षिणावर्त क्रम से मणि के चारों किनारों पर न्यस्त वर्ण 'ल', 'ध', 'र', 'दे', 'व', 'वा', 'जी' का पाठ करते हुए पुनः शीर्ष के 'ह' पर आ जायेंगे। अब शीर्ष के 'ह' से पुनः मणि के बीचोबीच सूत्र क्रम से नीचे उतर जायेंगे तथा 'र' और 'दे' का पाठ करते हुए मणि के सन्धिस्थल पर सूत्रस्थित वर्ण 'ह' को पढ़ेंगे। तदनन्तर पुनः हम अगली मणि के शीर्ष में न्यस्त वर्ण पर पहुँचेंगे और उपर्युक्त क्रम से ही पुनः दक्षिणावर्त क्रम का सहारा लेकर द्वितीय मणि में न्यस्त वर्ण भी पढ़ेंगे। यही क्रम हार की अन्तिम मणि तक चलेगा और अन्त में सुमेरु के वाम पार्श्व में स्थित तीनों वर्णों का पाठ नीचे से ऊपर की दिशा में करते हुए सम्पूर्ण छन्द

की प्राप्ति हो जायगी । प्रत्येक मणि में न्यस्त वर्णों के पाठक्रम का रेखाचित्र निम्न होगा—



प्रस्तुत चित्र के ग्यारहों वर्णों का न्यासस्थान उनकी क्रम संख्या देकर दिखलाया गया है तथा तीर के सहारे उनके न्यास की दिशा भी स्पष्ट कर दी गई है। हारबन्ध में छन्द की प्रस्तुत न्यासविधि को वाग्भट (१) ने अपने 'वाग्भटालंकार' में अपनाया है। यद्यपि चित्र के न्यास के सम्बन्ध में उन्होंने स्वयं कुछ कहा नहीं है किन्तु छन्द की रचना इसी क्रम में हुई है। अन्तर केवल यह है कि वहाँ सुमेरु की व्यवस्था नहीं है और न दो मणियों के सन्धिस्थल पर ही कोई वर्ण रखा गया है, केवल आठ मणियाँ हैं और उन्हीं में पाँच-पाँच वर्णों के न्यास की व्यवस्था है जिनसे सात वर्णों का पाठ होता है।[1] असल बात यह है कि न्यास तथा उद्धार का क्रम ठीक वही है जिसका विवेचन हमने ऊपर के छन्द के सम्बन्ध में किया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि पदुमन दास ने वाग्भट का आधार अपनी रचना में लिया है।

आयुधबन्ध

संस्कृत में रचे जाने वाले बन्धचित्रों में विभिन्न आयुध के आकार के चित्रबन्धों की प्रचुरता है। 'काव्यालंकार' (रुद्रट) तथा 'अग्निपुराण' जैसे प्राचीन ग्रन्थों में जितने

१. द्रष्टव्य, चित्र संख्या ४४

बन्धों का विवेचन तथा उल्लेख है, उनमें अधिक संख्या में आयुध ही हैं। रुद्रट ने खड्ग मुसल, धनुष, शर, शक्ति, त्रिशूल तथा हल, इतने आयुधों के आकर के चित्रबन्धों के उदाहरण दिये हैं।[1] 'अग्निपुराण' में इस क्रम में वाण, वाणासन (धनुष), खड्ग, मुद्गर, शक्ति, वज्र, मुशल तथा अंकुश का उल्लेख मिलता है।[2] हेमचन्द्र के 'काव्यानुशासन' में भी इन्हीं आयुधों के आकारचित्रों के उदाहरण हैं।[3] अजित सेन के 'अलंकारचिन्तामणि' में इनके अतिरिक्त परशु बन्ध का उदाहरण मिलता है।[4]

इन आयुधों में से हिन्दी में शक्ति तथा वज्र के चित्र नहीं मिलते। रुद्रट ने शर का चित्र अलग दिया है तथा धनुष का चित्र शररहित रखा है। हिन्दी में धनुष का चित्र सदा शरयुक्त ही मिलता है। अलग से वाणबन्ध की रचना हिन्दी में नहीं हुई है। इसी प्रकार सम्पूर्ण हल का चित्र हिन्दी में नहीं मिलता केवल हल की कुण्डी के रूप में ही रचना की गई है। इन आयुधों के अतिरिक्त कटार, ढाल (सिपर) तथा आग्नेयास्त्र अथवा बन्दूक के आकारचित्र हिन्दी में मिलते हैं। हिन्दी में मिलने वाले आयुधाकार चित्र निम्न हैं जिनका विवेचन प्रस्तुत स्थल पर किया जायगा—

(क) खड्ग, (ख) कटार, (ग) कुठार, (घ) धनुष-वाण, (ङ) त्रिशूल,
(च) ढाल, (छ) अंकुश, (ज) मुसल, (झ) मुद्गर तथा (ञ) बन्दूक।

(क) खड्गबन्ध

खड्गबन्ध संस्कृत का ही नहीं वरन् हिन्दी का भी एक अति प्रिय तथा प्रचलित बन्ध रहा है। संस्कृत तथा हिन्दी के अधिकांश कवियों तथा आचार्यों ने खड्गबन्ध का उदाहरण अवश्य दिया है। संस्कृत में खड्गबन्ध की रचना दो श्लोकों में होती रही है किन्तु हिन्दी में दो छन्दों के अतिरिक्त कतिपय कवियों ने एक छन्द में भी इसकी रचना की है। फलतः हिन्दी में खड्गबन्ध के दो प्रकार के चित्र मिलते हैं। इनकी न्यासविधियों में भी पर्याप्त अन्तर है। दोनों प्रकार के चित्रों का विवेचन निम्न है।

कविवर काशिराज ने अपनी 'चित्रचन्द्रिका' में,[5] पदुमन दास ने 'काव्यमंजरी' में[6] तथा राजा महिरामन सिंह ने 'प्रबीनसागर' में[7] खड्गबन्ध की जो रचना की है उनकी

---

१. काव्यालंकार, अध्याय ५, श्लोक ६ से १३ तक
२. अ० ३४३, श्लोक ६४, यथा—
"वाण वाणासन व्योम खड्ग मुद्गर शक्तयः।
द्वि चतुर्थ त्रिशृंगाटा दम्भोलि मुशलांकुशाः॥"
३. अ० ५, सू० ४ की वृत्ति तथा टीका
४. अ० चि०, परि-२
५. चि० चं०, प्रकाश-६, छन्द संख्या ४९, पृ० १०२
६. का० मं०, पृ० ११४, छन्द सं० ९-१०
७. प्र० सा०, लहर ६५, पृ० ६७०, चित्र संख्या ९७

न्यासविधि संस्कृत के अनुकूल है। पदुमनदास ने संस्कृत के समान ही दो दोहों का न्यास इस चित्र में किया है, किन्तु काशिराज ने दो छोटे छन्दों के स्थान में एक ही सवैया रखा है। खड्गबन्ध का काशिराज ने निम्न लक्षण दिया है—

"आदि अंत्य चारो चरण तृतीय चरण के बीच।
बारह पाँच उनीसवाँ अंत्य चरण में सीच॥
एक वर्ण एते रच्यौ चित्र रीति पहचानि।
कील डार कबजा पढ़ो खड्गबंध सो जानि॥"[1]

प्रस्तुत लक्षण के अनुसार छन्द के चारों चरणों के (जहाँ दो छन्द होंगे वहाँ पंक्ति) प्रथम तथा अन्तिम वर्ण एक ही होंगे। इनके अतिरिक्त तृतीय चरण का मध्यम तथा चतुर्थ चरण का पाँचवाँ, बारहवाँ तथा उन्नीसवाँ वर्ण भी वही होगा। उदाहरणस्वरूप काशिराज ने चित्र में निम्न छन्द का न्यास किया है—

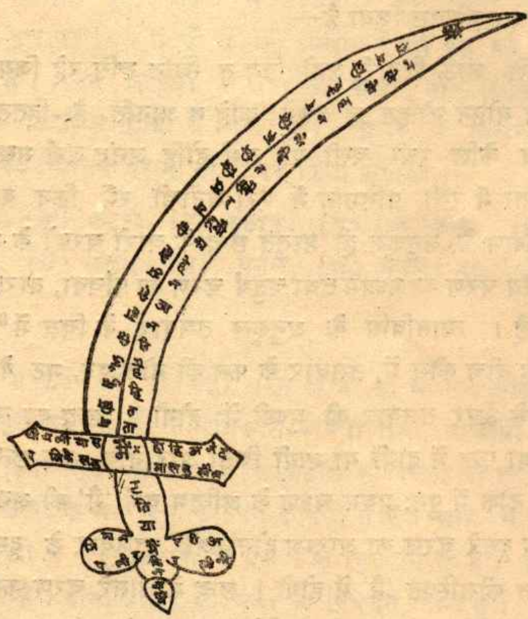
"मैं बलि जाऊँ तिहारी अहो तिय तू जिनि रूसि रहे जियरा मैं।
मैंन सो मोहन मोहित ह्वै रह्यो काहे न आनति है हितता मैं॥
मैं सुख केलि रची चली या समै होंहि अनंद लखै सुखमा मैं।
मैंटति या मैं रली पगिमान मैं एरी अनोखी रमैं किन वा मैं॥"[2]

उपर्युक्त लक्षण के अनुकूल ही प्रस्तुत छन्द के चारों चरणों के आद्यन्त वर्ण 'मैं' है, इसके अतिरिक्त तृतीय चरण का मध्यम तथा चतुर्थ चरण का पाँचवा, बारहवाँ तथा उन्नीसवाँ वर्ण भी 'मैं' ही है। न्यासविधि के अनुकूल तलवार के चित्र में[3] इस 'मैं' वर्ण की अवस्थिति कबजा के बीच कील में, तलवार के फल की नोक पर, मूठ के ऊपर की कटोरी के बीच तथा सबसे ऊपर तलवार की घुण्डी में होगी। छन्द का न्यास कीलस्थित 'मैं' से आरम्भ होगा तथा फल में दायीं या बायीं किसी ओर नोक तक छन्द के पहले चरण का न्यास होगा। नोक में पुनः प्रथम चरण के अन्तिम वर्ण 'मैं' की अवस्थिति होगी। इसी 'मैं' से पुनः छन्द के दूसरे चरण का आरम्भ होगा और तलवार के दूसरे किनारे से होते हुए उसकी समाप्ति कीलस्थित 'मैं' में होगी। छन्द के तीसरे चरण का आरम्भ पुनः कील से होगा और कबजा के एक ओर उसके पूर्वार्द्ध का न्यास होगा। उत्तरार्द्ध का न्यास कबजा की दूसरी तरफ होगा। चौथे चरण का आरम्भ पुनः कीलस्थित 'मैं' से होगा और मूठ की ओर उसकी गति होगी। मूठ में 'मैं' के आगे के तीन वर्ण होंगे। पाँचवाँ वर्ण 'मैं' कटोरी के मध्य में होगा। कटोरी के दोनों ओर आगे के छह वर्ण होंगे जिनकी समाप्ति क्रमशः कटोरी के मध्य के इस 'मैं' में होगी। पुनः छन्द के बचे हुए अंश की गति घुण्डी की ओर होगी। घुण्डी में छन्द के अन्तिम वर्ण 'मैं' की अवस्थिति है ही, कटोरी और घुण्डी के बीच के भाग में 'कि', 'न', 'वा', इन तीन उपान्त्य वर्णों का न्यास होगा और इस प्रकार चित्र में

१. चि० चं०, प्रकाश ६, छन्द संख्या ४७-४८, पृ० १०१
२. उपरिवत्, छन्द संख्या ४९, पृ० १०२
३. द्रष्टव्य, चित्र संख्या ४६

प्रस्तुत छन्द का न्यास पूर्ण हो जायगा । न्यास के ही अनुकूल उद्धार होगा । कीलस्थ 'मैं' से आरम्भ कर तलवार की नोक तक जाकर पुन: दूसरे किनारे से होते हुए कील तक लौटने में छन्द के दो चरणों का उद्धार हो जायगा । पुन: कील से आरम्भ कर कबजा के दोनों ओर न्यस्त वर्णों को क्रमश: कील के साथ मिलाकर पढ़ने से तृतीय चरण की प्राप्ति होगी । चतुर्थ चरण के लिये कीलस्थ वर्ण से आरम्भ कर घुण्डी की ओर न्यस्त वर्णों को पढ़ते हुए कटोरी के दोनों ओर के वर्णों को कटोरी के मध्यस्थित वर्ण 'मैं' के साथ मिलाकर पुन: घुण्डी तक पहुँचना होगा । निम्नलिखित चित्र इस न्यास का उदाहरण है—

चित्र संख्या-४६



खड्गबन्ध-१

गुणन चिह्न (×) पाठ के आरम्भ का द्योतक है ।

न्यास का छन्द

"मैं बलि जाऊँ तिहारी अहो तिय,
तूजिनि रूसि रहे जियरा मैं ।
मैं न सो मोहन मोहित ह्वै रह्यो,

काहे न आनति है ह्वितता मैं ॥
मैं सुख केलि रची चली या समै,
होंहि अनंद लखै सुखमा मैं।
मैंटति या मैं रली पगि मान मैं,
एरि अनोखी रमैं किन वा मैं ॥"

एकछन्द-युक्त खड्गबन्ध का निम्न दोहा भिखारीदास कृत है—

"हरि मुरि मुरि जाती उमगि लगि लगि नैन कृपान।
ताते कहिये रावरो हियो पखान समान ॥"[1]

प्रस्तुत दोहे में दूसरा, चौथा और छठा वर्ण एक ही 'रि' है। पुनः ग्यारहवाँ, तथा तेरहवाँ पन्द्रहवाँ वर्ण एक ही 'गि' है। पूर्व विवेचित खड्गबन्ध में हमने देखा है कि छन्द का न्यास पहले कील से आरम्भ होता है तथा फल में जाता है और बाद में वह कील से घुण्डी की ओर आता है। प्रस्तुत चित्र में[2] न्यास का आरम्भ घुण्डी से ही होता है। सर्वप्रथम घुण्डी में छन्द के प्रथम वर्ण 'ह' को लिखते हैं पुनः द्वितीय वर्ण 'रि' को कटोरी में लिखा जाता है। तीसरे तथा पाँचवें वर्ण को क्रमशः कटोरी के दोनों ओर लिखते हैं। सातवें से लेकर दसवें वर्णों को कटोरी तथा कील के बीच के भाग में लिखा जायगा। ग्यारहवाँ वर्ण 'गि' का स्थान कील में है तथा बारहवाँ और चौदहवाँ कबजा के दोनों ओर स्थित हैं। सोलहवें वर्ण से लेकर छन्द के अन्त तक के वर्ण कील से लेकर फल में नोक तक न्यस्त होते हैं।

उद्धार के लिये हम घुण्डी से आरम्भ करते हैं और कटोरी के मध्य का वर्ण पढ़ते हैं, पुनः कटोरी की बायीं ओर का वर्ण पढ़ते हैं, पुनः कटोरी के मध्य का, पुनः दायी ओर का तथा पुनः मध्य का वर्ण पढ़ते हैं। तदनन्तर कटोरी और कबजे की कील के बीच के भाग में न्यस्त वर्णों को पढ़ते हुए कीलस्थ वर्ण 'गि' का पाठ करते हैं, पुनः कबजे के वाम भाग में स्थित वर्ण पढ़ते हैं, पुनः कीलस्थ वर्ण, पुनः दायीं ओर के वर्ण को और पुनः कीलस्थ वर्ण

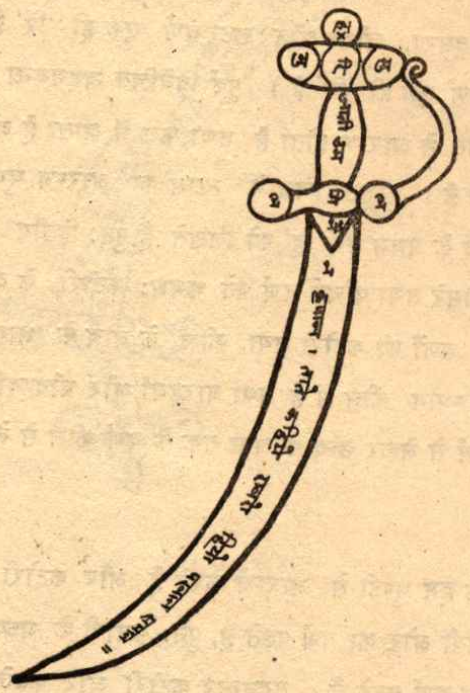
१. काव्यनिर्णय, अ० २१, छन्द संख्या ५९
२. द्रष्टव्य चित्र संख्या ४७

को। इसके बाद हम फल की ओर बढ़ते हैं और फल की नोक तक के सभी वर्णों को पढ़कर छन्द पूरा कर लेते हैं। हिन्दी में खड्गबन्ध की उपर्युक्त दोनों प्रकार की न्यासविधियाँ मिलती हैं। एक में संस्कृत का अनुकरण है, केवल छन्द के आग्रह से विन्यस्त वर्णों की संख्या में अन्तर आता है, दूसरी न्यासविधि हिन्दी की अपनी है और अधिकांश हिन्दी कवियों ने इसे ही अपनाया है।[1] रीतिकाल के आदिकवि चिन्तामणि ने भी 'कवि-कुल-कल्पतरु' में इसी विधि के अनुकूल खड्गबन्ध के लिये केवल एक ही छन्द की रचना की है।[2]

चित्र संख्या-४७

न्यास का छन्द

"हरि मुरि मुरि जाती उमगि लगि लगि नैन कृपान।
ताते कहिये रावरो हियो पखान समान॥"



खड्गबन्ध-२

गुणन चिह्न (x) पाठ के आरम्भ का द्योतक है।

१—२

बिहारीलाल भट्ट, साहित्यसागर, भाग-२, द्वादशतरंग, पृ० ५१८

साधोगिरि गोस्वामी, काव्यशिक्षक ग्रन्थ, पृ० ८२

(ख) कटार बन्ध

कटारबन्ध का कोई उदाहरण संस्कृत में नहीं मिलता। 'अग्निपुराण' में 'असिपुत्रिका' का उल्लेख अवश्य मिलता है,[१] किन्तु 'असिपुत्रिका' से अग्निपुराणकार का क्या तात्पर्य है स्पष्ट नहीं होता। असिपुत्रिका की कोई न्यासविधि भी 'अग्निपुराण' में नहीं मिलती। संस्कृत में अन्यत्र इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। हिन्दी में भी केवल 'प्रबीनसागर' तथा 'चित्रकलाधर' में ही कटारबन्ध के छन्द तथा चित्र मिलते हैं। इन दोनों चित्रों की न्यासविधियों में भी थोड़ा अन्तर है, यद्यपि यह अन्तर छन्दों के वैभिन्नय के कारण अधिक है। न्यास की परिपाटी लगभग समान है। 'चित्रकलाधर' में कटारबन्ध का निम्न छन्द कवि ने दिया है—

"सोहत चमक विसाल पुंज पानिप छविछावत।
अरि लषि भाविकसाल पाँचमुख चष चौधावत॥
धावत रन नहिं सत्रु कटारि लहि डर पावत।
छावत जस चहुँ ओर भूप कर में भलभावत॥"[२]

चित्र म्यानबद्ध कटार का है।[३] कटार के ऊपर का आधा भाग चौपहल है तथा नीचे का आधा त्रिकोण। वर्णों का न्यास कटार के दोनों ओर किनारे-किनारे किया गया है तथा ऊपर और मध्य के भाग में दोनों किनारों को मिलाया भी गया है। इस प्रकार कटार के ऊपर का भाग न्यास के द्वारा एक चतुष्कोण की सृष्टि करता है जिसके चारों ओर वर्ण हैं, तथा नीचे के भाग में वर्णों का न्यास एक त्रिकोण के रूप में है। त्रिकोण की ऊपरी भुजा चतुष्कोण की भी एक भुजा है, क्योंकि यही भुजा कटार को दो भागों में बाँटती है। विवेचन की सुविधा के लिये चतुष्कोण की भुजा को हम क्रमशः $क_१$, $क_२$ $क_3$ तथा $क_४$ कहेंगे तथा त्रिकोण की भुजाओं को क्रमशः क२, $क_५$ तथा $क_६$। एक भुजा त्रिकोण और चतुष्कोण दोनों में उभयनिष्ठ है और उसी भुजा का नाम यहाँ $क_२$ रखा गया है।

द्विवजगंग, महेश्वरभूषण, उल्लास—५, पृ० ११०
लछिराम, रावणेश्वर कल्पतरु, कुसुम—११, पृ० ७
रसिकबिहारी, काव्यसुधाकर, कला—१३, पृ० ३८, छन्द संख्या ९
गोकुल कवि, अष्टयाम प्रकाश, पृ० १९३
गोकुल कवि, चित्रकलाधर, पृ० ५८
कुलपतिमिश्र, रसरहस्य, पृ० ७७
राजामहिरामन सिंह, प्रबीनसागर, लहर ६५, पृ० ६५१
शम्भुनाथ सिंह, काव्यनिधि अथवा शम्भुप्रकाश, पत्र ९५ (हस्तलिखित)
चिन्तामणि, कविकुलकल्पतरु, प्रकरण—२, पृ० २०

१. अ० पु०, अ० ३४३, श्लोक ६५ यथा—
"पदं रथस्य नागस्य पुष्करिण्यसिपुत्रिका।"

२. चित्रकलाधर, पृ० ५९, चि० सं० ७

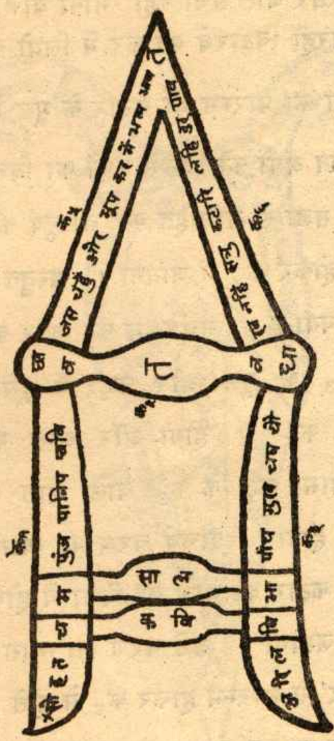
३. चित्र संख्या ४८

न्यास के लिये हम सर्वप्रथम $क_1$ के सिरे से प्रारम्भ करेंगे और छन्द के प्रथम तीन वर्णों (सोहत) का न्यास करेंगे। इसके आगे $क_1$ में ही $क_4$ से कटने वाले भाग में अगले दो वर्णों 'च', 'म', को लिखेंगे। इसके बाद $क_4$ में निचली पंक्ति में 'क', 'वि', तथा इनके ठीक ऊपर 'सा', 'ल', का न्यास होगा। यहाँ तक छन्द की प्रथम पंक्ति के पूर्वार्द्ध 'सोहत चमक विसाल' का न्यास हो जाता है। उत्तरार्द्ध का न्यास $क_1$ के बचे हुए भाग में होगा, केवल अन्तिम शब्द 'छावत' का न्यास $क_2$ में इस प्रकार होगा कि 'त' तो मध्य में रहेगा और 'छा', 'व', $क_1$ की ओर वाले भाग में। द्वितीय पंक्ति का न्यास ठीक इसी विधि से $क_3$ में होगा—प्रथम तीन वर्ण 'अ', 'रि', 'ल', का न्यास $क_3$ के आदि में, पुनः अगले दो वर्ण 'वि', 'भा', $क_4$ और $क_3$ के मिलनस्थल पर लिखे जायेंगे। अगले चार वर्णों के लिये $क_4$ में विन्यस्त वर्णों की पुनरावृत्ति होगी तथा पंक्ति के शेष भाग का न्यास $क_3$ के शेष अंश में होगा। केवल प्रथम पंक्ति की तरह ही अन्तिम शब्द का न्यास $क_2$ में होगा जिसका अन्तिम वर्ण 'त', $क_2$ के मध्य में पहले ही लिखा जा चुका है। 'धा', 'व', का न्यास $क_2$ में ही पर $क_3$ की ओर वाले भाग में होगा।

छन्द की अन्तिम दो पंक्तियों का न्यास कटार के त्रिकोण वाले भाग, यानी $क_2$, $क_5$ तथा $क_6$ में होगा। सर्वप्रथम $क_2$ में लिखे 'धावत' शब्द की आवृत्ति करते हुए तृतीय पंक्ति के शेष भाग का न्यास $क_6$ में नोक की दिशा में करेंगे। नोक पर अन्तिम अक्षर 'त' लिखा जायगा। चौथी पंक्ति के न्यास में भी यही विधि अपनाई जायगी। 'छावत' शब्द की आवृत्ति $क_2$ में करते हुए शेष अंश का न्यास $क_5$ में नोक की ओर होगा जिसका अन्त नोक पर लिखे हुए 'त' में होगा। इस प्रकार छन्द का न्यास पूर्ण होगा।

उद्धार के लिये हम सर्वप्रथम $क_1$ के प्रारम्भ से आरम्भ करेंगे तथा 'सोहत चम' का पाठ करेंगे। पुनः $क_4$ में स्थित निचली पंक्ति, पुनः ऊपरी पंक्ति के वर्णों का पाठ करते हुए छन्द की प्रथम पंक्ति के पूर्वार्द्ध को प्राप्त कर लेंगे। उत्तरार्द्ध के लिये $क_1$ में विन्यस्त वर्ण का पाठ 'पुंज' से आरम्भ कर करेंगे तथा समाप्त $क_2$ में स्थित 'छावत' में करेंगे। छन्द की दूसरी पंक्ति का पाठ भी इसी विधि से $क_3$, $क_4$, $क_3$ तथा $क_2$ में करेंगे। तीसरी पंक्ति का पाठ $क_2$ में विन्यस्त 'धावत' से आरम्भ करेंगे तथा $क_6$ में विन्यस्त वर्णों का पाठ करते हुए कटार की नोक पर के वर्ण 'त' पर समाप्त करेंगे। इसी विधि से अन्तिम पंक्ति का पाठ भी $क_2$ में विन्यस्त 'छावत' से आरम्भ करेंगे और $क_5$ में विन्यस्त वर्णों का पाठ कर अन्तिम 'त' (नोक में) पर समाप्त करेंगे। उद्धार-क्रम में $क_4$ तथा $क_2$ में न्यस्त वर्णों की आवृत्ति होगी। इस न्यास और उद्धार का क्रम निम्नलिखित चित्र में द्रष्टव्य है—

चित्र संख्या—४८



कटारबन्ध—१

गुणन चिह्न (×) पाठ के आरम्भ का द्योतक है।

कटारबन्ध का दूसरा चित्र हमें 'प्रबीनसागर' में मिलता है। दोनों चित्रों की न्यासविधि के सिद्धान्त लगभग समान हैं किन्तु 'प्रबीनसागर' का छन्द बड़ा होने के कारण चित्र में कुछ अन्तर आ जाता है। 'चित्रकलाधर' में विन्यस्त चित्र के समान ही प्रस्तुत चित्र में भी छन्द का न्यास मूल के एक किनारे से आरम्भ होकर बीच में आता है, तथा पुनः उसी किनारे से होते हुए नोंक पर समाप्त होता है। किन्तु छन्द बड़ा होने से न्यास की एक पंक्ति त्रिकोण के बीच में भी है। प्रबीनसागर का छन्द निम्न है—

"इन्द्र महाराज आज चढ़े उर कोपधार,
घनघोर बिम्ब वाजी, चातुकी सुचोपदार।
रजेनीको घटागज, बोले मोर बंदीजनं,
रव रचो भेक कीर, धनूं धनूं बार बार॥

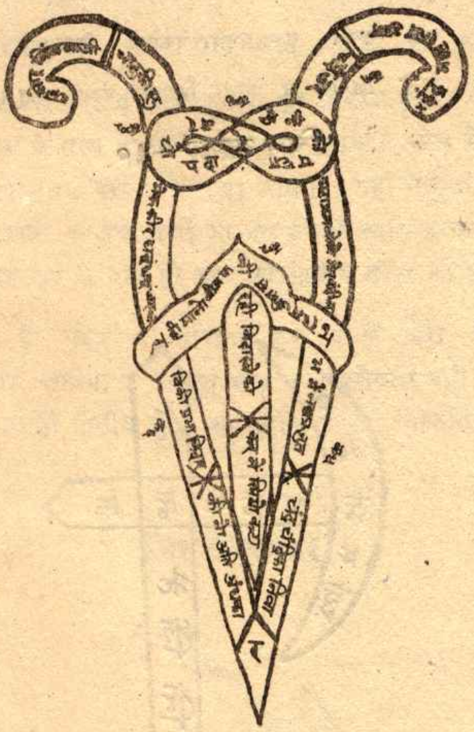
नभ में नछत्रजुत, चन्द्र चन्द्रिका निवार,
रवि की प्रभा विदार, कीनो अति अन्धकार।
नरधर जीत सबी रही मानो बीज फबी,
विरही विदारवें को कर में लियो कटार ॥"[१]

प्रस्तुत छन्द के न्यास का प्रारम्भ भी कटार के मूल में किया जायगा। यदि पूर्व की तरह ही हम कटार के उन अंगों को जिनमें वर्णों का विन्यास हुआ है-$क_1$, $क_2$, $क_3$, $क_4$, $क_5$ तथा $क_6$ की संज्ञा से अभिहित करें तो पूर्व की तरह ही यहाँ छन्द का न्यास $क_1$ के मूल से आरम्भ होकर $क_4$ में जायगा। प्रस्तुत छन्द के आठ चरण हैं जिनका न्यास सम्पूर्ण चित्र में किया गया है। सर्वप्रथम $क_1$ और $क_4$ में प्रथम चरण का न्यास होता है। उसी प्रकार $क_3$ के मूल और $क_4$ में दूसरे चरण का न्यास होगा। तीसरे चरण का आरम्भ $क_4$ में होगा और अन्त $क_1$ के उत्तरार्द्ध में। इसी प्रकार चौथे चरण का न्यास $क_4$ के $क_3$ वाले भाग की ओर से आरम्भ होकर $क_3$ के उत्तरार्द्ध में समाप्त होगा। पाँचवें चरण का न्यास तीसरे चरण के अन्तिम वर्ण 'न' से आरम्भ होकर $क_5$ में कटार की नोक की दिशा में होगा तथा इस चरण का अन्तिम वर्ण 'र' नोक पर लिखा जायगा। छठे चरण का न्यास भी पाँचवें चरण की तरह ही चौथे चरण के अन्तिम वर्ण 'र' से आरम्भ होकर $क_6$ से होते हुए नोक पर स्थित 'र' में समाप्त होगा। सातवें चरण का पूर्वार्द्ध $क_2$ में इस प्रकार न्यस्त होगा कि इसका प्रथम वर्ण 'न' तो $क_1$ और $क_5$ के सन्धिस्थल पर लिखित 'न' वर्ण की आवृत्ति होगा तथा अन्य अंश $क_1$ की ओर के क२ के आधे भाग में स्थित रहेगा। अन्तिम वर्ण 'बी' का न्यास ठीक $क_2$ के मध्य में होगा। ठीक इसी प्रकार उत्तरार्द्ध का आरम्भ $क_3$ तथा $क_6$ के सन्धिस्थल पर न्यस्त 'र' की आवृत्ति से होगा और समाप्ति $क_2$ के मध्य में लिखित 'बी' पर होगी। अन्तिम यानी आठवें चरण का आरम्भ $क_2$ के मध्यस्थित 'बी' से होगा तथा अन्य अंशों का न्यास 'बी' के ठीक सामने नोक की ओर के भाग में होगा। चरण की समाप्ति पुनः नोक पर स्थित 'र' में होगी। चूँकि कटार के इस अंश में पूर्व चित्र में कोई न्यास नहीं था अतः उसकी कोई संज्ञा मानी नहीं गई थी, यहाँ हम इस अंश को $क_7$ की संज्ञा दे सकते हैं। उद्धार के लिये न्यास का क्रम ही अपनाना होगा। निम्नलिखित चित्र में इसे देखा जा सकता है।

---

१. प्रबीनसागर, लहर ६५, पृ० ६७१

चित्र संख्या ४६



कटार बन्ध—२

गुणन चिह्न (×) पाठ के आरम्भ का द्योतक है।

(ग) कुठारबन्ध

संस्कृत में परशुबन्ध का एक उदाहरण अजितसेन की 'अलकार चिन्तामणि' में प्राप्त होता है[1] किन्तु हिन्दी में मिलनेवाले चित्र से उसकी न्यासविधि में कोई समानता नहीं है। हिन्दी में भी कुठारबन्ध की योजना केवल साधोगिरि गोस्वामी रचित 'कवि-

१. अलंकार चिन्तामणि में उल्लिखित परशुबन्ध का श्लोक तथा न्यासविधि निम्न है—

सो ऽ व्याच्छान्तिर्जितैना नो नोनोना गगनांगनाम् ।
नातमा ना ऽऽ तमां तथ्यां सभां नत्वा ऽ न्तमातनाम् ॥"

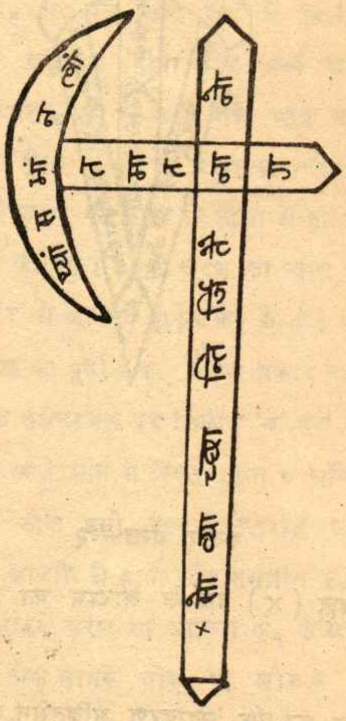
परि-२, श्लोक १७५, पृ० ४३

शिक्षकग्रन्थ' तथा रामचरण शुक्ल रचित 'चरणविनोद' में ही हुई है।[1] ये दोनों चित्र

न्यासविधि—

एक सन्धौ तु षड्वारमेकमेकं द्विरानयेत् ।
शृंगे शिरसि च ग्रीवां त्रियुक्तां परशो पठेत् ॥२-१७४, पृ० ४३

चित्र संख्या—९०



परशुबन्ध (अजित सेन)

गुणन चिह्न (×) पाठ के आरम्भ का द्योतक है।

१. चरणविनोद, प्रथम खण्ड, पृ० ७३

बिलकुल समान हैं। इनका न्यास अत्यन्त ही सरल है। उदाहरणार्थ साधोगिरि गोस्वामी रचित कुठारबन्ध का छन्द निम्न है—

"कहत संत श्रुति विमल मति नरन हरन हर दरद।
दरद रहन रह नरन यदि सदा प्रीति पद वरद॥"[1]

चित्र में इस छन्द की प्रथम पंक्ति के पूर्वार्द्ध का आरम्भ कुठार के फलक के एक कोने से होगा तथा छन्द फलक के साथ ही आगे बढ़ेगा। फलक के बीच में पूर्वार्द्ध समाप्त हो जायगा तथा उत्तरार्द्ध का प्रथम वर्ण 'न' लिखा जायगा। यहाँ से कुठार के सिर में दण्ड की ओर प्रथम पंक्ति के उत्तरार्द्ध के अन्य वर्णों का गत रूप में न्यास होगा। कुठार के सिर में न्यस्त इन वर्णों का आगत रूप में पाठ ही छन्द की द्वितीय पंक्ति का पूर्वार्द्ध है।

पुनः कुठार के फल के मध्य से आरम्भ कर बाकी अंश में द्वितीय पंक्ति के उत्तरार्द्ध को सीधे लिखा जायगा। प्रस्तुत छन्द की विशेषता यही है कि प्रथम पंक्ति के उत्तरार्द्ध का विपरीत पाठ ही द्वितीय पंक्ति का पूर्वार्द्ध है। निम्नलिखित चित्र में देखने से न्यास स्पष्ट हो जायगा।

चित्र संख्या-५१



कुठारबन्ध

गुणन चिह्न (×) पाठ के आरम्भ का द्योतक है।

---

१. कविशिक्षक ग्रंथ, पृ० ८० छन्द—१५५

(घ) धनुषबन्ध

जैसा कि पहले कहा जा चुका है धनुषबन्ध का चित्र रुद्रट के 'काव्यालंकार' में भी मिलता है और 'अग्निपुराण' में भी उसका उल्लेख है।[1] संस्कृत में अन्यत्र भी धनुषबन्ध की पर्याप्त रचना हुई है।[2] हिन्दी में भी धनुषबन्ध कवियों का एक प्रिय बन्ध रहा है और केशवदास से लेकर लगभग सभी प्रमुख आचार्यों ने (जिन्होंने चित्रकाव्य का विवेचन किया है) इस बन्ध के उदाहरण दिये हैं।[3] किन्तु संस्कृत और हिन्दी के धनुषबन्ध में एक स्पष्ट अन्तर यह है कि जहाँ संस्कृत में केवल धनुष का (शर रहित) चित्र मिलता है वहाँ हिन्दी के चित्र शरयुक्त हैं। फलतः दोनों के छन्दों की रचनाविधि तथा चित्रों की न्यासविधि में पर्याप्त अन्तर है। रुद्रट ने धनुषबन्ध का जो चित्र दिया है और उसमें श्लोक का जो न्यास हुआ है वह अत्यन्त सरल है। श्लोक के प्रथम वर्ण का न्यास धनुष की एक कोटि (बायीं) में होता है और अर्द्धवृत्त में दक्षिणावर्त्त क्रम से श्लोक के पूर्वार्द्ध का न्यास किया जाता है। दूसरी कोटि पर जाकर श्लोक का पूर्वार्द्ध समाप्त होता है। श्लोक के पूर्वार्द्ध का अन्तिम वर्ण उत्तरार्द्ध का आदि वर्ण है। इसी वर्ण से श्लोक के उत्तरार्द्ध का विपरीत गति (आगत) से न्यास प्रत्यंचा में होता है। उत्तरार्द्ध का अन्तिम वर्ण पूर्वार्द्ध का प्रथम वर्ण है, अतः श्लोक के उत्तरार्द्ध की समाप्ति धनुष की प्रथम कोटि में स्थित पूर्वार्द्ध के प्रथम वर्ण में होती है। इस प्रकार रुद्रट द्वारा उदाहृत धनुषबन्ध का न्यास पूर्ण होता है। चित्र निम्नलिखित है—

---

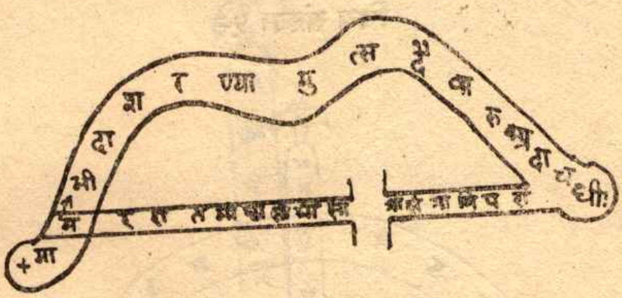
१. द्रष्टव्य, प्रस्तुत पुस्तक पृ० १९२, टि० १,२

२. गुणभद्र कृत चित्रबन्ध स्तोत्र—जे० यू० बी० ३१, पृ० ८८
जिनप्रभ सूरि—चित्रस्तव ,, ३०, पृ० १०८
कुलमन्डन सूरि—पंचजिनहारस्तव ,, ३०, पृ० ११२
उदय विजय—विज्ञप्तिपत्र ,, ३०, पृ० १२६
विनय विजय—आनन्द लेख— ,, ३०, पृ० १२९-३०
अवतार कवि—ईश्वर शतक—पृ० ४७ (काव्यमाला ९)

३. केशवदास—क० प्रि०, प्रभाव १६, छन्द संख्या ८०
बिहारीलाल भट्ट—सा० सा० (भाग २], तरंग १२, पृ० ५१५
लछिराम—रावणेश्वरकल्पतरु, कुसुम ११, पृ० ६
गोकुल कवि—चित्रकलाधर, पृ० ५२
काशिराज—चित्रचन्द्रिका, प्रकाश ६, पृ० ६५ तथा ९९
रूप प्रधान—चित्रकाव्य [हस्तलिखित, ना० प्र० स०, ह० ७८६]
हरिकवि—कविवल्लभ [हस्तलिखित ना० प्र०], पृ० ८४
जगतसिंह-चित्रमीमांसा अथवा चित्रकाव्य [ह०, ना० प्र०], छन्द सख्या १४८
जनराज—कवितारसविनोद [ह०, ना० प्र०], पत्र २८३
भिखारीदास—काव्य निर्णय, अ० २१, छन्द ६७
महिरामन सिंह—प्रवीनसागर, लहर ६५, पृ० ६५०

चित्र संख्या-५२
न्यास का श्लोक

"मामभीदा शरण्या मुत्सदैवारुक्प्रदा चधीः ।
धीरा पवित्रा संत्रा सात्त्रा सीष्ठा मातरारम ॥"
(काव्यालंकार, अ०५; श्लोक ९)



धनुषबन्ध (रुद्रट)

गुणन चिह्न (×) पाठ के आरम्भ का द्योतक है ।

हिन्दी में शरयुक्त धनुष होने के कारण न्यास शर के मूल (फोंक) से आरम्भ होता है। 'कविप्रिया' में केशवदास ने धनुषबन्ध का निम्न छन्द दिया है—

"परम धरम हरि हेरहीं केशव सुनै पुरान ।
मन मन जानै नार द्वै जिययश सुनत न आन ॥"[1]

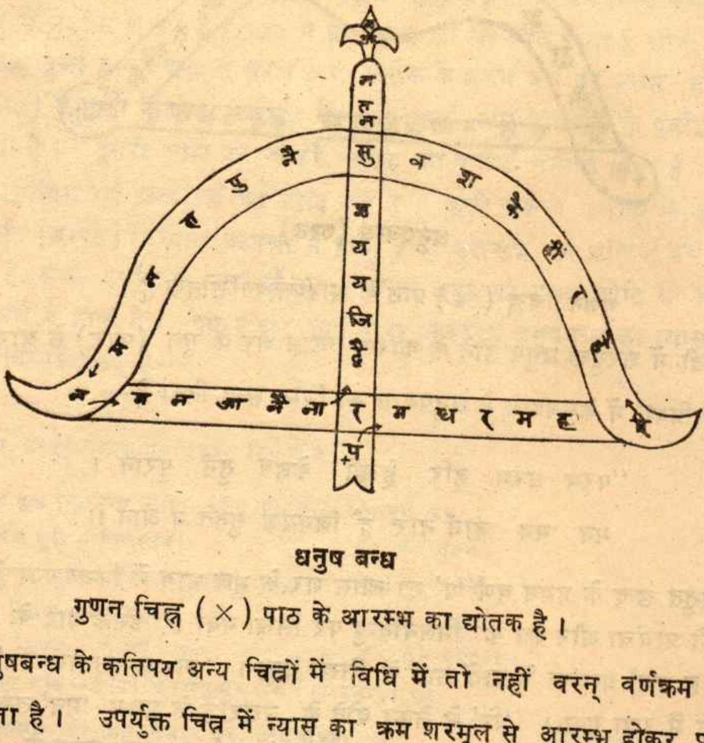
प्रस्तुत छन्द के प्रथम वर्ण 'प' का न्यास शर के मूल भाग में किया गया है। दूसरे वर्ण 'र' को प्रत्यंचा और शर के मिलनबिन्दु पर लिखा गया। इसके बाद के पाँच वर्णों को (म से ह तक) प्रत्यंचा के दायें भाग में लिखा गया। पुनः अगला वर्ण 'रि' धनुष की दायीं कोटि में रखा गया। 'रि' से लेकर दोहे के उत्तरार्द्ध के प्रथम 'मन' तक के वर्णों का न्यास मूल धनुष में इस प्रकार किया गया कि 'सु' वर्ण शर तथा धनुष के मिलनस्थल पर पड़े तथा अन्तिम 'न' वर्ण बायीं कोटि में। दोहे के उत्तरार्द्ध के दूसरे 'मन' से लेकर 'ना' तक का न्यास प्रत्यंचा के वाम भाग में किया गया। अगला वर्ण 'र' है जिसका न्यास प्रत्यंचा और शर के मिलनबिन्दु पर पहले ही हो चुका है। इसके अनन्तर अन्य वर्णों का न्यास शर में इस प्रकार किया जायगा कि 'सु' वर्ण शर और धनुष के मिलनस्थल पर पड़े। चूँकि इस स्थल पर 'सु' की अवस्थिति पूर्व से ही है अतः पाठ में यहाँ केवल इस वर्ण की आवृत्ति होगी। 'सु' के बाद के सारे वर्णों का न्यास शर के धनुष के बाहर

---

१. क० प्रि०; प्रभाव १६, छन्द संख्या ८०
द्रष्टव्य, चित्र संख्या ५३

निकले हुए भाग में नोक तक होगा। शर में न्यस्त वर्णों की दिशा नोक की ओर होगी। उद्धार के लिये भी न्यास का यही क्रम अपनाना होगा। शरमूल से आरम्भ कर प्रत्यंचा के दायें भाग से होते हुए धनुष में वामावर्त्त क्रम से पाठ करना होगा। पुनः प्रत्यंचा के वाम भाग में न्यस्त वर्णों का पाठ करते हुए शर में आकर नोंक तक के वर्णों का पाठ करना होगा। इस प्रकार सम्पूर्ण दोहे का उद्धार हो जायगा। चित्र निम्नलिखित है—

चित्र संख्या ५३



धनुष बन्ध

गुणन चिह्न (×) पाठ के आरम्भ का द्योतक है।

धनुषबन्ध के कतिपय अन्य चित्रों में विधि में तो नहीं वरन् वर्णक्रम में थोड़ा अन्तर दीखता है। उपर्युक्त चित्र में न्यास का क्रम शरमूल से आरम्भ होकर प्रत्यंचा के दायें भाग से आगे बढ़ता है। कतिपय चित्रों में दायें भाग के स्थान में बायें भाग से आगे बढ़कर दक्षिणावर्त क्रम को अपनाया गया है। 'चित्रचन्द्रिका' में काशिराज ने इस प्रकार के धनुष को कमठ कहा है और उसका निम्न लक्षण दिया है—

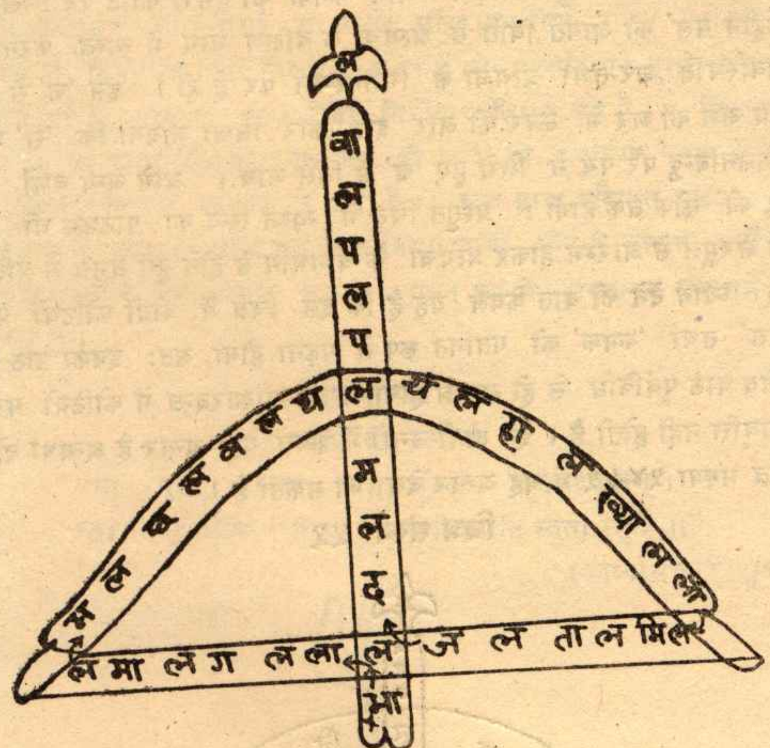
"पुंख अर्ध रोदा पढ़ो पुनि कमठा पढ़ु मित्र।
अरध पनच पुनि तीर पढ़ु कमठाबन्ध सुचित्र॥"[१]

छन्द और चित्र निम्नलिखित हैं—

१० चि० चं०, प्रकाश ६, छन्द १०, पृ० ६५

चित्र संख्या ५४
न्यास का छन्द

"भाल लाल गल माल भल छल वल थल चल हाल।
ख्याल लाल मिल ताल जल दल मल पल पल वाल॥"
(चि० च०, प्रकाश-६, छन्द ११)



कमठ बन्ध

गुणन चिह्न (×) पाठ के आरम्भ का द्योतक है।

काशिराज धनुष नाम से एक दूसरा चित्र भी देते हैं जिसका लक्षण उनके शब्दों में यों है— "पुंख अर्द्ध रोदा पढ़ो गोसा ऋजु विपरीत।
पृष्ट सु गोसा पनच सर धनुषबन्ध इह मीत॥"[1]

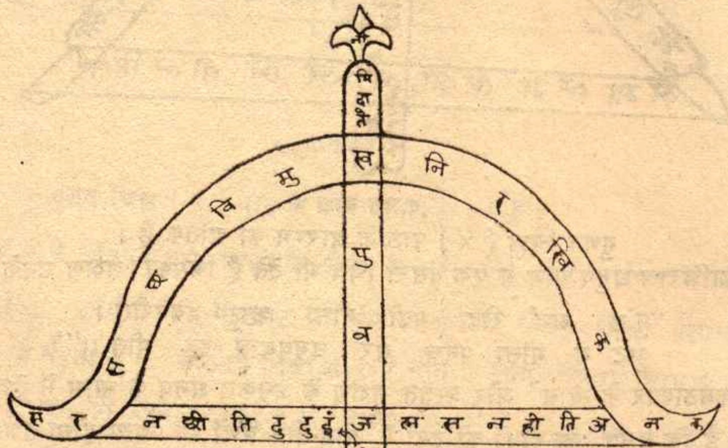
कमठाकार के न्यास[2] और प्रस्तुत लक्षण के अनुकूल धनुष के न्यास में केवल इतना ही अन्तर है कि धनुष की दोनों कोटियों में तीन-तीन वर्णों का न्यास होगा तथा पाठक्रम में इन तीन वर्णों का पाठ गतागत क्रम से होगा। अन्य सारी विधियाँ एक ही हैं। इस लक्षण के अनुसार धनुषबन्ध का जो छन्द काशिराज ने दिया है वह निम्न है—

"कंज इंदु दुति छीन सरस सरस छवि मुख निरखि।
कनक कनक अतिहीन सलज वपुष ते दामिनी॥"[3]

१. चि० चं०, प्रकाश ६, छन्द ४५, पृ० ९९
२. चित्र संख्या-५४
३. चि० चं०, प्रकाश ६, छन्द ४६, पृ० १००

प्रस्तुत छन्द का न्यास चित्र[१] में इस प्रकार होगा कि 'कं' शरमूल में रहेगा 'ज' शर तथा प्रत्यंचा के मिलनस्थल पर 'इंदु दुति छीन' छन्द का यह अंश प्रत्यंचा के वाम भाग में वामदिशा की ओर, तथा 'सरस' की अवस्थिति कोटि में होगी। पुनः 'छवि मुख निरखि' की अवस्थिति धनुष में दक्षिणावर्त क्रम से इस प्रकार होगी कि 'ख' का स्थान धनुष तथा शर के मिलनबिन्दु पर पड़े। आगे 'कनक' को दूसरी कोटि पर लिखा जायगा और 'अतिहीन सल' को आगत विधि से प्रत्यंचा के दक्षिण भाग में न्यस्त करना होगा। 'ज' की अवस्थिति शर तथा प्रत्यंचा के मिलनस्थल पर है ही। इस 'ज' से होते हुए छन्द के शेष अंश को शर में ऊपर की ओर इस प्रकार लिखा जायगा कि 'ख' शर तथा धनुष के मिलनबिन्दु पर पूर्व से लिखे हुए 'ख' से मिल जाय। आगे अन्य वर्णों की अवस्थिति शर की नोक तक होगी। प्रस्तुत चित्र में न्यस्त छन्द का पाठक्रम भी न्यास के अनुसार ही शरमूल से आरम्भ होकर प्रत्यंचा के वामभाग से होते हुए धनुष में दक्षिणावर्त्त क्रम से है। ध्यान देने की बात केवल यह है कि इस चित्र में दोनों कोटियों पर लिखे क्रमशः 'सरस' तथा 'कनक' को गतागत रूप से पढ़ना होगा, अतः इनका पाठ दो बार होगा। शेष पाठ पूर्वविधि से ही सम्पन्न होगा। कमठाकारबन्ध में कोटियों पर लिखे वर्णों की आवृत्ति नहीं होती है। इन दोनों बन्धों में केवल यही अन्तर है अन्यथा दोनों एक ही हैं। चित्र संख्या ५४-५५ में यह अन्तर देखा जा सकता है।

चित्र संख्या ५५



धनुष बन्ध-२

गुणन चिह्न (×) पाठ के आरम्भ का द्योतक है।

(ङ) त्रिशूल बन्ध

संस्कृत में सर्वप्रथम त्रिशूलबन्ध का उदाहरण रुद्रट ने अपने काव्यालंकार में दिया है। किन्तु इसकी न्यासविधि तथा हिन्दी में पाये जानेवाले त्रिशूलबन्धों की न्यासविधि में

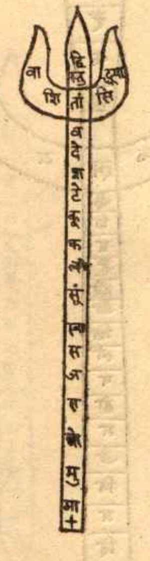
१. चित्र संख्या-५५

पर्याप्त अन्तर है। हिन्दी में इस बन्ध के तीन रूप पाये जाते हैं—एक में न्यास ऊपर शूल से आरम्भ होकर मूल की ओर जाता है, दूसरे में न्यास मूल से आरम्भ होकर शूल की ओर आता है तथा तीसरे में न्यास का आरम्भ बीच से होता है। प्रथम प्रकार का चित्र हमें रसिकबिहारी रचित 'काव्यसुधाकर' में प्राप्त होता है, दूसरे प्रकार का गोकुल कवि के 'चित्रकलाधर' तथा तीसरे का राजा महिरामन सिंह रचित 'प्रबीनसागर' में। 'प्रबीनसागर' में नियोजित चित्र त्रिशूल-युग्म का है जो परस्पर एक दूसरे को काटते हुए गुणनचिह्न बनाते हैं, साथ ही इनके दोनों सिरों पर त्रिशूल बने हैं। 'चित्रकलाधर' में नियोजित चित्र की न्यासविधि बहुत कुछ रुद्रट की विधि का अनुकरण करती है किन्तु शूल में जाकर वह भी बिलकुल स्वतन्त्र हो जाती है। रुद्रट द्वारा उदाहृत शूलबन्ध के न्यास का प्रारम्भ मूल से होता है तथा शूल में सर्वप्रथम बायीं ओर के शूल में वर्णों का न्यास गतागत रूप से होता है, पुनः दक्षिण शूल में गतागत रूप से, तदनन्तर मध्यशूल में आगत तथा गत रूप से।

चित्र संख्या ५६

न्यास का श्लोक

"मा मुसो राजस स्वा सूंल्लोक कूटेशदेवताम्।
तां शिवा वाशितां सिद्धया ध्या सितां हि स्तुतां स्तुहि॥"
(काव्यालंकार ५/११)



त्रिशूल बन्ध १ (रुद्रट)

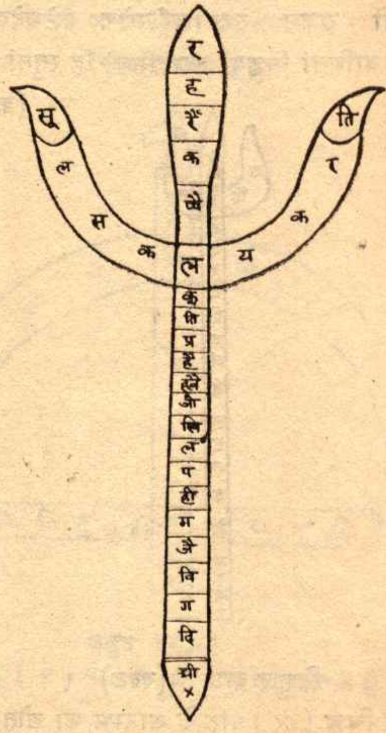
गुणन चिह्न (×) पाठ के आरम्भ का द्योतक है।

'चित्रकलाधर' का न्यास दण्ड के बाद वाम शूल की नोक से प्रारम्भ होकर शूलों के सन्धिस्थल से होते हुए मध्यशूल में चला जाता है। पुनः सन्धिस्थल के वर्ण से आरम्भ होकर दक्षिण शूल की नोक तक आता है। इसके बाद सभी शूलों की नोक तथा सन्धिस्थल

पर के वर्ण के पाठ के साथ न्यास समाप्त होता है। प्रस्तुत बन्ध का निम्न छन्द गोकुल कवि ने दिया है— "श्री दिग्विजय महीप लखि जो ह्वै है प्रतिकूल।
सूल सकल लषै करैं, हरलय करति रसूल।।"[1]

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है प्रस्तुत छन्द का आरम्भ चित्र में शूल के दण्डमूल से होता है तथा ऊपर की ओर शूलों के सन्धिस्थल तक "श्री दिग्विजय ....प्रतिकूल" तक का न्यास होता है। दोहे के उत्तरार्द्ध का न्यास वाम शूल की नोक से प्रारम्भ होता है तथा 'सूल सकल' का न्यास यहाँ होता है। सकल का 'ल' पहले से ही सन्धिस्थल पर न्यस्त है। 'लषै करैं हर' का न्यास मध्यशूल में होता है जिसके आदि 'ल' का न्यास सन्धिस्थल के 'ल' की आवृत्ति के रूप में ही होता है। पुनः 'लय करति' का न्यास दक्षिण शूल में होता है और यहाँ भी सन्धिस्थल के 'ल' की आवृत्ति होती है। अन्त में क्रमशः मध्य शूल तथा वाम शूल की नोक पर स्थित 'र', 'सू', और सन्धिस्थल में न्यस्त 'ल' को मिलाकर अन्तिम शब्द 'रसूल' का पाठ पूर्ण होता है। इस न्यासक्रम में सन्धिस्थल पर न्यस्त 'ल' का पाठ पाँच बार होता है। चित्र निम्न है—

चित्र संख्या ५७



त्रिशूल बन्ध-२

गुणन चिह्न (×) पाठ के आरम्भ का द्योतक है।

---

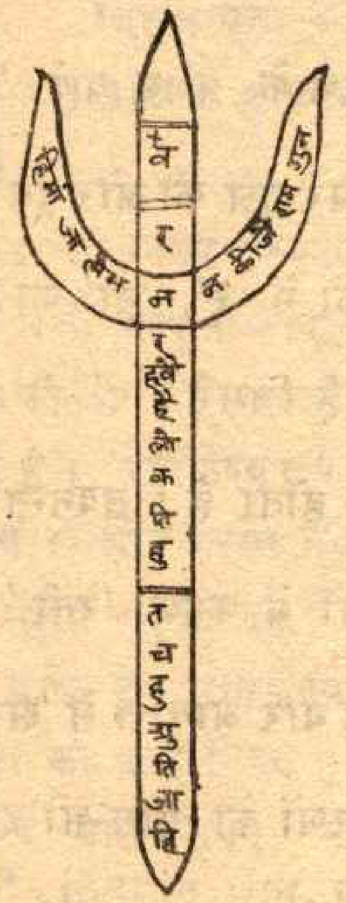
१. चित्रकलाधर, पृ० ६०

रसिक बिहारी द्वारा उदाहृत त्रिशूलबन्ध का छन्द निम्नलिखित है—

"बरनन कीजै रामगुन, बरन भले जा माहिं।
वर नर ह्वै है लोक तिहु, वरनत चहु श्रुति जाहि ॥"[1]

प्रस्तुत छन्द का न्यास त्रिशूल के मध्यशूल से आरम्भ होता है। मध्यशूल में ऊपर से नीचे की ओर छन्द के आदि दो वर्ण 'ब', 'र', का न्यास होता है। 'न' का न्यास शूलों के सन्धिस्थल पर किया गया है तथा प्रथम चरण के अन्य वर्णों 'न कीजे राम गुन' का न्यास दक्षिण शूल में किया गया है। पुनः मध्यशूल में न्यस्त 'बरन' से आरम्भ करके 'बरन भले जा माहिं' का न्यास वाम शूल में वाम गति से होता है। छन्द के तृतीय चरण का न्यास पुनः मध्यशूल में स्थित 'ब र न' से आरम्भ करके दण्ड के ऊपरी भाग में आकर समाप्त किया जाता है तथा छन्द के चतुर्थ चरण का न्यास पुनः मध्य शूलस्थ 'ब र न' से आरम्भ करके दण्ड के निचले अर्द्ध भाग में किया जाता है। इस प्रकार प्रस्तुत छन्द के न्यास में मध्य शूलस्थ 'बरन' की चार बार आवृत्ति होती है कारण छन्द के चारों चरणों का आरम्भ इन तीन वर्णों से ही होता है। नीचे के चित्र में इसे देखा जा सकता है।

चित्र संख्या-५८



त्रिशूल बन्ध-३

गुणन चिह्न (×) पाठ के आरम्भ का द्योतक है।

---

1. काव्यसुधाकर, कला १३, पृ० ३४, छन्द संख्या ८

'प्रबीनसागर' स्थित चित्र में परस्पर गुणन चिह्न बनाते हुए दो त्रिशूल हैं जिनके दोनों ही ओर त्रिशूल बने हैं। दोनों के मिलनस्थल पर एक चतुष्कोण बना है जिसके चारों ओर कोष्ठक बने हुए हैं। इन्हीं कोष्ठकों से छन्द के न्यास का आरम्भ होता है। छन्द निम्नलिखित है—

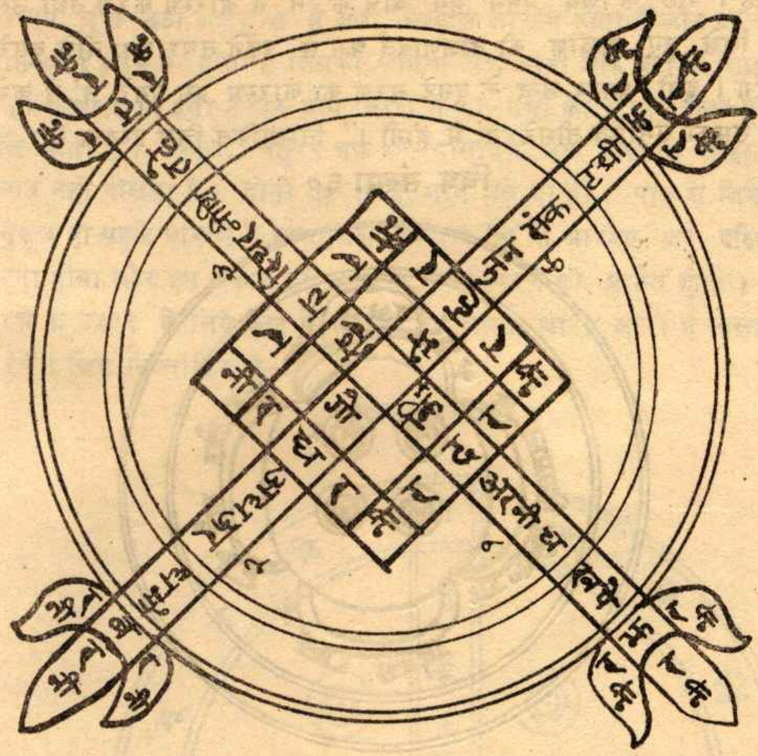
"किदरनी दरनी अरनी चख, पें झरनी झरनी झरनी ॥
गोधरनी धरनी अध ऊरध, भो बरनी बरनी बरनी ॥
खेचरनी चरनी स्थिरनीथित, हे तरनी तरनी तरनी ॥
भेहरनी हरनी जन संकट, श्री करनी करनी करनी ॥"[1]

चित्र में प्रस्तुत छन्द के चारों चरणों का न्यास चारों ही त्रिशूलों के दण्डमूल से आरम्भ होकर दण्डमूल में स्थित कोष्ठकों तथा दण्ड से होते हुए तीनों 'शूलों' में आकर समाप्त होता है। छण्द के प्रथम चरण के प्रथम वर्ण 'कि' का न्यास त्रिशूल सं० १ के दण्डमूल में होता है। 'कि' के ठीक ऊपर शूल की ओर दूसरे वर्ण 'द' का न्यास होता है। 'द' के दायें-बायें दोनों ही ओर के कोष्ठकों में 'र', 'नी' का न्यास किया जाता है। इस प्रकार 'किदरनी दरनी' का न्यास हो जाता है जिसमें 'द' की आवृत्ति होती है। 'अरनी चख पें' का न्यास दण्ड के बचे हुए अंश में होता है। तदनन्तर शूलों के सन्धिस्थल पर 'झ' को लिखा जाता है और तीनों ही शूलों में क्रमशः 'रनी,' 'रनी,' 'रनी' का न्यास होता है। इस प्रकार पाठ के समय 'झ' की तीन बार आवृत्ति से 'झरनी, 'झरनी', 'झरनी' का पाठ पूरा हो जाता है। छन्द के अन्य तीनों चरणों का न्यास भी इसी विधि से अन्य तीनों त्रिशूलों में होता है। प्रस्तुतः छन्द का न्यास अपेक्षाकृत सरल है कारण यहाँ शब्दों की पुनरावृत्तियों से सुविधा अधिक हो जाती है। चित्रसंख्या ५९ में इसे देखें।

---

१. प्र० सा०, लहर ६४, पृ० ६३०

चित्र संख्या ५६



त्रिशूल बन्ध-४

गुणन चिह्न (×) पाठ के आरम्भ का द्योतक है।

(च) ढाल अथवा सिपर बन्ध —

ढाल अथवा सिपर बन्ध का न्यास संस्कृत में नहीं मिलता। हिन्दी में भी केवल लाछिराम के 'रावणेश्वर कल्पतरु' तथा गोकुल कवि रचित 'अष्टयाम प्रकाश' और 'चित्र-कलाधर' में इस बन्ध के उदाहरण मिलते हैं किन्तु दोनों ही कवियों द्वारा दिये गये चित्रों की न्यासविधियों में पर्याप्त अन्तर है। 'रावणेश्वर कल्पतरु' में उद्धृत चित्र में जहाँ छन्द के चारों चरण ढाल के मध्यवृत्त के चारों ओर न्यस्त हैं वहाँ 'चित्रकलाधर' में पूर्वार्द्ध तो वृत्त की परिधि में है, पर उत्तरार्द्ध का न्यास चतुरर चक्र की विधि से चार आरों अथवा त्रिज्याओं में है। इस प्रकार न्यास की दृष्टि से 'रावणेश्वर कल्पतरु' का न्यास अत्यन्त सरल है। लछिराम द्वारा प्रदत्त ढालबन्ध का छन्द निम्न है—

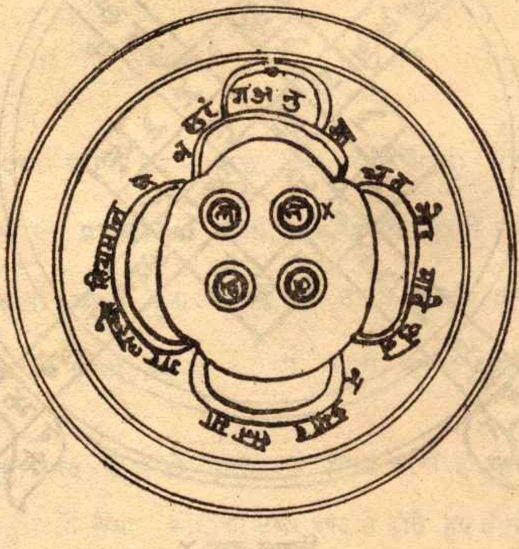
"नचत मोर माते जुवन, नवकुमार सनमान।
नगर लख्यो तियमान छन, नव सुरंग अनुमान।।"[1]

प्रस्तुत छन्द के चारों चरणों के आदि तथा अन्त के वर्ण एक ही हैं। इस 'न' वर्ण का न्यास ढाल के मध्य में स्थित चारों कीलों में किया गया है। ढाल के आभ्यन्तर गोल

१. रावणेश्वर कल्पतरु, कुसुम-११, पृ० ७

भाग के चार खण्ड किये गये हैं और उनमें आद्यन्त वर्ण 'न' रहित चारों चरणों को क्रमशः लिखा गया है। पाठ के लिये प्रथम हम बीच के 'न' से आरम्भ करेंगे तथा उसके बाद उसके ऊपर लिखे हुए छन्दांश को दक्षिणावर्त क्रम से पढ़ेंगे तथा पुनः नीचे दूसरे 'न' में समाप्त करेंगे। इसी प्रकार छन्द के दूसरे चरण का आरम्भ इस दूसरे 'न' से करेंगे और इसी प्रकार उसकी समाप्ति तीसरे 'न' में होगी।" निम्नांकित चित्र द्रष्टव्य है।

चित्र संख्या-६०



ढाल बन्ध[1]

गुणन चिह्न (×) पाठ के आरम्भ का द्योतक है।

'चित्रकलाधर' में न्यस्त चित्र के छन्द की रचना इससे भिन्न विधि से हुई है।

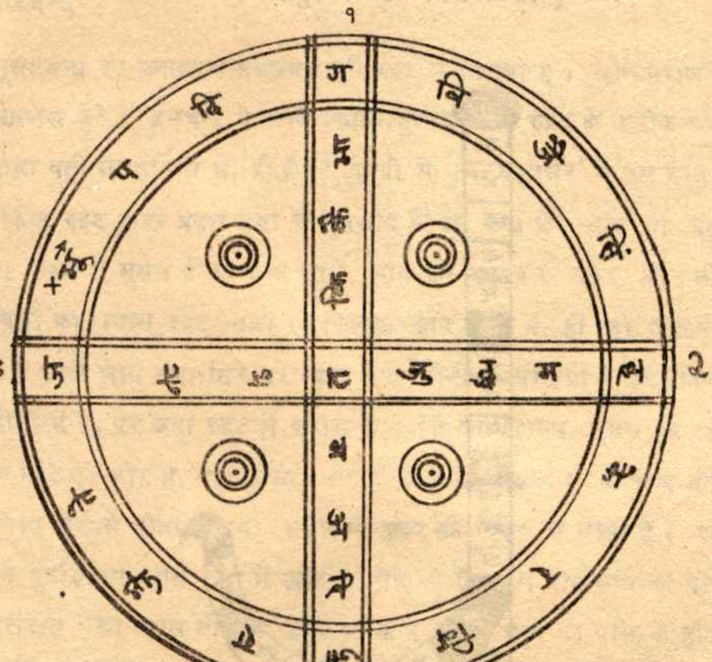
"भूप दिगविजै सिंह के, रवि जो राजै तेज ॥
तकि कै भागत जुद्ध मह, तम अरि जोत न तेज ॥"[1]

प्रस्तुत छन्द के प्रथम चरण का चौथा, आठवाँ, बारहवाँ और सोलहवाँ वर्ण दूसरे चरण का क्रमशः पाँचवाँ, दसवाँ, पन्द्रहवाँ तथा उन्नीसवाँ वर्ण है तथा द्वितीय चरण का पहला, छठा, ग्यारहवाँ तथा सोलहवाँ एक ही केवल 'त' है। चित्र चतुरर चक्र की तरह ही चार आरों से युक्त बनाया गया है जिसके चारों आरे एक दूसरे के साथ केन्द्र पर समकोण बनाते हैं। चारों आरों और वृत्त के चार मिलनबिन्दु हैं और इन बिन्दुओं से बने चार चाप हैं। छन्द के वर्णों का न्यास इन्हीं चापों, मिलनबिन्दुओं तथा आरों में होता है। छन्द की प्रथम पंक्ति का न्यास ढाल के वृत्त में इस प्रकार किया जाता है कि चौथा, आठवाँ, बारहवाँ तथा सोलहवाँ अक्षर (ग, ह, जो तथा ज) क्रमशः वृत्त और आरों के मिलन-बिन्दुओं में रहें। छन्द के द्वितीय चरण का न्यास वृत्त के केन्द्र से आरम्भ होता है। प्रथम वर्ण 'त' का न्यास वृत्त के केन्द्र में होता है तथा 'कि', 'कै', 'भा', 'ग' इन चार अक्षरों का

१. चि० क०, पृ० ५८

न्यास प्रथम आरे में। इनमें से 'ग' वर्ण पहले ही आरा और वृत्त के मिलनस्थल पर न्यस्त है। पुनः चूंकि छठा अक्षर 'त' है अतः केन्द्र से आरम्भ होता है और अगले चार वर्णों का न्यास दूसरे आरे में होता है जिसका अन्तिम वर्ण आरा और वृत्त के मिलनबिन्दु पर पहले से ही न्यस्त है। इसी प्रकार अन्य आरों में भी वर्णों का न्यास होता है और छन्द की पूर्त्ति होती है। वस्तुतः चतुरर चक्र की न्यासविधि और ढालबन्ध के इस चित्र में कोई अन्तर नहीं दीखता है। दोनों एक ही हैं, नाम भले दो हों। पाठ के लिये न्यासविधि के अनुकूल ही पहले परिधि में न्यस्त वर्णों का पाठ 'भू' से आरम्भ कर दक्षिणावर्त्त क्रम से करना होगा और इस प्रकार हमें छन्द के प्रथम चरण की प्राप्ति होगी। छन्द के द्वितीय चरण के उद्धार के लिये केन्द्र से आरम्भ कर क्रमशः चारों आरों में न्यस्त वर्णों का पाठ करेंगे। चित्र निम्नांकित है—

चित्र संख्या-६१



ढालबन्ध-२

गुणन चिह्न (×) पाठ के आरम्भ का द्योतक है।

(छ) अंकुश बन्ध

अंकुशबन्ध का चित्र तो संस्कृत में नहीं मिलता किन्तु उल्लेख 'अग्नि-पुराण'[1] में मिलता है। अग्निपुराणकार ने भी इसका उल्लेख भर ही किया है, श्लोक

१. अ० पु०, अ० ३४३, श्लोक ६४

अथवा न्यासविधि नहीं दी है। फलतः संस्कृत में रचे जानेवाले इस बन्ध के चित्र के न्यास के सम्बन्ध में हम कुछ नहीं कह सकते। हिन्दी में गोकुलकवि ने अपने 'चित्रकलाधर' नामक ग्रन्थ में अंकुशबन्ध का एक दोहा दिया है तथा उसका चित्र भी दिया है। गोकुलकवि को यह प्रेरणा निश्चय ही 'अग्निपुराण' से मिली होगी, कारण उन्होंने 'चित्रकलाधर' के चित्रप्रकरण (तृतीय अध्याय) के आरम्भ में 'अग्निपुराण' के भी कुछ अंश उद्धृत किये हैं। 'चित्रकलाधर' में उल्लिखित अंकुशबन्ध का दोहा तथा चित्र निम्न है—

चित्र संख्या-६२

न्यास का दोहा

"अंग-भंग करि कुजनवस, चाल अनीति छोड़ाय।
नीक नृपति अविचल कला, अंकुस नीति चलाय॥"[1]



अंकुश बन्ध

गुणन चिन्ह (×) पाठ के आरम्भ का द्योतक है।

---

१. चित्रकलाधर, पृ० ६३

अकुश के उपर्युक्त चित्र में प्रस्तुत छन्द का न्यास अंकुश के दण्डमूल से आरम्भ होकर अंकुश की दिशा में बढ़ता है। प्रस्तुत दोहा साथ ही गूढ़चतुर्थपाद का भी उदाहरण है, यानी दोहे के चौथे चरण के वर्ण अन्य तीनों चरणों के वर्णों में ही गुप्त हैं। अतः न्यास ऐसा होता है कि दोहे का सम्पूर्ण पूर्वार्द्ध अंकुश के दण्ड में रहता है। इस न्यास में 'नी' वर्ण की स्थिति अंकुश तथा दण्ड के मिलनस्थल पर होती है। चूँकि दोहे का द्वितीयार्द्ध इसी 'नी' वर्ण से आरम्भ होता है अतः इस 'नी' से आरम्भ कर दोहे के तृतीय चरण का न्यास अंकुश में किया जाता है। चतुर्थ चरण 'अंकुश नीति चलाय' के वर्ण प्रथम तीन चरणों में ही क्रमशः पहला, सातवाँ, ग्यारहवाँ, पन्द्रहवाँ, बीसवाँ, चौबीसवाँ, सत्ताइसवाँ, तीसवाँ, तथा उन्नीसवाँ हैं। प्रस्तुत चित्र में इन वर्णों को उजले रंग में दिखाया गया है।

(ज) मूसलबन्ध

मूसलबन्ध का उदाहरण सर्वप्रथम हमें रुद्रट में मिलता है। अग्निपुराण में प्रस्तुत बन्ध का उल्लेख है[1]। हेमचन्द्र ने अपने 'काव्यानुशासन' में रुद्रट के श्लोक को ही उद्धृत किया है तथा वही न्यासविधि भी दी है।[2] हिन्दी में 'चित्रकलाधर' में इस बन्ध की योजना हुई है। किन्तु रुद्रट द्वारा प्रदत्त तथा गोकुलकवि के इस बन्ध के न्यास में बहुत अधिक अन्तर है। चित्र में मूसल के बीच के पतले भाग को छोड़कर ऊपर और नीचे के मोटे भागों में वर्णों का न्यास रुद्रट तथा चित्रकलाधरकार दोनों ने ही दो पंक्तियों में किया है। पाठ में पतले भाग तथा सिरे पर न्यस्त वर्ण दोनों ही पंक्तियों में उभयनिष्ठ हैं; यह योजना दोनों में है, पर जहाँ रुद्रट में श्लोक के पूर्वार्द्ध का आरम्भ मूसल के ऊपरी सिरे से नीचे के सिरे की ओर है, वहाँ 'चित्रकलाधर' के चित्र में छन्द का आरम्भ बीच के पतले भाग में न्यस्त वर्ण से होता है तथा सर्वप्रथम ऊपर की दिशा में जाता है। रुद्रट के चित्र में श्लोक के पूर्वार्द्ध का न्यास चित्र में ऊपर से नीचे की दिशा में वाम भाग की पंक्ति में होता है तथा उत्तरार्द्ध का न्यास नीचे से ऊपर की ओर दक्षिण भाग की पंक्ति में होता है। इस न्यास में चूँकि श्लोक के पूर्वार्द्ध का अन्तिम तथा उत्तरार्द्ध का आदि वर्ण एक ही हैं अतः इनका न्यास मूसल के निचले सिरे पर एक ही बार होता है। यह सिरा मूसल का दाँतवाला भाग है। बीच के पतले भाग में (हाथ से पकड़ने वाले भाग में) न्यस्त तीन वर्ण भी दोनों ही पंक्तियों में उभयनिष्ठ हैं, किन्तु पाठ में दोनों पक्तियों में वे क्रमशः गत तथा आगत रीति से पढ़े जाते हैं। रुद्रट प्रदत्त चित्र निम्न है—

---

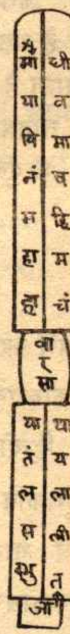
१. अ० पु०, अ० ३४३, श्लोक ६४

२. काव्यानुशासन, अ० ५, सूत्र—४ की टीका, विवेक—श्लोक सं० ४९६

चित्र संख्या-६३

न्यास का श्लोक

"माया विनं महाहावा रसायातं लसद्भुजा।
जात लीला यथासार वाचं महिषमावधीः॥"
(काव्यालंकार, अ० ५, श्लोक ८)



मूसल बन्ध (रुद्रट)

गुणन चिह्न (×) पाठ के आरम्भ का द्योतक है।

'चित्रकलाधर' के चित्र में न्यस्त दोहा निम्न है—

"मारयो षल को लै मुसल, मान मरदि हरि लाल।
माषन षायो छीनि छल, माषन मन वृज वाल॥"[1]

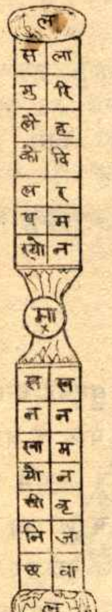
प्रस्तुत दोहे के चारों चरणों का आरम्भ 'मा' से होता है। चित्र[2] में इस 'मा' वर्ण का न्यास मूसल के मध्य के पतले भाग में किया गया है। इस 'मा' से मूसल के उपरी भाग के वाम पार्श्व में छन्द के प्रथम चरण तथा दक्षिण पार्श्व में दूसरे चरण की अवस्थिति नीचे से ऊपर की दिशा में है। चूँकि इन दोनों चरणों का अन्तिम वर्ण एक ही 'ल' है, अतः इस 'ल' का न्यास मूसल के ऊपरी सिरे पर किया गया है। इसी प्रकार बीच में न्यस्त 'मा' से आरम्भ कर मूसल के निचले भाग के वाम तथा दक्षिण पार्श्वों में क्रमशः छन्द के तीसरे तथा चौथे चरणों के वर्णों का न्यास ऊपर से नीचे की दिशा में हुआ है। पुनः इन दोनों चरणों का अन्तिम वर्ण एक ही है, अतः इस अन्तिम वर्ण 'ल'

१. चित्रकलाधर, पृ० ६३

२. चित्रसंख्या-६४

का न्यास मूसल के निचले सिरे पर एक ही बार हुआ है। उद्धार के लिये मूसल के मध्यभाग में स्थित 'मा' से आरम्भ करके पहले मूसल के ऊपरी भाग के दोनों पार्श्वों में स्थित वर्णों का पाठ करेंगे, पुनः 'मा' से ही आरम्भ कर निचले भाग के दोनों पार्श्वों में स्थित वर्णों का पाठ ऊपर से नीचे की दिशा में करेंगे। दोनों सिरों पर स्थित वर्ण दोनों ही पार्श्वों में स्थित वर्ण के साथ दो-दो बार पढ़े जायेंगे। अतः स्पष्ट है कि रुद्रट के न्यास तथा गोकुलकवि के न्यास में पर्याप्त अन्तर है। तुलना के लिये नीचे का चित्र द्रष्टव्य है।

चित्र संख्या-६४



मूसल बन्ध

गुणन चिह्न (×) पाठ के आरम्भ का द्योतक है।

(झ) मुद्‌गरबन्ध

प्रस्तुत बन्ध का उल्लेख तो 'अग्निपुराण' में मिलता है,[1] किन्तु चित्र अथवा श्लोक प्राप्त नहीं होता। हिन्दी में इस बन्ध का गोकुलकवि के 'चित्रकलाधर' में ही चित्र तथा छन्द मिलता है जो निम्न है—

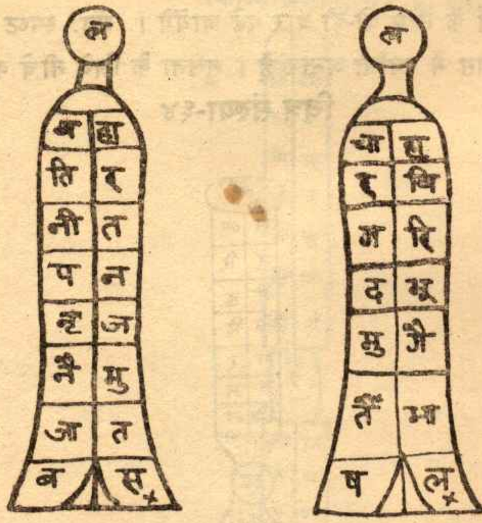
"सब जानैं नृप नीति बल, बसत भुजनतर हाल।
लष तैं मुदगर चाल षल भागैं भूरिविहाल॥"[2]

प्रस्तुत छन्द की रचना में प्रथम चरण के आदि दो वर्ण, द्वितीय चरण के आदि में भी हैं, केवल उनका क्रम विपरीत है। ठीक इसी प्रकार तीसरे चरण के आदि के दो वर्ण

१ अ० ३४३, श्लोक ६४
२. चित्रकलाधर, पृ० ६०

विपरीत क्रम में चौथे चरण के आदि के दोनों वर्ण हैं। इनके अतिरिक्त प्रथम और द्वितीय तथा तृतीय और चतुर्थ दोनों ही चरणयुग्मों के अन्तिम वर्ण एक ही हैं।

चित्र संख्या-६५



मुद्‌गर बन्ध

गुणन चिह्न (×) पाठ के आरम्भ का द्योतक है।

उपर्युक्त चित्र मुद्‌गरयुग्म का है। इसमें छन्द के प्रथम दो चरणों का न्यास एक मुद्‌गर में तथा तीसरे चौथे चरणों का दूसरे में है। प्रत्येक मुद्‌गर में वर्णों का न्यास दो पंक्तियों में किया गया है, केवल मूठ पर एक ही वर्ण है। न्यास का आरम्भ मुद्‌गर के नीचे के मोटे भाग से होता है। प्रथम वर्ण 'स' का न्यास सबसे नीचे दक्षिण पार्श्व में होता है तदनन्तर दूसरे वर्ण 'ब' का वाम पार्श्व में, पुनः वाम पार्श्व में ही ऊपर की दिशा में सम्पूर्ण प्रथम चरण का विन्यास किया जाता है, केवल अन्तिम वर्ण 'ल' को ऊपर की मूठ में लिखा जाता है। दूसरे चरण का प्रथम वर्ण 'ब' है और इसका न्यास वाम पार्श्व में सबसे नीचे हो चुका है, दूसरा वर्ण 'स' है और इसका भी न्यास मुद्‌गर के दक्षिण पार्श्व में नीचे हो चुका है। दूसरे चरण के अन्य वर्णों का न्यास दक्षिण पार्श्व में ही ऊपर की दिशा में होगा, अन्तिम वर्ण 'ल' पुनः मूठ में पहले से ही न्यस्त है। इस प्रकार दोहे के पूर्वार्द्ध का न्यास प्रथम मुद्‌गर में समाप्त हो जाता है। इसी विधि से उत्तरार्द्ध का न्यास भी दूसरे मुद्‌गर में होगा। पढ़ने के लिये सर्वप्रथम मुद्‌गर के सबसे नीचे दक्षिण पार्श्व में स्थित प्रथम वर्ण को पढ़ना होगा, पुनः वाम पार्श्व में न्यस्त सारे वर्णों को उर्ध्वमुख रीति से पढ़ते हुए मूठ में न्यस्त वर्ण 'ल' को पढ़कर प्रथम चरण की प्राप्ति होगी। द्वितीय चरण के उद्धार के लिये मुद्‌गर के वामपार्श्व में स्थित सबसे निचले वर्ण से आरम्भ कर पुनः दक्षिण पार्श्वस्थ सारे वर्णों

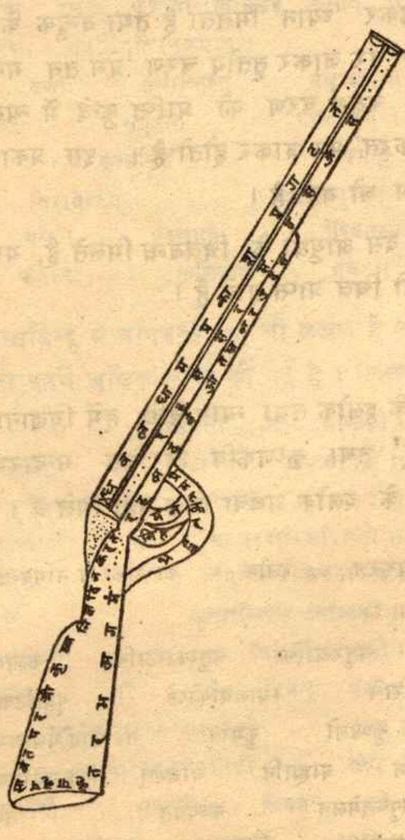
के साथ अन्त में मूठ में स्थित 'ल' वर्ण को पढ़ना होगा। छन्द के तीसरे-चौथे चरणों की प्राप्ति इसी विधि से दूसरे मुद्गर में होगी। मुद्गर का केवल यही चित्र और न्यास हिन्दी में मिलता है।

(त्र) बन्दूक बन्ध

बन्दूक आधुनिक वस्तु है, अतः प्राचीन काल में इस बन्ध के रचे जाने का प्रश्न ही नहीं उठता। हिन्दी में भी यह बन्ध बिहारीलाल भट्ट के 'साहित्यसागर' में मिलता है जो हाल की ही पुस्तक है। अन्यत्र यह बन्ध प्राप्त नहीं होता। इस बन्ध का छन्द एवं चित्र निम्न है—

"धवलधाम प्रकाश प्रगटत सुजस तस रस सहर।
रहस सरसत सज सुखद उर लखत आनंद लहर॥
प्रेम तन मन करत नित ध्यान मंगल भरत।
कृपा नृप सावंत पर श्री कृष्ण निशदिन करत॥"[१]

चित्र संख्या-६६



बन्दूक बन्ध

गुणन चिह्न (×) पाठ के आरम्भ का द्योतक है।

१. साहित्यसागर (भाग-२), तरंग १२, पृ० ५१९

बन्दूक के प्रस्तुत चित्र में उपर्युक्त छन्द का न्यास जिस प्रकार है उसका पाठक्रम निम्न है—

सर्वप्रथम बन्दूक की वाम नालिका के मूलदेश से (जहाँ से नालिका बन्दूक के कुन्दे से निकलती है) आरम्भ कर दक्षिणगति से मुँह तक पढ़ें, पुनः दक्षिण नालिका में न्यस्त वर्णों को वामगति से पढ़ते हुए मूलदेश तक पहुँचने पर छन्द की प्रथम पंक्ति की प्राप्ति होती है। दूसरी पंक्ति के लिये दक्षिण नालिका में न्यस्त वर्णों को ही मूल देश से प्रारम्भ कर पुनः सीधी गति से पढ़ें तथा तीसरी पंक्ति में न्यस्त वर्णों को वामगति से पढ़कर मूलदेश पर पुनः पहुँचें। तीसरी पंक्ति की प्राप्ति हमें सुखपाल और घोड़े अथवा लिबलिबी में होगी। सुखपाल में न्यस्त 'प्रे' वर्ण से आरम्भ करें तथा 'प्रेमत' पढ़कर प्रथम घोड़े में न्यस्त 'न' तथा 'म' वर्णों को सीधे तथा उलटे पढ़ने पर हमें 'प्रेम तन मन' तृतीय चरण के इस अंश की प्राप्ति होती है। दोनों घोड़ों के बीच सुखपाल में न्यस्त 'कर' वर्णों के साथ दूसरे घोड़े में न्यस्त 'त', 'नि', को सीधा एवं उलटा पढ़ने से 'करतनित' अंश की प्राप्ति होती है। आगे सुखपाल स्थित वर्णों को पढ़कर 'ध्यान' मिलता है तथा बन्दूक के कुन्दे में सुखपाल से कुन्दे की ओर की पंक्ति में 'भरत' पर जाकर तृतीय चरण 'प्रेम तन मन करत नित ध्यान मंगल भरत' की प्राप्ति होती है। चतुर्थ चरण की प्राप्ति कुन्दे में न्यस्त अन्य वर्णों को दक्षिण गति से पढ़कर 'निश दिन करत' पर जाकर होती है। इस प्रकार सम्पूर्ण छन्द हमें प्राप्त हो जाता है। न्यास का क्रम भी यही है।

हिन्दी में हमें इन्हीं दस आयुधों के चित्रबन्ध मिलते है, यद्यपि संस्कृत में हल तथा गदा जैसे अन्य आयुधों के भी चित्र प्राप्त होते हैं।

नागबन्ध

संस्कृत में नागबन्ध के श्लोक तथा न्यासविधि हमें विद्यानाथ रचित 'प्रतापरुद्रशोभूषण' अथवा 'प्रतापरुद्रीयम्' तथा कृष्णकवि विरचित 'मन्दारमरन्द चम्पू' में प्राप्त होता है।[1] अन्यत्र इस बन्ध के श्लोक अथवा चित्र नहीं मिले हैं। यों रसरूपकवि रचित

---

१. 'प्रतापरुद्रयशोभूषण' प्रकरण ७, श्लोक ८, की टीका में नागबन्ध की निम्न न्यासविधि दी गई है —

"रेखाभ्यां चतुरस्राणि चतुष्कोष्ठानि कल्पयेत्।
रेखाद्वयान्तराले स्याद्यथाकोष्ठे गृहाष्टकम् ॥१॥
विदिक्षु कुण्डली कुर्यात् तद्रेखाग्रैर्यथाक्रमम्।
दिग्रेखाग्राणि बाह्यानि योजयेत् दिक्त्रयेमिथः ॥२॥
एकत्रतुफणापुच्छमेलनं कल्पयेत् तथा।
अन्तराण्यक्षणयाकुर्यात् संदंशाः स्युर्यथामिथः ॥३॥
वर्णावृत्तिस्थलान्यत्र कोष्ठकोणानिषोडशाः।
सन्दंशानां चतुष्कं च कण्ठश्चेत्येकविंशतिः ॥४॥
आवृत्तिर्युग्म वर्णानां नेतरेषामिहक्वचित्।

'तुलसीभूषण' नामक हिंदी काव्यशास्त्र के ग्रन्थ में शेषबन्ध नामक चित्र में संस्कृत श्लोक को ही न्यस्त किया गया है।[1] उपर्युक्त ग्रन्थों में भी नागबन्ध का एक-एक छन्द ही है, जिनकी न्यासविधि भी एक ही है। इस बन्ध के जो लक्षण इन दोनों ग्रन्थों में दिये गये हैं वे भी एक दूसरे के पूरक ही हैं।

हिन्दी में उपर्युक्त न्यासविधि के अनुसार भी इस बन्ध की रचना हुई है तथा उनसे इतर आठ प्रकार के अन्य नागबन्धों की भी कल्पना की गई है। यद्यपि इन बन्धों में एक दूसरे से बहुत अधिक अन्तर नहीं है और इनका न्यास भी सरल है, फिर भी इनमें कुछ उत्कृष्ट कोटि के बन्ध हैं और चित्रकाव्य की दृष्टि से उनका यथेष्ट महत्त्व है।

अर्केशान दशब्रह्मवर्णाः पादचतुष्कगाः ॥५॥
आवर्तैरन्नैर्ऋ तादि कुण्डलेषु प्रदक्षिणम्।
यथैवं स्यात् तथा वर्णान् फणातो विन्यसेत् क्रमात् ॥६॥
त्रिंशदष्टाविंशतिश्च षड्विंशतिरनुक्रमात्।
वेष्टनत्रितये वर्णाः समाप्तिस्तु गलाक्षरे ॥७॥
सर्वमेतन्निधायान्तः संगृहीतं महात्मभिः।
विदिक्स्थले कुण्डलितं स्वमङ्गं
स्वेन त्रिरावेष्ट्य विभंगिभुग्नम्।
क्षिप्त्वा गले पुच्छमहेः स्थितस्य
पाठ्यः फणातः फणिबन्ध एषः ॥"

'मन्दारमरन्द चम्पू' के बन्धबिन्दु में नागबन्ध का जो लक्षण है वह उपर्युक्त लक्षण का पूरक है, कारण वर्णों की स्थिति इनमें अधिक स्पष्ट की गई है। लक्षण निम्न है :—

"द्वितीयान्त्यौ तथा तुर्यत्रिंशतौ षष्ठ षष्टिकौ।
अष्टमाष्ट त्रिंशतौ च दिक्चतुः षष्टिकावपि ॥
द्वादशेन्द्रौ नाट्यचेष्टाद्विचत्वारिंशतौ तथा।
पीठाष्ट षष्टिकौ च षट्चत्वारिंशविंशती ॥
द्वाविंशत्षट्सप्ततिकौ पञ्चाशत्केशवावपि।
अशीतिषड्विंशती चत्वारिंशत्षष्ठषष्टिकौ ॥
साष्ट पञ्चाशविंशौ च तौ षट् त्रिंशद्द्विषष्टिकौ।
त्रिंशतौ द्विचतुः पूर्वौ तथैव द्विचतुः परौ ॥
पञ्चशतौ चतुश्चत्वारिंशत्सप्ततिकौ तथा।
अष्टाभिरधिकौ चत्वारिंशत्सप्ततिकौ तथा ॥
षट्पञ्चाशत्द्व्यशीती च सप्तती द्विचतुः परे।
इमावुभावुभौ वर्णविक्त्वं भजतो यदि ॥
तदेकनागबन्धस्तु स्रग्धरायां भवेद्ध्रुवम्।
विदग्ध हृदयानन्दपञ्चतुष्कोणाकृतिर्वरः ॥"

१. तुलसीभूषण (हस्तलिखित), पत्र—७

(क) प्रथम चित्र

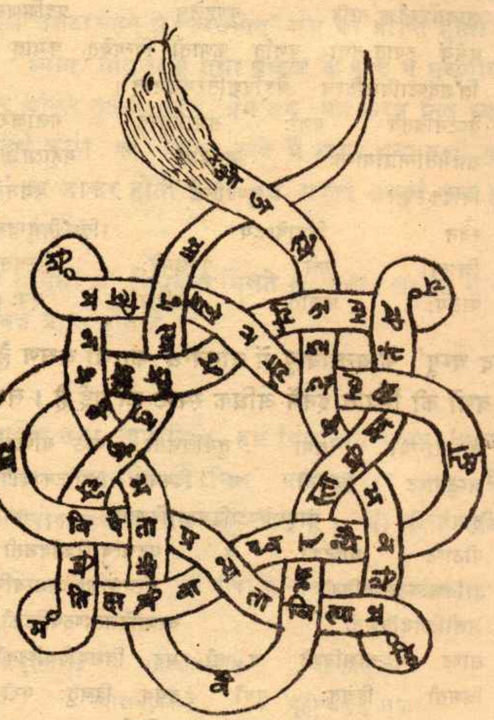
संस्कृत में नागबन्ध का जो चित्र प्राप्त हुआ है उसमें नाग की कुण्डली इस प्रकार है कि कुल ६३ कोष्ठक बनते हैं। इन कोष्ठकों में से ४२ कोष्ठकों में न्यस्त वर्णों की तो आवृत्ति नहीं होती किन्तु शेष २१ कोष्ठकों के वर्णों की आवृत्ति होती है।

चित्र संख्या-६७

न्यास का श्लोक

ओजस्ये रुद्रदेवे विभवति महिम त्याजितान्यप्रतापे
विद्यावर्ये ऽभिनेतर्युरुहरिचरितं विश्वविस्तार भाजि।
वैरिव्राता भजन्ते वनमति मलिनख्यातयो देह विद्धा
वन्यैरुव्वन्यवारिक्षतिमति विविधैजन्तुभिः स्थानभाजः॥

(प्रतापरुद्रयशोभूषण, प्रकरण ७, श्लोक ८)



नाग बन्ध (प्रताप रुद्रीय)

गुणन चिह्न (×) पाठ के आरम्भ को संकेतित करता है।

उपर्युक्त चित्र में विन्यस्त संस्कृत श्लोक स्रग्धरावृत्त में रचित है जिसमें कुल ८४ वर्णों का प्रयोग हुआ है। अतः प्रस्तुत चित्र में संस्कृत का यह श्लोक इस प्रकार न्यस्त होता है कि प्रति कोष्ठक एक वर्ण ही लिखा जाता है किन्तु हिन्दी छन्द में यह बात नहीं है।

हिन्दी में इस प्रकार का चित्र तथा न्यास 'प्रबीनसागर' तथा दौलतविजय गणि लिखित 'चित्रकाव्य' में प्राप्त होता है। चित्र में[1] विन्यस्त 'प्रबीनसागर' के छन्द में कुल १६ चरण हैं तथा प्रत्येक चरण में आठ वर्णों का प्रयोग है। इस प्रकार सम्पूर्ण छन्द में कुल १२८ वर्णों का प्रयोग किया गया है। फलतः चित्र के चारों कोणों में बने कोष्ठकों, चारो दिशाओं में रचित कोष्ठकों तथा सिर के भाग में एक के स्थान में पाँच-पाँच वर्णों का न्यास किया गया है। संस्कृत श्लोक के न्यास में पूछ के भाग में कोई वर्ण नहीं रखा गया है जबकि हिन्दी के प्रस्तुत छन्द के न्यास में पूछ में कई वर्ण हैं। 'प्रबीनसागर' का यह छन्द निम्न है—

"काली नाग के नथन, बारन धन मथन,
सुघर बधू सथन, रसरीत के कथन।
गजराज के धरन, साम बन नयतन,
बसुरीरुत ही वन, थर चर रीझवन।
प्रनय पथर मन, रटन श्रिया करन,
नटवर बरानन, बसुधा गही दसु न।
चक्री के सयन मन, कौस्तुभ दाम सुगन,
मनसा सब पूरन, प्रबीन क्यों मिलाउन॥"[2]

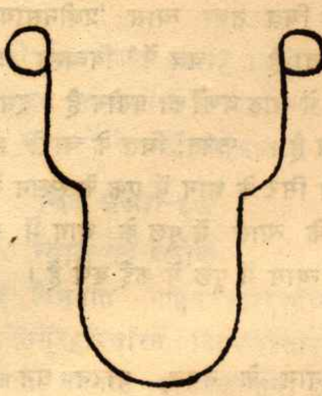
कुण्डली मारे हुए नाग का यह चित्र इस प्रकार है कि सामान्यतः एक चतुरस्र आकार की सृष्टि होती है जिसके चारों कोणों पर चार वलयाकार मण्डल की सृष्टि है तथा चारों दिशाओं में चार अर्द्धवलयाकार मण्डल की। नाग की कुण्डली इस प्रकार है कि सर्वप्रथम सिर से आरम्भ होकर पूर्वदक्षिण कोण पर एक वृत्त में कुण्डली बनती है। पुनः पश्चिम दिशा में अर्द्धवलयाकार रूप में शरीर मुड़ता हुआ पूर्वोत्तर कोण पर एक वृत्ताकार कुण्डली बनाता है। पुनः आगे बढ़कर दक्षिण दिशा में अर्द्धवलय के रूप में शरीर मुड़कर ऊपर की ओर उत्तर पश्चिम कोण पर वृत्ताकार कुण्डली बनाता है। तदनन्तर आगे बढ़कर पुनः पूर्व दिशा में अर्द्धवलय बनता है और उसके बाद दक्षिणपश्चिम कोण में वृत्ताकार कुण्डली बनती है।

पुनः शरीर उत्तर दिशा के मध्य की ओर बढ़ता है और गले को काटता हुआ आगे पूछ में समाप्त होता है। गले और पूछ के मिलनबिन्दु पर शरीर के भाग के साथ अन्य दिशाओं के समान ही उत्तर दिशा के मध्य में भी अर्द्धवलयाकार मण्डल निर्मित हो जाता है। ध्यान से देखने पर चित्र का निर्माण ऐसा होता है कि चारों ही दिशाओं में अंग्रेजी के U वर्ण का चित्र निम्न आकार में निकल आता है—

---

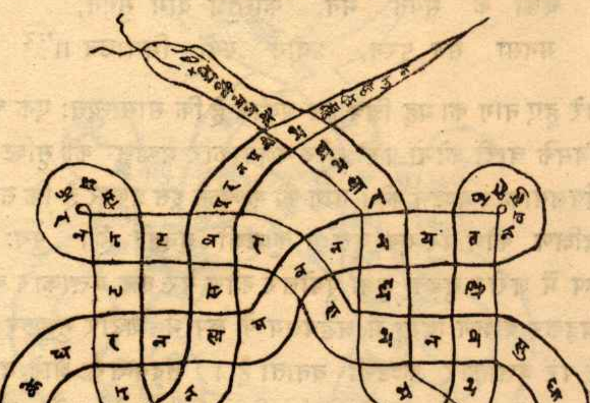
१. द्रष्टव्य चित्र संख्या ६८

२. प्र० सा०, लहर ६४ पृ० ६१९



प्रस्तुत चित्र में क्रमशः उत्तरपश्चिम तथा उत्तरपूर्व कोणों पर वृत्ताकार कुण्डली है तथा दक्षिण दिशा में मध्य में अर्द्धवलयाकार कुण्डली। इस प्रकार चित्र के निर्माण में कुण्डली में शरीर के भाग जहाँ कहीं एक दूसरे को काटते हैं उन स्थानों में न्यस्त वर्णों की आवृत्ति होती है। चित्र निम्नलिखित है—

चित्र संख्या-६८



नाग बन्ध-१

गुणन चिह्न (×) पाठ के आरम्भ का द्योतक है।

चित्र में छन्द के न्यास का आरम्भ सिरवाले भाग से होता है और जैसे-जैसे नाग का शरीर कुण्डली में आगे बढ़ता है, वैसे-वैसे ही कोष्ठकों में वर्ण लिखे जाते हैं। न्यास का यह रूप चित्र में अधिक स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। उपर्युक्त चित्र में हिन्दी के इस छन्द का न्यास इस प्रकार हुआ है कि प्रारम्भ के पाँच वर्ण 'काले नाग के' नाग के सिर में लिखे गये हैं। पुनः गले के पास सिर और पूछ के मिलनबिन्दु पर 'न' वर्ण न्यस्त हुआ है। शरीर के अगले भाग में, जो उत्तर दिशा में बने अर्द्धवलयाकार मण्डल का आधा है 'थन बार' इन चार वर्णों का न्यास किया गया है। तदनन्तर दक्षिणपूर्व कोण पर बने वृत्ताकार मण्डल के पूर्व कुण्डली के कारण नाग के शरीर से जितने कोष्ठक बनते हैं सभी में एक-एक वर्ण का न्यास हुआ है। इस वृत्ताकार कुण्डली में 'बधू सथन' इन पाँच वर्णों का न्यास हुआ है। पुनः पश्चिम दिशा में बने अर्द्धवलयाकार मण्डल के पूर्व के कोष्ठकों में एक-एक वर्ण लिखा गया है तथा उक्त मण्डल में 'जराजकेध'इन पाँच वर्णों का न्यास किया गया है। इसी प्रकार आगे भी सभी वृत्ताकार मण्डलों तथा अर्द्धवलयाकार मण्डलों में पाँच-पाँच वर्णों का न्यास किया गया है तथा अन्य कोष्ठकों में एक-एक वर्ण का। अन्त में पूछ के भाग में छन्द के अन्तिम पाँच वर्ण 'क्यों मिलाउ न' न्यस्त होते हैं।

(ख) दूसराचित्र

नागबन्ध का दूसरा चित्र सन्तकवि सुन्दरदास (छोटे) की 'सुन्दर ग्रन्थावली', जनराज रचित 'कवितारस विनोद' तथा गोकुलकवि के 'चित्रकलाधर' में प्राप्त होता है।[1] इस चित्र का न्यास प्रथम चित्र से अत्यन्त भिन्न है। इस चित्र में नाग के शरीर से सात वृत्ताकार कुण्डलियाँ बनती हैं और अन्त में गले के पास पूछ शरीर को गुणन चिह्न के रूप में काटती है। न तो इस चित्र के निर्माण में और न न्यास में ही अधिक उलझन का सामना करना पड़ता है। चित्र संख्या ६९ में नाग का यह आकार पूर्णतः स्पष्ट है। छन्द के न्यास को समझने के लिये हम गोकुलकवि के 'चित्रकलाधर' का आधार ग्रहण करते हैं। छन्द निम्न है—

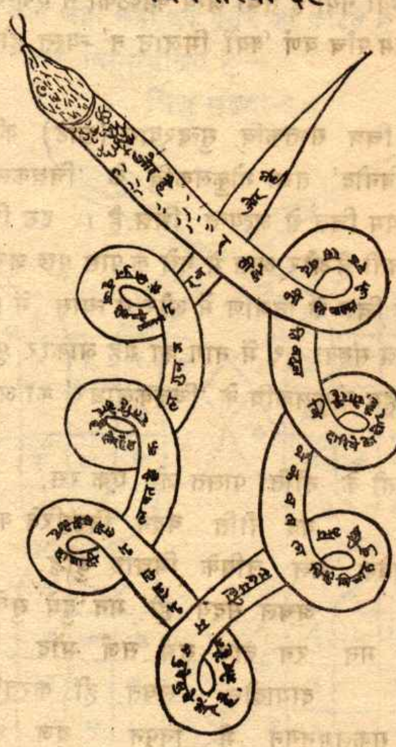
"जो रहै रती के नीति पालत जो एक रस,
वद नीति वदन बिदारिबे कों घोर है।
घोर है विवेक बल लषिकै विचारु बुद्धि,
अचल सदय ही मन दुषे सुषे मोर है।
मोर है न मन रन दान समै सजै मोद
दायादीन लषत हीं करतहि सोर है।
सोर है सकलगुनगन मैं निपुन वृज
रीति यही राजन की नरवर जोर है।"[2]

---

१. सु० ग्र०, पृ० ४०४-४०५
कवितारस विनोद (हस्तलिखित), पत्र २९७
चित्रकलाधर, पृ० ८५
२. चित्रकलाधर, पृ० ८५

प्रस्तुत छन्द यद्यपि सिंहावलोकन युक्त है किन्तु नागबन्ध के इस चित्र के लिये इसकी कोई अनिवार्यता नहीं है। प्रस्तुत चित्र में सात कुण्डलियाँ हैं और एक स्थान पर गला और पूछ का मिलन, अतः इन आठों मिलनस्थलों पर न्यस्त वर्णों की आवृत्ति होती है। इसके अतिरिक्त छन्द का न्यास नाग के शरीर में सिर की ओर से आरम्भ होकर पूछ की ओर सीधा होता है। कुण्डलियों में आकर न्यास वामावर्त्त क्रम से आगे बढ़ता है, क्योंकि इसी क्रम में कुण्डलियों का निर्माण है। चित्र संख्या ६९ में न्यस्त इस छन्द के उद्धार के लिये सर्वप्रथम हम सिर में लिखे 'जोर है' से आरम्भ करें और आगे के वर्णों को पढ़ते हुए दक्षिणदिशा की प्रथम कुण्डली में न्यस्त वर्णों का पाठ वामावर्त्त क्रम से करें। इसी प्रकार आगे बढ़ते हुए पुनः पूछ में स्थित 'जोर है' में आकर समाप्त करें। इस उद्धार-क्रम में सातों कुण्डलियों के मुँह पर के वर्णों का पाठ दो बार होता है और इसी प्रकार गला में स्थित वर्ण की भी आवृत्ति होती है। इन आठ वर्णों की आवृत्तियाँ ही इस चित्र-बन्ध में चमत्कार लाती हैं, अन्यथा प्रस्तुत बन्ध सरल ही है।

चित्र संख्या-६९



नागबन्ध-२

गुणन चिह्न (×) पाठ के आरम्भ का द्योतक है।

दीनदयाल गिरि ने 'वैराग्यदिनेश' नामक अपनी रचना में 'फणीबन्ध' का एक चित्र दिया है। इसका छन्द भी 'चित्रकलाधर' की तरह सिंहावलोकनयुक्त है। यहाँ एक ही नाग के स्थान में दायें-बायें दो नागों के चित्र हैं। ये दोनों ही नाग गले के पास एक दूसरे को काटते हैं तथा दोनों ही अपने शरीर में तीन-तीन कुण्डलियाँ बनाते

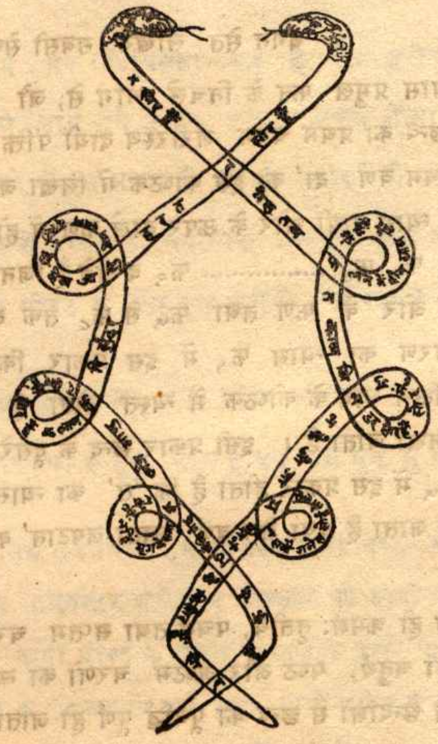
हैं। दोनों की पूछ भी नीचे आपस में इस प्रकार जुड़ी है कि एक कुण्डली बन जाती है। इस प्रकार यद्यपि देखने में यह चित्र पूर्वोक्त चित्र से नितान्त भिन्न प्रतीत होता है, किन्तु तत्त्वतः इनमें कोई अन्तर नहीं है। उसी प्रकार सात कुण्डलियाँ यहाँ भी बनती हैं और गले के पास एक मिलनबिन्दु भी मिलता है। अन्तर यही है कि जहाँ पूर्वोक्त चित्र में गले के पास का मिलनस्थल सिर के भाग तथा पूछ के परस्पर कटने से बनता है वहाँ प्रस्तुत चित्र में दोनों नागों के सिर परस्पर कटते हैं। न्यास की रीति भी पूर्वोक्त ही है, इनमें तनिक भी अन्तर नहीं है। अतः दृष्टरूप में भिन्न होने पर भी मूलतः ये दोनों चित्र एक ही हैं। छन्द एवं चित्र निम्नांकित हैं—

चित्र संख्या-७०

न्यास का छन्द

सोरहै रमेस तव पालन में दीन द्याल, खरे ह्वै के पातकाल जिन डर सो रहैं।
सोरहैं गुनन के जो गाय न सकै गनेस, सोई तो सहाय नित नंद के किसोर हैं॥
सोरहैं कुफंद फँसि मंद न रचे तैं नहिं मृग के समान लगे भानुकर सोर हैं।
सोरहैं कलान करि सुन्दर सुवेस स्याम दरसों को देव जासु हर तर सोर हैं॥

(वैराग्य दिनेश, प्रकाश ४, पृ० १९०)



नागबन्ध-३

गुणन चिह्न (×) पाठ के आरम्भ का द्योतक है।

(ग) नवफणनाग बन्ध

'प्रबीनसागर' में यह चित्रबन्ध प्राप्त होता है। प्रस्तुत चित्र में नाम के अनुरूप ही नाग के नव फणों की सृष्टि हुई है—एक मुख्य फण तथा चार-चार क्रमशः बायीं और दायी ओर। सम्पूर्ण शरीर में दो पंक्तियों में कोष्ठकों का निर्माण किया गया है। आठों गौण फणों तथा शरीरस्थ इन कोष्ठकों में ही छन्द के वर्णों का न्यास होता है। छन्द निम्न है—

"दामिनी दिसा नचान, तरुलता लपटान,
निर्झर लगे बहान, हरता भये गिरान।
सेहरे लगी व्रखान, मोदमन दादरान,
सौमछाये भासमान, नभसुरचापतान ॥
न तहमोनर देर सत पपीहे दाहे नभ
न गहेरी गति गजति उमडी ही आन ॥
नयन व्रखंत वार केकी रव ग्रहि सुधुन,
बगन सेत लखिये सबसो सेन दान ॥"[१]

चित्र में[२] छन्द का न्यास प्रमुख फन के निचले भाग से, जो असली शरीर है, आरम्भ होता है। सर्वप्रथम छन्द का प्रथम चरण शरीरस्थ दायीं पंक्ति के ऊपर वाले कोष्ठक से आरम्भ होता है। प्रथम वर्ण 'दा' को इस कोष्ठक में लिखा जाता है तथा गत विधि से सम्पूर्ण प्रथम चरण का न्यास दायीं ओर के ऊपर वाले फण में होता है। सुविधा के लिये हम फणों की संज्ञा फ$_{१}$ फ$_{२}$ फ$_{3}$ .... फ$_{९}$ दे लेते हैं जिनमें फ$_{९}$ प्रमुख फण है तथा फ$_{१}$ से फ$_{४}$ तक दायीं ओर के फण तथा फ$_{५}$ से फ$_{८}$ तक बायीं ओर के फण हैं। अब छन्द के प्रथम चरण का न्यास फ$_{१}$ में इस प्रकार किया जाता है कि प्रथम वर्ण 'दा' तो फ$_{९}$ के दक्षिण भाग के कोष्ठक में न्यस्त होता है तथा अन्य वर्ण 'मिनी दिसा नचान' फ$_{१}$ में लिखा जाता है। इसी प्रकार छन्द के दूसरे चरण 'तरुलता लपटान' का न्यास बायीं ओर फ$_{५}$ में इस प्रकार होता है कि 'त' का न्यास तो फ$_{९}$ के वाम भाग में निर्मित कोष्ठक में किया जाता है तथा शेष वर्ण 'रुलता लपटान' का न्यास फ$_{५}$ में वामगति से होता है।

उपर्युक्त विधि से ही क्रमशः तृतीय, पंचम तथा सप्तम चरणों का न्यास फ$_{२}$, फ$_{3}$ तथा फ$_{४}$ में होता है तथा चतुर्थ, षष्ठ और अष्टम चरणों का न्यास फ$_{६}$ फ$_{७}$ तथा फ$_{८}$ में। इन फणों में न्यस्त छन्दांशों से छन्द का पूर्वार्द्ध पूर्ण हो जाता है।

१. प्र० सा०, लहर ६४, पृ० ६३४

२. द्रष्टव्य, चित्र संख्या ७१

छन्द के उत्तरार्द्ध यानी नवें चरण से सोलहवें चरण तक का न्यास नाग के शरीर में होता है। नाग के शरीर के ऊपर के भाग में बायीं तथा दायीं दोनों ओर के चार-चार कोष्ठक छन्द के पूर्वार्द्ध के आठों चरणों के आदि वर्णों से भरे जा चुके हैं। फ० के मुंह पर तथा नाग की पूछ के अन्तिम भाग पर एक-एक कोष्ठक है, बीच के सम्पूर्ण शरीर पर कोष्ठकों की दो पंक्तियाँ हैं।

नाग के शीशस्थ उभयनिष्ठ कोष्ठक में नवें चरण का प्रथम वर्ण 'न' लिखा गया है पुनः बायीं पंक्ति के कोष्ठकों में लिखित वर्णों को लेते हुए पूछ में स्थित उभयनिष्ठ कोष्ठक तक में नवें से बारहवें चरण तक का न्यास सम्पन्न हो जाता है। तेरहवें चरण का प्रथम वर्ण पुच्छस्थ उभयनिष्ठ कोष्ठक में लिखित वर्ण ही होता है और पूछ की ओर से सिर की ओर चलकर दायीं पंक्ति में बने कोष्ठकों में तेरहवें से सोलहवें चरण तक का न्यास होता है। सोलहवें चरण अथवा छन्द का अन्तिम वर्ण शीशस्थ उभयनिष्ठ कोष्ठक में पहले ही लिखा जा चुका है। इस प्रकार प्रस्तुत छन्द का न्यास पूर्ण होता है।

प्रस्तुत न्यास में एक विचित्रता यह है कि शरीर के ऊपरी भाग में स्थित कोष्ठकों के वर्णों को साथ लेने से एक सोरठा निकल आता है। संस्कृत के चित्र-बन्धों में विशेषतः चक्रबन्धों में इस प्रकार के गर्भस्थ श्लोकों की योजना अधिक होती थी। इन श्लोकों में बहुधा कवि से सम्बद्ध परिचयात्मक विवरण हुआ करते थे। किन्तु प्रस्तुत चित्र से निःसृत होने वाले सोरठे में वैसा कुछ नहीं है। सोरठा है—

"न त दाहन मो सेन, सोर वदे सर ए सखी।
तलपत पी से हेन, दाग हे बन नभ धुन सु गहि॥"

इस सोरठे के उद्धार के लिये सर्वप्रथम हमें शीशस्थ उभयनिष्ठ कोष्ठक में स्थित वर्ण 'न' से आरम्भ करना होगा। तदनन्तर शरीरस्थ कोष्ठकों की बायीं पंक्ति के प्रथम कोष्ठक के वर्ण 'त' को पढ़ेंगे, पुनः दायीं पंक्ति के प्रथम कोष्ठक के वर्ण 'दा' का पाठ होगा। इसी प्रकार पहले बायीं पंक्ति के कोष्ठक के वर्ण, पुनः दायीं पंक्ति के कोष्ठक के वर्ण पढ़ते हुए पूछ की ओर बढ़ने से सम्पूर्ण सोरठे की प्राप्ति हो जायगी। सम्पूर्ण छन्द के उद्धार के लिये न्यासविधि का ही अनुकरण करना होगा। सम्बद्ध चित्र निम्नलिखित है—

चित्र संख्या-७१

न्यास का छन्द

दामिनी दिसा नचान, तरुलता लपटान, निर्झर लगे बहान, हरता भये गिरान ।
सेहरे लगी ब्रखान, मोदमन दादरान, सोमछाये भासमान, नभ सुरचापतान ।।
न तहमोनर देर सत पपीहे दाहे नभ नगहेरी गति गजत उमडी ही आन ।।
नयन ब्रखंत वार केकी रव ग्रही सुधुन, बगन सेत लखिये सब सो सेन दान ।।



नवफण नाग बन्ध

चित्र के काले प्रखण्डों में न्यस्त वर्णों के पाठ से निम्न सोरठा निःसृत होता है—

"नत दाहन मो सेन, सोर वदे सर ए सखी ।
तलपत पी से हेन, दाग हे बन नभ धुन सु गहि ।।"

(घ) नागपाश बन्ध

प्रस्तुत बन्ध की योजना भी हमें 'प्रबीनसागर' में ही मिलती है । यह चित्रबन्ध उत्कृष्ट कोटि का है जिसकी योजना में कहीं किसी प्रकार का स्खलन नहीं दीखता । इस चित्र में एक नाग ने ही अपने शरीर को कुण्डली में इस प्रकार बाँधा है कि पन्द्रह स्थानों पर शरीर के भाग एक दूसरे को काटते हैं । इन स्थानों पर एक-एक वर्ण रखा गया है । निश्चित ही पाठ में विभिन्न मिलनबिन्दुओं पर स्थित इन वर्णों की आवृत्ति होगी । इनके अतिरिक्त शरीर के उन भागों में जो दो मिलनबिन्दुओं के बीच में पड़ते हैं, तीन-तीन वर्णों की योजना है । इस व्यवस्था में कहीं भी व्यतिक्रम नहीं होता । छन्द निम्न है—

"ध्यान के धरनहार, मरुत अहार कर,
शंकर भुजनमंड, विष्णु की सयन है।
लहे नवधा सरूप, सेत तन न विकार
आनन जहेर जुत, महामोद घन है ॥
सुघर सुकाव्यकर, मेहेर ह्दे वसंत
नाद रीझवारे तत्त्व, सत्वयती गन है ।
सोहत सहस्र सरी, रसनजमल जान,
गोधारक शेष तुम, हमारी न मनि है।"[1]

निम्नांकित चित्र (संख्या ७२) में न्यस्त इस छन्द की व्यवस्था यह है कि न्यास का आरम्भ सिर के भाग से होता है और प्रथम मिलनबिन्दु तथा सिर के बीच छन्द के आदि के चार वर्ण लिखे जाते हैं। पंचम वर्ण 'र' का न्यास सिर और धड़ के मिलनबिन्दु पर होता है।

चित्र संख्या-७२



नागपाश बन्ध

१. प्र० सा०, लहर ६५, पृ० ६७३

आगे बढ़ने पर द्वितीय मिलनबिन्दु शरीर के ऊपरी भाग तथा पूछ का है, यहाँ नवम वर्ण 'न' लिखा जाता है। षष्ठ, सप्तम तथा अष्टम वर्ण 'नहार' का न्यास इन दोनों ही मिलन-बिन्दुओं के बीच पड़नेवाले शरीर के भाग में होता है।

कुण्डली में इसी प्रकार के सिर से पूछ की दिशा में छन्द का न्यास होता चलता है। मिलनबिन्दुओं पर प्रत्येक चौथे वर्ण का न्यास होता है तथा दो मिलनबिन्दुओं के बीच के शरीर के भाग में बीच के तीन वर्णों का। इसी विधि से पूछ के अन्तिम भाग में छन्द के अन्तिम तीन वर्ण 'मनि है' लिखे गये हैं। उपर्युक्त चित्र के सहारे कुण्डली के सारे मोड़ तथा न्यास की दिशा अधिक स्पष्ट हो सकेगी।

(ङ) नागशिशु बन्ध

चतुःनागशिशु बन्ध

'प्रबीनसागर' में नागशिशु बन्ध के दो चित्र हैं। एक में चार नागशिशुओं की योजना है, दूसरे में आठ की। दोनों चित्रों में न्यास की विधियाँ अलग-अलग हैं। दोनों के छन्द भी भिन्न हैं। चतुर्नागशिशु बन्ध का छन्द निम्न है—

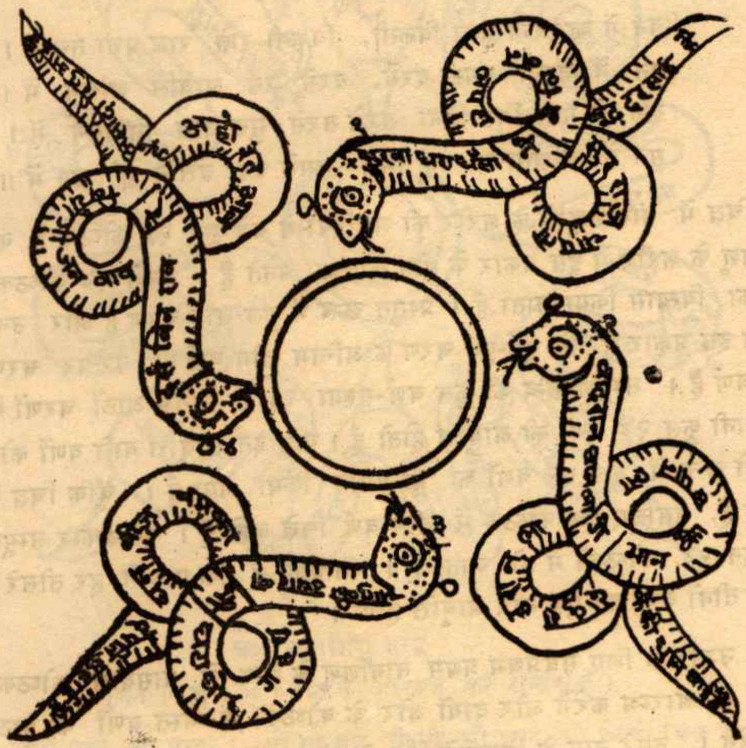
"धुरवा धरा धसाने बेलिबन लपटाने,
सुरराज चाप ताने बूढ़ दरसाई है।
बादरान छान लागे, भान को छपान लागे,
दादुरा डरान लागे, केकी धुनि छाई है॥
चातुकी उचार बानी, घटा घोर गहरानी,
घन बीज चमकानी, दंपति सुहाई है।
दर्स बिन रावरे, वियोगी जन बावरे,
हे अहो इत आवरे, असाढ़ी रितु आई है॥[1]

प्रस्तुत चित्र (संख्या ७३) में प्रत्येक नागशिशु का शरीर दो कुण्डलियों में मुड़ा है। यों दोनों कुण्डलियाँ वृत्ताकार हैं और अगल-बगल इस प्रकार बनी हैं कि सिर ऊपर की ओर तथा पूछ नीचे की ओर है। छन्द के सोलह चरणों में से प्रत्येक नागशिशु में चार-चार चरणों का न्यास होता है। इस प्रकार प्रथम नागशिशु में छन्द की प्रथम दो पंक्तियों का न्यास होता है। सर्वप्रथम सिर के निकले हुए भाग में 'धुरवा धरा धँसा' का न्यास पूछ की दिशा में किया जाता है। पुनः 'ने' की अवस्थिति दोनों ही वृत्ताकार मण्डलों के उभयनिष्ठ बिन्दु पर होती है। तदनन्तर दक्षिण भाग के मण्डल में वामगति से (घड़ी की सूई की उलटी गति से) 'बेलिवन लपटा' का न्यास करते हुए 'ने' पर आ जाते हैं। इसके बाद बायीं ओर के मण्डल में घड़ी की सूई की दिशा में 'सुरराज चाप ता' का न्यास कर हम पुनः 'ने' पर चले आते हैं, तथा चौथे चरण 'बूढ़ दरसाई है' का न्यास पूछ में ऊपर से नीचे की ओर

१. प्र० सा०, लहर ६४, पृ० ६३३

होता है। इस प्रकार छन्द के प्रथम चार चरणों का न्यास प्रथम नागशिशु में होता है। छन्द के अन्य अंशों का न्यास भी इसी विधि से क्रमशः अन्य तीनों नागशिशुओं में होगा। न्यास की विधि तथा क्रम समान ही रहेगा।

चित्र संख्या ७३

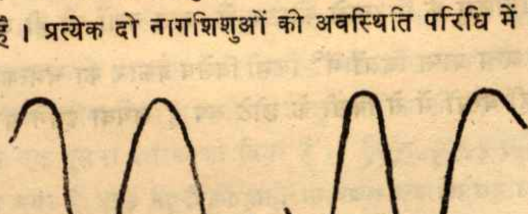


चतुःनागशिशु बन्ध

गुणन चिह्न (×) पाठ के आरम्भ का द्योतक है।

अष्टनागशिशु बन्ध

प्रस्तुत चित्र[1] में अष्टनागशिशुओं की योजना सर्पगति से युक्त एक वृत्ताकार मण्डल के रूप में की गई है। प्रत्येक दो नागशिशुओं की अवस्थिति परिधि में निम्न रूप में है—



(I) (II)

१. द्रष्टव्य चित्र संख्या ७४

इसमें एक की पूछ के साथ दूसरे का मुँह जुड़ा हुआ है। इस प्रकार एक के बाद एक करके आठों नागशिशुओं के चित्र मिलकर सर्पगतियुक्त परिधि का निर्माण करते हैं। परिधि में जो कोष्ठक बनते हैं, उनमें ही छन्द के वर्णों का न्यास होता है। छन्द निम्न है—

"वन में ऋतुराज प्रभा विकसी, विकसी रति राज प्रभा तन में।
तन में बिरहा प्रगटी दरसे, दरसे रस आवलि आँखन में॥
खन में मन मित बिना तरसे तरसे सुख बास निवासन में।
सन में सखिसागर ज्यूँ नमले नमले वन व्रत्तनि ह्वै बन में॥"[1]

चित्र में नागशिशुओं के शरीर की लहरियों से बने कुल २४ कोष्ठक हैं, कारण प्रत्येक नागशिशु के शरीर से इस प्रकार के तीन कोष्ठक बनते हैं। इन्हीं २४ कोष्ठकों में सम्पूर्ण छन्द का विन्यास किया जाता है। प्रस्तुत छन्द में कुल आठ चरण हैं और उनमें वर्णों की योजना इस प्रकार है कि पूर्व-पूर्व चरण के अन्तिम तीन वर्ण ही पर-पर चरण के आदि तीनों वर्ण हैं। सम्पूर्ण छन्द की कुल वर्ण-संख्या ९६ है, जिनमें आठों चरणों के तीन-तीन वर्णों यानी कुल २४ वर्णों की आवृत्ति होती है। यदि इन आवृत्ति वाले वर्णों को छोड़ दिया जाय तो छन्द में कुल ७२ वर्णों का ही प्रयोग किया गया है। चूँकि चित्र में कुल २४ कोष्ठक हैं, इसलिए एक कोष्ठक में तीन वर्ण लिखे जाते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण छन्द का न्यास इन २४ कोष्ठकों में हो जाता है। निश्चित है कि पाठ में हर तीसरे कोष्ठक में लिखित तीनों वर्णों की एक बार आवृत्ति होगी।

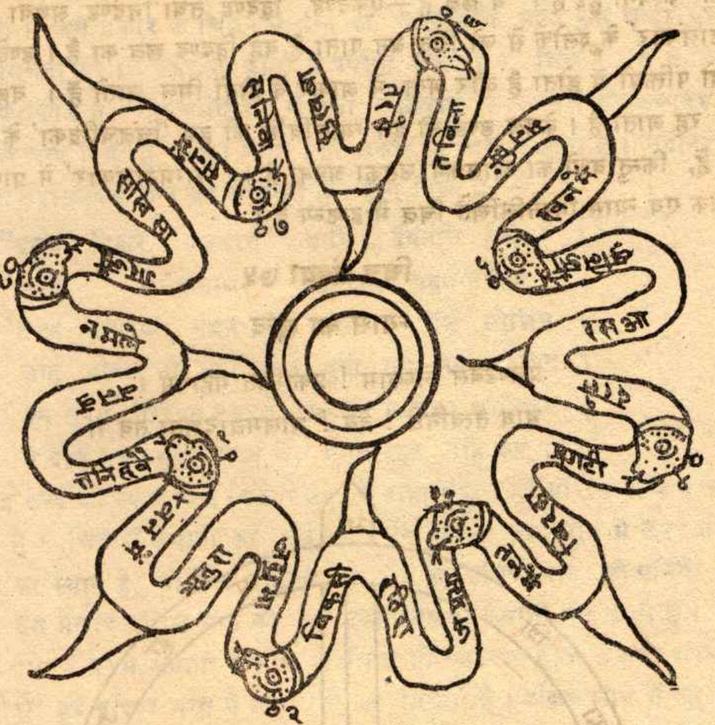
उद्धार के लिए सर्वप्रथम प्रथम नागशिशु के सिर के पासवाले कोष्ठक में न्यस्त 'वन में' से आरम्भ करेंगे और दायीं ओर के कोष्ठकों में न्यस्त वर्णों का पाठ करते हुए आगे बढ़ेंगे। दूसरे नाग के सिरवाले भाग के कोष्ठक में न्यस्त 'विकसी' के साथ ही प्रथम चरण समाप्त होगा। द्वितीय चरण का आरम्भ पुनः इसी 'विकसी' को दुहराकर करेंगे और तब आगे के कोष्ठकों में न्यस्त वर्णों को पढ़ेंगे। इस क्रम में चरणान्त के वर्णों को दुहरायेंगे। छन्द का अन्त प्रथम नाग के सिरवाले कोष्ठक में न्यस्त 'वन में' के पाठ से ही होगा। इस प्रकार प्रत्येक नागशिशु के सिरवाले कोष्ठक में न्यस्त वर्णों की ही आवृत्ति होगी।

नागबन्ध के अन्य प्राप्त चित्रों में[2] किसी विशेष प्रकार का चमत्कार दृष्टिगोचर नहीं होता। वे या तो इन्हीं बन्धों में से किसी के छोटे रूप हैं अथवा इतने सरल हैं कि चित्र का

१. प्र० सा०, लहर ६४, पृ० ६३५

२. (क) आद्यन्त मुख सर्प बन्ध—प्र० सा०, लहर ६४, पृ० ६४४
(ख) नागबन्ध—चरण विनोद, खण्ड १, पृ० १७५
(ग) नागयुग्म बन्ध—कवितारस विनोद (ह०) पत्र २९८
(घ) नागबन्ध—काव्यसुधाकर, कला १३, पृ० ३९
(ङ) नागबन्ध—का० शि० ग्रं० (साधोगिरि गोस्वामी), पृ० ८१

चित्र संख्या-७४



अष्ट नागशिशु बन्ध

गुणन चिह्न (×) पाठ के आरम्भ का द्योतक है।

चमत्कार उनमें नहीं आ पाता। यों तो हम किसी भी छन्द को किसी चित्र में लिख दे सकते हैं। असल चमत्कार इन चित्रबन्धों में आवृत्तिगत होता है और इनका अभाव इनमें है।

छत्रबन्ध

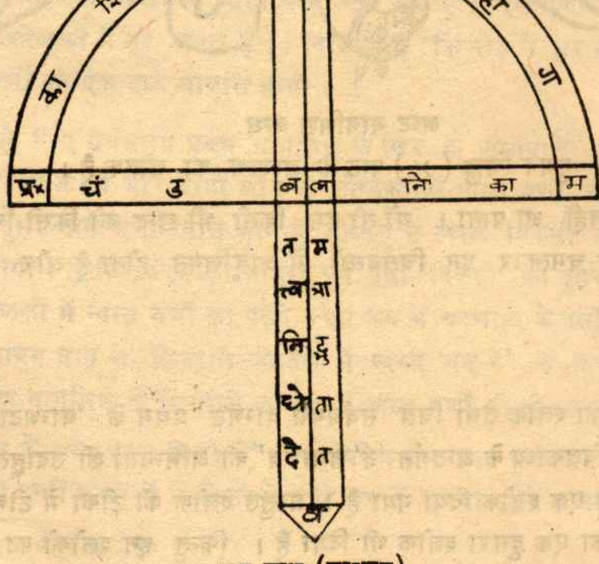
छत्रबन्ध का श्लोक तथा चित्र सर्वप्रथम वाग्भट प्रथम के 'वाग्भटालंकार' में हमें प्राप्त होता है। चित्रकाव्य के अन्तर्गत 'ब' तथा 'व' की अभिन्नता को उदाहृत करने के क्रम में प्रस्तुत बन्ध का एक श्लोक दिया गया है। प्रस्तुत श्लोक की टीका में टीकाकार सिंहदेव गणि ने छत्रबन्ध का एक दूसरा श्लोक भी दिया है। किन्तु इन श्लोकों का न्यास चित्र में जिस विधि से किया गया है, उसे हिन्दी में कहीं अपनाया गया नहीं दीखता। छत्र हिन्दी का प्रिय बन्ध रहा है और चित्रकाव्य के अधिकांश रचयिताओं ने इस बन्ध की रचना की है। किन्तु इन रचनाओं में एकाधिक न्यासविधियाँ अपनाई गई हैं। इनमें से कोई भी विधि शतशः संस्कृत में प्रचलित उपर्युक्त विधि के समान नहीं दीखती। इस क्षेत्र में हिन्दीकवियों ने संस्कृत का अनुकरणमात्र नहीं किया है।

सामान्यतः तीन प्रकार के छत्र लोक में प्रचलित थे और इन्हीं तीनों रूपों में छत्र-बन्ध की कल्पना हुई है। ये छत्र हैं—एकदण्ड, द्विदण्ड तथा निर्दण्ड अथवा मेघडम्बर। 'वाग्भटालंकार' के श्लोक से जो चित्र बन पाता है वह द्विदण्ड छत्र का है। डण्डे में वर्णों का न्यास दो पंक्तियों में होता है और अन्त में आकर वे दोनों मिल जाती हैं। वहाँ केवल एक ही वर्ण रह जाता है। केवल डण्डे की इस न्यासविधि को हम 'चित्रचन्द्रिका' के द्विदण्ड छत्र में पाते हैं, किन्तु वर्णों का न्यासक्रम उसका अपना है। 'वाग्भटालंकार' में प्राप्त छत्रबन्ध का श्लोक एवं न्यास निम्नलिखित चित्र में द्रष्टव्य है।

चित्र संख्या ७५

न्यास का छन्द

प्रचण्डबल निष्काम ! प्रकाशित महागम ।
भाव तत्वनिधे ! देव ! भालमत्राद्भुता तव ।।



छत्र बन्ध (वाग्भट)

गुणन चिह्न (×) पाठ के आरम्भ का द्योतक है।

(क) छत्रबन्ध (प्रथम प्रकार)

हिन्दी में छत्र बन्ध का जो चित्र सर्वोत्कृष्ट तथा सर्वप्रचलित रहा है उसमें एक दण्ड के अतिरिक्त छह कमानी तथा दो वलयाकार मण्डल होते थे। एक मण्डल

जो बाहरी होता था, वह तो छत्र के कपड़े का स्थानापन्न होता था तथा दूसरा मण्डल आभ्यन्तर मण्डल होता था। इस प्रकार के चित्र में छन्द की न्यासविधि बहुत कुछ अष्टारचक्र की न्यासविधि से मिलती थी। फिर भी दोनों में पर्याप्त अन्तर है। भिखारीदास ने 'काव्य-निर्णय' में, गोकुलकवि ने 'चित्रकलाधर' में तथा लछिराम ने 'रावणेश्वर-कल्पतरु' में[१] छत्रबन्ध के जो छन्द दिये हैं उनका न्यास इसी प्रकार के चित्र में होता है। उदाहरण के लिए हम भिखारीदासप्रदत्त छन्द को ले सकते हैं। छन्द निम्न है—

"दनुज निकर दलदरन दानि देवतनि अभैबर।
सरद सर्बरीनाथ बदन-सत-मदन-गर्बहर।
तरुन कमलदल नयन सिर ललित पाँखै सोभित।
लहि भोरी मो बीर सुसम दुति तन मन लोभित।
तन सरस नीरप्रद नयहुतें, मरकत छबिहर कांतिबर।
ते दास परम सुख सदन जे, मगन रहत यहि रूप पर॥"

प्रस्तुत छन्द का न्यास चित्र (संख्या ७६) में बाह्य मण्डल की परिधि के वाम भाग से प्रारम्भ होता है। चित्र में कमानी का क्रम यह है कि छत्र के वाम भाग में ऊपर की ओर प्रथम कमानी का स्थान है, जो केन्द्र से होती हुई छत्र के दक्षिण भाग की परिधि से जा मिलती है। इस प्रकार दक्षिण भाग की वह सबसे निचली कमानी बन जाती है। दूसरी कमानी वाम भाग में प्रथम कमानी के नीचे परिधि से ही आरम्भ होती है तथा अपनी सीध में केन्द्र से होती हुई दक्षिण भाग में परिधि से जा मिलती है। दक्षिण भाग में यह कमानी पहली कमानी से ऊपर रहती है। तीसरी कमानी का आरम्भ भी वाम भाग में परिधि से ही होता है। अन्य दो कमानियों के भी नीचे यह कमानी है। किन्तु केन्द्र से गुजरती हुई जब यह कमानी दक्षिण भाग की परिधि को छूती है तो दक्षिण भाग में स्थित अन्य दोनों कमानियों से ऊपर हो जाती है। चित्र में इन कमानियों की संख्या केवल तीन ही रखी गई है और न्यास के क्रम को स्पष्ट करने के लिए उन्हें १, २, ३ के द्वारा दिखाया गया है। दक्षिण भाग में कोई संख्या नहीं है, कारण दक्षिण भाग की तीनों कमानियाँ, वाम भाग की कमानियों के बढ़े हुए अंश हैं। ४ की संख्या आभ्यन्तर वलय के आरम्भ में छत्र के वाम भाग में दी गई है, ५ की परिधि अथवा बाह्य वलय के आरम्भ में। इस प्रकार ५ और ३ दोनों संख्याएँ एक ही स्थल पर आती हैं। इसका कारण यह है कि तीसरी कमानी तथा बाह्य वलय अथवा छत्रपट में न्यास का आरम्भबिन्दु यही स्थल है। ६ की संख्या छत्रपट के मध्य में ऊपर छत्रपट तथा दण्ड के मिलनबिन्दु पर है, यही मिलनबिन्दु दण्डस्थित वर्णों के न्यास का आरम्भबिन्दु है। इस प्रकार यदि हम इन संख्याओं के क्रमानुसार आगे बढ़ें तो चित्र में छन्द का न्यास स्पष्ट हो जायगा।

१. का० नि०, अ० २१, छन्द संख्या ७०
चि० क०, पृ० ८२
रा० क०, कुसुम-११, पृ० १०-११

सर्वप्रथम पहली कमानी तथा छत्रपट के मिलनबिन्दु पर हम छन्द के प्रथम चरण के प्रथम वर्ण 'द' को लिखते हैं। पुनः कमानी में सम्पूर्ण चरण का न्यास इस प्रकार करते हैं कि छत्रपट तथा आभ्यन्तर वलय के बीच में पड़नेवाले कमानी के भाग में 'नुजनिक' ये चार वर्ण लिखे जाते हैं। चरण का छठा वर्ण 'र' आभ्यन्तर वलय तथा कमानी के मिलन-बिन्दु पर न्यस्त होता है। पुनः छत्र के केन्द्र तथा आभ्यन्तर वलय के बीच पड़नेवाले कमानी के भाग में अगले चार वर्णों का न्यास किया जाता है। ये चार वर्ण हैं 'द', 'ल', 'द', 'र'। ग्यारहवें अक्षर 'न' का न्यास केन्द्र में होता है। यह कमानी आगे बढ़कर दक्षिण परिधि (छत्रपट) में भी जा मिलती है। अतः प्रस्तुत चरण के अन्तिम दस वर्णों का न्यास भी इसी विधि से कमानी के इस उत्तरार्द्ध में होता है। 'दा', 'नि', 'दे', 'व', केन्द्र तथा आभ्यन्तर वलय के बीच पड़नेवाले कमानी के भाग में होते हैं, 'त' आभ्यन्तर वलय के साथ उसके मिलनबिन्दु पर लिखा जाता है, पुनः 'नि, अ, भै, ब' की अवस्थिति आभ्यन्तर वलय तथा छत्रपट के बीच पड़नेवाले कमानी के भाग में होती है तथा चरण के अन्तिम वर्ण 'र' की अवस्थिति छत्रपट तथा कमानी के मिलनबिन्दु (दक्षिण भाग में) पर होती है। इस प्रकार प्रथम कमानी में छन्द के प्रथम चरण का न्यास सम्पन्न होता है।

प्रस्तुत छन्द के प्रथम तीन चरणों में से प्रत्येक में वर्णों की संख्या २१ है तथा मध्य यानी ग्यारहवाँ वर्ण 'न' है। इसी ग्यारहवें वर्ण 'न' की अवस्थिति केन्द्र में है। अन्य दोनों चरणों के वर्णों का न्यास द्वितीय तथा तृतीय कमानियों में ठीक ऊपर की विधि से ही होगा। कमानी तथा छत्रपट और आभ्यन्तर वलय के मिलनबिन्दुओं पर क्रमशः चरण के पहले, छठे, सोलहवें तथा इक्कीसवें वर्णों की स्थिति होगी। बीच के भाग में चार-चार वर्ण रहेंगे। प्रत्येक कमानी का आदिबिन्दु संख्या की अवस्थिति से सूचित होता है।

छन्द के चौथे चरण का न्यास छत्रस्थ आभ्यन्तर वलय में होता है। आरम्भ के स्थल को चित्र में ४ की संख्या से स्पष्ट किया गया है। इस आभ्यन्तर वलय में तीनों कमानियों के छह मिलनबिन्दुओं पर (तीन बायीं तथा तीन दायीं ओर) छह वर्णों का न्यास पहले ही हो चुका है। चौथे चरण के न्यास में इन स्थलों पर इन वर्णों की आवृत्ति होगी; क्योंकि इस चरण में इन स्थलों पर ये ही वर्ण हैं। चौथे चरण का प्रथम वर्ण 'ल' है, जिसका न्यास तीसरी कमानी तथा आभ्यन्तर वलय के मिलनबिन्दु पर पहले ही किया जा चुका है। कमानियों के मिलनबिन्दुओं के बीच में पड़नेवाले इस आभ्यन्तर वलय के प्रत्येक भाग में दो वर्णों का न्यास किया गया है। इस प्रकार के कुल छह अंश हैं और इनमें बारह वर्णों का न्यास होता है। छहो कमानियों तथा एक दण्ड को लेकर आभ्यन्तर वलय में सात मिलनबिन्दु हैं, जिनमें कुल सात वर्णों का न्यास है। इस प्रकार चतुर्थ चरण में कुल उन्नीस वर्ण ही हैं। न्यास की दिशा बायीं ओर से दायीं ओर है यानी घड़ी की सूई की गति दिशा में न्यास आगे बढ़ता है।

कहा जा चुका है कि ५ वहीं पड़ता है जहाँ ३ है। अतः कमानी तीन का आदि वर्ण ही छत्रपट का आदि वर्ण भी है और वहीं से पंचम चरण का न्यास भी आरम्भ होता

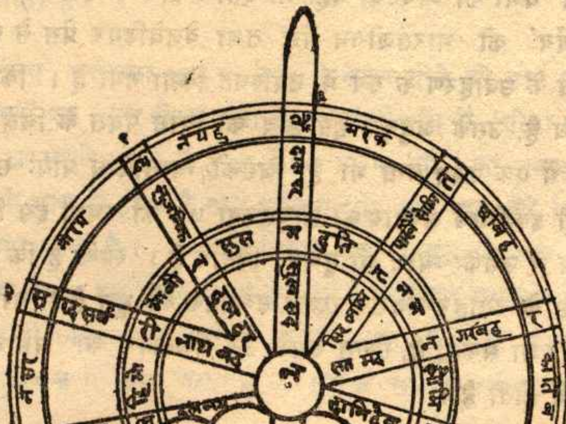
है। न्यास बिलकुल आभ्यन्तर वलय में न्यस्त चतुर्थ चरण के न्यास के समान ही होगा; क्योंकि छत्रपट के भी कमानियों तथा दण्ड से कटकर छह भाग हो जाते हैं और इनमें भी सात मिलनबिन्दुओं पर सात वर्णों का पहले ही न्यास हो चुका है। चूँकि इस चरण में वर्णों की संख्या २५ है, इसलिए मिलनबिदुन्ओं के द्वारा कटे हुए छत्रपट के भागों में से प्रत्येक में दो के स्थान में तीन वर्णों का न्यास किया जाता है।

षष्ठ अथवा अन्तिम चरण का न्यास दण्ड में कमानी की रीति से ही होता है। किन्तु यहाँ दण्ड का ऊपरी भाग ही कमानी के रूप में दीख पड़ता है, अतः कमानी की

चित्र संख्या-७६

न्यास का छन्द

दनुज निकर दल दरन दानि देवतनि अभैबर।
सरद सर्बरीनाथ बदन सत मदन गर्बहर।
तरुन कमलदल नयन सिर ललित पाँखे सोभित।
लहि भोरी मो बीर सुसम दुति तन मन लोभित।
तन सरस नीरप्रद नयहुतें, मरकत छबिहर कांतिबर।
ते दास परम सुख सदन जे, मगन रहत यहि रूप पर॥



छत्रबन्ध-१

विधि से न्यास भी केवल षष्ठ चरण के पूर्वार्द्ध का ही होता है। उत्तरार्द्ध को यों ही दण्ड में लिख देते हैं। षष्ठ चरण का भी ग्यारहवाँ वर्ण 'न' है और इसकी अवस्थिति केन्द्र में है ही। दण्ड में न्यास का आरम्भबिन्दु छन्द में ६ की संख्या से संकेतित है। चरण का आदि वर्ण 'ते' तो छत्रपट में है और षष्ठ वर्ण 'म' आभ्यन्तर वलय में, ग्यारहवाँ वर्ण 'न' केन्द्र में पहले से है। बीच के वर्ण मिलनबिन्दुओं के बीच के भाग में हैं। बारहवें से चौबीसवें वर्ण तक को सीधी रीति से दण्ड के निचले भाग में लिख दिया गया है। इस प्रकार चित्र में सम्पूर्ण छन्द का न्यास सम्पन्न हो जाता है।

प्रस्तुत चित्रबन्ध[1] में रचना का चमत्कार यह है कि केन्द्र का वर्ण तीनों कमानियों तथा दण्ड में न्यस्त चरणों का मध्य वर्ण है, अतः छन्द के उद्धार में इसकी आवृत्ति चार बार होती है। इसी प्रकार आभ्यन्तर वलय तथा बाह्य वलय अथवा छत्रपट में स्थित मिलन-बिन्दुओं पर लिखित वर्णों की आवृत्ति भी उद्धार के क्रम में होती है, क्योंकि एक बार तो वे वर्ण कमानियों अथवा दण्ड में न्यस्त छन्दांशों के पाठ के समय में पढ़े जाते हैं, पुनः उनका पाठ आभ्यन्तर वलय अथवा छत्रपट में न्यस्त छन्दांशों के साथ भी होता है। यह भिखारी-दास का कौशल है कि न्यास बिलकुल निर्दोष है तथा उन्होंने न्यास के प्रत्येक स्थल पर वर्ण-संख्या तथा क्रम की रक्षा की है। इस दृष्टि से 'रावणेश्वरकल्पतरु' के छत्रबन्ध के चित्र भी पर्याप्त निर्दोष हैं। वर्णों की व्यवस्था वहाँ भी इसी प्रकार की है।

'काव्यनिर्णय' की भारतजीवन प्रेस तथा वेलवेडियर प्रेस से छपी प्रति में प्रस्तुत छन्द को पर्वत बन्ध के उदाहरण के रूप में उपस्थित किया गया है। किन्तु पर्वत बन्ध की जो प्रचलित विधि है, उसके अनुकूल इस छन्द का न्यास पर्वत के चित्र में नहीं बैठता है। उन थोड़े से बन्धों में एक पर्वत बन्ध भी है, जिसकी न्यासविधि प्रायः सर्वत्र एक ही है। 'काव्यनिर्णय' में ही इक्कीसवें अध्याय की छन्दसंख्या ७१ की रचना इस विधि से हुई है और पर्वत बन्ध के चित्र में उसका न्यास भी पूर्णतः निर्दोष है। स्पष्ट है कि उक्त प्रतियों में इस छन्द को पर्वत बन्ध के उदाहरणस्वरूप रखना सम्पादक की भूल है। यों किसी भी छन्द को किसी रूप में लिखा जा सकता है, किन्तु उसमें उस चमत्कार का अभाव रहेगा, जिसकी अपेक्षा बन्धचित्र में होती है।

(ख) एकदण्ड छत्रबन्ध (द्वितीय प्रकार)

काशिराज ने अपनी 'चित्रचन्द्रिका' में छत्रबन्ध के पूर्वकथित तीनों भेदों के उदाहरण दिये हैं। एकदण्ड छत्रबन्ध का (द्विदण्ड का भी) लक्षण देते हुए काशिराज का कहना है—

"छत्र पंक्ति को मेलिये दण्ड ग्रन्थ सो मित्र।
ग्रन्थि दण्ड पुनि बाँचिये छत्रबन्ध यह चित्र॥"[2]

किन्तु प्रस्तुत लक्षण से उपर्युक्त छत्रबन्ध का न्यास बिलकुल स्पष्ट नहीं होता।

---

१. संख्या ७६

२. चित्र च०, प्रकाश ६, पृ० ८६, छन्दसंख्या ४०

उदाहरणस्वरूप काशिराज ने एकदण्ड छत्रबन्ध का निम्न दोहा दिया है, जिसका न्यास छत्राकार चित्र में किया गया है—

"सीता सोभा रमा सयासी।
सीया समा रभा सो तासी।।"[१]

यह चित्र (संख्या ७७) खुले छत्र का है और पूर्व चित्र की तरह इसमें कमानी अथवा वलयों की व्यवस्था नहीं है। इसके विपरीत खुले हुए छाते के अन्दर जितनी जगह आई है उसमें वर्गाकार कोष्ठक बनाये गये हैं। छाते के कपड़े के घेरे के पास नीचे कुल १५ कोष्ठक बने हैं। बीच के कोष्ठक से छत्रदण्ड ऊपर अथवा नीचे की ओर निकल जाता है। इस प्रकार इस बीच के कोष्ठक पर कोष्ठकों की इस पंक्ति को छत्रदण्ड लम्ब के रूप में काटता हुआ नीचे तक आ जाता है। छत्रदण्ड में भी इसी प्रकार के कोष्ठक बनाये गये हैं। घेरे से ऊपर छत्रदण्ड के प्रत्येक कोष्ठक के दायें-बायें क्रमशः ६-६, ५-५, ४-४, ३-३, २-२ तथा १-१ कोष्ठकों का निर्माण किया गया है। छत्र के दण्ड के निचले भाग में भी ९ कोष्ठक बनाये गये हैं। इस प्रकार छत्र के दण्ड में निर्मित कुल कोष्ठकों की संख्या १७ है तथा घेरे की पंक्ति में निर्मित कोष्ठकों की संख्या १५। इन्हीं कोष्ठकों में छन्द के वर्णों का न्यास किया जाता है।

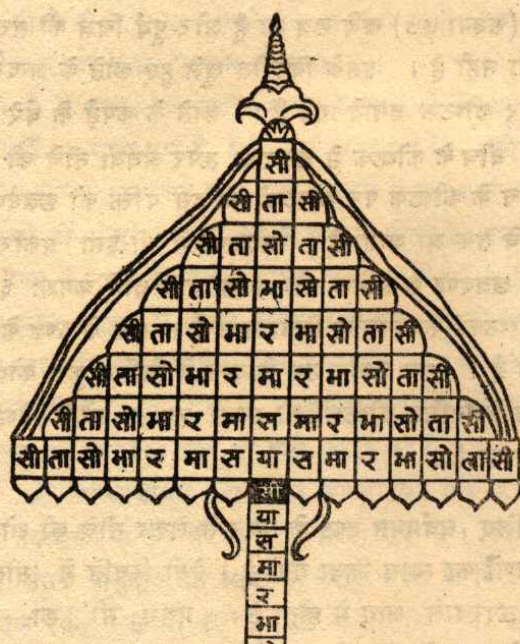
न्यास के लिए सर्वप्रथम दण्ड के ऊपर से लेकर नीचे की ओर मूठ तक के कोष्ठकों में छन्द के सभी वर्णों का न्यास किया गया है। ऐसी स्थिति में 'सीता सोभा रमा सयासी' का न्यास दण्ड के ऊपरवाले भाग में होता है। प्रथम 'सी' का न्यास कपड़े के ऊपर निकले हुए दण्ड के भाग में होता है तथा अन्तिम 'सी' का न्यास घेरे के ठीक नीचे दण्ड में बने कोष्ठक में किया जाता है। दण्ड के निचले भाग में मूठ तक छन्द के दूसरे चरण का न्यास किया जाता है। इस दूसरे चरण का आदि 'सी' वर्ण प्रथम चरण के अन्तिम 'सी' वर्ण की आवृत्ति से ही निकलता है, उसका न्यास अलग से नहीं किया जाता। अन्य वर्णों का न्यास मूठ तक में किया जाता है। मूठ में छन्द के अन्तिम वर्ण 'सी' का न्यास किया गया है।

छत्र के घेरे में बने कोष्ठकों में बायीं ओर से तथा दायीं ओर से भी, दण्ड की दिशा में 'सीता सोभा रमा सया' का न्यास होता है। इसमें 'या' का न्यास दण्ड में है, अतः यह उभयनिष्ठ है और दोनों ओर से इसका पाठ होता है। असल में पाठ दण्ड के मध्य में स्थित कोष्ठक में न्यस्त 'सी' वर्ण से आरम्भ होता है और उससे ऊपर जाकर जिस ओर भी हम मुड़ जायँ, हमें 'सीया समा रभा सो तासी' चरण की प्राप्ति होगी। जैसे-जैसे हम ऊपर की ओर बढ़ते हैं, कोष्ठकों की संख्या कम होती जाती है और दण्ड के वर्णों का पाठ अधिक होता है। किन्तु इस बन्ध का

१. चि० चं०, पृ० ८७, छन्द ४१

चमत्कार इसी में है कि आरम्भस्थल से आरम्भ कर हम वर्णों का पाठ चाहे जिस दिशा में भी करें, हमें छन्द की उपर्युक्त पंक्ति मिलेगी। छन्द की दोनों पंक्तियाँ एक दूसरे से अनुलोम-प्रतिलोम सम्बन्ध रखती हैं। चित्र निम्नलिखित है—

चित्र संख्या-७७



छत्रबन्ध-२

इस प्रकार के छत्रबन्ध का न्यास 'चित्रचन्द्रिका' के अतिरिक्त 'सुन्दरग्रन्थावली', 'कवितारसविनोद' तथा 'रुद्रकौतुक विचित्र' में भी प्राप्त होता है।[1] इन चित्रों में प्रयुक्त छन्द तथा 'चित्रचन्द्रिका' के उपर्युक्त छंद में फिर भी एक अन्तर यह है कि जहाँ 'चित्रचन्द्रिका' में गृहीत छन्द का पूर्वार्द्ध उत्तरार्द्ध का प्रतिलोम है, वहाँ अन्य छन्दों में वह स्वतन्त्र है, उत्तरार्द्ध-पूर्वार्द्ध में इस प्रकार का कोई सम्बन्ध नहीं है। न्यास में भी पूर्वार्द्ध की अवस्थिति दण्ड के निचले भाग में होती है, केवल उत्तरार्द्ध के वर्ण ही

१. सुन्दर ग्रन्थावली, पृ० ७५६-५७
कविता-रस-विनोद, प्रत्रांक २९९
रुद्रकौतुकविचित्र, पुस्तक के अन्त में

कोष्ठकों में बिखरे हैं और उन्हें ही कहीं से आरम्भ कर पढ़ा जा सकता है। न्यास की यह विधि भी हिन्दी में काफी प्रचलित रही है।

(ग) द्विदण्ड छत्रबन्ध

द्विदण्ड छत्रबन्ध का चित्र भी हमें 'चित्रचन्द्रिका' में ही मिलता है। इस चित्र में तथा उपर्युक्त विवेचित चित्र में कोई विशेष अन्तर नहीं है। उपर्युक्त चित्र में न्यस्त छन्द में जहाँ केवल दो चरण हैं वहाँ इस चित्र के छन्द में चार चरण हैं—

"सीता सोभा रमा सयासी। सीया समा रभा सो तासी।
सीमा सता रया सो मासी। सीमा सोया रता सभासी॥"[1]

चित्र ७८ के निर्माण तथा छन्द के न्यास में केवल यह अन्तर है कि जहाँ पूर्वचित्र (७७) में ऊपर से नीचे तक एक ही दण्ड था और उसी में स्थित कोष्ठकों में छन्द के वर्णों का न्यास था, वहाँ इस चित्र में ऊपर से नीचे मूठ तक दो दण्डों की योजना है, फलतः वर्णों के न्यास के लिए कोष्ठकों की भी दो पंक्तियाँ हैं। ये दोनों दण्ड एक साथ ही हैं, अतः कपड़े से ऊपर के भाग में ये दोनों ही दण्ड एक हो गये हैं और वहाँ केवल एक ही कोष्ठक है। इसी प्रकार कपड़े के घेरे से कटनेवाले स्थान पर दोनों दण्डों को मिलाकर एक ही कोष्ठक का निर्माण किया गया है तथा नीचे मूठ भी दोनों को मिलाकर एक ही है और यहाँ भी एक ही कोष्ठक है। इन तीनों उभयनिष्ठ कोष्ठकों में केवल 'सी' वर्ण का न्यास किया गया है, जो पाठ के समय दोनों ही पंक्तियों में पढ़ा जाता है।

सम्पूर्ण चित्र में छन्द का न्यास इस प्रकार है कि छन्द की प्रथम दो पंक्तियों का न्यास बायीं ओर के दण्ड में तथा अन्तिम दो पंक्तियों का दायीं ओर के दण्ड में होता है। स्वभावतः पटस्थित बायीं ओर के कोष्ठकों से दण्ड को मिलाकर छन्द की दूसरी पंक्ति निःसृत होगी तथा दायीं ओर के कोष्ठकों से छन्द की चौथी पंक्ति। पाठ का आरम्भस्थल दण्डस्थित मध्य का उभयनिष्ठ कोष्ठक है। इस कोष्ठक में न्यस्त 'सी' से आरम्भ कर हम प्रथम दण्ड में (बायीं ओर के) नीचे चले आवें अथवा ऊपर जायें अथवा बायीं ओर की किसी पंक्ति के कोष्ठकों में न्यस्त वर्णों को पढ़े, हमें 'सीया समा रमा सो तासी' इस चरण की प्राप्ति होगी। इसी प्रकार दण्ड के मध्य में स्थित 'सी' से आरम्भ कर छत्र के दक्षिण दण्ड तथा दक्षिण भाग में स्थित कोष्ठकों के वर्णों को पढ़ें तो छन्द की चतुर्थ पंक्ति 'सीमा सोया रता सभा सी' की प्राप्ति होगी। इस प्रकार सम्पूर्ण छन्द के वाम तथा दक्षिण भागों में क्रमशः प्रथम दो तथा अन्तिम दो पंक्तियों का न्यास होगा।

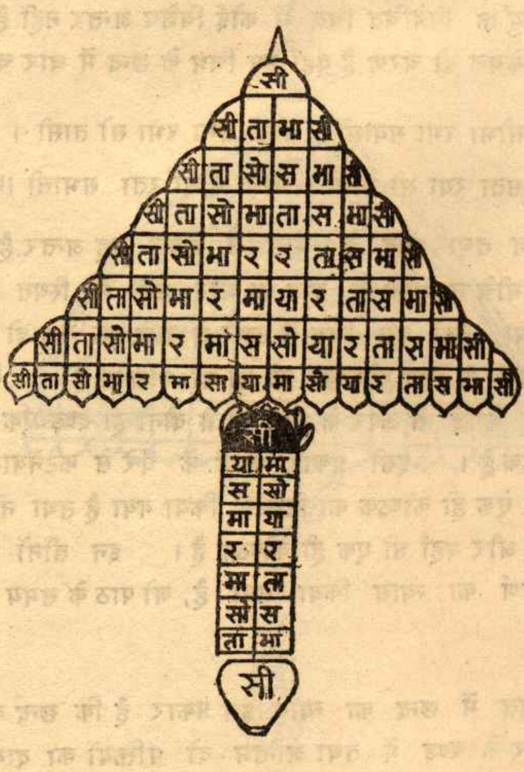
---

१. चि० चं०, प्रकाश ६, पृ० ८८, छन्द संख्या ३२-३३

चित्र संख्या-७८

न्यास का छन्द

सीता सोभा रमा सयासी । सीया सभा रमा सो तासी ।
सीमा सता रया सो मासी सीमा सोया रता सभासी ॥



छत्र (द्विदण्ड) बन्ध-३

(घ) निर्दण्ड छत्रबन्ध अथवा मेघडम्बर

निर्दण्ड छत्रबन्ध की रचना 'चित्रचन्द्रिका' तथा 'चित्रकलाधर' दोनों में मिलती है। किन्तु एकदण्ड छत्रबन्ध (कमानीदार) के दण्ड को हटाकर कमानी के रूप में कर देने तथा गोलाकार छत्रपट को आयताकार बना देने के सिवा 'चित्रकलाधर' में न्यस्त निर्दण्ड छत्रबन्ध की तथा कमानीदार गोल छत्रबन्ध की न्यासविधि में कोई अन्तर नहीं है। चित्रसंख्या ७६ की न्यासविधि और क्रम को प्रस्तुत चित्र में भी अपनाया गया है। छन्द भी उसी प्रकार का है, जिसमें छह चरण हैं। तात्पर्य यह कि प्रस्तुत चित्र और 'चित्रकलाधर' का कमानीदार गोल छत्र[1] तत्त्वतः परस्पर

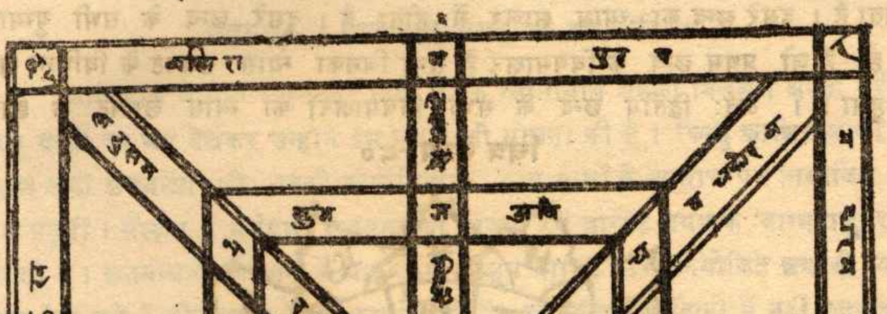
1, चित्रकलाधर, पृ० ८३, चित्र ३५

अभिन्न हैं। इस छत्र को टमटम आदि के ऊपर की चौकोर छत्री का स्थानापन्न माना जा सकता है। चित्र निम्नलिखित है—

चित्र संख्या-७९

न्यास का छन्द

"दल दुसमन रन दलन, दान दै करन करन कर।
रवि सो राजै तेज नयन सरसिज हित सोदर॥
ससि सम जस दिन रयन उदय प्रिय चष चकोर वर।
सदय तेह तन सुभग अविचलै राज सभानर॥
सदस हर सुषद बलिरामपुर परम धरम रत गुन निकर।
महाराज दिगविजै सिंह नरनाह हिन्द वृज भूप कर॥



छत्र (निर्दण्ड) बन्ध-४

'चित्रचन्द्रिका' में उदाहृत निर्दण्ड छत्रबन्ध की न्यासविधि[1] अबतक के छत्र-

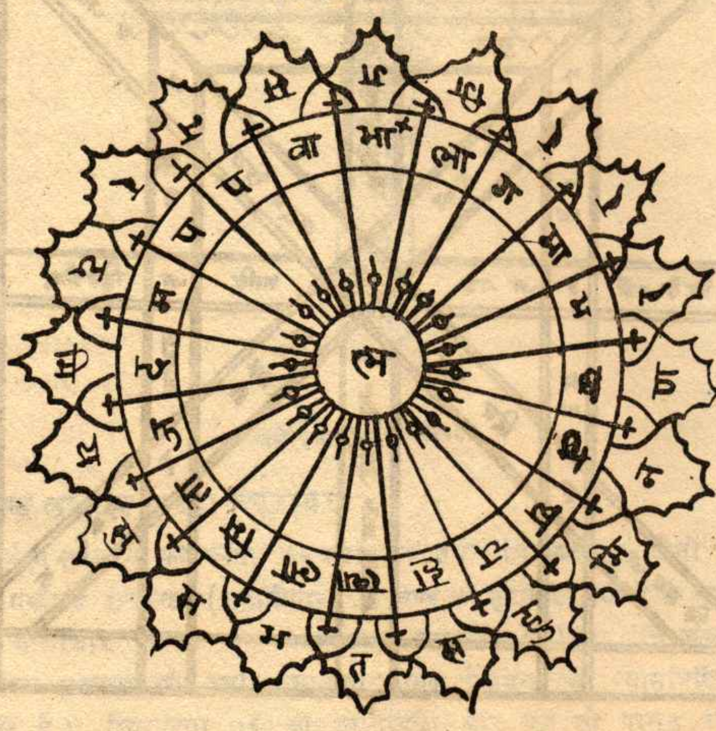
१. द्रष्टव्य चित्र संख्या ८०

बन्धों की न्यासविधि से बिलकुल भिन्न है। काशिराज ने इस बन्ध में दो छन्दों का प्रयोग किया है, जिनमें प्रथम छन्द तो विंशतिदल कमलबन्ध का ही है और दूसरा छन्द नया है। इन दोनों छन्दों को मिलाकर प्रस्तुत छत्रबन्ध में न्यास किया गया है। ये छन्द हैं—

"भाल लाल गल माल भल छल बल थल चल हाल।
ख्याल लाल मिल ताल जल दल मल पल पल बाल ॥
भाग लागि गर मार भर छण वन थमि चहु हास।
ख्यात लाभ मिस तासु जय दमि मद पर पनवास ॥"[1]

प्रस्तुत छन्दों में प्रथम छन्द का न्यास तो चित्र में उपर्युक्त कमलबन्ध की पद्धति से ही किया जाता है अर्थात् बीच अथवा केन्द्र में 'ल' वर्ण का न्यास होता है तथा छत्रपट अथवा परिधि में अन्य बीसों वर्णों को दक्षिणावर्त्त क्रम से लिखा जाता है। दूसरे छन्द का न्यास झालर में होता है। दूसरे छन्द के सभी युग्माक्षर वे ही हैं जो प्रथम छन्द के विषमाक्षर हैं तथा जिनका न्यास छत्रपट के विभिन्न खण्डों में हुआ है। अतः द्वितीय छन्द के सभी विषमाक्षरों का न्यास छत्रपट के झालर

चित्र संख्या-८०



छत्र (निदण्ड) बन्ध-५

गुणन चिह्न (×) पाठ के आरम्भ का द्योतक है।

1, चित्रचन्द्रिका, प्रकाश ६, छन्द ३८-३९, पृ० ८४-८५

में उसी प्रकार दक्षिणावर्त्त क्रम से ही किया जाता है। उद्धार में प्रथम छन्द की प्राप्ति छत्रपट के अक्षर को केन्द्र के अक्षर के साथ मिलाकर घड़ी की सूई की गति-दिशा में पढ़ने से होती है। द्वितीय छन्द की प्राप्ति भी छत्रपट में न्यस्त प्रत्येक अक्षर को अपने सामने के झालर में न्यस्त अक्षर से मिलाकर उपर्युक्त दिशा में ही पढ़ते चले जाने से होती है। इस प्रकार दोनों ही छन्दों का उद्धार इस छत्रबन्ध (चित्र ८०) से हो जाता है।

स्वयं काशिराज ने भी इस छत्रबन्ध के निर्माण तथा उद्धार का लक्षण निम्नलिखित दोहे में दिया है—

"छत्र वर्ण मिलि मध्य पुनि छत्र झालरिन जोरि।
छत्रबंध सो चित्र कहि ग्रंथन मत टक टोरि॥"[१]

काशिराज ने यहाँ स्पष्ट कर दिया है कि न्यासविधि उनकी बिलकुल अपनी नहीं है वरन् ग्रन्थों का मत देखकर उन्होंने इस प्रकार की योजना की है। किन्तु काशिराज का यह लक्षण तथा छत्रबन्धों की उनकी न्यासविधियाँ अन्य ग्रन्थों के आधार पर नियोजित नहीं दीख पड़तीं। संस्कृत में सर्वप्रथम छत्रबन्ध की योजना हमें वाग्भट प्रथम के 'वाग्भटाङ्कार' में मिलती है। छत्रबन्ध के विवेचन के आरम्भ में ही हम वाग्भट द्वारा नियोजित छत्र की न्यास-विधि देख चुके हैं और पाया है कि इस न्यासविधि का अनुकरण हिन्दी में नहीं हुआ है।[२] संस्कृत में इस विधि का एकाधिक अनुकरण हमें मिलता है। अजित सेन की 'अलङ्कारचिन्तामणि' में तथा गुणभद्र के 'चित्रबन्ध स्तोत्र' में[३] नियोजित छत्रबन्ध में इसी विधि को अपनाया गया है। इनके अतिरिक्त वाग्भट द्वितीय के 'काव्यानुशासन'[४] कविकर्णपूर के 'अलङ्कारकौस्तुभ'[५], कृष्णकवि लिखित 'मन्दारमरन्द चम्पू'[६] तथा अवतार कवि प्रणीत 'ईश्वरशतक'[७] में छत्रबन्ध के जो श्लोक मिलते हैं उनकी न्यासविधियाँ स्पष्टतः वाग्भट प्रथम द्वारा नियोजित न्यासविधियों से भिन्न हैं। किन्तु इनमें से किसी भी न्यासविधि का अनुकरण हिन्दी में नहीं दीख पड़ता। 'काशिराज की 'चित्रचन्द्रिका' में नियोजित छत्रबन्धों के छन्दों तथा न्यासों में भी इनमें से किसी का अनुकरण नहीं दीखता। निर्दण्ड छत्र के उपर्युक्त चित्र में तो हिन्दी के भी किसी पूर्ववर्ती कवि अथवा आचार्य का अनुकरण नहीं

१, चित्रचन्द्रिका छन्द-संख्या ३७
२. द्रष्टव्य, चित्र ७५, श्लोक और न्यास।
३. अ० चि०, परि २, श्लोक १८४
चित्रबन्धस्तोत्रः जे० यू० बी०, सं० ३१ के पृ० ८९ पर उल्लेख
४. काव्यानुशासन; अ०४, पृ० ४६
५. अलङ्कारकौस्तुभ, सप्तम किरण, ५-१५
६. म० म० च०, बन्धबिन्दु, पृ० ५३ (काव्यमाला ५२)
७. ईश्वरशतक, श्लोक १०७, पृ० ६२ (काव्यमाला ९)

दीख पड़ता। निर्दण्ड छत्र की इस प्रकार की न्यासविधि अन्यत्र बाद में भी नहीं दीख पड़ती। स्पष्ट है कि परिपाटी निभाने के लिए ही काशिराज ने ग्रन्थों के मत के अनुकरण की बात कही है, वस्तुतः उन्होंने वैसा किया नहीं है। निर्दण्ड छत्रबन्ध की रचना न तो संस्कृत में और न हिन्दी में ही कहीं अन्यत्र दीख पड़ती है।

(ङ) और (च) छत्रबन्ध के अन्य दो प्रकार के न्यास

छत्रबन्ध के पूर्वविवेचित चित्रों के अतिरिक्त दो अन्य प्रकार के चित्र भी हिन्दी में मिलते हैं। ये चित्र हिन्दी के अपने हैं, संस्कृत में इस प्रकार की कोई न्यासविधि नहीं मिलती। इनमें से प्रथम चित्र पदुमनदास के द्वारा नियोजित चित्र है, जिसकी रचना 'काव्यमंजरी' में हुई है। प्रस्तुत छत्र बन्ध का छन्द निम्नलिखित है—

"दंड सि वामकनी करकी छवि छत्र प्रभासो गोवर्धन छाजै।
जै कहिकै ब्रजवासि समाने सुने सुक बूद वयारि न बाजै॥
दंड सो पाए परे सलजै जल आनन्द नैन सहस्र बिराजै।
कै अभिषेक चले मघवा प्रभु सोइ सदा मम मंगल साजै॥"[1]

निम्नांकित छत्राकार चित्र (संख्या ८१) में इस छन्द के न्यास का आरम्भ दण्ड के ऊपरी सिरे से होता है। सर्वप्रथम दण्ड के ऊपरी सिरे पर जहाँ दण्ड छत्रपट से ऊपर निकला हुआ है, छन्द का प्रथम अक्षर 'द' लिखा गया है। द्वितीय अक्षर 'ड' का न्यास दण्ड में ही, किन्तु छत्रपट के मिलनस्थान पर हुआ है। इसके अनन्तर छन्द के अगले वर्णों का न्यास छत्रपट के दायें भाग में किया जाता है। छत्रपट के घेरे के दक्षिण कोने तक छत्रपट के दक्षिण भाग के वलय में छन्द की प्रथम पंक्ति के पूर्वार्द्ध का न्यास समाप्त हो जाता है। कोने पर स्थित वर्ण 'छ' का पाठ दो बार किया जाता है, [एक बार तो 'छवि' में, पुनः 'छत्र' में तथा न्यास छत्रपट के घेरे में दण्ड के दक्षिण भाग में वामगति से दण्ड की ओर मुड़ जाता है। दण्ड के मध्य में स्थित वर्ण 'जै' के साथ ही सम्पूर्ण प्रथम पंक्ति का न्यास सम्पन्न हो जाता है। पुनः दण्ड स्थित इसी 'जै' से आरम्भ करके वामगति से ही छत्रपट के घेरे के वाम भाग में द्वितीय पंक्ति के वर्णों का न्यास होता है और कोने में आकर 'ने' वर्ण के न्यास के साथ द्वितीय पंक्ति के पूर्वार्द्ध का न्यास पूर्ण हो जाता है। यहाँ भी पाठ में 'ने' की आवृत्ति होती है। एक बार वह 'समाने' के साथ पढ़ा जाता है और पुनः 'सुने' के साथ पढ़ा जाकर छन्द की द्वितीय पंक्ति के उत्तरार्द्ध के न्यास को आगे बढ़ाता है। यह न्यास पुनः छत्रपट के वाम वलयखण्ड में होता हुआ ऊपर की ओर जाकर दण्ड के 'ड' के पूर्व ही 'जै' के न्यास के साथ समाप्त हो जाता है। इस प्रकार दण्ड के ऊपरी भाग तथा छत्रपट के अर्द्धवलय और घेरे में छन्द के पूर्वार्द्ध का न्यास सम्पन्न हो जाता है।

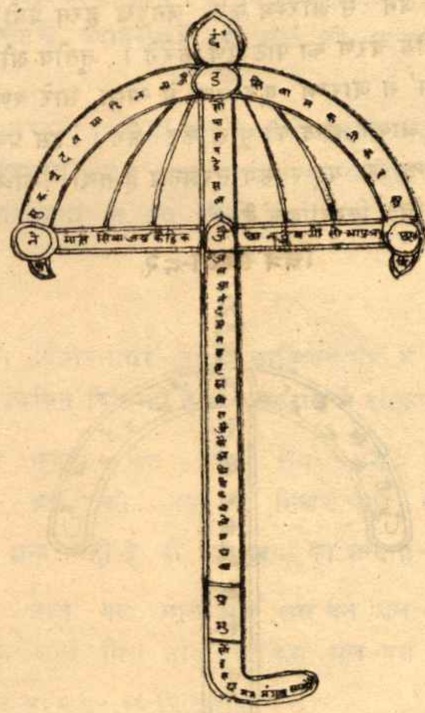
छन्द के उत्तरार्द्ध का न्यास सीधा दण्ड में ऊपर चोटी से आरम्भ कर नीचे मूठ तक में समाप्त होता है। इनमें ऊपर 'दंड' शब्द का न्यास तो पहले ही हो गया है तथा मध्य

---

१. का० मं०, पृ० ११५-११६

में 'जै' वर्ण भी विन्यस्त हो चुका है। छन्द के उत्तरार्द्ध के न्यास के समय यह ध्यान में रखना होगा कि ये पूर्वविन्यस्त वर्ण छन्द के उत्तरार्द्ध में भी अपने स्थान पर रहें। उत्तरार्द्ध के उद्धार के क्रम में इन वर्षों की केवल आवृत्ति होगी, न्यास में इन्हें पुनः अलग से लिखा नहीं जायगा।

चित्र संख्या-८१



छत्रबन्ध-६

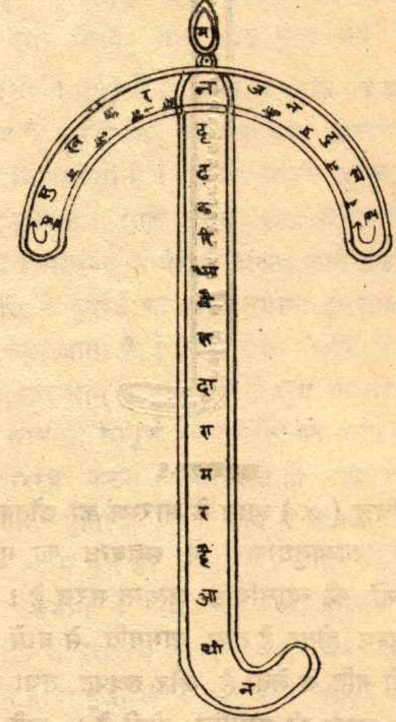
गुणन चिह्न (×) न्यास के आरम्भ का द्योतक है।

रसिकहारी रचित 'काव्यसुधाकर' में छत्रबन्ध का एक अन्य चित्र भी प्राप्त होता है। इस चित्र में वर्णों की न्यासविधि अत्यन्त सरल है। यहाँ न्यास का आरम्भ छत्रपट के वाम भाग से आरम्भ होता है तथा वामगति से बायें कोने पर आकर पुनः ऊपर की ओर मुड़कर सीधी गति ले लेता है और छत्रपट तथा दण्ड के मिलनबिन्दु पर स्थित वर्ण पर आकर प्रथम चरण की समाप्ति होती है। इसी प्रकार दण्ड के दक्षिण भाग के छत्रपट में दण्ड के पास से दूसरे चरण का न्यास सीधी गति से आरम्भ होता है तथा कोने पर जाकर पुनः दण्ड की ओर ही वामगति से मुड़कर दण्डस्थित वर्ण में आकर छन्द का दूसरा चरण भी न्यस्त हो जाता है। छन्द के उत्तरार्द्ध का (तीसरे तथा चौथे चरणों का) न्यास दण्ड की चोटी से लेकर मूठ तक में किया जाता है। इस प्रकार इस न्यासविधि में कही किसी प्रकार की जटिलता नहीं है। न्यास का छन्द है—

"राम नाम है सुख करन, जन दुख हरन प्रवीन ॥
मन दृढ़ करि ध्यावे सदा, राम रहैं आधीन ॥"[1]

चित्र से प्रस्तुत छन्द के उद्धार के लिये सर्वप्रथम हम छत्रपट के वाम भाग में न्यस्त 'राम' से आरम्भ करेंगे तथा 'राम नाम है सुख कर' का पाठ करते हुए दण्ड तथा छत्रपट के मिलनबिन्दु में न्यस्त 'न' में आकर प्रथम चरण का पाठ पूर्ण करेंगे। इसी प्रकार छत्रपट के दक्षिण भाग में स्थित 'जन' से आरम्भ कर 'जनदुख हरन प्रवी' का पाठ करते हुए दण्डस्थ 'न' में आकर द्वितीय चरण का पाठ पूर्ण करेंगे। तृतीय और चतुर्थ चरण के लिये दण्ड की चोटी में स्थित 'म' से आरम्भ कर दण्ड में न्यस्त सारे वर्णों का पाठ करते हुए मूठ में न्यस्त वर्ण 'न' पर आकर छन्द की पूर्ति कर लेंगे। इस प्रकार सम्पूर्ण छन्द की प्राप्ति हो जायगी। छत्रबन्ध का यह स्वरूप सरलतम है तथा 'काव्यसुधाकर' के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं दीख पड़ता। चित्र निम्नांकित है—

चित्र संख्या-८२



छत्रबन्ध-७

गुणन चिह्न (×) न्यास के आरम्भ का द्योतक है।

चामरबन्ध

चामरबन्ध की रचना, संस्कृत में, जैन कवियों के द्वारा अधिक हुई है। विक्रम की चौदहवीं शती से लेकर सत्रहवीं शती तक के बीच चित्रकाव्य के रचयिताओं का यह एक प्रिय

१. काव्यसुधाकर, कला १३, छन्द-संख्या १२, पृ० ३५

बन्ध रहा है। अलंकारग्रंथों में इस बन्ध का सर्वप्रथम उल्लेख वाग्भट (द्वितीय) के 'काव्यानुशासन' में मिलता है,[1] किन्तु उदाहरण के श्लोक अथवा चित्र वहाँ नहीं हैं। जैन कवियों में जिनप्रभसूरि रचित 'चित्रस्तव', कुलमण्डन सूरि के 'पंचजिनहारस्तव', जयसागर उपाध्याय की 'विज्ञप्तित्रिवेणी,' उदयविजय के 'विज्ञप्तिपत्र', विनय विजय गणि के 'आनन्दलेख' तथा गुणभद्र रचित 'चित्रबन्ध स्तोत्र में चामरबन्ध के श्लोक मिलते हैं।[2] इन सभी उदाहरणों में चामरबन्ध की एक ही न्यासविधि दीख पड़ती है। यह बात और है कि किसी ने इस बन्ध के उदाहरण में बड़े छन्द को प्रस्तुत किया है और किसी ने छोटे को।

हिन्दी में चामरबन्ध कवियों का बहुत प्रिय बन्ध नहीं दीखता। इसकी रचना केवल 'प्रबीनसागर', 'चित्रचन्द्रिका', 'काव्यमंजरी' तथा 'साहित्यसागर' में दीख पड़ती है।[3] हिन्दी में नियोजित चामरबन्ध के इन चित्रों में प्रमुखतः दो प्रकार की न्यासविधियाँ अपनाई गई हैं।

(I) प्रथम प्रकार

'चित्रचन्द्रिका', 'प्रबीनसागर' तथा 'साहित्यसागर' में अपनाई गई चामरबन्ध की न्यासविधि संस्कृत में प्रचलित विधि ही है। काशिराज ने इसका निम्न लक्षण दिया है—

"घुंडी कगनी खट बरन सेष अर्द्ध धरु दंड।
केश वर्ण को दंड के सिखर वर्ण सो मंड॥"[4]

उदाहरण का छन्द वही है जो कमलबन्ध का छन्द है—

"भाल लाल गल माल भल छल बल थल चल हाल।
ख्याल लाल मिल ताल जल दल मल पल पल वाल॥"[5]

---

१. काव्यानुशासन, अ०४, पृ० ४६ (काव्यमाला ४३)
आकारचित्र के लक्षण में आये आदि पद की व्याख्या में लेखक ने चामर का उल्लेख किया है—
"आदि शब्दादष्टारद्वादशारचक्रसप्तचक्रिका गोमूत्रिकानन्द्यावर्तभृङ्गार चामर घण्टा प्रभीतीनि तत्सदृशनामान्यूह्यानि॥"

२. चित्रस्तव — जे० यू० बी० ३०, पृ० १०९
पंचजिनहारस्तव — उपरिवत्, पृ० १११
विज्ञप्ति त्रिवेणी — उपरिवत्, पृ० ११७
विज्ञप्ति पत्र — उपरिवत्, पृ० १२६
आनन्दलेख — उपरिवत्, पृ० १२८
चित्रबन्ध स्तोत्र — जे० यू० बी०, सं० ३१, पृ० ८९

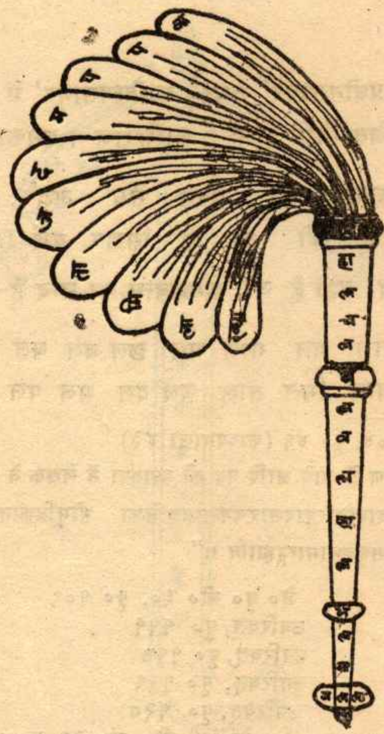
३. प्र० सा०, लहर ६५, पृ० ६५०
चि०चं० प्रकाश ६ पृ० ६१ छन्द सं० ५
का० मं०, पृ० ११८, दो० सं० १२
सा० सा० (भाग-२), तरंग–१२

४. चि० चं०, प्रकाश ६, पृ० ६१, छन्द ४

५ उपरिवत्, पृ० ६२, छन्द ५

चामराकार चित्र में इस छन्द का न्यास इस प्रकार किया जाता है कि प्रथम वर्ण चामर की घुण्डी में लिखा जाता है। घुण्डी और कंगनी में लिखित वर्णों को मिलाकर छह वर्णों का पाठ होता है। प्रस्तुत चित्र (संख्या ८३) में छन्द का प्रथम अक्षर 'भा' घुण्डी में लिखा है, द्वितीय अक्षर 'ल' मूठ के मध्य में है, तृतीय अक्षर 'ला' मूठ की दायीं ओर तथा पंचम अक्षर 'ग' बायीं ओर लिखा गया है। चूंकि छन्द के प्रथम चरण का दूसरा, चौथा तथा छठा अक्षर एक ही है और उसका न्यास मूठ के मध्य में हो गया है, अतः केवल पाठ के समय उसकी आवृत्ति होगी। इन छह वर्णों के अतिरिक्त छन्द के पूर्वार्द्ध के अन्य सभी वर्ण चामर की मूठ के ऊपर दण्ड में एक पंक्ति में नीचे से ऊपर की ओर लिख दिये गये हैं, केवल पूर्वार्द्ध के अन्तिम वर्ण 'ल' की स्थिति चामर के कण्ठ में है।

चित्र संख्या-८३



चामरबन्ध-१

गुणन-चिह्न (×) पाठ के आरम्भ का द्योतक है।

छन्द के उत्तरार्द्ध के वर्णों का न्यास चामर के केश में होता है। चूंकि छन्द का प्रत्येक युग्म वर्ण 'ल' ही है अतः विषम वर्णों का न्यास तो विभिन्न केशगुच्छों में होता है

तथा युग्मवर्ण 'ल' का पाठ षोडशदलकमल के पाठ की रीति से कण्ठस्थ वर्ण 'ल' की आवृत्ति के द्वारा होता है। इस प्रकार सम्पूर्ण छन्द के उद्धार के लिए सर्वप्रथम हम घुण्डी के वर्ण 'भा' को पढ़ेंगे, पुनः मूठ के मध्य में स्थित 'ल' को। तदनन्तर मूठ के दक्षिण भाग में स्थित 'ला' का पाठ होगा, पुनः मध्यस्थ वर्ण 'ल' का, पुनः मूठ के वामभाग में स्थित 'ग' का, पुनः मध्यस्थ 'ल' का। इस प्रकार छन्द के पूर्वार्द्ध के आदि छह वर्ण 'भाल लाल गल' का पाठ होगा। आगे के वर्ण 'माल भल छल वल थल चल हा' का न्यास दण्ड में सरल रीति से है, छन्द के पूर्वार्द्ध के अन्तिम वर्ण 'ल' का न्यास पुनः चामर के कण्ठ में है। उत्तरार्द्ध का पाठ केश तथा कण्ठ के वर्णों को मिला-मिलाकर षोडशदलकमल की रीति से होगा। इस प्रकार सम्पूर्ण दोहे की प्राप्ति हो जायगी। 'प्रबीनसागर' तथा 'साहित्यसागर' में नियोजित चित्रों में भी छन्द का यही न्यास है। उपर्युक्त संस्कृत श्लोकों का निर्माण भी इसी विधि से हुआ है। एक अन्तर यह है कि दण्ड में लिखित छन्दांश में प्रत्येक युग्म वर्ण का एक ही होना कोई अनिवार्य नहीं है; क्योंकि न्यास में इसकी कोई आवश्यकता नहीं होती। संस्कृत के श्लोकों में इसको बचाया गया है। इस प्रकार संस्कृत के श्लोकों में अनपेक्षित क्लिष्टता नहीं है, जो एक ही वर्ण की अनावश्यक आवृत्ति के कारण हिन्दी के छन्दों में आ जाती है। इसका कारण हिन्दी के कवियों की असमर्थता भी हो सकती है। प्रत्येक चित्रबन्ध के लिए अलग-अलग छन्दों की रचना के बदले एक ही छन्द को कई चित्रों में न्यस्त कर दिया गया है, जिससे अधिक छन्दों की रचना के परिश्रम से वे अपने को बचा सके हैं। पर इसके परिणाम-स्वरूप चित्रगत चमत्कार की हानि ही होती है।

(II) दूसरा प्रकार

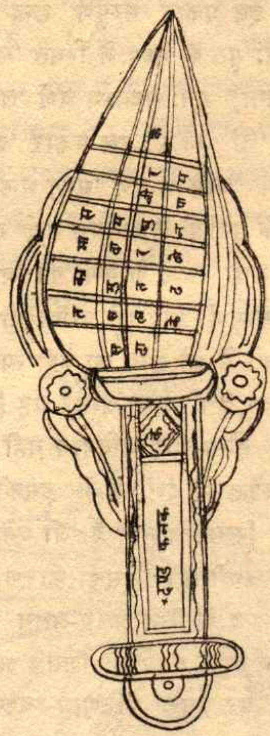
चामरबन्ध के दूसरे प्रकार का चित्र पदुमनदासरचित 'काव्यमंजरी' में प्राप्त होता है। पूर्व चित्र खुले हुए चामर का था, जबकि यह चित्र समेटकर रखे हुए चामर का है। चित्र में न्यस्त दोहा निम्न है—

"दण्ड कनक के केतका, भास केश समुदाय ॥
के ढालत रघुवीर के, के के ढले न पाय ॥"[१]

न्यास में दोहे के प्रथम पाँच वर्णों को दण्ड में लिखा गया है, षष्ठ वर्ण 'के' दण्ड और केश के मिलनस्थल अथवा कण्ठ में न्यस्त है। समेटे हुए केशगुच्छ में चार पंक्तियों में वर्णों का न्यास किया गया है। बायीं ओर से प्रथम पंक्ति में 'तका भास', इन चार वर्णों को लिखा गया है। द्वितीय पंक्ति में 'स समुदाय', इन पाँच वर्णों का न्यास है, तृतीय पंक्ति में 'ढालत रघुवीर के', इन सात वर्णों को लिखा गया है तथा चतुर्थ पंक्ति में 'के ढले न पाय' छन्द के अन्तिम छह वर्णों का न्यास हुआ है। इस प्रकार सम्पूर्ण छन्द निम्नलिखित चित्र में न्यस्त हो जाता है।

१ का. मं. पृ. ११७-११८. दोहा संख्या १२

चित्र संख्या-८४



चामरबन्ध-२

गुणन-चिह्न (×) पाठ के आरम्भ का द्योतक है।

उद्धार के क्रम में सर्वप्रथम हम दण्ड के पाँचों वर्ण 'दण्डकनक' का पाठ करेंगे। पुनः कण्ठस्थ वर्ण 'के' का पाठ होगा। कण्ठस्थ वर्ण का पाठ पुनः दुबारा करते हुए केशगुच्छ में प्रथम पंक्ति में न्यस्त वर्ण का पाठ करेंगे। पुनः कण्ठस्थ वर्ण 'के' के साथ द्वितीय पंक्ति के वर्णों का पाठ करेंगे। इसी प्रकार आदि में कण्ठस्थ वर्ण 'के' का पाठ करेंगे और बारी-बारी से चारों पंक्तियों में न्यस्त वर्णों का पाठ कर सम्पूर्ण छन्द की प्राप्ति कर लेंगे। न्यास की यह विधि भी लगभग पूर्व विधि के समान ही है। केवल इस दूसरे चित्र में मूठ में वर्णों का न्यास नहीं है तथा पूर्व चित्र में जहाँ केश में एक-एक वर्ण का न्यास है, वहाँ इस चित्र में वर्णों की चार पंक्तियाँ हैं। सिद्धान्ततः पाठ की विधि एक ही है।

वाद्ययन्त्र बन्ध

(क) मुरजबन्ध

मुरजबन्ध की रचना संस्कृत के कवियों के लिए बहुत प्रिय रही है। संस्कृत के लगभग सभी प्रसिद्ध कवियों तथा आचार्यों ने, जिन्होंने चित्रकाव्य की रचना की है, मुरज-बन्ध की रचना अवश्य की है। इस बन्ध की प्रथम रचना हमें 'शिशुपालवध' में मिलती

है।[1] रुद्रट ने अपने 'काव्यालंकार' में भी इसका उदाहरण दिया है।[2] 'अग्निपुराण' में भी अन्य बन्धों के साथ इसके निर्माण की विधि दी गई है।[3] आनन्दवर्धन ने अपने 'देवीशतक' में मुरजबन्ध की भी रचना की है।[4] भोजराज ने 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में मुरजबन्ध, एकाक्षर मुरज तथा मुरजप्रस्तार नाम से तीन प्रकार के मुरजबन्ध के उदाहरण दिये हैं।[5] भोज ने इन तीनों ही प्रकार के चित्रों की न्यासविधि दी है, यद्यपि वह बहुत स्पष्ट नहीं है। हेमचन्द्र ने 'काव्यानुशासन' में 'देवीशतक' में रचित मुरजबन्ध के श्लोक को ही उद्धृत किया है, किन्तु उसके साथ ही 'अलंकारचूडामणि' में उन्होंने गद्य में इस बन्ध के न्यास तथा उद्धारक्रम को अधिक विस्तार से स्पष्ट किया है।[6] हेमचन्द्र के बाद भी यह बन्ध संस्कृत में कवियों का एक प्रिय बन्ध रहा है। 'लक्ष्मीसहस्र' में मुरजबन्ध के श्लोक का निम्न लक्षण 'कवि कुतूहल' से उद्धृत किया गया है—

---

१. शिशुपालवध, सर्ग १९, श्लोक २९—

"तासेनागमनारम्भे रसेनासीद नारता।
तारनादजनामत्त धीरनागमनामया॥"
[न्यास के लिए द्रष्टव्य चित्रसंख्या ८५]

२. काव्यालङ्कार, अ० ५, श्लोक १९—

"सरसा बहलारम्भ तरलालिबलारवा।
वारला बहलामन्द करला बहला मला॥"

३. "अर्द्धयोरन्तिमाद्यौ तु मुरजे सदृशावुभौ।
पादार्धं पतितो वर्णः प्रातिलोम्यानुलोमतः॥५९॥
अन्तिमं परिबन्धीयाद्यावत्तुर्यामिहाऽऽदिमत्।
पादात्तुर्याद्यदेवाऽऽद्य नवमात्षोडशादपि॥६०॥
अक्षरात्पुटकौ मध्ये मध्येऽक्षर चतुष्टयम्।
कृत्वा कुर्याद्यथैतस्य मुरजाकारता भवेत्॥६१॥ —अग्निपुराण, अ० ३४३

४. देवीशतक, श्लोक १५

५. स० क०, परि—२, श्लोक ३०८, ३०९ तथा ३१०-३११

इनकी न्यासविधियाँ निम्न हैं—

मुरजबन्ध—

"अत्र पाद चतुष्केऽपि क्रमशः परिलेखिते।
श्लोक पादक्रमेण स्याद्रेखासु मुरजत्रयी।" — कारिका १२४

एकाक्षर मुरजबन्ध—

"श्लोकस्यैतस्य पादेषु लिखितेषु चतुर्ष्वपि।
त्रिमृदङ्गकरीह स्याच्चतुरेकाक्षरावली॥" —कारिका १२५

मुरज प्रस्तार—

क्रमेणै वास्य पादेषु प्रसृतेषु चतुर्ष्वपि।
तुर्यान्मुरजमार्गेण श्लोकोऽयमुपजायते॥" —कारिका १२६

६. काव्यानुशासन, अलङ्कारचूडामणि, श्लोक ४६९, पृ० ३१४ (महावीर जैन विद्यालय प्रकाशन)

"सर्वेषु पादेषु तृतीय एकः
षष्ठः स एव प्रथमांघ्रिगौच ।
यौ मध्यमौ तौ चरमान्तरस्थौ
वर्णौ विधेयौ मुरजाख्यबन्धे ॥
पूर्वार्धान्त्याश्च चत्वारो व्युत्क्रमात्स्युः परे दले
प्रथमाङ्घ्रयोर्द्वितीयैक्यमुपान्त्यैक्यं तथा तयोः ॥[1]

प्रस्तुत लक्षण के अनुसार श्लोक के सभी पादों के तृतीय तथा षष्ठ वर्ण एक ही होंगे। प्रथम तथा अन्तिम पादों के मध्य के दोनों वर्ण अर्थात् चतुर्थ तथा पंचम वर्ण भी क्रमशः समान होंगे। पुनः प्रथम तथा द्वितीय पादों के और तृतीय तथा चतुर्थ पादों के द्वितीय और सप्तम वर्ण क्रमशः समान होंगे। इनके अतिरिक्त श्लोक के पूर्वार्द्ध के अन्तिम चार वर्ण ही प्रतिलोमतः श्लोक के उत्तरार्द्ध के आदि में रहेंगे। वर्णों के इस क्रम के अनुसार रचना करने पर श्लोक मुरजबन्ध का होगा।

मुरजबन्ध की रचना संस्कृत में सामान्यतः अनुष्टुभ् श्लोक में हुई है। 'अग्निपुराण' में इसकी ओर स्पष्ट संकेत है—

"द्वितीयं चक्र शार्दूलविक्रीडितक सम्पदम् ।
गोमूत्रिका सर्ववृत्तैरन्ये बन्धास्त्वनुष्टुभा ॥"[2]

अनुष्टुभ् में चार चरण तथा प्रत्येक चरण में आठ वर्ण होते हैं। अतः जितने कवियों अथवा आचार्यों ने मुरजबन्ध का लक्षण दिया है, सभी ने अनुष्टुभ् वृत्त को ही अपने ध्यान में रखा है।

प्रस्तुत बन्ध के न्यास तथा उद्धार के सम्बन्ध में हेमचन्द्र ने निम्न शब्दों में व्यवस्था दी है—

"मुरजबन्धः। तथा हि पादचतुष्टयेन पंक्तिचतुष्टये कृते प्रथमादि पादेभ्यः प्रथमाद्यक्षराणि चत्वारि। चतुर्थादि पादेभ्यः पञ्चमादीनि च चत्वारि गृहीत्वा प्रथमः पादः। द्वितीयात्प्रथमं प्रथमाद् द्वितीय तृतीये द्वितीय तृतीयाभ्यां चतुर्थे चतुर्थात्तृतीय द्वितीये। तृतीयात्पादात्प्रथममक्षरं गृहीत्वा द्वितीयः पादः। द्वितीयादष्टमं, प्रथमात्सप्तमषष्ठे, द्वितीयतृतीयाभ्यां पञ्चमे चतुर्थात्षष्ठसप्तमे तृतीयादष्टमं च गृहीत्वा तृतीयः पादः। चतुर्थादिभ्यः प्रथमादीनि प्रथमादिभ्यः पञ्चमादीनि पादेभ्योऽक्षराणि गृहीत्वा चतुर्थं पादः।"[3]

---

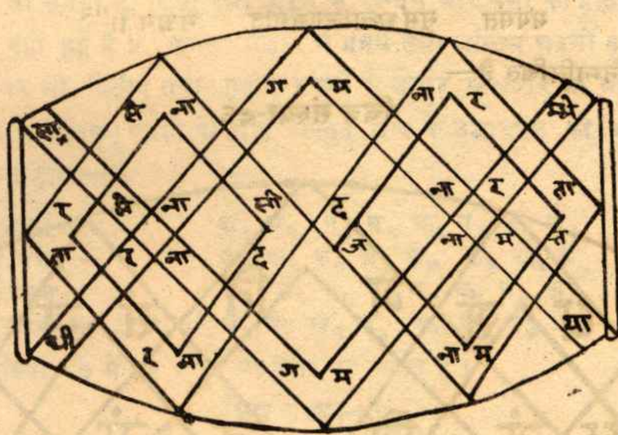
१. लक्ष्मीसहस्त्र, पृ० ७०० (चौखम्बा)
२. अ० पु०, अ० ३४३, श्लोक ६२
३. द्रष्टव्य, पृ० २५७ की पादटिप्पणीसंख्या ६

हेमचन्द्र द्वारा कथित इस न्यास के अनुसार अनुष्टुभ् श्लोक के चारों पादों को क्रमशः एक-दूसरे के नीचे लिखना होगा । इस न्यास के अनुसार निर्मित चित्र निम्नलिखित है—

चित्र संख्या-८५

न्यास का श्लोक

सा सेना गमनारम्भे रसेनासीदनारता ।
तारनाद जनामत्तधीरनागमनामया ॥



मुरजबन्ध-१ (शिशुपाल वध)

गुणन चिह्न (×) पाठ के आरम्भ का द्योतक है ।

उद्धारक्रम को हेमचन्द्र ने शब्दों में जिस प्रकार व्यक्त किया है उसे यदि हम गणित के अंकों के द्वारा व्यक्त करें तो इसका रूप निम्न होगा—

चारों पादों को यदि हम क्रमशः क, ख, ग तथा घ कहें और वर्णों को १, २, ३ ....८ तो प्रथम पाद के वर्ण क्रमशः $क_{१}$, $क_{२}$, $क_{३}$.........$क_{८}$ के द्वारा अभिव्यक्त होंगे । यही क्रम अन्य पादों के वर्णों का भी होगा । न्यास के लिए, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, चारों पादों के आठों वर्णों को क्रमशः एक के नीचे दूसरा की रीति से लिखना होगा । इस न्यास में यदि हम $क_{१}$, $ख_{२}$, $ग_{३}$; $घ_{४}$, $घ_{५}$; $ग_{६}$, $ख_{७}$ तथा $क_{८}$ को एक साथ लें तो श्लोक के प्रथम पाद की प्राप्ति होगी ।

इसी प्रकार चतुर्थ पाद के उद्धार का क्रम $घ_{१}$, $ग_{२}$, $ख_{३}$, $क_{४}$, $क_{५}$, $ख_{६}$, $ग_{७}$ तथा $घ_{८}$ होगा ।

इनके अतिरिक्त उद्धार में द्वितीय तथा तृतीय पादों का वर्णक्रम निम्न होगा—

$ख_{१}$, $क_{२}$, $क_{३}$, $ख_{४}$, $ग_{४}$, $घ_{३}$, $घ_{२}$, $ग_{१}$ तथा $ख_{८}$, $क_{७}$, $क_{६}$, $ख_{५}$, $ग_{५}$, $घ_{६}$, $घ_{७}$, $ग_{८}$ ।

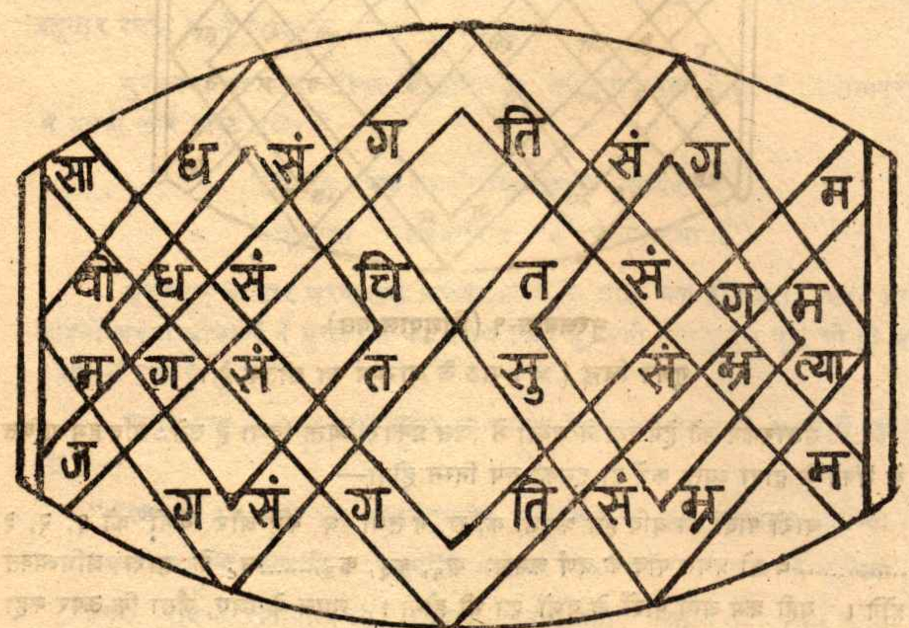
इस न्यास तथा उद्धारक्रम के अतिरिक्त संस्कृत में अन्य प्रकार के न्यास तथा उद्धारक्रम भी मिलते हैं। इस क्रम में 'सरस्वतीकण्ठाभरण' का उल्लेख ऊपर हो चुका है। अजितसेन रचित 'अलंकारचिन्तामणि' में भी अन्य प्रकार के कई न्यास हमें प्राप्त होते हैं।[1]

हिन्दी ग्रन्थ में उपर्युक्त न्यासक्रम का आधार लेकर केवल जनराज ने 'कवितारसविनोद' में एक उदाहरण की रचना की है। किन्तु यह रचना भी संस्कृत की ही है, हिन्दी की नहीं।

"साध संगति संगस्थ वोध संचित संगम।
मयसंत सुसंभ्रत्याजगसंगति संभ्रम॥"[2]

चित्र निम्नलिखित है—

चित्र संख्या-८६



मुरजबन्ध-२

चित्र में उल्लिखित प्रथम पंक्ति का अन्तिम अक्षर 'म' नहीं 'स्थ' है।

इसके अतिरिक्त हिन्दी में मुरजबन्ध के जितने भी उदाहरण मिलते हैं, किसी में प्रस्तुत न्यासक्रम नहीं अपनाया गया है। दरअसल बात यह है कि मुरजबन्ध हिन्दी में उतना प्रिय न रह सका जितना प्रिय वह संस्कृत के कवियों को था।

---

१. अ० चि०, परि २, श्लोक सख्या १४८ तथा १५० से १५४ तक।

२. कविता रस विनोद (हस्तलिखित), पत्रांक ३००

हिन्दी में भिखारीदास ने 'काव्यनिर्णय' में मुरजबन्ध के जिस छन्द की रचना की है उसका न्यास संस्कृत की उपर्युक्त न्यासविधि का बहुत कुछ अनुकरण करता है, किन्तु पूर्ण समानता इसमें भी नहीं है। भिखारीदास रचित छन्द निम्न है—

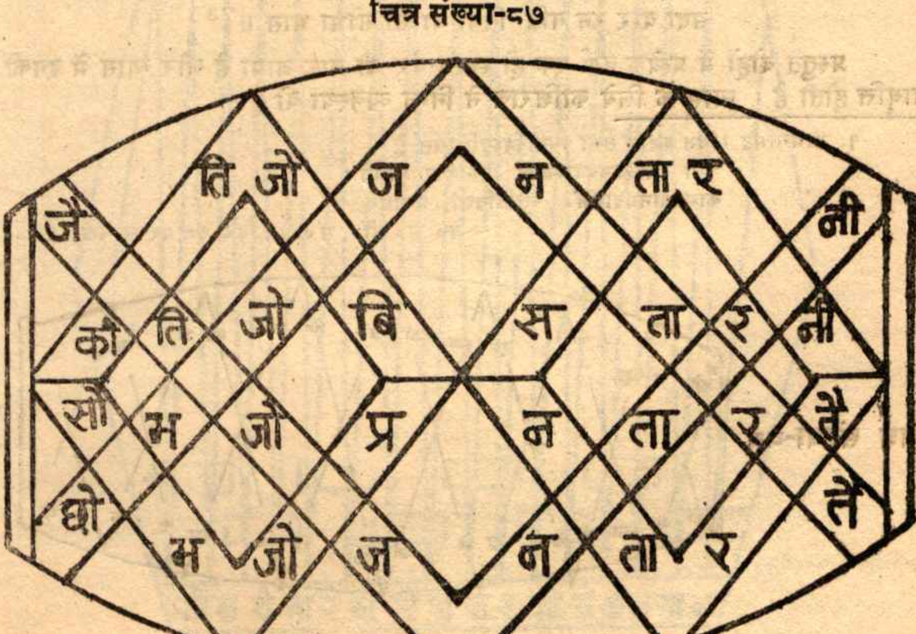
"जैति जो जन तारनी। कांति जो बिसतारनी।
सोभ जो प्रन तार तैं। छोभ जो जन तार तैं॥"[१]

संस्कृत में व्यवस्थित मुरजबन्ध के श्लोक के वर्णक्रम से प्रस्तुत छन्द का वर्णक्रम अन्य स्थानों में तो समान है, किन्तु दूसरे चरण के अन्तिम चार वर्णों की प्रतिलोमतः आवृत्ति प्रस्तुत छन्द में नहीं हुई है। फलतः उद्धार में प्रथम तथा अन्तिम चरणों का क्रम संस्कृत के समान होने पर भी, द्वितीय तथा तृतीय चरणों के उद्धार में अन्तर आ जाता है। यदि हम पूर्वविवेचित गणितिक पद्धति के द्वारा प्रस्तुत छन्द के उद्धारक्रम को व्यक्त करें तो इसका रूप निम्न होगा—

प्रथम चरण—	क$_{१}$ ख$_{२}$ ग$_{३}$ घ$_{४}$ घ$_{५}$ ग$_{६}$ ख$_{७}$ क$_{८}$
द्वितीय चरण—	ख$_{१}$ क$_{२}$ क$_{३}$ ख$_{४}$ ख$_{५}$ क$_{६}$ क$_{७}$ ख$_{८}$
तृतीय चरण—	ग$_{१}$ घ$_{२}$ घ$_{३}$ ग$_{४}$ ग$_{५}$ घ$_{६}$ घ$_{७}$ ग$_{८}$
चतुर्थ चरण—	घ$_{१}$ ग$_{२}$ ख$_{३}$ क$_{४}$ क$_{५}$ ख$_{६}$ ग$_{७}$ घ$_{८}$

चित्र संख्या ८७ में इस न्यास को देखा जा सकता है।

चित्र संख्या-८७



मुरजबन्ध-३

१. का० नि०, अध्याय—२१, छन्द संख्या ६९

मुरजबन्ध—दूसरा प्रकार

काशिराज रचित 'चित्रचन्द्रिका' में हमें एक दूसरे प्रकार के मुरजबन्ध का चित्र प्राप्त होता है। इस प्रकार के चित्र की रचना संस्कृत में कहीं दीख नहीं पड़ती। यों सामन्तभद्र (७वीं शती) की 'स्तुतिविद्या' (जिनशतक) में दिये गये मुरजबन्ध के एक श्लोक की न्यासविधि से कुछ इस प्रकार का संकेत प्राप्त किया जा सकता है।[1] फिर भी बन्ध का जो श्लोक सामन्तभद्र ने दिया है उसके रचनाक्रम से 'चित्रचन्द्रिका' में लिये गये छन्द का कोई साम्य नहीं दीख पड़ता। सामन्तभद्र द्वारा प्रदत्त श्लोक गोमूत्रिका विधि से रचित है और मुरज रूप में उसके न्यास की व्यवस्था भी गोमूत्रिका क्रम में ही है। इस प्रसंग में अजितसेन द्वारा 'अलंकार चिन्तामणि' में उदधृत न्यासश्लोक निम्न है—

> "पूर्वार्धमूर्ध्वं पङ्क्तौ तु लिखित्वार्धं परं ततः।
> एकान्तरितमूर्ध्वाधो मुरजं निगदेत् कविः॥"[2]

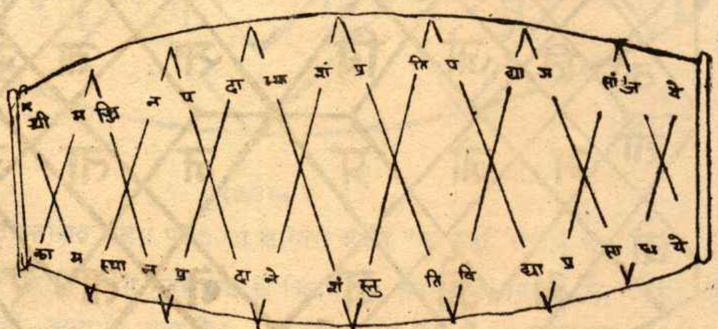
'चित्रचन्द्रिका' में दिये गये मुरजबन्ध के छन्द ऐसे नहीं हैं कि उन्हें ठीक उपर्युक्त-विधि से न्यस्त किया जा सके। इस विधि से न्यस्त होने वाले छन्दों के वर्णों का गोमूत्रिकाक्रम में रहना आवश्यक है। फिर भी 'चित्रचन्द्रिका' के छन्द से जो चित्र बनता है उसकी आकृति बहुतकुछ इस न्यासविधि से बने चित्र के सदृश ही दीख पड़ती है। 'चित्रचन्द्रिका' में रचित मुरजबन्ध के निम्न दोहे हैं—

> "ससी सीत तन नहिं हिये येरी रीता ताप।
> परै रैन नग गनन सी सीमा मा पा पाप॥
> परा राग गर रमि मिली लीपी पीरा रास।
> सदा दार रन नति तिया या सो सोभा भास॥"[3]

प्रस्तुत दोहों में प्रत्येक वर्ण एक ही स्थान पर दो बार आया है और न्यास में इनकी आवृत्ति होती है। न्यास के लिये काशिराज ने निम्न व्यवस्था दी है—

१. सामन्तभद्र रचित श्लोक तथा चित्र निम्नलिखित है—
"श्री मज्जिनपदाभ्याशं प्रतिपद्यागसांजये।
कामस्थानप्रदानेशं स्तुतिविद्यां प्रसाधये॥"
—जे० यू० बी०, सं० २९, पृ० ६८ पर उल्लेख

चित्र संख्या-८८



मुरजबन्ध-४

गुणन चिह्न (✕) पाठ के आरम्भ का द्योतक है।

२. अलंकार चितामणि, परि—२, श्लोक १४९

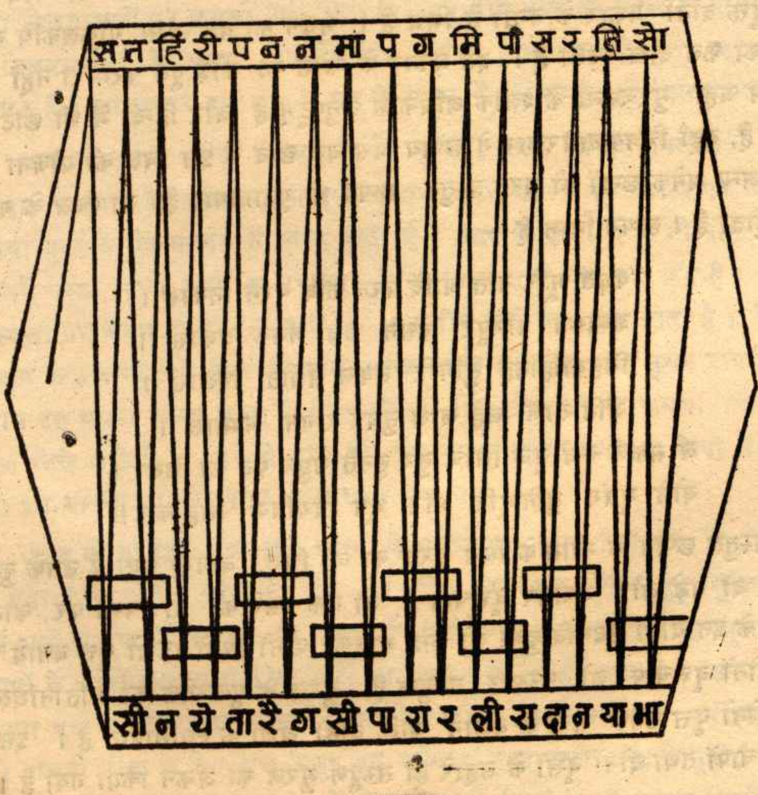
३. चि० चं०, प्रकाश ६, पृ० ९७, छन्द ४३-४४

"आदि अंत में इक बरण युग युग बरण जु एक।
ढाली क्रम ते बाँचिये मुरजबन्ध कहि टेक॥"[1]

प्रस्तुत दोहे की टीका में कवि ने कहा है कि मुरजबन्ध के आदि तथा अन्त के वर्ण एक ही होने चाहिये तथा बीच के अन्य वर्ण सभी दो-दो। पाठ की रीति में उन्होंने ढाली अर्थात् मुरज की रस्सी के तनाव के क्रम से पढ़ने की व्यवस्था दी है।

उपर्युक्त व्यवस्था के अनुकूल जो चित्र 'चित्रचन्द्रिका' में दिया गया है उसमें ऊपर और नीचे रस्सी के मोड़ पर वर्णों की दो पंक्तियाँ लिखी गई हैं। सारे वर्ण केवल एक बार लिखे गये हैं और उनका क्रम एक ऊपर तथा एक नीचे है। सामन्तभद्र द्वारा रचित श्लोक के न्यास[2] तथा इस न्यास में मूल अन्तर यह है कि जहाँ संस्कृत के उक्त न्यास में श्लोक की दो पंक्तियाँ मूल रूप में ही क्रमशः ऊपर नीचे लिखी जाती हैं, वहाँ इस न्यास में छन्द का प्रथम वर्ण यदि ऊपर है तो द्वितीय वर्ण नीचे लिखा जायगा। न्यास में वर्णयुग्म को हमें एक ही वर्ण मानना होगा। चित्र निम्नलिखित है—

चित्र संख्या-८९



मुरजबन्ध-५

१. चि०च०, प्रकांश ६, छन्द ४२
२. तुलना के लिये द्रष्टव्य चित्र संख्या ८७ तथा ८८

यहाँ दोनों दोहों में कुल ६४ वर्ण यानी ३२ वर्णयुग्म हैं। इनका न्यास चित्र में इस प्रकार हुआ है कि प्रथम वर्ण बायीं ओर ऊपर, तो उसी रस्सी की सीध में, नीचे द्वितीय वर्ण, पुनः तृतीय वर्ण ऊपर और चतुर्थ वर्ण नीचे। इसी क्रम से सभी वर्णों का न्यास चित्र में होता है। उद्धार के लिये हम न्यास के प्रथम वर्ण से आरम्भ करते हैं और नीचे का वर्ण पढ़ते हैं, पुनः इसी वर्ण से आरम्भ कर रस्सी के सहारे ऊपर चले जाते हैं, पुनः ऊपर का वर्ण पढ़कर रस्सी के सहारे ही नीचे के अगले वर्ण पर जा पहुँचते हैं। पाठ के इस क्रम में हम प्रत्येक वर्ण को दो बार पढ़ते हैं और अन्त में दोनों दोहों की प्राप्ति हमें हो जाती है। इस प्रकार प्रस्तुत चित्र में 'स' से आरम्भ करते हैं और 'सी' का पाठ दोबार करके पुनः ऊपर 'त' को दो बार पढ़ते हैं। पुनः नीचे न्यस्त 'न' को दो बार पढ़ते हैं और तब ऊपर के वर्ण 'हि' का पाठ दो बार किया जाता है। इसी क्रम से चित्र में न्यस्त सभी वर्णों का दो बार पाठ होता है और उद्धार पूर्ण हो जाता है।

मुरजबन्ध—तीसरा प्रकार

गोकुलकवि ने 'चित्रकलाधर' में मुरज अथवा मृदंगबन्ध की जो योजना की है, वह उपर्युक्त दोनों प्रकार के बन्धों से भिन्न है। मृदंग का यह न्यास गोकुलकवि की अपनी कल्पना का फल दीख पड़ता है। इस प्रकार के न्यास की कोई पूर्व परम्परा नहीं मिलती। संस्कृत में जहाँ मुरजबन्ध के श्लोक अधिकांश अनुष्टुभ् हैं और हिन्दी में भी छोटे छन्द ही दिये गये हैं, वहाँ चित्रकलाधरकार ने छप्पय जैसे बड़े छन्द में इस चित्र की योजना की है। साथ ही अन्य अनेक छन्दों की तरह प्रस्तुत छप्पय भी गूढ़ान्तपाद है, जो चित्र के गर्भ से ही निःसृत होता है। छप्पय निम्न है—

"कढ़त भूरि गति आदि परन फवि वरन निकासै।
शब्दरूप परिपूर दिसन सब गमक प्रकासै॥
सिंहवाहिनिह सुमिरि सकल संगीत विलासै।
जैति ताल लह जाल सुघर रागन अभ्यासै॥
लै सकल वजै वृज सिंचि सुर सुनत मधुर पद का विवर।
बोले मृदंग धुनिभूरि भरि भूप दिगविजै सिंह कर॥"[१]

प्रस्तुत छप्पय के न्यास के लिये मुरज का जो चित्र[२] बनाया गया है उसके कुल चार अंग हैं। दो बड़े और बराबर वृत्तचाप हैं जो एक दूसरे को दो स्थलों पर काटते हैं। वृत्तचापों के इन दोनों छेदनबिन्दुओं को केन्द्र मानकर दोनों सिरों पर दो वृत्त बनाये गये है। चित्र में दोनों वृत्तचाप जो परस्पर सम्मुख है, मुरज के मूलप्रदेश का प्रतिनिधित्व करते हैं, तथा दोनों वृत्त उनके सिरों के बजाने वाले दोनों अंशों के स्थानापन्न हैं। इस प्रकार इन दोनों चापों तथा दोनों वृत्तों के सहारे ही सम्पूर्ण मुरज का अंकन किया गया है।

---

१. चि० क०, पृ० ८९

२. चित्र संख्या ९०

इस सम्पूर्ण चित्र में कुल दस ऐसे स्थल हैं जहाँ मुरज के दो अंश आपस में मिलते हैं तथा जहाँ न्यस्त वर्णों का पाठ एक से अधिक बार होगा। दो तो दोनों चापों के ही मिलन-स्थल हैं जो क्रमशः दोनों चापों में से प्रत्येक को क्रमशः दो-दो स्थलों पर काटते हैं और इस प्रकार कुल दस स्थल ऐसे निकल आते हैं जहाँ आवृत्ति के लिये स्थान होता है।

चित्र में न्यास के क्रम को स्पष्ट करने के उद्देश्य से मुरज के चारो अंगों में न्यास के प्रारम्भिक स्थल के पास इन अंगों की संख्या क्रमशः १, २, ३ तथा ४ लिखी गयी हैं। चित्र में छन्द के न्यास का आरम्भ ऊपर वाले वृत्तचाप के सिरे से होता है। इस स्थल को १ की संख्या द्वारा निर्देशित किया गया है। प्रस्तुत वृत्तचाप के वामार्द्ध में छन्द की प्रथम पंक्ति 'कढ़त भूरि गति आदि परन फवि वरन निकासैं' का न्यास इस प्रकार किया गया है कि इस अंश में पड़ने वाले तीनों ही मिलनस्थलों में क्रमशः 'भू', 'दि', 'वि', इन तीन वर्णों का न्यास हुआ है तथा चाप के मध्य में जाकर इस पंक्ति का न्यास समाप्त हो जाता है। पुनः छन्द की दूसरी पंक्ति 'शब्दरूप परिपूर दिसन सब गमक प्रकासैं' का न्यास दूसरे चाप के वामार्द्ध में (जहाँ २ की संख्या लिखी है) इस प्रकार होता है कि इस अंश में पड़ने वाले तीनों ही मिलनस्थलों पर क्रमशः 'प', 'दि', 'ग', इन तीन वर्णों का न्यास हो पाता है। इन तीनों मिलनस्थानों में, मध्य, दोनोंचाप का परस्पर मिलनस्थल है अतः वहाँ का न्यास उभयनिष्ठ है। इस प्रकार इस अंश में छह के स्थान में केवल पाँच ही मिलनस्थल हैं।

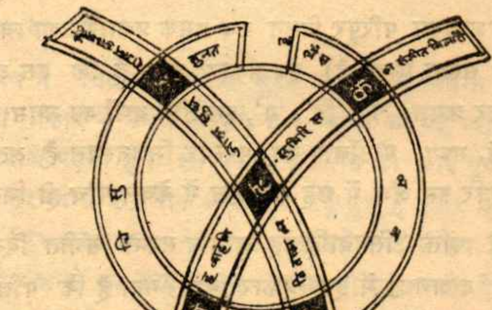
छन्द की तृतीय पंक्ति "सिहवाहिनिह सुमिरि सकल संगीत विलासैं" का न्यास पुनः प्रथम वृत्तचाप के दक्षिणार्द्ध में इस प्रकार किया गया है कि पंक्ति का प्रथम वर्ण, चाप तथा वृत्त के मिलनस्थल में न्यस्त होता है। चाप के इस अंश में भी तीन मिलनस्थल हैं, जिनमें मध्य, दोनों चापों का परस्पर मिलनस्थल तथा वृत्त का केंद्र है। इन तीनों मिलनस्थलों पर क्रमशः 'सि', 'ह' तथा 'क', इन तीन वर्णों का न्यास होता है। इसी प्रकार दूसरे चाप के दक्षिणार्द्ध में छन्द की चौथी पंक्ति 'जैति ताल लह जाल सुघर रागन अभ्यासैं', का न्यास इस प्रकार किया जाता है कि तीनों ही मिलनबिन्दुओं पर क्रमशः 'जै', 'ह' तथा 'र' वर्ण लिखे जाते हैं। इनमें से मध्य का मिलनस्थल चूँकि दोनों ही चापों में उभयनिष्ठ है अतः इस अंश में भी कुल पाँच मिलनस्थल हैं।

छन्द की पाँचवीं तथा छठी पंक्ति के पूर्वार्द्ध का न्यास सिरे पर के दोनों वृत्तों में किया गया है। पाँचवीं पंक्ति के अंश "लै सकल वजै वृज सिंचि सुर सुनत' का न्यास दक्षिण भाग के वृत्त में (जहाँ ३ की संख्या लिखी है) किया जाता है। इस वृत्त और दोनों ही चापों के चारों मिलनस्थलों पर वर्णों का न्यास पहले ही हो चुका है। छन्द के इस अंश का न्यास वृत्त में इस प्रकार किया जाता है कि इन मिलनस्थलों में पूर्वलिखित वर्ण ही आवें। पाँचवी पंक्ति के शेष अंश 'मधुर पद कविवर' तथा छठी पंक्ति के पूर्वार्द्ध 'वोलैं मृदंग धुनि भूरि भरि' का न्यास वाम भाग में स्थित वृत्त में (जहाँ ४ की संख्या लिखी है) किया गया है। यहाँ भी न्यास का क्रम यही होगा कि मिलनस्थलों पर पूर्वन्यस्त वर्ण ही रहें। इस प्रकार चित्र में छन्द का न्यास पूर्ण हो जाता है।

चित्र संख्या-९०

न्यास का छन्द

कढ़त भूरि गति आदि परन फवि बरन निकासै ।
शब्दरूप परिपूर दिसन सब गमक प्रकासै ।।
सिंह वाहिनिह सुमिरि सकल संगीत विलासै ।
जैति ताल लह जाल सुघर रागन अभ्यासै ।।
लै सकल बजै वृज सिंचि सुर सुनत मधुर पद का विवर ।
बोलै मृदंग धुनिभूरि भरि भूप दिगविजै सिंह कर ।।



मुरजबन्ध-६

चित्र में नीचे दाहिनी ओर के काले प्रखण्ड में लिखित 'भ' के स्थान में 'भू' पढ़ें ।

छन्द की अन्तिम अर्थात् छठी पंक्ति के उत्तरार्द्ध 'भूप दिग विजै सिंह कर' का न्यास अलग से नहीं करना पड़ता। उद्धार के क्रम में दसों मिलनस्थलों में न्यस्त वर्णों से छन्द का यह अंश स्वत: नि:सृत होता है। छन्द के अन्य अंशों का उद्धार तो न्यास के क्रम को अपनाकर पढ़ते जाने से ही होगा, किन्तु इस अन्तिम अंश के उद्धार के लिये सर्वप्रथम मुरज के वामभाग में स्थित चाप १ तथा वृत्त ४ के प्रथम मिलनस्थल पर स्थित 'भू' का पाठ करेंगे, पुन: इसके ऊपर चाप २ तथा वृत्त ४ के मिलनस्थल पर न्यस्त वर्ण 'प' का पाठ होगा। तदनन्तर वृत्त ४ के केंद्र में दोनों चापों के मिलनस्थल पर स्थित 'दि' वर्ण का पाठ किया जायगा। पुन: चाप २ तथा वृत्त ४ के दक्षिण भाग में स्थित मिलनस्थल पर न्यस्त वर्ण 'ग' का पाठ करेंगे तथा इसके उपरान्त चाप १ तथा वृत्त ४ के (दक्षिण भाग में स्थित) मिलनस्थल पर न्यस्त 'वि' का पाठ करना होगा।

इसी क्रम से मुरज के दक्षिण भाग में स्थित क्रमश: वृत्त ३ तथा चाप २ के मिलनस्थल, वृत्त ३ तथा चाप १ के मिलनस्थल, वृत्त ३ का केन्द्र अथवा दोनों चापों के मिलनस्थल, वृत्त ३ तथा चाप १ के अन्तिम मिलनस्थल तथा वृत्त ३ और चाप २ के अन्तिम मिलनस्थल पर न्यस्त वर्ण 'जे', 'सिं', 'ह', 'क' तथा 'र', का पाठ करने से छन्द के इस अन्तिम अंश 'भूप दिगविजै सिंह कर' की प्राप्ति हमें हो जायगी। मिलन स्थलों में न्यस्त इन वर्णों को, पाठ की सुविधा के लिये काले प्रखण्डों में लिखा गया है। चित्र संख्या ९० में इस न्यास को देखा जा सकता है।

जगत सिंह ने अपने 'चित्रकाव्य' नामक पुस्तक में मुरजबन्ध के नाम में जो छन्द और चित्र दिया है,[1] वह वस्तुत: पूर्वविवेचित चतुरर चक्र का छन्द तथा चित्र है। अत: मुरजबन्ध के नाम में इस चित्र का लिखा जाना या तो लिपिकार की भूल है अथवा लेखक की असावधानी। चतुरर चक्र की दृष्टि से भी प्रस्तुत न्यास दोषरहित नहीं है। मुरजबन्ध के रूप में इसका कोई महत्त्व नहीं है।

कंकणबन्ध—

आभूषण के आकार में निर्मित बन्धों में संस्कृत में हमें केवल हारबन्ध तथा कांचीबन्ध के[2] अतिरिक्त कंकणबन्ध के चित्र भी मिलते हैं।[3] हारबन्ध संस्कृत कवियों का एक प्रिय बन्ध रहा है और उसके अनेक प्रकारों की रचना संस्कृत में हुई है। हिन्दी के कवियों ने भी उसकी यथेष्ट रचना की है। इसका विवेचन भी हम कर चुके हैं।[4] कांचीबन्ध की रचना हिन्दी में नहीं हुई। कंकणबन्ध को लेकर तो संस्कृत में कंकणबन्ध-रामायण तक की रचना हुई है, किन्तु हिन्दी में इसका अनुकरण नहीं मिलता। हिन्दी में रचित कंकणबन्ध की न्यासविधि संस्कृत के कंकणबन्ध से पूर्णत: स्वतन्त्र है।

---

१. चित्रकाव्य (हस्तलिखित), छन्द १५०

२. कांचीबन्ध—हरविजयम्, सर्ग ४३, श्लोक—३७ तथा १३, कप्फिणाभ्युदयम्, सर्ग—१८, श्लोक १२९-१३०

३. द्रष्टव्य, प्रस्तुत पुस्तक के पंचम अध्याय में कंकणबन्ध रामायण का बिवेचन।

४. द्रष्टव्य, प्रस्तुत अध्याय में हारबन्ध का विवेचन।

प्रस्तुत बन्ध की रचना सुन्दरदास, भिखारीदास, जनराज तथा नगनारायण सिंह द्वारा की गई है।[१] इनके द्वारा दिये गये चित्र यद्यपि भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं, किन्तु इन चित्रों में न्यस्त छन्दों की रचनापद्धति एक ही है। इन छन्दों को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि कंकणबन्ध के लिये रचित छन्दों में गोमूत्रिकाक्रम होना आवश्यक था—यानी छन्द की सभी पंक्तियों के युग्मवर्ण सम होने चाहिये। इस नियम में व्यतिक्रम केवल नगनारायण सिंह रचित छन्दों में होता है, क्योंकि इन छन्दों की पंक्तियों में युग्मवर्ण के बदले तुर्यवर्ण समाक्षर हैं।

कंकणबन्ध के जो चित्र इन कवियों द्वारा निर्मित हैं, उनमें केवल 'सुन्दरग्रन्थावली' के चित्र ही विश्वसनीय दीख पड़ते हैं। भिखारीदास के 'काव्यनिर्णय' में निर्मित चित्र भी कोई चमत्कार उत्पन्न नहीं करता। सुन्दरदास रचित कंकणबन्ध का एक छन्द निम्न है—

"हठयोग धरौ तन जात भिया हरि नाम बिना मुख धूरि परै।
सठ सोग हरौ छन गात किया चरि चांम दिना भुष पूरि जरै।।
भठ भोग परौ गन षात धिया अरि काम किना सुख झूरि मरै।
मठ रोग करौ घन घात हिया परि राम तिना दुख दूरि करै।।"[२]

यहाँ हम पाते हैं कि छन्द की सभी पंक्तियों में समान युग्माक्षर की व्यवस्था है। छन्द की यही योजना चित्र के न्यास में चमत्कार उत्पन्न करती है। छन्द के न्यास के हेतु कंकण के आकार का चित्र[३] इस प्रकार खचित है कि उसके अन्तर्गत तीन पंक्तियों में कोष्ठकों की रचना की गई है। अर्द्धमण्डलाकार कोष्ठकों की दो पंक्तियाँ कंकण में इस प्रकार नियोजित हैं कि उनके पीछे का भाग परस्पर मिलता है तथा उनके मुँह परस्पर विपरीत दिशा में होते हैं। इन कोष्ठकों के निर्माण से बीच में चौकोर कोष्ठकों की एक पंक्ति स्वतः निर्मित हो जाती है। अर्द्धमण्डलाकार कोष्ठकों के मध्य में ऊपर से नीचे तक एक सीधी रेखा खींचकर उन्हें दो भागों में बाँट दिया गया है। चित्र में ऊपर के अर्द्धमण्डलाकार कोष्ठकों की पंक्ति में छन्द के प्रथम तथा द्वितीय चरण के विषम वर्ण लिखे गये हैं तथा नीचे के अर्द्धमण्डलाकार कोष्ठकों की पंक्ति में छन्द के तृतीय तथा चतुर्थ चरण के विषम वर्ण लिखे गये हैं। छन्द के चारों चरणों के समवर्ण बीच के चौकोर कोष्ठकों में लिखे गये हैं। विषम वर्णों के न्यास का क्रम यह है कि प्रत्येक अर्द्धमण्डलाकार कोष्ठकों के वाम भाग में प्रथम चरण का एक विषम वर्ण तथा दक्षिण भाग में द्वितीय चरण का वही विषम वर्ण

१. (क) सुन्दर ग्रन्थावली, पृ० ९७१ तथा ९७२, छन्द संख्या २३-२४
(ख) काव्य-निर्णय, अ० २१, छन्द संख्या ६१
(ग) कविता-रस-बिनोद, प्रत्रांक २९४, छन्द संख्या ३७
(ख) दुर्गा-प्रेम-तरंगिनी, पृ० २१

२. सुन्दर ग्रन्थावली, पृ० ९७१, छन्द संख्या २३

३. चित्र संख्या ९१

स्थित है। उदाहरणार्थ ऊपर के प्रथम अर्द्धमण्डलाकार कोष्ठक के दोनों भागों में से बायीं ओर छन्द के प्रथम चरण का प्रथम वर्ण 'ह' तथा दायीं ओर छन्द के द्वितीय चरण का प्रथम वर्ण 'स' न्यस्त है।[1] दोनों ही चरणों का द्वितीय वर्ण 'ठ' इसके पास के चौकोर कोष्ठक में है। इसी प्रकार दूसरे अर्द्धमण्डलाकार कोष्ठक के वाम भाग में प्रथम चरण का तृतीय वर्ण 'जो' तथा दक्षिण भाग में द्वितीय चरण का तृतीय वर्ण 'सो' लिखा गया है। दोनों ही चरणों का चतुर्थ वर्ण आगे के चौकोर कोष्ठक में न्यस्त है। न्यास का यही क्रम सम्पूर्ण कंकण में चलता है।

नीचे के अर्द्धमण्डलाकार कोष्ठकों में भी उपर्युक्त क्रम से ही तृतीय तथा चतुर्थ चरण के विषम वर्ण न्यस्त होंगे। इन चरणों के समवर्ण भी वे ही हैं जो उपर्युक्त दोनों चरणों के हैं अतः अलग से उनके न्यास की कोई आवश्यकता नहीं। यहाँ यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि कंकण का चित्र वृत्ताकार होने के कारण इस प्रसंग में ऊपर और नीचे के कोष्ठकों से तात्पर्य उन कोष्ठकों से है जो क्रमशः कंकण के बाह्यवृत्त तथा आभ्यन्तर वृत्त को छूते हैं। पाठ की सुविधा के लिये न्यास में प्रत्येक चरण के आरम्भ के वर्ण के साथ ही उसकी संख्या १, २, ३ तथा ४ लिख दी गई है। ध्यान से देखने पर स्पष्ट हो जायगा कि चित्र में छन्द के विषम तथा सम वर्ण परस्पर गोमूत्रिका रीति से नियोजित हैं। न्यास की दिशा सामान्य रूप से वाम से दक्षिण की ओर है।

चित्र से छन्द के उद्धार के लिए सर्वप्रथम हम ऊपर के कोष्ठक में, जहाँ एक की संख्या लिखी है, लिखे वर्ण से आरम्भ करेंगे। पुनः आगे के चौकोर कोष्ठक में न्यस्त वर्ण का पाठ करेंगे। पुनः ऊपर के दूसरे अर्द्धमण्डलाकार कोष्ठक के वाम भाग में न्यस्त वर्ण पढ़ेंगे तथा पुनः आगे के चौकोर कोष्ठक के वर्ण पढ़ेंगे। इस क्रम से ऊपर के अर्द्धमण्डलाकार कोष्ठकों के वाम भाग में न्यस्त वर्णों के साथ चौकोर कोष्ठकों में न्यस्त वर्णों का पाठ करने पर हमें छन्द के प्रथम चरण की प्राप्ति होती है। छन्द के द्वितीय चरण के उद्धार के लिये हम उस कोष्ठक से आरम्भ करेंगे जहाँ २ की संख्या लिखी है और उपर्युक्त क्रम से ही ऊपर के अर्द्धमण्डलाकार कोष्ठकों के दक्षिण भाग में न्यस्त वर्णों को चौकोर कोष्ठक के वर्णों के साथ मिलाकर पढ़ते चलेंगे। इसी रीति से आभ्यन्तर वृत्त को छूने वाले अर्द्धमण्डलाकार कोष्ठकों में लिखित ३ और ४ की संख्यावाले वर्ण से आरम्भ कर तथा चौकोर कोष्ठकों में न्यस्त वर्णों को साथ लेकर गोमूत्रिका रीति से दक्षिण दिशा की ओर बढ़ते जाने पर क्रमशः छन्द के तीसरे तथा चौथे चरणों की प्राप्ति होती है।

न्यास की यह विधि भिखारीदास तथा जनराज द्वारा रचित कंकणबन्ध के छन्दों में भी बिलकुल ठीक आती है, यद्यपि उन्होंने अन्य प्रकार के चित्रों में इन छन्दों का न्यास किया है।[2] चित्र संख्या ९१ में उपर्युक्त न्यास द्रष्टव्य है।

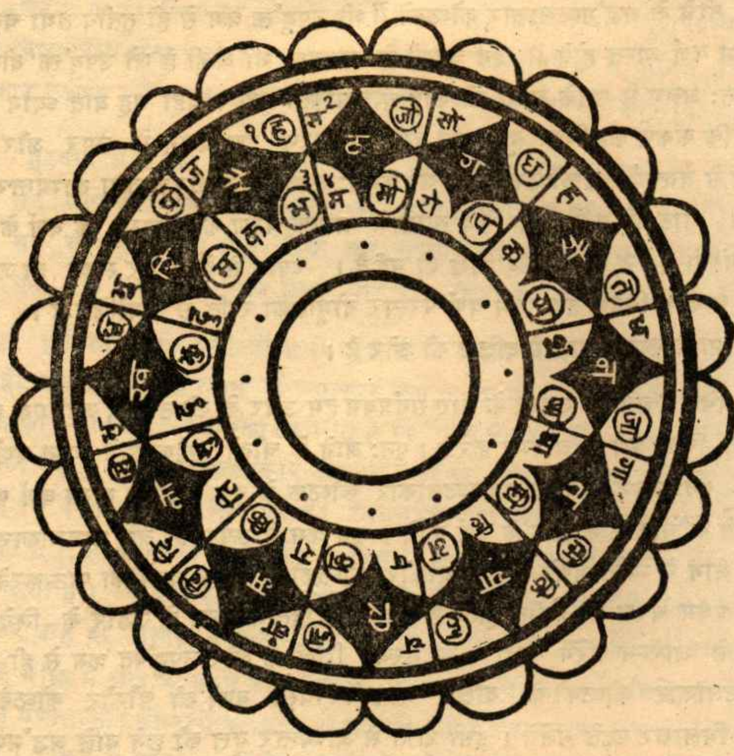
१. जहाँ क्रमशः १ तथा २ की संख्या लिखी है।

२. द्रष्टव्य पूर्व पृष्ठ की पादटिप्पणी १

चित्र संख्या-६१

न्यास का छन्द

हठयोग धरौ तन जात भिया हरि नाम बिना मुख धूरि परैं ।
सठ सोग हरौ छन गात किया चरि चांम दिना भुष पूरि जरैं ।
भठ भोग परौ गन षात धिया अरि काम किना सुख झूरि मरैं ।
मठ रोग करौ घन घात हिया परि राम तिना दुख दूरि करैं ॥



कंकण बन्ध

हल की कुण्डी बन्ध—

हलबन्ध संस्कृत का एक पुराना और प्रचलित बन्ध था । सर्वप्रथम रुद्रट ने ही हलाकार चित्रबन्ध की रचना की थी ।[1] किन्तु केवल हल की कुण्डी के आकार का चित्र हिन्दी

---

१ : मातंगानंगविधिनामुना पादं॰तमुद्यतम् ।
तंगयित्वा शिरस्यस्य निपात्याहन्तिरंहसा ॥
—काव्यालंकार, अ० ५, श्लोक १३

के 'प्रबीनसागर'[1] तथा चित्रचन्द्रिका' में मिलता है। प्रस्तुत चित्र की न्यासविधि भी बिलकुल अलग है और हलबन्ध से इसकी समानता किसी भी चित्र में नहीं है। साथ ही 'प्रबीनसागर' तथा 'चित्रचन्द्रिका' दोनों के छन्दों की रचना की विधि एक ही है और चित्र में उनका न्यास भी बिलकुल समान है। उदाहरण के लिये 'चित्रचन्द्रिका' में निम्न छन्द का न्यास इस चित्रमें किया गया है—

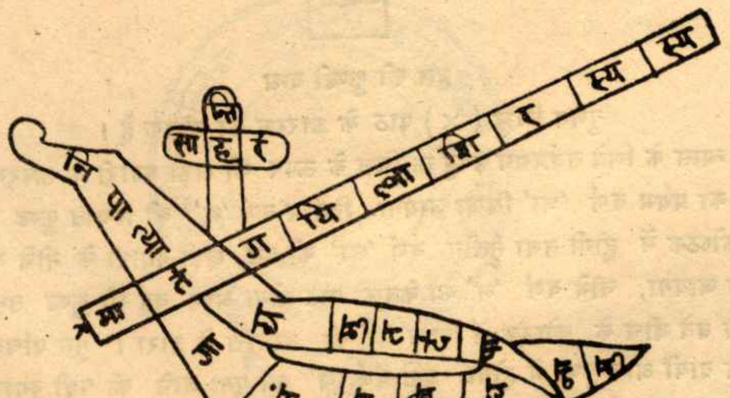
"भाल लाल गल माल भल छल वल थल चल हाल।
ख्याल लाल मिल ताल जल दल मल पल पल वाल।"[2]

प्रस्तुत छन्द की रचना षोडशदल कमल के छन्द की विधि से गोमूत्रिका क्रम में हुई है। 'प्रबीनसागर' के चित्र में न्यस्त दोहा भी इसी पद्धति पर रचित है जिसका प्रत्येक युग्म-वर्ण एक ही है।

कुण्डी के चित्र[3] में एक वृत्ताकार कोष्ठक बनाया गया है, और इस वृत्ताकार कोष्ठक को काटते हुए दो पड़े समानान्तर आयताकार कोष्ठक बनाये गये हैं। इनके अतिरिक्त एक आयताकार कोष्ठक खड़ा भी बनाया गया है। ये खड़े और पड़े कोष्ठक अपने दोनों सिरों की ओर वृत्ताकार कोष्ठक को भी काटते हैं साथ ही परस्पर भी कटते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण चित्र में कुल २४ कोष्ठक बन जाते हैं तथा इन्हीं कोष्ठकों में छन्द का न्यास होता है। इस न्यास की विधि की ओर स्वयं कवि ने भी संकेत किया है—

इसस वर्ग वाला रुद्रट प्रदत्त चित्र निम्नलिखित है —

चित्र संख्या-६२



हल बन्ध (रूद्रट)

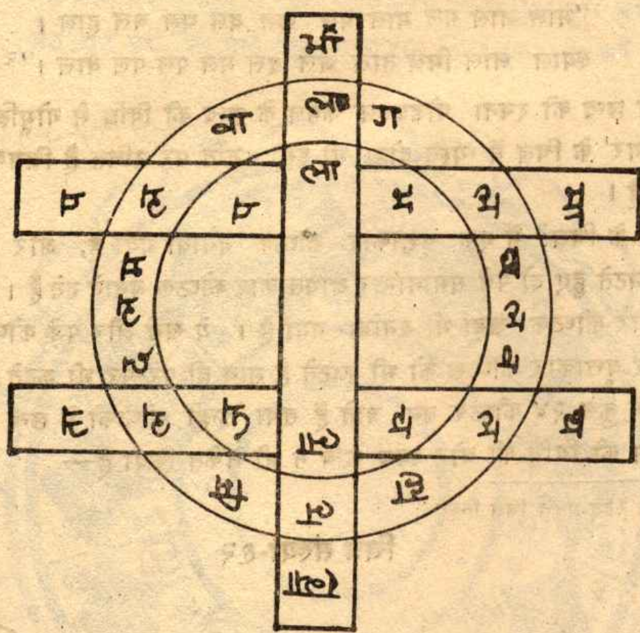
गुणन चिह्न (×) पाठ के आरम्भ का द्योतक है।

१. प्र० सा०, लहर-६५, पृ० ६४९
२. चित्र चं०, प्रकाश-६, पृ० ६३, छंद ७
३. चित्र संख्या ९३

"क्यारी वर्ण मिलाइये कूंडवर्ण सो मित्र ।
या विधि अक्षर जोजना कूंड बन्ध सो चित्र ॥"[१]

यहाँ आयताकार कोष्ठक को क्यारी कहा गया है तथा वृत्ताकार कोष्ठक का कुण्ड । इस प्रकार सम्पूर्ण चित्र में छह क्यारियाँ बनती हैं । चित्र निम्नलिखित है—

चित्र संख्या-९३



हल की कुण्डी बन्ध

गुणन चिह्न (×) पाठ के आरम्भ का द्योतक है ।

न्यास के लिये सर्वप्रथम उपर्युक्त चित्र के ऊपर की खड़ी क्यारी के ऊपरवाले कोष्ठक में छन्द का प्रथम वर्ण 'भा' लिखा जायगा. द्वितीय वर्ण 'ल' की स्थिति कुण्ड और क्यारी से बने कोष्ठक में होगी तथा तृतीय वर्ण 'ला' को इस खड़ी क्यारी के नीचे वाले कोष्ठक में लिखा जायगा, चौथे वर्ण 'ल' का केवल पाठ होगा और वह भी कुण्ड तथा इस खड़ी क्यारी से बने बीच के कोष्ठक में स्थित 'ल' की आवृत्ति के द्वारा । पुन पाँचवें वर्ण 'ग' का न्यास दायीं ओर कुण्ड में होगा, छठे वर्ण 'ल' को पुनः आगे की पड़ी क्यारी के बीच तथा कुण्ड से बने कोष्ठक में लिखा जायगा । सातवें तथा नवें वर्ण को क्रमशः इसी क्यारी के ऊपर तथा नीचे वाले भाग में लिखना होगा । क्यारी के मध्य में लिखे 'ल' का पाठ छठे, आठवें तथा दसवें वर्ण के स्थान पर होगा क्योंकि ये सभी युग्मवर्ण 'ल' ही हैं । पहली पड़ी क्यारी तथा दूसरी पड़ी क्यारी के मध्य पड़ने वाले कुण्ड के भाग में 'चित्रचन्द्रिका' के चित्र में तीन-तीन वर्णों का न्यास है, 'प्रबीनसागर' के चित्र में इन स्थानों में केवल एक-एक

१. चि० चं०, प्रकाश ६, पृ० ६२, छन्द ६

वर्ण ही हैं ।[1] वस्तुतः इससे न्यास की विधि में कोई अन्तर नहीं पड़ता । यह अन्तर वर्णों की संख्या के कारण आ गया है । चूँकि सम्पूर्ण छन्द का प्रत्येक युग्मवर्ण एक ही है अतः न्यास का यही क्रम—क्यारी के बायें, ऊपर, नीचे तथा दायें विषमवर्ण तथा मध्य में युग्म समवर्ण, सम्पूर्ण चित्र में चलता रहेगा । न्यास की गति बायीं से दायीं ओर होगी । इसी प्रकार न्यास सम्पन्न होगा । पाठ में क्यारी के मध्य में स्थित प्रत्येक 'ल' का पाठ तीन बार होगा ।

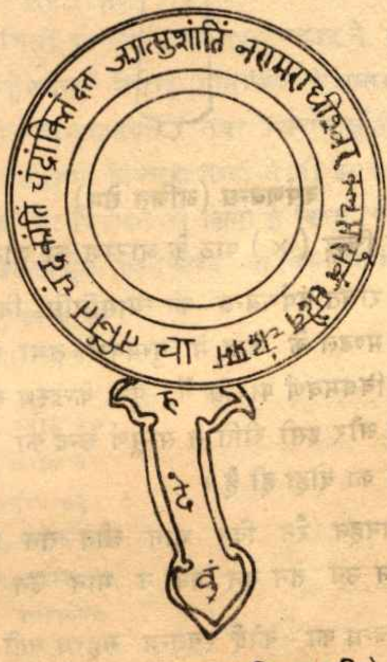
दर्पणबन्ध

'प्रबीनसागर' में ही दर्पणबन्ध नाम से भी एक बन्ध का चित्र मिलता है, यद्यपि इस बन्ध के न्यास में किसी प्रकार की विशेषता नहीं दीख पड़ती । संस्कृत में उदयमाणिक्य गणि तथा अजितसेन द्वारा रचित दर्पणबन्ध के दो चित्र प्राप्त होते हैं, किन्तु इन दोनों बन्धों की रचनापद्धति 'प्रबीनसागर' के इस चित्रबन्ध से भिन्न है । इतना ही नहीं संस्कृत के इन दोनों बन्धों में भी किसी प्रकार की समता नहीं दीख पड़ती । दोनों चित्र नीचे दिये जाते हैं—

चित्र संख्या ६४
न्यास का श्लोक

"वन्दे रुचा तर्जित चन्द्रकान्ति,
चन्द्रांकितं दत्त जगत्सुशान्तिम् ।
नरामराधीश्वरक्लृप्तसेवं,
सदैव चन्द्रप्रभ चारुदेवम् ॥"

(जे० यू० बी० ३०, पृ १२१)



दर्पणबन्ध (उदय माणिक्य गणि)
गुणन चिह्न (×) पाठ के आरम्भ का द्योतक है ।

---

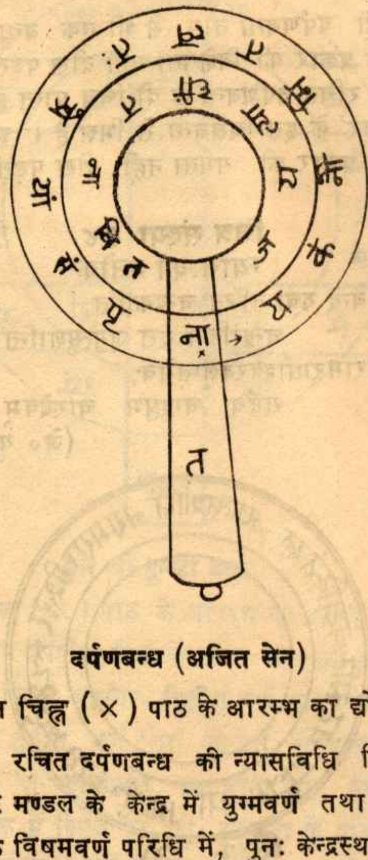
1. लहर ६५, पृ० ६४९

चित्र संख्या ६५

न्यास का श्लोक

"नायकं नौमि तत्त्वतः श्रेयांसंपृतनां तनाम् ।
नाऽ तनानातनानात जयत्याधीं तनावित ॥"

(परि० २, श्लोक १६५)



दर्पणबन्ध (अजित सेन)

गुणन चिह्न (×) पाठ के आरम्भ का द्योतक है।

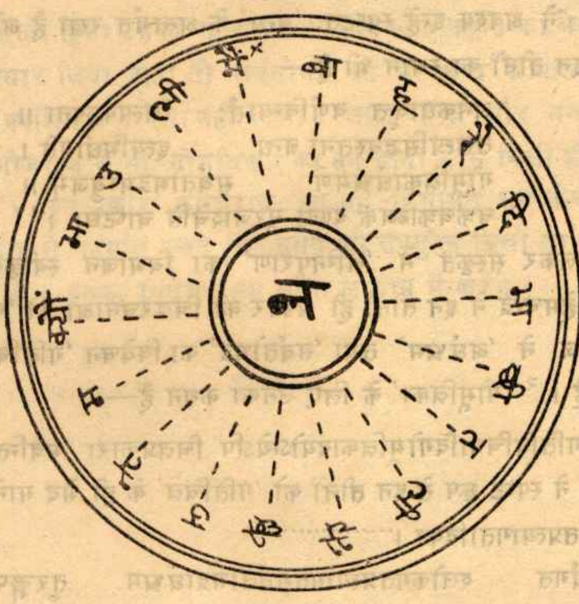
'प्रबीनसागर' में रचित दर्पणबन्ध की न्यासविधि बिलकुल षोडशदल कमल की न्यासविधि है—वर्तुलाकार मण्डल के केन्द्र में युग्मवर्ण तथा चारोंओर विषमवर्ण। पाठ की विधि भी वही है—एक विषमवर्ण परिधि में, पुनः केन्द्रस्थ वर्ण, पुनः परिधि में लिखित विषमवर्ण, पुनः केन्द्रस्थ वर्ण और इसी रीति से सम्पूर्ण छन्द का उद्धार हो जाता है। इस बन्ध का छन्द भी कमलबन्ध का दोहा ही है।

"मैन बानहन रैन दिन भान छीन तन लीन ।
चैन छीन उन तेन मन क्यों न भान उन लीन ॥"[1]

इस प्रकार प्रस्तुत बन्ध का कोई स्वतन्त्र महत्त्व नहीं दीखता। चित्र निम्नलिखित है—

1. प्रबीनसागर; लहर ६५, पृ० ६४८

चित्र संख्या ९६



दर्पणबन्ध

गुणन चिह्न (×) पाठ के आरम्भ का द्योतक है ।

गोमूत्रिका, अर्धभ्रम तथा सर्वतोभद्र

उपर्युक्त तीनों ही चित्रों को यद्यपि अग्निपुराणकार ने 'बन्धचित्र' के अन्तर्गत माना है,[1] किन्तु भोजराज[2] तथा हेमचन्द्र[3] ने इन्हें 'गतिचित्र' के अन्तर्गत रखा है। ये तीनों चित्र ही सबसे अधिक प्राचीन हैं। 'शिशुपालवध'[4] तथा 'किरातार्जुनीयम्'[5] में तो इनकी रचना हुई ही है, 'चित्रकाव्य' के सर्वप्रथम विवेचक दण्डी ने भी इनका विवेचन किया है।[6] रुद्रट ने 'अर्धभ्रम' तथा 'सर्वतोभद्र' का विवेचन तो किया है किन्तु 'गोमूत्रिका' 'काव्यालंकार' में नहीं मिलती[7] दण्डी तथा रुद्रट में हम 'चित्रकाव्य' का विभाजन नहीं पाते अतः कहना कठिन

१. अ० पु०, अ० ३४३, श्लोक ३६
२. स० क०, परि २, कारिका ११०
३, काव्यानुशासन, अ० ५, सू० ४, कारिका १०८ की वृत्ति अ० चूडामणि, पृ० ३१३
४. सर्वतोभद्र, सर्ग १९, श्लोक २७
गोमूत्रिका, सर्ग १९, श्लोक ४६
अर्धभ्रम, सर्ग १९, श्लोक ७२
५. गोमूत्रिका, सर्ग १५, श्लोक १२
सर्वतोभद्र, सर्ग १५, श्लोक २५
अर्धभ्रम, सर्ग १५, श्लोक-२७
६. काव्यादर्श, परि ३, श्लोक ७८ से ८२ तक
७. का० ल० (रुद्रट), अर्धभ्रम, अ० ५, श्लोक १८
सर्वतोभद्र, अ० ५, श्लोक २०

है कि इन आचार्यों की दृष्टि में ये चित्ररचनाएँ किस अथवा किन प्रकारों के अन्तर्गत होंगी। अग्निपुराणकार ने अवश्य इन्हें स्पष्टतः 'बन्ध' के अन्तर्गत रखा है और आठ प्रमुख बन्धों के विवेचन में इन तीनों का स्थान भी है—

"अनेकधावृत्त वर्णविन्यासैः शिल्पकल्पना ॥
तत्तत्प्रसिद्धवस्तूनां बन्ध इत्यभिधीयते ।
गोमूत्रिकार्धभ्रमणे सर्वतोभद्रमम्बुजम् ॥
चक्रंचक्राब्जकं दण्डो मुरजाश्चेति चाष्टधा ।"[१]

किन्तु आगे चलकर संस्कृत में 'अग्निपुराण' का विभाजन स्वीकृत नहीं हुआ और भोजराज तथा हेमचन्द्र ने इन तीनों ही प्रकार की चित्ररचनाओं को 'गतिचित्र' के अन्तर्गत रखा। भोजराज ने 'अर्धभ्रम' तथा 'सर्वतोभद्र' का विवेचन 'गतिचित्र' के आठ भेदों के अन्तर्गत किया है।[२] 'गोमूत्रिका' के लिए उनका कथन है—

"तेन गतिविचित्रादिगोमूत्रिकादयोऽन्येऽपि चित्रप्रकारा भवन्ति ।"[३]

हेमचन्द्र ने स्पष्ट रूप से इन तीनों को 'गतिचित्र' के ही भेद माने हैं—

"गतिर्गतप्रत्यागतादिका ।.................

"एवमर्धगत श्लोकगतप्रत्यागतसर्वतोभद्रार्धभ्रम तुरङ्गपदगोमूत्रिकादीन्युदाहार्याणि ।"[४]

आगे चलकर संस्कृत में इन चित्रभेदों का विवेचन 'गतिचित्र' के अन्तर्गत ही स्वीकृत हुआ गोकि आगे के किसी आचार्य ने 'चित्रकाव्य' का इस रूप में विस्तृत विवेचन नहीं किया।

हिन्दी में उपर्युक्त चित्रों में से 'अर्धभ्रम' की रचना तो बिलकुल हुई ही नहीं, किसी आचार्य ने भी उसका विवेचन नहीं किया। 'गोमूत्रिका' और 'सर्वतोभद्र' अवश्य हिन्दी के कवियों को भी प्रिय रहे हैं और इनकी रचना पर्याप्त मात्रा में हुई है। किन्तु आचार्यों ने अन्य चित्रों के समान ही इनका भी विधिवत् विवेचन नहीं किया। हिन्दी-आचार्यों में केवल काशिराज ही ऐसे हैं जिन्होंने संस्कृत के उपर्युक्त विवेचन का आधार लिया है। भिखारीदास ने अपना स्वतन्त्र विभाजन किया है।[५] अन्य आचार्यों में विवेचन की वह पूर्णता हमें नहीं मिलती जिसके आधार पर स्पष्ट निष्कर्ष लिया जा सके।

काशिराज ने 'गोमूत्रिका' को तो 'बन्धचित्र' के अन्तर्गत माना है,[६] किन्तु 'सर्वतोभद्र' का विवेचन 'गतिचित्र' के अन्दर किया है।[७] स्पष्ट है कि काशिराज ने संस्कृत के

---

१. अ० पु०, अ० ३४३, श्लोक ३५-३६
२. द्रष्टव्य, पिछले पृष्ठ की पा० टि० संख्या २
३. स० क०, परि-२, कारिका १२७ की वृत्ति
४. द्रष्टव्य, पिछले पृष्ठ की पा० टि०, संख्या ३
५. द्रष्टव्य, प्रस्तुत पुस्तक के द्वितीय अध्याय में इन आचार्यों का विवेचन।
६. चि० चं०, प्रकाश ६, पृ० ६९ छन्द १५
७. चि० चं०, प्रकाश ५, पृ० ५१, छन्द २२ तथा पृ० ५३ छन्द २४

उपर्युक्त आचार्यों के मतों को मिला देने की चेष्टा की है। किन्तु इस सम्मिश्रण में विवेचन अधिक वैज्ञानिक नहीं बन पाता। यह सही है कि गोमूत्र की वक्रता प्राकृतिक है किन्तु दूसरी ओर यह भी सही है कि उसका चमत्कार गत्याश्रित है। फलतः यदि यह चित्र एक आकार के रूप में उपस्थित होता है तो उसका महत्त्व अधिक छन्द की वक्रगति को लेकर ही है। यदि 'अग्निपुराण' का आधार लिया जाता तो 'सर्वतोभद्र' को भी 'बन्ध' के अन्तर्गत ही विवेचित किया जाता, किन्तु काशिराज ने ऐसा नहीं किया। 'आकारचित्र' और 'बन्धचित्र' में अन्तर रखनेवाले आचार्य भोजराज ने भी 'गोमूत्रिका' को इन दोनों में से किसी भी चित्र-प्रकार के अन्तर्गत नहीं रखा। इस प्रकार काशिराज का यह विभाजन समीचीन नहीं दीखता। भोजराज तथा हेमचन्द्र से सहमति रखते हुए हमने भी उपर्युक्त चित्रों का स्थान 'गतिचित्र' के अन्तर्गत ही रखा है। इनका विवेचन हम अगले अध्याय में करेंगे।

—:o:—

चतुर्थ अध्याय

चित्रकाव्य : सैद्धान्तिक विवेचन (बन्धेतर प्रकार)

द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत यह स्पष्ट किया जा चुका है कि चित्ररचना के क्षेत्र में हिन्दीकवियों ने संस्कृतकवियों का केवल अन्धानुकरण नहीं किया है वरन् भाषा की प्रकृति और पाठकों की रुचि तथा अपनी शक्ति के अनुसार पर्याप्त परिवर्तन भी किये हैं। फिर भी प्रमुखतः संस्कृत की रचनापद्धति ही उनका आधार रही है।

हम देख चुके हैं कि संस्कृत के प्राचीन आचार्य दण्डी तथा रुद्रट ने 'चित्रकाव्य' के अपने विवेचन में किसी प्रकार के वर्गीकरण को नहीं अपनाया है[1] किन्तु भोजराज तथा हेमचन्द्र जैसे बाद के आचार्यों ने अपने विवेचन में 'चित्रकाव्य' को विभिन्न वर्गों के अन्तर्गत रखा है।[2] अग्निपुराणकार ने भी चित्ररचनाओं के कई प्रकार माने हैं तथा उन्हें परिभाषित भी किया है।[3] इनका विस्तृत विवेचन हम द्वितीय अध्याय में कर चुके हैं।

भोजराज के अनुसार चित्र के 'वर्ण', 'स्थान', 'स्वर', 'आकार', 'गति' तथा 'बन्ध' छह भेद हैं[4] जबकि हेमचन्द्र ने भोजराज द्वारा विवेचित इन छहों भेदों में से 'स्वर,' 'व्यंजन', 'स्थान,' 'गति' तथा 'आकार' इन पाँच भेदों को ही स्वीकार किया है।[5] 'आकार' तथा 'बन्ध' चित्र में तत्त्वतः कोई अन्तर नहीं है और इनका भी विवेचन पूर्व अध्याय (द्वितीय) में हो चुका है।[6] इन पाँचों के अतिरिक्त हेमचन्द्र ने 'च्युत', 'गूढ़', 'प्रश्नोत्तर' तथा 'प्रहेलिका', 'चित्र' के इन चार अन्य प्रकारों का भी उल्लेख किया है, जिनमें 'प्रश्नोत्तर' तथा 'प्रहेलिका' को क्रीडामात्र मानकर अपने विवेचन में उन्होंने स्थान नहीं दिया।[7] रुद्रट ने भी 'च्युत', 'प्रहेलिका', 'गूढ़' तथा 'प्रश्नोत्तर', 'चित्र' के इन भेदों को क्रीडामात्र में उपयोगी मानकर

---

१. काव्यादर्श, अध्याय ३, श्लोक ७८ से ९५; काव्यालंकार, पंचम अध्याय
विवेचन के लिये प्रस्तुत ग्रन्थ का द्वितीय अध्याय देखे।

२. सरस्वती कण्ठाभरण, परि० २, कारिका १०९;
काव्यानुशासन, अ० ५, कारिका १०८
विवेचन के लिये प्रस्तुत ग्रन्थ का द्वितीय अध्याय देखें।

३. अ० पु०, अ० ३४३, श्लोक २२-६५,

४. स० कं०, परि-२, का० १०९ — "वर्णस्थानस्वराकार गतिबन्धानप्रतीहयः।
नियमस्तद्बुधैः षोढ़ा चित्रमित्यभिधीयते ॥"

५. काव्यानुशासन, अ० ५, का० १०८—
"स्वरव्यंजनस्थानगत्याकारनियमच्युतगूढ़ादि चित्रम्।"

६. द्वितीय अध्याय में स० क० तथा एकावली का विवेचन

७. काव्यानुशासन, पृ० ३२३, अ० ५, कारिका १०८ की वृत्ति; साथ ही द्रष्टव्य प्रस्तुत ग्रन्थ का द्वितीय अध्याय (हेमचन्द्र का विवेचन)

इनकी उपेक्षा ही की है।[1] 'अग्निपुराण' में इनके अतिरिक्त 'दत्त', 'च्युतदत्त' तथा 'समस्या' इन तीन अन्य भेदों का भी उल्लेख है।[2] संस्कृत के अन्य आचार्यों ने इनके अतिरिक्त 'चित्र' के किसी अन्य भेद का उल्लेख नहीं किया है। धर्मदास, देवेश्वर, विश्वेश्वर तथा अजितसेन प्रभृति आचार्यों ने प्रश्नोत्तरादि चित्र के गौण भेदों का ही पर्याप्त विस्तार से विश्लेषण-विवेचन किया है तथा इनके अनेक भेदोपभेद किये हैं।[3] इस प्रकार संस्कृत में चित्र के सामान्यतः निम्न भेद विवेचित हुए हैं—

'वर्णचित्र', 'स्थानचित्र', 'स्वरचित्र', 'आकार' अथवा 'बन्धचित्र', 'गतिचित्र', 'च्युत', 'दत्त', 'च्युतदत्त', 'गूढ़', 'प्रहेलिका' तथा 'प्रश्नोत्तर'।

इनमें से 'प्रहेलिका' को आगे चलकर स्वतन्त्र अलंकारत्व प्राप्त हो गया।[4] 'च्युत', 'दत्त', 'च्युतदत्त' की रचना हिन्दी में 'पाठान्तर' के नाम से बहुत थोड़ी हुई।[5]

हिन्दी के आचार्यों में केवल काशिराज तथा भिखारीदास ने 'चित्रकाव्य' विवेचन के लिये वैज्ञानिक वर्गीकरण का आधार लिया।[6] इनमें काशिराज ने संस्कृत के उक्त भेदों को ही स्वीकृत किया किन्तु भिखारीदास ने अपनी ओर से 'चित्र' के वर्गीकरण को नवीन ढंग से उपस्थित किया। भिखारीदास के इस वर्गीकरण में संस्कृत के आचार्यों का पिष्टपेषण बिलकुल नहीं है, वरन् हिन्दी चित्ररचनाओं को आधार बनाकर इन वर्गों को निर्धारित किया गया है। द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत इनका विस्तृत विवेचन किया जा चुका है।[7]

फिर भी हिन्दी के अधिकांश आचार्यों ने संस्कृत के वर्गीकरण का ही आधार ग्रहण किया है।[8] यह बात और है कि उन्होंने इनमें से सभी प्रकारों का विवेचन नहीं किया है।

---

१. "मात्राबिन्दुच्युतके प्रहेलिका कारकक्रियागूढ़े।
प्रश्नोत्तरादि चान्यत्क्रीडामात्रोपयोगमिदम्॥"
—का० ल०, अ० ५, श्लोक २४

२. अध्याय ३४३, श्लोक २३-२४ यथा—
"गोष्ठ्यां कुतूहलाध्यायी वाग्बन्धश्चित्रमुच्यते।
प्रश्नः प्रहेलिका गुप्तं च्युतं दत्ते तथोभयम्॥२२॥
समस्या सप्त तद्भेदा नानार्थस्यानुयोगतः॥"

३. धर्मदास कृत विदग्धमुखमण्डन, देवेश्वर कृत कविकल्पलता, विश्वेश्वर कृत कविन्द्रकर्णाभरण, तथा अजितसेन कृत अलंकार चिन्तामणि में। द्रष्टव्य, प्रस्तुत ग्रन्थ के अध्याय २ में इन आचार्यों का विवेचन

४. विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में प्रहेलिका को अलग अलंकार के रूप में रखकर उसका खण्डन किया है। सा० द०, परि० १० कारिका १३

५. द्रष्टव्य, प्रस्तुत अध्याय के अन्तर्गत 'पाठांतर' का विवेचन।

६. काशिराज ने 'चित्रचन्द्रिका' में तथा भिखारीदास ने 'काव्यनिर्णय' के परि-२१ में

७. द्रष्टव्य, प्रस्तुत ग्रन्थ का अध्याय २, भिखारीदास तथा काशिराज का विवेचन।

८. केशवदास, चिन्तामणि, पदुमनदास, काशिराज, जनराज, हरिकवि आदि

फलतः प्रस्तुत अध्याय में हमने संस्कृत में गृहीत उपर्युक्त वर्गों को ही आधार मानकर बन्धेतर चित्रों का विवेचन समीचीन समझा है। इनमें, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है 'प्रहेलिका' तथा 'समस्या' का विवेचन नहीं किया गया है, कारण इनकी रचना हिन्दी में 'चित्र' से पृथक् स्वतन्त्र रूप में हुई है। इसलिये 'वर्णचित्र', 'स्थानचित्र', 'स्वरचित्र', 'गतिचित्र', 'गुप्तचित्र', 'प्रश्नोत्तर', 'पाठान्तर' के रूप में 'च्युत', 'दत्त' तथा 'च्युतदत्त' और 'भाषाचित्र' का ही विवेचन प्रस्तुत स्थल पर सम्भव हो सका है। इन चित्रप्रकारों में भी केवल उन्हीं उपभेदों का विवेचन उचित समझा गया है जिनकी रचना हिन्दीमें हुई है। जिन उपभेदों की रचना हिन्दी के कवियों ने नहीं की है, उनका उल्लेखमात्र हो पाया है।

वर्णचित्र

'वर्ण' अथवा 'व्यंजन चित्र' के अन्तर्गत ऐसे छन्द परिगणित होते हैं जिनमें केवल एक, दो, तीन अथवा चार व्यंजनों का ही उपयोग किया गया हो। आचार्य दण्डी ने सर्वप्रथम इसका लक्षण तथा उदाहरण दिया है। इस सम्बन्ध में उनका कथन है—

"यः स्वर स्थान वर्णानां नियमो दुष्करेष्वसौ।
इष्ट चतुष्प्रभृत्येषु दर्श्यते सुकरः परः॥"[1]

तात्पर्य यह कि छन्दों की रचना में चार से अधिक वर्णों का उपयोग भी हो सकता है पर सुकर होने के कारण आचार्य दण्डी के मत में उनमें चित्रत्व का अभाव रहेगा। उपर्युक्त श्लोक के अनुसार 'स्वर' तथा 'स्थानचित्रों' की भी यही स्थिति है।

आचार्य रुद्रट ने 'वर्ण' 'स्थान' तथा 'स्वरचित्रों' का उल्लेख बिलकुल नहीं किया है किन्तु 'अग्निपुराण,' भोजराज तथा हेमचन्द्र ने इनका विधिवत् विवेचन किया है। अग्निपुराणकार ने 'वर्ण' 'स्थान' तथा 'स्वर' चित्रों के लिये 'नियम' शब्द का प्रयोग कर इस प्रकार की रचनाओं में निहित कविप्रतिज्ञा की ओर इशारा भर कर दिया है—

"कवेः प्रतिज्ञा निर्माणरम्यस्य नियमः स्मृतः॥
स्थानेनापि स्वरेणापि व्यञ्जनेनापि स त्रिधा॥"[2]

यानी 'स्थान,' 'स्वर' तथा 'व्यंजन,' इन तीनों नियमों की रमणीयता छन्दविशेष में कविप्रतिज्ञा के अनुसार क्रमशः निश्चित उच्चारणस्थान से उच्चरित वर्णों के प्रयोग अथवा निश्चित संख्या में प्रयुक्त स्वर अथवा व्यंजन में निहित होती है। दण्डी के समान अग्निपुराणकार ने 'वर्ण,' अथवा 'स्वरनियमों' से युक्त छन्द में इनकी संख्या चार तक ही निश्चित नहीं की है, वरन् इस सम्बन्ध में वे मौन हैं।[3]

भोजराज ने 'वर्णचित्र' के आठ भेदों के उदाहरण दिये हैं। उन्होंने 'वर्ण' शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा है—

---

१. काव्यादर्श, परि ३ श्लोक ८३
२. अ० पु०, अ० ३४३, श्लोक ३२-३३
३. उपरिवत्

"वर्ण शब्देन चात्र स्वराणां पृथङ् निर्देशात्व्यञ्जनान्येव प्रगृह्यन्ते।"[१]

यानी 'वर्ण' शब्द का तात्पर्य यहाँ स्वर से पृथक् केवल व्यंजन से है। भोजराज द्वारा उदाहृत 'वर्णचित्र' के आठों भेदों में चार तो दण्डी द्वारा विवेचित 'एकाक्षर' 'द्व्यक्षर,' 'त्र्यक्षर' तथा 'चतुरक्षर' ही हैं[२] अन्य चार में 'क्रमस्थसर्वव्यंजन' 'छन्दोक्षर व्यंजन,' 'षड्जादिस्वरव्यंजन' तथा 'मुरजाक्षर व्यंजन' हैं।[3] संस्कृत के अन्य किसी आचार्य ने 'वर्णचित्र' के अन्तर्गत इन चार भेदों का विवेचन नहीं किया है। हेमचन्द्र ने भी केवल 'एक व्यंजन,' 'द्विव्यंजन' तथा 'त्रिव्यंजनों' से युक्त श्लोकों के ही उदाहरण दिये हैं।[४]

हिन्दी में केशवदास ने 'वर्णचित्र' के अन्तर्गत एक वर्ण से लेकर क्रमशः २६ वर्णों से युक्त छन्दों का उदाहरण प्रस्तुत किया है। इस सम्बन्ध में उनका कथन है—

"अक्षर षटविंशति सबै भाषा बरनि बनाव।
एक-एक घटि एक लगि केशवदास सुनाव॥"[५]

प्रस्तुत दोहे से स्पष्ट है कि 'कविप्रिया' में सर्वप्रथम २६ वर्णों से युक्त दोहे का उदाहरण दिया गया है और आगे क्रमशः एक-एक वर्ण कम करते हुए 'एक वर्ण' से निर्मित छन्द पर आकर समाप्त किया गया है।[६] भिखारीदास 'नियमित' के रचनासिद्धान्त में केशवदास से सहमत हैं किन्तु उदाहरणस्वरूप उन्होंने एक से लेकर केवल सात वर्णों से निर्मित छन्दों को ही प्रस्तुत किया है। इस सम्बन्ध में उनका मत स्पष्ट है—

"इक इक ते छब्बीस लगि होत बरन अधिकार।
तदपि कह्यो हौं सात लौं जानि ग्रंथ विस्तार॥"[७]

गोकुलकवि ने अपने ग्रन्थ 'चित्रकलाधर' में इस 'छब्बीस' की संख्या को 'छत्तीस' तक पहुँचा दिया है। यद्यपि उदाहरण में उन्होंने भी आठ वर्णों से निर्मित छन्द तक ही प्रस्तुत किये हैं—

"एक-एक छत्तीस तक होत बरन विस्तार।
मैं बरनत हौं आठ विधि जानि ग्रंथ अधिकार॥"[८]

स्पष्ट है कि इन आचार्यों ने 'वर्णचित्र' के अन्तर्गत वर्णों की इस संख्यावृद्धि की प्रेरणा अग्निपुराणकार के उपर्युक्त "मौन" से ग्रहण की है, अन्यथा अन्य किसी आचार्य ने

१. स० कं०, परि २, कारिका १०९ की वृत्ति, पृ० २२७
२. उपरिवत्, वृत्ति श्लोक २५९ से २६२ तक तथा काव्यादर्श, परि ३, श्लोक ९२ से ९५ तक
३. स० कं०, परि २, वृत्ति श्लोक २६३ से २६६ तक
४. काव्यानुशासन; अ० ५, कारिका १०८ की वृत्ति तथा टीका, पृ० ३०८-३०९
५. कविप्रिया, प्रभाव १६, छन्द १४
६. उपरिवत्, छन्द, १५ से ४० तक
७. काव्यनिर्णय, परि० २१, छन्द ४८
८. चि० क०, पृ० ११६, छन्द ५५

इनकी संख्या चार से अधिक नहीं रखी है। दण्डी ने अवश्य चार से अधिक वर्णों से युक्त छन्दों की रचना की ओर भी संकेत किया है पर उन्हें 'सुकर' की संज्ञा देकर उनमें चित्रत्व का अभाव देखा है।[1]

केशवदास, भिखारीदास तथा गोकुलकवि से अलग हटकर कवि काशिराज ने 'वर्णचित्र-लक्षण' में 'सरस्वतीकण्ठाभरण' का अधिक अनुसरण किया है, यद्यपि 'सरस्वती-कण्ठाभरण' में विवेचित 'वर्णचित्र' के सभी भेदों को उन्होंने भी ग्रहण नहीं किया है। काशिराज ने 'वर्णचित्र' के अपने लक्षण में केवल चार व्यंजनों तक से निर्मित छन्दों को ही स्थान दिया है तथा इनके अतिरिक्त 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में विवेचित 'षड्जाक्षर व्यंजन' का भी उल्लेख किया है—

"इक व्यंजन तें चारि लगि स्वर व्यंजन सब भाखि।
अरु सरिगम व्यंजन कह्यो ग्रन्थन मत रस चाखि॥"[2]

इस लक्षण के अतिरिक्त विवेचन में काशिराज ने एक ऐसे छन्द की रचना भी की है जिसमें सभी व्यंजन तथा सभी स्वरों अथवा मात्राओं का प्रयोग किया गया है। स्पष्ट है कि काशिराज ने 'वर्णचित्र' के विवेचन में भोजराज के 'सरस्वतीकण्ठाभरण' का आधार अधिक ग्रहण किया है। फिर भी उन्होंने हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल नहीं पड़नेवाले 'छन्दोक्षर व्यंजन' तथा 'मुरजाक्षर व्यंजन' से युक्त रचना नहीं की है। हिन्दी में अन्यत्र भी कहीं इस प्रकार की रचनाएँ नहीं की गई हैं। साथ ही काशिराज ने भोजराज के 'क्रमस्थ सर्वव्यंजन' में परिवर्तन कर 'सर्वव्यंजन तथा सर्वमात्रा' युक्त छन्द की रचना भी की है।[3]

इस प्रकार हिन्दी में 'वर्णचित्र' के निम्न भेदों की रचना हुई है—

एक से लेकर क्रमशः २६ वर्णों से युक्त छन्दों की रचना (इनमें 'एकाक्षर' 'द्व्यक्षर' 'त्र्यक्षर' तथा 'चतुरक्षर' ही अधिक प्रमुख तथा विवेच्य हैं), 'षड्जाक्षर व्यंजन' अथवा 'सरिगम व्यंजन' तथा 'सर्वमात्रा सर्वव्यंजन'। 'वर्णचित्र' के इन उपभेदों के लक्षण-उदाहरण क्रमशः निम्न हैं—

एकाक्षर

"एकी अक्षर को जहाँ कीजै छन्द सुबध।
सो इक व्यंजन कहतु हैं चित्र काव्य की संध॥"[4]

प्रस्तुत दोहे का अर्थ स्पष्ट है कि जहाँ सम्पूर्ण छन्द की रचना एक ही व्यंजन के

१. काव्यादर्श, परि ३, श्लोक ८३
२. चि० चं०, प्रकाश १, छन्द ७, पृ० ७
३. उपरिवत्, छन्द १९, पृ० १३
४. उपरिवत्, छन्द ८, पृ० ७-८

द्वारा हो उसे 'एकाक्षर चित्रकाव्य' कहा जाता है। उदाहरणस्वरूप केशवदास रचित निम्न छन्द द्रष्टव्य है—

"नोनी नोनी नौनि ने नोने नोने नैन ।
नाना ननना नाननै ननु नूनै नूनैन ॥"[1]

'वर्णचित्र' के अन्तर्गत 'एकाक्षर' की रचना अत्यन्त प्रिय रही है और हिन्दी 'चित्रकाव्य' के लगभग सभी प्रमुख रचयिताओं ने इसकी रचना की है।[2]

द्व्यक्षर

'एकाक्षर' के समान ही 'द्व्यक्षर' में सम्पूर्ण छन्द में केवल दो वर्णों का ही प्रयोग किया जाता है। इसके दो भेद हो सकते हैं—एक में छन्द के प्रारम्भ से अन्त तक दो वर्णों का प्रयोग किया जाता है और दूसरे में छन्द के पूर्वार्द्ध की रचना एक वर्ण के सहारे होती है तथा उत्तरार्द्ध में दूसरे वर्ण का उपयोग किया जाता है। काशिराज ने 'द्व्यक्षर' का निम्न लक्षण दिया है—

"इक इक व्यंजन द्वै अधर पुनि युग व्यंजन छंद ।
यह युग व्यंजन चित्त है वरनत बुद्धि अमंद ॥"[3]

'कविप्रिया' में केशवदास ने इन दोनों प्रकार के 'द्व्यक्षरों' के निम्न उदाहरण दिये हैं—

"हरि हीरा राहे हरो हेरि रही ही हारि ।
रहि रहि हौ हाहा ररौ हरे हरे हरि रारि ॥"[4]

प्रस्तुत दोहे में प्रारम्भ से अन्त तक 'ह' तथा 'र' केवल दो व्यंजनों का ही प्रयोग हुआ है। दूसरे प्रकार के द्व्यक्षर का छन्द निम्न है—

"केकी केका कीकका कोक कीक का कोक ।
लोलि लालि लोलै लली लाला लीला लोल ॥"[5]

---

१. क० प्रि०, प्रभाव १६, छन्द ४०
२. सेनापति—कवित्तरत्नाकर, तरंग ५, छन्द ७३
भुवनेश कवि—भुवनेशभूषण, पृ० २६, दो० ६५
केशवदास—क० प्रि०, पृ० १६, छन्द ४०
कुमारमणि शास्त्री—रसिक रसाल, पृ० १३६, छन्द २५
भिखारीदास—का० नि०, परि २१, छन्द ४९
जनराज—कविता रस विनोद, पत्र संख्या २९५, छन्द ३२
काशिराज—चि० चं०, प्रकाश १, छन्द ९ तथा १०
लेखराज—गंगाभरण, पृ० १००, छन्द ३५६
रसिक बिहारी—काव्यसुधाकर, कला १६, पृ० १३, छन्द १५४
लछिराम—रावणेश्वर कल्पतरु, कुसुम ११, पृ० २९४
३. चि० चं०, प्रकाश १, छन्द ११, पृ० ९-१०
४. कविप्रिया, प्रभाव १६, छन्द ३९
५. उपरिवत्, छन्द ४१

प्रस्तुत छन्द के पूर्वार्द्ध में केवल एक वर्ण 'क' का प्रयोग है जबकि उत्तरार्द्ध में केवल 'ल' का। ऊपर के उदाहरणों से स्पष्ट है कि 'वर्णचित्र' में मात्राओं के प्रयोग का कोई बन्धन नहीं होता।

त्र्यक्षर

'एकाक्षर' 'द्व्यक्षर' के समान ही 'त्र्यक्षर' के अन्तर्गत सम्पूर्ण छन्द में केवल तीन व्यंजनों का ही प्रयोग किया जाता है। इस सम्बन्ध में कवि काशिराज का कथन है—

"तीनि वर्ण को नियम करि रचिये छंद सुजान।
सो त्रिव्यंजन चित्र है कहत सुकवि परधान॥"[1]

उदाहरणस्वरूप केशवदास का निम्न छन्द द्रष्टव्य है—

"लगा लगी लोपौं गली, लगे लागु लौं लाल।
गैल गोप गोपी लगे, पा लागौं गोपाल॥"[2]

प्रस्तुत दोहे में केवल 'ल' 'ग' तथा 'प' इन तीन वर्णों का ही प्रयोग किया गया है। 'त्र्यक्षर' की रचना में किसी प्रकार के भेद की कल्पना नहीं की गई है, सभी कवियों ने एक ही पद्धति अपनाई है जिसमें तीनों वर्णों का प्रयोग साथ ही होता चलता है।

चतुरक्षर

'द्व्यक्षर' की तरह ही चतुरक्षर के भी दो भेद हैं, यद्यपि लक्षण में काशिराज ने केवल एक ही प्रकार की चर्चा की है—

"इक इक व्यंजन प्रतिचरण जहाँ बरनिये मित्र।
चतुरक्षर सो जानिये अति अद्भुत यह चित्र॥"[3]

इस प्रकार जिस छन्द के चारों चरणों में से प्रत्येक में केवल एक-एक व्यंजन का ही प्रयोग होता है और कुल मिलाकर सम्पूर्ण छन्द में केवल चार व्यंजन ही प्रयुक्त होते हैं, वह छन्द 'चतुरक्षर चित्रकाव्य' का उदाहरण होता है। किन्तु इसके अतिरक्त ऐसे छन्द भी 'चतुरक्षर' ही कहे जाते हैं जिनमें केवल चार व्यंजनों का प्रयोग होता है किन्तु इनके प्रयोग में किसी प्रकार का बन्धन नहीं होता। इन दोनों प्रकारों के छन्दों का उदाहरण हमें केशवदास की 'कविप्रिया' में प्राप्त होता है। अन्यत्र भी इस चित्रप्रकार की रचना यथेष्ट हुई है।[4] 'चित्रचन्द्रिका' में संकलित 'प्रति चरण एक वर्ण चतुरक्षर' का छन्द निम्न है—

---

१. चि० चं०, प्रकाश १, पृ० ११, छन्द १४

२. क० प्रि०, प्रभाव १६, छन्द ३८

३. चि० चं०, प्रकाश १, छन्द १६, पृ० १२

४. कु० म० शा०—रसिक रसाल, पृ० १३७, छन्द २९-३०
भिखारीदास—का० नि०, परि० २१, छन्द ५२
काशिराज—चि० चं०, प्रकाश १, पृ० १२-१३, छन्द १७
गोकुलकवि—चित्र कलाधर, पृ० ११५, छन्द ५९
रसिक बिहारी—काव्यसुधाकर, कला १६, पृ० १३, छन्द १५७
केशवदास—कविप्रिया, प्रभाव १६, छन्द ३७ तथा ४२

"लोल लाल लोलै लली, नोने नोने नोन ।
रूरे रूरे ररि ररैं, जोजे जोजै जोज ।"[१]

'मुक्त चतुरक्षर' का निम्न छन्द हमें 'कविप्रिया' में मिलता है—

"बनमाली बन में मिले बनी नलिन बनमाल ।
नैन मिली मन मन मिली बैननि मिली न बाल ॥"[२]

ऊपर हम देख चुके हैं कि हिन्दी में चतुरक्षर से अधिक अक्षरों से निर्मित छन्दों की रचना भी 'वर्णचित्र' के अन्तर्गत हुई है, किन्तु आचार्य दण्डी की इस स्थापना से हम सहमत हैं कि अधिक वर्णों से निर्मित छन्दों में ऋजुता अधिक आ जाती है अतः 'चित्र' की दृष्टि से उनका महत्त्व नहीं रहता ।[३] फलतः हमने इनका विवेचन प्रस्तुत स्थल पर समीचीन नहीं समझा है ।

सर्वमात्रा-सर्वव्यंजन चित्र

जैसा कि कहा जा चुका है 'सरस्वतीकण्ठाभरण' के अनुकरण पर केवल काशिराज ने ही 'वर्णचित्र' के इस प्रकार की रचना की है । निम्न दोहे में कवि ने इसका लक्षण दिया है—

"एक छंद में सब बरन अरु सब मात्रा होइ ।
सर्वव्यंजन चित्र यह कहत सयाने लोई ॥"[४]

उदाहरणस्वरूप उन्होंने निम्न कुण्डलिया की रचना की है—

"केकी खग घन लखिनचे छाजे झिल्ली बैन ।
तट ठठि डिढ चढ़ि गण नदी तत्थ उदधि रहि ऐन ॥
तत्थ उदधि रहि ऐन ढपे फबि भूमग सगरे ।
जाय रले वर तियनि पथिक नर परिहरि दगरे ॥
आशिष सहित हुलास लही बिरहिन हियरे की ।
औरे ओप अमंद भई जब कूकें केकी ॥"[५]

प्रस्तुत कुण्डलिया में हिन्दी वर्णमाला के सभी वर्णों (स्वर और व्यंजन) का प्रयोग हुआ है । हिन्दी के अन्य किसी कवि ने इसकी रचना नहीं की है ।

षडजाक्षर व्यंजनचित्र अथवा सरिगम व्यंजन चित्र

प्रस्तुत चित्र के अन्तर्गत ऐसे छन्दों की रचना की जाती है जिनमें संगीत के सप्त स्वरों के प्रतिनिधि सातों वर्णों सा, रे, ग, म, प, ध तथा नि का प्रयोग किया जाता है।

१. चि० चं०, प्रकाश १, छन्द १७, पृ० १२-१३
२. कविप्रिया, प्रभाव १६, छन्द ३७
३. द्रष्टव्य कविप्रिया, काव्यनिर्णय तथा चित्रकलाधर । साथ ही काव्यादर्श ३/८३
४. चि० चं०, प्रकाश १, छन्द १८, पृ० १३
५. उपरिवत्, छन्द १९, पृ० १४

इस प्रकार की छन्दरचना की परम्परा भी हमें भोजराज के 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में ही प्राप्त होती है।[1] संस्कृत के अन्य आचार्यों ने कहीं इसका विधान नहीं किया है। हिन्दी में भी इस चित्रकाव्य की रचना केवल काशिराज तथा भारतेन्दु ने की है। काशिराज ने इसका लक्षण करते हुए निम्न दोहे को प्रस्तुत किया है—

"जहँ सरिगम के वर्ण सों रचिये छन्द प्रबीन।
सो स्वर व्यंजन चित्र है कह्यो ग्रंथ रसलीन॥"[2]

काशिराज ने प्रस्तुत लक्षण के अनुसार इस चित्र का नाम 'स्वर-व्यंजन चित्र' रखा है जबकि अन्यत्र उन्होंने 'सरिगम व्यंजन चित्र' भी कहा है। उदाहरणस्वरूप उन्होंने एक कवित्त की रचना की है जो निम्न है—

"सारस से नैनरस सैननि सर सनिधि
गिरा गुन ग्रामधनि सु मधुरिमा।
राग रागिनी निरंग मूरि में रँगी सी धुनि
सुनि सुनि धाम धाम रमी गान पुरिमा॥
परम नरम रानी सानुराग पी परसि
सम गम मन सनि रोपो रूप रूरिमा।
रास समो साधि राधे मान नमि मानु
मानु मेरो पन पूरि मेरी पैनी मैन मुरिमा॥"[3]

प्रस्तुत कवित्त से स्पष्ट है कि सा, रे, ग, म, प, ध, नि में से कवि ने केवल व्यंजनमात्र का बन्धन माना है, मात्राओं के क्षेत्र में स्वतन्त्रता लेकर सभी मात्राओं का उपयोग किया गया है। इस स्वतन्त्रता का किंचित उपयोग सरस्वतीकण्ठाभरणकार ने भी किया ही है।[4] काशिराज के अतिरिक्त हिन्दी में भारतेन्दु की रचनाओं में भी हमें एक पद ऐसा प्राप्त होता है जिसमें केवल उपर्युक्त सातों वर्णों का प्रयोग किया गया है। मात्राओं के क्षेत्र में भारतेन्दु ने भी इस स्वतन्त्रता से लाभ उठाया है—

"धनि धनि री सारिस गमनी।
गरिमध पसरी साम मनी सारी रेसम सनि सरिस सनी।
निस मनि सम निसि धरिधरि मगमधि परी परी पग मगन गनी।
निसरी साम साध सानी गनि 'हरीचन्द' सरिगम पधनी।"[5]

---

१. स० कं०, परि २, वृत्ति,

"सा ममारिधमनी निधानिनी सामधाम धनिधाम साधिनी।
मानिनी सगरिमापपापपा सापगा समसमागमासमा॥ २६५॥

२. चि० चं०, प्रकाश १, छन्द २०, पृ० १५
३. उपरिवत्, छन्द २१
४. द्रष्टव्य उपर्युक्त पादटिप्पणी सं० १ में उद्धृत श्लोक।
प्रस्तुत श्लोक में भी म, मा, नि, नी, स, सा आदि रूप में इन वर्णों का प्रयोग हुआ है।
५. भारतेन्दु ग्रन्थावली, भाग २, स्फुट कविताएँ, छन्द ४९

नियमाक्षर शब्दरचना

द्वितीय अध्याय में केशवदास के सम्बन्ध में लिखते हुए हमने देखा है कि 'वर्णचित्र' के अन्तर्गत केशव ने 'नियमाक्षर-शब्द-रचना' नाम से एक नवीन प्रकार के 'चित्रकाव्य' की रचना की है। संस्कृत में इस प्रकार की छन्दरचना कहीं नहीं मिलतीं। संस्कृत की संश्लेषणात्मक प्रकृति के अनुकूल यह रचना है भी नहीं। प्रस्तुत प्रकार की छन्दरचना विश्लेषणात्मक भाषा में ही सम्भव है और केशव ने हिन्दी की प्रकृति को पहचान कर इस प्रकार की छन्दरचना का सूत्रपात किया था। काशिराज ने भी केशव के अनुकरण पर इस प्रकार की छन्दरचना के लक्षण-उदाहरण दिये हैं। इस प्रकार की रचना में छन्द के अन्तर्गत प्रत्येक शब्द की वर्णसंख्या निश्चित होती है। उदाहरण के लिये यदि किसी दोहे में दो वर्णों से निर्मित शब्दों का प्रयोग किया गया है तो उस दोहे में प्रयुक्त सारे शब्द केवल दो वर्णों के ही होंगे।

केशव तथा काशिराज दोनों के लक्षणों में अन्तर केवल यह है कि जहाँ केशव ने छन्दों में प्रयुक्त शब्दों की वर्णसंख्या निश्चित नहीं की है, वहाँ काशिराज ने स्पष्ट कर दिया है कि केवल चार वर्णों तक से निर्मित शब्दों से बने छन्द ही 'चित्रकाव्य' के इस भेद के अन्तर्गत परिगणित होंगे।[1] काशिराज ने ऐसे 'चित्रकाव्य' को 'अर्थचित्र' की संज्ञा दी है जबकि 'कविप्रिया' के एकाध संस्करण में इसे 'नियमाक्षर' कहा गया है। अन्यसंस्करणों में इसकी कोई अलग संज्ञा नहीं दी गई है।[2] 'कविप्रिया' में दिया गया 'नियमाक्षर-शब्द-रचना' का लक्षण निम्न है—

"एक आदि दै बरन बहु बरणै शब्द बनाय।
अपने अपने बुद्धिबल समझें सब कविराय॥"[3]

इसके समानान्तर ही काशिराज द्वारा प्रदत्त 'अर्थचित्र' का लक्षण भी है—

"एक आदि दै चारि लगि वर्ण अर्थ यह चित्र।
पृथक पृथक वर्णन करौं समझि लीजियो मित्र॥"[4]

लक्षण में दोनों के चाहे जो भी अन्तर हो पर व्यवहार में किसी प्रकार का अन्तर नहीं है, कारण 'कविप्रिया' में भी एक से लेकर 'चतुरक्षर शब्दरचना' तक के ही उदाहरण दिये गये हैं तथा 'चित्रचन्द्रिका' में तो काशिराज की मान्यता 'चतुरक्षर शब्द' तक ही है। चारों ही भेदों का एक-एक छन्द हम यहाँ उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत करते हैं—

---

१. चित्र चन्द्रिका, प्रकाश ८, छन्द २, पृ० १४९

२. लाला भगवान दीन के द्वारा सम्पादित संस्करण में यह संज्ञा दी गई है। विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'केशव ग्रन्थावली', सरदार कवि की टीकावाली आदि पुस्तकों में यह संज्ञा नहीं मिलती।

३. कविप्रिया, प्रभाव १६, छन्द ९

४. चि० च०, प्रकाश ८, छन्द २

एकाक्षर शब्दरचना अथवा एकाक्षर अर्थचित्र

"गो गो गं गो गी अ आ श्री ध्री ह्री भी भा न।
भू ख बि स्व ज्ञा द्यौ हि हा नौ ना सं भं मा न ।।"[१]

द्व्यक्षर शब्दरचना अथवा द्व्यक्षर अर्थचित्र

पद कर मुख दृग कंज वर राधा ऐसी वाम ।
कल छल वल करि लहो तुम मानो मेरी स्याम ।।"[२]

त्र्यक्षर शब्दरचना अथवा त्र्यक्षर अर्थचित्र

"श्रीधर भूधर केशिहा केशव जगत प्रमाण।
माधव राघव कंसहा, पूरण पुरुष पुराण ।।"[३]

चतुरक्षर शब्दरचना अथवा चतुरक्षर अर्थचित्र

"सुरपति जगपति दयापति सीतापति रघुनाथ।
सुखपति रसपति गोपपति राधापति बृजनाथ ।।"[४]

स्थानचित्र

जैसा कि प्रारम्भ में ही कहा जा चुका है 'स्थानचित्र' से तात्पर्य ऐसी छन्दरचना से है जिसमें पूर्वनिश्चित उच्चारणस्थान अथवा स्थानों से उच्चरित वर्णों का ही प्रयोग हो।[५] आचार्य दण्डी ने 'वर्णचित्र' की तरह ही 'स्थानचित्र' के भी चार उदाहरण दिये हैं[६]—

१. 'चतुः स्थाननियम' के अन्तर्गत कण्ठ, दन्त, तालु तथा मूर्द्धा से उच्चरित वर्णों का ही प्रयोग किया गया है,

२. 'त्रिस्थाननियम' के अन्तर्गत कण्ठ, तालु तथा दन्त से उच्चरित वर्णों का प्रयोग हुआ है,

३. 'द्विस्थाननियम' के अन्तर्गत केवल कण्ठ्य तथा दन्त्य वर्णों का ही उपयोग किया गया है, तथा

४. 'एकस्थाननियम' के उदाहरणस्वरूप रचित छन्दों में केवल कण्ठ्यवर्ण ही हैं।

---

१. कविप्रिया, प्रभाव १६, छन्द १०
२. चि० च०, प्रकाश ८, छन्द ४, पृ० १५०
३. कविप्रिया, प्रभाव १६, छन्द १२
४. चि० च०, प्रकाश ८, छन्द ६, पृ० १५१-१५२
५. प्रस्तुत पुस्तक की भूमिका तथा द्वितीय अध्याय, लक्षण-विवेचन
६. (क) चतुःस्थान नियम—

"नयनानन्द जनने नक्षत्रगणशालिनि ।
अघने गगने दृष्टिरङ्गने दीयतां सकृत् ।।"
—काव्यादर्श, परि० ३, श्लोक ८८

भोजराज ने भी दण्डी का ही अनुकरण किया है, अन्तर केवल यह है कि दण्डी ने जहाँ 'चतु: स्थाननियम' का केवल एक उदाहरण दिया था वहाँ भोजराज ने 'निष्कण्ठ्य' 'निस्तालव्य', 'निरोष्ठ्य', 'निर्मूर्द्धन्य' तथा 'निर्दन्त्य' ये पाँच उदाहरण दिये हैं।[1] 'त्रिस्थाननियम' के 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में 'निरोष्ठ्यदन्त्य', तथा 'निरोष्ठ्यमूर्द्धन्य' केवल दो उदाहरण हैं।[2] इसी प्रकार 'द्विस्थान चित्र' तथा 'एकस्थान चित्र' का क्रमश: एक-एक उदाहरण ही—'दन्त्यकण्ठ्य' तथा 'कण्ठ्य' दिया गया है।[3] इन उदाहरणों में भोजराज ने अधिकांश श्लोक दण्डी के 'काव्यदर्श' से ही लिये हैं। संस्कृत के अन्य आचार्यों ने भी 'स्थानचित्र' का विवेचन उपयुक्त सीमा में ही किया है।[4]

हिन्दी में 'स्थानचित्र' के उपयुक्त सारे भेद अधिक प्रिय नहीं दीख पड़ते। केवल 'निरोष्ठ्य' की रचना हिन्दी में सर्वाधिक दीख पड़ती है। 'चित्रकाव्य' की रचना करने वाले अधिकांश कवियों ने 'स्थानचित्र' के अन्तर्गत केवल 'निरोष्ठ' की ही रचना की है। केशवदास, भिखारीदास प्रभृति हिन्दी के प्रमुख कवि-आचार्यों ने भी 'स्थानचित्र' के अन्तर्गत केवल 'निरोष्ठ' का ही विवेचन किया है।[5] इस क्रम में 'त्रिस्थानचित्र', 'द्विस्थानचित्र' अथवा 'एकस्थानचित्र' की रचना नहीं की गई है।

(ख) त्रिस्थान नियम—

"अलिनीलाल कलतं कं न हन्ति घनस्तनि।
आननं नलिनच्छाय नयनं शशिकान्ति ते॥
—कव्यादर्श, परि ३, श्लोक ८९

(ग) द्विस्थान नियम—

"अनंगलंघनालग्ननानातंका सदंगना।
सदानघ सदानन्द नतांगसंग संगत॥"
—उपरिवत्, श्लोक ९०

(घ) एकस्थान नियम—

"अगागांगांगकाकाकगाहकाघककाकहा।
अहाहांक खगांकागकंकागखगकाकक॥"
—उपरिवत्, श्लोक ९१

१. स० कं०, परि २, वृत्ति की श्लोक संख्या क्रमश: २६७, २६८, २६९, २७० तथा २७१
२. उपरिवत्, श्लोक क्रमश: २७२ तथा २७३
३. द्विस्थानचित्र का उदाहरण उपरिवत्, श्लोक २७४
एकस्थान चित्र का उदाहरण, उपरिवत्, श्लोक २७५
४. हेमचन्द्र आदि।
५, क० प्रि०, प्रभाव १६, छं० ६
कुमार मणि शास्त्री, रसिकरसाल, पृ० १३७, छं० ३२
भिखारीदास, का० नि०, परि २१, छं० ७१
जनराज, कविता रस विनोद, पृ० २७६, छन्द ८-९
काशिराज, चि० चं०, प्रकाश २, छन्द ११

अपवादस्वरूप केवल काशिराज ने 'स्थानचित्र' के दस उदाहरण दिये हैं, जिनमें 'निष्कण्ठ्य', 'निस्तालव्य', 'निमू र्द्धन्य', 'निर्दन्त्य' तथा 'निरोष्ठ्य' ये पाँच उदाहरण तो 'चतुः स्थानचित्र' के हैं तथा अन्य पाँच 'कंठस्थानीय', 'तालुस्थानीय' 'मूर्द्धास्थानीय' 'दन्तस्थानीय' तथा 'ओष्ठस्थानीय,' 'एक स्थानचित्र' के हैं।[1] काशिराज ने भी 'त्रिस्थान' अथवा 'द्विस्थानचित्र' का कोई उदाहरण नहीं दिया है। काशिराज प्रदत्त 'स्थानचित्र' का लक्षण द्रष्टव्य है—

"निष्कंठहि कों आदि दै पंचस्थानी चित्र।
इक इक थानी पुनि कह्यो समुझि लीजियो मित्र॥"[2]

हिन्दी में रचित 'निरोष्ठ' के उदाहरण में सिद्धान्त में तो आचार्यों ने स्वीकार किया है कि इस प्रकार के छन्द के पढ़ने में दोनों ओठ आपस में नहीं लगने चाहिये किन्तु कतिपय कवियों द्वारा रचित छन्द सदोष हो उठे हैं। स्वयं केशवदास 'निरोष्ठ' का निम्न लक्षण देकर भी उदाहरण में चूक गये हैं—

"पढ़त न लागै अधर सों अधर वरण त्यों मंडि।
और वरण बरणौं सबै उप वर्गहि सब छंडि॥"[3]

'कविप्रिया' में दिये गये 'निरोष्ठ' के छन्द में केशवदास ने 'उ' 'ऊ' तथा 'पवर्ग' के वर्णों का ध्यान तो रखा है किन्तु मात्राओं में 'उ,' 'ऊ' तथा 'ओ' तीनों ही पर्याप्त संख्या में प्रयुक्त हैं। प्रस्तुत छन्द का विस्तृत विवेचन द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत किया जा चुका है।[4]

इस दृष्टि से भिखारीदास तथा काशिराज द्वारा दिये गये 'निरोष्ठ' के उदाहरण बिलकुल दोषरहित हैं। इन दोनों आचार्यों ने 'निरोष्ठ' की जो परिभाषाएँ दी हैं वे भी अधिक पूर्ण तथा स्पष्ट हैं। भिखारीदास की परिभाषा है—

"छाड़ि पवर्ग उ ओ बरन, और बरन सब लेहु।
या को नाम निरोष्ठ है, हिये धरो निसंदेहु॥"[5]

प्रस्तुत परिभाषा में भिखारीदास ने 'ओ' का भी उल्लेख किया है। 'ओ' यद्यपि पूर्ण ओष्ठ्य वर्ण नहीं है पर कण्ठोष्ठ्य तो है ही। इसी प्रकार काशिराज ने अपनी परिभाषा में 'उ' की मात्रा के प्रयोग का निषेध भी स्पष्टतः कर दिया है—

---

१. चि० चं०, प्रकाश २, छन्द संख्या क्रमशः ३, ५, ७, ९ तथा ११, पुनः १३, १५, १७, १९ तथा २१

२. उपरिवत्, छन्द १, पृ० १६

३. क० प्रि०, प्रभाव १६, छं० ५

४. उदाहरण का छन्द, उपरिवत्, छन्द ६ तथा विवेचन के लिए द्रष्टव्य प्रस्तुत ग्रन्थ, अध्याय २, केशव का विवेचन

५. का० नि०, परि २१, छन्द ४०

"जहाँ उकार पवर्ग को छाड़ि कीजियत छंद ।
उमता नाहीं दीजिये सो निरोष्ठ रस कंद ॥"[१]

इन दोनों कवि-आचार्यों के द्वारा रचित 'निरोष्ठ' के छन्द निम्न हैं—

"कन हैं सिंगार रस के करन जस ये,
सघन धन आनँद की झर जे सँचारते ।
दास सरि देत जिन्हें सारस के रस रसे,
अलिन के गन खन खन तन झारते ।
राधादिक नारिन के हिय की हकीकति,
लखें ते अचरज रीति इनकी निहारते ।
कारे कान्ह कारे कारे तारे ये तिहारे जित
जाते तित राते राते रग करि डारते ॥"[२]

(भिखारीदास)

× × ×

"कनक लजात तन आनन ते चन्द काँति
ललितचषन कंज खंजरीट हीन है ।
लाल की ललाई नहीं आदरी अधर रंग
कीर नासिका ते हारि काननन लीन है ।
तड़ित सरस हास लसतदसन राजि
दरकि अनार दाने देखियत दीन है ।
कहि काशीराज आज अधिक सजी है राधा
आनँद अगाधा लखें लालजी अधीन है ।"[3]

(काशिराज)

जैसा कि कहा जा चुका है निरोष्ठ के अतिरिक्त केवल काशिराज ने ही अन्य 'स्थानचित्रों' का विवेचन किया है । उनके लक्षण-उदाहरण निम्न हैं—

निष्कण्ठ्य

"अ ह, कवर्ग कों छाड़िये अरु सब मात्रा त्यागि ।
ई, ऊ, ऋ सों छन्द रचि यह निष्कंठहि लागि ॥"[४]

तात्पर्य यह कि 'अ', 'आ', 'ह' तथा 'कवर्ग' के वर्णों के अतिरिक्त अन्य वर्णों से जो छन्द रचा जाता है, वही 'निष्कण्ठ्य' कहलाता है । साथ ही इस छन्द में 'इ', 'उ' तथा 'ऋ' की मात्राओं का ही प्रयोग होगा, अन्य मात्राएँ वर्जित रहेंगी । उदाहरण देखिये—

१. चि० च०, प्रकाश २, पृ० २०, छ० १०
२. का० नि०, परि २१, छन्द ४१
३. चि० चं०, प्रकाश २, छं० ११
४. उपरिवत्, छं० २, पृ० १७

"श्री पी प्रीति सुरीति सी निधि विधि वृद्धि सुबुद्धि ।
रूरी नीति सु भूरि भू सुमिरी जी शुचि सुद्धि ॥"[१]

निस्तालव्य

लक्षण है—

"इ, श, य, चवर्गहि छोड़िये ई मत्ता मति देहु ।
निस्तालव्य सुचित्र यह कवि पंडित लखि लेहु ॥"[२]

अर्थात् 'निस्तालव्य' छन्दरचना में 'इ' 'श', 'य' तथा 'चवर्ग' के वर्णों को छोड़कर अन्य वर्णों का ही प्रयोग अपेक्षित है। मात्राओं में भी 'इ' तथा 'ई' की मात्राएँ निषिद्ध हैं। उदाहरण के लिये निम्न छन्द द्रष्टव्य है—

'कमल बदन तेरो सरस मुख मूँदे कस बाल ।
खोलो घूंघट अरु लखो कर बांधे नंद लाल ॥"[3]

निर्मूर्द्धन्य

लक्षण निम्न है—

"ऋ ष, र, टवर्गहि छाड़ि के रचिये छंद सुजान ।
निर्मूर्द्धन्य सुचित्र कहि ग्रंथन मत अनुमान ॥"[४]

यानी 'निर्मूर्द्धन्य चित्रकाव्य' की रचना में मूर्द्धा से उच्चरित होनेवाले 'ऋ', 'ष,' 'र' तथा 'टवर्ग' के वर्णों से इतर वर्ण ही प्रयुक्त होते हैं। निम्न छन्द इस 'चित्रकाव्य' का उदाहरण है—

"पीतम जब अनुनय कियो तब नहिं मान्यो बाल ।
कोप मुधा मो पै कियो तैं न मनाये लाल ॥"[५]

निर्दन्त्य

लक्षण—

"लृ, स, ल, तवर्गहि त्यागि के छंद रचो सुख पाय ।
निर्दंती यह चित्र है काशिराज कवि गाय ॥"[६]

अर्थात् 'निर्दन्त्य' चित्ररचना में 'लृ,' 'स,' 'ल' तथा 'तवर्ग' के वर्णों का प्रयोग नहीं किया जाता है। उदाहरण निम्न है—

१, चि० च०, प्रकाश २, छं० ३
२, उपरिवत्, छं० ४, पृ० १८
३. उपरिवत्, छन्द ५
४. उपरिवत्, छन्द ६, पृ० १९
५. उपरिवत्, छन्द ७
६. उपरिवत्, छन्द ८, पृ० १९

"कछु उमगे उथ में उरज बाक मिठाई आउ ।
चाहि अभी बृजराज जी परमा बाको भाउ ॥"[1]

इसके अतिरिक्त उपर्युक्त उच्चारणस्थानों से ही उच्चरित वर्णों से निर्मित अन्य पाँचों प्रकार के 'स्थानचित्रों' के लक्षण-उदाहरण निम्न हैं—

कण्ठ्य

प्रस्तुत चित्ररचना में केवल 'कण्ठ्य' वर्णों का ही प्रयोग होता है । लक्षण निम्न है—

"अ, ह, कवर्ग के वर्ण ते छंद रचो निरधारि ।
अवर्ण मत्ता दीजिये कंठ स्थानि विचारि ॥"[2]

यानी जब केवल, 'अ', 'ह' तथा 'कवर्ग' के वर्णों से ही छन्द की रचना की जाती है तथा मात्राएँ भी केवल, 'अ' तथा 'आ' की ही होती हैं तो वह छन्द 'कंठ्य स्थानचित्र' कहलाता है । उदाहरण के लिये निम्न छन्द देखें—

"कंक काक खग अघहा गंगा ।
गाह गाह अक गाहक अंगा ।"[3]

तालव्य

'तालुस्थानीय' चित्ररचना में उपर्युक्त 'चित्र' के समान ही केवल तालु से उच्चरित होनेवाले वर्णों तथा मात्राओं का ही प्रयोग किया जाता है—

"इ, श, य, चवर्गन ते रचो छंद जहाँ सुखधाम ।
तालुस्थानी चित्र यह वरनत कवि गुनग्राम ॥"[4]

अर्थात् 'इ,' 'श,' 'य' तथा 'चवर्ग' के वर्णों से जो छन्द निर्मित हों वे 'तालव्य स्थानचित्र' के अन्तर्गत आते हैं । प्रस्तुत चित्र के उदाहरण में काशिराज ने मात्राओं का ध्यान नहीं रखा है । मात्राएँ 'स्वरचित्र' की सीमा में आती हैं अतः संस्कृत में भी 'स्थान-चित्र' के अन्तर्गत मात्राओं के विधि-निषेध का बहुत अधिक आग्रह नहीं रहा है । काशिराज ने चूँकि भोजराज का अनुकरण अधिक किया है अतः इस सम्बन्ध में वे भी बहुत अधिक सचेष्ट नहीं हैं ।[5] उदाहरण का छन्द निम्न है जिसमें 'इ,' 'ई' की मात्राओं के अतिरिक्त अन्य मात्राएँ भी प्रयुक्त हैं—

---

१. चि० च०, प्रकाश २, छन्द ९, पृ० २०

२. उपरिवत्, छन्द १२, पृ० २२

३. उपरिवत्, छन्द १३

४. उपरिवत्, छन्द १४

५. उदाहरण के लिये भोजराज द्वारा उदाहृत स्थानचित्र का निम्न श्लोक लिया जा सकता है । इस श्लोक में वे स्वर के प्रयोग की ओर बहुत सचेष्ट नहीं दीखते—

"झाझी झाझ जुझाई छाजे ।
चाय चाय जय जाची जाजे ।।"[१]

मूर्द्धन्य

'मूर्द्धास्थानीय' चित्ररचना में भी उपर्युक्त 'चित्रों' के समान 'मूर्द्धा' से उच्चरित होनेवाले वर्णों का ही प्रयोग किया जाता है—

"ऋ, ष, र, टवर्गन ते जहाँ कीजे छन्द विचार ।
मूर्द्धस्थानी चित्र सो ग्रंथन मत अनुसार ।।"[२]

यानी 'मूर्द्धास्थानीय' चित्ररचना में 'ऋ', 'ष,' 'र'[1], तथा 'टवर्ग' के वर्णों का ही प्रयोग होता है । निम्न उदाहरण से यह स्पष्ट हो जायगा—

"रण रूरे रट ढाढी राटे ।
रणी ढीठ ठाढ़े रण डाटे ।।"[३]

प्रस्तुत चौपाई में केवल मूर्द्धा से उच्चरित होनेवाले वर्ण हैं ।

"अनङ्ग लङ्घनालग्ननानातङ्का सदङ्गना ।
सदानघ सदानन्द नताङ्गीसङ्गसङ्गत ।।" स० कं०, परि २, श्लोक २७४

प्रस्तुत श्लोक 'द्विस्थानचित्र' के उदाहरणस्वरूप भोजराज ने उपस्थित किया है, जिसमें उनके अनुसार केवल दन्त्य तथा कण्ठ्य वर्णों का ही प्रयोग किया गया है । किन्तु यहाँ 'नताङ्गी' शब्द में 'ई' की मात्रा का प्रयोग हुआ है जो तालु वर्ण है । इस प्रकार भोजराज स्थानचित्र के अन्तर्गत मात्राओं के प्रयोग की ओर बहुत सचेष्ट नहीं दीखते, विशेष कर ऐसी स्थिति में जबकि प्रस्तुत श्लोक को उन्होंने दण्डी के काव्यादर्श (३-९०) से ही उद्धृत किया है । दण्डी ने काव्यादर्श में इस श्लोक में 'नताङ्गीसङ्गसङ्गत' के स्थान में 'नतङ्गासङ्गसङ्गतः' का प्रयोग किया है और इस प्रकार उनके उदाहरण में 'स्वर और व्यंजन' दोनों का पूर्ण प्रतिबन्ध माना गया है । अतः भोजराज द्वारा 'ई' का प्रयोग जानबूझ कर ही किया गया सिद्ध होता है । भोजराज के पूर्व की काव्य-कृतियों में भी 'स्थानचित्र' के अन्तर्गत मात्राओं के लिये बहुत आग्रह नहीं रहा है । उदाहरण के लिये महाकवि माघ ने 'शिशुपालवध' में, शिवस्वामी ने 'कप्फिणाभ्युदय' में तथा रत्नाकर ने 'हरविजय' में, अतालव्य के जो श्लोक दिये हैं उनमें तालु से उच्चरित होने वाले स्वर 'इ' अथवा 'ई' की मात्रा का स्पष्ट प्रयोग किया है—

"नामाक्षराणां मलिता मा भूद्भर्त्तुरितः स्फुटम् ।
अगृह्णत पराङ्गानामसूनस्त्रं न मार्गणाः ।।" शि०पा०व०, १९-११०)
बभ्रे बभ्रुः क्षुधादभ्रभ्रान्त भ्रूभ्रुकुटी भरात् ।
मुखमन्तकवद्रौद्रं मद्रकोपद्रवे द्रुतम् ।।" (क० १८-३५)
"स्फुरत् कुण्डल रत्नौ घतडित्किरण कर्बुरः
मेघनीलोऽथ संग्रामे प्रावृट्काल वदाबभौ ।।" (ह० वि, ४३-१६८)

प्रस्तुत श्लोकों में 'इ' 'ई' तथा 'ए' की मात्राओं का स्पष्ट प्रयोग है । अतः मात्राओं के प्रयोग पर अधिक ध्यान न देकर हिन्दी के कवियों ने परम्परा का ही पालन किया है ।

१. चि० चं०, प्रकाश २, पृ० २३, छन्द १५
२. उपरिवत्, छन्द १६
३. उपरिवत्, छन्द १७

दन्त्य

लक्षण—

"लृ, स, ल, तवर्गन ते जहाँ छन्द रचैं कवि लोग ।
दंत स्थानी चित्र को जानि लेहु यह योग ।।"[1]

अर्थात् 'दन्तस्थानीय चित्र' में दाँत से उच्चरित होने वाले 'लृ', 'स,' 'ल' तथा 'तवर्ग' के वर्णों का ही उपयोग किया जाता है । उदाहरणस्वरूप निम्न छन्द द्रष्टव्य है—

"थिति निधान निधि, थान निस, दीननि दीने दान ।
दुनी धनी, नँद नंदनैं, नीधन धनैं निदान ।।"[2]

अथवा

"तत निधानताननि तनैं ललित ललित दै ताल ।
सुनि सुनि नत तन से लसत, नूतन नोने लाल ।।"[3]

ओष्ठ्य

लक्षण—

"जहाँ पवर्ग उ कार ते छन्द बनावो मित्र ।
ओष्ठस्थानी जानिये परम सुखद यह चित्र ।।"[4]

यानी केवल 'उ,' 'ऊ,' 'प,' 'फ,' 'ब,' 'भ' और 'म' के प्रयोग से जो छन्द बने वह 'ओष्ठस्थानीय चित्र' के अन्तर्गत परिगणित होता है । उदाहरण के लिये निम्न छन्द देखें—

"भामा उपमा में फबि बामा ।
उमा पाप पबि भूमि बिभामा ।।"[5]

उपर्युक्त 'स्थानचित्रों' के अतिरिक्त भिखारीदास तथा गोकुलकवि ने 'अजिह्व' के नाम से एक-एक छन्द की रचना की है । 'अजिह्व' से उनका तात्पर्य ऐसी छन्दरचना से है जिसमें केवल उन्हीं वर्णों का प्रयोग हो जिनके उच्चारण में जिह्वा का परिचालन न हो । 'ध्वनि विज्ञान' के अनुसार यह असम्भव है कि मुँह से उच्चरित होनेवाले किसी भी वर्ण के उच्चारण में जिह्वा में कम्पन न हो । बिना जीभ की सहायता के इन वर्णों का उच्चारण ही असम्भव है । भिखारीदास तथा गोकुलकवि का तात्पर्य इस स्थिति में उन वर्णों से मालूम पड़ता है जिनके उच्चारण में जिह्वा को मुख के अन्दर किसी स्थान का स्पर्श न करना पड़े । लक्षण में इन दोनों ही कवि-आचार्यों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि 'अजिह्व' से उनका तात्पर्य 'कण्ठ्य' वर्ण से ही है—

१. चि० च०, प्रकाश २, छन्द १८
२. रसिक रसाल, पृ० १३७, छन्द ३१
३. चित्र चन्द्रिका, प्रकाश २, पृ० २४, छन्द १९
४. उपरिवत्, पृ० २५, छन्द २०
५. उपरिवत्, छन्द २१

"जित ह बर्न अ कवर्ग तित और न आवै कोइ ।
ताहि अजिह्व बखानहीं, जिह्वा चलित न होइ ।।"[१]

गोकुलकवि का लक्षण भी इसी के समानान्तर है—

"जित ह बर्न अ कवर्ग तजि अवर न लीजै कोय ।
ताहि अजिह्व बषानहीं जिह्वा चलित न सोय ।।"[२]

किन्तु व्याकरण में 'क' से 'म' तक के वर्णों को 'स्पर्श वर्ण' की संज्ञा दी गई है, फलतः 'कवर्ग' के उच्चारण में जिह्वा के परिचालन नहीं होने का प्रश्न ही नहीं उठता । दोनों कवियों द्वारा दिये गये 'अजिह्व' के उदाहरण भी उनके लक्षण के ही अनुकूल हैं—

"खाइ है घीअ अघाइ है हीअ गहागहै गीअ अहे कहा खंगा ।
है है कहाँ की कहाँ की है खै खै ए गेह के गाहक खैह है अंगा ।।
काहे को घाइ गहै अघ ओघ कों काक की कीक कहा किए कंगा ।
गाइए गंगा कहाइए गंगा कही गहे गंगा अहे कहे गंगा ।।[3]

'चित्रकलाधर' का छन्द निम्न है—

"गेह ककै कुल गहि षई, कहा कहो का गाय ।
हाय कहाँ आई यहाँ, घायहि गई अघाय ।।"[४]

इन छन्दों में यदि 'कण्ठस्थानीय चित्र' से कुछ अन्तर है तो केवल यह कि 'कण्ठस्थानीय चित्र' में जहाँ केवल कण्ठ से उच्चरित होनेवाले स्वर 'अ' तथा 'आ' का ही प्रयोग होता है वहाँ प्रस्तुत छन्दों में सभी स्वरों का प्रयोग किया गया है । ये स्वर कण्ठ्य वर्ण नहीं है । 'चित्रकलाधर' के उपर्युक्त दोहे में 'य' का अनेक बार प्रयोग हुआ है जो तालव्य वर्ण है । इन स्वरों एवं 'य' के उच्चारण में जिह्वा का परिचालन आवश्यक है । फलतः 'अजिह्व' संज्ञा का प्रस्तुत स्थल पर कोई औचित्य दीख नहीं पड़ता ।

स्वरचित्र

'वर्णचित्र' तथा 'स्थानचित्र' के समान ही आचार्य दण्डी ने 'स्वरचित्र' के भी चार उदाहरण दिये हैं— १. चतुःस्वर चित्र, २. त्रिस्वर चित्र, ३. द्विस्वर चित्र, तथा ४. एकस्वर चित्र ।[५]

१. का० नि०, परि २१, छन्द ४६
२. चित्रकलाधर, पृ० ११५, छन्द ५०
३. का० नि०, परि २१, छन्द ४७
४. चि० क०, पृ० ११५, छन्द ५१
५. चतुःस्वर नियम—

"आम्नायानां महान्त्या वाग्गीतीरीतीः प्रीतीर्भीतीः ।
भोगोरोगोमोदोमोहो ध्येयेवेच्छेद्देशे क्षेमे ।।८४।।

त्रिस्वर नियम—

"क्षितिविजितिस्थितिविहिति व्रतरतयः परमतयः ।
उरुरुरुधुगुरु दुधुवुयुधिकुरवः स्वमरिकुलम् ।।८५।।

उपर्युक्त 'चित्ररचनाओं' की तरह ही 'स्वरचित्र' भी छन्दरचना से ही सम्बन्धित है। किसी छन्द में एक से लेकर चार स्वरों तक के प्रयोग की सीमा में ही 'स्वरचित्र' की रचना सम्भव है। भोजराज ने 'स्वरचित्र' के अन्तर्गत किसी छन्दविशेष में स्वरों के प्रयोग की सीमा तो चार तक ही रखी है किन्तु 'स्वरचित्र' के आठ उदाहरण दिये हैं—

१. ह्रस्वैकस्वर चित्र, २. दीर्घैकस्वर चित्र, ३. ह्रस्वद्विस्वर चित्र,
४. दीर्घद्विस्वर चित्र, ५. ह्रस्व त्रिस्वर चित्र, ६. दीर्घ चतु : स्वर चित्र,
७. प्रतिव्यंजन विन्यस्त स्वरचित्र, तथा ८. तदेवापास्तसमस्त स्वरचित्र।[१]

इस सूची में दो और प्रकार की रचनाओं का समावेश सम्भव है जिन्हें भोजराज ने छोड़ दिया है। वे हैं—

(क) दीर्घ त्रिस्वरचित्र तथा (ख) ह्रस्व चतुःस्वर चित्र (अ, इ, उ तथा ऋ को लेकर)

'प्रतिव्यंजन विन्यस्त स्वरचित्र' के उदाहरण से यह सूचित होता है कि श्लोक में प्रयुक्त सारे व्यंजनों के साथ कोई न कोई मात्रा अवश्य है।[२] साथ ही 'तदेवापास्तसमस्तस्वर-चित्र' का तात्पर्य अमात्रिक से है जहाँ उदाहृत श्लोक के किसी अक्षर के साथ कोई मात्रा नहीं लगी है।[3] हेमचन्द्र ने भी 'स्वरचित्र' के अपने उदाहरणों को इसी सीमा के अन्तर्गत रखा है।[४]

द्विस्वर नियम—

"श्रीदीप्तीह्रीकीर्ती धीनीतीगीः प्रीतीः।
एधेते द्वे द्वे ते ये ने मे देवेशे ॥८६॥

एकस्वर नियम—

"सामायामा माया मासा मारानाया याना रामा।"
यानावारारावानाया मायारामा मारायामा ॥८७॥

—काव्यादर्श, तृतीय परिच्छेद

१. सरस्वतीकण्ठाभरण, परि २, वृत्ति की श्लोकसंख्या क्रमशः २७६, २७७, २७८, २७९, २८०, २८१, २८२ तथा २८३

२. "तापेनोग्रोऽस्तु देहे नो हेये विल्लोभिनिन्दिन।
जायाग्रे हि गुणिप्रेष्ठे हितो ऽक्षेपो ऽ मृतोक्षिणि।"

—सं० क०, परि २, उदाहरण-श्लोक २८२

३. "तपनग्रस्तदहन हयवल्लभनन्दन।
जय ग्रहगणप्रष्ठ हस्तक्षप मतक्षण॥"

—स० क०, परि २, वृत्ति, श्लोक २८३

४. काव्यानुशासन, कारिका १०८ की वृत्ति तथा टीका, पृ० ३०७-३०८

स्वरचित्र के चार उदाहरण—

१. ह्रस्वैक स्वर, वृत्ति श्लोक ४६३

२. दीर्घैकस्वर
३. द्विस्वर
४. त्रिस्वर
} टीका, श्लोक ४७९, ४८० तथा ४८१

हिन्दी में 'स्वरचित्र' की रचना का प्रचलन अधिक नहीं रहा। 'स्वरचित्र' के अन्तर्गत केवल 'अमात्रिक छन्द' की रचना हुई गोकि यह रचना कवियों को इतनी अधिक प्रिय जँची कि उन्नीसवीं शती के इसाई धर्मप्रचारकों ने धर्मप्रचार की दृष्टि से की गई कविताओं में भी इन्हें स्थान दिया।[1] यों भी 'चित्रकाव्य' की रचना करने वाले केशवदास से लेकर प्रायः प्रत्येक हिन्दी कवि ने 'अमात्रिक' छन्द की रचना अवश्य की है।[2] केशवदास ने इसके निम्न लक्षण-उदाहरण दिये हैं—

---

१. जौन कृष्टियन द्वारा लिखित 'सत्यशतक' में अमात्रिक के निम्न दो पद मिलते हैं—
उनतीसवीं कविता—

परमधरमधर, असत करन डर, भरमसकल हर।
कमल चरन रज, सरस भजन भज।
हरष सरन धर, अजर अमर तर ॥१॥
सजन सपथ धर, बल छल पर कर।
कपट वचन हर, जगत सजस भर ॥२॥
भजन परम धन, नर रट सत छन।
हर अघ घन मन, भनत अधम जन ॥३॥

तीसवीं कविता—

भजन अलख जन, सतत छन करन, अमर धन लहन।
लह असन वसन, गह शरग्‌सदन।
दह अघ घन वन, कह धरम वचन ॥१॥
असत मत दलन, सरल पथ वहन।
भरम मन हरन, सरनद असरन ॥२॥
तन छय छन छन, रहत न जगधन।
जगत जस समन, कहत अधम जन ॥३॥

२. लछिराम—रा० क०, कुसुम ११, पृ० २९०
गोकुल कवि—अष्टयामप्रकाश, पृ० १९०-१९१, छन्द १७
गोकुल कवि—चि० क०, पृ० ११५, छन्द ५३
काशिराज—चि० चं०, प्रकाश ३, छन्द ५, पृ० २८
जनराज—क० र० वि०, पत्र २९१, छन्द २४, २५
नगनारायण सिंह—दु० प्रे० त०, पृ० २० (दो छन्द)
भिखारीदास—का० नि०, परि २१, छन्द ४३
केशवदास—क० प्रि०, प्रभाव १६, छन्द ८
राजेन्द्र सिंह—दु० प्रे० त०, पृ० ५५-५८, छन्द १, २, ३, ४
वरवखशराम—सुजान कविरहस्य चन्द्रिका, छन्द २
सेनापति—कवित्त रचनाकर, तरंग ५, छन्द ७०
सुन्दरदास—सुन्दर ग्रन्थावली (खण्ड २), पृ० ९९४, छन्द २
जौन कृष्टियन—सत्यशतक, छन्द २९-३०
रामचरण शुक्ल—चरण विनोद (प्रथम खण्ड), पृ० ८८

"एकै स्वर जहँ बरनिये अद्भुत रूप 'अ' वर्ण ।
कहिये मात्रारहित सो मित्र चित्र आभर्ण ॥"[1]

उदाहरण

"जग जगमगत भगत जन रस बस,
भव भय हर कर, करत अचर चर ।
कनक वसन तन, असन अनल बड़,
बट दल वसन, सजल, थल थलकर ॥
अजर अमर अज, वरद चरन धर,
परम धरम गन बरन शरन पर ।
अमल कमल वर बदन, सदन जस,
हरन मदन मद, मदन कदन हर ॥"[2]

'अमात्रिक' के अतिरिक्त केवल दो प्रकार के और 'स्वरचित्र' का विवेचन काशिराज की 'चित्रचन्द्रिका' में मिलता है, वे हैं—

१. सर्वगुरु स्वरचित्र तथा

२. सर्वलघु स्वरचित्र

'सर्वगुरु स्वरचित्र' के अन्तर्गत छन्दविशेष में प्रयुक्त सारी मात्राएँ केवल दीर्घ होती हैं जबकि 'सर्वलघु स्वरचित्र' में छन्द में प्रयुक्त सारी मात्राएँ केवल ह्रस्व । 'अमात्रिक' और 'सर्वलघु स्वरचित्र' का अन्तर यह है कि जहाँ अमात्रिक में किसी भी मात्रा का प्रयोग नहीं होता वहाँ 'सर्वलघु स्वरचित्र' में अकार के साथ ही 'इ' 'उ' की मात्रा का प्रयोग भी होता है, मात्राएँ केवल ह्रस्व होती हैं । 'स्वरचित्र' का जो सामान्य लक्षण काशिराज ने दिया है, उसमें भी यह तथ्य स्पष्ट कर दिया है—

"गुरु लघुमत्ता भेद करि रचिये छन्द प्रबीन ।
अति विचित्र स्वरचित्र यह कहत रसिक रस लीन ॥[3]

साथ ही 'सर्वगुरु स्वरचित्र' तथा 'सर्वलघु स्वरचित्र' के उदाहरणस्वरूप निम्न छन्दों की रचना काशिराज ने की है—

सर्वगुरु स्वरचित्र

"राधा देखें रामा ऐसी ।
चन्दा आगे तारा जैसी ।"[4]

---

१. क० प्रि०, प्रभाव १६, छन्द ७

२. उपरिवत्, छन्द ८

३. चि० चं०, प्रकाश ३ पृ० २६, छन्द १

४. चि० चं०, प्रकाश ३, छन्द २

सर्वलघु स्वरचित्र

"शशि रुचि मलिन ललित मुख निरखत
नलिन नयन सरवर नहिं दरसिय।
हसित लसित दुति तड़ित दलित छवि
मधुर अधिक रस अधर सुसरसिय।
उदित उरजवर कमल मुकुल सम
तनुरुह अवलि उदर सर पर सिय॥
चलहु ललन नव मिलन समय अब
बचन अमृतमय तियकछुवर सिय॥"[१]

निरोष्ठामत्त

'वर्ण', 'स्थान' तथा 'स्वरचित्रों' के उपर्युक्त भेदों के अतिरिक्त हिन्दी के आचार्यों तथा कवियों को 'स्थान' तथा 'स्वरचित्र' का सम्मिश्रित रूप 'निरोष्ठामत्त' भी बहुत अधिक प्रिय रहा है। संस्कृत में इस सम्मिलित 'स्थान-स्वरचित्र' का कोई उदाहरण देखने में नहीं आता, यद्यपि इसकी रचना बहुत कठिन नहीं है। भिखारीदास रचित 'निरोष्ठामत्त' का निम्न लक्षण तथा उदाहरण द्रष्टव्य है—

"पढ़त न लागे अधर अरु, होई अमत्ता बर्न।
ताहि निरोष्ठामत्त कहि, कहैं सुकवि मनहर्न॥"[२]

उदाहरण

"कहत रहत जस खलक सरद-सस धरन झलक तन।
रजत अचल घर सजत कनक-धन नगन सकल गन।
जल अचरत घन सतन हरष अनगन घर सरसत।
हसत अतन गन जतन करत छन दरसन दरसत।
जल अनघ जरद अलकन लसत, नयन अनल धर गरल गर।
जल-दरद-दरन असरन-सरन, जय जय जय अघ हरन हर॥"[३]

प्रस्तुत छन्द 'अमात्रिक' तो है ही साथ ही 'ओष्ठ्य' वर्ण से रहित भी है। हिन्दी आचार्यों अथवा कवियों ने इसके अतिरिक्त अन्य प्रकार के 'स्वरचित्रों' का न विवेचन किया है और न रचना ही। अतः संस्कृत में पाये जानेवाले अन्य प्रकार के 'स्वरचित्रों' का विवेचन इस स्थल पर न अपेक्षित है और न समीचीन ही।

१. चि० च०, प्रकाश ३, छन्द ३
२. का० नि०, परि २१, छन्द ४४
३. उपरिवत्, छन्द ४५

गतिचित्र

'गतिचित्र' के अन्तर्गत भोजराज ने 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में 'गतप्रत्यागत' 'अक्षर गतप्रत्यागत' 'श्लोकान्तर गतप्रत्यागत' 'भाषान्तर गतप्रत्यागत' 'अर्थानुगतप्रत्यागत' तुरङ्गपद' 'अर्धभ्रम' तथा 'सर्वतोभद्र' का विवेचन किया है।[१] इसके अतिरिक्त 'गोमूत्रिका' तथा 'धेनु' चित्रप्रकारों को भी उन्होंने 'गतिचित्र' के अन्तर्गत ही माना है यद्यपि इनका विवेचन 'गतिचित्र' से अलग किया है।[२] आगे चलकर हेमचन्द्र ने 'धेनु' का विवेचन तो नहीं किया पर 'गोमूत्रिका' का विवेचन 'गतिचित्र' के अन्तर्गत ही किया।[3] 'गतप्रत्यागत' 'अर्धगत-प्रत्यागत' 'श्लोकगतप्रत्यागत' 'तुरङ्गपद', 'अर्धभ्रम' तथा 'सर्वतोभद्र' का आकलन तो 'गति-चित्र' के अन्तर्गत हुआ ही।[४] अचार्य दण्डी ने यद्यपि 'गति' नाम से किसी चित्रभेद का उल्लेख नहीं किया था किन्तु 'गोमूत्रिका' 'अर्धभ्रम' तथा 'सर्वतोभद्र' के विधिवत् लक्षण तथा उदाहरण दिये थे।[५] रुद्रट में भी 'सर्वतोभद्र' तथा 'अर्धभ्रम' का विवेचन तो है किन्तु

---

१. स० क०, परि २, वृत्ति में दिये गये उदाहरण की श्लोक संख्या क्रमशः २९९, ३००, ३०१, ३०२, ३०३, ३०४, ३०५, ३०६, ३०८, कारिका ११०, वृत्ति ३०९ तथा ३१०।

२. उपरिवत्, पृ० २४२ वृत्ति

"तेन गतिविचित्रादि गोमूत्रिकादयोऽन्येऽपि चित्रप्रकाराभवन्ति।" यहाँ 'आदयोऽन्ये' पद से 'धेनु' का ही तात्पर्य है, कारण 'गोमूत्रिका' के उपरान्त 'धेनु' का ही विवेचन 'चित्र' के अन्तर्गत भोजराज ने किया है। 'प्रश्नोत्तरादि' 'चित्र' के अन्य भेदों का विवेचन भोजराज ने स्वतन्त्र अलंकारों के रूप में अलग ही किया है। भूमिका, तथा क्षेत्र विस्तार के अन्तर्गत इसका विवेचन किया जा चुका है।

३. काव्यानुशासन, कारिका १०८ की वृत्ति—

"गतिर्गत प्रत्यादिका। ....एवमर्धगतप्रत्यागतश्लोकगतप्रत्यागत सर्वतोभद्रार्धभ्रमतुरङ्ग-पदगोमूत्रिकादीन्युदाहार्याणि।"

टीका विवेक-"आदि ग्रहणाद्गजपदरथपदादीनि ज्ञातव्यानि।"

इसके अतिरिक्त टीका में गोमूत्रिका के अन्तर्गत पादगोमूत्रिका, अर्धगोमूत्रिका तथा श्लोक-गोमूत्रिका के उदाहरण दिए गए हैं।

४. द्रष्टव्य प्रस्तुत पुस्तक का द्वितीय अध्याय

५. लक्षण—

"प्राहुरर्धभ्रमं नाम श्लोकार्धभ्रमणं यदि।
तदिष्टं सर्वतोभद्रं भ्रमणं यदि सर्वतः ॥८०॥" काव्यादर्श, परि ३

अर्धभ्रम का उदाहरण—

"मनोभव तवानीकं नोदयाय न मानिनी।
भयाद मेयामा मा वा वयमेनोमयानत ॥८१॥" उपरिवत्

सर्वतोभद्र का उदादरण—

"सामायामा मायामासा मारानायायानारामा।
यानावारारावानाया मायारामा मारायामा ॥८२॥" उपरिवत्

'गोमूत्रिका' वहाँ नहीं है।[१] विभिन्न 'अनुलोम-प्रतिलोम' अथवा 'गतप्रत्यागत' का दण्डी ने 'दुष्कर' से इतर 'यमक' के भेद के रूप में विवेचन किया[२], यद्यपि रुद्रट ने इन्हें 'चित्र' के अन्तर्गत ही रखा।[३] 'अग्निपुराण' में 'गोमूत्रिका' 'अर्धभ्रम' तथा 'सर्वतोभद्र' को तो 'बन्ध' के अन्तर्गत माना गया है[४] तथा 'अनुलोम-प्रतिलोम' को 'दुष्कर' के एक भेद 'विदर्भ' के अन्तर्गत,[५] किन्तु आगे चलकर 'अग्निपुराण' का यह विभाजन स्वीकृत नहीं हुआ और भोजराज, हेमचन्द्र प्रभृति आचार्यों ने इन सभी चित्ररचनाओं को 'गतिचित्र' के अन्तर्गत ही स्थान दिया। द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत इसका विवेचन किया जा चुका है।[६]

हिन्दी में उपर्युक्त चित्ररचनाओं में से केवल 'अर्धभ्रम' की रचना नहीं मिलती, अन्य सारी रचनाएँ 'गतिचित्र' के अन्तर्गत ही हुई हैं। इन रचनाओं के अतिरिक्त 'मन्त्रीगति', 'रथगति' तथा 'सर्वतोभद्र' के एक अन्य भेद की रचना भी हिन्दी कवियों ने की है। 'तुरंग पदगति' अथवा 'अश्वगति' के भी दो रूप हिन्दी में पाये जाते हैं। एक में तो 'अश्वगति' के रूप में पाठ करने पर वही छन्द निकलता है जबकि दूसरे में एक अन्य छन्द निःसृत होता है। भोजराज ने 'तुरङ्गपद' का जो उदाहरण दिया है उसमें न्यास का छन्द और है और निःसरण का और,[७] किन्तु रुद्रट द्वारा दिये गये 'तुरगपद' के उदाहरण में न्यास तथा उद्धार दोनों के

---

१. काव्यालंकार, अध्याय ५

अर्धभ्रम का उदाहरण—"सरसायारिवीराली रसनव्याध्यदेश्वरा।
सा नः पायादरं देवी याव्यायागमदध्यरि ॥१८॥"

सर्वतोभद्र का श्लोक—"रसासार रसासार सायताक्षक्षतायसा।
सातावात तवातासा रक्षतस्त्वस्त्वतक्षर ॥२०॥"

२. "आवृत्तिः प्रातिलोम्येन पादार्ध श्लोकगोचरा।
यमकं प्रतिलोमत्वात् प्रतिलोममिति स्मृतम् ॥७३॥" काव्यादर्श परि० ३।

इसके उपरान्त श्लोक ७४, ७५ तथा ७६-७७ में क्रमशः 'पादप्रतिलोम' 'अर्धप्रतिलोम' तथा 'श्लोक प्रतिलोम' के उदाहरण हैं।

३. काव्यालंकार, अ० ५, श्लोक ३—

"अनुलोमप्रतिलोमैरर्धभ्रममुरजसर्वतोभद्रैः।
इत्यादिभिरन्यैरपिवस्तुविशेषाकृतिप्रभवैः॥"

४. "अनेकधावृत्तवर्णविन्यासैः शिल्पकल्पना ॥३५॥
तत्तत्प्रसिद्धवस्तूनां बन्ध इत्यभिधीयते।
गोमूत्रिकार्धभ्रमणं सर्वतोभद्रसम्बुजम् ॥३६॥ अग्निपुराण, अ० ३४३

५. "विदर्भः प्रातिलोम्यानुलोम्यादेवाभिधीयते ॥३४॥" उपरिवत्

६. द्रष्टव्य, प्रस्तुत पुस्तक का द्वितीय अध्याय—'लक्षण तथा क्षेत्र विस्तार-विवेचन'।

७. स० कं०, परि २, वृत्ति श्लोक ३०६ तथा ३०८

न्यास का श्लोक—"बाला सुकाल-बाला का कान्तिलालकलालिता।
सस्वा सुतवती सारा दर्पिका व्रत गर्धित ॥३०६॥

ऊद्धार का श्लोक—"बाला ललित तीव्रस्वा सुकला राग तर्पिका।
सुदर्गिका वर्धितावासा कालातल लासका ॥३०८॥"

छन्द एक ही हैं।[1] रुद्रट के द्वारा उदाहृत 'गजपद' की रचना भी हिन्दी में नहीं मिलती।[2] 'रथगति' के नाम से काशिराज ने एक 'चित्र' का उल्लेख अवश्य किया है[3] पर रुद्रट के 'रथपद' के श्लोक से इस छन्द का कोई साम्य नहीं दीखता। साथ ही काशिराज प्रदत्त 'रथगति' के छन्द में ही 'अश्वगति' का छन्द भी छिपा हुआ है। तात्पर्य यह कि वहाँ न्यास का छन्द तो 'रथगति' के नाम से अभिहित है जबकि उसीमें से 'अश्वगति' की रीति से निःसृत छन्द 'अश्वगति' के अन्तर्गत है। यह व्यवस्था संस्कृत में कहीं भी दीख नहीं पड़ती।

संस्कृत में विवेचित 'गतागत' के सारे भेद हिन्दी में भी गृहीत हुए हैं। हिन्दी के कवियों को 'गतप्रत्यागत' अथवा 'अनुलोम-प्रतिलोम' की रचना कुछ अधिक प्रिय दीख पड़ती है। हिन्दी में भी 'अनुलोम-प्रतिलोम' का विवेचन 'चित्र' के अन्तर्गत ही हुआ है, इस क्षेत्र में दण्डी का अनुकरण नहीं दीख पड़ता। 'गतागत' के अतिरिक्त 'कामधेनु' की रचना भी हिन्दी कवियों ने की है। 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में 'धेनु' के 'शतधेनु', 'सहस्रधेनु, 'अयुतधेनु', 'लक्षधेनु', 'कोटिधेनु', 'गोमूत्रिकाधेनु' तथा 'कामधेनु' इन सात भेदों का विवेचन किया गया था।[4] किन्तु हिन्दी में इनमें से केवल 'कामधेनु' ही प्रचलित रहा। 'धेनु' के अन्यभेदों को हिन्दी के कवियों तथा आचार्यों ने ग्रहण नहीं किया। साथ ही 'कामधेनु का प्रयोग हिन्दी कवियों ने दो अर्थों में किया है। 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में 'कामधेनु' का तात्पर्य ऐसे छन्द से था जिससे अनेक प्रकार के छन्द निःसृत होते हों।[5] किन्तु हिन्दी में

---

१. काव्यालंकार, अध्याय ५, श्लोक १५—

"सेनालीली लीनानाली लीनाना नाना लीली ली।
नाली नालीने नालीना लीलीली नानानानाली॥"

यही श्लोक-न्यास और उद्धार दोनों का है।

२. काव्यालंकार, अ० ५, श्लोक १६, गजपद पाठ—

"ये नानाधीनावा धीरा नाधीवा राधीरा राजन।
किं नानाशं नाकं शं ते नाशंकन्ते ऽ शं तेजः॥"

३. चित्रचिन्द्रका, प्रकाश ५, पृ० ५५, छन्द २७
रुद्रट के रथपद का श्लोक—काव्यालंकार, अध्याय ५, श्लोक १४
इन दोनों का विवेचन प्रस्तुत अध्याय के अन्तर्गत आगे 'रथगति' शीर्षक के अन्तर्गत किया गया है।

४. स० कं०, परि २, वृत्ति में दिये गये श्लोक क्रमशः ३२७, ३२८, ३२९, ३३०, ३३१, ३२६ तथा ३३२, साथ ही कारिकाएँ क्रमशः १२९, १३०, १३१, १३२-३३, १३४-३५, १२८ तथा १३६-१४१

५. "पदग्राहाद्ययथाकामं कामधेनुरियं तु नः।
परार्धानां परार्धानि प्रसूते श्लोक तर्ण कान् ॥१३६॥
एकाक्षरादिछन्दोभिर्गतिबन्धादिभेदतः।
उक्तानुक्तानि चित्राणि सर्वाण्येषां प्रसूयते॥१३७॥ आदि

—स० कं०, परि २, कारिकाएँ

इसी प्रकार 'शतधेनु' तथा 'सहस्रधेनु' से सम्बद्ध कारिकाओं में यह अधिक स्पष्ट है—

"यतिविच्छेदिनी ह्येषा श्लोकधेनुरनुत्तमा।
छन्दोभेदाच्छतमियं प्रसूतेश्लोक तर्णकान्॥"

तथा— "पद विच्छेदिनी ह्येषा श्लोकधेनुरनुत्तमा।
छन्दोभेदद्दशशतीं प्रसूतेश्लोक तर्णकान्॥" उपरिवत्

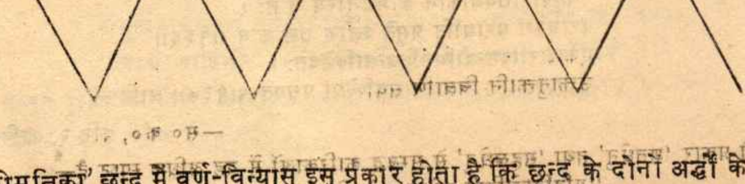
यह अर्थ तो रहा हो, साथ ही कुछ कवियों तथा आचार्यों ने 'कामधेनु' का अर्थ छन्दों के प्रकार से न लेकर छन्दों की संख्या से लिया। फलतः उनके द्वारा रचित 'कामधेनु' के छन्दों की विशेषता एक छन्द से कई छन्दों के (संख्या में) निःसृत होने में है। उदाहरणतः एक सवैया से ४८ या १०० या इसी प्रकार सवैये निःसृत होते हैं।

'सर्वतोभद्र' के भी जो दो रूप हिन्दी में प्राप्त होते हैं उनमें एक तो संस्कृत से ही गृहीत है, किन्तु दूसरा हिन्दी कवियों का अपना है। दूसरे रूप में 'सर्वतोभद्र' से कवियों का तात्पर्य ऐसे छन्द की रचना से है जिसका पाठ जहाँ से भी चाहे आरम्भ किया जाय (छन्द के मध्य से भी) छन्द पूर्ण ही उतरेगा। यहाँ यह आवश्यक नहीं है कि छन्द का रूप मूल ही रहे। फल यह होता है कि 'सर्वतोभद्र' के इस रूप में और 'कामधेनु' के छन्द में तत्त्वतः कोई अन्तर नहीं रह जाता, कारण 'कामधेनु' में भी जहाँ से चाहे आरम्भ करें तो मूल छन्द से एक अन्य छन्द निःसृत हो जाता है। संस्कृत में विवेचित 'सर्वतोभद्र' का तात्पर्य ऐसी छन्दरचना से था जिसका पाठ चतुरस्र चित्र में जहाँ से चाहे आरम्भ करने पर पुनः वही छन्द प्राप्त होता है।[1]

'सर्वतोभद्र' का यह रूप भी हिन्दी में गृहीत हुआ है। आगे हम हिन्दी में प्राप्त 'गति-चित्र' के इन भेदोपभेदों का अलग-अलग विवेचन करेंगे।

१. गोमूत्रिका

जैसा कि नाम से ही प्रकट है 'गोमूत्रिका' युक्त छन्दों में वर्ण का क्रम इस प्रकार रखा जाता है कि उससे गोमूत्र का चित्र उपस्थित हो जाता है। गाय अथवा बैल चलते में जब मूत्र त्यागता है तो वह सीधी रेखा में जमीन पर नहीं गिरता है वरन् उसका रूप लहरीदार रेखा के समान हो जाता है, जिसका रैखिक रूप बहुत कुछ निम्न होता है—



'गोमूत्रिका' छन्द में वर्ण-विन्यास इस प्रकार होता है कि छन्द के दोनों अर्द्धों के प्रत्येक युग्मवर्ण परस्पर समान होते हैं, फलतः प्रथमार्द्ध के अयुग्म वर्णों को उत्तरार्द्ध के युग्म वर्णों

१. द्रष्टव्य प्रस्तुत अध्याय, पृ० ३०१।

के साथ मिलाकर पढ़ने से भी छन्द का पाठ पूर्ण हो जाता है। पाठ के इस क्रम को यदि रेखाओं द्वारा दिखाया जाय तो चित्र का उपर्युक्त रूप हमें प्राप्त होगा।

आचार्य दण्डी ने गोमूत्रिका की निम्न परिभाषा दी है—

"वर्णानामेकरूपत्वं यत्त्वेकान्तरमर्धयो।
गोमूत्रिकेति तत् प्राहुर्दुष्करं तद्विदो यथा।"[1]

प्रस्तुत श्लोक में लक्षण से अधिक गोमूत्रिकायुक्त छन्द की रचना की ओर संकेत है। यानी किसी श्लोक के पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध को वर्णानुक्रम से ऊपर-नीचे लिखने को ही विद्वान गोमूत्रिका की संज्ञा देते हैं। भोजराज ने 'सरवस्तीकण्ठाभरण' में 'गोमूत्रिका' का जो लक्षण दिया है उससे इसके नाम के औचित्य पर अधिक प्रकाश पड़ता है—

"गतिरुच्चावचायत्र मार्गे मूत्रस्य गोरिव।
गोमूत्रिकेति तत्प्राहुर्दुष्करं चित्रवेदिनः॥"[2]

हिन्दी में काशिराज रचित 'चित्रचन्द्रिका' में दिये गये 'गोमूत्रिका' के लक्षण में छन्द की रचना तथा पाठविधि को अधिक स्पष्ट किया गया है—

"सूधी पंक्ति जुगल लिखो तिर्यक बाँचि सुजान।
सूधे तिर्यक शब्द इक गोमूत्रिका प्रमान॥"[3]

प्रस्तुत लक्षण के अनुसार 'गोमूत्रिकायुक्त' छन्द की दोनों पंक्तियों को ऊपर-नीचे ऋजुगति से लिखना चाहिये। पुनः उनका पाठ तिर्यकगति से करना चाहिये। गणित की रीति से इसे इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है—

मान लिया कि छन्द की दोनों पंक्तियों में १६-१६ वर्ण प्रयुक्त हुए हैं। छन्द की दोनों पंक्तियों को हम क्रमशः 'क' तथा 'ख' की संज्ञा से अभिहित करते हैं। अब प्रथम पंक्ति यानी 'क' के वर्ण हैं-$क_{१}$, $क_{२}$, $क_{3}$, $क_{४}$............$क_{१६}$ और इसी प्रकार दूसरी पंक्ति 'ख' के वर्ण होंगे-$ख_{१}$, $ख_{२}$, $ख_{3}$............$ख_{१६}$। लिखने में 'क' पंक्ति को ऊपर तथा 'ख' पंक्ति को 'क' के ठीक नीचे इस प्रकार लिखा जायगा कि 'ख' का प्रत्येक वर्ण क्रमशः 'क' के प्रत्येक वर्ण के नीचे रहे। इस प्रकार हम पायेंगे कि क्रमशः $क_{२}$-$ख_{२}$, $क_{४}$-$ख_{४}$, $क_{६}$-$ख_{६}$, $क_{८}$-$ख_{८}$, $क_{१०}$-$ख_{१०}$, $क_{१२}$-$ख_{१२}$, $क_{१४}$-$ख_{१४}$ तथा $क_{१६}$-$ख_{१६}$ समान वर्ण हैं। अब पाठ का क्रम निम्न होगा—

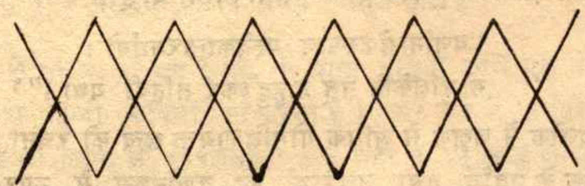
छन्द की प्रथम पंक्ति-$क_{१}$ $ख_{२}$ $क_{3}$ $ख_{४}$ $क_{५}$ $ख_{६}$ $क_{७}$ $ख_{८}$............$क_{१५}$ $ख_{१६}$

छन्द की दूसरी पंक्ति-$ख_{१}$ $क_{२}$ $ख_{3}$ $क_{४}$ $ख_{५}$ $क_{६}$ $ख_{७}$ $क_{८}$......$ख_{१५}$ $क_{१६}$

इन वर्णों को यदि हम रेखा के सहारे मिला देंगे तो गोमूत्र के आकार का उपर्युक्त चित्र

१. काव्यादर्श, परि ३, श्लोक ७८
२. स० कं०, परि २, कारिका १२७
३. चि० चं०, प्रकाश ६, छन्द १५, पृ० ६९

बनेगा। दोनो पंक्तियों के वर्णों को पाठविधि के अनुसार साथ ही मिलाने पर गोमूत्र के आकार की परस्पर काटती हुई दो लहरदार रेखाएँ बनेंगी और तब चित्र का रूप निम्न होगा —



आगे उदाहरण के सहारे इसे हम देखें—

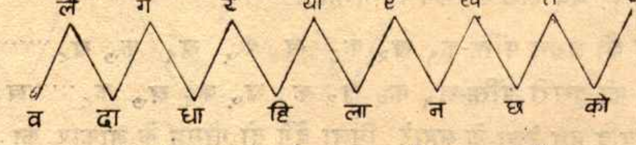
"भलै भाग मोरे पिया आए सुख हित भोर।
वलै दाग धारे हिया लाए नख छत कोर॥"[1]

प्रस्तुत दोहे में हम देखते हैं कि दोहे के दोनो अर्द्धों के प्रत्येक युग्मवर्ण समान हैं। यहाँ यदि पूर्वार्द्ध के विषमवर्णों को पाठ की विधि के अनुसार, उत्तरार्द्ध के युग्मवर्णों से मिलावें तथा उत्तरार्द्ध के विषमवर्णों को पूर्वार्द्ध के युग्मवर्णों के साथ, तो छन्द का रूप निम्न होगा—

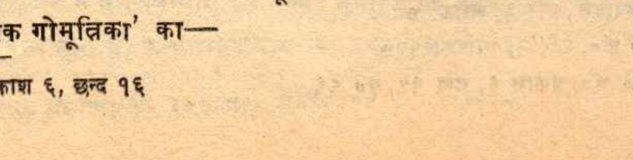
भ	लै	भा	ग	मो	रे	पि	या	आ	ए	सु	ख	हि	त	भो	र
व	लै	दा	ग	धा	रे	हि	या	ला	ए	न	ख	छ	त	को	र

इनमें केवल पूर्वार्द्ध अथवा उत्तरार्द्ध का पाठचित्र निम्न होगा—

पूर्वार्द्ध



उत्तरार्द्ध



संस्कृत में आचार्य दण्डी ने 'गोमूत्रिका' का केवल एक ही उदाहरण दिया है और वह है 'अर्धश्लोक गोमूत्रिका' का—

१. चि० च०, प्रकाश ६, छन्द १६

"मदनो मदिराक्षीणामपाङ्गास्त्रो जयेदयम् ।
मदेनो यदि तत्क्षीणमनङ्गायाञ्जलिंददे ॥"[१]

'सरस्वतीकण्ठाभरण' में भोजराज ने 'गोमूत्रिका' के, 'पादगोमूत्रिका' (युग्मत-अयुग्मत), 'अर्धश्लोक गोमूत्रिका', 'श्लोक गोमूत्रिका', 'विपरीत श्लोक गोमूत्रिका', 'भिन्नछन्द गोमूत्रिका' तथा 'भिन्नभाषाश्लोक गोमूत्रिका' ये छह भेद किये हैं तथा उनके उदाहरण दिये हैं ।[२] जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है एक श्लोक के प्रथम-द्वितीय तथा तृतीय-चतुर्थ पादों में यदि गोमूत्रिका है तो वह 'पाद गोमूत्रिका' कहलाती है । इसी में यदि प्रत्येक वर्ण स्वतन्त्र रूप में विषम और सम है तो 'अयुग्मत' और यदि विषम और समवर्ण युग्मों में हैं तो 'युग्मत पाद गोमूत्रिका' कहलायगी । 'अर्ध श्लोक गोमूत्रिका' में श्लोक के पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध में 'गोमूत्रिका' रहती है । 'श्लोक गोमूत्रिका' के अन्तर्गत दो विभिन्न श्लोक पूर्णतः 'गोमूत्रिका' से सम्बद्ध होते हैं । 'विपरीत श्लोक गोमूत्रिका' वहाँ होती है जहाँ एक ही श्लोक के अनुलोम और प्रतिलोम रूपों में 'गोमूत्रिका' की स्थिति होती है । 'भिन्न छन्द गोमूत्रिका' के द्वारा सम्बद्ध दो श्लोक विभिन्न वृत्तों में रचित होते हैं । इसी प्रकार जहाँ दो भाषाओं के श्लोक परस्पर 'गोमूत्रिका' पद्धति से सम्बद्ध होते हैं वहाँ 'भिन्न भाषा श्लोक गोमूत्रिका' होती है ।

हिन्दी में 'अर्धश्लोक गोमूत्रिका' को छोड़कर इनमें से अन्य कोई भी भेद गृहीत नहीं हुआ । हिन्दी के प्रथम आचार्य केशवदास ने निश्चितरूपेण दण्डी के अनुकरण पर 'गोमूत्रिका' की[३] रचना की और अन्य हिन्दी आचार्यों तथा कवियों ने इसमें केशवदास से ही प्रेरणा ग्रहण की । फलतः 'गोमूत्रिका' की रचना के लिये दोहा छन्द को ही सर्वाधिक उपयुक्त माना गया । हिन्दी में मिलने वाली गोमूत्रिकायुक्त प्रायः सारी रचनाएँ दोहे में ही हैं ।[४] केशव का छन्द निम्न है—

---

१. काव्यादर्श, परि ३, श्लोक ७९

२. स० कं०, परि २, वृत्ति के श्लोक क्रमशः ३१२-३१३, ३१४, ३१५-३१६, ३१७-३१८ ३१९-३२०, ३२१-३२२-३२३

३. केशवदास ने 'गोमूत्रिका' का जो छन्द दिया है वह दण्डी के श्लोक की पद्धति पर ही है । यदि उन्होंने भोजराज का अनुकरण किया होता तो 'गोमूत्रिका' के अन्य प्रकारों की रचना भी अवश्य करते । यों भी कविप्रिया में अधिकांश आधार उन्होंने आचार्य दण्डी का ही ग्रहण किया है । विशेष विवेचन के लिये द्रष्टव्य आचार्य केशवदास-लेखक हीरालाल दीक्षित ।

४. गोकुल कवि—चि० क०, पृ० ५६, ९४, ९५, ९६
राजामहिरामन सिंह—प्र० सा०, लहर १, छन्द ४, पृ० ३
उपरिवत्, लहर ६२, छन्द २, पृ० ५९३
केशवदास—क० प्रि०, प्रभाव १६, छन्द ७१
कुलपति मिश्र—रस रहस्य, पृ० ७७, छन्द ३८
पदुमनदास—काव्यमंजरी, पृ० १२०, छन्द १३
भिखारीदास—का० नि०, परि २१, छन्द ८५
जनराज—क० र० वि०, पत्रांक २९१, छन्द २६
जगत सिंह—चि० मी०, छन्द १४७—१४८
हरिकवि—कविवल्लभ, पृ० ११८, छन्द ३९
काशिराज—चि० चं०, प्रकाश ६, छन्द १६
सुन्दरदास—सु० ग्र०, पृ० ९६७-६८, छन्द ६-७

"इन्द्रजीत संगीत लै किये राम रस लीन।
छुद्रगीत संगीत लै भये काम बस दीन ।।"[१]

त्रिपदी चित्र

प्रस्तुत चित्ररचना का उल्लेख संस्कृत में नहीं मिलता। यद्यपि इसकी रचना 'गोमूत्रिका' के छन्दों में ही होती है, और इस प्रकार 'गोमूत्रिका छन्द' की ही एक विशेष पाठविधि को इस नाम से अभिहित किया गया है। फिर भी इस संज्ञा अथवा पाठविधि का निर्देश सर्वप्रथम हिन्दी के आचार्य केशवदास ने ही किया है।[२] जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है त्रिपदीयुक्त छन्द के चारों पादों का वर्णविन्यास इस प्रकार का होता है कि उन्हें तीन ही पादों में लिखा जा सकता है। निश्चित है कि इस न्यास में एक पाद उभयनिष्ठ होगा जिसका पाठ बाकी दोनों पादों के साथ किया जा सकेगा। 'त्रिपदी' के निम्न लक्षण भिखारीदास तथा काशिराज ने दिये हैं—

"मध्यवरन इक दुहुँ दलन, त्रिपदी जानहु सोइ।
वहै मन्त्रिगति अस्वगति, सुद्ध सु या हू दोई ।।"[३]

—भिखारीदास

"आदि पंक्ति के बरण मधि पंक्ति वरण मिलि बाँच।
ऐसे अंत्यरुमध्य मिलि त्रिपदी बंध सुसाँच ।।"[४]

—काशिराज

इन लक्षणों के अनुसार 'त्रिपदी' की तीन पंक्तियों में मध्य पंक्ति के वर्णों को प्रथम और तृतीय दोनों ही पंक्तियों के वर्णों के साथ मिलाकर पढ़ने से छन्द का उद्धार होता है। उदाहरण के लिए केशवदास रचित 'त्रिपदी' का छन्द निम्न है—

"रामदेव नरदेव गति परशुधरन मद धारि।
वामदेव गुरदेव गति पर कुधरन हद धारि ।।"[५]

'त्रिपदी चित्र' में प्रस्तुत दोहे का निम्न रूप होगा—

---

१. क० प्रि०, प्रभाव १६, छन्द ७१

२. क० प्रि०, प्रभाव १६, छन्द ७३ जो त्रिपदी का है उसके द्वारा तीन प्रकार के चित्र देकर ही कवि ने पाठविधि का निर्देश किया है। इसके लिए छन्द नहीं दिया गया है।

३. का० नि०, परि २१, छन्द ८३

४. चि० चं०, प्रकाश ६, छन्द १२, पृ० ६६

५. क० प्रि०, प्रभाव १६, छन्द ७३

त्रिपदीचित्र संख्या १

रा	दे	न	दे	ग	प	शु	र	म	धा
म	व	र	व	ति	र	ध	न	द	रि
वा	दे	गु	दे	ग	प	कु	र	ह	धा

प्रस्तुत 'त्रिपदी चित्र' की उपर्युक्त तीनों पंक्तियों को यदि हम क्रमशः 'क', 'ख' तथा 'ग' मान लें तो मध्य की पंक्ति यानी 'ख' पंक्ति का पाठ 'क' और 'ग' दोनों के साथ होगा। यहाँ 'क', 'ख', तथा 'ग', तीनों ही पंक्तियों में दस-दस कोष्ठक बने हैं और प्रत्येक कोष्ठक में एक-एक वर्ण लिखा गया है। इन कोष्ठकों की संज्ञा हम क$_{1}$ क$_{2}$ क$_{3}$ क$_{4}$... क$_{10}$, ख$_{1}$ ख$_{2}$ ख$_{3}$ ख$_{4}$...... ख$_{10}$ तथा ग$_{1}$ ग$_{2}$ ग$_{3}$ ग$_{4}$......ग$_{10}$ मान लेते हैं। अब इस चक्र से छन्द का उद्धार निम्न रूप में होगा—

क$_{1}$ ख$_{1}$ क$_{2}$ ख$_{2}$ क$_{3}$ ख$_{3}$ क$_{4}$ ख$_{4}$ ...... क$_{10}$ ख$_{10}$ ......छन्द क पूर्वार्द्ध।

ग$_{1}$ ख$_{1}$ ग$_{2}$ ख$_{2}$ ग$_{3}$ ख$_{3}$ ग$_{4}$ ख$_{4}$ ...... ग$_{10}$ ख$_{10}$ ...... छन्द का उत्तरार्द्ध।

पाठ में हम देखते हैं कि 'ख' पंक्ति के वर्ण ख$_{1}$ ख$_{2}$ ख$_{3}$ .... ख$_{10}$, 'क' के साथ भी पढ़े जाते हैं और 'ग' के साथ भी। अतः 'ख' पंक्ति दो पंक्तियों का कार्य करती है। इस प्रकार के 'त्रिपदी छन्द' का रहस्य यही है कि छन्द के दोनों अर्द्धों का प्रत्येक युग्मवर्ण समान होता है और उन्हें ही 'त्रिपदी' की मध्य पंक्ति के कोष्ठकों में लिखा जाता है। अत छन्द के दोनों अर्द्धों को यदि हम 'अ' तथा 'आ' की संज्ञा दें तो त्रिपदी की कोष्ठक-पंक्तियों में लिखे गये वर्णक्रम निम्न होंगे—

'क' पंक्ति ... अ$_{1}$ अ$_{3}$ अ$_{5}$ अ$_{7}$ .... अ$_{19}$।

'ग' पंक्ति ... आ$_{1}$ आ$_{3}$ आ$_{5}$ आ$_{7}$ .... आ$_{19}$।

अ$_{2}$-आ$_{2}$, अ$_{4}$-आ$_{4}$, अ$_{6}$-आ$_{6}$ ... . अ$_{20}$-आ$_{20}$ में से प्रत्येक युग्म में एक ही वर्ण हैं और इन्हीं की अवस्थिति 'त्रिपदी' की 'ख' पंक्ति में है। फलतः इनका पाठ दोनों अर्द्धों के साथ होता है।

हिन्दी के कवियों को 'त्रिपदी' की रचना बड़ी ही प्रिय रही है और 'चित्रकाव्य' के अधिकांश रचयिताओं ने इसकी रचना अवश्य की है।[1] केशवदास द्वारा रचित उपर्युक्त दोहे से उपर्युक्त चित्र के अतिरिक्त दो अन्य 'त्रिपदीचित्र' भी बन सकते हैं जो निम्न हैं—

---

१. गोकुल कवि, चित्र कलाधर.

राजा महिरामन सिंह ... प्रबीन सागर

केशवदास ... कविप्रिया — हरि कवि — कवि वल्लभ

पदुमन दास ... काव्य मंजरी — लछि राम — रावणेश्वर कल्पतरु

भिखारी दास ... काव्यनिर्णय — काशिराज — चित्र चन्द्रिका

जगत सिंह ... चित्र मीमांसा — रूप प्रधान — चित्र काव्य

त्रिपदी चित्र संख्या २

राम	वन	देव	तिप	शुध	नम	धा
दे	र	ग	र	र	द	रि
वाम	वगु	देव	तिप	कुध	नह	धा

प्रस्तुत चित्र की भी पाठविधि उपर्युक्त ही है यानी मध्य पंक्ति उभयनिष्ठ है। अन्तर केवल यह है कि जहाँ 'त्रिपदीचित्र' संख्या १ में 'क', 'ख', तथा 'ग' कोष्ठकपंक्तियों में प्रतिकोष्ठक एक-एक वर्ण लिखा गया था, वहाँ प्रस्तुत चित्र में 'क' तथा 'ग' में प्रतिकोष्ठक दो-दो वर्ण लिखे गये हैं, केवल 'ख' पंक्ति में ही प्रतिकोष्ठक एक-एक वर्ण लिखा गया है। इस प्रकार प्रस्तुत चित्र की कोष्ठकपंक्तियों में लिखे गये वर्णक्रम निम्न है—

(छन्द के पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध को क्रमशः 'अ' तथा 'आ' मान लेने पर)

'क' पंक्ति — $अ_{१}$ $अ_{२}$, $अ_{४}$ $अ_{५}$, $अ_{७}$ $अ_{८}$ ···· ···· ···· $अ_{१६}$ $अ_{१७}$ तथा $अ_{१९}$।

'ग' पंक्ति—$आ_{१}$ $आ_{२}$, $आ_{४}$ $आ_{५}$, $आ_{७}$ $आ_{८}$ ···· ···· $आ_{१६}$ $आ_{१७}$ तथा $आ_{१९}$

'ख' पंक्ति—$अ_{३}$, $अ_{६}$, $अ_{९}$ ···· ···· ···· ···· $अ_{१८}$ तथा $अ_{२०}$

अथवा

$आ_{३}$, $आ_{६}$, $आ_{९}$ ···· ···· ···· ···· $आ_{१८}$ तथा $आ_{२०}$

वर्णों के ये दोनों ही क्रम समान हैं।

प्रस्तुत छन्द से निर्मित होनेवाला 'त्रिपदी' का तीसरा चित्र निम्न है—

त्रिपदीचित्र संख्या ३

राम	नर	गति	शुध	मद
देव	देव	पर	रन	धारि
वाम	गुर	गति	कुध	हद

पाठविधि तो प्रस्तुत चित्र की भी उपर्युक्त अन्य चित्रों के समान ही है, अर्थात् यहाँ भी मध्य कोष्ठकपंक्ति में लिखित वर्ण उभयनिष्ठ हैं और उनका पाठ ऊपर तथा नीचे की कोष्ठकपंक्तियों के वर्णों के साथ होता है, अन्तर केवल यह है कि प्रस्तुत स्थल पर प्रति पंक्ति कोष्ठकों की संख्या केवल पांच है और प्रतिकोष्ठक दो-दो वर्ण लिखे गये हैं। फलतः छन्द के दोनों अर्द्धों को ऊपर की तरह ही क्रमशः 'अ' तथा 'आ' मान लेने पर उपर्युक्त चित्र के वर्णों का न्यास निम्न क्रम के अनुसार है—

'क' अर्थात् ऊपर की कोष्ठकपंक्ति—अ$_{१}$ अ$_{२}$, अ$_{५}$ अ$_{६}$, अ$_{९}$ अ$_{१०}$, अ$_{१३}$ अ$_{१४}$ तथा अ$_{१७}$ अ$_{१८}$

'ग' अर्थात् नीचे की कोष्ठकपंक्ति—आ$_{१}$ आ$_{२}$, आ$_{५}$ आ$_{६}$, आ$_{९}$ आ$_{१०}$ आ$_{१३}$ आ$_{१४}$ तथा आ$_{१७}$ आ$_{१८}$

'ख' अर्थात् मध्य की कोष्ठक पंक्ति—अ$_{३}$ अ$_{४}$, अ$_{७}$ अ$_{८}$, अ$_{११}$ अ$_{१२}$, अ$_{१५}$ अ$_{१६}$ तथा अ$_{१९}$ अ$_{२०}$

अथवा

आ$_{३}$ आ$_{४}$, आ$_{७}$ आ$_{८}$, आ$_{११}$ आ$_{१२}$, आ$_{१५}$ आ$_{१६}$ तथा आ$_{१९}$ आ$_{२०}$

(ये दोनों ही वर्णक्रम समान हैं कारण मध्य पंक्ति उभयनिष्ठ है)

केशवदास रचित उपर्युक्त दोहे के अतिरिक्त जनराज ने 'कवितारस विनोद' में तथा काशिराज ने 'चित्रचन्द्रिका' में 'त्रिपदी' के जिन छन्दों की रचना की है उनसे भी उपर्युक्त तीनों प्रकार के 'त्रिपदीचित्र' बन सकते हैं। इनके अतिरिक्त भिखारीदास प्रभृति कवियों द्वारा रचित छन्दों से केवल प्रथम 'त्रिपदी चक्र' का ही निर्माण किया जा सकता है। ये छन्द निम्न हैं—

"राम रसिक जग में भये सुरति धरत अनुकूल ।
स्याम रसिक जग में भये सुरत धरत बनफूल ॥[1]

—जनराज

"लला चारु चित चारु तिय पर मन रम अनुराग ।
कला चारु हित चारु हिय पर मन रम तनु राग ॥[2]

—काशिराज

१. कवितारस विनोद, पत्रांक २९१

२. चि० चं०, प्रकाश ६, छन्द १३, पृ० ६७

"दास चारु चित चाय मय, महै स्याम छबि लेखि ।
हास हारु हित पाय भय, रहै काम दबि देखि ॥"[१]

—भिखारीदास

उपर्युक्त चित्रों के अतिरिक्त काशिराज ने 'मध्यादि-मध्यान्त त्रिपदी' के नाम से एक अन्य प्रकार की 'त्रिपदी' का विवेचन किया है। प्रस्तुत 'त्रिपदी' तथा उपर्युक्त 'त्रिपदी' में अन्तर केवल यह है कि उपर्युक्त चित्रों में छन्द के दोनों अर्द्धों के उद्धार का आरम्भ जहाँ क्रमशः ऊपर तथा नीचे की कोष्ठकपंक्तियों के प्रथम कोष्ठक से होता है वहाँ प्रस्तुत चित्र में छन्द के दोनों अर्द्धों का उद्धार मध्यकोष्ठकपंक्ति के प्रथम कोष्ठक से आरम्भ होता है। मध्य कोष्ठकपंक्ति उर्युक्त चित्रों के समान ही प्रस्तुत चित्र में भी उभयनिष्ठ है। फलतः पूर्व छन्दों की रचना में जहाँ दोनों अर्द्धों के युग्मवर्णों को समान रखा गया था वहाँ प्रस्तुत चित्र में न्यस्त छन्द के दोनों अर्द्धों के अयुग्मवर्णों को समान रखा गया है। इस 'त्रिपदी' की रचना के सम्बन्ध में निम्न दोहे में काशिराज ने स्वयं संकेत दिया है—

"मध्य पंक्ति के वरण को आदि पंक्ति करुलीन ।
त्योहीं मध्यरुअंत पढ़ि त्रिपदी बंध प्रबीन ॥"[२]

चित्र में न्यस्त छन्द निम्न है—

"हार भार सोहै हिये रस तरसीलो वैस ।
हास भास सो तौ हिते रग तजसीलो वैस ॥"[३]

प्रस्तुत छन्द के न्यास की विधि भी अन्य चित्रों की तरह ही है, केवल प्रथम वर्ण को मध्य पंक्ति के कोष्ठक में लिखा जायगा। छन्द के दोनों अर्द्धों को पूर्व की तरह ही यदि 'अ' तथा 'आ' मान लें तो तीनों कोष्ठकपंक्तियों में लिखित वर्णों का क्रम निम्न होगा—

ऊपर की पंक्ति 'क'—अ$_{२}$, अ$_{४}$, अ$_{६}$, अ$_{८}$ ... . अ$_{१६}$ ।

नीचे की पंक्ति 'ग'—आ$_{२}$, आ$_{४}$, आ$_{६}$, आ$_{८}$ ... ... आ$_{१६}$ ।

मध्य की पंक्ति 'ख'—अ$_{१}$, अ$_{3}$, अ$_{५}$, अ$_{७}$ ... ... अ$_{१५}$ ।

अथवा

आ$_{१}$, आ$_{3}$, आ$_{५}$, आ$_{७}$ ... . आ$_{१५}$ ।

(ये दोनों ही वर्णक्रम समान हैं)

---

१. का० नि०, परि २१, छन्द ८४
२. चि० च०, प्रकाश ६, पृ० ७१, छन्द २१
३, उपरिवत्, छन्द २२

चित्र निम्न है—

र	र	है	ये	स	र	लो	स
हा	भा	सो	हि	र	त	सी	वै
स	स	तौ	ते	ग	ज	लो	स

इनके अतिरिक्त 'त्रिपदी' का कोई अन्य चित्र प्राप्त नहीं होता।

मन्त्रीगति

'गोमूत्रिका' तथा 'त्रिपदी' के छन्दों को ही 'मन्त्रीगति' के रूप में भी देखा गया है। 'मन्त्रीगति' से तात्पर्य शतरंज के खेल में वजीर अथवा मन्त्री की चाल से है। प्रस्तुत चित्र-रचना के अन्तर्गत छन्दविशेष का चित्र में इस प्रकार न्यास किया जाता है कि उद्धार के लिए पाठ की गति ठीक वही होती है जो शतरंज के खेल में मन्त्री की रहती है।[1] संस्कृत में इस नाम से कोई 'चित्ररचना' नहीं मिलती। हिन्दी में भी वस्तुतः 'मन्त्रीगति' का कोई अपना बिशिष्ट रूप देखने में नहीं आता। 'त्रिपदी' चित्र को ही कतिपय कवियों ने 'मन्त्रीगति' कहा है।[2] जिन कवियों अथवा आचार्यों ने 'त्रिपदी' और 'मन्त्रीगति' दोनों की रचना की है उन्होंने भी चित्र में कोई अन्तर नहीं रखा है।[3] छन्दरचना की तो एक ही विधि है ही। भिखारीदास ने 'मन्त्रीगति' के नामसे जो चित्र दिया है वह 'गोमूत्रिका' का चित्र है यद्यपि उसे 'त्रिपदी चक्र' में भी रखा जा सकता था।[4] इस प्रकार 'मन्त्रीगति' के अलग विवेचन का कोई औचित्य दीख नहीं पड़ता।

---

१. मन्त्रीगति की पाठविधि के सम्बन्ध में एक संकेत रूपप्रधान रचित चित्रकाव्य में प्राप्त होता है, किन्तु मन्त्रीगति के छन्दों तथा चित्रों से उसकी पुष्टि नहीं हो पाती। यह संकेत निम्न दोहे में है—

"मन्त्री की गति डेढ़ अस्व अढ़ाई गेह।
सतरंज के अनुमानजुत रचिये रुचि सो येह॥" १९॥

उदाहरण में कवि ने गोमूत्रिका का क्रम ही अपनाया है, फलतः डेढ़ घर चलने का कोई तात्पर्य स्पष्ट नहीं होता।]

२. भिखारीदास, काव्यनिर्णय, परि २१, छन्द ८५
पदुमन दास, का० मं०, पृ० १२०, छन्द १३
गोकुलकवि, चि० क०, पृ० ९६, चित्र संख्या ५० तथा ५१

३. भिखारीदास, का० नि०, परि २१
गोकुल कवि, चित्र कलाधर, पृ० ९६-९७

४. उपरिवत्

'त्रिपदी' अथवा 'मन्त्रीगति' के जो चित्र और उनमें छन्दों का जो न्यास प्राप्त होता है, उसीसे मिलता-जुलता चित्र 'गजपद' के नाम से रुद्रट के 'काव्यालंकार' में भी है।[1] हिन्दी में 'गजपद' अथवा 'गजगति' के नाम से किसी चित्र की रचना नहीं हुई है। रुद्रट का श्लोक तथा चित्र निम्न है—

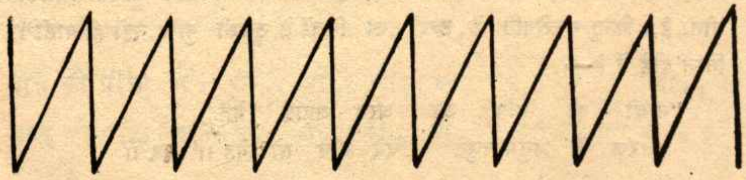
"ये नानाधीनावा धीरा नाधीवा राधीरा राजन्।
किं नाना शं नाकंशं ते नाशंकन्ते ऽशं तेजः॥"[2]

चित्र में इस श्लोक का न्यास निम्न रूप में किया गया है—

१	२	३	४	५	६	७	८
ये	ना	ना	धी	ना	वा	धी	रा
ना ९	धी १०	वा ११	रा १२	धी १३	रा १४	रा १५	जन् १६
किं	ना	ना	शं	ना	कं	शं	ते
ना	शं	कं	ते	शं	ते	ते	जः

[3]

यहाँ यदि हम प्रत्येक कोष्ठक में एक संख्या बिठा दें, जैसा कि चित्र में दिखाया गया है, तो श्लोक के पूर्वार्द्ध के उद्धार का क्रम—१, ९, २, १०, ३, ११, ४, १२, ५ १३, ६, १४, ७, १५, ८, १६ होगा, अर्थात् इन संख्याओं वाले कोष्ठकों में लिखे वर्णों को इसी क्रम से पढ़ने पर श्लोक के पूर्वार्द्ध का उद्धार होगा। उत्तरार्द्ध के उद्धार के लिये भी कोष्ठक की अन्य दोनों पंक्तियों में लिखे वर्णों के पाठ का यही क्रम होगा। यदि इस उद्धारविधि को रैखिक रूप दिया जाय तो वह निम्न होगा—



हिन्दी में वर्णित 'त्रिपदी' अथवा 'मन्त्रीगति' के न्यास से इस न्यास में एक स्पष्ट अन्तर यह है कि 'त्रिपदी' अथवा 'मन्त्रीगति' में जहाँ कोष्ठकों की केवल तीन पंक्तियाँ होती

१. काव्यालंकार, अ० ५, श्लोक १६

२. उपरिवत्

३. उपरिवत्, नमिसाधु की टिप्पणी के साथ, काव्यमाला २, तृतीय संस्करण, १९२८ ई० में प्रकाशित।

हैं वहाँ प्रस्तुत 'गजपद चित्र' में चार पंक्तियाँ हैं। तीन कोष्ठक पंक्तियाँ होने के कारण 'मन्त्रीगति' में, मध्यपंक्ति के वर्ण पाठ में उभयनिष्ठ होते हैं फलतः पाठ की गति आदि पंक्ति के साथ (छन्द के पूर्वार्द्ध में) तो ऊपर से नीचे की ओर रहती है, जबकि तीसरी पंक्ति के साथ अर्थात् छन्द के उत्तरार्द्ध के उद्धार में नीचे से ऊपर को हो जाती है। 'गजपद' में पाठ की विधि दोनों श्लोकार्द्धों के उद्धार में ऊपर से नीचे ही है। 'मन्त्रीगति' अथवा 'त्रिपदी' से 'गजपद' में एक और अन्तर यह है कि 'गजपद' के न्यास में जहाँ कोष्ठक की चारों पंक्तियों में क्रमशः श्लोक के चारों पाद लिखे गये हैं, वहाँ 'मन्त्रीगति' में प्रथम कोष्ठकपंक्ति में छन्द के पूर्वार्द्ध के सारे अयुग्मवर्ण तथा द्वितीय पंक्ति में सारे युग्मवर्ण लिखे जाते हैं। यही क्रम उत्तरार्द्ध के न्यास का भी है। इन कतिपय भिन्नताओं के कारण रुद्रट द्वारा विवेचित 'गजपद' से 'मन्त्रीगति' का केवल बाह्य साम्य ही रह जाता है। उदाहरण के लिये गोकुलकवि द्वारा रचित 'मन्त्रीगति चित्र' का छन्द और न्यास निम्न है—

"भूपदिगविजै, सिघ के मंत्री है मतिवान।
रूपभाग राजै सुघर मन्त्रे है निति ध्यान॥"[1]

न्यास—

भू	दि	वि	सिं	के	त्री	म	वा
प	ग	जै	घ	मं	है	ति	न
रू	भा	रा	सु	र	त्रे	नि	ध्या

चित्र से स्पष्ट है कि प्रस्तुत चित्र और 'त्रिपदी' में कोई अन्तर नहीं है। इसके अतिरिक्त भिखारीदास के 'काव्यनिर्णय' में 'मन्त्रीगति' का जो चित्र प्राप्त होता है उसमें 'त्रिपदी' के बदले 'गोमूत्रिका' से अभिन्नता दीख पड़ती है। किसी भी दशा में 'मन्त्रीगति चित्र' के स्वतन्त्र अस्तित्व का कोई औचित्य प्रमाणित नहीं होता।

रथगति

हिन्दी में 'रथगति' का उल्लेख केवल काशिराज ने किया है,[2] किन्तु उन्होंने 'रथगति' के नाम से जो छन्द तथा न्यास दिया है उसमें कुछ ऐसा दीख नहीं पड़ता जिस कारण उसे इस नाम से अभिहित किया जाय। इस छन्द में चित्रत्व है अवश्य पर वह 'अश्वगति' की दृष्टि से है न कि अन्य किसी दृष्टि से। संस्कृत में रुद्रट ने 'रथपद' का श्लोक तथा न्यास दिया है।[3] साथ ही 'अग्निपुराण' में भी 'रथपद' का उल्लेख मिलता है।[4]

१. चित्रकलाधर, पृ० ९६, चित्र संख्या ५०

२. चि० चं०, प्रकाश ५, पृ० ५५, छन्द २७

३. काव्यालंकार, अ० ५, श्लोक १४

४. अ० ३४३, श्लोक ६५—"पदं रथस्य नागस्य पुष्करिण्यसिपुत्रिका।
एते बन्धास्तथा चान्ये एवं ज्ञेया स्वयं बुधैः॥"

इनके अतिरिक्त विनयविजय गणि के 'आनन्द लेख'[1] तथा कुलमण्डन सूरि के 'वीर जिनस्तव'[2] में भी 'रथपद' के श्लोक मिलते हैं। इन श्लोकों की रचनाविधि से काशिराज के छन्द का कोई साम्य नहीं दीखता। उदाहरण के लिये रुद्रट रचित 'रथपद' का श्लोक द्रष्टव्य है—

"इतीक्षिता सुरैश्चक्रे यायमा मम मायया।
महिषं पातु वो गौरी सायतासि सितायसा ॥"[3]

प्रस्तुत श्लोक की विशेषता यह है कि द्वितीय तथा चतुर्थ पादों की रचना अनुलोम-प्रतिलोम विधि से की गई है। फलतः 'रथपद चक्र' में पाठ की गति प्रथम पाद में बायें से दायें तथा द्वितीय पाद में दायें से बायें होगी। तृतीय और चतुर्थ पादों की पाठगति भी क्रमशः यही होगी।

इ	ती	क्षि	ता	सु	रै	श्च	क्रे
या	य	मा	म	म	मा	य	या
म	हि	षं	पा	तु	वो	गौ	री
सा	य	ता	सि	सि	ता	य	सा

संस्कृत में प्राप्त 'रथपद' के अन्य श्लोकों की रचनापद्धति भी यही है।

काशिराज द्वारा रचित 'रथगति' के छन्द का न तो वर्णविन्यास ही और न चित्र ही उपर्युक्त श्लोक से साम्य रखता है। कहा जा चुका है कि काशिराज प्रदत्त उक्त चित्र की सार्थकता 'अश्वगति' चित्र की दृष्टि से है। 'रथगति' को सम्भवतः काशिराज समझ नहीं सके। यही कारण है कि 'रथगति' और 'अश्वगति' को उन्होंने एक प्रकार से अभिन्न मान लिया है। काशिराज द्वारा रचित छन्द निम्न है—

"सुन चनि नत नर सुन तय खल कन।
वच लज सक तज पर सुरु मल पन।

---

१. "जघानयोऽघ मन्हाय तममानं नमाम तम्।
तथा यस्य मतिः कान्ता शावरागगरावशा ॥" १-२२

२. "तविषे लसत्य मोहाशय ! चारुरुचायशः
शक्राली त्वन्नतेर्ज्ञानि भासुराल्प परा सुभीः (भा)" ॥१३॥
प्रस्तुत दोनों ही श्लोक बम्बई यूनिवर्सीटी जरनल, आर्ट न० ३० में प्रकाशित प्रो० हीरालाल कपाडिया द्वारा अपने निबन्ध 'इलस्ट्रेशन्स ऑफ लेट्टर डायग्राम' में उद्धृत किये गये हैं।

३. काव्यालंकार, अ० ५, श्लोक १४

वसु दव नव नर सुप सल सल वन ।
लज रत निकसत सिज तस मिडियन ।[1]

हिन्दी में अन्यत्र कहीं भी 'रथपद' अथवा 'रथगति' का उल्लेख नहीं मिलता । इस प्रकार 'रथगति' की रचना वस्तुत: हिन्दी में नहीं हुई है ।

अश्वगति

हिन्दी के कतिपय सर्वाधिक प्रिय गतिचित्रों में 'अश्वगति' का स्थान भी है। 'अश्वगति' चित्र की एक सुदीर्घ परम्परा है जिसका निर्वाह हिन्दी के कवियों और आचार्यों ने भी किया है । संस्कृत में इस चित्ररचना का सर्वप्रथम विवेचन हमें रुद्रट के 'काव्यालंकार' में प्राप्त होता है ।[2] अश्वगति से तात्पर्य शतरंज के खेल में अपनाये जानेवाले घोड़े की गति से है । प्रसिद्ध है कि शतरंज का घोड़ा एक विचित्र गति से प्रत्येक चाल में ढाई घर (कोष्ठक) आगे चलता है । चित्र में न्यस्त 'अश्वगति' के छन्द के उद्धार की पाठविधि भी यही हैं । यही कारण है कि प्रस्तुत छन्द को यह संज्ञा मिली है । रुद्रट ने इसे 'तुरङ्गपद' कहा है और इसका निम्न श्लोक दिया है—

"सेना लीली लीना नाली लीनाना नाना लीलीली ।
नालीनालीले नालीना लीलीली नानानानाली ॥"[3]

प्रस्तुत श्लोक की विशेषता यह है कि 'तुरगपद' का उदाहरण होने के साथ ही यह 'त्रिस्वर' तथा 'त्र्यक्षर' का भी प्रतिनिधित्व करता है । 'तुरगपद' अथवा 'अश्वगति' चक्र में छन्द का न्यास निम्नरूप में है—

१ से	२ ना	३ ली	४ ली	५ ली	६ ना	७ ना	८ ली
९ ली	१० ना	११ ना	१२ ना	१३ ना	१४ ली	१५ ली	१६ ली
१७ ना	१८ ली	१९ ना	२० ली	२१ ले	२२ ना	२३ ली	२४ ना
२५ ली	२६ ली	२७ ली	२८ ना	२९ ना	३० ना	३१ ना	३२ ली

चित्र को देखने से यह स्पष्ट है कि चार कोष्ठकपंक्तियों वाले चित्र में प्रति कोष्ठक-पंक्ति बाये से दायें श्लोक के प्रतिपाद के वर्णों को प्रतिकोष्ठक प्रतिवर्ण की रीति से लिखा

१. चि० चं०, प्रकाश ५, पृ० ५५ छन्द २७
२. काव्यालंकार, अ० ५, श्लोक १५
३. उपरिवत्

गया है। चित्र की विशेषता श्लोक के उद्धार में है। उद्धार को समझने के लिये चित्र में प्रत्येक कोष्ठक की संख्या निश्चित कर दी गई है। अब कोष्ठक १ से आरम्भ करें और शतरंज के घोड़े की चाल से आगे बढ़ते हुए कोष्ठकों में लिखे वर्णों का पाठ करें, इस प्रकार हमें श्लोक के पूर्वार्द्ध की प्राप्ति होगी। इस गति से पढ़ने पर कोष्ठकों का क्रम निम्न होगा—

१, ११, ५, १५, ३२, २२, २८, १८, ३, १३, ७, २४, ३०, २०, २६ तथा ९

उपर्युक्त संख्यावाले कोष्ठकों में लिखित वर्णों को पढ़ने से श्लोक का पूर्वार्द्ध निःसृत होता है। इन कोष्ठकों में प्रत्येक की स्थिति अपने पूर्व के कोष्ठक से ढाई कोष्ठकों पर है। ढाई का तात्पर्य शतरंज में दो कोष्ठक आगे और तीसरा दूसरे के पार्श्व में होता है।

रुद्रट द्वारा रचित इस चित्र की प्रस्तुत उद्धारविधि में दो घोड़ों का स्थान रखा गया है, अर्थात् श्लोक के दोनों अर्द्धों का उद्धार स्वतन्त्र रूप से होता है। वे परस्पर सम्बद्ध नहीं है। दोनों ही अर्द्धों के उद्धार का आरम्भस्थल भी भिन्न है। उपर्युक्त कोष्ठकक्रम केवल पूर्वार्द्ध के उद्धार का है, उत्तरार्द्ध के उद्धार का कोष्ठकक्रम निम्न है—

१०, २५, १९, ४, २१, ३१, १६, ६, २३, ८, १४, २९, १२, २, १७ तथा २७

किन्तु यदि एक ही बार कोष्ठक संख्या १ से आरम्भ कर सम्पूर्ण छन्द का उद्धार करना चाहें तो वह भी सम्भव है। ऐसी स्थिति में श्लोक के उत्तरार्द्ध के उद्धार का कोष्ठक-क्रम उपर्युक्त कोष्ठकक्रम से किंचित भिन्न होगा। पाठगति के सातत्य को बनाये रखते हुए सम्पूर्ण श्लोक के उद्धार का कोष्ठकक्रम निम्न होगा[1]—

१, ११, ५, १५, ३२, २२, २८, १८, ३, १३, ७, २४, ३०, २०, २६, ९, १९, २५, १०, ४, २१, ६, १६, ३१, १४, ८, २३, २९, १२, २, १७ तथा २७[1]।

---

१. अमरचन्द्र ने 'काव्यकल्पलता वृत्ति' में 'अश्वगति' छन्द की पाठविधि को बताने के लिये निम्न श्लोक दिया है—

"श्री त्रिशन्नवविंशतित्रयजिनश्रीकण्ठषड्विंशती—
न्दूनाविंशतियुग्मपौषदशभावेकत्रयोविंशतिः।
सत्रिशद्विपसत्कलाभुवनतत्षड्वर्ग वर्णा शुभ—
त्सेनापक्षसुलक्षणःस्वर सभासार्कद्विविंशाः शराः॥"

—प्रतान ३, स्तवक ५, पृ० ९७

प्रस्तुत श्लोक के अनुसार एक अन्य वर्णक्रम आता है जो निम्न है—

१, ३०, ९, २०, ३, २४, ११, २६, १६, १९, २, २९, १०, २७, ४, २३, ३१, ८, १७, १४, २१, ६, २५ १२, १८, १५, ३२, ७, २८, १३, २२ तथा ५।

वर्ण का प्रस्तुत क्रम रुद्रट के प्रस्तुत श्लोक को ध्यान में रखकर ही निचित किया गया है कारण इसके अनुसार सम्पूर्ण छन्द में केवल चार वर्णों का ही प्रयोग होगा जिनमें वर्णसंख्या १ और २१ स्वतन्त्र होंगे तथा निम्न संख्याओंवाले सभी वर्ण समान होंगे—

२, ६, ७, १०, ११, १२, १३, १७, १९, २२, २४, २८, २९, ३० तथा ३१।

पुनः ३, ४, ५, ८, ९, १४, १५, १६, १८, २०, २३, २५, २६, २७ तथा ३२

प्रस्तुत श्लोक का वर्णविन्यास भी यही है।

हिन्दी में सर्वप्रथम आचार्य केशवदास ने 'अश्वगति' चित्र की रचना की है। उनका छन्द है—

"इंद्रजीत संगीत लै किये राम रस लीन।
क्षुद्र गीत संगीत लै भये काम बस दीन॥"[1]

चित्र में प्रस्तुत छन्द का न्यास भी उपर्युक्त विधि से ही होगा—

१ इं	२ द्र	३ जी	४ त	५ सं	६ गी	७ त	८ लै
९ कि	१० ये	११ रा	१२ म	१३ र	१४ स	१५ ली	१६ न
१७ क्षु	१८ द्र	१९ गी	२० त	२१ सं	२२ गी	२३ त	२४ लै
२५ भ	२६ ये	२७ का	२८ म	२९ ब	३० स	३१ दी	३२ न

उद्धार के लिये यहाँ भी रुद्रट के चित्र की विधि ही अपनाई जायगी और उसके अनुसार सम्पूर्ण छन्द के उद्धार का कोष्ठकक्रम निम्न होगा—

१, १८, ३, २०, ५, २२, ७, २४, ९, २६, ११, २८, १३, ३०, १५, ३२, १७, २, १९, ४, २१, ६, २३, ८, २५, १०, २७, १२, २९, १४, ३१ तथा १६।

ध्यान से देखने पर प्रस्तुत संख्याओं में भी एक निश्चित क्रम दीख पड़ता है। इस क्रम में किसी भी संख्या तथा उसके आगे की तृतीय संख्या का अन्तर 'दो' है। फलतः कोष्ठकों का भी एक क्रम सामने आ जाता है। वह क्रम है प्रथम कोष्ठकपंक्ति के हर तीसरे कोष्ठक के वर्णों के बीच-बीच में तृतीय कोष्ठकपंक्ति के हर दूसरे कोष्ठक के वर्णों का समावेश। यही क्रम चारों कोष्ठकपंक्तियों में है। रुद्रट द्वारा प्रस्तुत किये गये उपर्युक्त श्लोक के उद्धार के कोष्ठकक्रमों में, इस प्रकार का कोई निश्चित क्रम नहीं दीख पड़ता। इसका कारण यह है कि केशव आदि हिन्दी के कवियों ने 'अश्वगति' के हेतु अलग से किसी छन्द की रचना नहीं की है, वरन् 'गोमूत्रिका' अथवा 'त्रिपदी' के उदाहरणस्वरूप रचित छन्दों को ही 'अश्वगति चक्र' में भी बिठा दिया है। चूँकि 'गोमूत्रिका' में छन्द के दोनों अर्द्धों के युग्माक्षर एक ही होते हैं अतः उपर्युक्त चक्र में ढाई कोष्ठक आगे बढ़ने पर उपर्युक्त

---

१. क० प्रि०, प्रभाव १६, छन्द ७१

निश्चित क्रम सामने आ जाता है। रुद्रट अथवा संस्कृत के अन्य कवियों द्वारा रचित 'अश्वगति' के श्लोक की विशेषता यह है कि उनकी रचना केवल इसी दृष्टि से हुई है, फलतः 'गोमूत्रिका' का क्रम वहाँ नहीं है। हिन्दी छन्दों में 'गोमूत्रिकाक्रम' होने के कारण 'अश्वगति' की दृष्टि से वह उत्कृष्टता हमें प्राप्त नहीं होती जो संस्कृत श्लोकों में होती है।

अश्वगति चित्र—दूसरा प्रकार

'सरस्वतीकण्ठाभरण' में 'तुरङ्गपद' चक्र का एक दूसरा रूप भी प्राप्त होता है।[१] ऊपर के चित्र में जिन श्लोकों अथवा छन्दों का न्यास किया जाता है, उद्धार भी उन्हीं श्लोकों अथवा छन्दों का होता है। किन्तु 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में विवेचित 'तुरङ्गपद' के इस दूसरे रूप में चित्र में न्यास जिस श्लोक का किया जाता है, 'अश्वगति' विधि से उद्धार में अन्य श्लोक प्राप्त होता है। हिन्दी में काशिराज ने 'चित्रचन्द्रिका' में 'सरस्वतीकण्ठाभरण' के अनुकरण पर इस प्रकार की रचना की है।[२] उन्होंने चित्र में न्यास किये जानेवाले छन्द को 'रथगति' की संज्ञा दे दी है, जिसका कोई औचित्य प्रमाणित नहीं होता। कण्ठाभरणकार ने 'तुरङ्गपद' के न्यास तथा पाठविधि के संकेत निम्न श्लोक में दिये हैं—

"क्रमात्पदचतुष्केऽस्य पंक्तिशः परिलेखिते।
तुरङ्गपद यातेन श्लोकोऽन्य उपजायते॥"[३]

न्यास का श्लोक निम्न है—

"बाला सुकालबाला का कान्तिलालकलालिता।
सस्वा सुतवती सा:रा दर्पिका व्रत गधित॥"[४]

१ बा	३० ला	९ सु	२० का	३ ल	२४ बा	११ ला	२६ का
१६ का	१९ न्ति	२ ला	२९ ल	१० क	२७ ला	४ लि	२३ ता
३१ स	८ स्वा	१७ सु	१४ त	२१ व	६ ती	२५ सा	१२ रा
१८ द	१५ र्पि	३२ का	७ व्र	२८ त	१३ ग	२२ र्धि	५ त

१. स० कं०, परि २, वृत्ति की श्लोकसंख्या ३०६, ३०७, ३०८

२. चि० चं०, प्रकाश ५, पृ० ५५, छन्द २७

३. स० कं०, परि २, वृत्ति, श्लोक ३०७

४. उपरिवत्, श्लोक ३०६

उपर्युक्त चित्र में कोष्ठकों में दी गई संख्याएँ 'अश्वगति पाठ' का संकेत करती हैं। इन संख्याओं के अनुकूल पाठ करने पर निम्न श्लोक का उद्धार प्रस्तुत चित्र से होता है—

"बाला ललित तीव्रस्वा सु कलारागतर्पिका।
सुदन्तिका वर्धितावासा कालातल लासका॥"[1]

चित्रचन्द्रिकाकार ने भी भोजराज के समान ही 'अश्वगति' का निम्न लक्षण दिया है—

"ढाई ढाई घरन सों अक्षर लीजै बाँचि।
जहाँ छंद दूजो बने सो हयगति है साँचि॥"[2]

प्रस्तुत लक्षण से यह स्पष्ट है कि काशिराज वहीं 'अश्वगति' की अवस्थिति मानते हैं जहाँ चित्र से अन्य छन्द का उद्धार होता है। 'चित्रचन्द्रिका' में केशवदास आदि द्वारा विवेचित 'अश्वगति' का कोई ऐसा उदाहरण नहीं है जहाँ न्यास और उद्धार दोनों के लिये एक ही छन्द होता है। काशिराज द्वारा रचित न्यास का छन्द निम्न है—

"सुनचनि नत नर सुनतय खल कन।
वच लज सक तज पर सुरु मलपन।
वसुदव नवनर सुयसलसलवन।
लजरत निकसत सिजतस मिडियन॥"[3]

चित्र निम्न है—

सु१	न३०	च९	नि२०	न३	त२४	न११	र२६
सु१६	न१९	त२	य२९	ख१०	ल२७	क४	न२३
व३१	च८	ल१७	ज१४	स२१	क६	त२५	ज१२
प१८	र१५	सु३२	रु७	म२८	ल१३	प२२	न५
व३३	सु६४	द४१	व५२	न३५	व५६	न४३	र५८
सु४८	य५१	स३४	ल६१	स४२	ल५९	व३६	न५५
ल६३	ज४०	र४९	त४६	नि५३	क३८	स५७	त४४
सि५०	ज४७	त६२	स३९	मि६०	डि४५	य५४	न३७

न्यास में छन्द को प्रस्तुत चित्र की आठों कोष्ठकपंक्तियों में ऋजुगति से लिखा गया है। उद्धार के लिये ढ़ाई-ढ़ाई कोष्ठकों का अन्तर देकर वर्णों का पाठ करते जाने **पर**

१. सरस्वती कण्ठाभरण, परि २, वृत्ति श्लोक ३०८
२. चि० चं०, प्रकाश ५, पृ० ५५, छन्द २६
३. उपरिवत्, छन्द २७

'अश्वगति' का दूसरा छन्द निःसृत होता है। कोष्ठकों में लिखी गई संख्यायें उद्धारक्रम का संकेत करती हैं। इस प्रकार हमें निम्न छन्द प्राप्त होता है—

"सुतन कनक रुच चखन जलज रसु।
लपन निसप नत तरल मयन वसु॥
वसन वनक सज दसन तड़ित जसु।
रसिय वनिय नव सरल मिलत लसु॥"[1]

'अश्वगति चित्र' का यह रूप हिन्दी में 'चित्रचन्द्रिका' के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं प्राप्त नहीं होता। अन्य सभी कवियों ने केशवदास के अनुकरण पर ही 'अश्वगति' छन्द की रचना की है।[2] यह स्पष्ट किया जा चुका है कि हिन्दी कवियों ने बहुधा 'गोमूत्रिका' के लिये रचित छन्द को ही 'अश्वगति चक्र' में भी बिठा दिया है। दोनों अर्द्धों के युग्मवर्णों के परस्पर अभिन्न होने के कारण 'गोमूत्रिका युक्त' छन्द को 'त्रिपदी' अथवा 'अश्वगति' में तो बिठाया ही जा सकता है अतः यहाँ कवि की अपनी कोई विशेषता नहीं रह जाती। चित्र की दृष्टि से 'अश्वगति' के छन्द का महत्त्व तो तब है जब उसकी रचना केवल इसीलिये की गई हो। 'गोमूत्रिका' के छन्द को ही 'अश्वगतिचक्र' में भी बिठा देना चित्ररचना की दृष्टि से कविविशेष की असमर्थता तथा दैन्य का सूचक है। इस दृष्टि से काशिराज की उक्त रचना का विशेष महत्त्व है जिसमें से बिलकुल अन्य छन्द निःसृत होता है तथा जिसकी रचना केवल 'अश्वगति' के लिये ही की गई है।

सर्वतोभद्र

संस्कृत में अधिकांश आचार्यों ने 'सर्वतोभद्र' तथा 'अर्धभ्रम' का विवेचन किया है। संस्कृत साहित्य में प्राप्त तथा काव्यशास्त्र में विवेचित प्राचीनतम 'दुष्कर' अथवा चित्र-रचनाओं में इन दोनों का स्थान है। दण्डी, रुद्रट, अग्निपुराणकार, भोज, हेमचन्द्र[3] आदि सभी

---

१. चि० चं०, प्रकाश ५, छन्द २८

२. गोकुल कवि, चि० क०, पृ० ९४ तथा ९६
राजा म० सिह०, प्र० सा०, लहर १, पृ० ३, छन्द ४
उपरिवत्, लहर ६२, छन्द २
पदुमनदास, का० म०, पृ० १२०, छन्द १३
भिखारीदास, का० नि०, परि २१, छन्द ८५
जनराज, क० र० वि०, पत्रांक २९१, छन्द २६
जगतसिंह, चित्रकाव्य, छन्द १४७-१४८
हरिकवि, कविवल्लभ, पृ० ११८, छन्द ३९
रूपप्रधान, चित्रकाव्य, छन्द २०

३. काव्यादर्श, ३-८०
काव्यालंकार, ५-२०
अग्निपुराण, ३४३-४०
स० कं०, परि २, कारिका ११०
काव्यानुशासन, विवेक, उदाहरण का श्लोक ४८९

प्राचीन आचार्यों ने चित्रकाव्य के अन्तर्गत इन रचनाओं का विवेचन किया है। इसी प्रकार 'शिशुपालवध', 'किरातार्जुनीय' तथा 'देवीशतक'[1] जैसे प्राचीन संस्कृत काव्यों में भी ये रचनाएँ प्राप्त होती हैं। चित्रकाव्य के प्राचीनतम विवेचक दण्डी ने इनका लक्षण निम्न श्लोक में दिया है—

"प्राहुरर्धभ्रमं नाम श्लोकार्धभ्रमणंयदि ।
तदिष्टं सर्वतोभद्रं भ्रमणं यदि सर्वतः ।।"[2]

रुद्रट ने केवल उदाहरण के श्लोक दिये हैं, कोई लक्षण नहीं दिया। इसके विपरीत 'अग्निपुराण' में केवल लक्षण ही है, उदाहरण 'अग्निपुराण' में कहीं भी नहीं है—

"अर्धाभ्यामर्धपादैश्च कुर्याद्विन्यासमेतयोः ।
न्यस्तानामिह वर्णानामधोधःक्रमभागिनाम् ।
अधोधः स्थित वर्णानां यावत्तुर्यपद नयेत् ।
तुर्यपादान्नयेदूर्ध्वं पादार्धप्र (प्रा) तिलोम्यतः ।।"[3]

भोजराज ने 'अर्धभ्रम' तथा 'सर्वतोभद्र' का जो लक्षण दिया है वह दण्डी का ही है केवल कतिपय शब्दों के क्रम में परिवर्तन कर दिया गया है, अन्यथा दोनों ही श्लोक अभिन्न हैं—

"आहुरर्धभ्रमं नाम श्लोकार्ध भ्रमणं यदि ।
तदिष्टं सर्वतोभद्रं सर्वतोभ्रमणं यदि ।।"[4]

उपर्युक्त लक्षणों के अनुसार 'सर्वतोभद्र' चित्र में न्यस्त छन्द को चाहे हम जिधर से पढ़ें छन्द का पूर्ण उद्धार हो जायगा। 'सर्वतोभद्र' का अर्थ ही होता है वह गति जो सर्वत्र भ्रमण करे। न्यास के लिये एक चतुरस्र चित्र में, जिसमें कोष्ठकों की चार पंक्तियाँ होती हैं, ऋजुगति से प्रतिकोष्ठक एकवर्ण की रीति से सम्पूर्ण छन्द को लिखा जाता है। इस प्रकार चित्र में न्यस्त छन्द को चाहे हम जहाँ से पढ़ना शुरु करें सम्पूर्ण छन्द का उद्धार हो जायगा। उदाहरणार्थ हम दण्डी द्वारा दिये गये श्लोक और चित्र में उसके न्यास को लें। श्लोक है—

"सामायामा मायामासा मारानाया यानारामा ।
याना वारा रावानाया मायारामा मारायामा ।।"[5]

---

१. शि० पा० व०, १९-२७
   किरात, १५-२५
   दे० श०, श्लोक २५
२. का० द०, ३-८०
३. अ० ३४३, श्लोक ३९-४०
४. स० कं०, परि २, कारिका ११०
५. काव्यादर्श, ३-८२

चित्र में निम्न रूप में इसका न्यास होगा—

सा	मा	या	मा	मा	या	मा	सा
मा	रा	ना	या	या	ना	रा	मा
या	ना	वा	रा	रा	वा	ना	या
मा	या	रा	मा	मा	रा	या	मा
मा	या	रा	मा	मा	रा	या	मा
या	ना	वा	रा	रा	वा	ना	या
मा	रा	ना	या	या	ना	रा	मा
सा	मा	या	मा	मा	या	मा	सा

प्रस्तुत चित्र में हम जिस स्थान से पाठ प्रारम्भ करें, छन्द की पूर्ति हो जायगी। चतुरस्र के चारों कोनों में से कहीं से पाठ आरम्भ किया जा सकता है, तथा पाठ की गति-दिशा भी इच्छानुसार ऊपर-नीचे अथवा दायें-बायें रखी जा सकती है। प्रत्येक स्थिति में श्लोक पूर्ण हो जायगा। यही कारण है कि प्रस्तुत चित्र की संज्ञा 'सर्वतोभद्र' है। संस्कृत में 'सर्वतोभद्र' का केवल यही रूप प्राप्त होता है।

हिन्दी के कवियों तथा आचार्यों ने भी 'सर्वतोभद्र' की यथेष्ट रचना की है। इतना ही नहीं हिन्दी में 'सर्वतोभद्र' के एक से अधिक रूप भी हो गये हैं। किन्तु विचित्रता यह है कि हिन्दी में 'सर्वतोभद्र' के उपर्युक्त प्रकार के जितने भी छन्द रचे गये हैं, लगभग सभी अनुष्टुप वृत्त में ही हैं। हिन्दी का अपना कोई भी छन्द इस रचना के लिये प्रयुक्त नहीं हो सका है। सम्भवतः यही कारण है कि 'कविप्रिया' में केशवरचित 'सर्वतोभद्र' के छन्द के सम्बन्ध में 'कविप्रिया' के टीकाकार भगवान दीन को भी कहना पड़ा है कि "उसका (छन्द का) अर्थ हमसे नहीं हो सका।" छन्द है—

"सीता सीन नसी तासी।
तार मार रमा रता॥
सीमा कली लीक मासी।
नर लीन नली रन।"[1]

1. कविप्रिया, प्रभाव १६, छन्द ७६

चित्र में प्रस्तुत छन्द का न्यास भी दण्डी द्वारा रचित उपर्युक्त श्लोक की भाँति ही होगा। इस सम्बन्ध में काशिराज ने 'सर्वतोभद्र' के अपने लक्षण में स्पष्ट कर दिया है कि 'सर्वतोभद्र' की विशेषता इसी में है कि चारों ओर से पढ़ने पर भी पाठ एक ही होता है या वही छन्द निःसृत होता है—

"चहूँ ओर तें बाँचिये पाठ एक सो होय।
ताहि सर्वतोभद्र कहि वर्णत हैं कवि लोय ॥"[1]

काशिराज ने भी उदाहरण के लिये जिस छन्द की रचना की है, वह भी अनुष्टुप में ही है—

"धारातीर रतीराधा रासु भासु सुभासुरा।
तीभा रमा मार भाती रासुमान नमासुरा ॥"[2]

इनके अतिरिक्त जनराज, भिखारीदास, गोकुलकवि, राजा महिरामन सिंह ने भी 'सर्वतोभद्र' के जो छन्द दिये हैं वे अनुष्टुप वृत्त में ही रचे गये हैं।[3] प्रस्तुत छन्द की रचनापद्धति एक विशेष प्रकार की है जिसमें छन्द के प्रत्येक चरण की रचना अनुलोम-प्रतिलोमविधि से की जाती है। यही कारण है कि चित्र में न्यास के उपरान्त हम छन्द का पाठ दोनों ही ओर से प्रारम्भ कर सकते हैं। वस्तुतः ये सभी छन्द 'पादगतागत' अथवा 'पादप्रतिलोमानुलोम' के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। साथ ही न्यास में छन्द को द्वित्त्व कर दिया जाता है। यह विधि संस्कृत की है और हिन्दी में ज्यों की त्यों अपना ली गई है, तनिक भी परिवर्तन नहीं हुआ है। उदाहरणतः काशिराज रचित उपर्युक्त छन्द का न्यास निम्न है—

धा	रा	ती	र	र	ती	रा	धा
रा	सु	भा	सु	सु	भा	सु	रा
ती	भा	र	मा	मा	र	भा	ती
रा	सु	मा	न	न	मा	सु	रा
रा	सु	मा	न	न	मा	सु	रा
ती	भा	र	मा	मा	र	भा	ती
रा	सु	भा	सु	सु	भा	सु	रा
धा	रा	ती	र	र	ती	रा	धा

१-२. चि० चं०, प्रकाश ५, छन्द २२-२३

३. क० र० वि०, पत्रांक ३००; का० नि०, परि० २१, छन्द ८७
चि० क०, पृ० १००; प्र० सा०, लहर ६२, छन्द १२

न्यास से स्पष्ट है कि एक चतुरस्र में आठ-आठ कोष्ठकों की आठ पंक्तियाँ बनाई गई हैं। इन कोष्ठकों में ऋजुगति से ही छन्द के वर्णों को प्रतिकोष्ठक प्रतिवर्ण की रीति से लिखा गया है। इस प्रकार ऊपर की चार कोष्ठकपंक्तियों में छन्द का न्यास पूर्ण हो जाता है। पुनः नीचे से ऊपर की दिशा में कोष्ठक की शेष चारों पंक्तियों में भी ऊपर की तरह ही छन्द के चारों चरणों को लिखा जाता है। अब स्थिति यह हो जाती है कि चाहे हम चतुरस्र के जिस कोण से पाठ आरम्भ करें, न्यास का छन्द ही हमें प्राप्त होता है। भिखारीदास ने अपनी पुस्तक 'काव्यनिर्णय' में प्रस्तुत चित्र को 'सर्वतोमुख' कहा है।[1] किन्तु इस नाम के सिवा छन्द की रचनापद्धति अथवा चित्र में उसके न्यास में कहीं किसी प्रकार का अन्तर नहीं है।

सर्वतोभद्र—दूसरा प्रकार

हिन्दी में 'सर्वतोभद्र' का एक दूसरा रूप भी प्राप्त होता है। इसके अन्तर्गत एक मण्डलाकार चित्र की परिधि में कोष्ठक बनाये जाते हैं तथा प्रति कोष्ठक छन्द के दो-दो वर्ण लिखे जाते हैं। इस न्यास की विशेषता यह है कि चाहे हम जिस कोष्ठक से पाठ प्रारम्भ करें, सभी कोष्ठकों में लिखित वर्णों का पाठ समाप्त करने पर हमें एक पूर्ण छन्द की प्राप्ति होगी। 'सर्वतोभद्र' के पूर्व रूप और इस रूप में कोई समता नहीं है। पूर्व रूप में जहाँ चित्र चतुरस्र था वहाँ इस स्थल पर चित्र मण्डलाकार होता है, यद्यपि इस चित्र को भी चतुरस्र कोष्ठकों में सजाया जा सकता है। 'सर्वतोभद्र' के दोनों ही रूपों में असल अन्तर यह है कि प्रथम रूप में जहाँ चित्र के चारों कोनों में कहीं से पाठ आरम्भ करने पर न्यास के छन्द की ही प्राप्ति होती है, वहाँ प्रस्तुत चित्र में कहीं से आरम्भ करने पर एक अन्य छन्द बनता है। इस प्रकार जहाँ प्रथम चित्र में छन्द, पाठ की प्रत्येक दशा में एक ही रहता है, वहाँ इस चित्र में पाठ के आरम्भस्थल में परिवर्तन करने पर छन्द भी परिवर्तित हो जाता है। पर चमत्कार यह है कि कहीं से भी पाठ आरम्भ करें प्राप्ति पूर्ण छन्द की होती है। इसके साथ ही पाठ में यदि हम बीच-बीच के कोष्ठकों को छोड़कर यानी हर तीसरे कोष्ठक में लिखित वर्णों को भी पढ़ते चलें तो भी पूर्ण छन्द की ही प्राप्ति होगी। इस चित्र अथवा छन्द का नाम भी 'सर्वतोभद्र' ही इसलिये रखा गया है कि इस चित्र में भी कहीं से आरम्भ करने पर हमें पूर्ण छन्द की प्राप्ति होती है। काशिराज ने 'सर्वतोभद्र' के इस रूप का निम्न लक्षण दिया है—

"दो दो अक्षर छोड़िये जोड़ि दीजिये अन्त।
यह सर्वतोभद्र है वरणत कवि गुणवन्त॥"[2]

---

१. परि-२१, छन्द ८७

२. चि० चं०, प्रकाश ५, छन्द २४

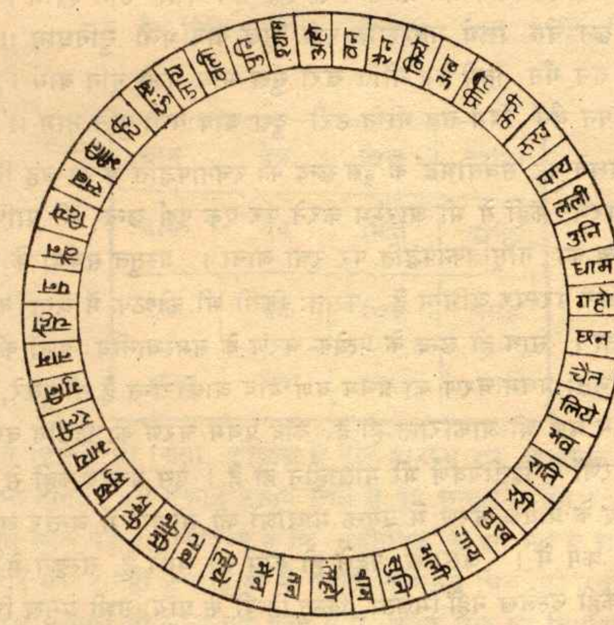
स्वनिर्मित टीका में काशिराज ने न्यासविधि को और अधिक स्पष्ट किया है—

"या सर्वतोभद्र को मंडलाकार लिखिये आदि सों दो-दो अक्षर छोड़िके पढ़िये, छूटे जो अक्षर हैं तिन्हें अंत्य में जोड़िये तहाँ अड़तालीस सवैया निकसत है सो जानिये।"

उदाहरण के रूप में 'चित्रचन्द्रिका' में निम्न छन्द मिलता है—

"श्याम अहो वन रैन किये अब प्रीति करी रुख पाय लली उनि।
धाम गहो छन चैन लिये भव राति ररी मुख गाय भली सुनि॥
वाम लहो तन मैन हिये तब नीति खरी सुख भाय रली गुनि।
नाम चहो पन वैन दिये सब भीति टरी दुःख जाय वली पुनि॥"[1]

न्यास के लिये निम्न चित्र द्रष्टव्य है—



उपर्युक्त लक्षण की टीका के अनुसार प्रस्तुत चित्र से अड़तालीस सवैया निःसृत होते हैं। उद्धार की विधि यह है कि छन्द की प्रत्येक पंक्ति अथवा सवैया के प्रत्येक चरण के आदि से दो अक्षर छोड़कर पाठ करें और उन छोड़े हुए अक्षरों को चरणान्त में लिख दें, तो एक सवैया निकलेगा। इसी प्रकार हम अगले दो अक्षरों को छोड़कर और उन्हें अन्त में देकर लिखें तो दूसरा सवैया प्राप्त होगा। तात्पर्य यह कि वृत्ताकार चित्र में बने किसी कोष्ठक से आरम्भ कर सभी कोष्ठकों में लिखित वर्णों का पाठ करने पर एक पूर्ण सवैया निकलता है। चित्र में कुल अड़तालीस कोष्ठक हैं और इस प्रकार उन सभी कोष्ठकों

१. चि० च०, प्रकाश ५, छन्द २५

से आरम्भ करने पर हमें अड़तालीस सवैयों की प्राप्ति होगी। उदाहरण के लिये यदि हम दूसरे कोष्ठक से आरम्भ करें तो निम्न छन्द निकलेगा—

"अहो वन रैन किये अब प्रीति करी रुख पाय लली उनि धाम ।
गहो छन चैन लिये अब राति ररी मुख गाय भली सुनि वाम ।।
लहो तन मैन हिये तब नीति खरी सुख भाय रली गुनि नाम ।
चहो पन वैन दिये सब भीति ररी दुख जाय बली पुनि श्याम ।।"

टीका में काशिराज द्वारा संकेतित प्रस्तुत छन्द का रूप किंचित भिन्न होगा कारण चरणान्त में चरणादि के छोड़े हुए वर्ण रखे जायेंगे, अगले कोष्ठक के वर्ण नहीं—

"अहो वन रैन किये अब प्रीति करी रुख पाय लली उनि श्याम ।
गहो छन चैन लिये भव राति ररी मुख गाय भली सुनिधाम ।।
लहो तन मैन हिये तब नीति खरी सुख भाय रली गुनि वाम ।
चहो पन वैन दिये सब भीति टरी दुख जाय वली पुनि नाम ।।"

ध्यान से देखने पर 'सर्वतोभद्र' के इस छन्द की रचनापद्धति में ही वह विशेषता दीख पड़ती है जिसके कारण कहीं से भी आरंभ करने पर एक पूर्ण छन्द की प्राप्ति होती है। वह विशेषता है छन्द का गोमूत्रिकापद्धति पर रचा जाना। प्रस्तुत सवैया के चारों चरणों के प्रत्येक युग्म अक्षर परस्पर अभिन्न हैं, फलतः किसी भी कोष्ठक में अन्त करने पर तुक कहीं भंग नहीं होता। साथ ही छन्द के प्रत्येक चरण के समस्थानीय वर्णों की मात्रा भी एक ही है। उदाहरणतः प्रथम चरण का प्रथम वर्ण यदि आकारान्त है तो दूसरे, तीसरे तथा चौथे चरणों के प्रथम वर्ण भी आकारान्त ही हैं, यदि प्रथम चरण का द्वितीय वर्ण मात्राहीन है तो अन्य सभी चरणों के द्वितीयवर्ण भी मात्राहीन ही हैं। इस प्रकार कहीं से भी प्रारम्भ करने पर न तो छन्द के प्रत्येक चरण में प्रयुक्त मात्राओं की संख्या में अन्तर आता है और न वर्णों के लघु-गुरु क्रम में। जैसाकि पहले ही कहा जा चुका है संस्कृत में इस प्रकार के 'सर्वतोभद्र' का कहीं उल्लेख नहीं मिलता, किन्तु हिन्दी के प्रायः सभी प्रमुख चित्रकाव्य के रचयिताओं ने 'सर्वतोभद्र' के इस भेद का छन्द दिया है। केशवदास, चिन्तामणि, देव, भिखारीदास, जनराज, रूप प्रधान, काशिराज, लछिराम तथा बिहारीलाल भट्ट की रचनाओं में हमें 'सर्वतोभद्र' के इस भेद के उदाहरण मिलते हैं।[1] बिहारीलाल भट्ट ने अपनी

१. क० प्रि०, १६-७७, १६-८२
क० कु० क०, प्रकरण २, छन्द ३३
श० र०, प्रकाश ८, पृ० ९२
का० नि०, परि २१, छन्द ८६
क० र० वि०, पत्रांक २९३, छन्द ३५
चित्रकाव्य, छन्द ३२-३३
चि० चं०, प्रकाश ५, छन्द २५
रावणेश्वर कल्पतरु, कुसुम ११, पृ० ३
सा० सा०, भाग २, तरंग १२, पृ० ५१३

पुस्तक 'साहित्यसागर' (भाग २) में 'सर्वतोभद्र' के न्यास के साथ ही यह भी स्पष्ट कर दिया है कि मण्डल के किसी भी कोष्ठक से छन्द का पाठ आरम्भ किया जा सकता है। अन्य कवियों में केशवदास ने इस छन्द को 'सर्वतोमुख' कहा है तथा भिखारीदास ने 'सुमुख' अथवा 'दुमुख'।[१] नाम के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार का अन्तर छन्द में नहीं आता है।

केशवदास, भिखारीदास तथा लछिराम में प्रस्तुत छन्द को चतुरस्र चित्र में न्यस्त किया गया है। 'सर्वतोभद्र' के प्रथम चित्र के समान ही कोष्ठकपंक्तियों का निर्माण कर छन्द के वर्णों को लिखा गया है। उदाहरण के लिये केशवदास रचित निम्न छन्द तथा चित्र द्रष्टव्य है—

"कामदेव चित्त दाहि, वामदेव मित्त दाहि।
राम देव चित्त चाहि, धामदेव नित्त माहि॥"[२]

चित्र निम्न है—

काम	देव	चित्त	दाहि
वाम	देव	मित्त	दाहि
राम	देव	चित्त	चाहि
धाम	देव	नित्त	माहि

प्रस्तुत चित्र में भी किसी कोष्ठक से पाठ प्रारम्भ कर ऋजुगति से पढ़ते जाने पर पूर्ण छन्द प्राप्त होगा। इस प्रकार प्रस्तुत चित्र से १६ छन्द निकलेंगे।

प्रस्तुत स्थल पर यह ध्यातव्य है कि 'सर्वतोभद्र' के इस भेद के छन्द तथा 'कामधेनु' के छन्द में कोई अन्तर नहीं है। हिन्दी में गृहीत 'कामधेनु चित्र' की रचना भी इसी प्रकार होती है, कारण उसका भी लक्ष्य एक छन्द में से अनेक छन्द का निःसरण ही है। स्वयं केशवदास ने उपर्युक्त छन्द के लिये 'सर्वतोभद्र' तथा 'कामधेनु' दोनों संज्ञाओं का प्रयोग किया है। काशिराज ने भी 'शतधेनु' के उदाहरणस्वरूप उपर्युक्त 'सर्वतोभद्र' के छन्द को ही उद्धृत किया है।[3] इस प्रकार 'सर्वतोभद्र' के इस भेद का अलग कोई महत्त्व नहीं रह जाता। इसका विवेचन हम 'कामधेनु' के अन्तर्गत करेंगे।

कामधेनु चित्र

संस्कृत में 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में भोजराज ने 'धेनु' के एक भेद के रूप में 'कामधेनु' का विवेचन किया है। 'कामधेनु' का तात्पर्य वहाँ ऐसे छन्द से है जिससे इच्छित

१. का० नि०, २१-८६

२. क० प्रि०, १६-७७

३. चि० चं०, प्रकाश ७, छंद ३७-१, पृ० १४६

संख्या में भिन्न प्रकार के छन्द निकल सकें। 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में 'धेनु' के अन्य भेदों में 'शतधेनु', 'सहस्रधेनु', 'अयुतधेनु', 'लक्षधेनु' तथा 'कोटिधेनु' का स्थान है।[1] इन चित्ररचनाओं से नाम के अनुकूल उतनी ही संख्या में छन्द निःसृत होते हैं। 'कामधेनु' के सम्बन्ध में भोजराज द्वारा रचित निम्न कारिकाएँ ध्यातव्य हैं—

"पदग्राहाद्यथाकामं कामधेनुरियं तुनः।
परार्धानां परार्धानि प्रसूते श्लोक तर्णकान्॥
एकाक्षरादि छन्दोभिर्गतिबन्धादिभेदतः।
उक्तानुक्तानि चित्राणि सर्वाण्येषां प्रसूयते॥"[2]

किन्तु हिन्दी में 'धेनु' के भेदों में केवल 'कामधेनु' ही गृहीत हुआ और वह भी अर्थ में किंचित परिवर्तन के साथ। हिन्दी में 'कामधेनु' का जो छन्द गृहीत हुआ उसमें भिन्न प्रकार के छन्दों के निःसरण की अनिवार्यता नहीं रही, केवल एक छन्द के अन्दर से संख्या में अनेक छन्द का निःसृत हो जाना ही पर्याप्त समझा गया। फिर भी ऐसे छन्दों की रचना भी हिन्दी में हुई जिनसे भिन्न प्रकार के छन्द निकलते हैं। भोजराज के 'कामधेनु' तथा हिन्दी में गृहीत 'कामधेनु' के उदाहरणों में एक और अन्तर यह है कि जहाँ 'सरस्वतीकण्ठाभरण' के श्लोक से इच्छित संख्या में श्लोक निकल सकते हैं वहाँ हिन्दी के प्रत्येक छन्द से निकलने वाले छन्दों की संख्या लगभग निश्चित है।

उपर्युक्त लक्षणों से युक्त 'कामधेनु' की रचना हिन्दी कवियों को बहुत प्रिय रही है। चित्रकाव्य के लगभग सभी रचयिताओं ने 'कामधेनु' छन्द की रचना अवश्य की है।[3] 'कामधेनुचित्र' की लोकप्रियता का अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि सुदूर दक्खिन के गोलकुण्डा राज्य का सुल्तान मुहम्मद कुल्ली ने (१५८० से १६१२ ई०) भी अपनी रचनाओं में एक छन्द 'कामधेनु' का रचा है।[4] महाकवि भूषण ने भी 'शिवराजभूषण' में 'चित्रालंकार'

१. द्रष्टव्य, प्रस्तुत अध्याय, पृ० ३०३, पा० टि० ४
२. स० कं०, परि २, कारिका १३६-१३७
३. कुलपति मिश्र, रस रहस्य, पृ० ७७, छन्द ३९
गोकुल कवि, चि० क०, पृ० ९९
रसिक बिहारी, का० सु०, कला.११, छन्द १४७
लछिराम, रा० क०, कुसुम ११, पृ० २९४
द्विजगंग, म० भू०, उल्लास ५, पृ० १११
बिहारीलाल भट्ट, सा० सा० (भाग २), पृ० ५१६
चिन्तामणि, क० कु० क०, प्रकरण २, छन्द ३२
भिखारीदास, का० नि०, परि २१, छन्द ८९
जनराज, क० र० वि०, प्रत्नांक २८४, छन्द ३१
जगतसिंह, चित्र मीमांसा, छन्द १५१
हरिकवि, कविवल्लभ, पृ० ११७, छन्द ३१
काशिराज, चि० चं०, प्रकाश ७, छन्द ३७-१, पृ० १४६
भूषण, शिवराजभूषण, छन्द ३६८
४. दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा, स्फुट कविताएँ, पृ० १२५

के उदाहरणस्वरूप केवल 'कामधेनु' की ही रचना की है।[१] अन्य कवियों तथा आचार्यों ने तो इसकी रचना की ही है। 'कामधेनु' के निम्न लक्षण हिन्दी में दिये गये हैं—

"एक छंद में छंद बहु कामधेनु है सोइ।
बहु छंदन भाखौं बहुत यहौ कहत कवि कोई ॥[२] —चिन्तामणि
"गहि तजि प्रति कोठनि बढ़ैं उपजैं छंद अपार।
व्यस्त समस्त गतागतहु, कामधेनु विस्तार ॥[3] —भिखारीदास

अन्य लक्षणों में इन्हीं का अनुकरण दीख पड़ता है।[४] उपर्युक्त लक्षणों के अनुसार 'कामधेनुचित्र' ऐसे छन्द को कहते हैं जिनसे अनेक छन्द निकलते हों। भिखारीदास ने अपने लक्षण में 'कामधेनु' के पाठ की विधि को स्पष्ट किया है। कोष्ठकों में लिखे छन्द के अंशों में किसी को लेकर किसीको छोड़कर, व्यस्त तथा समस्त रूपों में और गत तथा आगत दोनों ही विधियों से पाठ करने पर अनेक छन्द निःसृत होते हैं। यही 'कामधेनु' की विशेषता है। उदाहरण के लिये भिखारीदास रचित छन्द तथा न्यास द्रष्टव्य है—

"दास चहै नहिं और सों यों सब झूठि एहै जन जान ररै सति।
आस गहै यहि ठौर सों ज्यों तब रूठि एसै तन प्रान डरै अति ॥
वास दहै गहि दौर सों ह्यो अब तूठि एतै प्रन ठान धरै रति।
हास लहै यहि तौर सों प्यो तब मूठि एमै मन मान करै मति ॥"[५]

न्यास निम्न हैं—

दास	चहै	नहिं	और	सों	यों	सब	झूठि	एहै	जन	जान	ररै	सति
आस	गहै	यहि	ठौर	सों	ज्यों	तब	रूठि	एसै	तन	प्रान	डरै	अति
वास	दहै	गहि	दौर	सों	ह्यो	अब	तूठि	एतै	प्रन	ठान	धरै	रति
हास	लहै	यहि	तौर	सों	प्यो	तब	मूठि	एमै	मन	मान	करै	मति

१. छन्द ३६८
२. क० कु० क०, प्रकरण २, छन्द ३१
३. का० नि०, परि २१, छन्द ८८
४. गहि तजि प्रति कोठनि बढ़े उपजै छन्द अपार।
व्यस्त समस्त गतागतहु कामधेनु विस्तार ॥" —चित्रकलाधर, पृ० ९९–गोकुल कवि
परिहरि जब क्रमसों पढ़ै उत्तम छन्द प्रकास
व्यस्त समस्त गतागतहु कामधेनु सबिलास ॥" —रा० क०, कुसुम ११, छन्द ३—लछिराम
"जहां एक ही कवित मैं निकसे छन्द अनेक।
कामधेनु सो कहत है बरनौं सहित विवेक ॥" —क० र० वि०, पत्रांक २८४, छन्द ३०-जनराज
५. का० नि०, परि २१, छन्द ८९

प्रस्तुत छन्द की बनावट कुछ इस प्रकार की है कि उपर्युक्त चित्र के किसी भी कोष्ठक से पाठ प्रारम्भ करने पर तथा गत अथवा आगत रूप में आगे बढ़ने पर पूर्ण छन्द प्राप्त होता है। इस प्रकार यहाँ एक ही छन्द से अनेक छन्द निःसृत होते हैं। छन्द की रचना को ध्यान से देखने पर स्पष्ट हो जाता है कि छन्द के चारों चरणों की रचना 'गोमूत्रिका' पद्धति से हुई है, यानी मूलतः यह छन्द 'गोमूत्रिका' का है। चारों ही चरणों के प्रत्येक युग्मवर्ण एक ही हैं। साथ ही प्रत्येक चरण के समस्थानीय वर्ण समान मात्राओं से युक्त हैं। ऊपर 'सर्वतोभद्र' के दूसरे प्रकार के रूप में हमने देखा है कि उसके अन्तर्गत उदाहृत छन्द भी इन्हीं विशेषताओं से युक्त हैं। वस्तुतः 'कामधेनु' के इस रूप तथा 'सर्वतोभद्र' के दूसरे रूप में तत्त्वतः कोई अन्तर नहीं है। छन्दों की बनावट, रचनापद्धति भी एक ही है और परिणाम भी एक ही निकलता है। इस प्रकार अनेक कवियों द्वारा दोनों के विवेचन के उपरान्त भी दोनों बिलकुल अभिन्न हैं। इस ओर हिन्दी के एकाध आचार्यों ने संकेत भी किया है। स्वयं केशवदास ने ही 'सर्वतोभद्र' अथवा 'कामधेनु' शीर्षक दिया है।[१] काशिराज ने अपनी 'चित्रचन्द्रिका' में जो उदाहरण 'सर्वतोभद्र' का दिया है, वही छन्द 'शतधेनु' के उदाहरण में भी उद्धृत किया है।[२] शतधेनु का निम्न लक्षण उन्होंने दिया है—

"सत छन्द प्रकटत यत्र।
सतधेनु कहियत तत्र॥
बहुअर्थ दायक चित्र।
कहि काशिराज पवित्र।"[३]

छन्द का न्यास भी उपर्युक्त छन्द के न्यास की तरह ही है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि 'कामधेनु' और 'सर्वतोभद्र' के दूसरे रूप में किसी प्रकार का अन्तर नहीं है।

'कामधेनु' का एक दूसरे रूप में महत्त्व अवश्य है जहाँ एक छन्द से अनेकों प्रकार के छन्द निःसृत होते हैं। 'काव्यनिधि' में कवि शम्भुप्रसाद सिंह ने उदाहरण के छन्द से निःसृत होनेवाले विभिन्न छन्दों के नाम भी दिये हैं। कवि ने 'कामधेनु' का लक्षण भी दिया है और साथ ही यह भी स्पष्ट कर दिया है कि "याको कोऊ सर्वतोभद्र कहत है।" लक्षण निम्न है—

"चहै तहां से पढ़त ही छंद सुपूरन होइ।
छंद बहुत जामैं कढ़ै कामधेनु है सोई॥"[४]

---

१. क० प्रि०, प्रभाव १६, छन्द ७७
२. चि० चं०, प्रकाश ५, छन्द २५, प्रकाश ७, छन्द ३७
३. उपरिवत्, प्रकाश ७, छन्द ३६
४. काव्यनिधि, प्रत्नांक १०१, छन्द ५०

छन्द निम्न है—[1]

संस्कृति, श्री	आकृति	कृति	धृति	अष्टि	शक्वरी	जगती	पंक्ति	अनुष्टुप्	गायत्री (४०)	प्रतिष्ठा	मधु
राम	कहै	मन	आन	मढ़ै	मति	चाउ	किये	सब	साज	सजै	नर
काम	दहै	तन	मान	डरै	निति	पाउ	बिये	फंब	छाज	छजै	वर
वाम	चहै	जन	जान	ररै	रति	लाउ	हिये	अब	लाज	भजै	धर
धाम	लहै	धन	आन	बढ़ै	अति	आउ	लिये	तब	राज	रजै	घर
सार	रमन	गायत्री (५५)	चित्रपदा	सारवती	मोदक; चौपाई	शक्वरी (१४)	नील (भगण५ ऽ)	हर्ष	आकृति	मदिरा (भ७ ऽ)	किरीट (भ८)

प्रस्तुत चित्र में नीचे तथा ऊपर छन्दों के नाम लिखे हैं। छन्द के पाठ में आदि से प्रारम्भ करके हम जैसे-जैसे बढ़ते हैं छन्द भी बदलता चलता है। नीचे लिखे छन्द के नाम पाठ के गत रूप के हैं और ऊपर लिखे छन्द के नाम आगत पाठ यानी अन्त से प्रारम्भ कर आदि की ओर चलने के अनुकूल हैं।

इस प्रकार बायीं ओर से पाठ आरम्भ कर एक-एक कोष्ठक में लिखे वर्णों को बढ़ाते जाने पर हमें क्रमशः 'सार', 'रमण', 'गायत्री' (भेद ५५), 'चित्रपदा', 'सारवती', 'मोदक' तथा 'चौपाई', 'शक्वरी' (भेद १४), 'नील', 'हर्ष', 'आकृति', 'मदिरा' तथा 'किरीट' छन्दों की प्राप्ति होती है, जबकि इसी विधि से दायीं ओर से पाठ आरम्भ करने पर क्रमशः 'मधु', 'प्रतिष्ठा', 'गायत्री' (भेद ४०), 'अनुष्टुप', 'पंक्ति', 'जगती', 'शक्वरी', 'अष्टि', 'धृति', 'कृति', 'आकृति' तथा 'संस्कृति' छन्द निःसृत होते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य प्रकार से वर्णों को सजाने पर अन्य अनेक छन्द भी प्राप्त हो सकते हैं, उदाहरणार्थ यदि केवल प्रथम वर्ण को ही छन्द के चरण के रूप में रखा जाय तो 'श्री' छन्द की प्राप्ति हमें होगी। प्रस्तुत सवैया गत रूप में तो किरीट है जिसके प्रत्येक चरण में ८ भगण हैं किन्तु आगत रूप में उसमें नगण तगण के चार युग्म हो जाते हैं। इस प्रकार आगत रूप में छन्द की प्रथम पंक्ति का रूप निम्न होता है, जिसे 'संस्कृति' के एक भेद के रूप में ही देखा जा सकता है—

१. काव्यनिधि, छन्द ५१

"नर सजै साज सब किये चाउ मति मढ़ै आन मन कहै राम।"

नवकोष्टकगति चित्र

केवल काशिराज रचित 'चित्रचन्द्रिका' में प्रस्तुत चित्र प्राप्त होता है। अन्यत्र कहीं भी न तो संस्कृत में और न हिन्दी में ही इस प्रकार की रचना हुई है। प्रस्तुत चित्र-रचना के अन्तर्गत तीन-तीन कोष्ठकों की तीन पंक्तियों में चौपाई का एक चरण लिखा गया है। चौपाई के अन्य तीन चरण उन्हीं नवों कोष्ठकों से पाठ की विभिन्न भंगिमा के द्वारा निकलते हैं। प्रस्तुत चित्र का निम्न लक्षण काशिराज ने दिया है—

"चौपाई के अर्ध ते कढ़त अर्ध जहँ चारि।
नव कोष्टक गति चित्र यह सुकविन कह्यो विचारि॥[1]

प्रस्तुत लक्षण के अनुसार चौपाई के अर्द्ध अथवा एक चरण "सीता सोभा रमा सयासी" को ऋजु गति से नवों कोष्ठकों में लिखा गया है—

सी १	ता २	सो ३
भा ४	र ५	मा ६
स ७	या ८	सी ९

अब प्रस्तुत चित्र में न्यस्त इन्हीं नवों वर्णों से चौपाई के अन्य चरण भी प्राप्त होते हैं, जिनकी पाठविधि निम्न है—

प्रथम चरण — गत रूप में बायें से दायें—"सीता सोभा रमा सयासी।"
इसका कोष्ठकक्रम है—१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८ तथा ९

द्वितीय चरण—आगत रूप में दायें से बायें—"सीया समा रभा सो तासी।"
इसका कोष्ठकक्रम है—९, ८, ७, ६, ५, ४, ३, २ तथा १

तृतीय चरण—ऊपर से नीचे की ओर—"सीभा सता रया सो मासी।"
इसका कोष्ठकक्रम है—१, ४, ७, २, ५, ८, ३, ६ तथा ९

चतुर्थ चरण—नीचे से ऊपर की ओर—"सीमा सोया रता सभासी।"
इसका कोष्ठकक्रम है—९, ६, ३, ८, ५, २, ७, ४ तथा १

प्रस्तुत चित्र में न्यास के छन्द के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि उसके एक चरण में केवल ९ वर्ण ही हों, कारण कोष्ठकों की संख्या ९ ही है। 'सर्वतोभद्रचित्र' तथा इस 'नवकोष्ठकगति चित्र' में एक अन्तर यह है कि जहाँ 'सर्वतोभद्र' में किसी कोने से पाठ

१. चि० चं०, प्रकाश ५, पृ० ४८, छन्द १९

आरम्भ करने पर न्यास का छन्द ही प्राप्त होता है, वहाँ प्रस्तुत स्थल पर छन्द के अन्य चरण हमें प्राप्त होते हैं ।

गतप्रत्यागत अथवा प्रतिलोमानुलोम गतिचित्र

'गतप्रत्यागत' छन्द का विवेचन आचार्य दण्डी ने 'प्रतिलोम' नाम से 'यमक' के भेद के रूप में किया है । वे इसका निम्न लक्षण देते हैं—

"आवृत्ति प्रातिलोम्येन पादार्ध श्लोक गोचरा ।
यमकं प्रतिलोमत्वात् प्रतिलोममिति स्मृतम् ।।"[1]

लक्षण के उपरान्त उन्होंने इस 'प्रतिलोमयमक' के 'पादप्रतिलोम', 'अर्धप्रतिलोम' तथा 'श्लोकप्रतिलोम' नाम से तीन उदाहरण दिये हैं । जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है 'गतप्रत्यागत' अथवा 'प्रतिलोमानुलोम' छन्द की विशेषता यही है कि आदि से अन्त की ओर अथवा अन्त से आदि की ओर दोनों ही दिशाओं में पाठ की गति समान रूप से चलती है । आदि से आरम्भ कर अन्त तक में जिस छन्द की प्राप्ति हमें होती है उसी छन्द की प्राप्ति अन्त से आरम्भ कर आदि तक आने में भी होगी । 'पादप्रतिलोम' का तात्पर्य 'गतप्रत्यागत' छन्द के उस भेद से है जिस छन्द के प्रत्येक पाद की प्रतिलोमतः आवृत्ति होती है अर्थात् छन्द के प्रत्येक चरण को हम आदि से अन्त की ओर तथा अन्त से आदि की ओर समान रूप से पढ़ सकते हैं । 'अर्धप्रतिलोम' के अन्तर्गत श्लोक के पूर्वार्द्ध का प्रतिलोमतः पाठ ही श्लोक का उत्तरार्द्ध होता है । 'श्लोकप्रतिलोम' में एक सम्पूर्ण श्लोक का प्रतिलोमतः पाठ करने पर एक दूसरा पूर्ण श्लोक निर्मित हो जाता है । दण्डी ने 'प्रतिलोम' के उपर्युक्त तीनों भेदों का विवेचन 'यमक' के अन्तर्गत ही किया है ।

रुद्रट ही पहले आचार्य हैं जिन्होंने प्रतिलोमानुलोम पाठ का स्थान 'चित्र' के अन्तर्गत रखा । उन्होंने केवल 'अर्द्धप्रतिलोम' का ही उदाहरण दिया है जिसमें श्लोक के पूर्वार्द्ध का प्रतिलोम पाठ ही श्लोक का उत्तरार्द्ध है ।[2] अग्निपुराणकार ने भी 'दुष्कर' के एक भेद 'विदर्भ' के अन्तर्गत 'प्रतिलोमानुलोम' का आकलन किया ।[3] भोजराज तथा हेमचन्द्र ने तो चित्र के अन्तर्गत 'गतप्रत्यागत' नाम से इसका यथेष्ट विस्तार से विवेचन किया है । तात्पर्य यह कि दण्डी के बाद के आचार्यों ने प्रतिलोमानुलोम पाठ का स्थान 'यमक' से हटाकर 'चित्र' के अन्तर्गत ही रखा । हिन्दी के आचार्यों ने चूँकि संस्कृत के परवर्ती आचार्यों का ही अनुकरण अधिक किया है अतः हिन्दी में 'गतप्रत्यागत' नाम से इसकी रचना 'चित्र' के एक भेद के रूप में ही हुई है ।

'सरस्वतीकण्ठाभरण' में भोजराज ने 'गतप्रत्यागत' के 'पादगतप्रत्यागत', 'अक्षर' अथवा 'अर्धगतप्रत्यागत', 'श्लोकगतप्रत्यागत', 'भाषान्तर गतप्रत्यागत' तथा 'अर्थानुगतप्रत्यागत',

१. काव्यादर्श, परि ३, श्लोक ७२

२. काव्यालंकार, अ० ५, श्लोक १७

३. द्रष्टव्य प्रस्तुत अध्याय, पृ० ३०२, पा० टि० ५

इन पाँच भेदों के उदाहरण दिये हैं।[1] हेमचन्द्र ने भी इन्हीं भेदों के उदाहरण दिये हैं।[2] हिन्दी में भी गतप्रत्यागत के इन सभी भेदों की रचना हुई है। इतना ही नहीं 'व्यस्त' और 'समस्त' नाम से इनके भी भेद किये गये हैं। भिखारीदास ने स्पष्टत: इसके तीन भेदों की चर्चा की है—

"आधे ही ते एक जहँ, उलटे सीधे एक।
उलटे सीधे द्वै कवित्त, त्रिविधि गतागत टेक॥"[3]

अर्थात् (१) आधा कवित्त को उलट कर उसे पूर्ण बनाया जाय, (२) सम्पूर्ण कवित्त को चाहे हम उलटा पढ़ें चाहे सुलटा एक ही कवित्त निकले तथा (३) एक कवित्त को उलटने पर दूसरा कवित्त निकल आवे। पारिभाषिक रूप में इन्हें 'अर्धगतागत', 'श्लोकगतागत', तथा 'श्लोकान्तरगतागत' कहा जायगा। चित्रचन्द्रिकाकार ने इनके अतिरिक्त 'पादानुपाद-गतागत', तथा 'भाषांतर गतागत' की रचना भी की है।[4] इस प्रकार हिन्दी में भी संस्कृत में गृहीत 'गतप्रत्यागत' के प्राय: सभी भेदों की रचना हुई है। हिन्दी के प्रथम आचार्य केशवदास ने ही 'पादगतागत', 'एकछंद गतागत' तथा 'भिन्नछंद गतागत' तीनों भेदों का विवेचन किया है।[5] आगे हम इन भेदों का विवेचन करेंगे।

पादानुपादगतागत

प्रस्तुत चित्ररचना के अन्तर्गत छन्दविशेष के प्रत्येक चरण की रचना अनुलोम-प्रतिलोम विधि से की जाती है। फलत: छन्द के प्रत्येक चरण को चाहे गत रूप से पढ़ा जाय अथवा आगत रूप से, पाठ में कोई अन्तर नहीं आवेगा। काशिराज ने 'पादानुपाद-गतागत' का निम्न लक्षण दिया है—

"सुलटे उलटे पाठ सों अर्द्ध पाद ते पाद।
जहाँ पाद अनुपाद सो जानो विना विवाद॥"[6]

यानी किसी छन्द के चरणों का उत्तरार्द्ध पूर्वार्द्ध का ही प्रतिलोम हो अथवा जिस छन्द के प्रत्येक चरण का पाठ अनुलोम तथा प्रतिलोम दोनों गतियों से अभिन्न हो, उसे 'पादानुपादगतागत' अथवा 'पाद प्रतिलोमानुलोम' कहा जाता है। उदाहरण के लिए काशि-राज रचित निम्न सवैया द्रष्टव्य है—

---

१. द्रष्टव्य प्रस्तुत अध्याय, पृ० ३०१, पा० टि० १
२. काव्यानुशासन, कारिका १०८ की वृत्ति तथा टीका
३. का० नि०, परि २१, छन्द ७४
४. चि० चं०, प्रकाश ५, छन्द २, ४, १४, १५ तथा १६
५. क० प्रि०, प्रभाव १६, छन्द ७०, ६७-६८
६. चि० चं०, प्रकाश ५, छन्द २

"सारस नैनन वै बस मार रमा सब बैनन नै सरसा।
सारम सोहय मैंन तियासी सिया तिन में यह सो मरसा ॥
सारद सो मन त्यों न बहार रहा बन त्यों नम सो दर सा।
सारत लोचन मावर ताल लतारव मान चलो तरसा ॥"[1]

स्पष्ट है कि प्रस्तुत सवैया के प्रत्येक चरण को हम आदि से अन्त की ओर तथा अन्त से आदि की ओर दोनों रूपों में पढ़ सकते हैं और दोनों ही स्थितियों में इनका पाठ एक ही रहेगा। इसका कारण यह है कि इस सवैया के प्रत्येक चरण के पूर्वार्द्ध के वर्णों का ही उपयोग उतरार्द्ध की रचना में भी हुआ है, केवल उनका क्रम उलटा है। फलतः चाहे हम इधर से पढ़ें अथवा उधर से पाठ में कोई अन्तर नहीं आता।

अर्धगतागत

'पादानुपाद गतागत' में जहाँ छन्द के प्रत्येक चरण के पूर्वार्द्ध का आगत रूप उत्तरार्द्ध होता है, वहाँ 'अर्धगतागत' के अन्तर्गत छन्द के पूर्वार्द्ध का प्रतिलोम ही छन्द का उत्तरार्द्ध होता है। इस प्रकार यदि छन्द में चार चरण हैं तो प्रथम तथा द्वितीय चरण का प्रतिलोम पाठ ही तृतीय तथा चतुर्थ चरण का अनुलोम पाठ होता है। भिखारीदास के निम्न दोहे की रचना इसी पद्धति से हुई है—

"रही अरी कब तै हिये गसी सि निरखनि तीर।
रती निखर निसि सी गये हितै ब करी अहीर ॥[2]

प्रस्तुत दोहे में पूर्वार्द्ध अथवा प्रथम पंक्ति का ही प्रतिलोमरूप उत्तरार्द्ध अथवा दूसरी पंक्ति है। भोजराज ने 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में इसे 'तदक्षरगत' की संज्ञा दी है।[3]

भिन्न पदार्थ गतागत

प्रस्तुत 'गतागत' को भोजराज ने 'श्लोकान्तरगत' की संज्ञा दी है।[4] प्रस्तुत चित्ररचना की विशेषता यह है कि छन्दविशेष का प्रतिलोमतः पाठ करने पर एक अन्य छन्द की प्राप्ति होती है तथा इन दोनों छन्दों के अर्थ भी अलग-अलग होते हैं। यह दो प्रकार का होता है 'व्यस्त' तथा 'समस्त'। जैसा कि नाम से ही प्रकट है 'व्यस्त गतागत' में छन्द की प्रत्येक पंक्ति का प्रतिलोम पाठ दूसरे छन्द की उसी पंक्ति के रूप में लिखा जाता है जबकि 'समस्त' के अन्तर्गत सम्पूर्ण छन्द को एक इकाई मानकर उसका प्रतिलोम दूसरे छन्द के रूप में उपस्थित होता है। अतः 'व्यस्त' में जहाँ मूल छन्द के प्रथम चरण का प्रतिलोम ही निःसृत छन्द का प्रथम चरण होता है, वहाँ 'समस्त' में मूल छन्द के प्रथम चरण का प्रतिलोम निःसृत छन्द का अन्तिम चरण होता है। लक्षणस्वरूप काशिराज तथा केशवदास के निम्न दोहे द्रष्टव्य हैं—

१. चि० चं०, प्रकाश ५, छन्द ४
२. का० नि०, परि २१, छन्द ७५
३. स० कं०, परि २१ श्लोक ३०० (वृत्ति)
४. उपरिवत्, श्लोक ३०१-३०२ (वृत्ति)

"उलटें सुलटे पाद में अर्थ और पद और।
यही गतागत चित्र है कहत सुकवि सिरमौर।।"[1]

—काशिराज

"सूधो उलटो बाँचिये औरहि औरहि अर्थ।
एक सवैया में सुकवि प्रगटित होय समर्थ।।"[2]

—केशवदास

निम्न उदाहरणों से 'व्यस्त' तथा 'समस्त' दोनों का अन्तर स्पष्ट हो जायगा—

व्यस्त—अनुलोम छन्द

"सैन न माधव ज्यों सर केसव रेख सुदेस सुबेस सबै।
नै नव की तचि जी तरुनी रुचि चीर सबै निमि काल फलै।
तैं न सुनी जस भीर भरी, धर धीरऽब रीति सु कौन बहै।
मैन मनी गुरु चाल चलै सुभ सो बन में सर सीव लसै।।"

प्रतिलोम छन्द—

"बैस सबेसु सदेसु खरे बस के रस ज्यों बध मान नसै।
लै फल कामिनि बैस रची चिरु नीरुत जी चितकी बननै।।
है बन को सुति, री, बर धीर धरी भर भी सजनी सुन तैं।
सैल बसी रस मैं नव सोभ सु ले चल चारु गुनी मन मैं।।"[3]

प्रस्तुत दोनों ही सवैयों में प्रति चरण अनुलोम सम्बन्ध है, जबकि निम्न सवैयों में यह सम्बन्ध समस्तगत है—

"नैनन वैवर हार सु भासत सारस यों रस सैनन मा।
मैन तियासी लसी सब भासु रची जस जोवन भार समा।।
है नवनो नग बेसर भामिन लाल लखो यहि सार रमा।
सैर सजी न चलो तर भौनु सु मान तजो हुलसो तन मा।।"[4]

प्रस्तुत छन्द का प्रतिलोम पाठ छन्द के अन्तिम शब्द 'तनमा' के अन्तिम अक्षर 'मा' से आरम्भ होता है तथा वामगति से चलकर छन्द के प्रथमाक्षर 'नै' पर आकर समाप्त होता है। इस प्रकार छन्द की सम्पूर्णता बनी रहती है, इसमें कहीं व्यक्तिक्रम नहीं आता। प्रतिलोम छन्द निम्न है—

१. चि० चं०, प्रकाश ५, छन्द ११, पृ० ४२
२. क० प्रि०, प्रभाव १६, छन्द ६६
३. उपरिवत्, छन्द ६७-६८
४. चि० चं०, प्रकाश ५, छन्द १२-१३, पृ० ४२

"मानत सो लहु जो तन मा सुनु भौ रत लोचन जी सरसैं ।
मार रसा हिय खोल लला नमि भार सबे गननौ वन है ॥
मा सर भा नव जो सज चीर सुभाव ससील सी या तिन मैं ।
मान नसैं सर यों सरसा तस भासु रहा रव वैनन नैं ॥"

एकछन्द गतागत

प्रस्तुत गतागत के अन्तर्गत ऐसे छन्द की रचना की जाती है जिसका प्रतिलोमपाठ करने पर भी वही छन्द निःसृत होता है, किसी प्रकार का अन्तर नहीं आता।[1] ऊपर 'पादानुपाद गतागत' के अन्तर्गत जो उदाहरण दिया गया है उस छन्द की विशेषता भी यही है कि अनुलोमतः तथा प्रतिलोमतः दोनों पाठ अभिन्न होते हैं। परन्तु उसमें और प्रस्तुत छन्द में अन्तर यह है कि 'पादानुपाद गतागत' के अन्तर्गत इकाई छन्द का 'पाद' अथवा 'चरण' होता है, कारण वहाँ प्रत्येक चरण का पाठ अलग-अलग 'गत' तथा 'आगत' रूप में अभिन्न होता है, जबकि 'एकछन्द गतागत' के अन्तर्गत इकाई सम्पूर्ण छन्द ही होता है, यानी वहाँ पाठ अनुलोमतः छन्द के आदि वर्ण से लेकर अन्तिम वर्ण तक अक्षुण्ण रहता है, बीच में कहीं टूटता नहीं। और उसी प्रकार प्रतिलोमपाठ भी छन्द के अन्तिम वर्ण से लेकर आदि वर्ण तक वामगति से चलता है। इस प्रकार दोनों ही पाठ अभिन्न होते हैं। काशिराज रचित निम्न सवैया से यह बात स्पष्ट होगी—

"सारत लोचन मावर ताल रमा सब वैनन नै सरसा ।
सारम सोहय में न तियासी रहा बन त्यों नम सो दरसा ॥
सारद सो मन त्यों न बहार सिया तिन में यह सो मरसा ।
सारस नैनन वै बस मार लतारवमान चलो तरसा ॥"[2]

प्रस्तुत सवैया तथा उपर्युक्त 'पादानुपादगतागत' के अन्तर्गत उदाहृत सवैया में तत्वतः कोई अन्तर नहीं है, किन्तु उनके पाठ तथा चरणों की योजना इस प्रकार की गई है कि जहाँ 'पादानुपादगतागत' के उदाहरणस्वरूप उद्धृत सवैये में प्रत्येक चरण का पाठ अनुलोम तथा प्रतिलोमतः एक ही है, वहाँ प्रस्तुत सवैया में सम्पूर्ण छन्द का पाठ अनुलोम-प्रतिलोमतः एक है, प्रत्येक चरण का नहीं। भोजराज ने 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में प्रस्तुत चित्र को 'श्लोकगतागत' की संज्ञा दी है। उन्होंने भी 'पादगत' तथा 'श्लोकगत' में यही अन्तर रखा है।

---

१. "उलटे सुलटे पाठ में वर्ण-अर्थ जहँ एक ।
जानु गतागत चित्र सो कवि करि कह्यो विवेक ॥"—चि० चं०, प्रकाश ५

२. उपरिवत्, छन्द ८

हिन्दी में केशवदास, भिखारीदास, पदुमनदास, गोकुलकवि प्रभृत आचार्यों ने 'एक-छन्द गतागत' के अन्तर्गत जो उदाहरण दिये हैं उनमें तथा 'पादानुपाद गतागत' के अन्तर्गत दिये गये उदाहरणों में किसी प्रकार का अन्तर नहीं रखा है।[1] लक्षण में वे यह स्वीकार करते हैं कि 'पादानुपाद गतागत' में प्रत्येक 'पाद' का पाठ 'गतागत' रूप से होता है जबकि 'एकछन्द' में प्रतिलोम तथा अनुलोम दोनों पाठ अभिन्न होते हैं, पर उनके उदाहरणों से इन दोनों प्रकार की चित्ररचनाओं में किसी प्रकार का वैभिन्य स्पष्ट नहीं होता, कारण 'एकछन्द गतागत' के अन्तर्गत दिये गये उदाहरण में भी पाठ की गति प्रत्येक चरण को ही 'इकाई' मान कर चलती है। निश्चित ही इन आचार्यों ने इन दोनों के अन्तर को स्पष्टतः या तो समझा नहीं या अपने विवेचन को सर्वथा निर्दोष बनाने की ओर वे पर्याप्त सजग नहीं रहे। उदाहरण के लिये केशवदास द्वारा दिये गये लक्षण तथा उदाहरण प्रस्तुत हैं—

"सूधो उलटो बाँचिये एकहि अर्थ प्रमान।
कहत गतागत ताहि कवि केशवदास सुजान।।"[2]

उदाहरण—

"मासम सोह सजै बन, बीन नवीन बजै सहसोम समा।
मार लतानि बनावति सारि रिसाति बनावनि ताल रमा।।
मानव ही रहि मोरद मोद दमोदर मोहि रही बन मा।
माल बनी बलि केसवदास सदा बस केलि बनी बलमा।।"[3]

प्रस्तुत सवैया की रचना 'पादानुपाद गतागत' के अनुकूल है, 'एकछन्द गतागत' के नहीं।

भाषान्तर गतागत

'सरस्वतीकण्ठाभरण' के अनुकरण पर काशिराज ने 'चित्रचन्द्रिका' में 'भाषान्तर गतागत' के लक्षण-उदाहरण भी दिये हैं, अन्यथा हिन्दी में 'गतागत' के इस भेद की रचना अन्यत्र नहीं मिलती। संस्कृत में यह सुविधा थी कि संस्कृत तथा विभिन्न प्राकृत और अपभ्रंश के कतिपय शब्दों में बहुत कम अन्तर था, फलतः इन भाषाओं के बीच इस प्रकार की रचना अधिक सम्भव थी। हिन्दी को यह सुविधा कम है। विश्लेषणात्मक भाषा होने के कारण भी सन्धि तथा समास की जो सुविधा संश्लेषणात्मक संस्कृत अथवा प्राकृत में है, उससे हिन्दी वंचित है। यही कारण है कि अधिक उत्कृष्ट चित्ररचनाएँ हिन्दी में नहीं हो पातीं। प्रस्तुत रचना के अभाव का भी बहुत कुछ यही कारण है। केवल काशिराज ने ही इसकी रचना की है। उनका लक्षण निम्न है—

"सुलटे भाषा और है उलटे भाषा और।
भाषांतर यह चित्र है सुकवि कहत करि गौर।।"[4]

---

१. क० प्रि०, प्रभाव १६, छन्द ७०
का० नि०, परि २१, छन्द ७७-७८
का० मं०, पृ० १२४, छन्द १७
चि० क०, पृ० ११६, छन्द ६५
२. क० प्रि०, प्र० १६, छन्द ६९
३. उपरिवत्, छन्द ७०
४. चि० चं०, प्रकाश ५, छन्द १४, पृ० ४५

अर्थात् 'भाषान्तर गतागत चित्र' उस छन्दविशेष को कहा जाता है, जिसके अनुलोम तथा प्रतिलोम पाठों में भिन्न-भिन्न भाषाओं के छन्द निकलें। काशिराज ने जो उदाहरण दिया है, वह अनुलोम पाठ में तो हिन्दी का दोहा है जबकि प्रतिलोम पाठ में 'फारसी की बैत' हो जाता है। छन्द निम्न है—

अनुलोम पाठ—

'दय जोरी समहतो ये रू हेम वान सेक।
कंज चन्द्रमा सिंह मृग लाजै भाजै एक॥"[1]

प्रतिलोम पाठ से निम्न फारसी का छन्द निःसृत होता है—

"कसे न वाम हे रूये तो हम सरी जो यद।
वराहे वस्फ तो चु तो सनेज वाँ पोयद॥"

भिन्नछन्द एकार्थ गतागत

प्रस्तुत चित्ररचना संस्कृत में कहीं नहीं मिलती। हिन्दी में भी केवल काशिराज ने ही 'गतप्रत्यागत' के इस भेद की रचना की है। प्रस्तुत रचना के अन्तर्गत काशिराज ने एक ऐसे छन्द की रचना की है, जिसको प्रतिलोमतः पढ़ने पर छन्द तो दूसरा निकलता है पर मूल छन्द के अर्थ में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता। दोनों पाठों में केवल शब्दावलियाँ ही भिन्न होती हैं, अर्थ एक ही रहता है। अन्यत्र कहीं इस प्रकार का छन्द दीख नहीं पड़ता। काशिराज ने प्रस्तुत चित्र-प्रकार का निम्न लक्षण दिया है—

"एक अर्थ पद भिन्न जहँ उलटे सुलटे बीच।
सोऊ गतागत चित्र है कहत सुकवि रस सींच।"[2]

उदाहरणार्थ छन्द निम्न है—

अनुलोम पाठ—

"सारस सों सरसारव मावर सोमसमा समसो ततसो।
पारद ते दरपा चख में खच कोमल आलम कोनन को॥
भारद सादर भा भर-सौरभ यों नव जोवन जो सस जो।
हार सुभासु रहा गल में लग त्यों गन नौनग लोर रलो॥"[3]

प्रतिलोमतः यद्यपि पाठ बदल जाता है पर अर्थ वही रहता है—

"लोर रलो गन नौनग त्यों गल मे लग हार सुभासु रहा।
जो सस जो नवजोवन यों भर सौरभ भारद सादर भा॥

---

१. चि० चं०, प्रकाश ५, छन्द १६-१७

२. उपरिवत्, छन्द ९

३. उपरिवत्, छन्द १०

कोनन कोमल आलम को चख मे खच पारद ते दरसा।
सो तत सोम समा सम सो रव मावर सारस सों सरसा ॥"

उपर्युक्त मूल छन्द की रचना की ही यह विशेषता है कि प्रतिलोम पाठ में यद्यपि शब्दों के क्रम में परिवर्तन हो जाता है परन्तु वाक्य अथवा चरणविशेष के शब्द बने ही रहते हैं, किसी अन्य शब्द का प्रवेश अथवा किसी शब्द का निःसरण नहीं होता। फलतः जहाँ पाठ की दृष्टि से छन्द भिन्न हो जाता है वहाँ अर्थ की दृष्टि से उनकी अभिन्नता बनी रहती है। प्रस्तुत चित्ररचना का भी यही चमत्कार है।

हिन्दी अथवा संस्कृत में भी 'गतप्रत्यागत' के अन्तर्गत कुल इतने ही भेदों का विवेचन हुआ है। कहा जा चुका है कि इस 'गतिचित्र' के अन्तर्गत हिन्दी के आचार्यों ने संस्कृत में प्राप्त सभी भेदोपभेदों का विवेचन किया है। हमने देखा ही है कि काशिराज ने एक ऐसे भेद का भी विवेचन किया है जिसकी रचना संस्कृत में नहीं हुई है। किन्तु अन्य रचनाओं को देखते हुए इसकी रचना संस्कृत के कवियों के लिये कोई कठिन न थी, असल में उन्होंने इसका कोई विशेष महत्त्व नहीं देखा होगा। संस्कृत में तो हिन्दी से कहीं अधिक सुविधा है कि वाक्य में किसी शब्द को कहीं भी रखा जा सकता है, फलतः यह संस्कृत के कवियों की असमर्थता का सूचक नहीं है, वरन् इस प्रकार की रचना की अनावश्यकता का ही सूचक है।

पाठान्तर चित्र

संस्कृत में प्रचलित 'च्युत', 'दत्त' तथा 'च्युतदत्त' की रचना तो हिन्दी के कवियों ने नहीं की है, किन्तु भिखारीदास तथा उन्हीं के अनुकरण पर गोकुलकवि ने 'पाठान्तर चित्र' की रचना की है,[1] जो बहुत कुछ संस्कृत में प्रचलित उपर्युक्त चित्ररचनाओं के ही समान है। अन्तर यह है कि च्युतादि के अन्तर्गत जहाँ प्रमुखतः 'मात्रा' 'बिन्दु' आदि का आश्रय ग्रहण किया जाता था वहाँ 'पाठान्तर चित्र' की सीमा वर्ण तक ही है। भिखारीदास ने 'पाठान्तर' का निम्न लक्षण दिया है—

"बरन लुपे बदले बढ़ै चमत्कार ठहराइ
सो पाठांतर चित्र है, सुनो सुमति समुदाइ ॥"[2]

प्रस्तुत परिभाषा के अनुसार छन्दविशेष में यदि किसी वर्ण के लुप्त हो जाने, परिवर्तित हो जाने अथवा बढ़ जाने से चमत्कार उत्पन्न होता हो तो उसे ही 'पाठान्तर चित्र' कहा जाता है। इस प्रकार 'पाठान्तर' के तीन भेद होते हैं—

१. ऐसी छन्दरचना जिसमें वर्णविशेष के लुप्त हो जाने से चमत्कार की उत्पत्ति होती है।

---

१. का० नि०, परि २१, छन्द ३४-३८
चि० क०, पृ० ११२-११३, छन्द ३८-४२
२. का० नि०, परि २१, छन्द ३४

२. ऐसी छन्दरचना जहाँ वर्णविशेष के परिवर्तन से चमत्कार उत्पन्न होता है।

३. ऐसी छन्दरचना जिसमें वर्णविशेष की वृद्धि से चमत्कार उत्पन्न होता है।

'च्युत', 'दत्त' तथा 'च्युतदत्त' चित्रों की भी यही विशेषता थी कि किसी श्लोक में क्रमशः मात्रादि के हटा देने से, अथवा परिवर्तन कर देने से उस श्लोक के अर्थ में भी परिवर्तन हो जाता था। 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में 'चित्र' के अन्तर्गत तो नहीं वरन् 'प्रहेलिका' के अन्तर्गत इनका जो विवेचन हुआ है, उसमें मात्रादि के स्थान में वर्ण का ही उपयोग किया गया है।[1] इस प्रकार पाठान्तर के भेदों का संस्कृत की इन रचनाओं से विशेष अन्तर नहीं रह जाता। इन भेदों के उदाहरण निम्न हैं—

(१) पाठान्तर चित्र—वर्णलोप

प्रस्तुत चित्र के अन्तर्गत किसी छन्द में से एक या अधिक वर्णों को छोड़ देने से छन्द का अर्थ परिवर्तित हो जाता है। इसका निम्न उदाहरण भिखारीदास ने दिया है—

"तमोल मँगाइ धरौ इहि बारी।
मिलिबे की जिय में रुचि भारी॥
कन्हाइ फिरै कबधौं सखि प्यारी।
बिहार की आजु करौं अधिकारी॥"[2]

प्रस्तुत छन्द के प्रत्येक चरण के प्रथम वर्ण को छोड़ देने के उपरान्त छन्द का रूप निम्न हो जाता है—

"मोल मँगाइ धरौ इहि बारी।
लीबे की जिय में रुचि भारी॥
न्हाइ फिरै कबधौं सखि प्यारी।
हार की आजु करौं अधिकारी॥"

स्पष्ट है कि मूल छन्द जहाँ नायिका की उक्ति अपनी सखी से है, वहाँ दूसरा छन्द नायक की उक्ति है। प्रथम छन्द में नायिका ने पान मँगा रखा है और विहार के लिये नायक के आगमन की बाट जोह रही है, किन्तु द्वितीय छन्द में नायक ने एक 'हार' खरीद रखा है और अपनी प्रिया की राह देख रहा है कि वह उसे उपहार दे। उसकी प्रिया स्नान करने गई हुई है। इस प्रकार हम देखते हैं कि दोनों ही छन्द के अर्थ बिलकुल भिन्न हो जाते हैं।

---

१. सं० कं०, परि २, श्लोक ३४६-३४८ (वृत्ति)
२. का० नि०, परि २१, छन्द ३५-३६

(२) पाठान्तर चित्र—वर्णवृद्धि (वर्णागम)

प्रस्तुत चित्ररचना का अलग से कोई उदाहरण भिखारीदास अथवा गोकुलकवि ने नहीं दिया है। वर्णलोप के उपर्युक्त छन्दों को ही वर्णवृद्धि के उदाहरण के रूप में भी मान लिया है। यहाँ पर छन्द का रूप उलट जायगा, यानी उपर्युक्त छन्द—

"मोल मँगाइ..............................अधिकारी"

ही मूल छन्द रहेगा तथा

"तमोल मँगाइ..............................अधिकारी"

वर्णवृद्धियुक्त छन्द। भिखारीदास ने इसके सम्बन्ध में स्पष्टतः लिख दिया है—

"बर्न बढ़े को पहिले लुप्त ही तैं जानबी।"[1]

(३) पाठान्तर चित्र—वर्णपरिवर्तन

पाठान्तर का तीसरा भेद 'वर्णपरिवर्तन' है। प्रस्तुत चित्र बहुत कुछ संस्कृत के 'च्युतदत्त' के समकक्ष है। 'च्युतदत्त' में किसी श्लोक से मात्रा, बिन्दु, वर्ण अथवा पद को च्युत कर उनके स्थान में अथवा अन्यत्र भी द्वितीय मात्रादि को रखकर श्लोक के अर्थ में परिवर्तन लाया जाता था। प्रस्तुत चित्र 'पाठान्तर' के 'वर्णपरिवर्तन' में भी छन्दविशेष में कतिपय वर्णों को हटाकर उनके स्थान में दूसरे वर्ण रख दिये गये हैं, और इस प्रकार छन्द का दूसरा अर्थ प्राप्त किया गया है। भिखारीदास ने 'वर्णपरिवर्तन' का जो उदाहरण दिया है उसमें छन्द के प्रथम छह चरणों में 'स' के स्थान में 'न' कर देने से अन्य छन्द प्राप्त होता है। इसी प्रकार गोकुलकवि द्वारा उदाहृत छन्द मे 'स' के स्थान में 'द' कर अन्य छन्द प्राप्त करने की योजना है। भिखारीदास रचित छन्द निम्न है—

"साज सब जाको बिन माँगे करतार देत,
परम अधीस बस भूमितल देखिये।
दासी दास केते करि लेत सधरम तें,
सलक्षन सहिम्मत सहरष अवरेखिये।
सीलतन सिरताज सखन बढ़ाये ज्यों,
सकल आसै साँचु में जगत जस पेखिये।
हिन्दूपति गुन में जे गाए मैं सकारै ताकों,
बैरिन में क्रम तें नकारै करि लेखिये।।"[2]

छन्द के अन्तिम चरण में छन्द में प्रयुक्त 'सकार' को 'नकार' में परिवर्तित कर दूसरा छन्द बनाने का संकेत स्वयं कवि ने दे दिया है। इस प्रकार से निर्मित छन्द का अर्थ 'बैरियों' के पक्ष में ठहरता है जबकि मूल छन्द का अर्थ हिन्दूपति अर्थात् भिखारीदास के आश्रयदाता के पक्ष में घटित होता है। परिवर्तित छन्द निम्न होगा—

"नाज नब जाकों बिन मागें करतार देत,
परम अधीन बन भूमि तल देखिये।

---

१. काव्य निर्णय, परि २१, छन्द ३८ का तिलक, ३८ अ

२. उपरिवत्, छन्द ३८

दानी दान केते करिलेत न धरम ते,
न लक्षन न हिंमत न हरख अवरेखिये ॥
नीलतन निरताज नखन बढ़ाए ज्यों
नकल आनै नाच में जगत जन पेखिये ।
हिंदूपति गुन में जे गाये मैं सकारै ताकों
बैरिन में क्रम तें नकारै करि लेखिये ।।"

इस प्रकार संस्कृत के 'च्युत', 'दत्त' तथा 'च्युतदत्त' के स्थान में हिन्दी में 'पाठान्तर' चित्रों की रचना हुई है, किन्तु भिखारीदास तथा गोकुलकवि के अतिरिक्त अन्य कवियों अथवा आचार्यों में इसकी रचना नहीं मिलती । केशवदास ने भी इस चित्र का कोई उल्लेख नहीं किया है, न 'चित्रचन्द्रिका' में ही इसका विवेचन दीख पड़ता है ।

गुप्त अथवा गूढ़ चित्र

'गुप्त' अथवा 'गूढ़' का प्राचीनतम उदाहरण हमें रुद्रट के 'काव्यालंकार' में मिलता है । किन्तु 'काव्यालंकार' में रुद्रट ने एक ही श्लोक में 'कारकगूढ़' तथा 'क्रियागूढ़' दोनों के उदाहरण दिये हैं।[1] 'गूढ़' का कोई लक्षण हमें रुद्रट में नहीं मिलता। 'अग्निपुराण' में 'गुप्त' नाम से केवल लक्षण का ही एक श्लोक है जिसके अनुसार "यदि किसी वाक्य में वाक्यांग गुप्त होते हुए भी भावी अर्थ (सम्भावित अर्थ) को सिद्ध करने वाला हो, उस अंग की आकांक्षा से जब इसका समावेश, गूढ़ होते हुए भी किया जाता है तो उसे 'गुप्त' कहते हैं।"[2]

तात्पर्य यह कि श्लोक में कारक अथवा कर्म अथवा अन्य किसी वाक्यांग की योजना होती तो है पर वह अन्य वाक्यांगों अथवा पदों में ही इस प्रकार छिपा रहता है कि सामान्यतः स्पष्ट नहीं होता । श्लोक का अर्थ स्पष्ट करने के लिये इन गुप्त वाक्यांगों को स्पष्ट करना आवश्यक होता है ।

संस्कृत के परवर्ती चित्रकवियों तथा आचार्यों ने 'गूढ़' की रचना तथा विवेचन विस्तार से किया है । 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में भोजराज ने यद्यपि 'गूढ़' को 'चित्र' से स्वतन्त्र माना है फिर भी वे ही प्रथम आचार्य हैं जिन्होंने 'गूढ़' के भेदोपभेदों का विस्तार से विवेचन किया है। सरस्वतीकण्ठाभरणकार ने 'क्रियागूढ़', 'कारकगूढ़', 'सम्बन्धगूढ़', पाद गूढ़', 'अभिप्राय गूढ़' तथा 'वस्तुगूढ़'—'गूढ़' के ये छह भेद माने हैं।[3] निश्चित ही कारक के अन्तर्गत कारकों के सभी भेद आ जाते हैं। भोजराज के बाद अन्य परवर्ती आचार्यों ने 'गूढ़' के कतिपय अन्य भेदों के भी उदाहरण दिये हैं। उदाहरण के लिये धर्मदास ने 'विदग्ध-मुख-मण्डन' में उपर्युक्त भेदों के अतिरिक्त 'आमन्त्रितगुप्त', 'समासगुप्त',

---

१. काव्यालंकार, अध्याय ५, छन्द ३०

२. "यस्मिनगुप्ते ऽपि वाक्याङ्गे भाव्यर्थो ऽप (पा) रमार्थिकः (परिसाधकः) ॥२६॥
तदङ्गे विहिता काङ्क्षस्तद्गुप्तंगूढ़मप्यदः ॥२७-१—अध्याय ३४३

३. "क्रियाकारक सम्बन्धे पदाभिप्रायवस्तुभिः ।
"गोपितैः षड्विधं प्राहुर्गूढ़ गूढ़ार्थवेदिनः ॥१४७॥"—स० कं०, परि २, कारिका

'लिंग गुप्त', 'वचन गुप्त' तथा 'लिंगवचनगुप्त' के उदाहरण भी दिये हैं।[१] कहना नहीं होगा कि धर्मदास ने 'कारकगुप्त' के अन्तर्गत 'कर्तृ', 'कर्म', 'करण', 'सम्प्रदान', 'अपादान' तथा 'अधिकरण' गुप्तों के अलग-अलग उदाहरण दिये हैं।[२]

इस विस्तार के अतिरिक्त धर्मदास ने 'गूढ़' तथा 'गुप्त' में किंचित अन्तर भी देखा हैं। 'गूढ़' के अन्तर्गत उसने 'कालसार जाति', 'कालसारादिद्वयजाति' तथा 'अजमारादिगूढ़-जाति' के लक्षण-उदाहरण दिये हैं जो अन्यत्र नहीं मिलते।[३] इनके साथ ही 'पदगूढ़', 'पादगूढ़' तथा 'अर्थगूढ़' के उदाहरण भी 'विदग्ध-मुख-मण्डन' में दिये गये हैं।[४] किन्तु अन्य आचार्यों ने भोजराज तथा रुद्रट की तरह ही 'गूढ़' तथा 'गुप्त' को पर्यायवाची माना है। कवियों में सबसे अधिक प्रचलन 'पादगूढ़' का ही रहा।

हिन्दी में 'गूढ़' के उपर्युक्त भेदों में से केवल 'पादगूढ़' अथवा 'चरणगुप्त' ही गृहीत हुआ। 'गूढ़' के अन्य प्रकारों की रचना हिन्दी के कवियों अथवा आचार्यों ने बिलकुल नहीं की। 'चरणगुप्त' में भी अधिक उदाहरण चतुर्थ अथवा अन्तिम चरण अथवा 'चरणार्धगुप्त' के ही दीख पड़ते हैं। 'चरणगुप्त' के अतिरिक्त हिन्दीकवियों ने 'गुप्त' के एक अन्य भेद की रचना की है, जिसकी रचना संस्कृत में नहीं दीख पड़ती। इसके अन्तर्गत छन्दविशेष में वर्णों का विन्यास इस प्रकार का होता है कि किसी निश्चितक्रम से बीच-बीच के वर्णों को एक साथ ले लेने पर कवि अथवा उसके आश्रयदाता का परिचय अथवा कोई अन्य छन्द निकल आता है। इस प्रकार की गुप्तरचना को 'मध्याक्षर गुप्त' की संज्ञा दी जा सकती है। केशवदास को छोड़कर चित्र की रचना करने वाले हिन्दी के लगभग सभी कवियों ने इस 'मध्याक्षर गुप्त' की रचना की है।[५] नीचे हम हिन्दी में पाये जानेवाले 'गुप्तचित्रों' के उदाहरण प्रस्तुत करेंगे।

'चरणगुप्त' के उदाहरणस्वरूप केशवदास ने निम्न छन्दों की रचना की है—

"राजत अँग रस विरस अति सरस सरस अति भेव।
पग पग प्रति दुति बढ़ति अति बय नव मन मति देव॥
सुबरन बरनसु सुबरननि रचित रुचिर रुचि लीन।
तन मन प्रगट प्रबीन मति नवरँग राय प्रबीन॥"[६]

---

१. वि० मु० मं०, परि ४, श्लोक ४८-५५
२. उपरिवत्, श्लोक ३४-४५
३. उपरिवत्, श्लोक ९-१५
४. उपरिवत्, श्लोक १६-२०
५. राजा म० सिंह, प्र० सा०, लहर ६१, छन्द २१, लहर ६३, छन्द १२
दीन दयाल गिरि, वैराग्य दिनेश, पृ० १७७, छन्द २-३
भिखारीदास, का० नि०, परि २१, छन्द ९१
गोकुलकवि, चित्र कलाधर, पृ० ९८-९९, १००
उपरिवत्, अष्टयाम प्रकाश, पृ० १९२, छन्द २०
भुवनेश कवि, भुवनेशभूषण, पृ० ४९, छन्द २
६. क० प्रि०, प्रभाव १६, छन्द ७५

प्रस्तुत दोहों में दूसरे दोहे का अन्तिम अथवा चतुर्थ चरण 'नवरँग राय प्रबीन' के सारे वर्ण दोनों दोहों के अन्य चरणों में ही छिपे हैं। इस चरण को प्राप्त करने के हेतु इन दोहों के वर्णों को निम्न चित्र में न्यस्त किया गया है—

रा ५	ज	त	अँ	ग ४	र	स	वि	र ३
स	अ	ति	स	र	स	स	र	स
क्ष	ति	भे	व	प	ग	प	ग	प्र
ति	दु	ति	ब	ढ़	ति	अ	ति	ब
य ६	न	व	म	न	म	ति	दे	व २
सु	ब	र	न	ब	र	न	सु	सु
ब	र	न	नि	र	चि	त	रु	चि
र	रु	चि	ली	न	त	न	म	न
७ प्र	ग	ट	प्र	बी ८	न	म	ति	१ न ९

उपर्युक्त चित्र में ९-९ कोष्ठकों की ९ पंक्तियाँ हैं। इन कोष्ठकों में ऋजुगति से ही प्रति-कोष्ठक प्रति वर्ण की रीति से दोहों के वर्णों को लिखा गया है। अन्तिम कोष्ठक में दूसरे दोहे के चतुर्थ चरण का प्रथम वर्ण 'न' लिख पाता है, शेष वर्ण अन्य कोष्ठकों के वर्णों से ही निकल आते हैं। इस गुप्तचरण के वर्णों के उद्धार के हेतु चित्र में कोष्ठकों में संख्या लिख दी गई है। १ संख्यायुक्त कोष्ठक से आरम्भ कर २, ३, ४, ५, ६, ७ तथा ८ संख्या से युक्त कोष्ठकों से होते हुए पुनः १ संख्यायुक्त कोष्ठक में आकर चरण का नवाँ अथवा अन्तिम वर्ण भी प्राप्त हो जाता है और इस प्रकार प्रस्तुत 'चरणगुप्त चित्र' से गुप्त चरण की प्राप्ति हो जाती है। प्रस्तुत चित्र का चमत्कार अभीष्ठ चरण के वर्णों की गुप्त योजना में ही है।

यहाँ संस्कृत में प्रचलित 'गूढ़चतुर्थ' अथवा 'चतुर्थ पादगूढ़' तथा हिन्दी में प्रचलित 'चरणगुप्त' में एक स्पष्ट अन्तर यह है कि जहाँ संस्कृत में श्लोक के शेष तीनों पादों में चतुर्थ पाद के वर्ण विखरे रहते थे, उनमें कोई निश्चित क्रम नहीं होता था, वहाँ हिन्दी में रचित 'चरणगुप्त' युक्त छन्द में गुप्त चरण के वर्ण एक निश्चित क्रम में विन्यस्त दीख पड़ते हैं। उदाहरण के लिये भोजराज के 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में उदाहृत 'पादगूढ़' का श्लोक निम्न है—

"द्युवियद्गामिनी तारसंरावविहितश्रुतिः।
हैमीषुमाला शुशुभे (विद्युतामिव संहतिः)॥"[1]

१. स० कं०, परि०२, श्लोक ३५७ (वृत्ति)

प्रस्तुत श्लोक के चतुर्थपाद 'विद्युतामिव संहतिः' के सभी वर्ण अन्य तीनों पादों में ही हैं, किन्तु उनमें किसी प्रकार का क्रम नहीं दीखता। इसके विपरीत ऊपर के केशवदास रचित दोहों में अथवा भिखारीदास के निम्न छन्द के गुप्त चरण के वर्ण यद्यपि अन्य चरणों से ही प्राप्त होते हैं, किन्तु उनमें एक सुनिश्चित क्रम भी है। यही कारण है कि जहाँ हिन्दी के छन्दों के वर्ण चित्र में बिठाये जा सके हैं वहाँ संस्कृत के वर्णों से कोई चित्र नहीं बन पाता। भिखारीदास रचित छन्द और चित्र निम्न है—

"री सखि कहा कहौं छबि गुनगनि अलिन्ह बसायो काननि में।
काननि तजि पुनि दृगनि बस्यो ज्यों प्रानी बिरमे थाननि में।
क्रम क्रम दास रह्यो मिलि मन सों कढ़े न बिबिध बिधाननि में।
लूटै ज्ञान समूहनि को अब भ्रमैं बिहारी प्राननि में।।"[1]

प्रस्तुत छन्द का अन्तिम चरण 'भ्रमैं बिहारी प्राननि में' गुप्त है जो अन्य चरणों से ही प्राप्त होता है। चित्र में छन्द का न्यास और गुप्तचरण का उद्धार निम्न है—

४

५	री	सखि क	हा	कहौं छ	बि	३
	गु यो जि	न गनि काननि पुनि दृ	अ में ग	लिन्हब कानन निबस्यो	सा त ज्यों	
६	प्रा	नी बिर	में ९	थाननि	में	२
	क्र लि ध	म क्रम मन सों बिधान	दा क नि	सरह्यो ढ़े न बि में लूटै	मि बि ज्ञा	
	न	समह	नि	को अ ब	भ्र	१
७						

८

उपर्युक्त चित्र के समान ही प्रस्तुत चित्र में भी गुप्त चरण के उद्धार के लिये अभीष्ठ कोष्ठकों में संख्या का प्रयोग किया गया है। संस्कृत की पद्धति पर रचित 'गूढ़चतुर्थ' का

१. का० नि०, परि २१, छन्द ९०

उदाहरण हमें गोकुलकवि रचित 'चित्रकलाधर' में मिलता है, जहाँ छन्द के अन्य चरणों के वर्णों में बिना किसी क्रम के ही गुप्त चरण के वर्ण बिखरे हुए हैं या यदि कोई क्रम रखने की चेष्टा भी हुई है तो उसका निर्वाह नहीं हो सका है।[1] गोकुलकवि के अतिरिक्त 'चरण-गुप्त' की अन्य सभी रचनाएँ भिखारीदास अथवा केशवदास के ही अनुकरण पर हुई हैं।

मध्याक्षर गुप्त

प्रस्तुत प्रकार की रचनाओं के अन्तर्गत ऐसे छन्द परिगणित होंगे जिनके वर्णों में से कुछ को निकाल कर साथ रखने से कवि के सम्बन्ध में, उसके आश्रयदाता के सम्बन्ध में या इसी प्रकार की अन्य सूचनाएँ मिलती हैं। इस प्रकार के छन्द की रचना यद्यपि बहुत अधिक नहीं हुई है फिर भी भिखारीदास, गोकुलकवि तथा भुवनेश कवि ने इसकी योजना अपनी रचनाओं में की है[2]। इनके अतिरिक्त इसी पद्धति पर दीनदयाल गिरि रचित 'वैराग्य-दिनेश' तथा राजा महिरामन सिंह रचित 'प्रबीनसागर' में ऐसे छन्दों की रचना की गई है जिनमें से कवि आदि के सम्बन्ध की सूचनाओं के बदले कोई अन्य छन्द ही निःसृत होता है।[3] संस्कृत में विशेषतः 'चक्रबन्ध' के माध्यम से कवियों ने अपना परिचय दिया है, जबकि हिन्दी में 'गुप्तचित्र' से यह काम लिया गया है।[4]

मूलछन्द से अभीष्ठ अथवा अन्य सूचनाओं के उद्धार की विधि कवियों ने स्वयं दे दी है। यहाँ भी मूलछन्द में छिपे हुए इन सूचनाओं के वर्ण एक क्रम में ही नियोजित होते हैं और उस क्रम का पता चल जाने पर इनको छन्द से निकाल पाना आसान हो जाता है। उदाहरण के लिए आचार्य भिखारीदास ने अपने सम्बन्ध की सूचनाएँ निम्न कवित्त में दी हैं—

"अभिलाषा करी सदा ऐसनि का होय वृत्थ,
सब ठौर दिन सब या ही सेवा चरचानि।
लोभा लई नीचे ज्ञान चला चलही को अंसु,
अंत है क्रिया पाताल निंदा रस ही कोखानि।

---

१. चि० क०, पृ० ५६-५७, चित्र संख्या १, २, ३ तथा ४

२. का० नि०, परि २१, छन्द ९१
चित्रकलाधर, पृ० १००
भुवनेशभूषण, पृ० ४९ छन्द २

३. वै० दि०, पृ० १७७, छन्द २-३
प्र० सा०, लहर ६१, छन्द २१
उपरिवत्, लहर ६३, छन्द १२

४. आनन्दवर्धन ने 'देवीशतक' में, रुद्रट ने 'काव्यालंकार' में, माघ ने 'शिशुपालवध' में तथा इसी प्रकार अन्य कवियों ने स्वरचित चक्रबन्धों में अपना परिचय दिया है।

सेनापति देवीकर प्रभागनती को भूप
पन्ना मोती हीरा हेम सौदा हास ही को जानि ।

हीअ पर देव कर बदे जस रटे नाऊँ
खगासन नगधर सीतानाथ कौलपानि ॥''[1]

प्रस्तुत छन्द से कवि के सम्बन्ध की अभीष्ठ सूचनाओं को निकालने के लिए स्वयं कवि ने निम्न संकेत दिया है—

''या कबित्त अंतर बरन लै तुकंत द्वै छंडि ।
दास नाम कुल ग्राम कहि राह भक्ति रस मंडि ॥''[2]

अर्थात् प्रस्तुत कवित्त में आदि के एक वर्ण तथा अन्त के दो वर्णों को छोड़कर अन्य वर्णों में प्रत्येक तीसरे वर्ण को पढ़ने से भिखारीदास के नाम, कुल तथा ग्राम के नाम का पता मिलता है । उपर्युक्त छन्द में मोटे अक्षरों को पढ़ने से कवि के नाम, कुल अथवा ग्राम के नाम का पता चलता है । इस प्रकार जो सूचनाएँ हमें प्राप्त होती हैं वे हैं—

''भिषारीदास कायत्थ बरन, वहीबार, भाइ चेनलाल को, सुत क्रिपालदास को,
नाति वीरभान को, पन्नाती रामदास को, अरबर देस, टेऊँगा नगर ता थल ।''

इसी प्रकार गोकुलकवि ने भी निम्न छन्द में अपनी वंशावली गुप्तपद्धति के माध्यम से दी है—

''गोपकुल लला कान्ह यहै थल बनो रस
नष अनषात वही रीति बिनहार आनि ।

रति के है सुतौ तन भाल उठि लाल लगे
कोन नारि तिन रंगी गिनो लाज लहो पानि ॥

नारेतीके निकर सुभग यह महा लसै
केसकर विधे मनिहारि राति जगे जानि ।

दिन गए बीति जहाँ यहा सिंचि हर बर
हाय दुष रहा कहा मान नित एसे हानि ॥[3]

---

१. का० नि०, परि २१, छन्द ९१

२. उपरिवत्, छन्द के तिलक में

३. चि० क०, पृ० १००

भिखारीदास की तरह ही गोकुलकवि ने भी प्रस्तुत छन्द में गुप्त रूप से नियोजित अपने परिचय के उद्धार के लिये निम्न संकेत दिया है—

"यहि कवित्त में आदि वरन लहि ।
क्रम ते तजि यक यक आगे गहि ॥
तजि तुकांत में तीन वरन बर ।
बढ़ै नाम वृजकुल निज नृप कर ॥"[1]

प्रस्तुत संकेत के अनुसार तुकवाले चरणों के अन्तिम तीन वर्णों को छोड़कर बाकी वर्णों में आदि से प्रारम्भ कर प्रत्येक तीसरे वर्ण को पढ़ते जाने से गोकुलकवि की वंशावली निकल आती है। इन वर्णों को उपर्युक्त छन्द में मोटे टाइप में दिया गया है। इस प्रकार इन वर्णों के पाठ से गोकुलकवि के सम्बन्ध में निम्न तथ्य प्रकाश में आते हैं—

"गोकुल कायथ बरन, अषावरी, बिहार के,
सुत भाई लाल को, नाती रंगीलाल,
पानाती निरभय मल के, कवि-महाराज दिगविजय सिंह बहादुर के मानिए।"

गोकुलकवि ने उपर्युक्त छन्द के अतिरिक्त एक अन्य छन्द की रचना भी की है जिससे महाराज दिगविजय सिंह के मन्त्री का परिचय प्राप्त होता है।[2]

'मध्यक्षरगुप्त' का एक दूसरा रूप दीन दयाल गिरि के 'वैराग्य दिनेश' तथा राजा महिरामन सिंह के 'प्रबीनसागर' में मिलता है। इन छन्दों में कवि का अथवा किसी अन्य का परिचय नहीं छिपा है, वरन् इनके मध्य से कोई अन्य छन्द ही इस पद्धति से निःसृत होता है। इस प्रकार के एक छन्द की रचना 'चित्रकलाधर' में गोकुलकवि ने भी की है, जिसके मध्य से फारसी भाषा का एक दोहा निःसृत होता है। छन्द निम्न है—

"आस त्यागवोई करो सूम जनि करो स्वामि
सहें मनसुवा जन सेई हाँस से मरै।
दाया ही फवै न ताहि जो बनावै अरि नेक
पाछे बात छल करि प्रीति भूलि ना करै।

---

१. चि० कलाधर, पृ० १००

२. उपरिवत्, पृ० ९८, चित्र संख्या ५८

रूप वे उदित भाग भूप विना साजै नीति
केहूँ लह सुष सदै दुष बड़ो सो परै।
वादि मित्र गनो फेर नैन समै दीवो षेद
सत्रु मिले दसा सोई भलो लहै को नरै॥"[1]

मोटे अक्षरों से फारसी भाषा का निम्न दोहा निःसृत होता है—

"सवो रोज रोसन जहाँ, याफताब अकबाल।
भूप दिग बिजै के हसब दिगर न दीद मिसाल॥"

इसी पद्धति पर रचा गया 'वैराग्य दिनेश' का निम्न छन्द भी द्रष्टव्य है—

"गंगा जय जन जननि देवि संपद तन श्री तन।
हे मंजुल गति कलनि पुरातन शिव ताके गन॥
कुसुम मलय तिल छिपा सुतट भावन जल पावन।
टरि भव भव भा करी सिवै तैं के ते भुविजन॥१॥
परसे दिव्य विमान कामजित वपु ते पाए।
पाप ताप बिन जना सदा शिव लोकै छाए॥
सनितपनादि दिवेस शंभु श्री कुज गुरु सेवैं।
शंभु मुकुट उरुमाल काल शशि दिवि के देवैं॥२॥"[2]

प्रस्तुत छन्द 'रोला' है तथा इनके **मोटे** वर्णों से जो छन्द बनता है वह द्रुत-विलम्बित होता है—

"जननि संतत मंगल राशि के,
कुमति पाटन पाटव भासि के।
विपदि मामव पाप विनाशि के
सपदि शंकुरु शंकरु काशि के॥"

हिन्दी में 'गुप्त' अथवा 'गूढ़' चित्र के कुल इतने ही भेद मिलते हैं। संस्कृत में पाये जानेवाले 'कारक-क्रियादि गुप्त' के रूप में हिन्दी में रचनाएँ नहीं हुई हैं। साथ ही संस्कृत में जहाँ 'गूढ़चतुर्थ' में गुप्त वर्णों की स्थिति में कोई क्रम नहीं होता वहाँ हिन्दी

---

१. चि० कलाधर, पृ० ९९
२. दी० द० ग्र०, वै० दि०, पृ० १७७

में रचे जानेवाले सभी गुप्त छन्दों के वर्णों में एक निश्चित क्रम दीख पड़ता है। ऊपर के सभी छन्दों में मोटे वर्ण एक निश्चित क्रम में ही रखे गये हैं। इस प्रकार हिन्दी में ये रचनाएँ अधिक उत्कृष्ट कोटि की सिद्ध होती हैं।

प्रश्नोत्तर

द्वितीय परिच्छेद के अन्तर्गत हम देख चुके हैं कि 'चित्र' के अन्तर्गत 'प्रश्नोत्तर' का आकलन प्रारम्भ से ही होता रहा है। रुद्रट ने 'चित्र' के गौण भेदों में 'प्रश्नोत्तर' के भी उदाहरण दिये हैं[१] तथा 'अग्निपुराण' में 'चित्र' के सात भेदों में 'प्रश्न' का स्थान प्रथम ही रखा गया है।[२] अग्निपुराणकार ने 'प्रश्न' के भेद के रूप में 'एकपृष्ट प्रश्नोत्तर' तथा 'द्विपृष्ट प्रश्नोत्तर' की चर्चा की है तथा 'एकपृष्ट प्रश्नोत्तर' के भी 'समस्त' और 'व्यस्त' दो भेद किये हैं।[३] 'अग्निपुराण' के उपरान्त भोजराज के 'सरस्वती-कण्ठाभरण' में 'चित्र' से इतर स्वतन्त्र रूप में 'प्रश्नोत्तर' का विवेचन किया गया है तथा उसके 'अन्त:प्रश्न', 'बहि:प्रश्न', 'बहिरन्त:प्रश्न', 'जातिप्रश्न', 'पृष्टप्रश्न, तथा 'उत्तरप्रश्न' इन छह भेदों के उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं।[४] द्वितीय अध्याय में ही यह भी स्पष्ट किया जा चुका है कि चित्रविवेचन की दृष्टि से संस्कृत के अचार्यों के दो वर्ग हैं, एक वर्ग में उपर्युक्त रुद्रटादि आचार्य हैं जिन्होंने 'प्रश्नोत्तरादि' को 'चित्र' के गौण भेद मानकर उनका बहुत संक्षेप में विवेचन किया है तथा दूसरे वर्ग के अन्तर्गत धर्मदास, विश्वेश्वर तथा अजितसेन जैसे परवर्ती आचार्य आते हैं जिन्होंने 'प्रश्नोत्तरादि' का ही विस्तार से विवेचन किया है। फलत: धर्मदास रचित 'विदग्ध-मुखमण्डन' में 'प्रश्नोत्तरादि' के लगभग ४३ भेदों के लक्षण-उदाहरण प्रस्तुत किये गये है। इन भेदों में से कितनों के कई उपभेद भी हैं। आचार्य विश्वेश्वर ने अपने 'कवीन्द्र कर्णाभरण' में प्रमुखत: 'विदग्ध-मुखमण्डन' का ही आश्रय लिया है, यहाँ तक कि 'प्रश्नोत्तरादि' के विवेचन का क्रम भी लगभग वही है।[५] अजितसेन रचित 'अलंकार चिन्तामणि' में भी 'चित्र' के

१. द्रष्टव्य द्वितीय अध्याय, रुद्रट के सम्बन्ध में विवेचन तथा काव्यालङ्कार, अ० ५, श्लोक २४, ३१-३२

२. द्रष्टव्य उक्त अध्याय में अग्निपुराण का विवेचन।

३. यत्र प्रदीयते तुल्यवर्ण विन्यासमुत्तरम् ॥२३॥
स प्रश्न: स्यादेकपृष्टद्विपृष्टोत्तरभेदत:।
द्विधैक पृष्टो द्विविध: समस्तोऽव्यस्त एव च ॥२४॥ — अ० पु०, अ० ३४३

४. "यस्तु पर्यनुयोगस्य निर्भेद: क्रियते: पदै:।
विदग्ध गोष्ठ्यां वाक्यैर्वा तं हि प्रश्नोत्तरं विदु: ॥१४८॥
अन्त:प्रश्नबहि:प्रश्नबहिरन्त: समाह्व यै:।
जातिपृष्टोत्तराभिख्यै: प्रश्नैस्तदपि षड्विधम् ॥१४९॥
—स० कं०, परि २, कारिकाएँ

५. कबींद्र कर्णाभरण के आरम्भ में कवि ने पुस्तक के अन्तर्गत विवेचित प्रश्नोत्तरों के प्रकारों की सूची दे दी है, वह निम्न है—

इन गौण भेदों का विस्तृत विवेचन किया गया है। किन्तु उसके साथ ही बन्धों तथा अन्य प्रमुख भेदों की भी पर्याप्त रचना इस पुस्तक में की गई है।

हिन्दी के आचार्यों ने जहाँ 'चित्र' के अन्य भेदों का विस्तृत विवेचन किया है, वहाँ 'प्रश्नोत्तरादि' गौण भेदों के भी लक्षण-उदाहरण दिये हैं। फिर भी संस्कृत के सारे भेद-प्रभेद हिन्दी में गृहीत नहीं हुए, बल्कि हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल पड़नेवाले कुछ प्रभेदों की ही रचना हुई है। 'प्रश्नोत्तर' के प्रभेदों में हिन्दी में केवल 'बहिर्लापिका' ((क) आद्यक्षरी, (ख) मध्याक्षरी, (ग) अन्ताक्षरी), 'अन्तर्लापिका' ((क) आद्यक्षरी, (ख) मध्याक्षरी, (ग) अन्ताक्षरी), 'अंकाक्षरी', 'प्रश्नोत्तर', 'शृंखलोत्तर', 'व्यस्तसमस्तोत्तर', 'कमलबन्धोत्तर', 'शासनोत्तर', 'गूढ़ोत्तर', तथा 'नागपाशोत्तर' की ही रचनाएँ मिलती हैं। इनमें भी कुछ भेद तो संस्कृत से ज्यों के त्यों गृहीत हुए हैं, कुछ के नाम में परिवर्तन कर दिये गये हैं तथा कुछ भेदों का विवेचन संस्कृत के लक्षणग्रन्थों में तो नहीं मिलता किन्तु विभिन्न सुभाषित-संग्रहों में वे प्राप्त हो जाते हैं। इस प्रकार हिन्दी में पाये जाने वाले लगभग उपर्युक्त सभी भेदों के उदाहरण या तो संस्कृत के लक्षणग्रन्थों में अथवा सुभाषित-संग्रहों में अथवा अन्यत्र संग्रह-ग्रन्थों में अवश्य मिल जाते हैं। फिर भी हिन्दी के कवियों तथा आचार्यों ने हिन्दी की प्रकृति तथा पाठकों की आवश्यकता के अनुकूल इनमें परिवर्तन किये हैं, कहीं संज्ञा में और कहीं रचनापद्धति में भी। हिन्दी में पाये जानेवाले 'प्रश्नोत्तर' के उक्त भेदों का विस्तृत विवेचन निम्न है।

बहिर्लापिका-अन्तर्लापिका

भिखारीदास ने सम्पूर्ण 'प्रश्नोत्तर चित्र' को 'बहिर्लापिका' तथा 'अन्तर्लापिका' नाम से केवल दो वर्गों में ही विभाजित किया है। इनमें भी 'बहिर्लापिका' के तो उपभेद

व्यस्तं समस्तं द्विः पूर्वं विाशष्टं च परस्परम् ।
एकालापं प्रभिन्नं च भेद्यभेदकमूर्जितम् ॥५॥
सालंकार सकौतुकपृष्टोत्तरपृष्टपूर्वकप्रश्नम् ।
भग्नादिमध्यचरमोत्तरं कथितापह्नुतिर्विषमम् ॥६॥
वृत्तं नामाख्यातं तार्कं सौत्रं शब्दशास्त्रीये ॥
वर्णाद्वाक्याच्छ्लोकादर्धात्पादात्तथोत्तरं परतः ॥७॥
चक्राम्बुजकाकपदं गोमूत्री सर्वतोभद्रम् ।
भवतिगतप्रत्यागतमधिकापचिताक्षरं च शृङ्खलया ॥ ८॥
अथ नागपाशचित्रे प्रहेलिका हृद्यमथगूढ़म् ।
स्तुति निन्दाच द्व्यर्थकमपह्नुतिर्बिन्दुमद्गुप्तम् ॥९॥
मात्राबिन्दुविसर्गाक्षरस्थितिव्यंजनच्युतकम् ।
च्युतदत्ताक्षरमित्यपि जातय इभबाणसंमिताः प्रोक्ताः ॥१०॥

—काव्यमाला, अष्टम गुच्छक, द्वितीयावृत्ति (१९११)

तुलना के लिए द्रष्टव्य, विदग्धमुखमण्डन की तालिका—प्रस्तुत पुस्तक, पृ० ३९, पा० टि० ४

नहीं हैं किन्तु 'अन्तर्लापिका' के उपभेदों के रूप में ही उन्होंने 'प्रश्नोत्तर' के अन्य सारे भेदों को देखा है।[1] उनके मत में 'अन्तलापिका' के अगणित भेद हैं, जिनमें से कुछ के ही लक्षण उन्होंने दिये हैं।[2] इसके विपरीत केशवदास ने 'अन्तर्लापिका' को 'प्रश्नोत्तर' का एक भेदमात्र माना है तथा 'प्रश्नोत्तर' के अन्य भेदों को 'अन्तर्लापिका' के उपभेद के रूप में नहीं वरन् स्वतन्त्र ही रखा है।[3] संस्कृत में 'अन्त:प्रश्न' तथा 'बहि:प्रश्न' के नाम से ये दोनों ही भेद सर्वप्रथम 'सरस्वती कण्ठाभरण' में मिलते हैं, किन्तु वहाँ भी ये 'प्रश्नोत्तर' के स्वतन्त्र भेदों के रूप में ही हैं। धर्मदास ने 'बहिर्लापिका' तथा 'अन्तर्लापिका' के नाम से 'प्रश्नोत्तर' के किसी भेद का उल्लेख नहीं किया है, फलतः इस क्षेत्र में उनका अनुकरण करनेवाले आचार्य विश्वेश्वर तथा अजितसेन ने भी इनकी चर्चा नहीं की है। फिर भी सुभाषित-संग्रहों में इनके उदाहरण पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं।[4] कहा नहीं जा सकता कि ये श्लोक कब के रचे हुए हैं। अधिक सम्भव तो यही है कि इनकी रचना बहुत हाल की है, फलतः परम्परा की दृष्टि से इनका बहुत अधिक महत्त्व नहीं हो सकता। हमने भी केशवदास आदि के अनुकरण पर 'अन्तर्लापिका' को अन्य भेदों के समान 'प्रश्नोत्तर' का एक भेद मात्र ही माना है।

बहुधा ही हिन्दी के आचार्यों ने 'बहिर्लापिका' तथा 'अन्तर्लापिका' के लक्षण साथ ही दिये हैं। ऐसे प्रश्नोत्तर को 'बहिर्लापिका' कहा जाता है जहाँ प्रश्नों के उत्तर तत्सम्बन्धी छन्द के बाहर से प्राप्त किये जायँ। इसके विपरीत 'अन्तर्लापिका' में प्रश्नों के उत्तर प्रश्नसमन्वित छन्द के अन्दर ही प्रस्तुत रहते हैं, केवल उन्हें स्पष्ट करने की आवश्यकता होती है। केशवदास ने इनके निम्न लक्षण दिये हैं—

"उत्तर बरण जो बाहिरै बहिलापिका होय।
अंतर अंतरलापिका यह जानै सब कोय॥"[5]

काशिराज ने भी केशवदास से मिलता-जुलता लक्षण ही दिया है—

---

१. प्रश्नोत्तर चित्रित करैं, सज्जन सुमति उमँग।
द्वै विधिअंतरलापिका, बहिरलापिका संग॥४॥
गुप्तोत्तर उर आनि कै व्यस्त समस्तहि जान।
एकानेकोत्तर बहुरि, नागपास पहिचानि॥६॥
है क्रमव्यस्तसमस्तपुनि, कमलबंधवत मित्र।
सुद्ध गतागत सृंखला, नवम जानिये चित्र॥६॥

२. "अगनित अंतरलापिका, यों बरनत कबिराइ।
बहिरलापि जानो उतर छंद बाहिरे पाइ॥७॥
—काव्यनिर्णय, परि २१

३. क० प्रि०, प्रभाव १६, छन्द ४३-४४-४५

४, (क) सुभाषित रत्नाकर, पृ० १९३-१९६ (चतुर्थ संस्करण, १९१३)
(ख) सुभाषित रत्नभाण्डागार, पृ० २०५-२१४ (चतुर्थ संस्करण, १९०५)

५. क० प्रि०, प्रभाव १६, छन्द ४३

"उत्तर बाहर ते जहाँ बहिर्लापिका जानु।
अंतर अंतरलापिका काशीराज बखानु॥"[1]

अन्य आचार्यों ने भी इन दोनों के यही लक्षण दिये हैं।[2] 'बहिर्लापिका' के उदाहरण-स्वरूप केशवदास रचित निम्न छन्द द्रष्टव्य है—

"अक्षर कौन विकल्प को युवति बसति केहि अंग।
बलिराजा कौने छल्यो सुरपति के परसंग॥"[3]

प्रस्तुत दोहा 'बहिर्लापिका' का उदाहरण है। यहाँ तीन प्रश्न हैं—

१. विकल्प सूचक अक्षर कौन है ?

२. युवती अर्थात् स्त्री का स्थान पुरुष के किस अंग में (ओर) होता है ?

तथा ३. सुरपति के प्रसंग में किसने राजा बलि को छला ?

इन प्रश्नों के उत्तर उपर्युक्त दोहे में नहीं हैं, वरन् इस दोहे के बाहर ही उत्तर का शब्द ढूँढ़ना पड़ता है। वह शब्द है—"वामन"। इस शब्द के प्रथम अक्षर से प्रथम प्रश्न का उत्तर मिलता है, यानी विकल्प सूचक वर्ण 'वा' है। पुनः द्वितीय प्रश्न का उत्तर 'वामन' शब्द के आदि दोनों वर्णों से निर्मित शब्द में है, अर्थात् स्त्रियों का स्थान पुरुष के 'वाम' अंग में होता है। इसी प्रकार तीसरे प्रश्न का उत्तर 'वामन' है, क्योंकि देवताओं को स्वर्ग का अधिकार देने के लिये विष्णु ने वामन का रूप धारण कर ही राजा बलि को छलकर उन्हें आधिकारच्युत किया था। इस प्रकार इस 'वामन' शब्द में उपर्युक्त तीनों ही प्रश्नों के उत्तर मिल जाते हैं चूँकि यह शब्द छन्द से बाहर का है, अतः यहाँ 'बहिर्लापिका' है।

इसके विपरीत निम्न दोहा 'अन्तर्लापिका' का उदाहरण प्रस्तुत करता है क्योंकि इसमें निहित प्रश्नों के उत्तर भी दोहे में ही प्रस्तुत हैं—

---

१. चि० चं०, प्रकाश ८, छन्द १८, पृ० १५९

२. "कहिये अंतरलापिका अंतर उत्तर जाहि।
बाहिरलापिका बरनिये उतर बाहिर जाहि॥ १५५॥
—चित्रकाव्य (रूप प्रधान)

"उत्तर आवै अनत से प्रश्न तहाँ ई होय।
सोई अंतरलापिका, हेतु तिही मधि जोय॥३८॥
"बहिरलापिका माहिं सब रीति यही पहिचानि।
हेतु छन्द में होय नहि यही विलगता जानि॥ ४१॥
—काव्यसुधाकर, कला-१४ (रसिक बिहारी)

इनके अतिरिक्त गोकुलकवि ने चित्रकलाधर में तथा लछिराम ने रावणेश्वर कल्पतरु में बहिर्लापिका के यही लक्षण दिये हैं।

३. क० प्रि०, प्रभाव १६, छन्द ४४

"कौन जाति सीतासती, दयो कौन को तात ।
कौन ग्रंथ बरन्यो हरी, रामायण अवदात ॥"[1]

प्रस्तुत दोहे में भी प्रश्नों की संख्या तीन ही है, वे हैं—

१. सती सीता किस जाति की स्त्री थी ?

२. तात अथवा पिता ने उन्हें किन्हें दिया था अर्थात् उनका विवाह किनके साथ किया था ?

तथा ३. उसका हरी जाना किस ग्रन्थ में वर्णित है ?

इन प्रश्नों के उत्तरसूचक शब्द 'रामायण' भी दोहे के चतुर्थ चरण में ही प्रस्तुत है। प्रथम प्रश्न का उत्तर है 'रामा', द्वितीय का 'रामाय' तथा तृतीय का 'रामायण'। इस प्रकार इन तीनों प्रश्नों के उत्तर छन्द में ही मिल जाते हैं। यही कारण है कि इसको 'अन्तर्लापिका' कहा जाता है।

सर्वतोभद्र बहिर्लापिका

'बहिर्लापिका' के इस भेद की रचना भिखारीदास ने की है। प्रस्तुत 'बहिर्लापिका' के अन्तर्गत दासकवि ने एक कवित्त की रचना की है जिसमें पन्द्रह प्रश्न पूछे गये हैं। इन सारे प्रश्नों के उत्तर बहिर्लापिका रीति के अनुसार बाहर से लिये गये एक शब्द 'यलवा' में ही निहित हैं। उत्तर पाने की विधि दास ने एक दोहे में स्वतः ही स्पष्ट कर दी है। इस संकेत के अनुसार एक त्रिकोण के तीनों कोनों पर 'यलवा' के तीनों वर्ण लिखकर सभी सम्भव क्रमों में इन्हें पढ़ने पर सारे प्रश्नों के उत्तर निकल आते हैं। चूँकि त्रिकोण के तीनों कोनों पर न्यस्त इन वर्णों का पाठ सभी सम्भव दिशाओं और विधियों से किया जाता है अतः पाठ की यह विधि 'सर्वतोभद्र' के अन्तर्गत आती है। यही कारण है कि इस प्रकार की 'बहिर्लापिका' को 'सर्वतोभद्र बहिर्लापिका' की संज्ञा मिली है। प्रश्नयुक्त कवित्त निम्न है—

"कोगन सुखद, काहे अंगुली सुलक्षनी है,
देत कहा घन, कैसो बिरही को चंदु है।
जालै क्यों तुकारै, कहा लघु नाम धारे कहा
नृत्य में बिचारै, कहा फाँदो ब्याध फंदु है।
कहा दै पचावे फूटे भाजनमें भात, क्यों
बुलावै कुस भ्रातु कहा बृष बोलु मंदु है।
भू पै कौन भावे, खग-खेलै को नठावै, प्रिया
फेरै कहि कहा, कहा रोगिन को बंदु है॥"[2]

प्रस्तुत कवित्त के अन्तर्गत पन्द्रह प्रश्नों की योजना है जो निम्न है—

---

१. क० प्रि०, प्रभाव १६, छन्द ४५

२. का० नि०, परि २१, छन्द ३२

१. को गन सुखद यानी कौन गण (मगण, तगण आदि) सुखद है ?
२. काहे अंगुली सुलक्षनी है यानी अंगुली किस लक्षण से सु लक्षणी होती है ?
३. देत कहा घन—बादल क्या देता है ?
४. कैसो बिरही को चंदु है—विरही को चन्द्रमा कैसा लगता है ?
५. जालै क्यों तुकारै—जाल शब्द को यदि तुकारें तो क्या कहकर ?
६. कहा लघुनाम धारे—छन्द शास्त्र में लघु का क्या नाम रखते हैं ?
७. कहा नृत्य में बिचारै—नृत्य में किस का विचार होता है ?
८. कहा फाँदो व्याध फंदु है—व्याधे ने फंद में क्या फाँदा है ?
९. कहा दै पचावै फूटे भाजन में भात—फूटे बर्तन में क्या देकर भात पकाते हैं ?
१०. क्यों बुलावै कुस भ्रातु—कुश अपने भाई को कैसे बुलाते हैं ?
११. कहा वृष बोलु मंदु है—बैल की भद्दी बोली क्या है ?
१२. भूपै कौन भावै—पृथ्वी पर कौन भाता है अथवा राजा को कौन अच्छा लगता है ?
१३. खग खेलै को नठावै—पक्षी के खेल को कौन नष्ट कर देता है ?
१४. प्रिया फेरे कहि कहा—प्रिया को क्या कहकर (अपनी ओर) फेरना चाहिये ?
१५. कहा रोगिन को बंदु है—रोगियों के लिये क्या बंद अथवा वर्जित है ?

इन प्रश्नों का उत्तर पाने के लिये भिखारीदास ने निम्न दोहे में संकेत दिये हैं—

"खचि त्रिकोण यलवाहि लिखि, पढ़ो अर्थ मिलि ज्योंहि ।
उतरु सर्वतोभद्र यह, बहिरलापिका योंहि ॥"[1]

इसके अतिरिक्त 'अस्यातिलक' की संज्ञा देकर इन प्रश्नों के निम्न उत्तर भी पुस्तक में प्राप्त होते हैं—

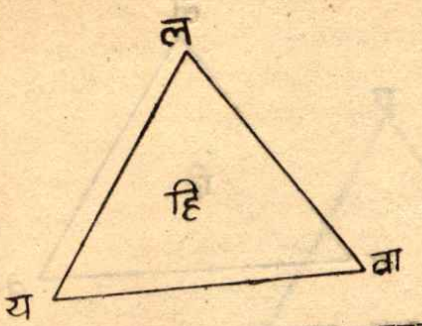
"यगन, जव, वल, जवाल, लव, जलवा, वाल, लय, लवा, लवा, लवायवा, वाज, वाल, लवाय, वायल ।"

किन्तु पुस्तक के अलग-अलग संस्करणों में प्रस्तुत प्रश्नों के उत्तरों में तथा छन्द के पाठ में भी अन्तर आ जाता है । वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग तथा कल्याणदास ब्रदर्स, वाराणसी से प्रकाशित प्रतियों में 'यलवाहि' शब्द में 'हि' को विभक्ति न मानकर शब्द को ही चार वर्णों का माना गया है और त्रिकोण में 'हि' को मध्य में लिखा गया है । किन्तु नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से प्रकाशित 'भिखारीदास ग्रन्थावली' में 'हि' विभक्ति मानी गयी है और केवल 'यलवा' के तीनों वर्णों के सहारे ही प्रश्नों के उत्तर दिये गये हैं । तीनों ही पुस्तकों में दिये गये उत्तर निम्न हैं—

---

१. काव्यनिर्णय, परि २१, छन्द ३३

काव्यनिर्णय, वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग (१९२६ ई०)[1]

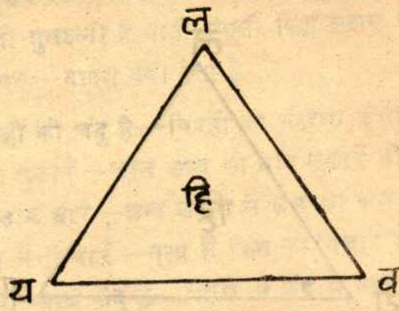


प्रश्न	उत्तर
१. को गँन सुखद—कौन समूह सुखदाता है ?	लहि अर्थात् प्राप्ति
२. कोंन अँगरी सुलच्छिनी है—अँगरी (कवच) किसकी सुलक्षणी है ?	बाज पक्षी की
३. देत कहा घन—मेघ क्या देता है ?	जल (यल)
४. कैसो बिरही को चंद है—विरही को चन्द्रमा कैसा है ?	जवाल
५. जारै को तुसारै—पाला को कौन नष्ट करता है ?	यहि (सूर्य)
६. कहा लघु नाम धारै—लघु नामधारी कौन ?	वाय (पवन)
७. कहा नृत्य में बिचारै—नाच में विचारणीय क्या है ?	लय
८. कहा फाँद्यो व्याध फंद है—व्याधा फंदे में किसे फँसाता है ?	लवा पक्षी
९. कहा दे पचावे फूटे भाजन में भात—फूटे पात्र में क्या देकर भात पकाया जाता है ?	हिल (गीला आटा)
१०. क्यों बुलायौ कुस भ्रात—कुश भाई को किस प्रकार बुलाते थे ?	हिय (प्यारे)
११. कहा वृष बोल मंद है—बैल की बोली कहाँ मन्द होती है ?	हिवाल (अत्यन्त शीत से)।
१२. भूपै भावै कौन—राजा को क्या अच्छा लगता है ?	बाल (नवयौवना स्त्री)
१३. खग खेले कौन सने—किस स्थान में पक्षी विहार करते हैं ?	वाहिज (शून्य स्थान में)
१४. प्रिया फेरे कहा—प्यारी क्या कहकर लौटाती है ?	वाहि (उसको)
१५. कहा रोगिन को बन्द है—रोगियों के लिये क्या बन्द है ?	जलवाहि (स्नान)

---

१. द्रष्टव्य भिखारीदास ग्रन्थावली, भाग २ (सम्पादक—विश्वनाथ प्रसाद मिश्र) की भूमिका (सम्पादन शैली), पृ० १६

काव्य निर्णय, कल्याणदास एण्ड ब्रदर्स, ज्ञानवापी, वाराणसी (१९५६ ई०)[१]



१. को गँन सुखद—समूह को सुखदाता कौन ?   लहि, अर्थप्राप्ति

२. कौन आंगुरी सुलच्छिनी हैं,—किसकी उँगलियाँ अच्छी हैं ?
बाज, बाजपक्षी की

३. देत कहा घँन—मेघ क्या देते हैं ?   जल

४. कैसो बिरही को चंद है—बिरही को चन्द कैसा लगता है ?
जवाल (सा), अत्यन्त दुखद

५. जारै को तुसारै—तुसार (पाले) को कौन जलाता (नष्ट) करता है ? जहि, सूर्य

६. कहा लधु नाँम धारै—लघु (छोटा) नाम किसका ? वाय (वाहि)—वायुका

७. कहा नृत्य में बिचारै—नृत्य में क्या विचारणीय ?   लय—धुन, आवाज

८. कहा फाँद्यो व्याध फंद है—फन्दे में व्याध किसे फँसाते हैं ? लवा (पक्षी) को

९. कहा दै पचावै फूटे भाजँन में भात—फूटे पात्र (बर्तन) में क्या लगाकर भात (चावल) पकाते हैं ?   हिल—गीला आटा लगाकर

१०. कैसे बुलावै कुस भ्रात—भाई को कुश (श्रीरामपुत्र) क्या कहकर बुलाते हैं ?
हिय—प्यारे कहकर

११. कहा वृष बोल मंद है—बैल की बोली कब बन्द होती है ?
'हिवाल'—शीत के समय

१२. भूपैं कौंन भावै—राजा को कौन सुहाता है ?
वाल (बाल)—बाला, तरुणी स्त्रियाँ

१३. खेलें खग कोन समें—किस स्थान में पक्षी विहार करते हैं ?
वाहिज—शून्य एकान्त स्थान में

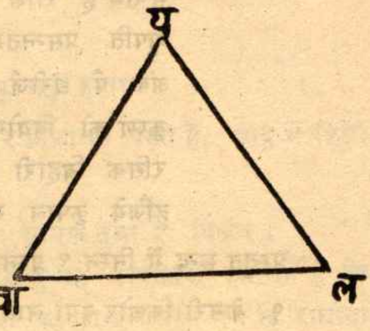
१४. प्रिया फेरे कहा कहि—प्रियतमा (स्त्री) पति से क्या कहकर बोलती है
वाहि—उनको

१५. कहा रोगिन को बंद है—रोगियों को क्या बन्द है ?   जल-वाहि—स्नान

१. द्रष्टव्य भिखारीदास ग्रन्थावली, भाग २ की भूमिका तथा पृ० ५८६-८७

इनके अतिरिक्त काशी नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित 'भिखारीदास ग्रन्थावली' के द्वितीय खण्ड में सम्पादक आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने उपर्युक्त प्रश्नों के निम्न उत्तर दिये हैं[1]—

१. य (यगण)
२. यवा (जवा) से
३. यल (जल)
४. यवाल (जवाल)
५. यलवा (जलवा)
६. ल
७. लय
८. लवा
९. लयवा (लइवा—लेवा)
१०. लवाय (लव आय—ऐ लव, आ)
११. वा (बाँ)
१२. वाल (बाल)
१३. वाय (बाज)
१४. वालय (बालइ—बाले—ऐ बाले)
१५. वायल (वायुल या वातल—वायुकारक पदार्थ)



'चित्रकाव्य' के सम्बन्ध में यह ध्यातव्य है कि इस क्षेत्र में ब-व तथा य-ज में अभेद देखा जाता है। आवश्यकतानुसार एक के स्थान में दूसरे का प्रयोग किया जा सकता है। प्रस्तुत 'बहिर्लापिका' की संज्ञा 'सर्वतोभद्र' का तात्पर्य यही है कि 'यलवा' शब्द से जितने भी सार्थक शब्द बन सकते हैं प्रायः सभी का उपयोग यहाँ किया गया है इस दृष्टि से 'यलवाहि' की अपेक्षा 'यलवा' शब्द ही अधिक सार्थक दीख पड़ता है।

आद्यक्षरी, मध्याक्षरी तथा अन्ताक्षरी बहिर्लापिका

'बहिर्लापिका' के उपर्युक्त भेदों के अन्तर्गत प्रश्नों के जो उत्तर बाहर से आते हैं उनके आदि, मध्य अथवा अन्त के अक्षरों को मिलाने से किसी पूर्वनिश्चित वाक्य की प्राप्ति होती है। चूँकि छन्द के अन्तर्गत केवल प्रश्न होते हैं तथा उनके उत्तरों को बाहर से ढूँढ़ना पड़ता है, अतः ये रचनाएँ 'बहिर्लापिका' के अन्तर्गत हैं। साथ ही ये 'आद्यक्षरी', 'मध्याक्षरी' अथवा 'अन्ताक्षरी' इसलिये हैं कि लेखक के अभीष्ट उत्तर की प्राप्ति इन उत्तरों के इन्हीं अक्षरों से होती है। निम्न उदाहरण इसके समझने में सहायक होंगे—

---

१. द्रष्टव्य उक्त ग्रन्थ की भूमिका

आद्यक्षरी बहिर्लापिका—

"लाये काह केसरी किसोर, जुद्ध आवै काह,
सीता मातु को है, गिरिनाम का बखानिये ।।
सप्तम है राशि कौन, पिवत मलिंद कहा,
भूपति प्रसन्नता की रीति कहा ठानिये ।।
अंक पै धरीजै पंच बिंदु सो कहावै कहा,
कृष्ण को वियोग तन त्याग काको जानिये ।।
रसिक बिहारी आदि बर्न लेहु उत्तर के ।
हूजिये कृपाल यह साँची बात मानिये ।"[1]

प्रस्तुत छन्द में निम्न ९ प्रश्न हैं और उनके उत्तर बाहर से मिलते हैं—

१. केसरी किशोर क्या लाये ? — मेरु
२. युद्ध में क्या आता है ? — रोष
३. सीता की माँ कौन है ? — महि (पृथ्वी)
४. पहाड़ का नाम क्या है ? — नग
५. सप्तम राशि कौन है ? — तुला
६. मलिंद (भ्रमर) क्या पीता है ? — मधु
७. राजा को प्रसन्न करने की कौन रीति है ? — सेवा
८. किसी अंक के आगे पाँच शून्य रखने पर क्या होता है ? — लाख
९. कृष्ण के वियोग में किसने शरीर छोड़ा ? — गोपी

इन उत्तरों के प्रथम अक्षर क्रमशः मे, रो, म, न, तु, म, से, ला तथा गो को मिलाने से छन्द की अन्तिम पंक्ति में उल्लिखित कवि का कथन स्पष्ट हो जाता है, यानी हे कृपाल यह सच्ची बात मानिये कि "मेरो मन तुमसे लागो"। इस प्रकार यह 'आद्यक्षरी बहिर्लापिका' है।

मध्याक्षरी बहिर्लापिका

"कौन सुवन को रूप निरखि अति डरी जसोमति ?
को विरचत सब विश्व होय उतपल ते उतपति ?
केहि भंज्यो रघुवीर ? वीर का समर लगावत ?
विदुषन को मन कहा होत नहिं दुख के पावत ?
हैं लोक-लोक इनके बरन आदि अंत महि-महि तजत ।
जो मधि सो दीन दयाल गिरि हित करि नित चित में भजत ।।"[2]

१, काव्य सुधाकर, कला १४, छन्द ४५, पृ० ४७
२. दीनदयाल गिरि ग्रन्थावली, वैराग्यदिनेश, पृ० १६४, छन्द ९

प्रस्तुत छन्द में निम्न पाँच प्रश्न हैं—

१. अपने पुत्र के किस रूप को देखकर यशोदा डर गई ?

२. सम्पूर्ण विश्व की रचना कौन करता है जिसकी उत्पत्ति उत्पल से हुई है ?

३. रघुवीर ने किसको तोड़ा ?

४. वीर युद्ध में क्या लगाते हैं ?

५. बुद्धिमानों का मन दुःख पाने पर भी क्या नहीं होता ?

इन सभी प्रश्नों के उत्तर बाहर से सोचकर निकालने पड़ते हैं, छन्द में किसी भी रूप में वे नहीं हैं। ये उत्तर हैं—

१. विराट्, २. विधाता, ३. पिनाक, ४. सायक तथा ५. विकल।

इस प्रकार यह 'बहिर्लापिका' का छन्द है किन्तु यह 'मध्याक्षरी' इसलिये है कि इन उत्तरों के मध्य अक्षर 'रा', 'धा', 'ना' 'य' तथा 'क' को एक साथ लेने से 'राधानायक' शब्द निःसृत होता है जिसकी संगति छन्द की अन्तिम दोनों पंक्तियों से बैठती है।

अन्ताक्षरी बहिर्लापिका

'आद्यक्षरी' तथा 'मध्याक्षरी' के समान ही 'अन्ताक्षरी बहिर्लापिका' में भी छन्द में पूछे गये प्रश्नों के उत्तर बाहर से आते हैं और इन उत्तरों के अन्तिम वर्णों के द्वारा कोई सार्थक शब्द निर्मित होता है जिसकी योजना कवि को अभीष्ट होती है। निम्न छन्द उदाहरणस्वरूप द्रष्टव्य है—

"सिंधु सुता को नाम कह ? जल बिन कौन बिहाल ?
नृप कीरति किहि तेल है ? काह करै नव बाल ?"[१]

प्रस्तुत दोहे में चार प्रश्न हैं—

१. सिंधु की पुत्री का नाम क्या है ?

२. जल के विना कौन व्याकुल हो जाता है ?

३. राजा की कीर्ति के लिये तेल का काम कौन करता है ?

५. नई बाला (मुग्धा नायिका) क्या करती है ?

इन प्रश्नों के उत्तर हैं—

१. रमा, २. मीन, ३. नीत, तथा ४. लाज

इन उत्तरों के अन्तिम वर्णों से 'मानतज' शब्द का निर्माण होता है और अन्तिम प्रश्न के प्रसंग में इस शब्द की सार्थकता देखी जा सकती है। यद्यपि उपर्युक्त 'आद्यक्षरी' तथा 'मध्याक्षरी' के समान यहाँ इस प्रकार से निर्मित इस शब्द के लिये अलग से और स्पष्ट किसी पंक्ति या प्रसंग की रचना नहीं की गई है, फिर भी चित्ररचनाओं की दृष्टि से इस शब्द की उपयोगिता यहाँ सिद्ध हो सकती है।

---

१. काव्यसुधाकर, कला-१४, पृ० ४८, छन्द ४७

आद्यक्षरी, मध्याक्षरी तथा अन्ताक्षरी अन्तर्लापिका

'बहिर्लापिका' की तरह ही 'अन्तर्लापिका' के भी 'आद्यक्षरी', 'मध्याक्षरी' तथा 'अन्ताक्षरी' तीन भेद हैं।[1] किन्तु जहाँ 'बहिर्लापिका' में प्रश्न के उत्तरों से निःसृत होनेवाले शब्द अथवा वाक्यांश का छन्द में कहीं उल्लेख नहीं होता वरन् उसकी संगति बिठानी पड़ती है वहाँ 'अन्तर्लापिका' में वह छन्द में ही प्रस्तुत होता है। अन्य बातें दोनों में ज्यों की त्यों रहती हैं। 'बहिर्लापिका' तथा 'अन्तर्लापिका' के ये भेद प्रश्नोत्तरशैली में ही सम्भव हैं। यों एक अन्य प्रकार की 'अन्तर्लापिका आद्यक्षरी' भी होती है जिसमें अभीष्ट वाक्य अथवा वाक्यांश छन्द की प्रत्येक पंक्ति के आदि वर्ण को लेकर ही निर्मित होता है। 'अन्तर्लापिका' के इस भेद की शैली प्रश्नोत्तर की नहीं होती। इसका विवेचन हम आगे करेंगे। प्रश्नोत्तरशैली में रची जानेवाली 'अन्तर्लापिका' के तीनों भेदों का विवेचन निम्न है—

आद्यक्षरी अन्तर्लापिका (प्रश्नोत्तर)

'काके हैं दशसीस ? कनक मृग को बनि आयो ?
यम भगिनी कहि कौन ? तियहि कस पुरुष सुहायो ?
मेघ निरखि सुख काहि ? कृष्ण माता का कहिये ?
काको रूप कराल ? विविधि किहि ते दुख लहिये ?
है कौन अवस्था रुचिर अति ? काह बजावत देवगन ?
विश्वास जानि निशिदिन भजो **रामायन सियराम तन** ॥"[2]

प्रस्तुत छन्द में दस प्रश्न हैं जिनके उत्तरों के प्रथमाक्षरों से छन्द का अन्तिम चरण 'रामायन सियराम तन' प्राप्त होता है। चूँकि यह चरण छन्द के अभिन्न अंग के रूप में छन्द में ही प्रस्तुन है, अतः यहाँ 'अन्तर्लापिका आद्यक्षरी' है। दसों प्रश्न तथा उनके उत्तर निम्न हैं—

१. दस सिर किसको है ?	रावण
२. को कनक मृग बनकर आया ?	मारीच
३. यम की बहन कौन है ?	यमुना
४. स्त्री को किस प्रकार का पुरुष अच्छा लगता है ? अथवा पुरुष को किस प्रकार की स्त्री अच्छी लगती है ?	नवीन
५. मेघ को देखकर किसको सुख होता है ?	सिखंडी (शिखि)
६. कृष्ण की माता किसको कहते हैं ?	यशोदा

१. "है यह अन्तर्लापिका तीन भाँति लखि लेहु
आदि, मध्य, अन्ताक्षरी बुध कविवर चित देहु ॥३९॥
उत्तर में जिहि ठौर के बरन लेहु लखि हेत।
आदि, मध्य अरु अन्त गुनि, वही नाम कहि देत ॥४०॥" —का० सु०, कला १४, पृ० ४५

२. का० सु०, कला १४, पृ० ४६, छन्द ४२

७. कराल रूप किसका होता है ?	राक्षस
८. अनेक प्रकार के दुःख किससे प्राप्त होते हैं ?	मदन
९. अत्यन्त रुचिर अवस्था कौन है ?	तरुण
१०. देवगण क्या बजाते हैं ?	नगारा

मध्याक्षरी अन्तर्लापिका (प्रश्नोत्तर)

"कौन धरा को धर्‌यो ? कहा उपज्यो चतुरानन ?
को सोना को गढ़ै ? काह हरि ओढ़्‌यो कानन ?
को निरखै शशिरूप ? कवन को जार्‌यो शंकर ?
को गिरजा को पीव ? कवन वन फिरत भयंकर ?
कहि कवन भाल भूषित करत ? मध्य बरन छूटै न पल ।
जगत सिंह राखत सदा **राम नाम को यक बल** ।"[1]

उपर्युक्त 'आद्यक्षरी' के छन्द के समान ही प्रस्तुत छन्द में भी ९ प्रश्न हैं । केवल अन्तर यह है कि जहाँ 'आद्यक्षरी' में अभीष्ट पद की प्राप्ति उत्तरों के आद्यक्षरों से हुई है वहाँ प्रस्तुत स्थल पर इन प्रश्नों के उत्तरों के मध्य अक्षर आपस में मिलकर अभीष्ट वाक्यांश अथवा चरण का निर्माण करते हैं । यही कारण है कि इसका नाम 'मध्याक्षरी अन्तर्लापिका' है । ध्यान देने की बात यह है कि यहाँ सारे प्रश्नों के उत्तर तीन वर्णों से बने शब्द ही हैं तथा अभीष्ट वाक्यांश छन्द के अन्तिम चरण के रूप में छन्द में ही उपस्थित है । छन्द में उल्लिखित प्रश्न और उत्तर निम्न हैं—

१. किसने पृथ्वी को धारण किया ?	वाराह
२. ब्रह्मा की उत्पत्ति कहाँ हुई ?	कमल (पर)
३. सोना को कौन गढ़ता है ?	सुनार
४. वन में हरि ने क्या ओढ़ा ?	कमरी
५. चन्द्रमा का रूप कौन निहारता है ?	चकोर
६. शंकर ने किसे जलाया ?	मयन
७. गिरिजा का पति कौन है ?	शंकर
८. भयंकर वन में कौन घूमता है ?	शबर
९. कौन वस्तु भाल को भूषित करती है ?	तिलक

इन प्रश्नों के उत्तरों के मध्य वर्णों को यदि हम साथ करें तो हमें 'रामनाम को यक बल' वाक्यांश की प्राप्ति होती है । चूँकि यह वाक्यांश छन्द में उपस्थित है अतः यह छन्द 'अन्तर्लापिका' का उदाहरण है । अभीष्ट वाक्यांश को प्राप्त करने के लिये इन उत्तर-शब्दों को निम्न क्रम में सजाया जा सकता है—

---

१. चित्र मीमांसा (जगत सिंह), छन्द १३६

वा	क	सु	क	च	म	शं	श	ति
रा	म	ना	म	को	य	क	ब	ल
ह	ल	र	री	र	न	र	र	क

उपर्युक्त चित्र में बीच की कोष्ठकपंक्ति में लिखे वर्णों से अभीष्ट वाक्यांश की प्राप्ति होती है।

अन्ताक्षरी अन्तर्लापिका (प्रश्नोत्तर)

'कहत कहा शिव पुरिहि ? वृक्ष से को लपटाई ?
क्रोधित मुनि कह देत ? कौन विधि नृपहि बड़ाई ?
काह कृपिन में अधिक ? कहा कुल बधू करै अति ?
पूरन शशि तिथि कौन ? होत काकेवश जड़मति ?
को सकल जगत में बहु सुखी ? कौन देश जल बिन सुधरु ?
अभिलाख सदा पूजत भली **सीतापति भज काम तरु** ॥"[1]

'आद्यक्षरी' तथा 'मध्याक्षरी अन्तर्लापिका' के समान ही प्रस्तुत छन्द में भी दस प्रश्न हैं। किन्तु यहाँ इन प्रश्नों के उत्तरों के अन्तिम वर्णों को एक साथ लेने से अभीष्ट वाक्यांश की प्राप्ति होती है। 'अन्ताक्षरी' संज्ञा का औचित्य यही है। यह अभीष्ट वाक्यांश है 'सीतापति भज काम तरु' जो प्रस्तुत छन्द की अन्तिम पंक्ति का उत्तरार्द्ध है। छन्द में नियोजित प्रश्न और उनके उत्तर निम्न हैं—

१. शिवपुरी को क्या कहते हैं ?	काशी
२. वृक्ष से कौन लिपटता है ?	लता
३. क्रोधित मुनि क्या देते हैं ?	शाप
४. किस विधि से राजा को प्रशंसा मिलती है ?	नीति
५. कृपण में क्या अधिक होता है ?	लोभ
६. कुलबधू अत्यन्त क्या करती है ?	लाज
७. पूर्णचन्द्र वाली तिथि कौन होती है ?	राका
८. मूर्ख (जड़) किसके वश हो जाते है ?	काम
९. सम्पूर्ण संसार में अत्यन्त सुखी कौन है ?	संत
१०. कौन देश बिना जल का है ?	मरु (मारवाड़)

१. का० सु०, कला १४, पृ० ४६-४७, छन्द ४४

आद्यक्षरी तथा मध्याक्षरी अन्तर्लापिका

हिन्दी के कवियों ने एक अन्य प्रकार की 'अन्तर्लापिका' की रचना भी की है। इस 'अन्तर्लापिका' की शैली प्रश्नोत्तर की नहीं है। इसके अन्तर्गत छन्द की पंक्तियों का आरम्भ क्रमशः अभीष्ट पद के वर्णों से ही होता है। फलस्वरूप यदि छन्द की सारी पंक्तियों के आदि वर्ण को एक साथ मिलाकर पढ़ा जाय तो अभीष्ट पद की प्राप्ति हमें होती है। हिन्दी में विशेषकर भारतेन्दु काल में 'अन्तर्लापिका' की यह पद्धति अत्यन्त ही प्रचलित रही है। इस प्रकार के छन्दों में गोप्यविधि से कवि अपना परिचय दे दिया करता था। इसके अधिक प्रचलन का एक कारण यह भी था कि विशेष कर किसी के स्वागत अथवा बधाई के लिये की जानेवाली रचना में कवि उसके नाम का अंकन भी इस विधि से कर पाता था। पत्रों में भी कविलोग इस शैली का प्रयोग किया करते थे। भारतेन्दु काल तथा उसके बाद भी 'अन्तर्लापिका' की इस पद्धति का इतना प्रचलन था कि अन्य अनेक कवियों के साथ ही महावीर प्रसाद द्विवेदी जैसे व्यक्ति भी इस प्रकार की रचना का लोभ संवरण नहीं कर सके। अपनी कवितापुस्तक 'ऋतु-तरंगिनी' में उन्होंने एक ऐसी रचना की है जिसकी पंक्तियों के आद्यक्षरों से उनका नाम निःसृत होता है।[1] उदाहरण के लिये निम्न छन्द को देखा जा सकता है—

'**म** न धरु हरि को ध्यान, **मि** लत जाते सुख सारो।
क रु सन्तन को संग, **र** है नहिं नेकु विकारो॥
न र सोई बड़भाग, **जा** सु मत्त रामहि राच्यो।
पु नि तीरथ व्रत दान, **पु** रान सप्रेम जु वांच्यो॥
र स रसिक ताहि कहिये सही, **र** हत भक्ति रस जो मगन।
कवि ग्राम आदि अरु मध्य ते जिल्ला जानिहैं बुधि सदन॥"[2]

---

१. रचना निम्न है—

२९

म नोज राजा मधु-मान मानी
हा रावली युत प्रमदा सयानी।
वी नैवकण्ठी कर दान देई
र जाय दोऊ कर जोरि लेई॥

३०

प्र वाल रंगारुणता नसाई
सा री निरीतानन श्री सिराई।
द ई बसन्तावनि त्यागि कैसे
द्वि मास भोगी नव नारि कैसे॥

३१

वे गि प्रयानापन जानि आछे
दी न्हीं सुजो जो वनभूमि पाछे।
कृ ताति सो सो मधु श्री विहीना
त न्वांगे बे प्रीतम ज्यों मलीना।" —ऋ० त०, तरंग ६, पृ० ५५-५६

प्रस्तुत कविता की प्रत्येक पंक्ति के आद्यक्षर को साथ लेने से 'महावीर प्रसाद द्विवेदी कृत,' निकलता है।

२. कविशिक्षक ग्रन्थ, पृ० ७७, छन्द १२५

प्रस्तुत छन्द के रचयिता 'साधोगिरि गोस्वामी' हैं। उन्होंने 'अन्तर्लापिका' की इसी विधि से यहाँ अपने ग्राम तथा जिला का नामोल्लेख कर दिया है। स्पष्ट है कि छन्द की प्रथम पाँच पंक्तियों के पूर्वार्द्ध के आदि वर्णों से उनके ग्राम का नाम 'मकनपुर' निःसृत होता है, तथा उन्हीं पांचों पंक्तियों के उत्तरार्द्ध के आदि वर्णों से उनके जिले का नाम 'मिरजापुर' प्राप्त होता है। इस प्रकार प्रस्तुत छन्द में 'आद्यक्षरी' तथा 'मध्याक्षरी' दोनों ही प्रकार की 'अन्तर्लापिकाओं' की योजना साथ ही हुई है। 'अन्तर्लापिका' की इस शैली में 'अन्ताक्षरी' की रचना प्राप्त नहीं होती। इसका कारण यह है कि हिन्दी की प्रायः सभी काव्यरचनाएँ तुकान्त हुआ करती थीं, फलतः किसी पदविशेष की योजना छन्द की पंक्तियों के अन्तिम वर्णों को मिलाकर सम्भव नहीं थी। ये सारे वर्ण एक ही तुकवाले होते और ऐसा कदाचित ही कोई सार्थक पद हो जिसके सारे वर्ण एक ही तुकवाले हों। इस विधि से नामविशेष की प्राप्ति तो असम्भव ही थी। इस प्रकार हम पाते हैं कि 'अन्तर्लापिका' की इस शैली के अन्तर्गत 'आद्यक्षरी' तथा 'मध्याक्षरी' की ही रचनाएँ हुई हैं और उनमें भी 'आद्यक्षरी' ही प्रमुख है।

अंकाक्षरी

राजा महिरामण सिंह रचित 'प्रबीन-सागर' तथा जमाल रचित 'जमाल माला' में कुछ रचनाएँ ऐसी प्राप्त होती हैं जिनमें शब्दों के स्थान पर अंकों का प्रयोग किया गया है। ये अंक वस्तुतः वर्णों के संकेत का काम करते हैं और निश्चित विधि के अनुसार इन रचनाओं का वास्तविक रूप निकाला जा सकता है। इस प्रकार की रचनाओं को प्रबीन-सागरकार ने 'बहिर्लापिका' के नाम से अभिहित किया है।[१] इसका कारण यह है कि 'बहिर्लापिका' की शैली के अनुसार ही इन संकेतों के द्वारा प्राप्त वाक्य अथवा वाक्यांश की केवल संगति छन्द की अन्तिम पंक्ति में निहित अर्थ से बैठती है। किन्तु दूसरी ओर यह भी ध्यान देने की बात है कि अभीष्ट वाक्य अथवा वाक्यांश जिन संकेतों से प्राप्त होता है, वे संकेत स्वतः छन्द के अंग हैं, प्रश्न के उत्तरों के समान कहीं बाहर से नहीं आते। फलतः सम्पूर्ण अभीष्ट वाक्यांश (अथवा वाक्य) गुप्त रूप से छन्द में ही प्रस्तुत रहता है, केवल संकेतों के सहारे उसके प्रकटीकरण का कार्य पाठक के सम्मुख होता है। ऐसी स्थिति में इस प्रकार के छन्द का स्थान 'अन्तर्लापिका' के अन्तर्गत रखना ही अधिक समीचीन दीखता है। किन्तु चूँकि 'बहिर्लापिका' के तत्त्व भी इसमें उपस्थित होते हैं अतः इन्हें 'बहिर्लापिका' तथा 'अन्तर्लापिका' दोनों ही के सम्मिलित रूप में देखना अधिक बुद्धि-संगत होगा। यों इस प्रकार की रचनाएँ 'अंकाक्षरी' के नाम से ही अधिक प्रसिद्ध हैं और हमने भी इसी नाम का प्रयोग किया है। उदाहरण के सहारे इसका विवेचन सुगम होगा।

---

१. प्र० सा०, लहर ६१, पृ० ५८२-८३-८४

राजा महिरामण सिंह ने 'प्रबीनसागर' में 'अंकाक्षरी' की जो रचनाएँ की हैं उनमें से एक निम्न है—

"अष्ट चत्र अरु एक, षष्ट अरु पंच एक कहि।
पंच एक अरु एक, षट पंचहु एकहु वहि॥
उभय एक अरु पंच, एक एक एकहु पुनि।
पंच एक अरु तीन, तीन एक ही युगल सुनि॥
पुनि अष्ट चत्र अरु एक गनि पंच एक एकहु गहे।
अठ चत्र सप्त अंकहु परखि, यों प्रबीन सागर कहे॥"[१]

प्रस्तुत छन्द में केवल संख्याओं का उल्लेख है किन्तु जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है ये संख्याएँ यहाँ निरर्थक नहीं वरन् संकेत रूप में प्रयुक्त हैं। 'प्रबीनसागर' के टीकाकार गोबिन्द गीला भाई ने जो हिन्दी के भी लब्धप्रतिष्ठ कवि हो गये हैं, इन संकेतों को अपनी टीका में स्पष्ट किया है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने भी अपनी पुस्तक 'हिन्दी साहित्य का अतीत' खण्ड-२, में जमाल के सम्बन्ध में लिखते हुए 'जमालमाला' में संकलित अंकाक्षरी शैली में रचित पाँचों दोहों की टीका की है और 'अंकाक्षरी' में प्रयुक्त होनेवाले संकेतों को विधिवत् स्पष्ट किया है। 'प्रबीनसागर' के उपर्युक्त छन्द तथा 'जमालमाला' के दोहों में प्रयुक्त 'अंकाक्षरी' के इन संकेतों में बहुत कम अन्तर है, दोनों लगभग अभिन्न हैं।

छन्द को देखने पर हम पाते हैं कि प्रत्येक चरण में तीन अंकों का प्रयोग किया गया है। ये तीनों ही अंक क्रमशः वर्णों की वर्णसंख्या, वर्गों की वर्गसंख्या तथा मात्राओं के द्योतक हैं। यहाँ यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि इस शैली में वर्णों के कुल आठ वर्ग माने गये हैं, जिनमें स्वर तथा अन्तःस्थ और ऊष्म वर्णों के अलग-अलग वर्ग हैं। 'जमालमाला' में ऊष्मवर्ण 'श' को अन्तःस्थ वर्ग का ही पाँचवाँ वर्ण मान लिया गया है। इस प्रकार स्वर तथा ऊष्मवर्ण को छोड़कर प्रत्येक वर्ग की वर्णसंख्या पाँच होती है। स्वर वर्ग में बारह वर्ण हैं और ऊष्म में केवल तीन। इनके अतिरिक्त मात्राओं की गिनती 'आ' की मात्रा (ा) से शुरू होती है और इस प्रकार कुल ९ मात्राओं का ही विधान है। इसके विपरीत 'प्रबीनसागर' में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया गया है। सारे वर्ग अपने प्रकृत रूप में हैं। मात्राओं की गणना भी 'अ' से ही आरम्भ की गई है। दोनों ही पुस्तकों में 'ऋ' तथा 'ऌ' का स्थान न तो मात्राओं में है और न स्वर में ही। दोनों पुस्तकों में गृहीत ये अंक-संकेत निम्न तालिका से अधिक स्पष्ट होंगे—

१. प्र० सा०, लहर ६१, छन्द ७

प्रबीनसागर की संकेत तालिका

वर्ग संख्या	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
१	अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	ओ	औ	अं	अः
२	क	ख	ग	घ	ङ							
३	च	छ	ज	झ	ञ							
४	ट	ठ	ड	ढ	ण							
५	त	थ	द	ध	न							
६	प	फ	ब	भ	म							
७	य	र	ल	व								
८	श	ष	स	ह								

मात्राएँ अ ा ि ी ु ू े ै ो ौ ।

जमालमाला में गृहीत संकेत तालिका (आ० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र रचित 'हिन्दी साहित्य का अतीत' से)

वर्ग संख्या	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
१	अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	ओ	औ	अं	अः
२	क	ख	ग	घ	ङ							
३	च	छ	ज	झ	ञ							
४	ट	ठ	ड	ढ	ण							
५	त	थ	द	ध	न							
६	प	फ	ब	भ	म							
७	य	र	ल	व	श							
८	ष	स	ह									

मात्राएँ - ा ि ी ु ू े ै ो ौ

प्रस्तुत तालिका के सहारे 'प्रबीनसागर' के उपर्युक्त छन्द का निम्न अर्थ होगा—

छन्द के चरण	वर्ग	वर्ण	मात्रा	निःसृत अक्षर
अष्ट चत्र अरु एक	८	४	१	ह
षष्ठ अरु पंच एक कहि	६	५	१	म
पंच एक अरु एक,	५	१	१	त
षट पंचहु एकहु वहि	६	५	१	म
उभय एक अरु पंच	२	१	५	कु
एक एक एकहु पुनि	१	१	१	अ
पंच एक अरु तीन	५	१	३	ति
तीन एक ही युगल सुनि	३	१	२	चा
पुनि अष्ट चत्र अरु एक गनि	८	४	१	ह
पंच एक एकहु गहे	५	१	१	त
अठ चत्र सप्त अंकहु परखि	८	४	७	हे
यों प्रबीन सागर कहे ॥				

इस प्रकार इस छन्द का अर्थ यह निकलता है कि प्रबीन से सागर यों कहता है कि 'हम तमकु अति चाहत हे।' चूँकि लेखक गुजरात के हैं अतः इस वाक्य पर गुजराती की छाप स्पष्ट दीख पड़ती है।

'जमालमाला' के पाँच दोहों में से एक दोहा तथा उसका अर्थ उपर्युक्त तालिका के अनुसार नीचे दिया जाता है ताकि दोनों तालिकाओं का व्यावहारिक अन्तर स्पष्ट हो जाय। दोहा है—

"तिन तिन सत, दुइ तीन, चर पाँच छवो सत पाँच।
बिघ्न हरहु कल्यान करु, भज जमाल करि जाँच ॥"[1]

प्रस्तुत दोहे का अर्थ निम्न होगा—

	वर्ग	वर्ण	मात्रा	निःसृत अक्षर
तिन तिन सत	३	३	७	जै
दुइ तीन	२	३	—	ग
चर पाँच छवो	४	५	६	णे
सत पाँच	७	५	—	श

इस प्रकार इन अंक-संकेतों से **'जै गणेश'** पद निःसृत होता है। यहाँ स्पष्ट है कि अकारान्त वर्णों के लिये मात्राओं के स्थान पर किसी भी अंक का प्रयोग नहीं किया गया है तथा सप्तम वर्ग अथवा अन्तःस्थ वर्ग के पाँचवें वर्ण के रूप में ऊष्म वर्ग के प्रथम वर्ण 'श' को ले लिया है। 'जमाल' की इन मान्यताओं के सम्बन्ध में ऊपर विवेचन किया जा चुका है।

इन उदाहरणों के आधार पर भी हम देखते हैं कि 'अंकाक्षरी' की ये रचनाएँ न तो पूर्णतः 'बहिर्लापिका' हैं और न 'अन्तर्लापिका' ही, बल्कि दोनों के मिश्रित रूप हैं क्योंकि जहाँ निःसृत पद अथवा वाक्यांश की अर्थसंगति की शैली 'बहिर्लापिका' की है वहाँ इनका निःसरण छन्द के अन्दर से होता है, कहीं बाहर से नहीं।

प्रश्नोत्तर अथवा चित्रोत्तर

प्रस्तुत 'प्रश्नोत्तर' की स्थिति 'प्रश्नोत्तर' के एक भेदविशेष के रूप में है। हिन्दी में भिखारीदास तथा गोकुलकवि ने 'प्रश्नोत्तर' के इस भेद को 'चित्रोत्तर' की संज्ञा दी है,[2] किन्तु केशवदास, जनराज, जगतसिंह, काशिराज, लछिराम तथा दीनदयाल गिरि ने

---

१. 'हिन्दी साहित्य का अतीत' भाग २, पृ० ७७७, दोहा संख्या १, इसी स्थल पर इन दोहों के पाठ की संकेततालिका अथवा तलपट भी लेखक ने दिया है।

२. "जोई अक्षर प्रश्न के उत्तर ताही माह।
चित्रोत्तर ताही कहैं सकल कबिन के नाह ॥३०॥"
का० नि०, परि २१

"जो अक्षर है प्रश्न को उत्तर ताही माँह।
चित्रोत्तर ताको कहै जो रसज्ञ कवि नाँह ॥३३॥
चित्रकलाधर, पृ० ११०

इसे 'प्रश्नोत्तर' कहा है।[1] गोकुलकवि ने भी अपनी रचना 'अष्टयाम प्रकाश' में इसके लिये 'प्रश्नोत्तर' शब्द का प्रयोग किया है, किन्तु 'चित्रकलाधर' में उन्होंने भिखारीदास के अनुकरण पर इसका नाम 'चित्रोत्तर' रखा है।[2]

संस्कृत में प्रश्नोत्तर के इस भेद की सर्वप्रथम रचना हमें धर्मदास रचित 'विदग्ध-मुखमण्डन' में दीख पड़ती है। वहाँ इसके लिये 'प्रश्नोत्तरसम जाति' संज्ञा का प्रयोग हुआ है।[3] स्पष्ट है कि केशवदास ने 'प्रश्नोत्तर' संज्ञा वहीं से ग्रहण की है। हिन्दी की प्रवृत्ति के अनुकूल उन्होंने 'सम' शब्दांश को छोड़कर केवल 'प्रश्नोत्तर' रखना उचित समझा। किन्तु इस नाम के ग्रहण करने से सामान्य प्रश्नोत्तर तथा प्रश्नोत्तर के इस भेदविशेष की संज्ञा अभिन्न हो गई, फलतः पाठकों तथा रचयिताओं के लिये यह एक उलझन का विषय बन गया। स्वयं संस्कृत के परवर्ती चित्रकाव्य-रचयिताओं ने भी नामकरण के इस दोष को लक्ष्य किया और ईसवी सन् की १८वीं शती के प्रथम चरण में होनेवाले आचार्य विश्वेश्वर ने धर्मदास के अनुकरण पर रचित अपनी रचना 'कवीन्द्र कर्णाभरण' में प्रश्नोत्तर के इस भेद की संज्ञा 'पृष्टोत्तर जाति' दी।[4] किन्तु हिन्दी में केशवदास का ही अनुकरण हुआ और प्रश्नोत्तर के इस भेदविशेष के लिये भी 'प्रश्नोत्तर' का ही प्रयोग होता रहा। केवल भिखारीदास का ही ध्यान नाम की इस अभिन्नता की ओर गया और उन्होंने 'कुवलयानन्द' के अनुकरण पर प्रश्नोत्तर के इस भेद-विशेष के लिये 'चित्रोत्तर' शब्द का प्रयोग किया।[5] संस्कृत में ही अप्पय दीक्षित ने अपने ग्रन्थ 'कुवलयानन्द' में उत्तर अलंकार के एक भेद के रूप में 'चित्रोत्तर' का विवेचन किया है जो 'प्रश्नोत्तर चित्र' के इस भेदविशेष से अभिन्नता रखता है।[6] यहाँ यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि उत्तर अलंकार का आकलन आचार्यों ने अर्थालंकार में किया है और 'कुवलयानन्द' के पूर्व के किसी आचार्य ने उत्तर के भेद के रूप में 'चित्रोत्तर' अथवा

---

१. क० प्रि०, प्रभाव १६, छन्द ६३

"जोई आखर प्रश्न के तेई उत्तर जानु।
यहि विधि प्रश्नोत्तर सदा कहै सुबुद्धि बिधानु॥"

क० र० वि०, पत्रांक २८७, छन्द ९
चित्रमीमांसा (ज० सिं०), छन्द १४१
चि० चं०, प्रकाश ८, छन्द २५
रा० क०, कुसुम ११, पृ० २९२-२९३, छन्द ४
दी० द० गि० ग्र०, वै० दि०, पृ० १६५, छन्द १२-१३

२. अ० प्रकाश, पृ० १८५, छन्द २
चित्रकलाधर, पृ० ११०, छन्द ३३

३. वि० मु० मं०, परि २ श्लोक १३
४. क० क० भ०, परि २, कारिका ५ (काव्यमाला, अष्टम गुच्छक, द्वितीयावृत्ति, १९११)
५. का० नि०, परि २१, छन्द ३०
६. कुवलयानन्द, का० १५०

'प्रश्नोत्तर' के इस रूप का विवेचन नहीं किया है। हिन्दी में चूँकि रीतिकालीन आचार्यों ने अपने अलंकार-विवेचन में 'कुवलयानन्द' का आश्रय अधिक लिया है अतः हिन्दी के कितने ही आचार्यों ने 'चित्र' अथवा 'चित्रोत्तर' के नाम से 'प्रश्नोत्तर' के इस भेदविशेष को 'उत्तर' के एक भेद अथवा स्वतन्त्र रूप में अर्थालंकार के अन्तर्गत स्थान दिया है। भूमिका के अन्तर्गत इसका स्पष्टीकरण किया जा चुका है। भिखारीदास ने 'चित्रोत्तर' का स्थान अर्थालंकार के अन्तर्गत तो नहीं रखा किन्तु 'प्रश्नोत्तर' के उपर्युक्त भेद के लिये 'चित्र' के अन्तर्गत ही इस संज्ञा का प्रयोग किया है। ऐसा करने से नाम की एकता के कारण जो उलझन पैदा होती है, वह मिट जाती है। यह भिखारीदास की सूझ तथा उनके आचार्यत्व की महानता का प्रमाण है। फिर भी, जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, केवल गोकुलकवि ने ही 'चित्रकलाधर' में इस नाम को स्वीकार किया, हिन्दी के अन्य चित्र-काव्य-विवेचकों ने 'प्रश्नोत्तर' संज्ञा का ही इस भेदविशेष के लिये भी प्रयोग किया है।

केशवदास ने 'प्रश्नोत्तर' का निम्न लक्षण दिया है—

"जोई आखर प्रश्न के तेई उत्तर जानु।
यहि विधि प्रश्नोत्तर सदा कहैं सुबुद्धि विधानु ॥"[१]

और भिखारीदास ने भी 'चित्रोत्तर' का लक्षण यही दिया है—

जोई अक्षर प्रश्न को उत्तर ताही माह।
चित्रोत्तर ताही कहैं सकल कविन के नाह ॥"[२]

इस प्रकार स्पष्ट है कि केशव का 'प्रश्नोत्तर' तथा भिखारीदास का 'चित्रोत्तर' एक ही है। हिन्दी के अन्य कवियों ने भी, जिन्होंने इन दोनों का आधार ग्रहण किया है, 'प्रश्नोत्तर' अथवा 'चित्रोत्तर' का यही लक्षण दिया है। लक्षण की यह अभिन्नता, इनके प्रेरणास्रोत संस्कृत के कवियों में भी इसी रूप में वर्तमान है। 'विदग्धमुखमण्डन' में 'प्रश्नोत्तरसम-जाति' का निम्न लक्षण दिया गया है—

"प्रश्नवर्णश्रुतेस्तुल्यं यत्र स्यादुत्तरं वरम्।
प्रश्नोत्तरसमन्तज्ज्ञास्तदाहुः श्रूयतां यथा ॥"[3]

धर्मदास का अनुकरण करनेवाले आचार्य विश्वेश्वर ने भी 'कवीन्द्र कर्णाभरण' में 'पृष्टोत्तरजाति' का इसी से मिलता जुलता लक्षण दिया है—

"स्यात्प्रश्नश्चोत्तरयोर्यत्र वर्णश्रुत्यैकरूपता।
तत्पृष्टोत्तरमित्याहुर्जगदुत्तरबुद्धयः ॥"[४]

---

१. क० प्रि०, प्रभाव १६, छन्द ६३
२. का० नि०, परि २१, छन्द ३०
३. वि० मु० मं०, परि २, श्लोक १३
४. क० क० भ०, परि २, कारिका ५

'कुवलयानन्द' में अप्पयदीक्षित द्वारा दिया गया 'चित्रोत्तर' का लक्षण भी उपर्युक्त लक्षणों से अभिन्न है—

"प्रश्नोत्तरान्तराभिन्नमुत्तरं चित्रमुच्यते।"[१]

प्रस्तुत कारिका की वृत्ति से यह भी स्पष्ट है कि अप्पयदीक्षित ने 'चित्रोत्तर' के लक्षण-निरूपण में 'विदग्धमुखमण्डन' की सहायता भी ली है, कारण उन्होंने 'उदाहरणान्तरों' के लिए 'विदग्धमुखमण्डन' को देखने की सलाह दी है।

इन सभी लक्षणों की एकता से स्पष्ट है कि 'प्रश्नोत्तर' तथा 'चित्रोत्तर' बहुत पहले से अभिन्न हैं किन्तु इनका विवेचन दो स्थानों में होता रहा है। भिखारीदास ने दोनों की अभिन्नता को लक्ष्य किया और 'चित्रोत्तर' को अपने स्थान पर लाकर एक बड़ी उलझन को दूर करने की चेष्टा की, यद्यपि उनका अनुकरण बहुत नहीं हुआ। यहाँ लक्षण से यह स्पष्ट है कि 'प्रश्नोत्तर' अथवा 'चित्रोत्तर' चित्र की उस रचनाविशेष को कहते हैं जहाँ प्रश्न के शब्दों में ही उत्तर छिपा रहता है। उदाहरण के लिये केशवदास रचित निम्न छन्द द्रष्टव्य है—

"को दंडग्राही सुभट ? को कुमार रतिवंत ?
को कहिये ससि तें दुखी ? कोमल मन को ? संत॥"[२]

प्रस्तुत दोहे में चार प्रश्न हैं जिनके उत्तर भी प्रश्न में ही छिपे हैं। अन्वय-वैभिन्न्य से वे स्पष्ट हो जाते हैं—

प्रश्न	उत्तर
१. को दण्डग्राही सुभट ? कौन सुभट दण्ड-ग्राही होता है ? अर्थात् सबसे दण्ड लेता है।	कोदंड ग्राही (धनुष ग्रहण करने वाला)
२. को कुमार रतिवंत ? कौन कुमार प्रेमी होता है ?	कोकु मार (जो कोक शास्त्र और काम से प्रेम करता है)
३. को कहिये ससि तें दुखी ? चन्द्रमा से दुःखी किसको कहते हैं ?	कोक हिये (चकवा का हृदय)
४. कोमल मन को ? संत। हे सज्जन कोमल मन का कौन होता है ?	संत

भिखारीदास ने भी 'चित्रोत्तर' का निम्न उदाहरण दिया है—

१. कारिका १५०
२. क० प्रि०, प्रभाव १६, छन्द ६४

"कौन परावन देव सतावन, को लहै भार धरै धरती को।
को दसही में सुन्यो जित ठौरनि, को बिद सो दिगपालन टीको ॥
जानत आपु को बूंद समुद्र मैं, का मैं सरूप सराहिये नीको।
का दरबार न सोहत सूरन, को पजरावत पुन्य तपी को ॥"[1]

प्रस्तुत सवैया में भी आठ प्रश्नों की योजना है जिनके उत्तर प्रश्नों में ही छिपे हैं। वे निम्न हैं—

प्रश्न		उत्तर
१. कौन परावन देव सतावन	--देवताओं को भगाने तथा सतानेवाला कौन ?	कौनप (कौणप राक्षस)
२. को लहै भार धरे धरती को	—पृथ्वी का भार किसने धारण किया है ?	कोल (वाराह)
३. को दसही में सुन्यो जित ठौरनि	—सारी जगहें किन दसों में हैं ?	कोद (दिशाएँ)
४. को बिद सो दिगपालन टीको	—दिग्पालों का टीका कौन ?	कोविद (ब्रह्मा)
५. जानत आपु को बूंद समुद्र में	—आप किसका समूह समुद्र में जानते हैं ?	आपु (जल)
६. का मैं सरूप सराहिये नीको	—किसमें (किसका) स्वरूप सराहनीय है?	कामैं (कामदेव का)
७. का दरबार न सोहत सूरन	—शूरों के दरबार में कौन शोभा नहीं पाता ?	कादर (कायर)
८. को पजरावत पुन्य तपी को	—कौन पुण्यात्मा तपस्वी को जलाता है ? (नष्ट करता है)	कोप (क्रोध)

व्यस्तसमस्तोत्तर

विदग्धमुखमण्डनकार ने 'प्रश्नोत्तर' के भेदों-उपभेदों में सर्वप्रथम व्यस्त-समस्त जाति का ही विवेचन किया है। इसका निम्न लक्षण उन्होंने दिया है—

---

१. का० नि०, परि २१, छन्द ३१

"पृष्टं पदविभागेन केवलेनैव यद्भवेत् ।
विदुर्व्यस्तं समस्तं यत्समुदायेन पृच्छति ॥"[१]

अर्थात् यदि प्रश्नों के उत्तर पदविभागों के द्वारा प्राप्त हों तो 'व्यस्त' और यदि समस्त पद ही प्रश्न का उत्तर हो तो 'समस्त जाति' का प्रश्नोत्तर होता है। किन्तु हिन्दी में दिये गये 'व्यस्तसमस्त' के लक्षण 'विदग्धमुखमण्डन' के उपर्युक्त लक्षण से भिन्न हैं। केशवदास ने 'व्यस्तसमस्तोत्तर' का निम्न लक्षण दिया है—

"मिलै आदि के बरणस्यों केशव करि उच्चार ।
उत्तर व्यस्त-समस्त सो सांकर के अनुहार ॥"[२]

केशव द्वारा प्रदत्त उदाहरण के द्वारा प्रस्तुत लक्षण का जो रूप स्पष्ट होता है उसके अनुसार छन्द में कई प्रश्न होते हैं और प्रथम प्रश्न के उत्तर में ही क्रमशः एक-एक वर्ण बढ़ाते जाने पर अन्य प्रश्नों के उत्तर निकलते हैं। इस प्रकार अन्तिम प्रश्न का जो उत्तर प्राप्त होता है, उसका उल्लेख छन्द में ही रहता है। 'विदग्धमुखमण्डन' में 'प्रश्नोत्तर' के जितने श्लोक दिये गये हैं किसी में भी उत्तर की योजना श्लोक में ही कर देने की पद्धति नहीं अपनाई गई है। प्रश्नों के उत्तर वहाँ बाहर से गृहीत पद में हैं। 'व्यस्त समस्त जाति' के उदाहरण में भी धर्मदास ने उत्तर के शब्द बाहर से लिये हैं, प्रश्न के श्लोक में उनका कोई उल्लेख नहीं है। इसके विपरीत हिन्दी में 'व्यस्तसमस्तोत्तर' की जितनी भी रचनाएँ मिलती हैं, सभी में समस्तउत्तर छन्द के अन्तिम चरण में प्रस्तुत हैं। फलतः अन्य प्रश्नों के उत्तर निकालने में बड़ी सुगमता होती है। राजसभाओं में पूछे जानेवाले इन प्रश्नों के उत्तर निकालने में संस्कृत के कवियों को जिस बुद्धि और प्रतिभा की आवश्यकता होती थी, हिन्दी की इन रचनाओं में उसकी आवश्यकता नहीं रह जाती। कवियों ने स्वयं ही उत्तरों का विधान भी कर दिया है।

हिन्दी के आचार्यों में केवल भिखारीदास ही ऐसे आचार्य हैं जिन्होंने 'व्यस्तसमस्तोत्तर' को दो वर्गों में बाँट कर धर्मदास तथा केशवदास द्वारा प्रदत्त दोनों प्रकार के लक्षणों का समावेश अपनी पुस्तक में किया है। प्रथम भेद को उन्होंने 'व्यस्त-समस्त' की संज्ञा दी है, तथा द्वितीय को 'क्रम व्यस्त-समस्त' कहा है। किन्तु उदाहरण में भिखारीदास ने भी हिन्दी की पद्धति ही अपनाई है और प्रश्नों के समस्तउत्तर छन्द के अन्तिम चरण में दे दिये हैं। भिखारीदास द्वारा प्रदत्त 'व्यस्त-समस्त' के दोनों ही लक्षण निम्न हैं—

व्यस्त-समस्त

"द्वय त्रय बरननि काढ़ि पद, उतर जानिये व्यस्त ।
व्यस्त-समस्तोत्तर वही पिछिलो उतर समस्त ॥"[३]

---

१. वि० मु० मं०, परि १, श्लोक १९
२. क० प्रि०, प्रभाव १६, छन्द ५२
३. का० नि०, परि २१, छन्द ११

लक्षण और उदाहरण दोनों को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि भिखारीदास को प्रस्तुत लक्षण की प्रेरणा 'विदग्धमुखमण्डन' से मिली है। एक बात अवश्य है कि प्रस्तुत लक्षण के निर्माण के समय दास के ध्यान में 'विदग्धमुखमण्डन' में वर्णित 'व्यस्त-समस्त' के सारे भेद थे, यही कारण है कि उन्होंने दो-दो, तीन-तीन वर्णों को लेकर प्रश्नों के उत्तर जानने की बात कही है अन्यथा 'विदग्धमुखमण्डन' में दिये गये 'व्यस्त' के उदाहरण में केवल एक-एक वर्ण को ही लिया गया है। 'द्विर्व्यस्त' के उदाहरण में अवश्य एक से अधिक वर्णों से निर्मित शब्द भी उत्तरस्वरूप हैं और इसका कारण है एक ही शब्द से दो प्रकार के उत्तर निकालने में समास का प्रयोग।[1] निश्चित है कि भिखारीदास ने 'विदग्धमुखमण्डन' के इन सभी भेदों को मिलाकर 'व्यस्त-समस्त' का उपर्युक्त लक्षण तथा निम्न उदाहरण दिया है—

"कौन दुखद, को हंस सो, को पंकज आगार।
तरुन जनन को मनहरन को करि चित्त विचार॥
कौन धरे है धरनि को, को गयंद असवार।
कौन मृडानी (भवानी) को जनक है **परबतसरदार**॥"[2]

प्रस्तुत छन्द में सात प्रश्न हैं, और उनके उत्तर छन्द के अन्त में उल्लिखित पद "परबतसरदार' से निःसृत होते हैं। इनमें प्रथम छह के उत्तर व्यस्त रूप में (खण्ड-खण्ड) हैं और अन्तिम प्रश्न का उत्तर 'परबतसरदार' यह समस्त पद है, यथा—

प्रश्न	उत्तर
१. दुखद कौन ?	पर अर्थात् शत्रु
२. हंस के समान कौन ?	बत अर्थात् बत्तक
३. पंकज अर्थात् कमल का आगार कौन ?	सर
४. तरुण जनों का मन हरने वाला (वाली) कौन ?	दार अर्थात् तरुण स्त्रियाँ
५. पृथ्वी को कौन पकड़े हुए है ?	परबत (भूधर)
६. हाथी का असवार कौन ?	सरदार
७. पार्वती का जनक कौन ?	परबत सरदार अर्थात् पर्वतों का सरदार हिमालय

तुलना के लिये 'विदग्धमुखमण्डन' के निम्न श्लोक द्रष्टव्य हैं—

व्यस्त जाति

"पूजायां किं पदं प्रोक्तमस्तनं को बिभर्त्युरः।
कः आयुधतयाख्यातः प्रलम्बासुर विद्विषः॥"[3]

---

१. 'व्यस्तं समस्तमथवा समासपदभङ्गतः।
द्विःपृष्टं यत्तदेव स्याद् द्विर्व्यस्तं द्विःसमस्तकम्॥२४॥" वि० मु० मं०, परि १

२. का० नि०, परि २१, छन्द १२-१३

३. वि० मु० मं०, परि १, श्लोक २०

प्रस्तुत श्लोक में तीन प्रश्न हैं और उनके उत्तर 'सुनासीरः' पद में हैं। ये प्रश्न तथा उत्तर निम्न हैं—

प्रश्न	उत्तर
१. पूजायां किं पदं ?—प्रशंसा के पद क्या हैं ?	सु
२. अस्तनं उर को बिभर्ति—स्तनरहित वक्षस्थल किसका होता है ?	ना (पुरुष)
३. कः प्रलम्बासुर विद्विषः आयुधतया ख्यातः — बलराम का प्रसिद्ध आयुध क्या ?	सीरः (हल)

द्विर्व्यस्त जाति

"वर्षासु का भवति निर्मधु कीदृगब्जं
शेषं बिभर्त्ति वसुधा सहितं क एकः।
आमन्त्रयस्व धरणीधरनाथ पुत्रीं
को वाऽस्ति भस्म निचिताङ्गजनाश्रयः स्यात् ॥"[1]

प्रस्तुत श्लोक में पाँच प्रश्न हैं और उनके उत्तर 'कालिकापालिकमठः' पद में नियोजित हैं। ये प्रश्न और उनके उत्तर निम्न हैं—

१. वर्षासु का भवति—वर्षा से क्या होता है ?	कालिका (क+आलिका) जलसमूह
२. निर्मधु अब्जं कीदृक्—मधुरहित पद्म कैसा ?	अपालि (अपगता अलयः यस्मात् तत्) भ्रमरहीन
३. कः एकः वसुधा सहितं शेषं बिभर्त्ति—पृथ्वी सहित अनन्त अथवा शेष को कौन धारण करता है ?	कमठः (कच्छप)
४. धरणीधरनाथ पुत्रीं आमन्त्रयस्व—पर्वतराज पुत्री का सम्बोधन करो	कालि
५. को वा भस्म निचितांगजनानाम् आश्रयः स्यात्—उन भस्मलिप्तजनों का आश्रय क्या ?	कापालिक मठः (कापालिक का मठ)

प्रस्तुत दोनों श्लोकों से स्पष्ट हो जाता है कि भिखारीदास के उपर्युक्त छन्द में धर्मदास रचित इन श्लोकों की पद्धतियों का अनुकरण किया गया है। सत्य यह है कि धर्मदास के लक्षण के अनुसार भिखारीदास रचित उक्त छन्द 'द्विर्व्यस्तसमस्त' का उदाहरण प्रस्तुत करता है न कि सामान्य 'व्यस्तसमस्त' का।

क्रम व्यस्त-समस्त

भिखारीदास ने 'व्यस्त-समस्तोत्तर' के दूसरे भेद यानी 'क्रमव्यस्तसमस्त' का निम्न लक्षण दिया है—

१. वि० मु० म०, श्लोक २५

"इक इक बरन बढ़ावते क्रम ते लेहु समस्त ।
यह प्रस्नोत्तर जानिये, है समस्त क्रम व्यस्त ॥"[१]

'क्रम व्यस्तसमस्त' के प्रस्तुत लक्षण तथा केशवदास द्वारा प्रदत्त 'व्यस्तसमस्तोत्तर' के पूर्वोद्धृत लक्षण में बिलकुल अभिन्नता दीख पड़ती है । हिन्दी के अन्य आचार्यों ने भी 'व्यस्तसमस्तोत्तर' के जो लक्षण दिये हैं, वे भी केशवदास के अनुकरणमात्र हैं ।[२] केवल गोकुलकवि ने 'चित्रकलाधर' में भिखारीदास का आश्रय लिया है और उन्हीं के समान 'व्यस्तसमस्त' के दो भेद बनाकर दोनों के लक्षण दिये हैं । इन लक्षणों की शब्दावली भी भिखारीदास की ही है ।[3] 'व्यस्तसमस्त' तथा 'क्रम व्यस्तसमस्त' के इन लक्षणों के अतिरिक्त केशवदास तथा भिखारीदास दोनों कवियों के द्वारा रचे गये इनके उदाहरणों से इनकी अभिन्नता अधिक स्पष्ट होगी । केशवदास ने 'व्यस्तसमस्तोत्तर' का निम्न उदाहरण दिया है—

"को शुभ अक्षर, कौन युवति योधन वश कीन्हीं ।
विजय सिद्धि संग्राम राम कहँ कौने दीन्हीं ॥
कंसराज यदुवंश बसत कैसे केसवपुर ।
बट सों कहिये कहा नाम जानो अपने उर ॥
कहि कौन जननि सब जगत की कमल नयनि कंचन बरनि ।
सुनि बेद पुरानन में कही सनकादिक **शंकर तरुनि** ॥"[४]

प्रस्तुत छन्द में छह प्रश्नों की योजना है और उन सभी के उत्तर छन्द के अन्तिम पद '**शंकर तरुनि**' में छिपे हैं । यह पद स्वतः अन्तिम प्रश्न का उत्तर है जो 'समस्तोत्तर' के

---

१. का० नि०, परि २१, छन्द २१

२. "एक एक वर्ण बढ़ाइये, अन्त वर्णलो जत्र ।
व्यस्त समस्त सुचित्र यह, जानि लेहु कवि तत्र ॥"३५२॥
—लेखराज, गंगाभरण, पृ० ९८

"प्रथम बरन सो बरन सब क्रम सो बीन प्रबीन ।
उत्तर व्यस्त समस्त यह साँकर रीति नवीन ॥"१३॥
—रूप प्रधान, चित्र काव्य

"क्रम एकहि सों वरन सब पढ़िये कै यक जोरि ।
उत्तर व्यस्त समस्त तहँ बरनै सुकवि निहोरि ॥८॥
जोरि सु अच्छर अच्छरै उतर व्यस्त पद मानि ।
फिरि एकै पढ़िये जहाँ सो समस्त पहिचानि ॥"९॥
—लछिराम, रावणेश्वर कल्पतरु, कुसुम ११, पृ० २९०-९१

३. "द्वै त्रै बरनन काढ़ि पद उत्तर जानिय व्यस्त ।
व्यस्त समस्तोत्तर यही, पिछिलो उतर समस्त ॥"११॥ पृ० १०३
"यह यह बरन बढ़ाइये आषर अन्त समस्त ।
यह प्रश्नोत्तर शुभग है लै समस्त क्रम व्यस्त ॥"१८॥ पृ० १०५

४. क० प्रि०, प्रभाव १६, छन्द ५३

रूप में है। अन्य प्रश्नों के उत्तर प्रारम्भ के वर्ण में क्रमशः एक-एक अगला वर्ण मिलाते जाने से प्राप्त होते हैं। ये प्रश्न तथा उत्तर निम्न हैं—

१. शुभ सूचक अक्षर कौन है ? — शं
२. योद्धाओं ने किस युवती को अपने वश में किया ? — शंक (शंकिनी)
३. राम को युद्ध में विजय किसने दी ? — शंकर
४. कंस के राज्य में यदुवंश कैसे बसता था ? — शंकरत
५. बटवृक्ष का दूसरा नाम क्या है ? — शंकर तरु
६. कमलनैनी, कंचनवरणी समस्त जगत की माता कौन है ? — शंकर तरुनि

यहाँ हम पाते हैं 'शंकर तरुनि' इस समस्त पद के आदि वर्ण 'शं' में क्रमशः एक-एक अगला वर्ण मिलाकर सभी प्रश्नों के उत्तर बनाये गये हैं। भिखारीदास द्वारा प्रदत्त 'क्रम व्यस्तसमस्त' के उदाहरण में भी ठीक यही बात है—

"कौन बिकल्पी बर्न, कहा बिचारत गनक गन।
हरि ह्वै कै दुखहर्न, काहि बचायो ग्रसत छन॥
कै बाँ प्रभु अवतार, क्यों बारै राई लवन।
कौन सिद्धदातार, दास कह्यो **बारनबदन**॥"[1]

प्रस्तुत दोनों सोरठों में भी छह प्रश्नों की ही योजना है और इन सभी के उत्तर दुसरे सोरठे के अन्तिम शब्द '**बारनबदन**' में नियोजित हैं। ये प्रश्न हैं—

१. विकल्प का वर्ण कौन है ? — बा (वा)
२. गणक लोग क्या विचारते हैं ? — बार (दिन)
३. दुःखहर्ता बनकर हरि ने ग्रसने के समय किसे बचाया ? — बारन (गज)
४. कितनी बार भगवान ने अवतार धारण किया ? — बारनव (नौबार)
५. राई और लवण को क्यों वर्जित माना जाता है ? — बारन बद (बद अर्थात् बुराई के वारण के लिये)
६. सिद्धि का दाता कौन है ? — बारन बदन (गजमुख यानी गणेश)

यहाँ केशवदास के उपर्युक्त छन्द के समान अन्तिम प्रश्न का उत्तर समस्तपद है किन्तु अन्य प्रश्नों के उत्तर '**बारनबदन**' पद के प्रथम अक्षर 'बा' से प्रारम्भ कर क्रमशः एक-एक वर्ण मिलाते जाने से प्राप्त होते हैं। फलतः केशवदास के 'व्यस्तसमस्तोत्तर' से भिखारीदास का यह 'क्रमव्यस्तसमस्त' पूर्णतः अभिन्न है।

संस्कृत में भी इसकी परम्परा हमें मिलती है। धर्मदास ने 'विदग्धमुखमण्डन' में प्रश्नोत्तर के इस भेद को 'व्यस्तसमस्त' में न रखकर 'वर्द्धमानाक्षर' के नाम से अभिहित किया है। इस प्रकार केशव आदि हिन्दी आचार्यों का 'व्यस्तसमस्तोत्तर' तथा भिखारीदास

१. का० नि०, परि २१, छन्द २२-२३

और गोकुलकवि द्वारा विवेचित 'क्रमव्यस्तसमस्तोत्तर', 'विदग्धमुखमण्डन' का 'वर्द्धमानाक्षर' है। धर्मदास ने 'वर्द्धमानाक्षर' का निम्न लक्षण दिया है—

"आदौ मध्ये तथान्ते वा वर्द्धन्ते वर्णजातयः ।
एक द्वित्वादयो यत्र वर्द्धमानाक्षरं हि तत् ॥"[१]

अर्थात् जहाँ आदि, मध्य अथवा अन्त में एक, दो, तीन आदि वर्णों की वृद्धि हो वहाँ 'वर्द्धमानाक्षर' होता है।

प्रस्तुत लक्षण के अतिरिक्त 'विदग्धमुखमण्डन' में दिये गये 'वर्द्धमानाक्षर' के उदाहरण से 'वर्द्धमानाक्षर' तथा हिन्दी के 'व्यस्तसमस्तोत्तर' की यह अभिन्नता स्पष्ट हो जाती है। इसका एक उदाहरण निम्न है—

"किमनन्ततया ख्यातं पादेन व्यङ्गमाह्वय ।
जनानां लोचनानन्दंगे तन्वन्ति घनात्यये ॥"[२]

प्रस्तुत श्लोक में तीन प्रश्न हैं और तीनों के उत्तर 'खंजनाः' पद में निहित हैं। प्रश्न निम्न हैं—

१. अनन्ततया किं ख्यातम्—अनन्त रूप में क्या प्रसिद्ध है ? खं (आकाश)
२. पादेन व्यङ्ग आह्वय—पैर से विकलांग को क्या कहा जाता है ? खंज
३. घनात्यये के जनानां लोचनान्दं तन्वन्ति—बर्षाकाल में
कौनसी चीज मनुष्य के नेत्रानन्द का विस्तार करती है ? खजनाः (खंजन पक्षी)

उपरिलिखित हिन्दी के छन्दों के समान ही प्रस्तुत श्लोक के प्रश्नों के उत्तरों में भी उत्तरोत्तर एक-एक वर्ण की वृद्धि हुई है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि हिन्दी के सारे समस्त उत्तर जहाँ छन्द में ही नियोजित हैं, वहाँ 'विदग्धमुखमण्डन' में वे बाहर से लिये गये हैं। यही कारण है कि जहाँ 'शंकर तरुनि' अथवा 'बारन बदन' पद तत्सम्बन्धी छन्दों में ही हैं, वहाँ 'खंजना' को श्लोक के बाहर से लिया गया है। इस प्रकार हिन्दी में केशव आदि के द्वारा रचित तथा विवेचित 'व्यस्तसमस्तोत्तर' वस्तुतः संस्कृत का 'वर्द्धमानाक्षर' है, और भिखारीदास तथा गोकुलकवि द्वारा विवेचित 'व्यस्तसमस्तोत्तर' 'विदग्धमुखमण्डन' का 'द्विर्व्यस्तसमस्त'।

शृंखलोत्तर

'शृंखलोत्तर', 'व्यस्तसमस्तोत्तर' का एक भेद है। केशवदास ने 'कविप्रिया' में इस रचना को 'समस्त-व्यस्त-गतागत' कहा है।[३] 'शृंखलोत्तर' शब्द का प्रयोग उन्होंने

१. वि० मु० मं०, परि ४, श्लोक ३३

२. उपरिवत्, श्लोक ३४

३. उत्तर व्यस्त गतागतनि कछु समस्त के जानि ।
केशवदास विचारि के भिन्न पदारथ आनि ॥५७॥
—क० प्रि०, प्रभाव १६

नहीं किया है। काशिराज तथा कतिपय अन्य आचार्यों अथवा कवियों ने इसका 'सांकरि गति व्यस्त समस्त' अथवा 'सांकर बन्ध' के नाम से विवेचन किया है।[1] 'शृंखलोत्तर' नाम वस्तुतः भिखारीदास का दिया हुआ है तथा इसका प्रयोग अन्य आचार्यकवियों ने भी किया है।[2] प्रस्तुत प्रकार की रचना का स्वरूप भी 'व्यस्तसमस्त प्रश्नोत्तर' के समान होता है, अन्तर केवल यह है कि उत्तर के समस्तपद से प्रश्नों के जो उत्तर व्यस्तरूप में निकलते हैं वे सभी प्रायः दो-दो वर्णों के होते हैं, तथा उनमें वर्णों का क्रम कुछ इस प्रकार होता है कि वे परस्पर मिलकर एक शृंखला का निर्माण कर देते हैं। इस क्रम को समझने के लिये यदि हम उत्तर के समस्त पद की वर्ण संख्या ६ रखें और वर्णों को भी क्रमशः संख्या के द्वारा १, २, ३, ४, ५ तथा ६ कहें तो 'शृंखलोत्तर' के व्यस्तगत उत्तरों में वर्णों का क्रम निम्न होगा—

प्रथम उत्तर १-२, द्वितीय उत्तर २-३, तृतीय ३-४, चतुर्थ ४-५ पंचम ५-६ तथा षष्ठ समस्तपद।

यहाँ इन उत्तरों के वर्ण शृंखला की कड़ियों के समान आपस में जुड़े दीख पड़ते हैं, कारण प्रत्येक पूर्वउत्तर का अन्तिम वर्ण परउत्तर का आदि वर्ण है।

संस्कृत में भी इसका नाम 'शृंखला' ही दिया गया है। 'विदग्धमुखमण्डन' तथा 'कवीन्द्र कर्णाभरण' में ये रचनाएँ प्राप्त होती हैं। वहाँ भी 'शृंखलाजाति' के प्रश्नोत्तर का रूप बिलकुल यही है। धर्मदास ने निम्न श्लोक में प्रस्तुत बन्ध का लक्षण दिया है—

---

१. "सांकरिगति उत्तर कढ़ै व्यस्त समस्तनि बीच।
दोऊ गतागत जानिये कहत सुकवि रस सींच॥"३३॥

—चि० चं०, प्रकाश ८

"आदि वर्ण पुनि पुनि मिलें, अन्त बरन लौं जाय।
अन्त चरण में भेद यह, सांकल बंध कहाय॥"१३॥

—जनराज, क० र०, वि० पत्रांक २८८

२. "दुवै गतागत नेत चलि, इक इक बरन तजंत।
नाम सृंखलोत्तर वही, होत समस्त जु अंत॥"२६॥

—का० नि०, परि २१

"दुवौ गतागत नेत चलि यक यक वरनहि त्यागि।
कहो शृंखलोत्तर तहाँ अन्त समस्त विभागि॥"२९॥

—चित्र कलाधर, पृ० १०९

"व्यस्त समस्तक भेद में औरो एक प्रकार।
तजि पूरब आगे मिलैं शृंखलवेस विचार॥"

—रा० क०, कुसुम ११, पृ० २९१

"एक एक तजि वर्ण जहँ, चले गतागत चित्र।
शृंखलोत्तर ताहि को, भाषत सुकवि पवित्र॥"३५०॥

—लेखराज, गंगाभरण, पृ० ९८

"अन्योन्याक्षर वर्त्तिन्याचैकान्तरितयाऽथवा ।
शृङ्खलाबन्धः इत्युक्तो ... ... ॥"[१]

प्रस्तुत लक्षण के अनुसार 'शृंखलाबन्ध' का एक भेद ऐसा भी होता है जहाँ प्रश्नों के व्यस्त गत उत्तरों में समस्त उत्तरपद के वर्णों को एक-एक छोड़कर रखा जाता है। विदग्धमुखमण्डनकार ने इस प्रकार के प्रश्नोत्तर को 'एकान्तरित शृंखलाजाति' कहा है।[२]

हिन्दी में हमें इस जाति के प्रश्नोत्तर की रचना बिलकुल इसी रूप में तो नहीं मिलती है किन्तु 'नागपाशोत्तर' के नाम से जो रचनाएँ हुई हैं, वे बहुत थोड़े परिवर्तन के साथ लगभग यही हैं। किन्तु 'शृंखलोत्तर' के नाम से धर्मदास द्वारा विवेचित सामान्य शृंखला की रचना हिन्दी कवियों को प्रिय रही है। फिर भी इन कवियों को प्रश्नोत्तर के व्यस्त रूप से ही सन्तोष नहीं हुआ और उन्होंने साथ ही 'व्यस्तआगतरूप' में भी प्रश्न और उत्तरों की योजना की। समस्त उत्तर के भी गत और आगत दो रूप हमारे सामने आये। कहा जा चुका है कि केशवदास ने इस प्रकार की रचनाओं का नाम 'समस्त-व्यस्त गतागत-उत्तर' दिया है। उनके द्वारा प्रदत्त लक्षण निम्न है—

"एक एक तजि बरण को युग युग बरण बिचारि ।
उत्तर व्यस्त गतागतनि एक समस्त निहारि ॥"[३]

केशव का प्रस्तुत लक्षण धर्मदास के उपर्युक्त लक्षण से पूर्णतः साम्य रखता है, अन्तर केवल यही है कि धर्मदास ने गतागत की चर्चा नहीं की है। इस 'प्रश्नोत्तर' के अपने उदाहरण में भी उन्होंने केवल गतरूप को लिया है,[४] जबकि केशव ने स्पष्टतः गतागत शब्द का उल्लेख किया है। उदाहरण में भी इनकी पूर्ण योजना है। उदाहरण के लिये केशवदास का निम्न छन्द द्रष्टव्य है—

"कै है रस, कैसे लई लंक, काहे पीत पट
होत, केशोदास को शोभिये सभा में जन ।
भोगनि को भोगवत, कौने गनैं भागवत,
जीते का यतीन, कौन हैं प्रनाम के बरन ॥
कौन करी सभा, को जुवती अजीत जग,
गावैं कहा गुणी, कहा भरे हैं भुजंग गन ।

१. वि० मु० मं०, परि ३, श्लोक ४६
२. उपरिवत्, श्लोक ४९-५० (उदाहरण)
३. क० प्रि०, प्रभाव १६, छन्द ५५
४. वि० मु० म०, परि ३, श्लोक ४७-४८
श्लोक ४७ में उत्तर का शब्द है—'पयोधर समयः'। इससे सात प्रश्नों के उत्तर निकलते हैं जो क्रमशः पयः योध, धर, रस, समः, मयः और पयोधरसमयः हैं। यहाँ उत्तरों में केवल 'व्यस्त-समस्त-गत' रूप ही है।

का पै मोहे पशु, कहाँ करै तपी तप, इन्द्र-
जीतजी बसत कहाँ, **'नवरंगरायमन'** ।।[1]

प्रस्तुत छन्द में **१५ प्रश्न** हैं जिनके उत्तर छन्द के अन्तिम पद 'नवरंगरायमन' में नियोजित हैं। इनमें अन्तिम अर्थात् पन्द्रहवाँ प्रश्न ऐसा है जिसका उत्तर 'नवरंगरायमन' यह समस्त पद है, अन्य चौदहों प्रश्नों में प्रथम सात के उत्तर व्यस्तगत रूप में तथा शेष सात प्रश्नों के व्यस्तआगतरूप में इसी समस्त पद से निःसृत होते हैं। ये प्रश्न तथा उत्तर निम्न हैं—

व्यस्तगत उत्तर

१. रस कितने हैं ?	नव
२. लंका कैसे ली ?	वर (बल से)
३. कपड़ा पीला कैसे होता है ?	रंग
४. कौन जन सभा में सोहता है ?	गरा (गंभीर)
५. भोग कौन भोगता है ?	राय (सरदार अथवा राजा)
६. भागवतों में गणना किसकी होती है ?	यम (यमराज की गिनती भक्तों में है)
७. यतियों ने किसे जीता है ?	मन

व्यस्तआगत उत्तर

८. प्रणाम के अक्षर कौन हैं ?	नम
९. (युधिष्ठिर की) सभा किसने बनाई ?	मय (विश्वकर्मा का पुत्र)
१०. कौन स्त्री अजीत है ?	यरा (जरा)
११. गुणी क्या गाते हैं ?	राग
१२. साँपों में क्या भरा है ?	गर (विष)
१३. पशु (हिरन) किस पर मोहित होता है ?	रव (शब्द)
१४. तपीजन तप कहाँ करते हैं ?	वन

समस्त उत्तर

१५. इन्द्रजीत जी कहाँ बसते हैं ?	नवरंग राय (एक वेश्या) के मन में।

उपर्युक्त उत्तर नव, वर, रंग, गरा, राय, यम तथा मन पर यदि हम ध्यान दें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि इन उत्तरों में प्रत्येक का अन्तिम वर्ण उसके बाद के उत्तर का

१. क० प्रि०, प्रभाव १६, छन्द ५६

प्रथम वर्ण है और इस प्रकार यहाँ शृंखला की समता उपस्थित हो जाती है। यही कारण है कि इसे 'शृंखलोत्तर' की संज्ञा मिली है। अन्य प्रश्नों के उत्तर में इन्हीं शब्दों के आगत रूप अर्थात् प्रतिकूल पाठ को लिया गया है। 'विदग्धमुखमण्डन' के उदाहरण में केवल 'गत' की ही योजना है, 'आगत' रूप में प्रश्नों के उत्तर वहाँ नहीं है।

कहा जा चुका है कि 'विदग्धमुखमण्डन' में विवेचित शृंखला के दूसरे भेद 'एकान्तरित शृंखला' की रचना हिन्दी में किंचित परिवर्तन के साथ 'नागपाशोत्तर' के नाम से हुई हैं। यदि हम समस्त उत्तरपद में वर्णों की संख्या ६ मानें और वर्णों के लिये भी संख्या का ही प्रयोग करें तो 'शृंखला' के प्रस्तुत भेद में नियोजित व्यस्तगत उत्तरों में वर्णों का क्रम निम्न होगा—

१-३, ३-५, २-४, तथा ४-६ [1]

इसका विवेचन 'नागपाशोत्तर' के क्रम में किया जायगा।

किन्तु हिन्दी में 'शृंखलोत्तर' के अन्तर्गत अन्य प्रकार के भी उत्तरों के वर्णक्रम मिलते हैं जिनका कोई उल्लेख संस्कृत में नहीं मिलता। 'शृंखला' की ये रचनाएँ हिन्दी के कवियों द्वारा स्वतः रची गई जान पड़ती हैं। भिखारीदास रचित 'शृंखलोत्तर' के उपर्युक्त उदाहरण में उत्तरों के वर्णों का जो क्रम है, (१-२, २-३, ३-४, ४-५······) उसके अतिरिक्त दो प्रकार के और वर्णक्रम हिन्दी में प्राप्त होते हैं। वे हैं—

(क) १-२, २-१, ३-४, ४-३, ५-६, ६-५,·······आदि
(ख) १-२, २-१, २-३, ३-२, ३-४, ४-३,·······आदि

इन वर्णक्रमों से युक्त उत्तरवाले 'शृंखलोत्तर' के उदाहरण निम्न हैं—

(क) "घर कौन है कंज को मंजु महा अनुकूल भए केहि भाव भने।
जरि कौन गये शिव लोचन सों किन सिन्धु सुता वृज शोभ सने॥
अरि देषि कै का करि मोद लहै किनके वश मीत मिताई ठने।
विरही को सतावत को हरि भावत गावत है **सरमार हने**॥"[2]

प्रस्तुत छन्द में आठ प्रश्न हैं जिनके उत्तर छन्दान्त के पद 'सरमार हने' में नियोजित हैं। वे निम्न हैं—

१. कंज का घर कौन है? सर
२. भाव के अनुकूल होने पर
महामंजु क्या होता है? रस

१. वि० मु० मं०, परि३, श्लोक ४९-५०
श्लोक ४९ में पाँच प्रश्न हैं, समस्त उत्तर है 'नीरापकारेण'। पाँचों प्रश्नों के उत्तर क्रमशः नीप, परे, राका, काण तथा समस्त हैं। यहाँ का वर्णक्रम १-३, ३-५, २-४ तथा ४-६ है। द्रष्टव्य, प्रस्तुत अध्याय में विवेचित नागपाशोत्तर

२. चि० क०, पृ० १०९, छन्द ३०

३. शिव के नेत्र से कौन जल गये ? — मार
४. सिन्धु की पुत्री कौन हैं ? — रमा
५. शत्रु को देखकर क्या करने पर आनन्द होता है ? — हने
६. किसके वश होकर मित्र से मित्रता होती है ? — नेह
७. विरही को कौन सताता है ? — सर मार हने (कामदेव)
८. हरि को क्या अच्छा लगता है ? — नेह रमा रस

इन प्रश्नों में प्रथम छह तो व्यस्त रूप में हैं तथा अन्तिम दो समस्त रूप में। उपर्युक्त उत्तरों को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि यहाँ उनका वर्णक्रम एक भिन्न प्रकार का है। उत्तरपद के प्रथम दो वर्णों का गतरूप प्रथम प्रश्न का उत्तर, पुनः उन्हीं का प्रतिलोम अथवा आगत रूप द्वितीय प्रश्न का उत्तर है। अगले दो प्रश्नों के उत्तर इसी विधि से उत्तरपद के तीसरे-चौथे वर्णों के गत तथा आगत रूप हैं। इसी प्रकार अन्य उत्तर भी हैं। इस वर्णक्रम की संख्यात्मक तालिका ऊपर दी जा चुकी है। प्रश्न संख्या ७ का उत्तर **'सरमार हने'** का ऋजु (गत) रूप है जबकि आठवें प्रश्न का उत्तर इसी समस्त उत्तरपद का आगत रूप है।

(ख) "छवि भूषन को, जन को हर को, सुर के घर को सुभ को नरुत्ती।
किहि पाए गुमान बढ़ै, किहि आए घटै, जग में थिर कौन दुती।।
सुभ जन्म को दास कहा कहिये, बृषभान की राधिका कौन हुती।
घटिका निसि आजु सु केती अली, किहि पूजहिगी **'नगराज सुती'**।।"[1]

उपर्युक्त छन्द की तरह ही प्रस्तुत छन्द में कुल ग्यारह प्रश्न हैं, जिनके उत्तर छन्दान्त के पद **'नगराज सुती'** के वर्णों से बनते हैं। इनमें दस प्रश्न के उत्तर तो 'व्यस्त गतागत' रूप से प्राप्त होते हैं, किन्तु अन्तिम अर्थात् ग्यारहवें प्रश्न का उत्तर समस्तपद **'नगराज सुती'** है। प्रश्न तथा उत्तर निम्न हैं—

१. आभूषण की छवि कौन है ? — नग
२. शिव के जन कौन हैं ? — गन
३. सुर अर्थात् स्वर का घर कौन है ? अर्थात् स्वर कहाँ से उत्पन्न होता है ? — गरा
४. सर्वत्र शुभ कौन ? — राग

१. का० नि०, परि २१, छन्द २७

५. क्या पाने से गुमान (गर्व) बढ़ता है ?	राज
६. क्या आने से गर्व का ह्रास होता है ?	जरा
७. किसकी द्युति संसार में स्थिर रहती है ?	जसु
८. शुभ जन्म को क्या कहते हैं ?	सुज
९. वृषभान की राधिका कौन होती है ?	सुती
१०. हे अली ! आज कितनी घड़ी की रात्रि है ?	तीसु
११. हम किसको पूजेंगी ?	नगराजसुती (पार्वती)

स्पष्ट है कि प्रस्तुत उत्तरों का वर्णक्रम ऊपर दी हुई तालिका (ख) के अनुसार है। यहाँ उत्तर के समस्त पद के प्रथम और द्वितीय वर्णों के गत रूप से प्रथम प्रश्न का उत्तर प्राप्त होता है तथा इन्हीं वर्णों के आगत रूप से द्वितीय प्रश्न का। पुनः तृतीय प्रश्न का उतर पाने के लिये हम प्रथम वर्ण को छोड़कर द्वितीय तथा तृतीय वर्ण को गत रूप में लेते हैं और इनके आगत रूप में चतुर्थ प्रश्न का उत्तर हमें मिल जाता है। इसी क्रम से प्रत्येक अगले अयुग्म प्रश्न के उत्तर के लिये पिछले अयुग्म प्रश्न के उत्तर का प्रथम वर्ण छोड़ा जाता है तथा समस्त उत्तरपद का अगला वर्ण मिलाया जाता है। इन अयुग्म प्रश्नों के परवर्ती युग्म प्रश्नों के उत्तर इनके उत्तर के ही आगत रूप होते हैं। इस प्रकार प्रस्तुत 'शृंखलोत्तर' के वर्णक्रम में पूर्वविवेचित दोनों प्रकार के 'शृंखलोत्तर' का मिश्रण है। स्वयं भिखारीदास ने भी 'शृंखलोतर' के इस भेद की जो परिभाषा दी है वह इस पद्धति को स्पष्ट करती है—

"दुद्दै गतागत लेत चलि, इक इक बरन तजंत।
नाम शृंखलोत्तर वही, होत समस्त जु अन्त॥"[1]

अर्थात् प्रश्नों के उत्तरों के लिये क्रमशः दो-दो वर्णों को गतागत रूप में लेते चलें तथा उनमें से एक-एक वर्ण छोड़ते चलें। साथ ही अन्तिम उत्तर समस्त हो तो उसका नाम 'शृंखलोत्तर' है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'शृंखलोत्तर' की कुल तीन प्रकार की रचनाएँ हिन्दी में मिलती हैं। प्रथम में प्रश्नों के उत्तर दो-दो वर्णों के होते हैं तथा प्रत्येक परवर्ती उत्तर में पूर्ववर्ती उत्तर के प्रथम वर्ण का त्याग किया जाता है तथा आगे का एक वर्ण मिलाया जाता है। इस रीति से समस्त उत्तरपद के सारे वर्णों को पहले गत रूप में लेते हैं, पुनः उन्हीं को आगत रूप में लेकर उतने ही और प्रश्नों के उत्तर निकालते हैं। अन्तिम प्रश्न का उत्तर समस्त पद को लेकर होता है। दूसरे प्रकार के अन्तर्गत उत्तर तो दो-दो वर्ण के ही होते हैं किन्तु प्रत्येक उत्तर के वर्णों का आगत रूप भी उसी के बाद-वाले प्रश्न का उत्तर होता है। साथ ही प्रथम-द्वितीय वर्ण के गत-आगत रूपों को ले लेने के बाद तृतीय-चतुर्थ वर्णों को लेते हैं न कि द्वितीय-तृतीय को। फलतः यहाँ पिछले वर्ण के त्याग तथा अगले वर्ण के ग्रहण का प्रश्न नहीं रह जाता।

---

१. का० नि०, परि २१, छन्द २६

'शृंखलोत्तर' का तीसरा प्रकार प्रथम तथा द्वितीय प्रकारों का सम्मिलित रूप होता है। यहाँ प्रथम प्रकार के समान परवर्ती उत्तरों में पूर्ववर्ती उत्तरों के प्रथम वर्ण का त्याग तथा समस्त पद के अगले वर्ण का ग्रहण तो होता है किन्तु वह प्रत्येक तीसरे प्रश्न के उत्तर में होता है। प्रत्येक युग्म अथवा दूसरे प्रश्न का उत्तर पूर्व प्रश्न के उत्तर का आगत रूप ही होता है। चूँकि इन उत्तरों का वर्णक्रम इनमें एक शृंखला बना देता है, अतः चित्ररचना के इस भेद का 'शृंखलोत्तर' नाम पूर्णतः सार्थक है।

गूढ़ोत्तर अथवा गुप्तोत्तर

गूढ़ोत्तर अथवा गुप्तोत्तर की रचना हिन्दी में भी बहुत अधिक नहीं हुई है। 'चित्रकाव्य' के इस प्रकारविशेष की रचना करनेवाले कवियों में केशवदास, भिखारीदास, काशिराज, गोकुलकवि तथा लछिराम का ही नाम लिया जा सकता है।[1] अन्य कवियों ने इसकी रचना नहीं की है। जगत सिंह रचित 'चित्रकाव्य' में भी 'गूढ़ोत्तर' का एक दोहा प्राप्त होता है, किन्तु उन्होंने इसका कोई लक्षण नहीं दिया है।[2] जबकि केशवदास प्रभृति पाँचों कविआचार्यों ने इसका लक्षण भी दिया है। केशवदास ने इसका नाम 'गूढ़ोत्तर' दिया है किन्तु भिखारीदास ने 'गुप्तोत्तर' कहना पसन्द किया है।[3] इन लक्षणों में भी किसी प्रकार का विशेष अन्तर नहीं दीख पड़ता। 'गूढ़ोत्तर' का केशवदास प्रदत्त लक्षण निम्न है—

"उत्तर जाको अति दुर्यो दीजै केशवदास।
गूढ़ोत्तर तासों कहत वरणहु बुद्धि बिलास॥"[4]

अर्थात् प्रश्न में ही जहाँ उत्तर अत्यन्त छिपा हो वहाँ 'गूढ़ोत्तर' चित्र होता है। किन्तु इस परिभाषा से प्रस्तुत चित्ररचना का कुछ स्पष्ट बोध नहीं होता। इसकी तुलना में भिखारीदास ने 'गुप्तोत्तर' की जो परिभाषा दी है, वह कहीं अधिक स्पष्ट है—

"बाच्यान्तर शब्दच्छलन, उत्तरदेइ दुराइ।
गुप्तोत्तर तासों कहैं, सकल सुमति समुदाइ॥"[5]

तात्पर्य यह कि जिस छन्द में शब्दछल के द्वारा उत्पन्न वाच्यान्तर में प्रश्न के अभीष्ट उत्तर को छिपा कर रखा जाता है, वहीं 'गुप्तोत्तर' होता है। 'गूढ़ोत्तर' अथवा

---

१. क० प्रि०, प्रभाव १६, छन्द ४०, ४८, ४९
का० नि०, परि २१, छन्द ९-१०
चि० च०, प्रकाश ८, छन्द २२
चि० क०, पृ० १०१, छन्द ७
रा० क०, कुसुम ११, पृ० २९३
२. दोहा संख्या ११५
३. क० प्रि०, प्रभाव १६, छन्द ४६
का० नि०, परि २१, छन्द ८
४-५. उपरिवत्

'गुप्तोत्तर' के अन्य लक्षण इन लक्षणों के अनुकरण मात्र हैं, कोई नई बात उनमें नहीं दीखती।[1]

संस्कृत में 'गूढ़ोत्तर' अथवा 'गुप्तोत्तर' नाम से 'प्रश्नोत्तर' के किसी भेद की रचना नहीं मिलती। किन्तु 'विदग्धमुखमण्डन' में विवेचित 'कथितापह्नुति' में इसकी समता देखी जा सकती है। इसके लक्षण के अनुसार 'कथितापह्नुति' वहाँ होती है जहाँ पदान्तर के संयोग से प्रश्नवाक्य में ही संस्थित उत्तर (आसानी से) लक्षित नहीं होता—

"पदान्तरादि सम्बन्धात् प्रश्न वाक्येऽपि संस्थितम्।
कथितापह्नुतिः सा स्याल्लक्ष्यते यत्र नोत्तरम्॥"[2]

'गूढ़ोत्तर' (गुप्तोत्तर) तथा 'कथितापह्नुति' के उदाहरणों में भी प्रश्नोत्तर की पद्धति लगभग समान ही है। अन्तर केवल यह है कि जहाँ एक सम्पूर्ण छन्द में 'गूढ़ोत्तर' का एक ही उदाहरण है वहाँ एक श्लोक में 'कथितापह्नुति' के कई उदाहरणों की योजना की गई है। इसके अतिरिक्त 'गूढ़ोत्तर' के छन्द में उत्तर छन्दान्त में ही छिपा होता है, जबकि 'कथितापह्नुति' के लिये यह कोई आवश्यक नहीं है। निम्न उदाहरणों से इनके लक्षण तथा अन्तर अधिक स्पष्ट हो सकेंगे—

गूढ़ोत्तर

"हास विलास निवास है केशव केलि विधान निदान दुनी मैं।
देवर जेठ पितासु सहोदर है सुख ही मय बात सुनी मैं॥
भोजन भाजन भूषण भौन भरो जस पावन देव धुनी मैं।
क्यों सब जामिनि रोवत कामिनि कन्त करैं सुभगान गुनी मैं॥"[3]

प्रस्तुत सवैया में एक सखी दूसरी सखी से नायिका के सम्बन्ध में कहती है कि वह नायिका हास-विलास की निवास है तथा केलिविधान की निधान अर्थात् हास-विलास तथा केलिकला में प्रवीण है। इसके अतिरिक्त उसके देवर, जेठ, पिता, भाई सभी हैं ही। भोजन, भाजन, भूषण सभी से घर भरा है। गंगा के समान पवित्र यश भी है। मैंने सुना है सब प्रकार से वह सुखमय है। गुणी जनों के बीच उसके प्रियतम उसका गुणगान भी करते ही हैं, फिर भी वह कामिनी सारी रात क्यों रोती रहती है ?

---

१. "उत्तर जाको अति दुरो गूढ़ोत्तर सो जानु।
बरनत काशीराज कवि ग्रन्थन को मत मानु॥२१॥" —चि० चं०, प्रकाश ८
"वाच्य अंतर सब अक्षरन उत्तर देइ दुराइ।
गुप्तोत्तर तासों कहैं कविता कवित बनाइ॥६॥" —चि० क०, पृ० १०१
"दुर्‍यो होय बिच प्रश्न के उत्तर जहँ अभिराम।
बरनत कविगन गूढ़मत गुप्तोत्तर धरि नाम॥" —रा० क०, पृ० २९३, कुसुम ११

२. वि० मु० मं०, परि २, श्लोक २९

३. क० प्रि०, प्र० १६, छन्द ४८

इस प्रश्न का उत्तर छन्दान्त के वाक्य 'सुभगा न गुनी मैं' में छिपा है। दूसरी सखी का उत्तर होगा कि मैंने गुनकर (विचार कर) देख लिया वह 'सुभगा' नहीं है। 'सुभगा' उस स्त्री को कहा जाता है जो सुन्दर है तथा जिसके पति उसपर अनुरक्त हैं। इस प्रकार चूंकि प्रश्न के वाक्य में ही उत्तर अत्यन्त छिपा हुआ है, अथवा उत्तरस्वरूप यह वाच्यान्तर शब्दछल से ही उत्पन्न है अतः यह 'गूढ़ोत्तर' अथवा 'गुप्तोत्तर' का उदाहरण है। भिखारीदास ने निम्न दोहे में इसका और अधिक स्पष्ट उदाहरण दिया है—

"सुत सपूत संपति भरी, अंग अरोग सुदार।
रहे दुखित क्यों कामिनी पीउ करै बहु प्यार ॥"[१]

प्रस्तुत दोहे में प्रश्न है कि नायिका के पुत्र सुपुत्र हैं, सम्पत्ति भी पूर्ण है, अंग भी स्वस्थ तथा सुडौल हैं, प्रियतम भी काफी प्यार करते हैं फिर भी यह कामिनी दुःखी क्यों रहती है? इस प्रश्न का उत्तर भी उपर्युक्त सवैया की भाँति दोहे के अन्तिम चरण 'पीउ करै बहु प्यार' में ही छिपा है।

'पीउ करै बहु प्यार' यानी प्रियतम बहुतों को प्यार करते हैं। 'कथितापह्नुति' का उदाहरण निम्न श्लोक में है—

"पृथ्वी सम्बोधनम् कीदृक् कविना परिकीर्त्तितम्।
केनेदं मोहितं विश्वं प्रायः केनाप्यते यशः ॥"[२]

प्रस्तुत श्लोक में तीन प्रश्न हैं, और उनके उत्तर उन्हीं में छिपे हैं, किन्तु 'गूढ़ोत्तर' की पद्धति से वे किंचित भिन्न हैं—

१. पृथ्वी सम्बोधनम् कीदृक् कविना परिकीर्तितम्? — कविना (को—इना)
(कवि लोग पृथ्वी का सम्बोधन किस प्रकार करते हैं?)
२. इदं विश्वं केन मोहितम्? — केन (विष्णु)
(इस विश्व को किसने मोहित किया?)
३. केन प्रायः यशः आप्यते? — केन (विष्णु, सूर्य, राजा आदि)
(कौन प्रायः यश प्राप्त करता है?)

उपर्युक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि यद्यपि 'कथितापह्नुति' तथा 'गूढ़ोत्तर' बिलकुल अभिन्न नहीं हैं फिर भी प्रश्नोत्तर की इन पद्धतियों में बहुत दूर तक समानता अवश्य है और बहुत सम्भव है कि 'कथितापह्नुति' ही 'गूढ़ोत्तर' का स्रोत हो।

नागपाशोत्तर

'प्रश्नोत्तर' के प्रस्तुत भेद की रचना हिन्दी में बहुत कम हुई है। केवल भिखारीदास, गोकुलकवि तथा लछिराम में ही इसके लक्षण-उदाहरण मिलते हैं।[3] संस्कृत में भी

---

१. का० नि०, परि २१, छन्द १०
२. वि० मु० मं०, परि २, श्लोक ३०
३. का० नि०, परि २१, छन्द १८, १९, २०
चि० क०, पृ० १०५, छन्द १६-१७
रा० क०, कुसुम ११, पृ० २९३

'विदग्धमुखमण्डन' में 'नागपाश जाति' के नाम से 'प्रश्नोत्तर' के एक भेद का विवेचन किया गया है[1] किन्तु संस्कृत में विवेचित 'नागपाश जाति' के उदाहरण तथा हिन्दी में विवेचित 'नागपाशोत्तर' के उदाहरण में किसी प्रकार की समता नहीं दीख पड़ती। इसके विपरीत धर्मदास द्वारा उदाहृत 'शृंखला' के भेद 'एकान्तरित शृंखला' से प्रस्तुत 'नागपाशोत्तर' बहुत अधिक निकट दीख पड़ता है। संस्कृत में विवेचित 'नागपाश जाति' के प्रश्नोत्तर में विभिन्न प्रश्नों के उत्तर समस्त उत्तरपद के क्रमशः दो आद्य वर्णों को हटाकर गत रूप में तथा दो अन्तिम वर्णों को हटाकर आगत रूप में निकलते हैं। कहीं-कहीं दो के बदले एक-एक वर्ण के हटाने से भी उत्तर प्राप्त हो जाते हैं,[2] किन्तु हिन्दी के 'नागपाशोत्तर' में प्रश्नों के उत्तर पाने के लिए हमें समस्त उत्तरपद के वर्णों में प्रारम्भ से बीच के एक-एक वर्ण को छोड़कर दो-दो वर्णों को लेना होगा। इस प्रकार यदि समस्त उत्तरपद छह वर्णों का है तो उससे निकलने वाले उत्तरों का वर्णक्रम क्रमशः १-३, २-४, ३-५ तथा ४-६ होगा। संस्कृत में विवेचित 'एकान्तरित शृंखला' में भी उत्तरों का वर्णक्रम लगभग यही है, अन्तर केवल उत्तरों के क्रम में है, जो निम्न है—

१-३, ३-५, २-४ तथा ४-६

इसका विवेचन 'शृंखलोत्तर' के क्रम में किया जा चुका है। 'नागपाशोत्तर' के विवेचन में आचार्य भिखारीदास ने निम्न परिभाषा दी है—

"इक इक अंतर तजि बरन द्वै द्वै बरन मिलाइ।
नागपास उत्तर यही कुंडल सरिस बनाइ॥"[3]

अर्थात् (समस्त उत्तर को) कुण्डलाकार लिखकर तथा एक-एक वर्ण का अन्तर देकर दो-दो वर्ण लेने से जो उत्तर निकलते हैं, वे 'नागपाशोत्तर' कहलाते हैं। गोकुलकवि ने अपने लक्षण में भिखारीदास का ही अनुकरण किया है फलतः उसमें कोई विशेषता नहीं मिलती किन्तु 'रावणेश्वर कल्पतरु' में दिया गया लछिराम का लक्षण इन लक्षणों से कहीं अधिक स्पष्ट है—

"जोरि बरन द्वै द्वै पढ़ो अच्छर बीच बिहाय।
सब विचारि या भाँति पुनि गनो येक ठहराय॥
चक्र लिखिय कुण्डलित बर उत्तर ता बिच राखि।
नाग फाँस उत्तर सुकवि या प्रकार अभिलाषि॥"[4]

१. वि० मु० म०, परि ३, श्लोक ५१-५२
२. उपरिवत्, श्लोक ५२
३. का० नि०, परि २१, छन्द १८
४. कुसुम ११, पृ० २९३, छन्द ४-५

प्रस्तुत लक्षण से स्पष्ट हो जाता है कि समस्त उत्तर के दो-दो वर्णों को लेकर 'नागपाशोत्तर' में प्रश्नों के उत्तर बनते हैं। किन्तु ये दो वर्ण क्रमशः न होकर बीच के वर्ण को छोड़कर यानी पहला-तीसरा, दूसरा-चौथा इत्यादि होंगे। समस्त उत्तर को कुण्डली के मध्य लिखना होगा और उपर्युक्त विधि से हर तीसरे वर्ण को लेकर दो-दो वर्णों के उत्तर निकलेंगे।

प्रस्तुत चित्ररचना को और अधिक स्पष्टरूप से समझने के लिये भिखारीदास रचित निम्न उदाहरण द्रष्टव्य है—

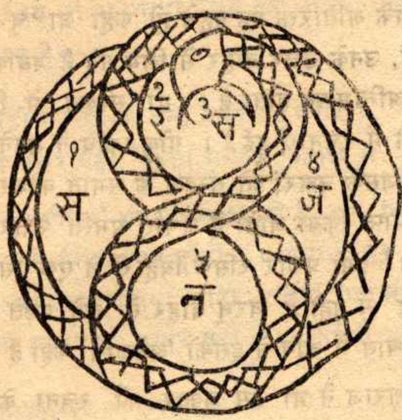
"कहा चन्द में स्याम, छत्रिन को गुन कौन कहि।
कहा संवतहि नाम पारसीक बासी कहैं॥
कहा रहै संसार, बाहन कहा कुबेर को।
चाहै कहा भुआर दास उत्तर दिय **सरसजन**॥"[1]

प्रस्तुत छन्द में कुल छह प्रश्न हैं, जिनमें से प्रथम पाँच प्रश्नों के उत्तर छन्दान्त में उल्लिखित शब्द '**सरसजन**' के वर्णों से बनते हैं, अन्तिम छठे प्रश्न का उत्तर स्वतः समस्त पद '**सरसजन**' है। ये प्रश्न तथा उत्तर निम्न हैं—

१. चन्द्रमा में काला क्या है ?	सस (खरहा)
२. क्षत्रियों का गुण कौन होता है ?	रज
३. पारसी लोग संवत् का क्या नाम कहते हैं ?	संन
४. संसार में क्या (स्थायी रूप से) रहता है ?	जस (यश)
५. कुबेर का वाहन क्या है ?	नर (कुबेर की सवारी पालकी है, किन्तु वह मनुष्यों द्वारा वहन की जाती है। इसी अर्थ में प्रस्तुत शब्द की सार्थकता है)
६. राजा क्या चाहता है ?	सरस जन (रसिक मनुष्य)

इस प्रकार सस, रज, सन, जस तथा नर ये पाँच उत्तर-शब्द उपर्युक्त पद्धति से ही समस्त उतर 'सरसजन' से निकले हैं। इन्हें नागपाश अथवा नाग की कुण्डली के निम्न आकार में लिखा जायगा—

१. का० नि०, परि २१, छन्द १९-२०



उपर्युक्त चित्र से १-३, २-४; ३-५, ४-१ तथा ५-२ संख्याओं वाले वर्णों को साथ रखने से उपर्युक्त पांचों उत्तर-शब्द हमें प्राप्त हो जाते हैं।

कमलबन्धोत्तर

'प्रश्नोत्तर चित्र' के प्रस्तुत भेद में भी छन्द के प्रश्नों के उत्तर छन्दान्त में उल्लिखित समस्त उत्तरपद से ही निःसृत होते हैं, किन्तु उनके निःसरण की पद्धति भिन्न है। जैसा कि नाम से ही प्रकट है प्रस्तुत चित्ररचना के अन्तर्गत समस्त उत्तरपद के वर्णों को कमल के चित्र में इस प्रकार लिखा जाता है कि अन्तिम वर्ण कर्णिका में रहे तथा अन्य वर्ण दक्षिणावर्त्त क्रम से प्रति पंखुड़ी प्रतिवर्ण की रीति से दलों में न्यस्त हों। अब प्रत्येक दल में न्यस्त वर्ण को कर्णिका के वर्ण के साथ मिलाकर पढ़ने से क्रमशः छन्द में पूछे गये प्रश्नों के उत्तर मिलते जायेंगे।

संस्कृत में धर्मदास ने 'पद्मोत्तर जाति' के नाम से 'प्रश्नोत्तर' के इस भेद की रचना की है[1] किन्तु हिन्दी 'कमलबन्धोत्तर' तथा संस्कृत के इस 'पद्मोत्तर' में जो थोड़ा अन्तर है वह यह कि जहाँ 'कमलबन्धोत्तर' में कमल के कोश में उत्तरों का अन्तिम वर्ण न्यस्त होता है वहाँ 'पद्मोत्तर' में कर्णिका में आदि वर्ण का न्यास किया गया है। साथ ही हिन्दी में कमलदलों में केवल एक-एक वर्ण ही न्यस्त है जबकि संस्कृत के चित्र में दलों में दो-दो वर्णों को लिखा गया है। इसी आशय की उक्त चित्र की परिभाषा धर्मदास ने दी है—

"वर्णद्वयद्वयैकैकदलभूतदलाष्टकम्।
सर्वोत्तराद्य वर्णेन पद्मं स्यात् कृतकर्णिकम्॥"[2]

---

१. वि० मु० मं०, परि ३, श्लोक १७-१८
२. उपरिवत्, श्लोक १६

फलतः संस्कृत में प्रश्नों के उत्तर जहाँ तीन-तीन वर्णों के हैं वहाँ हिन्दी में प्रश्नों के उत्तर दो-दो वर्णों के। इसके अतिरिक्त यह पहले ही कहा जा चुका है कि संस्कृत में श्लोकों में केवल प्रश्न ही हैं, उनके उत्तर बाहर से लिये गये हैं जबकि हिन्दी में इन उत्तरों का समस्तरूप ही छन्द का अन्तिम पद होता है। यों संस्कृत में विवेचित 'पद्मोत्तर' की उपर्युक्त पद्धति पर भी हिन्दी में रचनाएँ हुई हैं। गोकुलकवि ने अपने 'चित्रकलाधर' में एक ऐसे छन्द की रचना की है जिसके उत्तरों को संस्कृत के समान कोशस्थ वर्ण को दलों के वर्णों के साथ मिलाकर ही प्राप्त किया जाता है अर्थात् समस्त उत्तर का आदि वर्ण ही कर्णिका में लिखा जाता है।[1] इसी प्रकार रसिक बिहारी ने एक ऐसे छन्द की रचना की है जिसमें प्रश्नों के उत्तर छन्द में नहीं हैं वरन् बाहर से लेने पड़ते हैं, यद्यपि 'पद्मोत्तर' अथवा 'कमलबन्धोत्तर' के स्थान में कवि ने इसको 'अनेकार्थ' कहा है।[2]

केशवदास तथा काशिराज ने भी इस प्रकार की रचना के लिये 'कमलबन्धोत्तर' अथवा 'पद्मोत्तर' संज्ञा का प्रयोग नहीं किया है। उन्होंने इसे 'एकानेकोत्तर' कहा है।[3] किन्तु केशव ने 'एकानेकोत्तर' का जो लक्षण दिया है वह उनके उदाहरण से मेल नहीं खाता है। लक्षण निम्न है—

"एकहि उत्तर में जहाँ उत्तर गूढ़ अनेक।
उत्तर एकानेक तेहि बरनत सहित विवेक॥"[4]

काशिराज की परिभाषा भी बिलकुल यही है, बल्कि एक प्रकार से उन्होंने केशव का ऋण स्वीकार भी किया है—

"एकहि उत्तर में जहाँ उत्तर बहुत बखानु।
उत्तर एकानेक जो ग्रंथन को मत मानु॥"[5]

निश्चित ही 'ग्रंथन को मत' से काशिराज का तात्पर्य 'कविप्रिया' से है।

इन परिभाषाओं के अनुसार हिन्दी में विवेचित 'प्रश्नोत्तर' की लगभग सभी चित्र-रचनाओं को 'एकानेकोत्तर' कहा जा सकेगा, कारण हिन्दी की पद्धति के अनुसार छन्दान्त में एक 'समस्तोत्तर' दे दिया जाता है और उसी में से अन्य प्रश्नों के उत्तर भी प्राप्त होते हैं। इन चित्ररचनाओं में अन्तर वस्तुतः 'समस्तोत्तर' से निःसृत होनेवाले उत्तरों के वर्णक्रम की दृष्टि से होता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि केशव तथा काशिराज की यह परिभाषा अतिव्याप्ति से दूषित है।

---

१. चि० क०, पृ० १०८, छन्द २८
२. का० सु०, कला १४, पृ० ४८ छन्द ४९
३. क० प्रि०, प्रभाव १६, छन्द ५०
चि० चं०, प्रकाश ८, छन्द २७
४. उपरिवत्
५. उपपिवत्

इसके विपरीत भिखारीदास तथा कतिपय अन्य आचार्यों ने 'कमलबन्धोत्तर' के नाम से इस प्रकार के 'प्रश्नोत्तर' के लिये जो परिभाषा दी है वह अधिक स्पष्ट तथा समीचीन है। भिखारीदास का लक्षण निम्न है—

"अक्षर पढ़ौ समस्त को अन्त बरन सो जोरि।
कमलबन्ध उत्तर वही, व्यस्त समस्त बहोरि॥"[1]

स्वतः केशवदास ने 'एकानेकोत्तर' की जो रचना की है, वह भिखारीदास की उक्त परिभाषा के द्वारा ही उचित रूप से परिभाषित होती है। सत्य तो यह है कि केशवदास की उक्त रचना तथा भिखारीदास तथा अन्य कवियों द्वारा रचित 'कमलबन्धोत्तर' के छन्द में 'प्रश्नोत्तर' की दृष्टि से किसी प्रकार का अन्तर नहीं है। दोनों ही छन्द निम्न हैं—

केशवदास रचित 'एकानेकोत्तर' का उदाहरण—

"कहा न सज्जन बवै, कहा सुनि गोपी मोहित।
कहा दास को नाम, कबित महँ कहियत को हित॥
को प्यारो जग माहिं, कहा छत लागे आवत।
को बासर को करत, कहा संसारहि भावत॥
कहि कहा देखि कायर कँपत, आदि अन्त को है सरन।
यह उत्तर केशवदास दिय, '**सबै जगत शोभा धरन**'॥"[2]

प्रस्तुत छन्द में दस प्रश्न हैं जिनके उत्तर छन्दान्त के पद 'सबै जगत शोभा धरन' में ही छिपे हैं, जो निम्न हैं—

१. सज्जन क्या नहीं बोते?	सन
२. क्या सुनकर गोपी मोहित हुई?	बैन (वेणु)
३. दास का क्या नाम?	जन
४. कविता में किसके हेतु कहा जाता है?	गन
५. जग में कौन प्यारा है?	तन
६. क्षत या घाव होने से क्या आता है?	शोन (शोणित)
७. दिन कौन करता है?	भान (भानु)
८. संसार को क्या अच्छा लगता है?	धन
९. क्या देखकर कायर काँपता है?	रन
१०. आदि अन्त में कौन शरण देता है?	समस्तोत्तर—'सबै जगत शोभा धरन'

[1] का० नि०, परि २१, छन्द २४
[2] क० प्रि०, प्रभाव १६, छन्द ५१

प्रस्तुत प्रश्नोत्तर की विशेषता यही है कि समस्तोत्तर के प्रत्येक वर्ण में क्रमशः अन्तिम वर्ण मिलाने से अन्य प्रश्नों के उत्तर निकलते हैं। केशवदास द्वारा दिये गये 'एकानेकोत्तर' के उपयुक्त लक्षण से उपर्युक्त छन्द की इस विशेषता की ओर कुछ भी ध्यान नहीं जाता। इसके विपरीत जैसा कि कहा जा चुका है, भिखारीदास के 'कमलबन्धोत्तर' की परिभाषा ही इस पर सटीक बैठती है। इस प्रसंग में भिखारीदास द्वारा रचित 'कमलबन्धोत्तर' का छन्द भी द्रष्टव्य है—

"कह कपीस सुभ अंग, कहा उछरत बर बागन।
कहा निसाचर भोग, माह में दान कौन भन ॥
कहा सिंधु में भर्यो, सेतु किन कियो, को दुतिय।
सरसिज कितै सकंट कहा लखि घिना होति हिय ॥
किहि दास हलायुध हाथ धरि मार्यो महा प्रलंब खल।
क्यों रहत सुचित साकत सदा, **गनपति जननी नाम बल॥**"[1]

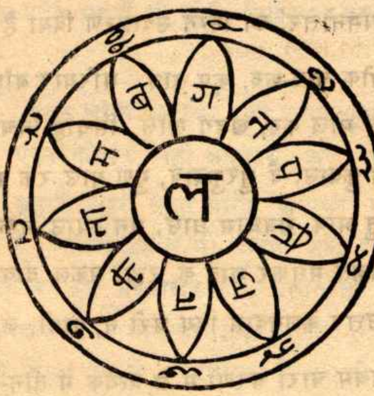
प्रस्तुत छन्द में कुल प्रश्नों की संख्या ११ है और उनके उत्तर छन्दान्त के चरणार्द्ध 'गनपति जननी नाम बल' के वर्णों से निःसृत होते हैं। वे निम्न हैं—

१. कपीश (बन्दर) का सुन्दर अंग कौन होता है? — गल (गला)
२. सुन्दर बागों में (जल) किससे उछलता है? — नल
३. निशाचर का भोजन क्या है? — पल (मांस)
४. माह (माघ) में किस वस्तु का दान करना चाहिये? — तिल
५. समुद्र में क्या भरा हुआ है? — जल
६. (समुद्र) में पुल किसने बनाया? — नल
७. पुल बनाने में दूसरा कौन था? — नील
८. कमल कहाँ तक काँटों से युक्त होता है
अथवा कण्ठ तक कमल को क्या कहते हैं? — नाल
९. मन में क्या देखकर घृणा होती है? — मल
१०. किसने हाथ में हल रूपी आयुध लेकर प्रलम्बासुर को मारा? — बल (बलराम)
११. शाक्तलोग क्यों सुचित (निश्चिंत) रहते हैं? — गनपति जननी नाम बल (समस्तोत्तर)

ऊपर के दोनों ही छन्दों तथा उनमें नियोजित प्रश्नोत्तर के विश्लेषण के उपरान्त इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता कि दोनों ही छन्दों तथा प्रश्नोत्तर की रचना एक ही पद्धति पर हुई है। फलतः इस प्रसंग में केशवदास प्रदत्त संज्ञा 'एकानेकोत्तर' समीचीन नहीं कही जा सकती। यों भिखारीदास ने भी 'एकानेकोत्तर' के नाम से 'प्रश्नोत्तर' के एक भेदविशेष का विवेचन

१. का० नि०, परि २१, छन्द २५

क्रिया है, जिसका विवेचन हम आगे करेंगे । 'कमलबन्धोत्तर' के उक्त उत्तरों को पद्माकार चित्र में निम्नरूप से सजाया जाता है—



शासनोत्तर

केशवदास ने 'शासनोत्तर', 'प्रश्नोत्तर' के उस भेद को कहा है जिसमें कई प्रश्नों के एक ही उत्तर होते हैं। उन्होंने इसकी निम्न परिभाषा दी है—

"दोय तीनि शासननि को एकहि उत्तर जानि।
शासन उत्तर कहत हैं बुधजन ताहि बखानि ॥"[१]

अर्थात् जहाँ दो-तीन प्रश्नों के एक ही उत्तर हों वहाँ ही 'शासनोत्तर' होता है। संस्कृत में इस प्रकार का कोई प्रश्नोत्तर नहीं मिलता जहाँ दो-तीन प्रश्नों के एक ही उत्तर दिये गये हों। किन्तु उर्दू तथा फारसी में इस प्रकार की रचनाएँ काफी अधिक मात्रा में हुई हैं, जिन्हें 'दो सखुना' अथवा 'सेह सखुना' के नाम से सम्बोधित किया जाता है। अमीर खुसरो ने इस प्रकार की यथेष्ट रचनाएँ की हैं।[२]

हिन्दी के कवियों को भी 'प्रश्नोत्तर' के इस भेद की रचना बड़ी प्रिय रही है। भिखारीदास ने 'एकनेकोत्तर' के नाम से जिस प्रश्नोत्तरविशेष का विवेचन किया है वह केशवदास का प्रस्तुत 'शासनोत्तर' ही है। दोनों के उदाहरण समान हैं।[3] 'शासनोत्तर' की यह संज्ञा भिखारीदास के अतिरिक्त गोकुलकवि द्वारा भी प्रयुक्त हुई है।[४] वस्तुतः इन दोनों ही संज्ञाओं में कोई अन्तर नहीं दीखता। 'शासनोत्तर' नाम इसीलिये सार्थक है कि प्रस्तुत

१. क० प्रि०, प्रभाव १६, छन्द ६१
२. खुसरो की हिन्दी कविता, पृ० ५५, ५९
३. का० नि०, परि २१, छन्द १४
४. चि० क०, छन्द १४

प्रश्नोत्तरविशेष में दो-तीन (या अधिक) प्रश्नों का शासन एक ही उत्तर के द्वारा होता है, जबकि 'एकानेक उत्तर' का शब्दार्थ ही अनेक (प्रश्नों) का एक उत्तर होगा। इस प्रकार प्रस्तुत प्रसंग में ये दोनों ही नाम पूर्णतः सार्थक हैं। उदाहरण के द्वारा ये अधिक स्पष्ट हो सकेंगे। केशवदास ने 'शासनोत्तर' का निम्न उदाहरण दिया है—

"चौक चारु करु, कूप ढारु, घरियार बाँधु घर।
मुक्त मोल करु, खड्ग खोलु, सिंचहि निचोल वर॥
हय कुदाउ, दै सुरकुदाव, गुण गाउ रंक को।
जानु भाव, सबधाम धाउ, धन ल्याउ लंक को॥
यह कहत मधूकर शाह के रह्यो सकल दीवान दबि।
तब उत्तर केशवदास दिय घरी न, पानी, जान कवि॥"[1]

प्रस्तुत छन्द के प्रथम चारों चरणों में से प्रत्येक में तीन-तीन प्रश्न हैं जिनका एक ही उत्तर है। इस प्रकार इन चारों पंक्तियों में नियोजित प्रश्नसमूहों के चारों उत्तर छन्दान्त में उल्लिखित हैं। ये निम्न हैं—

प्रश्न	उत्तर	अर्थ
१. सुन्दर चौक पूरो २. कुएँ से पानी खींचो ३. घड़ियाल बांधो	घरी नहीं है	१. शुभ मुहूर्त नहीं २. घड़ा नहीं ३. घड़ी नहीं
४. मोती का मोल करो ५. तलवार निकालो ६. कपड़ा धोओ	पानी नहीं है	१. चमक नहीं २. पानी (सान) नहीं ३. पानी नहीं
७. घोड़ा कुदाओ ८. सुर (स्वर) कुदाओ—स्वर बाँधो ९. रंक का गुण गाओ	जान न	१. जानु (जाँघ) नहीं (लँगड़ा) २. ज्ञान नहीं (प्रवीणता का अभाव) ३. ज्ञान नहीं (रंक में गुण का अभाव)
१०. भावों को जानो ११. सबके घर जाओ १२. लंका का धन लाओ	कवि नहीं	१. मैं कवि नहीं कि भावों को जानूं। २. मैं कवि नहीं कि सबको प्रसन्न कर सकूं ३. मैं शुक्राचार्य नहीं कि रावण से दक्षिणा माँगू

१. क० प्रि०, प्र० १६, छन्द ६२

इस प्रकार हम देखते हैं कि अनेकार्थ शब्दों के प्रयोग द्वारा यह सम्भव हो पाता है कि अनेक प्रश्नों का एक ही उत्तर दिया जाय। केशवदास ने अपने लक्षण में केवल दो-तीन प्रश्नों के एक उत्तर की बात कही है किन्तु भिखारीदास ने 'बहुत' शब्द का प्रयोग कर स्पष्ट कर दिया है कि यहाँ प्रश्नों की कोई निश्चित संख्या अनिवार्य नहीं। भिखारीदास का लक्षण निम्न है—

"बहुत भाँति के प्रश्न को उत्तर एक बखानि।
एकानेकोत्तर वही अनेकार्थं बल मानि॥"[1]

अर्थात् अनेकार्थ के सहारे जहाँ बहुत भाँति के प्रश्न का एक ही उत्तर होता है वहीं 'एकानेकोत्तर' होता है। काशिराज ने भी 'अनेक' शब्द का प्रयोग किया है जबकि उन्होंने केशवदास के अनुकरण पर इस प्रश्नोत्तर को 'शासनोत्तर' ही कहा है। भिखारीदास के उदाहरणों में भी केशवदास के समान प्रश्नों की संख्या तीन ही नहीं है, वरन् अधिक भी है। उदाहरण के लिये निम्न दोहे में चार प्रश्नों के एक ही उत्तर हैं—

"बरो जरो घोरो अरो पान सरो क्यों दार।
हितू फिरो क्यों द्वार तें, हुतो न फेरनिहार॥"[2]

अर्थात्—

	उत्तर	
१. बड़ा क्यों जला ?		उलटान हीं गया
२. घोड़ा क्यों अड़ा ?		अभ्यास नहीं कराया गया
३. पान क्यों सड़ा ?	फेरने वाला नहीं था	पलटा नहीं गया
४. मित्र क्यों फिरा ?		रोका नहीं गया

'शासनोत्तर' अथवा 'एकानेकोत्तर' की रचनाएँ लोकमुख में भी यथेष्ठ प्रचलित हैं और गाँवों में भी लोगों के मुँह से इस प्रकार की कितनी ही रचनाएँ सुनने को मिल जाती हैं।

भाषाचित्र

'भाषाचित्र' के अन्तर्गत ऐसे छन्द आते हैं जिनमें एक से अधिक भाषा के शब्दों का प्रयोग हो, पर छन्द के अर्थ में एकसूत्रता हो। इस प्रकार की रचना संस्कृत में यथेष्ट प्रचलित रही है। संस्कृत में किसी छन्दविशेष में विभिन्न भाषाओं का योग दो प्रकार से होता था। एक तो ऐसे छन्दों की रचना की जाती थी जो एक साथ ही एक से अधिक भाषाओं के कहे जा सकते थे। अर्थात् एक ही छन्द का यदि संस्कृत के अनुसार अर्थ किया

१. का० नि०, परि २१, छन्द १४
२. उपरिवत्, छन्द १५

जाता था तो वह और होता था, जबकि उसी छन्द का प्राकृत अथवा अपभ्रंश के अनुसार भिन्न अर्थ होता था। महाकवि भट्टि ने अपने 'भट्टिकाव्य' के तेरहवें सर्ग में इसी प्रकार के श्लोकों की रचना की है जो एक ओर तो संस्कृत दृष्टि से तथा दूसरी ओर प्राकृत के अनुसार भी पूर्णतः सार्थक है। इस प्रकार की रचनाओं का आकलन 'श्लेष' के अन्तर्गत होता है, क्योंकि इन रचनाओं में विभिन्न अर्थों की उपलब्धि का कारण मूलतः 'श्लेष' है। श्लोक में व्यवहृत शब्दों अथवा वाक्यों का अर्थ एक से अधिक भाषाओं के अनुसार किया जाता है। फलतः ये श्लोक 'भाषाश्लेष' के उदाहरण कहे जा सकते हैं, 'चित्र' की सीमा में ये नहीं आते।

दूसरे प्रकार की छन्दरचना, जिसमें एक से अधिक भाषाओं का उपयोग किया जाता था, 'भाषासमावेश' के नाम से प्रसिद्ध थी। इसके अन्तर्गत एक से अधिक भाषाओं के शब्दों को लेकर श्लोकों की रचना की जाती थी। इस प्रकार 'भाषाश्लेष' और 'भाषासमावेश' दोनों में अन्तर यह था कि 'भाषाश्लेष' में जहाँ सम्पूर्ण श्लोक का अर्थ एक से अधिक भाषाओं के अनुसार एक से अधिक हो जाता था, वहाँ 'भाषासमावेश' की रचना में श्लोक का अर्थ एक ही होता था, केवल उसमें प्रयुक्त होने वाले शब्द एक से अधिक भाषाओं से लिये जाते थे।

यद्यपि प्रारम्भ में 'चित्रकाव्य' का विवेचन करनेवाले आचार्यों ने 'भाषासमावेश' को चित्रविवेचन के अन्तर्गत स्थान नहीं दिया है, किन्तु काव्यकृतियों में चित्ररचनाओं के साथ ही इसके भी श्लोक हैं। आनन्दवर्धन के 'देवीशतक' तथा रत्नाकर लिखित 'हरविजय' जैसे प्रसिद्ध और महत्त्वपूर्ण काव्य में भी 'भाषासमावेश' के श्लोक हैं।[१] यहाँ तक कि संस्कृत, चारों प्राकृत तथा अपभ्रंश के शब्दों को मिलाकर 'भाषाषट्क समावेश' जैसी कठिन रचनाओं के श्लोक भी इन काव्यों में हैं।

शास्त्रीय चित्रविवेचन में सर्वप्रथम 'भाषासमावेश' का स्थान हमें धर्मदास रचित 'विदग्धमुखमण्डन' मिलता है, किन्तु वहाँ प्रश्नोत्तर के रूप में ही इसकी रचना है।[२] यों भोजराज के 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में भी गोमूत्रिका-विवेचन के अन्तर्गत संस्कृत तथा प्राकृत श्लोकों के बीच 'गोमूत्रिका' दिखाई गई है।[३]

हिन्दी में शास्त्रीय स्तर पर 'भाषासमावेश' अथवा 'भाषाचित्र' का विवेचन लगभग नहीं हुआ है। केवल काशिराज ने 'चित्रचन्द्रिका' में[४] तथा हरि कवि ने 'कविवल्लभ'[५]

---

१. "अलोल कमतो चित्त ललाम कमलालये।
पहिचण्डि महामोहभंगभीम बला मने॥"७४॥
—देवी शतक

हरविजयम्, सर्ग ४, श्लोक ११, २६ तथा ३५
सर्ग ४८, श्लोक ५०

२. वि० मु० मं०, परि ३, श्लोक ५३-७३

३. स० कं०, परि २, श्लोक ३२१-३२२ (वृत्ति)

४. चि० चं०, प्रकाश ७, पृ० ११६, छन्द ७ से १० तक

५. क० व०, पृ० ११९ से १२३ तक

में चित्रकाव्य-विवेचन में इसको भी स्थान दिया है। किन्तु दूसरी ओर इसकी रचना कवियों ने पर्याप्त मात्रा में की है। यों हिन्दी भाषा का स्वरूप ही ऐसा है कि इसमें संस्कृत, फारसी, अरबी, अँग्रेजी आदि भाषाओं के शब्दों का प्रयोग सर्वदा होता है। संस्कृत तो हिन्दी के लिये उपजीव्य ही है, अतः कहा जा सकता है कि 'भाषाचित्र' का आज हिन्दी में कोई अर्थ नहीं है और यह कहना समीचीन भी होगा क्योंकि यदि संस्कृत और हिन्दी शब्दों के मिश्रण में 'भाषाचित्र' देखा जाय तो सम्पूर्ण 'प्रियप्रवास' या ऐसे ही अधिकांश काव्य 'भाषाचित्र' के उदाहरण होंगे।

रीतिकाल में या उससे पूर्व की कविता में हिन्दी (तत्कालीन 'भाषा'), फारसी, अरबी अथवा संस्कृत के सम्पूर्णपदों को मिलाकर ऐसी रचनाएँ की जाती थीं जो विविध भाषाओं के इस मिश्रण के कारण पर्याप्त कौतूहलवर्द्धक होती थीं।[१] वस्तुतः 'भाषाचित्र' की सार्थकता तथा उपस्थिति केवल विभिन्न भाषाओं से शब्द अथवा पद लेकर कविता अथवा पद की रचना में नहीं है, वरन् इस प्रकार के मिश्रण से कौतूहल उत्पन्न करने में है। यदि यह मिश्रण स्वाभाविक रूप से होता है ताकि हमें कुछ खटकता नहीं, तब वहाँ 'भाषाचित्र' की अवस्थिति नहीं मानी जाती। किसी भी जीवित तथा विकासशील भाषा की यह प्रवृत्ति होती है कि सम्पर्क में आनेवाली अन्य भाषाओं से भी वह शब्द ग्रहण करती चले। यदि भाषाविशेष की यह प्रवृत्ति कुण्ठित हो जाय तो उसका विकास ही रुक जाय। अतः आज भी जब केवल कौतूहल उत्पन्न करने की दृष्टि से हम विभिन्न भाषाओं के शब्दों, पदों, अथवा वाक्यों को मिलाकर छन्द की रचना करते हैं, तो वह रचना 'भाषाचित्र' के अन्तर्गत आती है।

कहा जा चुका है कि हिन्दी में इस प्रकार की रचनाओं की एक लम्बी परम्परा है यद्यपि इसे शास्त्रीय मान्यता बहुत बाद में मिली। रीतिकाल की दरबारी प्रवृत्ति के अनुकूल तो यह रचना थी ही जिसका उद्देश्य कौतूहल उत्पन्न कर दरबार तथा शाहंशाह का मनोरंजन करना होता था। यहाँ तक कि अमीर खुसरो जैसे प्राचीन तथा प्रसिद्ध कवि ने भी 'भाषाचित्र' की उत्कृष्ट रचनाएँ की हैं। खुसरो रचित एक गजल नीचे दिया जाता है जिसकी प्रथम दो पंक्तियों का पूर्वार्द्ध फारसी है तथा उत्तरार्द्ध हिन्दी। अन्य पंक्तियों में एक के उपरान्त एक क्रमशः फारसी तथा हिन्दी में हैं। प्रत्येक पंक्ति के नीचे कोष्ठक में फारसी अंश का अर्थ भी दे दिया गया है। हिन्दी अंश का अर्थ पर्याप्त सरल है—

"जे हाल मिसकीं मकुन तगाफुल दुराय नैना बनाए बतियाँ ॥
(इस गरीब की दशा को मत भुलाओ---)

कि ताबे हिज्राँ न दारम ऐ जां न लेहु काहे लगाए छतियाँ ॥
(ऐ प्यारे अब विरह नहीं सह सकती---)

---

१. रहीम कवितावली में 'खेट कौतुक' के नाम से फारसी-संस्कृत मिश्रित छन्द की रचना, मदनाष्टक में संस्कृत और भाषा का मिश्रण

शबान हिज्राँ दराज चूँ जुल्फ़ व रोज़ वसलत चू उम्र कोताह् ।

(तेरे बालों के समान विरह की रातें और अवस्था के समान मिलने के दिन छोटे हैं)

सखी पिया को जो मैं न देखूँ तो कैसे काटूँ अँधेरी रतियाँ ॥

यकायक अज़ दिल दो चश्मे जादू बसद फ़रे बम बेबुर्द तसकीं ।

(एकाएक इन दोनों जादूभरी आँखों ने सैकड़ो बहाने से मेरे धैर्य को छुड़ा दिया)

किसे पड़ी है जो जा सुनावे पिआरे पी को हमारी बतियाँ ॥

चु शमअ: सोजाँ चु जर्रः हैराँ हमेशः गिरियों बइश्क आँ मेह ।

(उस प्यारे के प्रेम में दीपक की तरह जलती हुई जर्रे (धूल के कण जो सूर्य की किरण में चमकते और घूमते फिरते दीखते हैं) की तरह घबराती हुई और सर्वदा रोती हुई—)

न नींद नैना न अंग चैना न आप आवें न भेजे पतियाँ ॥

बहक्क रोजे वसाल दिल्बर कि दाद मारा फरेब खुसरू ।

(ऐ खुसरू प्यारे से मिलने के दिन मुझे धोखा दिया गया)

सपीत मन की दुराए राखूँ जो जाने पाऊँ पिया की छतियाँ ॥"[१]

काशिराज ने इस 'भाषाचित्र' का जो लक्षण दिया है वह द्रष्टव्य है—

"एक छन्द रचिये जहाँ बहु भाषा ते मित्र ।
कवि कोविद सब कहत हैं भाषा बन्ध विचित्र ॥"[२]

इसके उदाहरण में काशिराज ने तीन छन्दों की रचना की है जिनमें प्रथम में हिन्दी और फारसी दो भाषाओं का मिश्रण है,[३] दूसरे में हिन्दी, प्राकृत, संस्कृत तथा उर्दू चार भाषाओं का उपयोग है[४] तथा तीसरा छन्द हिन्दी, प्राकृत, गुजराती, संस्कृत, महाराष्ट्री पंजाबी, मारवाड़ी तथा फारसी इन आठ भाषाओं के पदों का सम्मिलित रूप है। उदाहरण के लिये काशिराज रचित तृतीय छन्द जो 'अष्टभाषा चित्र' का है, द्रष्टव्य है—

"चन्द ते मुख चारु सोहै णअण तो हरिणी जिआ ।
कैड जे बूँ नव जलाधूँ कलश जित्स्वकुचश्रिया ॥
चंप काहुनि फाररंगी आखि तुसि असि चुक्किआ ।
वार काँइ हरि करो छो री बुबीं हज्ज कुल्लिया ।"[५]

---

१. खुसरो की हिन्दी कविता, पृ० ६५, छन्द ९

२. चि० चं०, प्रकाश ७, छन्द ७

३. उपरिवत्, छन्द ८

४. उपरिवत्, छन्द ९

५. उपरिवत्, छन्द १०

प्रस्तुत छन्द के चारों चरणों के दोनों अर्द्धों में क्रमशः हिन्दी, प्राकृत, गुजराती, संस्कृत, महाराष्ट्री, पंजाबी, मारवाड़ी तथा फारसी भाषा का प्रयोग किया गया है। किन्तु सम्पूर्ण में नायिका के सौंदर्य का वर्णन है और भाषा वैभिन्न्य के कारण इनके अर्थ में कहीं व्याघात नहीं पड़ता। रीतिकाल के कवियों ने 'भाषाचित्र' की जितनी रचनाएँ की हैं उनमें प्रमुखतः भाषा (हिन्दी), अरबी, फारसी, तुरकी, गुजराती, मराठी, उर्दू तथा बँगला का प्रयोग किया गया है।[1] किन्तु भारतेन्दु काल में जब हमारा परिचय अँग्रेजी से हुआ तो अँग्रेजी का उपयोग भी इस प्रकार की रचनाओं के लिये किया जाने लगा। स्वयं भारतेन्दु ने इस प्रकार की रचनाएँ की हैं जिनमें हिन्दी-अँग्रेजी के शब्दों का प्रयोग है। इसके अतिरिक्त अन्य अनेक ऐसे कवि हैं जिन्होंने इस प्रकार के छन्दों की रचना की जिनमें हिन्दी तथा उर्दू-फारसी जैसी अन्य भाषाओं के साथ अँग्रेजी के भी शब्दों तथा पदों का प्रयोग किया। ऐसा ही एक कवित्त साधौगिरि गोस्वामी ने अपने 'कविशिक्षक ग्रन्थ' में दिया है—

"फेस अति ग्रेसफुल मूनहू सो दून अति
चश्म शरमिन्द करै खंजन गजाल को।
कोरल की लाली लिप लाली सम क्यों हू नाहि,
वीनी छवि छीनी शुक दंदा दूर जाल को॥
टाकि औ वाकि करै मात पिक हंस साधो,
नाज औ अदा सों फेदा करै मन लाल को॥
केम त्यों अकेली अलवेली चलो सून कुंज
दिलवर गुल्फाम नाम राधे तेहिबाल को॥"[2]

लिपिचित्र

'भाषाचित्र' के एक दूसरे प्रकार की रचना भी हमें भारतेन्दु तथा श्रीधर पाठक जैसे कवियों में मिलती है जिन्हें 'लिपिचित्र' कहा जा सकता है।[3] इन रचनाओं में छन्द तो हिन्दी भाषा में ही रचे जाते हैं किन्तु जहाँ शब्दों का उच्चारण अँग्रेजी अथवा अन्य किसी

१. कविवल्लभ के छन्दों में निम्न भाषाओं का मिश्रण है—
(क) फारसी तथा भाषा
(ख) संस्कृत, फारसी तथा ब्रजभाषा
(ग) तुर्की, फारसी तथा ब्रजभाषा
(घ) फारसी-तुर्की
(ङ) फारसी, तुर्की, देशभाषा
(च) ब्रजभाषा तथा गौड़देश की भाषा (बंगला)
(छ) माड़वाड़ी तथा भाषा

२. क० शि० ग्र०, पृ० ११६, छन्द ८७

३. भा० ग्रं०, भाग २, पृ० ७४२
मनोविनोद (श्री० पाठक), पृ० ७८
रुद्र कौतुक विचित्र, पृ० १३३

भाषा के वर्ण के उच्चारण से मिल जाता है वहाँ नागरी लिपि के स्थान में उसी लिपि के वर्ण को लिख देते हैं। इन वर्णों के स्थान पर कतिपय छन्दों में इस ध्वनिसाम्य को लेकर अंकों का भी प्रयोग किया गया है। स्वयं भारतेन्दु ने ऐसे छन्दों की रचना की है जिनमें इस पद्धति को अपनाकर हिन्दी के छन्द में रोमन तथा फारसी लिपि के वर्णों का प्रयोग किया गया है। साथ ही कुछ दोहे ऐसे भी हैं जिनमें अंकों का भी इसी विधि से प्रयोग किया गया है। उदाहरणस्वरूप निम्न छन्द द्रष्टव्य हैं—

नागरी-फारसी वर्णों का प्रयोग

"چ ر ث ح ر सबै ث ر विना क ل
गलै ے नहिं शत्रु की तुव सनमुख गुन धाम ॥"

नागरी-रोमन वर्णों का प्रयोग

"G बहु E स अ C स बल हरहु प्रजन की Pर।
सर U यमुना गंग में जब लौं थिर जग नीर॥"[१]

नागरी वर्ण तथा अंकों का प्रयोग (अंक चित्र)

"करि वि ४ देख्यों बहुत जग बिनु २ स न १।
तुम बिनु हे विक्टोरिये नित ९०० पथ टेक॥"[२]

उपर्युक्त छन्द वस्तुतः 'भाषाचित्र' के नहीं हैं, कारण इनमें भाषा वैभिन्न्य नहीं वरन् लिपिबहुलता के कारण कौतूहल की उत्पत्ति होती है। इन छन्दों की भाषा केवल हिन्दी है, शब्दों के उच्चारण के अनुसार नागरी के अतिरिक्त अन्य लिपियों का प्रयोग भी किया गया है। अतः इन्हें 'लिपिचित्र' कहना अधिक समीचीन होगा। जहाँ तक इनके रचयिताओं का प्रश्न है उन्होंने इन रचनाओं को किसी विशेष नाम से सम्बोधित नहीं किया है।

कल्पवृक्ष अथवा उदधिबन्ध चित्र

काशिराज रचित 'चित्रचन्द्रिका' तथा त्रिलोकीनाथ सिंह (भुवनेश कवि) रचित 'भुवनेशभूषण' नामक ग्रन्थ में क्रमशः 'कल्पवृक्ष बन्ध' तथा 'उदधिबन्ध' नाम से एक ऐसे 'चित्रकाव्य' की रचना मिलती है, जो अन्यत्र कहीं नहीं मिलती।[3] संस्कृत में भी इस प्रकार की कोई रचनापद्धति नहीं दीख पड़ती। इन दोनों रचनाओं की पद्धति बिलकुल समान है। इनके अन्तर्गत एक चतुरस्र की कल्पना की गई है जिसमें कोष्ठकों की पंक्तियाँ

१. भा० ग्र०, भाग २, पृ० ७४२, मनोमुकुल माला
२. उपरिवत्, पृ० ७४३, अंकमयी, छन्द १
३. चि० चं०, प्रकाश ७. पृ० १२१
भुवनेश भूषण, पृ० ४२

बनी हैं। इन कोष्ठकों में प्रति कोष्ठक एक वर्ण की रीति से कतिपय छन्दों को लिखा गया है। इस प्रकार जो चित्र बन पाता है उसमें से पुस्तक में निर्दिष्ट पाठ की विशेष-विशेष पद्धतियों को अपनाने से अनेक प्रकार के तथा अनेक भाषाओं के अन्य छन्द निःसृत होते हैं। उपर्युक्त दोनों ही पुस्तकों में वर्णित इन दोनों बन्धों की विशेषता यही है। अन्तर केवल यह है कि 'चित्रचन्द्रिका' में नियोजित 'कल्पवृक्ष बन्ध' में जहाँ प्रत्येक कोष्ठकपंक्ति में कोष्ठकों की संख्या ३८ है वहाँ 'भुवनेशभूषण' में वर्णित 'उदधिबन्ध' की प्रत्येक कोष्ठक-पंक्ति में कोष्ठकों की संख्या केवल ३२ है। कोष्ठकपंक्तियों की संख्या दोनों चित्रों में २४-२४ है।[1] न्यास के छन्दों की संख्या काशिराज में २४ है जबकि 'भुवनेशभूषण' के चित्र में केवल ९ छन्दों का न्यास हुआ है। इसका कारण यह है कि काशिराज ने न्यास के लिये केवल दोहा-सोरठा जैसे छोटे छन्दों की रचना की है, अतः प्रत्येक कोष्ठकपंक्ति के कोष्ठकों में एक पूर्ण छन्द का न्यास हो जाता है। इसके विपरीत 'भुवनेशभूषण' में चार तो दोहे अथवा सोरठे हैं और इनका न्यास प्रति कोष्ठकपंक्ति प्रति छन्द की रीति से होता है, किन्तु अन्य पाँच घनाक्षरी होने के कारण प्रति छन्द चार कोष्ठकपंक्तियों की आवश्यकता पड़ती है। सब मिलाकर दोनों चित्रों की रचनापद्धति एक ही है और इनमें केवल नाम का अन्तर है।

काशिराज ने अपने 'कल्पवृक्ष बन्ध' में पाठ की गति तथा उससे निःसृत होनेवाले नवीन छन्दों की उपलब्धि के लिये कोष्ठकों में लिखित वर्णों को काले, लाल तथा पीले रंगों में रखा है, जबकि 'भुवनेशभूषण' में नवीन छन्दों की प्राप्ति के लिये कोष्ठकों में संख्या का प्रयोग किया गया है। मुद्रण की सुविधा के लिये प्रस्तुत स्थल पर दोनों चित्रों में संख्या का ही प्रयोग किया गया है। ये संख्याएँ अन्तर्राष्ट्रीय अंकों में हैं।

प्रस्तुत चित्रों की विशेषता कवि की वर्णगणना की शक्ति में है। किस छन्द में कौन से वर्ण को किस स्थान में रखा जाय ताकि एक विशेषगति से पढ़ने पर अन्य छन्द निकल आवें, यह कार्य कृच्छ्र शब्दसाधना मात्र होने पर भी सामान्य प्रतिभावाले व्यक्तियों के लिये सम्भव नहीं है। मात्रसंयोग से ऐसी रचनाएँ नहीं हो जातीं बल्कि इनके लिये प्रतिभा की विशेष आवश्यकता होती है।

काशिराज रचित कल्पवृक्षबन्ध में निम्न २४ छन्दों का न्यास किया गया है—

१. काशिराज लहिं शंभु ते कलपवृक्ष सो भाखि।
मत कवि जगै प्रभाव शिव नर रस वर लहु चाखि॥
२. सृग हरि मनीन बंध, गल गत लर भासत परं।
सेजं न रामतंध, रची सुरन वसु पालिनव॥
३. जलज सुवास वर देवनु परम सु अद्भुत मंत्र।
भुवन सँभारन वसि हृदय द्यावा भूमी तंत्र॥

१. द्रष्टव्य, दोनों बन्धों के संलग्न चित्र पृ० ४१२ और ४१३

४. प्यारचुभइ तोरे कहलाला को वापुरा अमि (म) त्ति ।
मनो साधि काम सर लायो तूं जो लायक नीरस तत्ति ॥
५. वारिद वृंदं हटक भलाजसे भला कुहुर्वली ह्वै ।
सासुल आरद्र लीन सा लगाकेलि गलाला तनेच्चै ॥
६. राम वरं नर जक्त धरं जय जब वंद्यं सद्यै तारे ।
स्फुटं ते मुख चन्द्रोपकाम को दिनास्मात्छत्रं प्यारे ॥
७. वर सव गीत बनत अहत सुलभ गंग के द्राव ।
धी अंकुर प्रगटं इहाँ रगत छापु भव भाव ॥
८. मनुओ पल्लव अरुण से जावक भरी कितार ।
तरणि सुअव पद अडिव सो किरण तुंड साकार ॥
९. गणिका गति अस इभ सरसु यों पुल की भइ लाभ ।
मद मतागी पिकसु वहु डुवए चखए णाभ ॥
१०. भरि क्रोधन तब तनि वनि यत्ततु सम करि अजानु ।
अब मुरारि जी ठानि रिस निरो रह्यो है सानु ॥
११. अरुण वसन पिय ल्याउ सुघनी देवन झर भई ।
सावन मध्य झुलाउ चलि वन कुंजन पुंज में ॥
१२. वरन वरन धन भया है जीडा लाग डरानु ।
दारुन दुख अब गर पर्‌यो तिय बिनु जुला समानु ॥
१३. तिय वानिक लखि जरति है साल सगर्‌यो गुमान ।
बल्लभ गल लागी तुही परम सरस भरि तान ॥
१४. करहु होद चलि सुख सदा गुल लाला सी यत्र ।
सुसदन प्रसू नव रस भा, समा ललन अब तत्र ॥
१५. लूटत सुबास दीस, गत जल लरजै जुवा सब ।
करै नादि नय सीस सो इव कसहु सी नाथ नट ॥
१६. तो लू इंदु न मुख सजि आगे रति अति दीसि रतीअ ।
सो ल्यामि लाउ राता सो भा रमा सयानी नारि प्रीअ ॥
१७. ह्वै तस्कर तुम हनूमग जब गोरस लैं बाल ।
काहु कुटिल दासी निरत हसत नचत करि ताल ॥
१८. पर कर गहु लतिया निरखि जिय तर्फी यो जाय ।
ईहा नाचि वो मोल वसि वन तन गति लघु गाय ॥
१९. तू शशिवदना कीन लै सलिलज मृग वने सर ।
अछय सुरकन्याहीन कोकिल करि मृगराज वर ॥
२०. सरस बड़े अंबुज नहीं नहिं तुव दृग दीनी हार ।
सदा जो कोकिल सुमतु सों रटत तुलत न पुकार ॥

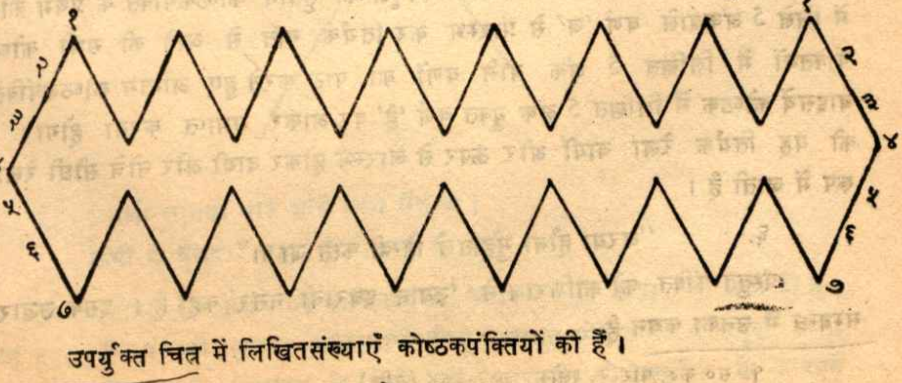
२१. वन लतानि में तुम पढ़ै दीसि चलन अब इस्क।
तजहु गैल लघु चिसिक तुव आया नहिं दे निस्क॥
२२. कर दीजिय मृगनैनि सब कहत वचन रसखान।
वृक्ष लतन गुथे दासने हो तो ह्यां दधिदान॥
२३. फल तल तनि बर दाख सरित सरवर रस नया।
आछे मथे सुभाख ए बेरा चलि ललन मिलु॥
२४. चलु तहँ लखि मुर कन्द पिय हौं जारनि दुख पाय।
वहै खुभी ऊँची अटा सुबसत जहँ जदुराय॥[1]

काशिराज रचित कल्पवृक्ष के प्रस्तुत चित्र से निःसृत होनेवाले छन्द निम्न हैं। उनके उद्धार की विधि भी तत्सम्बन्धी छन्दों के साथ ही दे दी गई है। उद्धारविधि के संकेत भी काशिराज ने स्वयं ही दिये हैं।

१. संस्कृत शिखरिणी छन्द

"भवानी शं बंदे गल गरल शोभाढ्यतरं
भुजंगेराभांतं सिरसि सुरनद्या सुललितं।
त्रिनेत्रं भस्मांगं दिगमलपटं चंद्र मुकुटं,
सुरेन्द्राद्यैर्वंद्यं भव भय हर भक्त वरदं॥"

'कल्पवृक्ष चित्र' में प्रस्तुत छन्द के उद्धार के लिये प्रथम सात कोष्ठकपंक्तियों में 1 अंक वाले कोष्ठकों में लिखे अक्षरों का युगसर्पगति से पाठ करना होगा। अर्थात् सर्व प्रथम चतुर्थ कोष्ठकपंक्ति में बायीं ओर के 1 अंक वाले कोष्ठक में लिखे अक्षर 'भ' से प्रारम्भकर प्रथम तीन कोष्ठकपंक्तियों में लिखे 1 अंक वाले अक्षरों को गोमूत्रिका क्रम से पढ़ते हुए दायीं ओर अन्त में पहुँच कर पुनः सातवीं पंक्ति तक के 1 अंक वाले अक्षरों का पाठ करते हुए विपरीतगोमूत्रिका क्रम से दायीं से बायीं ओर को आकर पंचम कोष्ठक-पंक्ति में लिखे 'दं' पर समाप्त करना होगा। इस रीति से प्रस्तुत छन्द का उद्धार हो जायगा। अलग से देखने पर इस छन्द के उद्धार की रैखिक गति निम्न होगी—



उपर्युक्त चित्र में लिखितसंख्याएँ कोष्ठकपंक्तियों की हैं।

१. चि० चं०, प्रकाश ७, पृ० १२२ से १३५ तक

२. 'कल्पवृक्ष' से निःसृत होनेवाला दूसरा और तीसरा छन्द भी संस्कृत का ही अनुष्टप है। ये दोनों ही अनुष्टुप परस्पर अनुलोम-प्रतिलोम सम्बन्ध से सम्बद्ध हैं। ये श्लोक भोजराज रचित 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में भी आये हैं।[1]

अनुलोम अनुष्टुप

२. "इहरे वहलाला से बाला राहु मलीमसा।
सालकारसलीलासातुंगालालि कलारत ॥"

प्रतिलोम

३. "तारला कलिलागातुंसा लालीसरकालसा।
सामली महुराला वा सेलाला हवरेहई ॥"

प्रस्तुत दोनों ही श्लोक 'कल्पवृक्ष चित्र' की चौथी तथा पाँचवीं कोष्ठक-पंक्तियों में लिखे 2 अंकवाले अक्षरों को क्रमशः गोमूत्रिका तथा विपरीत गोमूत्रिका क्रम से पढ़ने पर प्राप्त होते हैं।

४. प्रस्तुत 'कल्पवृक्ष' से जो चौथा छन्द निःसृत होता है, वह प्राकृत की आर्या है। 'अलंकार कौस्तुभ' में भी प्रस्तुत आर्या का समावेश है।

"भणि ओवल्ल अवइण अज्जा सुत पुरी गंताइअ।
भणिअं अतारा पिय इब हुँ, सवण पुडए सा ॥"

प्रस्तुत आर्या के उद्धार के लिये 'कल्पवृक्ष' की सातवीं से लेकर दसवीं कोष्ठक पंक्तियों में लिखित 4 अंकवाले अक्षरों को नागगति अर्थात् गोमूत्रिका क्रम से पढ़ना होगा।

५. 'कल्पवृक्ष' से निकलने वाला पाँचवाँ छन्द उर्दू का 'बैत' है, जो निम्न है—

"जरद रंगी वसन्त ल्याया है।
गुल असर्फी ने रस्क खाया है ॥"

प्रस्तुत 'बैत' के उद्धार के लिये 'कल्पवृक्ष' की तृतीय कोष्ठकपंक्ति के प्रथम कोष्ठक में लिखे 5 अंकवाले वर्ण 'ज' से प्रारम्भ कर तिर्यक गति से आगे की सभी कोष्ठक-पंक्तियों में लिखित 5 अंक वाले वर्णों का पाठ करते हुए अन्तिम कोष्ठकपंक्ति के बाइसवें कोष्ठक में लिखित 5 अंक युक्त वर्ण 'है' पर आकर समाप्त करना होगा। पाठ की यह तिर्यक रेखा बायीं ओर ऊपर से आरम्भ होकर दायीं ओर नीचे सीधी रेखा के रूप में जाती है।

६. "अरबा हौवा मुहतिलै हिन्दी कत्त जा ॥"

प्रस्तुत पंक्ति को काशिराज ने 'ज़बान इबरानी नसर' कहा है। इसके उद्धार के सम्बन्ध में उनका कथन है—

१. स० क०, परि २, श्लोक ३०३-३०४ (वृत्ति)

"कल्पवृक्ष में अरुणाक्षरन में तिर्य्यंकगति सों इबरानी जबान कढ़ति है।"

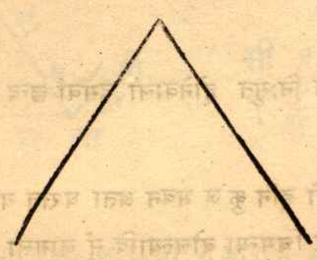
प्रस्तुत पंक्ति के उद्धार के लिये हमें ग्यारहवीं कोष्ठकपंक्ति के प्रथम कोष्ठक में लिखे 6 अंक से युक्त अक्षर 'अ' से आरम्भ करके छन्द संख्या ५ की उद्धार रेखा के समानान्तर तिर्यक गति से कोष्ठकों में लिखे 6 अंक से युक्त वर्णों को पढ़ते हुए अन्तिम कोष्ठकपंक्ति के चौदहवें कोष्ठक में लिखित 6 अंक से युक्त वर्ण 'जा' पर समाप्त करना होगा।

७. उपर्युक्त पाठ के समानान्तर ही विपरीत तिर्यकगति से अन्तिम कोष्ठकपंक्ति के दसवें कोष्ठक में लिखे 7 अंक से युक्त वर्ण 'दं' से आरम्भ कर सीधी रेखा में पड़नेवाले 7 अंक वाले वर्णों का पाठ करते हुए १५वीं कोष्ठकपंक्ति के प्रथम कोष्ठक में न्यस्त 7 अंक से युक्त वर्ण 'लू' तक पहुँचने से निम्न 'फारसी मिस्रा' की प्राप्ति होती है—

"दंदा नेतु अदरस्क लू लू ॥"

८. "चलदी ताडे नालनू जितदा साडा देस।
कीकरदा वदनामिदा मोही तुसिदा बेस ॥"

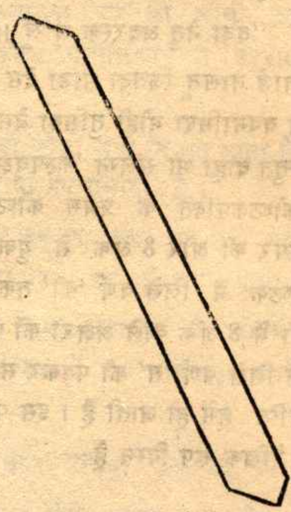
पंजाबी भाषा का प्रस्तुत दोहा भी संलग्न 'कल्पवृक्ष' से ही निःसृत होता है। इसके उद्धार के लिये अन्तिम कोष्ठकपंक्ति के प्रथम कोष्ठक में लिखित वर्ण 'च' से पाठ आरम्भ कर सीधी रेखा में ऊपर की ओर 8 अंक से युक्त अक्षरों को पढ़ते हुए नवीं कोष्ठकपंक्ति के १६वें कोष्ठक में लिखे वर्ण 'की' तक पढ़कर पुनः दायीं ओर नीचे की दिशा में तिरछे ही सीधी रेखा में 8 अंक वाले अक्षरों को पढ़ते चलें तथा अन्तिम कोष्ठक-पंक्ति के इकतीसवें कोष्ठक में लिखे वर्ण 'स' को पढ़कर समाप्त करें। इस गति से पढ़ने पर उपर्युक्त दोहे की प्राप्ति हमें हो जाती है। इस पाठगति को काशिराज ने 'शिखर गति' की संज्ञा दी है जिसका रेखिक रूप निम्न है—



९. "घणी लागसी बार कांई छेको गैल थे।
ऊभी छे वृजदार जावा दीजै लाल जी ॥"

प्रस्तुत सोरठे की भाषा को काशिराज ने 'जयनागर की भाषा' की संज्ञा दी है। यों यह भाषा भी पंजाबी अथवा राजस्थानी ही है। प्रस्तुत सोरठा भी 'कल्पवृक्ष' से ही निःसृत होता है। इसके निःसरण के लिये हमें ग्यारहवीं कोष्ठकपंक्ति के बारहवें

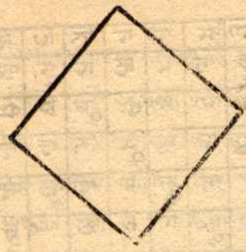
कोष्ठक में लिखे 9 अंक से युक्त 'घ' से पाठ प्रारम्भ करना होगा। पाठगति उसी कोष्ठक-पंक्ति के तेरहवें कोष्ठक में लिखे 9 अंक से युक्त वर्ण 'णी' से होती हुई तिर्यक रूप से नीचे की ओर के 9 अंक वाले अक्षरों की ओर मुड़ जायगी। अन्तिम कोष्ठकपंक्ति के २५वें कोष्ठक में लिखित 9 अंक से युक्त वर्ण 'ऊ' पर आकर पाठ की गति बायीं ओर मुड़ेगी और उसी पंक्ति के २४वें कोष्ठक में लिखित वर्ण 'भी' से होती हुई पुनः तिर्यक गति से ही ऊपर की ओर चलकर बारहवीं कोष्ठकपंक्ति के बारहवें कोष्ठक में लिखित वर्ण 'जी' में आकर समाप्त हो जायगी। काशिराज ने पाठ की इस गति को 'नौकागति' की संज्ञा दी है। इसका रैखिक चित्र निम्न होगा—



१०. 'कल्पवृक्ष' से निःसृत होनेवाला दसवाँ छन्द महाराष्ट्री भाषा का है। वह निम्न है—

"सो डुनि कुंज भवन अता घरात या हो राव
एरे चिमन्या बोलल्यादि सूं लागला ठाव ॥"

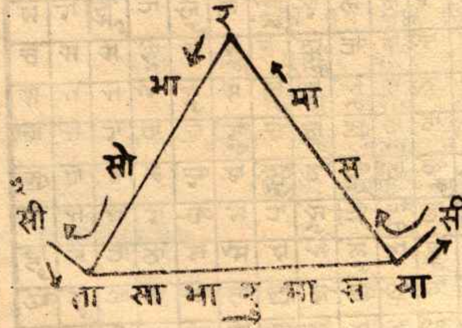
प्रस्तुत दोहे की योजना 'कल्पवृक्ष चित्र' के दक्षिण भाग में 10 अंक से युक्त कोष्ठकों से बने चतुष्कोण की परिधि के रूप में है। चतुष्कोण के चारों कोण क्रमशः नवीं कोष्ठक-पंक्ति के ३०वें कोष्ठक, १६ वीं कोष्ठकपंक्ति के अन्तिम अर्थात् ३८ वें कोष्ठक, अन्तिम अर्थात् २४ वीं कोष्ठकपंक्ति के ३०वें कोष्ठक तथा १६वीं कोष्ठकपंक्ति के बाइसवें कोष्ठक में लिखे 10 अंक से युक्त वर्णों से बनते हैं। इस चतुष्कोणमण्डल का रूप निम्न है—



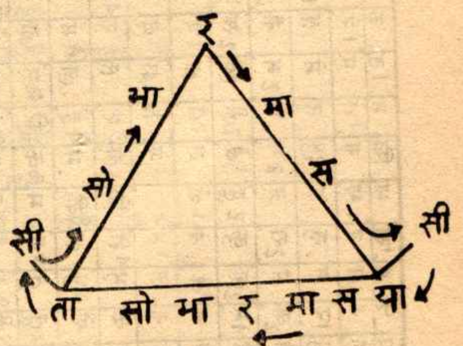
११. प्रस्तुत 'कल्पवृक्षचित्र' से निकलनेवाला अन्तिम छन्द 'चित्रचन्द्रिका' का प्रसिद्ध पद है जिसका काशिराज ने कई प्रसंगों में उपयोग किया है। छन्द निम्न है—

"सीता सोभा रमा सयासी।
सीया समा रभा सो तासी ॥"

प्रस्तुत छन्द की योजना काशिराज ने 'कल्पवृक्ष' में छन्द संख्या १० के वर्णों से बने चतुष्कोण के मध्य गुलेल के आकार में की है। चतुष्कोण के मध्य के 11 अंक से युक्त वर्णों को यदि हम देखें तो हमारे सम्मुख गुलेल का एक आकार स्पष्ट होता है। इस आकार में आनेवाले वर्णों का पाठ करने से उक्त चौपाई की प्राप्ति हमें होती है। चूंकि प्रस्तुत चौपाई प्रतिलोमानुलोम पद्धति में रचित है अतः इसके पाठ की दो गतियाँ होती हैं। नीचे के चित्रों में तीर के सहारे इस छन्द की पाठ की गतिदिशाओं को दिखाया गया है—



गतिदिशा-१



गतिदिशा-२

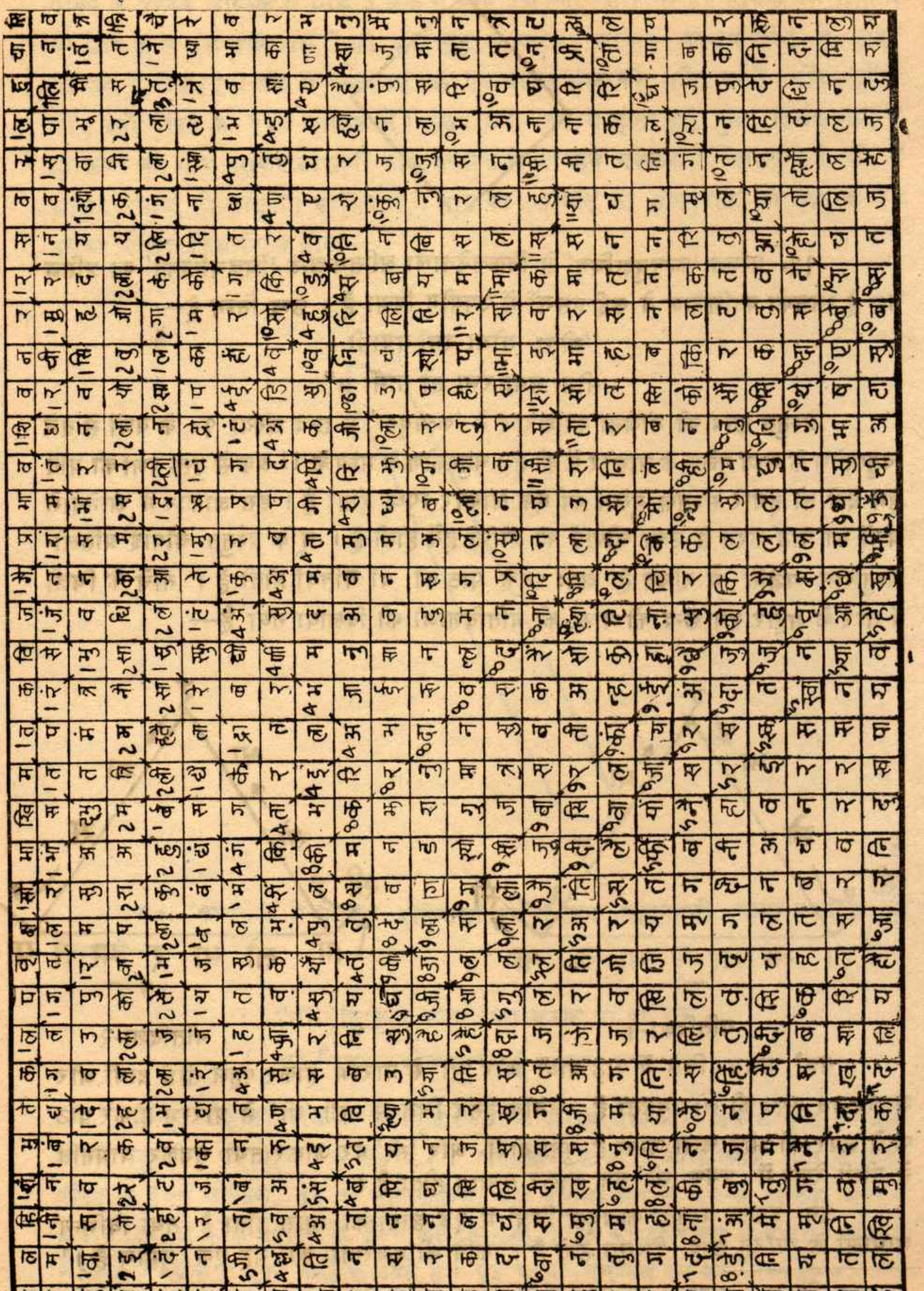
यहाँ प्रथम चित्र में पाठ बायीं ओर 'सी' से प्रारम्भ होकर पहले सीधे दायीं ओर जाकर तब ऊपर की ओर मुड़ता है, जबकि दूसरे चित्र में उसी 'सी' से प्रारम्भ होकर पाठ पहले ऊपर की ओर चला जाता है पुनः दायीं ओर 'सी' पर जाकर तथा मुड़कर वामगति से सीधी रेखा में प्रथम 'सी' तक आकर समाप्त होता है।

इस प्रकार प्रस्तुत 'कल्पवृक्ष चित्र' में २४ छन्दों का न्यास होता है तथा विभिन्न भाषाओं के ग्यारह छन्द निःसृत होते हैं। कवि की कुशलता का यह एक प्रमाण है।[1]

---

१. चि० चं०, प्रकाश ७, पृ० १३५ से १४५ तक

कल्पवृक्षबन्ध



उदधिबन्ध

ऊपर कहा जा चुका है कि काशिराज रचित उपर्युक्त 'कल्पवृक्ष बन्ध' के समान ही 'भुवनेशभूषण' में 'उदधिबन्ध' चित्र की रचना की गई है। इन दोनों रचनाओं में केवल नाम का अन्तर है अन्यथा दोनों की रचनापद्धति एक है। प्रस्तुत चित्र में भी ३२-३२ कोष्ठकों से युक्त २४ कोष्ठकपंक्तियों की योजना है जिनमें ९ छन्दों का न्यास प्रति कोष्ठक प्रतिवर्ण की रीति से किया गया है। इन नवों छन्दों में ५ छन्द तो धनाक्षरी अथवा कवित्त हैं और चार दोहे अथवा सोरठे। 'कल्पवृक्ष' के समान प्रस्तुत 'उदधिबन्ध' से भी अन्य ८ छन्द अथवा छन्दांश विभिन्न पाठगतियों का अनुकरण करने से प्राप्त होते हैं। ये छन्द एक से अधिक भाषाओं के हैं। स्वयं कवि ने इस 'उदधिबन्ध' की जो परिभाषा दी है वह निम्न है—

"पहिले सूधे पढ़िय पुनि काहू भाँतिन मित्र।
प्रगटै भाषा छन्द बहु उदधिबद्ध सो चित्र॥"[१]

प्रस्तुत चित्र में न्यस्त नवों छन्द निम्न हैं—[२]

छन्द संख्या-१ (घनाक्षरी)

"भुवनेश आयो रितुराज साजे गुल छबि
करत कलोल कीर कोकिल फवत फाब।
सो हैं सुभ कमल कतारैं छाये जल माँझ
कौन समै आई चित मोहैं भौंर माहताब॥
डोलैं पौन सुमधुर धारि गति कुंजन मैं
कहौंरी हवाल कौन मनसिज आवताब।
बलि बलबीर तीर चाहौं मैं चलन अब
अबला हमहिं जानितैं कछु न धरु ताब॥"

छन्द संख्या-२ (कवित्त)

"हैं विकासमान सुवितान छवि छाये सो हैं
मालती विश विष्णुकांता गुलमखमल हैं।
अनारसवनी आफताबमुखी गेंदा वेला
वन सब वासैं अति रसवस विमल हैं॥
जूही केवड़ा सुगुलाचीन चंपक करन
अवादान कीन्हे गुलदावदी सब थल हैं।
वीर कैसे रूसि रही सोभासने बोलैं कीर
रस सरसाने पूर वादा हरि विकल हैं॥"

---

१. भु० भू०, पृ० ४२, छन्द १
२. भु० भू०, पृ० ४२ से ४५ तक

छन्द संख्या-३ (दोहा)

"भौंर राजई कै रहत कुसुम ह्रिदै रस पान ।
भोरे जुरि कै आवत नच्चै रच्चै गान ॥"

छन्द संख्या-४ (दोहा)

"धनि गौरा शिव शंकर लक्ष्मी धन्य दिनेस ।
धनि विधि भैरों आदिक चित्रोगुप्त सुरेस ॥"

छन्द संख्या-५ (कवित्त)

"मेरो हार लाय करि मेरे उर डारै धीरे
बलबीर आवै लखु स्यामा संग विहरत ।
कछुक बहार करौं हौं हू जाय कृष्न तीर
वीर कछू धीर ना आवत हिय प्रीतिरत ॥
चंद्र की सी प्रभा फैली कृत्य-कृत्य आजु भई
ताप सब दूर ह्वै हैं वदन ससी सरत ।
कछू प्राण प्यारे मेरे कृपा कै करैंगे अर्थ
हैं रत रस रासनि पर्दा न कछू करत ॥"

छन्द संख्या-६ (कवित्त)

"जह तह बोलै चकोर मोर मुदित मन
घूमि घूमि गोपीजन गावैं मंजु दै दै ताल ।
संपागन भूरि घन माहिं हैं प्रकाशमान
सोहहिं पत्यारी इंदु नारी जहँ बेमिसाल ॥
लोल लेल छाजी छवि देखिये न अन्य थल
वक की कितेक पंक्ति भ्राजैं सुखदा विशाल ।
चात्रिक प्रसस्त मन हुलसानै पूरैं आस
केलिकरि प्रभुसंग डारि दे अनंग जाल ॥"

छन्द संख्या-७ (कवित्त)

"रंच रुख पायतु अस्वारथ निकास चाहै
देर मति कीजै वलवीर उतै आओ अब ।
कीर सो नासा सोभै भौर कच चंप तन सु
निशिनाथ मुख वने तापनि बुझाओ सब ॥

बोन ज्यों पिक वयन ताको लाल सोहैं वहु
भिन्न छिटकारे छबि सरस सुहाओ लब ।
जानि लीजै रत्नगन ल्याई हेतु तेरे जस
तेज पुंज ऐन राजै मदन लजाओ फब ॥"

छन्द संख्या-८ (दोहा)

"जोहति स्यामा आपुनुअ डगर लेखिये स्याम ।
रटति अटा पै बैठी दयानिधे तो नाम ॥"

छन्द संख्या-९ (सोरठ)

"संध्या ही मैं आनि नच्चै गावै इंदु मुखि ।
सब सोभा की खानि चलत नकस निरखे बने ॥"

जैसा कि कहा जा चुका है 'उदधिबन्ध' के संलग्न चित्र से निःसृत होनेवाले छन्द अथवा छन्दांश निम्न हैं। इन छन्दों अथवा छन्दांशों के उद्धार की गति सूचित करने के लिये प्रस्तुत चित्र में तत्सम्बन्धी कोष्ठकों में वर्ण के साथ ही अंक लिख दिये गये हैं। इस प्रकार जिन कोष्ठकों में 1 की संख्या लिखी है, उनमें लिखित वर्णों का पाठ करने पर चित्र से प्रथम छन्द निःसृत होगा। उद्धार के आरम्भ तथा अन्त का ज्ञान छन्द के प्रथम तथा अन्तिम अक्षर को देखने से होगा। प्रत्येक छन्द के साथ ही चित्र में उसे द्योतित करने-वाली संख्या का भी उल्लेख किया गया है।

१. प्रस्तुत 'उदधिबन्ध चित्र' से जो प्रथम छन्द निःसृत होता है वह संस्कृत भाषा का 'द्रुतविलम्बित' छन्द है—

"मधुरता वचने हृदि धीरता
रसिकतातिगुणे युधि वीरता।
निपुणता कथने असमर्थता
रघुपते भुवनेश दयानिधे।"

चित्र में जिन कोष्ठकों में 1 लिखा है उनमें लिखे वर्णों से प्रस्तुत छन्द की प्राप्ति होती है। छन्द का आरम्भ द्वितीय कोष्ठकपंक्ति के छठे कोष्ठक में लिखे 'म' से होगा और तिर्यक गति से नीचे की ओर बढ़ेगा। छन्द की तृतीय पंक्ति का आरम्भ अन्तिम कोष्ठक-पंक्ति के छठे कोष्ठक में लिखे वर्ण 'नि' से होकर पाठ तिर्यक गति से दायीं ओर ऊपर बढ़ेगा। इस प्रकार आरम्भ कर 1 की संख्या वाले कोष्ठकों में लिखे वर्णों का पाठ करना होगा।

२. "बल्लाह आलम बिसवाब।"

कवि के अनुसार प्रस्तुत वाक्यांश 'अरबीभाषा' का है। इसके उद्धार के लिये 2 की संख्यावाले कोष्ठकों में लिखित वर्णों को पढ़ना होगा।

३. "गाड हेलपस आल केर नाट ऐटाल।"

(God helps all care not at all)

प्रस्तुत वाक्य अँगरेजी का है। 'उदधिबन्ध' के संलग्न चित्र में जिन कोष्ठकों में 3 की संख्या लिखी है, उनमें न्यस्त वर्णों से इसका उद्धार होता है।

४. "रुषस् दीदा बदिल आवर्दा महदाग।"

लेखक के अनुसार प्रस्तुत मिसरा फारसी का है तथा चित्र में 4 की संख्यावाले कोष्ठकों में लिखित वर्णों से इसकी प्राप्ति हमें होती है।

५. 'उदधिबन्ध चित्र' से निःसृत होने वाला पाँचवाँ छन्द हिन्दी भाषा की चौपाई है। जिन कोष्ठकों में 5 की संख्या है उनमें अवस्थित वर्णों के पाठ से इस चौपाई की प्राप्ति होती है। चौपाई निम्न है—

"शंकर प्रनत पाल करुनाकर।
करौ कृपा मोहि देहु अभैवर॥"

६. "बहाराई सिगुफ़्ता हो गये गुल।"

प्रस्तुत वाक्य उर्दू भाषा का है और चित्र में 6 की संख्यावाले कोष्ठकों के वर्णों से इसका उद्धार होता है।

७. 'उदधिबन्ध चित्र' से प्राप्त होनेवाला निम्न सातवाँ छन्द भोजपुरी का है। छन्द संख्या के अनुकूल ही प्रस्तुत छन्द चित्र के 7 संख्या से युक्त कोष्ठकों में लिखित वर्णों के पाठ से प्राप्त होता है—

"मनलिस ना बरजनि कछू हरिसन करली मान।
अइले जबते सुरभि है, बहि गो सबहि गुमान॥"

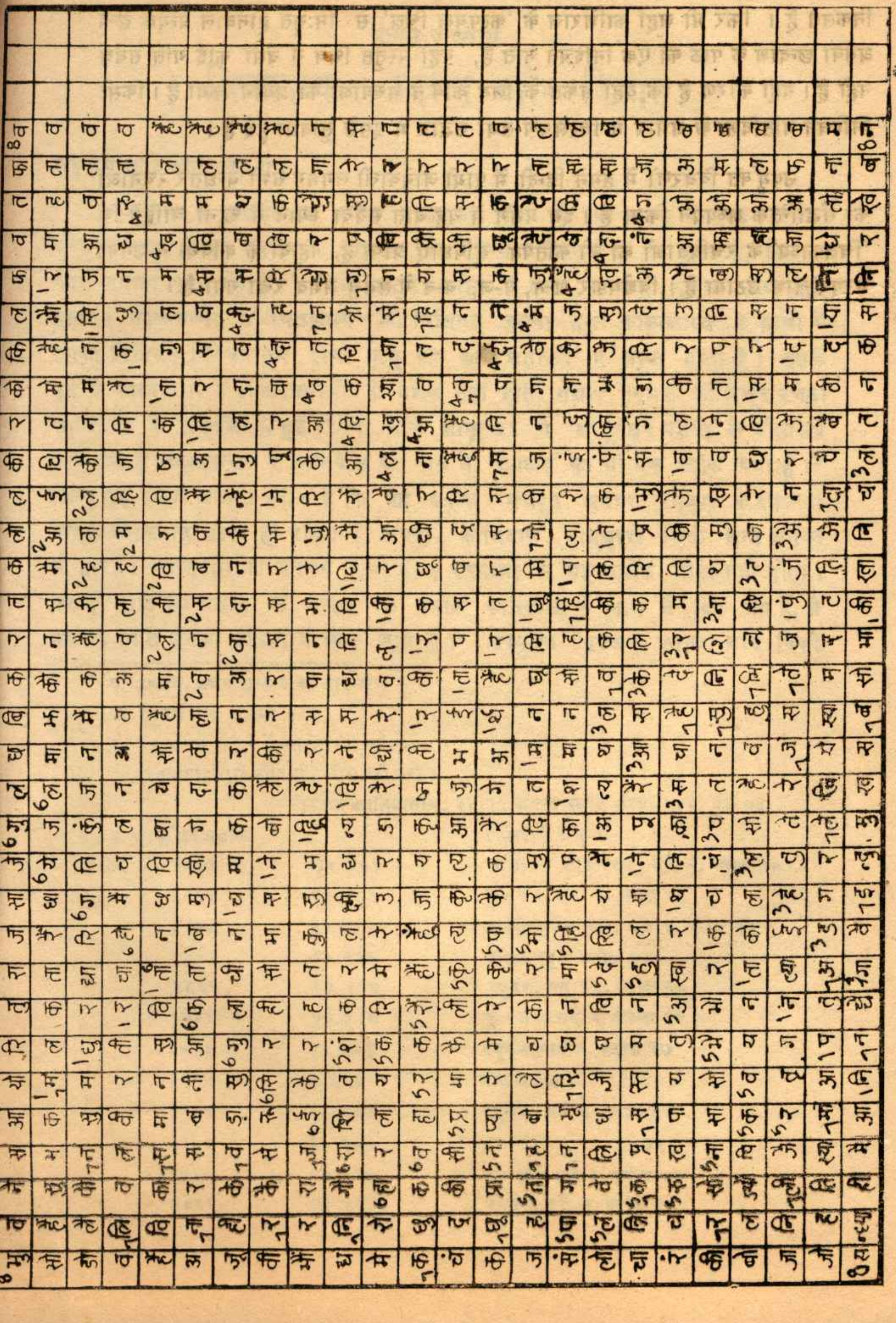
सम्पूर्ण छन्द शुद्ध भोजपुरी का तो नहीं दीख पड़ता, किन्तु भोजपुरी के शब्दों तथा क्रियाओं का प्रयोग प्रस्तुत छन्द में अवश्य है।

8 की संख्या प्रस्तुत चित्र के चारों कोनों के कोष्ठकों में अंकित है। इन चारों कोष्ठकों में लिखित चारों वर्णों से कवि का नाम 'भुवनेश' निःसृत होता है। यह कोई छन्दांश नहीं है।[1]

---

१. भु० भू०, पृ० ४५ से ४९ तक

उदधिबन्ध चित्र



इस प्रकार प्रस्तुत 'उदधिबन्ध चित्र' से भी अनेक भाषाओं के छन्द अथवा छन्दांश निकलते हैं। फिर भी जहाँ काशिराज के 'कल्पवृक्ष चित्र' से निःसृत होनेवाले प्रत्येक छन्द अथवा छन्दांश के पाठ की एक निश्चित गति है, वहाँ प्रस्तुत चित्र में वैसी कोई गति सर्वत्र नहीं है। यही कारण है कि यहाँ संकेत के लिये कवि ने संख्याओं का प्रयोग किया है। किसी निश्चित गतिदिशा के अभाव में विश्लेषण तथा उद्धार में इससे सुविधा हुई है।

उपर्युक्त विवरणों में हमने हिन्दी में पायी जानेवाली लगभग सभी बन्धेतर रचनाओं का सैद्धान्तिक अध्ययन किया है। इस प्रसंग में यह बात सर्वदा ध्यान में रहनी चाहिये कि 'चित्रकाव्य' के रचयिताओं को जो कतिपय सुविधाएँ प्राप्त हैं, हिन्दी के कवियों ने उनका भरपूर लाभ उठाया है। विशेषकर ण-न, य-ज, ब-व में सर्वत्र अभेद रखा गया है।

●

पंचम अध्याय

चित्रकाव्य : स्वरूप और विकास

संस्कृत काव्यकृतियों में

भूमिका के अन्तर्गत यह स्पष्ट किया जा चुका है कि काव्य से सम्बद्ध 'चित्र' शब्द का प्रथम प्रयोग महाक्षत्रप रुद्रदामा के 'गिरनार शिलालेख' में हुआ है, जिसका काल लगभग १५० ई० है।[1] किन्तु प्रस्तुत प्रयोग में चित्र का अर्थ पूर्णतः स्पष्ट नहीं होता। काव्यग्रन्थों में 'चित्रकाव्य' की विधिवत् रचना तथा काव्यशास्त्र के ग्रन्थों में इसका विधिवत् विवेचन हमें ईस्वी सन् की छठी शताब्दी में प्राप्त होता है। इसके पूर्व के काव्यग्रन्थों में चित्ररचनाओं के दर्शन नहीं होते, यद्यपि 'यमक' की प्रचुर रचना कालिदास के 'रघुवंश' में हुई।[2] यों कवि शार्ङ्गधर ने 'शार्ङ्गधर पद्धति' के चौंतीसवें परिच्छेद के चित्रप्रकरण में कालिदास के नाम से 'द्व्यक्षर' का भी एक श्लोक दिया है।[3] किन्तु यह कहना अत्यन्त कठिन है कि यह श्लोक 'मेघदूत' अथवा 'रघुवंश' के रचयिता प्रसिद्ध कालिदास द्वारा ही रचित है अथवा 'कालिदास' नामधारी किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा। कालिदास की लगभग सभी प्राप्त रचनाओं में यह श्लोक प्राप्त नहीं होता। परन्तु 'शार्ङ्गधर पद्धति' में अन्यत्र जो श्लोक कालिदास के नाम में दिये गये हैं, वे सम्प्रति प्राप्त उनकी कृतियों में मिल जाते हैं।[4] उपर्युक्त 'द्व्यक्षर श्लोक' यदि किसी

---

१. द्रष्टव्य, प्रथम अध्याय का प्रारम्भ

२. रघुवंश सर्ग ९ तथा १८

३. "तार तार तरै रे तैरुत्तरोत्तरतो रुतैः।
रतार्ता तित्तिरी रौति तीरे तीरे तरौ तरौ।

—द्व्यक्षर कालिदासस्य, ३४/११ अथवा श्लोक संख्या ५४४, पृ० ८५

४.

	शार्ङ्गधर पद्धति		कालिदास के ग्रन्थ
श्लोक	३२७९	पृ० ४०१	अभिज्ञान शाकुन्तलम्, अंक २, श्लोक १०
	३३२९	पृ० ४८१	कु० सं०, सर्ग १, श्लोक ४२
	३३७७	पृ० ४९०	मालविकाग्नि मित्र, अंक २, श्लोक १३
	३५०३	पृ० ५१५	उत्तरमेघदूत, श्लोक ४७
	३५६६	पृ० ५२७	रघुवंश, सर्ग १९, श्लोक १७
	३७४४	पृ० ५६२	कु० सं०, सर्ग ८, श्लोक ११
	३७९५	पृ० ५७१	रघुवंश, सर्ग ९, श्लोक ४७
	३९२७	पृ ५९७	भोज प्रबन्ध
	३९७७	पृ० ६०७	रघुवंश, सर्ग ७, श्लोक ५३
	३९७८	पृ० ६०७	,, ,, ५१
	४०६९	पृ० ६२१	कु० सं०, सर्ग ३, श्लोक ७१
	४०८२	पृ० ६२४	रघुवंश, सर्ग ७, श्लोक ५८

अन्य कालिदास की रचना होता तो उसके रचयिता के स्थान पर केवल 'कालिदासस्य' न लिखा जाकर कुछ और भी लिखा जाता, किन्तु ऐसा कहीं नहीं दीखता। बहुत सम्भव है आनन्दवर्धन के 'देवीशतक' के समान कालिदास ने भी किसी स्तोत्रग्रन्थ की रचना की हो और उसमें 'चित्रकाव्य' की रचनाएँ भी हों, जो अब प्राप्त नहीं होता। दूसरी सम्भावना यह भी हो सकती है कि यह श्लोक कालिदास नामधारी किसी अन्य व्यक्ति अथवा और किसी के द्वारा रचित हो और वह कालिदास के नाम पर चल गया हो। किन्तु सम्भावनाओं के आधार पर निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। चूँकि कालिदास की प्राप्त काव्यकृतियों में कहीं भी 'चित्र' की रचना नहीं मिलती और अन्यत्र भी उपर्युक्त श्लोक के अतिरिक्त उनके नाम का कोई अन्य चित्रश्लोक प्राप्त नहीं होता, अतः विश्वसनीय यही है कि कालिदास ने 'चित्रकाव्य' की रचना नहीं की है।

चित्ररचनाओं से युक्त संस्कृत काव्यकृतियों में प्रथम स्थान महाकवि भारवि रचित 'किरातार्जुनीय' का है। भारवि का काल ई० सन् की छठी शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना जाता है। काव्यशास्त्र में चित्ररचनाओं का विवेचन करनेवाले प्रथम आचार्य दण्डी भी छठी शताब्दी के ही हैं। यही कारण है कि 'किरातार्जुनीय' के पन्द्रहवें सर्ग में रचित चित्ररचनाओं तथा 'काव्यादर्श' में विवेचित चित्ररचनाओं के प्रकार में बिलकुल समानता मिलती है। हम देख चुके हैं कि 'काव्यायदर्श' में केवल 'स्वरचित्र', 'स्थानचित्र', 'वर्णचित्र', 'गोमूत्रिका' 'अर्धभ्रम' तथा 'सर्वतोभद्र' का ही विवेचन हुआ है।[१] 'किरातार्जुनीय' में भी केवल 'एकाक्षर' 'द्वयक्षर', 'एकाक्षरपाद' अथवा 'चतुरक्षर', 'निरोष्ठ', 'गोमूत्रिका' 'सर्वतोभद्र' तथा 'अर्धभ्रम' की ही रचना हुई है।[२] ये सभी रचनाएँ दण्डी द्वारा विवेचित उपर्युक्त चित्ररचनाओं के अन्तर्गत आ जाती हैं। इनके अतिरिक्त इनके साथ ही भारवि ने 'पादप्रतिलोमानुलोम', 'अर्धप्रतिलोमानुलोम', 'श्लोकप्रतिलोमानुलोम' तथा 'समुद्गक' युक्त एक-एक श्लोक की भी रचना की है।[3] दण्डी ने इन सभी रचनाओं का विवेचन 'यमक' के भेद के रूप में किया है।[४] यद्यपि आगे चलकर 'प्रतिलोमानुलोम' की गणना 'चित्र' के अन्तर्गत ही हुई।[५] दण्डी द्वारा विवेचित 'चित्र' अथवा 'यमक' के इन भेदों से इतर केवल 'गूढचतुर्थपाद' का एक श्लोक 'किरातार्जुनीय' में हमें प्राप्त होता है।[६] 'गूढ' अथवा 'गुप्त' का विवेचन सर्वप्रथम हम रुद्रट में पाते हैं।[७] किन्तु 'गूढ़चतुर्थ' का शास्त्रीय विवेचन प्रथमतः 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में हुआ है।[८] भोजराज ने उदाहरण

१. द्रष्टव्य, द्वितीय अध्याय में दण्डी का विवेचन
२. कि०, सर्ग १५, श्लोक क्रमश: १४, ३८, ५, ७ और २९, १२, २५ तथा २७
३. उपरिवत्, श्लोक १८, २०, २२ तथा ५०
४. काव्यादर्श, परि ३, श्लोक ७३ से ७७ तक
५. रुद्रट, काव्यालंकार, अध्याय ५, श्लोक ३ तथा १७
६. कि०, सर्ग १५, श्लोक ४३
७. काव्यालंकार, अध्याय ५, श्लोक २४ तथा ३०
८. परि २, कारिका १४७

के रूप में भारवि के ही श्लोक को उद्धृत किया है।[1] फलतः निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि 'चित्र' के कुल इतने ही भेदों की रचना छठी शताब्दी के प्रारम्भ तक प्रचलित थी। 'आकार' अथवा 'बन्ध चित्रों' की रचना छठी शताब्दी में प्रारम्भ हुई और रुद्रट के काल तक आते-आते उसकी संख्या में पर्याप्त विस्तार हो गया। रुद्रट में हमने यह भी देखा है कि 'प्रतिलोमानुलोम' का आकलन 'यमक' से हटकर 'चित्र' के भेद के रूप में होने लगा। इस प्रकार चित्ररचना के विस्तार की दृष्टि से छठी से नवीं शताब्दी तक का काल पर्याप्त महत्त्वपूर्ण दीख पड़ता है।

छठी शताब्दी के अन्तर्गत रची जानेवाली अन्य कतिपय कृतियों में भी 'चित्र' की थोड़ी बहुत रचनाएँ मिल जाती हैं। प्रवरसेन द्वारा रचित 'सेतुबन्ध' नामक प्राकृत महाकाव्य में यद्यपि सायास चित्ररचनाएँ लक्षित नहीं होतीं, किन्तु प्राकृत भाषा की प्रकृति तथा ह्रस्वबहुल श्लोकों के कारण 'त्रिस्वर' तथा 'चतुःस्वर चित्र' के उदाहरण प्राप्त हो जाते हैं।[2] फिर भी पुस्तक के छन्दों की प्रवृत्तियों से यह स्पष्ट है कि ये छन्द अनायास ही इस रूप में आ गये हैं, इस तरह की रचना का लेखक का कोई उद्देश्य सिद्ध नहीं होता, गोकि पुस्तक के नवें अश्वासक में 'यमक' की प्रचुर और सायास रचना है जिसके तीन छन्दों में 'पादावृत्ति यमक' के उदाहरण भी निकल आते हैं।[3] किन्तु इससे चित्ररचनाओं के विकास में प्रवरसेन का कोई योग सिद्ध नहीं होता।

इस क्रम में दण्डी द्वारा रचित 'दशकुमारचरित' का नाम अधिक उल्लेखनीय है जिसका एक सम्पूर्ण अध्याय 'निरोष्ठ' का उदाहरण है।[4] कौतूहल उत्पादन के अतिरिक्त दण्डी ने इस प्रकार की रचना का औचित्य भी कथा के प्रसंग में सिद्ध किया है। अपनी प्रिया के दन्तच्छद से निचले अधर के क्षत हो जाने के कारण ओष्ठ्यवर्णों के उच्चारण में असमर्थ मन्त्रगुप्त का सम्पूर्ण भाषण 'निरोष्ठ्य' में ही होता है। इस प्रकार यहाँ चित्ररचना की अपनी कुशलता के साथ दण्डी ने स्थिति की अनिवार्यता का भी समावेश किया है।

जैन कवि नन्दिसेन (नंदिषेण)[5] का काल भी ई० सन् की छठी शताब्दी ही माना जाता है। प्राकृत में लिखित नन्दिसेन की एक रचना 'अजिय-सन्ति-थय' (अजित

---

१. परि २, श्लोक ३५७

२. आश्वासक २ के कतिपय श्लोक

आश्वासक ९ के निम्न श्लोक में केवल तीन स्वरों का ही प्रयोग हुआ है साथ ही इसमें पादावृत्ति यमक भी है—

"रम्म-अन्द-राअ-च्छअं रम्म-अन्दरा-अच्छअं।
सग्ग-ग्गहणिसा-मग्गअं सग्ग-गग्हणि-सामग्गअं ॥"४७॥

३. आश्वासक ९, श्लोक ४३, ४४ तथा ४७

४. अध्याय ७

५. द्रष्टव्य, बम्बई विश्वविद्यालय जरनल, सितम्बर, १९५४, सं० २९, पृ० ६७-६८ प्रो० हीरालाल कपाड़िया का निबन्ध
'Illustrations of Letter Diagrams'

शान्तिस्तव) के नाम से प्राप्त होती है। प्रस्तुत रचना स्तोत्रों का संग्रह है जिनके छह छन्दों में आठ बन्धों की योजना की गई है। ये स्तोत्र हैं छन्द संख्या ३, ४, १६, १७, २१ तथा ३४, और इनसे बननेवाले बन्ध हैं—

१. चतुष्पद, २. वापिका, ३. दीपिका, ४. मंगलकलश, ५. गुच्छ, ६. वृक्ष, ७ षट्दलकमल तथा, (८) अष्टदल (विपरीत) कमल।

इनमें से वापिका, दीपिका तथा मंगलकलश की रचना छन्द संख्या २ से ही होती है, किन्तु अन्य चित्र क्रमशः अन्य श्लोकों से बनते हैं। नन्दिसेन के काल के सम्बन्ध में विद्वान एक मत नहीं हैं। किन्तु यदि उन्हें छठी शताब्दी का माना जाय तो निश्चितरूपेण जैन कवियों द्वारा छठी शताब्दी के पूर्व भी 'चित्रबन्धों' की रचना होती होगी, कारण ये 'चित्रबन्ध' पर्याप्त विकसित अवस्था के द्योतक हैं। अधिक सम्भावना इन रचनाओं के बाद के होने की ही दीख पड़ती है। जैसा कि हमने ऊपर देखा है दण्डी के विवेचन तथा छठी शताब्दी के प्राप्त काव्यग्रन्थों में 'बन्धों' की योजना नहीं दीख पड़ती। यदि नन्दिसेन द्वारा रचित उपर्युक्त चित्ररचनाओं का प्रचलन उस समय होता तो संस्कृत ग्रन्थों तथा दण्डी के 'काव्यादर्श' में भी उनका समावेश अवश्य होता जैसा कि 'काव्यालंकार', 'अग्निपुराण' आदि काव्यशास्त्र की पुस्तकों में पाया जाता है।

'शिशुपालवध' के रचयिता माघ के काल के सम्बन्ध में भी विद्वान एकमत नहीं हैं। कीथ ने अपने इतिहास में माघ को ७वीं शती का माना है[1] जबकि याकोबी उसे छठी शताब्दी के मध्य का मानते हैं।[2] इतना अवश्य है कि माघ भारवि के बाद हुए हैं। 'शिशुपालवध' के १९वें सर्ग में माघ ने भी 'चित्र' की रचनाएँ की हैं जिनमें 'मुरजबन्ध' तथा 'चक्रबन्ध' के दो श्लोक भी प्राप्त होते हैं।[3] इनके अतिरिक्त किरातार्जुनीय में रचित प्रायः सभी चित्रप्रकारों की रचना माघ ने भी की है। 'द्वयक्षर' तो माघ को इतना प्रिय जान पड़ा है कि अन्य चित्रप्रकारों के जहाँ एक-एक श्लोक की रचना 'शिशुपालवध' में हुई है, वहाँ इसके दस श्लोक रचे गये हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में कुल इतने प्रकार की चित्ररचनाएँ प्राप्त होती हैं—'एकाक्षर', 'द्वयक्षर' (१० श्लोक), 'एकाक्षरपाद' अथवा 'चतुरक्षर', 'निरोष्ठ्य', 'अतालव्य', 'गूढ़चतुर्थ', 'गोमूत्रिका', 'सर्वतोभद्र', 'अर्धभ्रम', 'मुरजबन्ध', 'कविकाव्यनामांक-चक्रबन्ध' 'पादप्रतिलोभानुलोम', 'श्लोकप्रतिलोमानुलोम', 'श्लोकान्तर प्रतिलोमानुलोम',

---

१. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० १२४, १९२८ संस्करण

२. "We therefore, can not place Magh later than about the middle of the sixth century, and Bharvi who is older than Magh by at least a few decades about the beginning of the sixth century."
— Viena Oriental Journal Vol-III No.2, p.p.-144

३. मुरजबन्ध, श्लोक २९
चक्रबन्ध, श्लोक १२०

'श्लोकान्तर एकार्थ प्रतिलोमानुलोम', 'असंयोग', 'समुद्गक' (२ श्लोक) तथा 'अर्थत्रयवाची'। इनमें से 'प्रतिलोमानुलोम' तथा 'समुद्गक' को 'यमक' कहा गया है और 'असंयोग' तथा 'अर्थत्रयवाची' का आकलन भी 'चित्र' के अन्तर्गत नहीं होता। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है 'अर्थत्रयवाची' श्लेष का एक भेदमात्र है, 'असंयोग' में भी कोई विशेष चमत्कार नहीं दीखता। अतः 'शिशुपालवध' का असल महत्त्व चित्ररचनाओं में 'आकार' अथवा 'बन्धचित्र' की रचना की उद्भावना की दृष्टि से है। 'मुरजबन्ध' और 'चक्रबन्ध' के द्वारा माघ ने ही 'आकारचित्र' की रचना का प्रारम्भ किया, साथ ही 'चक्रबन्ध' में उन्होंने अपना तथा अपनी कृति का नाम भी अंकित कर दिया है।[१] 'स्थानचित्र' के अन्तर्गत भारवि से अधिक माघ ने 'अतालव्य' का एक श्लोक दिया है, किन्तु दण्डी के विवेचन में इसका संकेत हमें मिल जाता है। फलतः इस सम्बन्ध में माघ को कोई विशेष श्रेय नहीं मिल पाता। फिर भी 'अतालव्य' के प्रस्तुत उदाहरण से यह सिद्ध हो जाता है कि प्रारम्भ से ही कवियों ने 'स्थानचित्र' के अन्तर्गत केवल वर्णों का विचार किया है, मात्राओं के सम्बन्ध में इस नियम को उन्होंने बहुत कठोर नहीं बनाया है। 'अतालव्य' के प्रस्तुत श्लोक में भी 'इ' की मात्रा का प्रयोग माघ ने किया है, यद्यपि दण्डी ने अपने उदाहरणों को इस दृष्टि से भी पूर्णतः निर्दोष रखा है। चतुर्थ अध्याय के अन्तर्गत इसका विवेचन हो चुका है।[२]

'शिशुपालवध' के अतिरिक्त सातवीं शताब्दी की संस्कृत रचनाओं में वैसी कोई कृति नहीं दीखती जिसका चित्ररचना की दृष्टि से बहुत अधिक महत्त्व हो किन्तु इस काल की रचनाओं में चित्रात्मक प्रवृत्ति अवश्य दृष्टिगोचर होती है। महाकवि भट्टि के 'भट्टिकाव्य' में यद्यपि 'चित्र' की कोई विशिष्ट रचना नहीं दीख पड़ती किन्तु सम्पूर्ण काव्य के श्लोकों में अभिव्यक्त कवि का दुहरा उद्देश्य कौतूहलोत्पादन तथा पाण्डित्य-प्रदर्शन के रूप में इसी प्रवृत्ति का द्योतक है। एक ओर अबाध रूप से राम की कथा कहना तथा दूसरी ओर अलंकारशास्त्र अथवा व्याकरण के सूत्रों के उदाहरण प्रस्तुत करते चलना, इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। इसी प्रकार सम्पूर्ण तेरहवें सर्ग के श्लोकों के अर्थ का नियोजन एक साथ संस्कृत तथा प्राकृत अथवा अपभ्रंश में किया जाना भी इसी प्रवृत्ति का परिचायक है, गोकि इस प्रकार की योजना 'भाषाचित्र' के अन्तर्गत न आकर 'भाषाश्लेष' के अन्तर्गत आती है।[3] अलंकारों के उदाहरणों से सम्बद्ध दशम सर्ग के श्लोकों में यमक के लगभग २१ भेदों के उदाहरण हैं जिनमें 'समुद्ग', 'कांची', 'सर्व' तथा 'महायमक' के श्लोक भी हैं।[४] इन श्लोकों की सीमा चित्ररचनाओं के बहुत निकट

१. द्रष्टव्य, पृ० १५७, चित्र सं० २७

२. द्रष्टव्य, पृ० २८८, स्थानचित्र का विवेचन।

३. द्रष्टव्य, पृ० ३९९, भाषाचित्र का विवेचन।

४. भट्टिकाव्य, सर्ग दस, श्लोक २ से २२ तक, इनमें श्लोक ७, ८, १९ तथा २० में क्रमशः समुद्ग, कांची, सर्व तथा महायमक के उदाहरण हैं।

आ जाती है । यों भी, जहाँ भी संस्कृत काव्यकृतियों में 'चित्रकाव्य' से युक्त श्लोक मिलते हैं, वहाँ 'यमक' के भेदों की रचनाएँ भी अवश्य की गई हैं ।

इस युग की इस प्रवृत्ति की पुष्टि बाण की 'कादम्बरी' से भी हो जाती है । कादम्बरीकार ने दो स्थलों पर इसका उल्लेख किया है कि राजदरबार में इस प्रकार की रचनाओं का पर्याप्त प्रचलन था । राजा शूद्रक की योग्यता, काल-यापन तथा प्रवृत्तियों के चित्रण के क्रम में बाण ने स्पष्ट शब्दों में कहा है—

"वह साहित्य के विविध खेलों—अक्षरच्युतक, मात्राच्युतक, बिन्दुमती, गूढ़चतुर्थपाद और पहेलियों में मन लगाता था।"[१]

दूसरे स्थल पर शिक्षाश्रम से सद्य आगत चन्द्रापीड़ के द्वारा देखे गये राजा तारापीड़ की राजसभा के वर्णन के क्रम में भी बाण ने 'बिन्दुमती' तथा 'पहेलियों' की रचना का उल्लेख किया है । सभामण्डप में बैठे लोगों में "............ कुछ बिन्दुमती और पहेलियाँ रचते तथा हल करते थे।"[२]

इसी काल में आविर्भूत दिगम्बर साधु जैनकवि सामन्तभद्र उर्फ शान्तिवर्मा ने भी 'जिनशतक' नामक अपनी पुस्तक में, जिसका दूसरा नाम 'स्तुतिविद्या' भी है तथा जिसके अन्तर्गत ११६ श्लोक हैं, ५० श्लोकों में 'मुरजबन्ध, 'चक्रबन्ध', 'गोमूत्रिका' तथा अन्य चित्रों की रचनाएँ की हैं ।[3]

इनमें श्लोक संख्या ४८, ६४, ६६ तथा १०० में 'अनन्तरपादमुरज' की योजना है, ८९ तथा ९१ में 'एकाक्षरान्तरित मुरज' तथा छन्द संख्या ५० में 'इष्टपादमुरज' की रचना की गई है । इनके अतिरिक्त श्लोक संख्या १, २, ६-९, २९-३५, ३९-४२, ४५, ४९, ५८-६३, ६५, ६७-७१, ७३-७८, ८०, ८२, ९९ तथा १०१ से १०५ सामान्य 'मुरजबन्ध' के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं । श्लोक संख्या २ में 'गोमूत्रिका' की रचना भी है तथा छन्द संख्या ६, 'क्रियागूढ़' से समन्वित है । इनके साथ ही श्लोक २२, २३, २४, २६, ५३, ५४, १११ तथा ११६ में विभिन्न प्रकार के 'चक्रबन्धों' की योजना की गई है । उदाहरणार्थ श्लोक संख्या २२ से निर्मित चक्र 'चतुरर' है जबकि १११ तथा ११६ से निर्मित चक्र 'षडर' के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। इनमें भी श्लोक ११६ से निर्मित 'षडर चक्र' माघ के 'शिशुपालवध' में नियोजित चक्र के समान ही 'कवि-काव्य नामांक' है, किन्तु श्लोक १११ से बनने वाला 'चक्र' सामान्य कोटि का है । प्रस्तुत 'चक्र' के चौथे तथा सातवें वलयों में

१. "कदाचिदक्षरच्युतक मात्राच्युतक बिन्दुमती गूढ़चतुर्थपाद, प्रहेलिका प्रदानादिभिर्वनितासम्भोगसुखपराङ्मुखः सहृत्परिवृतो दिवषमनैषीत् ।"—कादम्बरी, पृ० १४

२. "... ... ... आबध्नता काव्यगोष्ठीमातन्वतापरिहासकथांविन्दता
बिन्दुमति चिन्तयता प्रहेलिकां — — — — — — — "
—कादम्बरी, पृ० १९४

३. बम्बई विश्वविद्यालय जरनल, सितम्बर १९५४, संख्या २९ में प्रकाशित प्रो० हीरालाल कपाडिया का निबन्ध **Illustrations of Letter Diagrams**, पृ० ६८ से ७१

न्यस्त वर्णों से 'शान्तिवर्मकृतं जिनस्तुतिशतं' कवि तथा काव्य की संज्ञा निःसृत होती है।[१] अन्य श्लोकों से निर्मित होनेवाले चक्र भी इन्हीं तीन कोटियों में आते हैं।

'जैनेन्द्रव्याकरण', 'सर्वार्थसिद्धि' आदि ग्रन्थों के रचयिता पूज्यपाद देवनन्दि भी लगभग इसी काल के ठहरते हैं। उन्होंने भी अपनी रचना 'सिद्धिप्रियास्तोत्र' के अन्तिम छन्द की रचना 'चक्रबन्ध' के निर्माण के लिये की है, जिससे उपर्युक्त कविनामांक चक्रों की विधि से उनका नाम भी निःसृत होता है।[२] चक्र की रचना सामान्य षडर की है जिसके तृतीय वलय में न्यस्त वर्णों से 'देवनन्दि कृतिः' वाक्यांश निकल आता है। अन्य किसी प्रकार के बन्ध अथवा चित्ररचना देवनन्दि की कृतियों में हमें नहीं मिलती।

काव्यकृतियों में चित्र की रचना तथा शास्त्र में उसके विवेचन की दृष्टि से ईस्वी सन की ९वीं शताब्दी का स्थान बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। अबतक चित्ररचनाओं का इतना अधिक प्रचलन हो चुका था कि रुद्रट ने अपने 'काव्यालंकार' के पंचम अध्याय में इसका बिस्तार से विवेचन किया।[3] आचार्यों द्वारा 'चित्रालंकार' अथवा 'चित्रकाव्य' के विवेचन के क्रम में यह बात ध्यातव्य है कि उन आचार्यों ने भी जिन्होंने उदाहरण के श्लोक अन्य कवियों की कृतियों से लिये हैं, विभिन्न चित्ररचनाओं के प्रचुर श्लोक प्राप्त रहने पर भी बहुधा 'चित्रकाव्य' के उदाहरणों के लिये स्वयं भी छन्दों की रचना की है। आगे चलकर विश्वनाथ जैसे आचार्य भी, जिन्होंने चित्ररचनाओं को बड़ी ही हेय दृष्टि से देखा है उदाहरण के रूप में ही, किन्तु इस कला के प्रदर्शन का लोभ संवरण नहीं कर सके हैं।[४] निश्चित रूप से कहना कठिन है कि 'चित्रकाव्य' के उदाहरणस्वरूप उद्धृत किये गये 'काव्यालंकार' के सारे छन्द रुद्रट द्वारा ही रचित हैं अथवा कहीं अन्यत्र से लिये गये हैं। किन्तु 'काव्यालंकार' में विवेचित 'चक्रबन्ध' से निःसृत रुद्रट का परिचायक श्लोक इसमें सन्देह नहीं रहने देता कि कम से कम 'चक्रबन्ध' के क्रम में उदाहृत आठ श्लोक जिनसे अन्य सात प्रकार के बन्ध भी निर्मित होते हैं, रुद्रट की ही रचना हैं।[५] रुद्रट द्वारा विवेचित चित्ररचनाओं का विवेचन द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ अध्यायों के अन्तर्गत किया जा चुका है।

---

१. जे० यू० बी०, संख्या २९ (सितम्बर १९५४), चित्र ६

२. उपरिवत्, पृ० ७१ तथा चित्र ७

३. श्लोक १ से ३३ तक

४. साहित्यदर्पण, दशम परिच्छेद, कारिका १३ का पूर्वार्द्ध तथा उसकी वृत्ति
"तत्र पद्मबन्धो यथा मम — — — — — — — — — — — ।
काव्यान्तर्गडुभूततया तु नेह प्रपञ्च्यते।"

५. द्रष्टव्य, पृ० १६० अष्टार चक्र का विवेचन तथा चित्र २९

९वीं शताब्दी के प्रसिद्ध कवियों में रत्नाकर, शिवस्वामी तथा आनन्दवर्धन का नाम आता है। ये तीनों ही कवि काश्मीर के सम्राट् अवन्तिवर्मा के सभाकवि थे।[1] काव्यकृतियों तथा शास्त्र दोनों ही क्षेत्रों में संस्कृत की समृद्धि का अधिकांश श्रेय काश्मीर को है। उपर्युक्त तीनों कवियों ने अपनी-अपनी काव्यकृतियों में 'चित्रकाव्य' की यथेष्ट रचनाएँ की हैं। शिवस्वामी रचित 'कप्फिणाभ्युदय', रत्नाकर रचित 'हरविजय' तथा आनन्दवर्धन रचित 'देवीशतक' का इस दृष्टि से पर्याप्त महत्त्व है। शिवस्वामी ने अपने ग्रन्थ के बीसवें सर्ग के अन्त में स्वयं अपनी प्रशस्ति लिखते हुए अपने को 'चित्रकाव्य का उपदेष्टा' भी कहा है—

"विदितबहुकथार्थश्चित्रकाव्योपदेष्टा यमककविरगम्यश्चारुसन्दानभाणी।
अनुकृतरघुकारोऽभ्यस्तमेण्ठ प्रचारो जयतिकविरुदारो दण्डिदण्डः शिवाङ्कः॥"[2]

साथ ही 'कप्फिणाभ्युदय' के १८वें सर्ग में उन्होंने 'चित्रकाव्य' के प्रायः सभी भेदों की रचनाएँ की हैं। इनके अतिरिक्त छठे सर्ग में भी 'प्रतिलोमानुलोम' के कुछ श्लोक मिल जाते हैं। कुल मिलाकर शिवस्वामी ने अपने इस महाकाव्य में निम्न चित्ररचनाओं के श्लोक प्रस्तुत किये हैं—'एकाक्षर', 'द्व्यक्षर' (२० श्लोक), 'चतुरक्षर', 'तालव्यप्रायः' 'अतालव्य', 'अमूर्द्धन्य' (२ श्लोक), 'पादप्रतिलोमानुलोम' (४ श्लोक), श्लोकान्तर प्रतिलोमानुलोम' (२ श्लोक) 'गतप्रत्यागत', 'गूढ़पादत्रय', 'गूढ़चतुर्थ', 'भाषाषट्क समावेश', 'गोमूत्रिका' (६ श्लोक), 'मुरजबन्ध' (२ श्लोक), 'कांची बन्ध' (२ श्लोक), 'अर्धभ्रम', 'सर्वतोभद्र', 'अष्टदल पद्म', 'द्वादशदल पद्म' तथा 'कविकाव्यनामांक चक्रबन्ध'। प्रस्तुत सूची से यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि ने 'वर्ण', 'स्थान', 'गति', 'गूढ़', 'भाषा' तथा 'आकार' अथवा 'बन्धचित्रों' की रचना की है। प्रमुख चित्ररचनाओं में केवल 'स्वरचित्र' की रचना हमें 'कप्फिणाभ्युदय' में नहीं मिलती। 'बन्धचित्र' के अन्तर्गत कवि ने 'कविकाव्यनामांक चक्र' का श्लोक रचकर परम्परा का पालन तो किया ही है साथ ही 'कांची', 'अष्टदलपद्म' तथा 'द्वादशदल पद्म' की रचना कर इन रचनाओं के विकास में भी पूर्ण योग दिया है। रुद्रट ने अपने 'काव्यालंकार' में केवल 'चतुर्दलपद्म' का ही विवेचन किया था, 'अष्टदल' अथवा 'द्वादशदल' का नहीं। 'द्वादशदल पद्म' की रचना बाद में भी संस्कृत में बहुत कम ही हुई है, 'अष्टदल' की अवश्य प्रचुरता रही है।

शिवस्वामी के समकालीन तथा सहकर्मी रत्नाकर ने भी अपने महाकाव्य 'हरविजय' में चित्ररचनाओं के विकास में पर्याप्त योग दिया है। ५० सर्गों में आबद्ध इस वृहत् महा-

---

१. "मुक्ताकणः शिवस्वामी कविरानन्दवर्धनः
प्रथां रत्नाकरश्चागात्साम्राज्येऽवन्तिवर्मणः॥"
—राजतरंगिणी, तरंग ५, श्लोक ३९ (कलकत्ता संस्करण, १८३५)

स्टाइन द्वारा अनूदित तथा सम्पादित संस्करण में

२. कप्फिणाभ्युदय, सर्ग २०, श्लोक ४७

काव्य के ४३, ४६ तथा ४८ वें सर्गों में 'चित्रकाव्य' की प्रचुर रचना हुई है। इन रचनाओं में 'वर्ण', 'स्थान', 'गति', 'गूढ़', 'च्युत', 'भाषा' तथा 'बन्धचित्र' के भेदों-प्रभेदों के श्लोक हैं। 'कप्फिणाभ्युदय' के समान ही 'हरविजय' में भी 'स्वरचित्र' का कोई श्लोक प्राप्त नहीं होता। इसके विपरीत 'वर्ण' अथवा 'व्यंजनचित्र' के उपभेद 'द्व्यक्षर' की रचना इस काल में कवियों को बड़ी ही प्रिय दीखती है। महाकवि माघ के 'शिशुपालवध' में भी अन्य चित्ररचनाओं की अपेक्षा 'द्व्यक्षर' के अधिक श्लोक हैं। 'कप्फिणाभ्युदय' की यह संख्या २० तक पहुँचती है और रत्नाकर ने तो कुल ७८ श्लोक केवल 'द्व्यक्षर' के ही रचे हैं। अबतक की काव्यकृतियों में 'त्र्यक्षर' का कोई श्लोक नहीं रचा गया था। रत्नाकर ने दो श्लोक रचकर इसकी भी कमी पूरी कर दी है।[1] इसी प्रकार 'प्रतिलोमानुलोम' के सभी भेदों के भी प्रचुर श्लोक 'हरविजय' में प्राप्त होते हैं—'पादप्रतिलोमानुलोम' के १३ श्लोक, 'पदप्रतिलोमानुलोम' के ४, 'अर्ध' के ४, 'श्लोक' के एक तथा 'श्लोकान्तर' के भी एक। 'चित्रकाव्य' के रचयिता के रूप में रत्नाकर की योग्यता का परिचय हमें इसीसे प्राप्त होता है कि एक ही श्लोक में एक से अधिक चित्रभेदों की योजना भी उसने कई स्थलों पर की है। 'समुद्गक' के साथ ही 'कांची', 'गोमूत्रिका', 'मुरज' तथा 'जालबन्ध' से युक्त एक श्लोक हमें 'हरविजय' में प्राप्त होता है।[2] इसी प्रकार दो श्लोक ऐसे भी हैं जिनमें 'मात्राच्युत' के साथ ही 'गूढ़-क्रिया-कर्तृक' की भी योजना है।[3] 'भाषाचित्र' के भी चार श्लोक प्रस्तुत ग्रन्थ में प्राप्त होते हैं। 'बन्धचित्र' के क्षेत्र में रत्नाकर ने रुद्रट द्वारा विवेचित अधिकांश बन्धों की रचना की है। वे हैं—'सर्वतोभद्र', 'अर्धभ्रम', 'मुरज', 'शूल,' शर', 'शक्ति', 'मुसल' तथा 'खड्ग'। इनके अतिरिक्त 'तूण', 'षोडशदल पद्म', 'अष्टदलपद्म', 'नन्दिकावर्त', 'जाल' तथा 'कांची' जैसे बन्धचित्रों की रचना भी 'हरविजय' में हुई है। स्पष्ट है कि इन रचनाओं में 'तूण', 'षोडशदलपद्म' तथा 'नन्दिकावर्त' की रचना सर्वप्रथम 'हरविजय' में ही मिलती है।

किन्तु दूसरी ओर लगभग सभी कवियों द्वारा रचे जानेवाले 'कवि-काव्यनामांक चक्रबन्ध' का कोई श्लोक 'हरविजय' में हमें प्राप्त नहीं होता। एक श्लोक 'चक्रबन्ध' के नाम का है अवश्य किन्तु उससे 'चतुरर चक्र' की रचना ही हो सकती है और वह भी उत्कृष्ट कोटि की नहीं।[4] 'चक्रबन्ध' का यह श्लोक वस्तुतः 'पादप्रतिलोमानुलोम' का श्लोक है। 'निरोष्ठ्य' के जिस श्लोक की रचना रत्नाकर ने की है वह भी निर्दोष नहीं कही जा सकती। एक स्थल पर 'म' का प्रयोग कवि ने किया है और 'म' के ओष्ठ्य वर्ण होने में तो किसी को सन्देह हो ही नहीं सकता। श्लोक निम्न है—

"निर्धौत कनकच्छायाः सच्छदाः शीघ्रगामिनः।
तार्क्ष्येण सदृशास्तस्य सायका रेजिरे रणे॥"[5]

---

१. हरविजय, सर्ग ४२, श्लोक ५६ तथा सर्ग ४८, श्लोक ३७

२. उपरिवत्, सर्ग ४३, श्लोक ३७

३. उपरिवत्, सर्ग ४८, श्लोक ३१ तथा ९१

४. उपरिवत्, सर्ग ४६, श्लोक ७६

५. उपरिवत्, सर्ग ४३, श्लोक ३४६

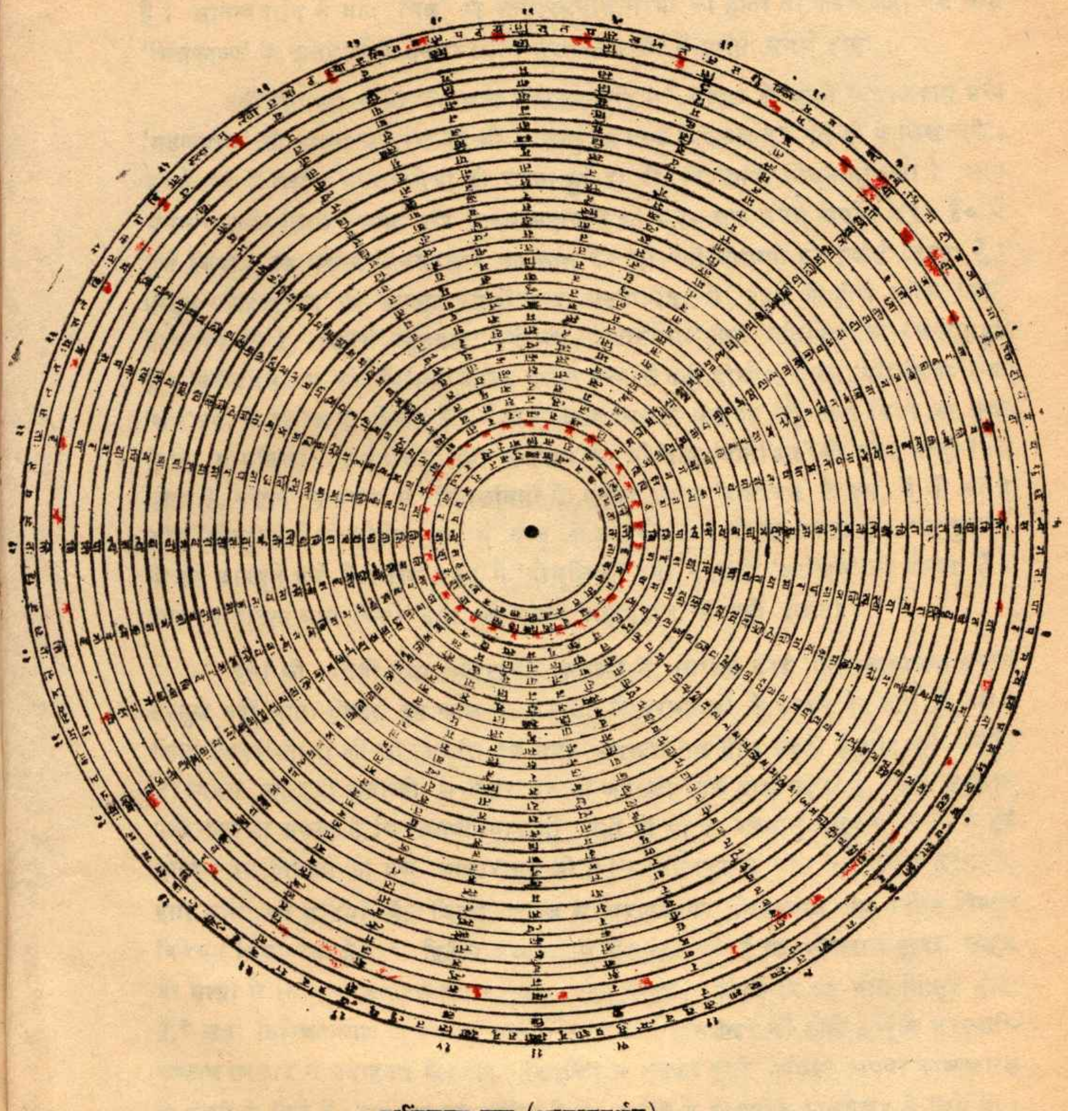
मात्राओं के प्रयोग के सम्बन्ध में चतुर्थ अध्याय में स्पष्ट किया जा चुका है कि 'स्थानचित्र' के अन्तर्गत उच्चारणस्थान के अनुकूल ही मात्राओं के प्रयोग का बहुत अधिक बन्धन नहीं रखा गया है।[1] इतना होने पर भी रत्नाकर चित्ररचनाओं में सिद्धहस्त थे। शिवस्वामी के समान ही उन्होंने भी अपने ग्रन्थ के अन्त में 'ग्रन्थकर्तुः प्रशस्ति' के अन्तर्गत अपने तथा अपनी रचना के सम्बन्ध में लिखते हुए चित्ररचना की अपनी योग्यता का स्पष्ट निर्देश किया है—

"ललित मधुराः सालंकाराः प्रसाद मनोरमा
विकट यमक श्लेषोद्धार प्रबन्ध निरर्गलाः।
असदृशगतीश्चित्रे मार्गे ममोद्गिरतोगिरो
न खलु नृपते चेतोवाचस्पतेरपि शङ्कते॥"[2]

शिवस्वामी तथा रत्नाकर के साथ ही अवन्तिवर्मा के दरबार में 'ध्वन्यालोक' के निर्माता आनन्दवर्धन भी थे। द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत आनन्दवर्धन रचित 'देवीशतक' का उल्लेख हो चुका है। हमने देखा है कि 'देवीशतक' में भी 'चित्र' की अधिकांश प्रमुख रचनाओं के श्लोक मिलते हैं। 'अष्टदलपद्म', 'मुरज', 'गोमूत्रिका', 'सर्वतोभद्र', 'अर्धभ्रम', 'जाल', 'तूण' तथा 'चक्रबन्ध' के अतिरिक्त 'एकाक्षर', 'द्वयक्षर' जैसे 'वर्णचित्र', 'प्रतिलोमानुलोम' जैसे 'गतिचित्र' तथा संस्कृत, विभिन्न प्राकृत और अपभ्रंश से निर्मित 'भाषाचित्र' के एकाधिक श्लोक प्राप्त होते हैं। इस क्रम में 'देवीशतक' का 'चक्रबन्ध' अपना विशिष्ट महत्त्व रखता है। 'कविकाव्यनामांक' तो यह है ही, साथ ही यह वृहत् चक्र ३२ आरों से युक्त है, जिसके निर्माण में २० श्लोक लगे हैं। 'देवीशतक' की श्लोक संख्या ८० से ९५ तक १६ श्लोकों को परिधि से केन्द्र की ओर (प्रत्येक वर्ण ऊपर से नीचे) लिखने से चक्र के प्रथम १६ आरों का निर्माण होता है। पुनः इन्हीं श्लोकों के वर्णों को विपरीत दिशा में यानी केन्द्र से परिधि की ओर लिखने से अन्य १६ आरे बनते हैं। श्लोक संख्या ९६, ९७, ९९ तथा १०० परिधि में लिखे जाते हैं, और इस प्रकार चक्र की रचना पूर्ण होती है।[3] प्रस्तुत चक्र के तीसरे तथा २९ वें अर्थात् नीचे और ऊपर दोनों ही ओर से तृतीय वलयों में न्यस्त वर्णों से एक श्लोक निःसृत होता है, जिसमें कवि का परिचय तथा कृति का नाम दृष्टिगोचर होता है।[4] 'देवीशतक' के इस 'चक्रबन्ध' को ही हेमचन्द्र ने 'काव्यानुशासन' में 'चक्रबन्ध' के उदाहरणस्वरूप उद्धृत किया है।[5] इस 'बन्ध' का महत्त्व इसलिये भी उल्लेखनीय है कि न तो आनन्दवर्धन के पूर्व और

१. द्रष्टव्य, स्थानचित्र का विवेचन पृ० २९३, पा० टि० ५
२. पुस्तक के अन्त में नियोजित ग्रन्थकर्तुः प्रशस्ति, श्लोक २
३. द्रष्टव्य चित्र संख्या ९७; न्यास के श्लोकों के लिये देखें पृ० १४६ पा० टि० १
४. "देव्या स्वप्नोद्गमादिष्ट देवीशतकसंज्ञया।
देशितानुपमामाधादेतां नोणसुतोनुतिम्॥" दे० श०, श्लोक १०१
५. काव्यानुशासन, कारिका १०८, अ० ५, सूत्र ४ की विवेक नामक टीका के अन्तर्गत श्लोक ४९९ से ५२३ तक

चित्र संख्या-६७



द्वात्रिंशदर चक्र (आनन्दवर्धन)

चक्र के तृतीय वलय में न्यस्त लाल वर्णों से निम्नलिखित श्लोक निःसृत होता है जिसमें कवि का परिचय तथा कृति के नाम का उल्लेख है—

देव्या स्वप्नोद्गमादिष्ट देवी शतक संज्ञया।
देशितानुपमामाधादेतां नोणसुतोनुर्ति ॥

तीसवें वलय में स्थित लाल वर्णों से भी यही श्लोक निकलता है।

न बाद में ही संस्कृत में अथवा हिन्दी में भी 'चक्रबन्ध' की इतनी उत्कृष्ट रचना की जा सकी है। आनन्दवर्धन ने यदि 'चित्र' की अन्य रचनाएँ न भी की होतीं तो केवल यही एक बन्ध 'चित्रकाव्य' के इतिहास में उनका स्थान सुरक्षित रखने में पूर्णतः समर्थ होता।

९वीं शताब्दी में ही जैन कवि जिनसेन सूरि ने[1] संस्कृत के अपने विशालकाय ग्रन्थ 'महापुराण' की रचना आरम्भ की थी। किन्तु इस ग्रन्थ के केवल ५२ पर्व ही वे लिख सके। ५३वें पर्व के आदि तीन श्लोकों की रचना हुई ही थी कि उनका निधन हो गया। आगे चलकर उनके शिष्य गुणभद्र सूरि ने इस महाग्रन्थ को ८२० शक संवत् अर्थात् ८९८ ई० में पूर्ण किया। इस प्रकार जिनसेनसूरि का काल ई० की ९वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध ठहरता है। प्रस्तुत 'महापुराण' के बारहवें पर्व में छन्द संख्या २१९ से २५४ के बीच अनेक 'चित्र' के श्लोक भी है, जिनमें प्रमुख्यतः 'वर्णचित्र', 'स्थानचित्र' तथा 'गतिचित्र' की रचनाएँ हुई हैं। 'बन्धचित्र' का कोई विशिष्ट श्लोक प्रस्तुत ग्रन्थ में नहीं दीखता, केवल 'गोमूत्रिका' तथा 'अर्धभ्रम' के श्लोक ही मिलते हैं। सैद्धान्तिक-विवेचन के अन्तर्गत यह स्पष्ट किया जा चुका है कि 'गोमूत्रिका', 'सर्वतोभद्र' तथा 'अर्धभ्रम' का औचित्य 'गतिचित्र' की दृष्टि से ही सिद्ध होता है, यद्यपि परम्परा से चित्रकवियों ने इनकी रचना 'बन्धचित्र' के रूप में भी की है और 'गोमूत्रिका' को सीमित अर्थ में 'बन्ध' के अन्तर्गत रखा भी जा सकता है। 'महापुराण' के इस बारहवें पर्व के श्लोक २५१ में 'गोमूत्रिका' तथा २५४ में 'अर्धभ्रम' की योजना है। इनके अतिरिक्त अन्य किसी 'बन्ध' की रचना 'महापुराण' में नहीं दीखती।

ईसा की दसवीं तथा ग्यारहवीं शताब्दी में लिखित कोई ऐसा काव्यग्रन्थ हमारे सम्मुख नहीं आता जिससे इस काल के अन्तर्गत चित्ररचनाओं के स्वरूप का ज्ञान हो सके। किन्तु चित्ररचनाओं की जो प्रवृत्ति हमें नवीं शताब्दी तक दीख पड़ती है और पुनः उनका जो स्वरूप बारहवीं शताब्दी से लेकर १७ वीं शताब्दी तक दीख पड़ता है, उसके अनुसार यही कहा जा सकता है कि दसवीं-ग्यारहवीं शती में भी ये रचनाएँ प्रचुर परिमाण में हुई होंगी। इस निष्कर्ष का एक आधार यह भी है कि 'अग्निपुराण' तथा 'सरस्वतीकण्ठाभरण' इसी काल की कृतियाँ हैं, जिनमें शास्त्र के धरातल पर 'चित्रकाव्य' का पर्याप्त विस्तृत विवेचन किया गया है।[2] द्वितीय अध्याय में हम देख चुके हैं कि भोजराज द्वारा उद्धृत दो बन्धों से (नामांक अष्टदल कमल तथा द्विशृंगाट्क) राजशेखर का नाम निःसृत होता है,[3] अतः निश्चितरूपेण ये रचनाएँ काव्यमीमांसाकार राजशेखर की होंगी। चूँकि सरस्वती-कण्ठाभरणकार ने उदाहरण के श्लोक स्वरचित न रखकर दूसरे कवियों अथवा काव्यशास्त्र के ग्रन्थों से लिये हैं, अतः यह स्वाभाविक है कि उन्होंने ये दो श्लोक राजशेखर से लिये हों। इन सभी तथ्यों को देखते हुए यही कहा जा सकता है कि इस काल के अन्तर्गत भी 'चित्र'

---

१. बम्बई विश्वविद्यालय जरनल, सितम्बर १९५४, सं० २९, पृ० ७१.

२. द्रष्टव्य, प्रस्तुत ग्रन्थ के द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत इन कृतियों का विवेचन

३. उपरिवत्, पृ० २५ पा० टि० १

की प्रचुर रचनाएँ अवश्य हुई होंगी, किन्तु वे ग्रन्थ या तो नष्ट हो गये हैं अथवा पाण्डुलिपियों के रूप में ही हैं, जिनकी सूचना हमें नहीं मिल सकी है।

बारहवीं शताब्दी में पुनः हमें कई रचनाएँ प्राप्त होती हैं, जिनके रचयिताओं ने 'चित्रकाव्य' के छन्दों की भी प्रचुर रचनाएँ की है। श्री हर्ष के 'नैषधचरित' में तो 'चित्रकाव्य' का केवल एक ही श्लोक है, लेकिन उसके एक अन्य श्लोक से यह स्पष्ट हो जाता है कि उस युग में चित्रात्मक रचनाओं का कितना प्रचलन होगा। यों 'नैषध' के टीकाकार चरित्रवर्धन ने अपनी तिलक व्याख्या में ग्रन्थ के आदि में ही लिखा है कि "यहाँ हर्ष ने यमक, मुरज, सर्वतोभद्र आदि अनर्थ की पुष्टि करने वाले प्रमुख बन्धों का अनादर करके अर्थपुष्टिकारक अनुप्रास नामक शब्दालंकार की ही प्रायः योजना की है।"[१] किन्तु हर्ष ने निम्न श्लोक में 'बिन्दुच्युतक' का उल्लेख एक ऐसे प्रसंग में और इस सम्मान के साथ किया है कि 'चित्र' के प्रति उसकी कोई बुरी धारणा नहीं दीख पड़ती। श्लोक उस स्थल का है जहाँ नल, इन्द्र के दूत के रूप में दमयन्ती के पास आता है किन्तु उसके विलाप को देखकर आवेश में स्वयं अपने को प्रकट कर देता है। नल का कथन है—

"चकास्तिबिन्दुच्युतकातिचातुरी
घनास्रबिन्दुस्रुतिकैतवात्तवे।
मसौरताराक्षि ससारमात्मना
तनोषि संसारमसंशयं यतः॥[२]

तात्पर्य यह कि 'बिन्दुच्युतक' में दमयन्ती का यह कौशल है कि अपनी आंखों से अश्रुबिन्दुओं को गिराकर निश्चितरूपेण वह इस संसार को ससार बनाती है। इस प्रकार काव्य की नायिका को 'बिन्दुच्युतक' में पारंगत बताना, इस बात का सूचक है कि उस युग में इस विद्या का कितना महत्त्व तथा प्रचलन था। श्री हर्ष अन्य अनेक कवियों के समान एक सम्राट् के सभापण्डित और कवि थे तथा सम्राट् की सभाओं में 'चित्रकाव्य' का उपयोग तथा प्रयोग कवियों की प्रतिभा की कसौटी के लिये होता ही था। इस तथ्य की पुष्टि उन अनेक प्रचलित राजदरबार से सम्बद्ध कथाओं से होती है, जिनमें किसी राजा के दरबार में किसी बाहर के कवि अथवा विद्वान द्वारा विभिन्न 'समस्याएँ', 'प्रहेलिका', 'बिन्दुमती', विभिन्न 'प्रश्नोत्तर' अथवा इसी प्रकार की रचनाएँ पूर्ति के लिये उपस्थित कर दी जाती थीं और दरबार के कवि अथवा विद्वान उनका समाधान किया करते थे। इसी प्रकार बाहर से आगत कवियों अथवा विद्वानों की योग्यता की परीक्षा के लिये भी राजसभा के कवियों अथवा विद्वानों द्वारा इस प्रकार की रचनाओं का उपयोग किया जाता था।

---

१. "अत्र श्रीहर्षैर्यमकमुरजसर्वतोभद्र प्रमुखान्बन्धानर्थापुष्टिकराननादृत्यार्थपुष्टिकरो ऽ नुप्रासाभिध शब्दालंकारः प्रायः प्रयुयुजे" इतिचरित्रवर्धनविरचित तिलक व्याख्या। नैषधचरित, पण्डित शिवदत्त सम्पादित तथा निर्णयसागर प्रेस से १९१९ में प्रकाशित पंचम संस्करण के द्वितीय पृष्ठ की पाद टिप्पणी।

२. उपरिवत्, सर्ग ९, श्लोक १०४

इस श्लोक के अतिरिक्त 'नैषधचरित' के प्रथम सर्ग की श्लोक संख्या १३५ में 'कर्तृगुप्त' की रचना की गई है। 'नैष_' का वह श्लोक तो अत्यन्त प्रसिद्ध है ही जिसका अर्थ पाँचों नलों के सम्बन्ध में सटीक उतरता है।[1] यद्यपि हमने दो से अधिक अर्थवाले छन्दों को 'श्लेष' के भेद के रूप में ही माना है और किसी आचार्य ने भी इन्हें 'चित्र' के अन्तर्गत नहीं रखा, किन्तु काव्यकृतियों में बहुधा ही चित्ररचनाओं के साथ 'अर्थत्रयवाची', 'अर्थचतुष्टयवाची' अथवा अधिक अर्थों से युक्त छन्दों की रचना मिलती है। 'शिशुपालवध', 'देवीशतक', 'हरविजय' आदि लगभग सभी प्रमुख काव्यकृतियों में चित्र प्रसंग में इनके श्लोक भी हैं। उपर्युक्त 'कर्तृगुप्तश्लोक' के अतिरिक्त सम्पूर्ण 'नैषध' में और कहीं भी 'चित्रकाव्य' के किसी प्रकार की रचना नहीं हो सकी है।

ईसा की इसी शताब्दी में जैनकवि जिनवल्लभसूरि चित्ररचनाक्षेत्र में बड़े प्रसिद्ध हो गये हैं। अपनी एकाधिक पुस्तकों में इन्होंने 'चित्र' की विविध रचनाएँ की हैं। इनके शिष्य जिनदत्तसूरि ने इनकी काव्य-प्रतिभा की तुलना कालिदास तथा वाक्पतिराजकवि से की है। साथ ही उन्होंने अपनी पुस्तक 'चर्चरी' में अपने गुरु की स्तुति के क्रम में उन्हें 'अनेक चित्रों का रचयिता' भी बताया है। जिनदत्त सूरि की यह पुस्तक अपभ्रंश में है, जिसके निम्न छन्दों में जिनवल्लभ सूरि के सम्बन्ध में उक्त बातें प्रकाश में आती हैं—

"कालियासु कइ आसि जुलोइहिं वन्नियइ
ताव जाव जिणवल्लहु कइ ना अन्नियइ
अप्पु चित्तु परियाणहि तंपि विसुद्ध नय
तेवि चित्त कइ राय भणिज्जहि मुद्धनय ॥
सुकइ विसेसिय वयणु जु वप्पइराउ कइ
सुवि जिनवल्लह पुरउ न पावइ कित्ति कइ।
अवरि अणेय विणेयहिं सुकइ पसंसियहिं
तक्कवामयलुद्धिहिं, निच्चु नमंसियहिं ॥
जिन कय नाणा चित्तइं, चित्तुहरंति लहु
तसु दंसणु विणु पुन्निहिं कउलब्भइ दुलहु।
सारइं बहु थुइ थुत्तइ, चित्तइं जेण कय
तसु पय कमलु जिपणमहि, ते जण कयसुकय ॥"[2]

---

१. नैषध चरित, सर्ग १३, श्लोक ३४

२. अपभ्रंश काव्यत्रयी में संकलित 'चर्चरी' की श्लोक संख्या ५, ६ तथा ७। संस्कृत में इन अपभ्रंश छन्दों के स्थानापन्न निम्न श्लोक पुस्तक में हैं—

कालिदासः कविरासीत् यो लोके वर्ण्यते
तावद् यावज्जिनवल्लभः कविर्नाकर्ण्यते।
अल्पं चित्रं परिजानन्ति तदपि विशुद्धं न च
ते ऽपि चित्र कविराजाः भण्यन्ते मुग्धनता ॥५॥

जिनवल्लभसूरि की 'धर्मशिक्षा प्रकरण', 'संघपट्टक', 'प्रश्नशतक' अथवा 'प्रश्नोत्तर शतक' तथा 'चित्रकाव्यसार' नामक चार रचनाएँ मिलती हैं जिनमें 'चित्रकाव्य' के श्लोक हैं।[1] 'धर्मशिक्षा प्रकरण' तथा 'संघपट्टक' में केवल 'चक्रबन्ध' के उदाहरण मिलते हैं किन्तु 'प्रश्न-शतक' में अन्य भी कई प्रकार की रचनाएँ हैं। 'चित्रकाव्यसार' का उल्लेख भर मिलता है,[2] उसका प्रकाशन नहीं होने से उसके सम्बन्ध में नहीं कहा जा सकता कि उसमें कितनी और किस प्रकार की रचनाएँ हैं। 'धर्मशिक्षा प्रकरण' में कुल ४० छन्द हैं और उनमें प्रथम तथा अन्तिम छन्दों में 'नामांक चक्रबन्ध' के निर्माण की योजना है। 'संघपट्टक' के ३८ वें श्लोक में भी 'चक्रबन्ध' की योजना है और वह भी नामांक ही है।[3] ये सभी 'चक्र' 'षडर' हैं और इनसे क्रमशः निम्नवाक्यांश निःसृत होते हैं—

प्रथम चक्र के सप्तम तथा तृतीय वलयों में न्यस्त वर्णों के पाठ से 'गणिजिनवल्लभ-वचन मिदं' निःसृत होता है, द्वितीय चक्र के भी इन्हीं वलयों से 'गणिजिनवल्लभवचनमदः' प्राप्त होता है तथा तृतीय चक्र के तृतीय तथा षष्ठ वलयों में न्यस्त वर्णों से 'जिनवल्लभे-नगणिनेदं चक्रे' की प्राप्ति होती है।

'प्रश्नशतक' में विभिन्न प्रश्नोत्तरों की रचना है, इनमें कतिपय प्रश्नों के उत्तरों से विभिन्न बन्धों का निर्माण भी होता है। जिनवल्लभसूरि से पूर्व प्रश्न के उत्तरों से विभिन्न बन्धों की रचना संस्कृत में प्राप्त नहीं होती, किन्तु आगे चलकर धर्मदास प्रभृति कवियों ने प्रमुख रूप से 'चित्रकाव्य' के इस पक्ष की रचना ही की तथा हिन्दी में भी यह परम्परा चलती रही है। इस प्रकार की रचनाएँ हमें सर्वप्रथम यहीं दीख पड़ती हैं। इस प्रकार बन्धों से सम्बद्ध जितने छन्द 'प्रश्नशतक' में हैं उन्हें तीन कोटियों में बाँटा जा सकता है।

प्रथम कोटि में छन्द संख्या १४, २०, २६, ३६, ४२, ४७, ५८, ५९, ७७, ७८, ११८, १४५ तथा १४७ हैं, जिनमें निहित प्रश्नों के उत्तरों से विभिन्न पद्मबन्धों की रचना होती है। इन छन्दों में २६, १४५ तथा १४७ से 'चतुर्दल', १४ तथा ३६ से 'अष्टदल', पृ० २०, ४७

सुकवि विशेषितवचनो यो वाक्पतिराज कविः
सो ऽ पि जिन्नवल्लभपुरतो न प्राप्नोति कीर्ति कांचित्।
अपरे ऽ नेकविनेयैः सुकवयः प्रशस्यन्ते
तत्काव्यामृतलुब्धैर्नित्यं नमस्यन्ते ॥६॥
येन कृतानि नाना चित्राणि चित्तं हरन्ति लघु
तस्य दर्शनं विना पुण्यैः कुतो लभ्यते दुर्लभम्।
साराणि बहूनि स्तुति—स्तोत्राणि चित्राणि येन कृतानि
तस्य पद कमलं ये प्रणमन्ति ते जनाः कृतसुकृताः ॥७॥"

—चर्चरी, पृ० ५-६

१. द्रष्टव्य अपभ्रंश काव्यत्रयी की भूमिका, पृ० २९-३० तथा बम्बई विश्वविद्यालय जरनल, सितम्बर १९५४ संख्या २९, पृ० ७२

२. अपभ्रंश काव्यत्रयी, उपरिवत्

३. बम्बई विश्वविद्यालय जरनल, उपरिवत्

तथा ११८ से 'अष्टदल-विपरीत', ४२ से 'द्वादशदल' तथा ५८; ५९ तथा ७७-७८ से 'षोडशदल' तथा 'विपरीत षोडशदल' कमलबन्धों के चित्र बनते हैं।

दूसरी कोटि में जो छन्द हैं उनसे दो प्रकार के 'मन्थान' के चित्र निर्मित होते हैं। इनमें छन्द १०, १२, ६१, १३२, १३३, १३८, १३९ तथा १५२ में पूछे गये प्रश्नों के उत्तरों से प्रथम प्रकार का 'मन्थान' तथा छन्द ३२, ६९, ७४, १४३ तथा १५४ के प्रश्नों के उत्तरों से दूसरे प्रकार के 'मन्थान' की योजना होती है।

तीसरी कोटि में छन्द ६, ६३ तथा ७१ आते हैं, जिनसे 'श्रृंखला' का निर्माण होता है।

इस प्रकार 'प्रश्नशतक' में प्रश्नोत्तर शैली के द्वारा कुल आठ प्रकार के बन्धों का निर्माण होता है।[1] उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'चित्रकाव्य' के विकास में जिनवल्लभ सूरि का विशिष्ट योगदान है। प्रश्नोत्तर निर्मित बन्धों के तो वे उद्भावक ही हैं, जिनका बाद के कवियों ने यथेष्ट अनुकरण किया।

चित्ररचनाओं की दृष्टि से हरिचन्द्र रचित 'धर्मशर्माभ्युदय' का स्थान उल्लेखनीय है। प्रस्तुत ग्रन्थ एक महाकाव्य है जिसमें कुल २१ सर्ग हैं। इसके १९ वें सर्ग में युद्ध का वर्णन है और इसी सर्ग के अन्तर्गत 'चित्रकाव्य' के अनेक श्लोकों की रचना की गई है। हरिचन्द्र के काल के सम्बन्ध में कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। कीथ ने भी इनके काल को अज्ञात कहा है।[2] प्रो० हीरालाल कपाड़िया ने पाटन में प्राप्य 'धर्माशर्माभ्युदय' की एक हस्तलिखित प्रति का उल्लेख किया है जिसमें तिथि के रूप में १२८७ वि० का उल्लेख है।[3] प्रो० कपाड़िया का अनुमान है कि राजशेखर ने अपने 'कप्पूरमंजरी' ग्रन्थ में जिस हरियंद कवि का उल्लेख किया है, यदि प्रस्तुत हरिचन्द्र की उससे अभिन्नता सिद्ध की जा सके, तो प्रस्तुत ग्रन्थ वि० सं० ९६० से भी पूर्व का सिद्ध होगा।[4] किन्तु जबतक इस प्रकार का कोई प्रमाण नहीं मिल जाता, हरिचन्द्र को हम उक्त हस्तलेख के आधार पर बारहवीं शती का मान सकते हैं। चाहे जो भी हो चित्ररचनाओं की दृष्टि से इस ग्रन्थ का पर्याप्त महत्त्व है। इनमें जिन चित्रप्रकारों के श्लोकों की रचना की गई है, वे निम्न हैं—

'एकाक्षर', 'द्व्यक्षर', 'चतुरक्षर', 'निरोष्ठ्य', 'अतालव्य', 'पाद', 'अर्ध तथा श्लोकप्रतिलोमानुलोम', 'गोमूत्रिका', 'अर्धभ्रम', 'सर्वतोभद्र', 'कविनामांकषोडशदल पद्मबन्ध', 'कविनामांक अष्टारचक्र', 'कविनामांक षडरचक्र', 'मुरज' तथा 'गूढ़ चतुर्थपाद'।

---

१. द्रष्टव्य, बम्बई वि० वि० ज०, स० २९, पृ० ७३

२. "Of unknown date is Huricandra, author of the Dharmacarmabhyudaya, in twentyone cantos, on the life of the fifteen Tirthankara, Dharmanatha."—History of Sanskrit literature, P. P. 143 (1928edition)

३. बम्बई विश्वविद्यालय जरनल, सितम्बर, १९५५ संख्या ३०, पृ० १०५

४. उपरिवत्, पृ० १०५-१०६

उपर्युक्त तालिका से यह स्पष्ट हो जाता है कि हरिचन्द्र ने तत्कालीन काव्य-कृतियों में प्रचलित अधिकांश चित्रों की रचना की है। इनमें 'वर्णचित्र', 'स्थानचित्र', 'गतिचित्र', 'गूढ़' तथा 'आकार चित्रों' के भेदोपभेद हैं। 'स्वरचित्र' के किसी श्लोक की रचना हमें 'धर्मशर्माभ्युदय' में नहीं मिलती। प्रस्तुत ग्रन्थ का महत्त्व 'चक्र' तथा 'पद्मबन्ध' के कारण और भी अधिक बढ़ जाता है। रुद्रट तथा आनन्दवर्धन के अतिरिक्त पूर्व के प्रायः सभी कवियों ने नामांक के लिये 'षडरचक्र' की ही रचना की है। केवल रुद्रट ने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये 'अष्टारचक्र' की रचना की। प्रस्तुत ग्रन्थ में हम नामांक के 'षडर' तथा 'अष्टार' दोनों ही चक्रबन्धों की योजना पाते हैं। हरिचन्द्र के 'अष्टारचक्र' से भी रुद्रट के समान ही एक सम्पूर्ण श्लोक निःसृत होता है जिसमें कवि, कवि के पिता तथा उसकी प्रस्तुत कृति के नाम का उल्लेख मिल जाता है। श्लोक निम्न है—

"आर्द्रदेवसुतेनेदं काव्यंधर्मजिनोदयम्।
रचितं हरिचन्द्रेण परमं रस मन्दिरम्॥"

प्रस्तुत 'चक्रबन्ध' में ग्रन्थ के १९वें सर्ग के छन्द १०१ तथा १०२ का सम्मिलित रूप से न्यास किया जाता है तथा आठों आरों में प्रारम्भिक, तृतीय, षष्ठ तथा अष्टम वलयस्थित वर्णों से उपर्युक्त नामांक श्लोक की रचना होती है। प्रस्तुत सर्ग के छन्द १०४ से निर्मित होनेवाले 'षडरचक्र' भी नामांक ही है और उसके तृतीय तथा षष्ठ वलयों में न्यस्त वर्णों से क्रमशः काव्य तथा कवि के नाम हमें प्राप्त होते हैं।

'धर्मशर्माभ्युदय' के १९वें सर्ग के छन्द ९८ तथा ९९ से बननेवाला 'षोडशदल पद्म' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यों 'षोडशदल पद्मबन्ध' की रचना संस्कृत के कवियों को बड़ी प्रिय रही है और अधिकांश कवियों ने इसकी रचना की है; किन्तु प्रस्तुत 'षोडशदल पद्म' के चित्र तथा न्यास की, सामान्यतः प्रचलित 'षोडशदलपद्म' के चित्र तथा न्यास से, कोई समता नहीं है। इस बन्ध के सामान्य छन्द की रचना अत्यन्त सरल होती है कारण यदि किसी श्लोक का प्रत्येक युग्माक्षर एक हो तभी इस बन्ध का चित्र बन पाता है। इस प्रकार रचित छन्द के युग्माक्षर कमल की कर्णिका में तथा अयुग्माक्षर प्रत्येक दल में न्यस्त होते हैं। इसका विवेचन तृतीय अध्याय के अन्तर्गत किया जा चुका है। किन्तु हरिचन्द्र रचित प्रस्तुत बन्ध ऐसा नहीं है। इसमें कमल के सोलहों दलों का निर्माण तथा उनमें उपर्युक्त छन्दों का न्यास इस रीति से किया गया है कि आठ छोटे दलों के दलान्तस्थितवर्ण, आठ बड़े दलो के अन्त में स्थित वर्ण तथा कर्णिका के वर्ण को मिलाने से कवि तथा काव्य के नाम से युक्त निम्न वाक्यांश प्राप्त होता है—

"हरिचंद्र कृतधर्म जिनपति चरितमिति"

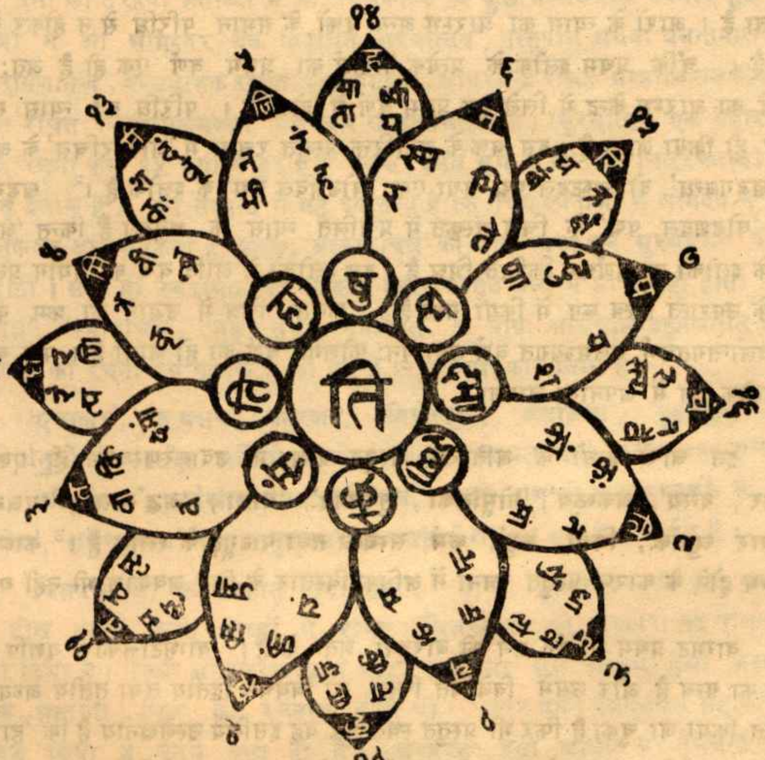
प्रस्तुत चित्र में न्यस्त होनेवाले दोनों श्लोक निम्न हैं—

"चक्रे ऽरिसंततिमिहाजिषु नष्टपद्मा-
तिख्यातिमेकचकिताकृतिधारिणीं यः।

चित्र संख्या ६८

न्यास के श्लोक

चक्रे ऽ रिसंततिमिहाजिषु नष्टपद्मा-
तिख्यातिमेकचकिताकृतिधारिणीं यः ।
तिग्मासिरिष्टमतवत्स तवावति क्ष्मां
किं तत्परं धरिणिमित्र कृतिन्ब्रवीमि ॥
कः शर्मदं वृजिनभीतिहरं जितात्मा
हर्षाय न स्मरति ते ऽ भिनवं चरित्रम् ।
संपद्गुणातिशयपस्त्य रुचं तवेति
कः कान्तिमानतिसुधाद्रवरोचमानाम् ॥



नामांक षोडशदल कमलबन्ध

दलान्त के काले अंशों में लिखित गर्भांक निम्न है—

"हरिचंद्र कृत धर्म जिनपति चरित मिति"

सातवें दल में लिखित 'द्रू' को 'दृग्' पढ़ें ।

तिग्मासिरिष्टमतवत्स तवावति क्ष्मां
किं तत्परं धरिणिमित्र कृतिन्नवीमि ॥९८॥
कः शर्मदं वृजिनभीतिहरं जितात्मा
हर्षाय न स्मरति तेऽभिनवं चरित्रम् ।
संपद्गुणातिशयपस्त्य रुचं तवैति
कः कान्तिमानतिसुधाद्रवरोचमानाम् ॥"९९॥

इन श्लोकों के न्यास को संलग्न चित्र संख्या ९८ में देखा जा सकता है ।

जिनदत्त सूरि के शिष्य अमरचन्द्र सूरि की 'काव्यकल्पलतावृत्ति' में हमें एक 'चक्रबन्ध' के दो श्लोक मिलते हैं ।[1] इस चक्र की न्यासविधि सामान्य न्यासविधि से किंचित भिन्न है । प्रथम श्लोक के चारों पादों से आठ आरे बनते हैं तथा द्वितीय श्लोक का न्यास चक्र की नेमि में होता है । आरों के न्यास का प्रारम्भ अन्य चक्रों के समान परिधि से न होकर केन्द्र से होता है । चूंकि प्रथम श्लोक के प्रत्येक पादार्द्ध का प्रथम वर्ण एक ही है अतः प्रत्येक पादार्द्ध का आरम्भ केन्द्र में लिखे इस प्रथम वर्ण से होता है । परिधि का न्यास सामान्य ढंग से ही किया जाता है । इस चक्र के अतिरिक्त प्रस्तुत रचना में 'आकारचित्र' के अन्तर्गत एक 'खड्गबन्ध', दो 'अष्टदल पद्म' तथा एक 'षोडशदल पद्म' के श्लोक हैं ।[2] 'खड्गबन्ध', तथा 'षोडशदल पद्म' के चित्र संस्कृत में प्रचलित न्यास के अनुरूप हैं किन्तु 'अष्टदल-पद्म' के श्लोकों का वर्णक्रम किंचित भिन्न है । इन श्लोकों में आदि वर्ण का प्रयोग प्रत्येक दो वर्णों के उपरान्त द्वित्व रूप में किया गया है । फलतः चित्र में उद्धार का क्रम कोशगत वर्ण, दलान्तगतवर्ण, दलमध्यगत वर्ण तथा पुनः कोशगत वर्ण का हो जाता है । पाठ का यही क्रम प्रत्येक दल में अपनाया जायगा ।

इन चारों बन्धों के अतिरिक्त प्रस्तुत ग्रन्थ में उदाहरणस्वरूप ही **'एकाक्षर', 'द्व्यक्षर', 'दन्त्य', 'अकण्ठ्य', 'गोमूत्रिका', 'तुरगगद', 'मात्रा', 'अर्द्धमात्रा', 'व्यंजन तथा अनुस्वार च्युतक', क्रिया, कर्तृ, कर्म, सम्बन्ध तथा पादगूढ़ के श्लोक हैं** ।[3] काव्यशिक्षा का ग्रन्थ होने के कारण प्रस्तुत रचना में अधिक विस्तार के लिए अवकाश भी नहीं था ।

वाग्भट प्रथम भी ई० सन् की बारहवीं शती के हैं। 'वाग्भटालंकार' यद्यपि काव्य-शास्त्र का ग्रन्थ है और उसमें विवेचित चित्रों का विवेचन द्वितीय तथा तृतीय अध्यायों के अन्तर्गत किया जा चुका है फिर भी प्रस्तुत स्थल पर वह इसलिये उल्लेखनीय है कि 'हारबन्ध' तथा 'छत्रबन्ध' के श्लोक सर्वप्रथम इसी ग्रन्थ में मिलते हैं ।[4] इसका कोई सीधा प्रमाण तो नहीं

---

१. काव्यकल्पलतावृत्ति, प्रतान ३ स्तबक ५, पृ० १०२
२. उपरिवत्, पृ० १०१-१०३
३. उपरिवत्, पृ० ८५ से १०५ तक
४. वाग्भटालंकार, परि १, श्लोक २४ तथा २५

मिलता कि इन बन्धों के ये श्लोक वाग्भट द्वारा ही रचित हैं किन्तु काव्यशिक्षा के ग्रन्थ लिखनेवाले अधिकांश आचार्यों ने उदाहरणों की रचना स्वयं की है। चूँकि वाग्भट द्वारा रचित उदाहरण के श्लोक अन्यत्र नहीं मिलते अतः स्पष्ट है कि ये उनकी ही रचनाएँ हैं। इस प्रकार चित्ररचनाओं में नवीन बन्धों की रचना की दृष्टि से वाग्भट का पर्याप्त महत्त्व सिद्ध होता है। अब तक की काव्यकृतियों में नहीं मिलनेवाले 'स्वरचित्र' का एक श्लोक भी वाग्भट ने दिया है, जो 'अमात्रिक' है।[1] किन्तु इसके लिये वाग्भट को अधिक श्रेय इसलिये नहीं मिल सकता क्योंकि शास्त्रग्रन्थों में चित्रविवेचन के अन्तर्गत आचार्यों ने स्वरचित्र के भेदोपभेदों के उदाहरण दिये हैं। 'हार' तथा 'छत्र' इन दोनों बन्धों को काव्य में उपस्थित करने का श्रेय निश्चितरूपेण वाग्भट को है जो बाद में चित्ररचयिताओं के लिये बड़े ही प्रिय सिद्ध हुए तथा जिनकी रचना प्रचुर परिमाण में हुई।

ईसा की तेरहवीं शताब्दी में भी 'चित्रकाव्य' की कुछ उल्लेखनीय रचनाएँ हुईं। इन रचनाओं में श्री सोमेश्वर देव विरचित 'सुरथोत्सव', वस्तुपाल अथवा वसन्तपाल रचित 'नरनारायणानन्द', वेंकटदेशिक रचित 'पादुकासहस्र', सागरचन्द्र रचित 'मन्त्राधिराजकल्प' तथा धर्मदास रचित 'विदग्धमुखमण्डन' विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। 'सुरथोत्सव' एक महाकव्य है, जिसकी रचना कुल १५ सर्गों में हुई है। इसके दसवें सर्ग के अन्तर्गत चित्ररचनाओं के भी कतिपय श्लोक हैं। इस सम्बन्ध में यह ध्यातव्य है कि चित्ररचनाओं में सोमदेव ने भारवि का अनुकरण अधिक किया है, फलतः 'आकारचित्र' की कोई रचना हमें 'सुरथोत्सव' में प्राप्त नहीं होती। साथ ही 'स्वरचित्र' का भी कोई श्लोक प्रस्तुत ग्रन्थ में प्राप्त नहीं होता। किन्तु 'वर्णचित्र', 'स्थानचित्र', 'गूढ़' तथा 'गतिचित्र' के प्रायः अधिकांश बहुप्रचलित भेदों के उदाहरणों की रचना इस पुस्तक में की गई है। ये चित्रप्रकार निम्न हैं—

'एकाक्षर', 'द्व्यक्षर', चतुरक्षर, 'निरोष्ठ्य', 'अतालव्य', 'गूढ़चतुर्थ', 'अर्द्ध-प्रतिलोमानुलोम', 'श्लोक प्रतिलोमानुलोम' अथवा 'गतप्रत्यागत', 'श्लोकान्तर प्रतिलोमा-नुलोम', 'गोमूत्रिका', 'अर्द्धभ्रम' तथा 'सर्वतोभद्र'। इनके साथ ही अन्य पुस्तकों के समान 'असंयोग', 'अर्थचतुष्टय' तथा 'समुद्गक' की रचनाएँ भी इस सर्ग के अन्तर्गत हैं।

चित्ररचनाओं के विकास तथा प्रसार में यों तो 'सुरथोत्सव' की कोई नवीन देन नहीं दीख पड़ती किन्तु काव्यों में रचित 'चित्रकाव्य' की परम्परा का पालन इसने अवश्य किया है। किसी भी महाकाव्य में प्रायः एक ऐसा सर्ग अवश्य हुआ करता था जिसके अन्तर्गत 'चित्र' की रचनाएँ होती थीं। ऊपर हमने जिन-जिन महाकाव्यों का विवेचन किया है उनमें ऐसा ही है। सम्भवतः इसी आधार पर हेमचन्द्र ने अपने 'काव्यानुशासन' में महाकाव्य के लक्षण के अन्तर्गत किसी भी महाकाव्य के एक सर्ग को चित्ररचनाओं से युक्त होना आवश्यक बतलाया है।[2] इस दृष्टि से 'सुरथोत्सव' ने भी महाकाव्य की इस शर्त की पूर्ति की है।

---

१. वाग्भटालंकार, परि ४ श्लोक ९

२. काव्यानुशासन, कारिका २०१, अ० ८, सूत्र ६ की वृत्ति, पृ० ४५७

चित्ररचनाओं के क्षेत्र में 'नरनारायणानन्द' महाकाव्य के लेखक वस्तुपाल अथवा वसन्तपाल का महत्त्व निर्विवाद है। प्रस्तुत महाकाव्य के १४वें सर्ग में 'चित्र' के कितने ही भेदों के श्लोकों की रचना हुई है जिनमें कुछ तो अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण हैं। इन श्लोकों में पूर्व काव्यग्रन्थों में रचित चित्रप्रकारों के अतिरिक्त 'स्वरचित्र' के अन्तर्गत 'अमात्रिक' तथा 'स्थानचित्र' के कितने ही नवीन भेदों के श्लोक हैं। इनके साथ ही छह बन्धचित्रों के उदाहरण भी प्रस्तुत ग्रन्थ में दिये गये हैं। 'नरनारायणानन्द' में प्राप्त कुल चित्ररचनाओं की सूची निम्न है —

'एकाक्षर', 'द्व्यक्षर', 'चतुरक्षर', निरोष्ठ्य, 'अतालव्य', 'त्रिवर्ग' (इसके अन्तर्गत केवल पवर्ग, अन्तःस्थ तथा ऊष्म वर्णों का प्रयोग किया गया है), 'अदन्त्य', 'अमूर्द्धन्य' 'अपंचवर्ग' (इसके अन्तर्गत केवल अन्तःस्थ और ऊष्मवर्णों का प्रयोग है), 'अन्तःस्थ', 'अत्रिवर्ग' (कवर्ग, चवर्ग तथा टवर्ग वर्णों से रहित), 'श्लोक प्रतिलोमानुलोम', 'गोमूत्रिका', तथा 'सर्वतोभद्र'। प्रस्तुत स्थल पर प्राप्त बन्ध हैं 'शरशरासनबन्ध', 'मुरजबन्ध', 'षोडशदलकमल बन्ध', 'कविनामांकअष्टार चक्र', 'कविनामांक शक्तिबन्ध' तथा 'षड्गबन्ध'।

उपर्युक्त सूची से यह स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि 'स्थानचित्र' के अन्तर्गत 'अदन्त्य', 'अमूर्द्धन्य', 'अन्तःस्थ' आदि की रचना इन्होंने ही की है। यों किसी भी बन्ध को कवि-काव्य ना ांक युक्त बनाया जा सकता है, किन्तु 'चक्र' और 'कमल' के अतिरिक्त बहुत कम ही बन्धों को यह श्रेय मिला है। इस दृष्टि से भी वसन्तपाल का महत्त्व सिद्ध होता है क्योंकि 'शक्तिबन्ध' के श्लोक में भी उन्होंने अपने नाम की योजना की है।[1] प्रस्तुत काव्य का महत्त्व एक दृष्टि से और भी है। एक ही श्लोक में 'षोडशदलकमल', 'गोमूत्रिका' तथा 'त्रिवर्ग' की योजना भी वस्तुपाल ने की है।[2] आगे चलकर एक ही छन्द में अनेक चित्ररचनाओं की यह प्रवृत्ति हिन्दी 'चित्रकाव्य' में हमें बहुत अधिक मिलती है। प्रस्तुत काव्य में हमें इस परम्परा के आविर्भाव का संकेत प्राप्त हो जाता है। यों इसके पूर्व रत्नाकर ने भी एक श्लोक में एकाधिक चित्रों की योजना की थी। फिर भी 'गोमूत्रिका' और 'षोडशदल कमल' के संयुक्त श्लोक की रचना में कोई विशेष चमत्कार नहीं है। 'षोडशदल कमल' के छन्द में तो 'गोमूत्रिका' रहती ही है, कारण इस प्रकार के छन्द का प्रत्येक युग्म अक्षर एक ही होता है।

वस्तुपाल द्वारा रचित 'कविनामांकअष्टारचक्र' बन्धरचना की दृष्टि से सदोष दीख पड़ता है। चित्ररचनाओं के लिये कवियों को भले ही कतिपय सुविधाएँ दी गई हैं, किन्तु 'म' तथा 'भ' की अभिन्नता उनमें नहीं है। प्रस्तुत बन्ध में यदि हम 'म' और 'भ' को अलग-अलग मानें तो चित्र में छन्द का न्यास हो ही नहीं पाता। पुनः प्रस्तुत चित्र से निःसृत जिस गर्भश्लोक का उल्लेख पुस्तक में किया गया है उसके कुछ वर्ण मूल-श्लोक में नहीं मिलते। इस प्रकार जो वर्ण मूल श्लोक में ही नहीं हैं वे भला गर्भस्थ

१. नरनारायणानन्द, सर्ग १४, श्लोक २४
२. उपरिवत्, श्लोक १६

श्लोक में कहाँ से आ सकते हैं ?[1] अतः स्पष्ट है कि या तो श्लोक का पाठ परिवर्तित अथवा दूषित है अथवा यह श्लोक उक्त बन्ध का नहीं है। 'अष्टारचक्र' के निर्माण की किसी भी विधि से इस श्लोक का निर्दोष न्यास चित्र में नहीं हो पाता।

'पादुकासहस्र' की रचना भी लगभग 'नरनारायणानन्द' के समय के आस-पास ही हुई थी। इसके लेखक वेंकटदेशिक एक अत्यन्त प्रतिभाशाली कवि तथा दार्शनिक थे। संख्या तथा परिमाण में उनकी रचनाएँ बहुत ही अधिक हैं। 'पादुकासहस्र' में कुल १००८ श्लोकों की रचना ३२ पद्धतियों अथवा अध्यायों में की गई है। पुस्तक की तीसवीं पद्धति का शीर्षक 'चित्रपद्धति' है जिसके अन्तर्गत ४० श्लोकों की रचना हुई है। इन श्लोकों में चार तो 'यमक' से युक्त हैं, शेष सभी श्लोकों में किसी न किसी चित्रभेद की रचना अवश्य हुई है। प्रस्तुत पद्धति में कुल २९ प्रकार की चित्ररचनाओं के उदाहरण हैं जिनमें १२ प्रकार के बन्धों की रचना है। 'चित्र' के बन्धेतर भेदों में जितनी रचनाएँ प्रस्तुत पुस्तक में मिलती हैं, प्रायः सभी के उदाहरण उनके पूर्व के काव्यग्रन्थों में प्राप्त हो चुके हैं। वे रचनाएँ हैं—**'एकाक्षर', 'द्व्यक्षर', 'त्र्यक्षर', 'निरोष्ठ्य', 'द्विस्वर-द्विव्यंजन गूढ़ चतुर्थ', 'क्रियागुप्त', 'अपुनरुक्त व्यंजन', 'पाद प्रतिलोमानुलोम', 'पद-पदार्थ-प्रतिलोमानुलोम', 'श्लोकान्तर-प्रतिलोमानुलोम', 'गोमूत्रिका', 'श्लोकगोमूत्रिका', 'विपरीत श्लोकगोमूत्रिका', 'चतुरंग-तुरंग' अथवा 'अश्वगति', 'अर्धभ्रम' तथा 'सर्वतोभद्र'।**

---

१. चक्र का श्लोक निम्न है—

"वल्गाधीनं चमूमत्यपरमचरितः सद्रुचिः संगरादौ
क्रतुं हार्यं रसं दोः सुकृत विभवतः क्षालित श्रीर्व्यकासीत्।
रक्तामुद्रोज्झहस्तं रसि समर महानन्य वीरस्त दान्यः
स्यन् शूरं वृद्धराव प्रसभततसदौचित्यवर्यासिरुद्धः॥"१९॥

—सर्ग १४

प्रस्तुत श्लोक का न्यास अष्टारचक्र में नहीं हो पाता। यदि चारों पादों के दो टुकड़े कर उनका न्यास सीधे आरों में किया जाय तो चारों पादों के मध्य वर्णों को एक ही होना चाहिये, ताकि उनका न्यास नाभि में हो, किन्तु यहाँ प्रथम तथा तृतीय पाद का मध्य वर्ण 'म' है किन्तु द्वितीय तथा चतुर्थ का 'भ'। चित्रकाव्य में भी 'म' और 'भ' एक नहीं होते। अतः यह चित्र सदोष है। पुनः यदि नाभि में वर्ण का न्यास किया ही न जाय और सीधे आरों में लिख दिया जाय तो भी पुस्तक में उद्धृत गर्भांक का श्लोक कभी निःसृत नहीं होता। गर्भांक के नाम में पुस्तक में निम्न श्लोक है—

"वसन्त सचिवः सिद्धधीरालि रस विस्तरम्॥"
चक्रे श्री हारि कृष्णस्य महाकाव्य मदोमुदा॥"

गर्भांक श्लोक होने से प्रस्तुत श्लोक को उपर्युक्त श्लोक से ही निकलना चाहिये किन्तु विचित्रता यह है कि चक्र के उपर्युक्त श्लोक में, इस श्लोक में प्रयुक्त वर्ण 'ष्ण' कहीं नहीं है। निश्चित गति अथवा व्यवस्था की बात तो दूर रहे जब वर्ण ही नहीं है तो फिर निः सरण की बात ही कहाँ उठती है ? इस प्रकार प्रस्तुत श्लोक से चक्रबन्ध बन ही नहीं सकता और गर्भांक का श्लोक तो इस दृष्टि से गलत है ही।

उपर्युक्त तालिका के 'द्विस्वर-द्विव्यंजन' की सम्मिलित रचना अभी तक किसी काव्य ग्रन्थ में प्राप्त नहीं हुई थी। 'विपरीतश्लोक गोमूत्रिका' का उदाहरण यद्यपि भोजराज ने 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में दिया है[1] किन्तु प्राप्त काव्यकृतियों में 'पादुकासहस्र' के पूर्व हमें उसका कोई श्लोक प्राप्त नहीं होता। 'अश्वगति' के श्लोक भी अबतक काव्यग्रन्थों में कम ही मिले हैं, यों इसका विवेचन रुद्रट तथा भोज दोनों में है।[2]

उपर्युक्त बन्धेतर चित्ररचनाओं के अतिरिक्त 'पादुकासहस्र' का अधिक महत्त्व बन्धचित्रों को लेकर है। इसमें कई बन्ध ऐसे हैं जिनका उल्लेख इसके पूर्व नहीं मिलता। कुछ बन्ध ऐसे हैं जिनका विवेचन 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में भोजराज ने किया है, पर काव्य-कृतियों में उनके श्लोक इसके पूर्व प्राप्त नहीं हो सके हैं। देशिक जी द्वारा दिये गये बन्धों के श्लोक तथा चित्र को देखने से ऐसा लगता है कि उन्होंने इन चित्रों की रचना के पूर्व 'सरस्वतीकण्ठाभरण' का अध्ययन अवश्य किया होगा। 'मुरजबन्ध', 'अष्टदलपद्मबन्ध', 'कविनामांकित अष्टदलपद्म' के श्लोक तथा न्यास में कवि ने शतशः भोजराज से सहायता ली है। 'कवि नामांक कमलबन्ध' को न्यासविधि भी ठीक वही है जो भोजराज के द्वारा दी गई है। 'षडरचक्र' तथा 'अष्टारचक्र' की रचना इसके पूर्व काव्यों में भी यथेष्ट मिलती है और प्रस्तुत पुस्तक में नियोजित इन बन्धों की न्यासविधि भी सामान्य चित्रबन्धों के सामान है। उपर्युक्त 'कमलबन्ध' के साथ ये दोनों 'चक्रबन्ध' भी 'कविकाव्यनामांक' युक्त हैं। 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में उदाहृत कमल के समान उपर्युक्त कमल के दलान्तों के वर्णों को साथ लेने से 'वेंकटपतिकमल' वाक्यांश की प्राप्ति होती है। प्रस्तुत बन्ध से निःसृत होनेवाले इस नाम से भी यही संकेत मिलता है कि 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में उद्धृत 'कमलबन्ध' की रचना राजशेखर ने की है, कारण उससे भी 'राजशेखर कमल' वाक्यांश निःसृत होता है।[3]

'पादुकासहस्र' में नियोजित 'षडर' तथा 'अष्टार चक्र' से भी प्रचलित पद्धति के अनुकूल क्रमशः कविकाव्यनाम युक्त वाक्यांश तथा श्लोक की प्राप्ति होती है। इनमें 'षडर चक्र' के तृतीय तथा चतुर्थ वलयों में न्यस्त वर्णों के पाठ से 'वेंकटनाथीय पादुकासहस्र' निःसृत होता है, जबकि 'अष्टारचक्र' की परिधि अथवा प्रथम, तृतीय, षष्ठ तथा अष्टम वलयों में लिखित वर्णों को साथ लेने से निम्न श्लोक निकलता है जिसमें कवि का विशेष परिचय मिलता है—

"श्री श्री वेंकटनाथेन वेदान्ताचार्य तावता।
कवि वादि मृगेन्द्रेण कृतापादावनीनुतिः॥"

---

१. परि २, श्लोक ३१७-३१८

२. काव्यालंकार, अध्याय ५, श्लोक १५; स० कं०, परि० २, श्लोक ३०६, ३०७ तथा ३०८

३. स० कं०, परि २, श्लोक २९४-२९५ तथा पुस्तक के अन्त में निर्मित चित्र

उपर्युक्त बन्धों के अतिरिक्त 'शरबन्ध', 'गरुड़गतिचक्रबन्ध', 'द्विशृंगाटकबन्ध', 'द्विचतुष्कचक्रबन्ध', 'चतुररचक्रबन्ध' तथा 'पादुकायुगलगर्भकर्णिकमष्टदल पद्मबन्ध' की योजना प्रस्तुत स्थल पर कवि ने की है। 'शरबन्ध' का श्लोक यद्यपि हमें रुद्रट में ही मिल जाता है और बाद में भी इसकी रचना हुई है, किन्तु 'शरबन्ध' के प्रस्तुत न्यास से उसका कोई साम्य नहीं दीखता।[1] फलत: न्यास की यह विधि प्रस्तुत कवि की अपनी कही जा सकती है। 'द्विचतुष्कचक्र बन्ध' तथा 'द्विशृंगाटकबन्ध' के उदाहरण तथा न्यासविधि और चित्र 'सरस्वती-कण्ठाभरण' में भी दिये गये हैं। किन्तु जहाँ उपर्युक्त कतिपय बन्धों में वेंकटनाथ ने भोज-राज की न्यासविधि का अनुकरण किया है, वहाँ इन बन्धों में उन्होंने भोज के न्यास से स्वतन्त्र अन्य न्यास दिये हैं, फलत: इनके चित्रों में भी पर्याप्त अन्तर आ जाता है।[2]

'चतुररचक्रबन्ध' यों संस्कृत में एक प्रचलित रचना है और इसका उल्लेख 'अग्निपुराण' में भी हुआ है, किन्तु इसके उदाहरण बहुत ही अल्प दीख पड़ते हैं। लेखक द्वारा रचित इस बन्ध की असल विशेषता यह है कि सामान्य 'अष्टदलपद्म' तथा प्रस्तुत 'चक्र' दोनों ही बन्धों का निर्माण कवि ने एक ही श्लोक से किया है।[3] 'गोमूत्रिका' के साथ 'त्रिपदी' अथवा 'षोडशदल कमल' के श्लोक से ही 'गोमूत्रिका' का निर्माण किसी विशेष प्रतिभा का संकेत नहीं देता, किन्तु एक ही श्लोक में 'चतुररचक्र' तथा 'अष्टदल पद्म' की योजना विशेष प्रतिभा का द्योतक है। जहाँ तक 'गरुड़गति चक्र' का प्रश्न है, इस बन्ध की योजना इसके पूर्व न तो किसी लक्षणग्रन्थ में और न ही किसी काव्यग्रन्थ में दीख पड़ती है। अत: बेखटके कहा जा सकता है कि यह कवि का अपना निर्माण है। इसके साथ ही प्रस्तुत पद्धति के अन्तिम चित्र 'पादुकायुगलगर्भकर्णिकमष्टदलपद्म' की रचना का श्रेय भी कवि को है। प्रस्तुत पुस्तक का लक्ष्य है राम की पादुका का गुणगान। इसके सभी श्लोकों का वर्ण्य विषय राम की पादुका है। फलत: चित्र में भी इसे स्थान देना कवि के लिये अनिवार्य था। चूँकि यह लक्ष्य केवल प्रस्तुत कवि का था, अत: अन्यत्र यह रचना सम्भव भी नहीं थी। इस चित्र के अन्तर्गत एक 'अष्टदलपद्म' के कोश में 'पादुकायुगल' की स्थापना कर कवि ने उसमें श्लोक का न्यास किया है। उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि चित्रकाव्यरचना के विकास में वेंकटनाथ का योगदान पर्याप्त महत्त्व रखता है तथा इस क्षेत्र में ये एक विशिष्ट स्थान के अधिकारी हैं।[4]

इस क्रम में किसी जैन साधु सागरचन्द्र का 'मन्त्राधिराजकल्प' भी उल्लेखनीय है।[5] प्रो० हीरालाल कपाड़िया के अनुसार सागरचन्द्र नामक तीन जैन साधु क्रमश: ११३५,

---

१. द्रष्टव्य, रुद्रट के काव्यालंकार, काव्यमाला-२, १९२८ ई० में प्रकाशित तृतीय संस्करण तथा पादुकासहस्र, काव्यमाला-९२, १९११ ई० के संस्करण के अन्त में बने इन बन्धों के चित्र

२. उपरिवत्

३. पादुका सहस्र, पद्धति ३० श्लोक १७

४. उपरिवत्, श्लोक ३९, तथा पुस्तक के अन्त में न्यस्त चित्र

५. बम्बई विश्वविद्यालय जरनल, सितम्बर, १९५६, संख्या ३१, पृ० ९०, प्रो० हीरालाल कपाड़िया का लेख

११९० तथा १४०० ई० में हुए हैं। इसका हमें कोई प्रमाण नहीं मिलता कि 'मन्त्राधिराज-कल्प' के रचयिता इनमें कौन हैं।[1] प्रस्तुत रचना के चतुर्थ पाटल में (सर्ग में) हमें पाँच चित्र-बन्धों के श्लोक मिलते हैं। ये बन्ध हैं–'अष्टदलकमल', 'खड्ग', 'चक्र', 'छत्र' तथा 'मुरज'। किन्तु इन बन्धों के जो श्लोक प्राप्त होते हैं वे कहीं तो खण्डित हैं और कहीं परिवर्तित। फलतः जिस रूप में ये श्लोक हैं उनसे चित्र बनना कठिन मालूम पड़ता है। उदाहरण के लिये 'चक्रबन्ध' के श्लोक का प्रथम पाद खण्डित है तथा 'अष्टदलकमल' के श्लोक में वर्णों का क्रम इस प्रकार का है कि सामान्य न्यास के अनुकूल चित्र का निर्माण सम्भव नहीं दीखता। ये सभी चित्रबन्ध प्रचलित बन्ध ही हैं अतः किसी प्रकार की विशेष बात इनमें नहीं दीखती।

देवेन्द्र सूरि के शिष्य धर्मघोष सूरि का काल भी ई० सन की तेरहवीं शताब्दी ही ठहरता है। इस सूरि ने अनेक स्तोत्रों की रचनाएँ की हैं जिनमें 'सर्वजिनस्तवन' नामक स्तोत्र का अन्तिम छन्द 'चक्रबन्ध' की दृष्टि से रचित है।[2] इस स्तोत्र में कुल छन्द आठ हैं, और इस बन्ध के अतिरिक्त अन्य किसी चित्रभेद की रचना इसमें नहीं मिलती। प्रस्तुत चक्र 'अष्टार' है, परिधि की ओर से जिसके तृतीय वलयों में स्थित वर्णों से रचयिता का नामयुक्त वाक्यांश '**धर्मकीर्तिमुनिकृतं**' निःसृत होता है।

'विदग्धमुखमण्डन' के रचयिता धर्मदास भी ई० सन् की तेरहवीं शताब्दी के हैं। यों 'विदग्धमुखमण्डन' की रचना कविशिक्षा की दृष्टि से की गई है[3] किन्तु कविशिक्षा से सम्बद्ध अन्य विषयों को छोड़कर केवल प्रश्नोत्तरादि 'चित्र' के गौण भेदों का ही विवेचन किया गया है। यद्यपि यह रचना लक्षण और उदाहरण की शास्त्रीय शैली में है फिर भी प्रस्तुत अध्याय के अन्तर्गत इसके उल्लेख का कारण यह है कि चित्रप्रकारों के उदाहरण धर्मदास द्वारा ही रचे गये हैं। हिन्दी का तो सम्पूर्ण रीतिसाहित्य ही इसी शैली में रचा गया है, फलतः इन रचयिताओं का महत्त्व एक ओर जहाँ आचार्य की दृष्टि से है, वहाँ दूसरी और कवि के रूप में भी इनका स्थान अक्षुण्ण है।

यों पिछले अध्यायों में लक्षणविवेचन तथा सैद्धान्तिक विवेचन के क्रम में 'विदग्ध-मुखमण्डन' की विस्तृत चर्चा हो चुकी है, किन्तु 'चित्रकाव्य' के गौण स्वरूपों के विकास में इसका अतुलनीय योग है। हमने जिनवल्लभ सूरि रचित 'प्रश्नशतक' के विवेचन के क्रम में देखा है कि जिनवल्लभ सूरि ने प्रश्नों के उत्तरों से विभिन्न चित्रबन्धों का निर्माण किया

१. बम्बई वि० वि० जरनल, सितम्बर १९५६, संख्या ३१, पृ० ९०
२. उपरिवत्, सितम्बर, १९५५, कला संख्या ३०, पृ० १०८
३. द्रष्टव्य, द्वितीय अध्याय, पृ० ३९

है। चित्ररचना की इस शैली को धर्मदास ने अपनी इस रचना के द्वारा अत्यन्त ही विस्तार दिया है। कहा जा चुका है कि प्रस्तुत सम्पूर्ण पुस्तक प्रश्नोत्तर शैली में है और 'प्रश्नोत्तर' की लगभग ४७ जातियों के लक्षण और उदाहरण इसमें प्रस्तुत किये गये हैं। इनकी पूर्ण सूची द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत दी जा चुकी है।[१] इन प्रश्नोत्तर-प्रकारों में प्रश्नों के उत्तर से बनने वाले पाँच 'बन्ध' तथा 'गतिचित्र' के भी उदाहरण हैं, वे हैं—'चक्र', 'पद्म', 'काकपद', 'गोमूत्रिका' तथा 'सर्वतोभद्र'। इनमें से अन्य बन्धों की प्राप्ति तो इसके पूर्व भी हुई है किन्तु 'काकपद' सर्वथा नवीन है। प्रस्तुत ग्रन्थ के अन्तर्गत 'च्युत', 'गूढ़', 'प्रहेलिका' आदि सभी के उदाहरण प्रश्नोत्तर की शैली में हैं।

ईसा की चौदहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में वाग्भट्ट (द्वितीय) ने अपने 'काव्यानुशासन' नामक ग्रन्थ की रचना की। प्रस्तुत ग्रन्थ का उद्देश्य उदीयमान तथा कवि बनने की इच्छा रखनेवाले व्यक्तियों को काव्यरचना की शिक्षा देना है।[२] पुस्तक की रचना लक्षण-उदाहरण की शास्त्रीय शैली में हुई है और विवेचन के क्रम में 'चित्र' के प्रायः सभी भेदों के लक्षण दिये गये हैं। बन्धों के अन्तर्गत **'खड्ग'**, 'धनुः', **'बाण'**, **'मुशल'**, **'शूल'**, **'शक्ति'**, **'हल'**, **'छत्र'**, **'पद्म'**, **'मुरज'**, **'चक्र' तथा 'स्वस्तिक'** के श्लोक दिये गये हैं और इनके अतिरिक्त **'अष्टारचक्र'**, **'द्वादशारचक्र'**, **'सप्तचक्रिका'**, **'गोमूत्रिका'**, **'नन्द्यावर्त'**, **'भृंगार'**, **'चामर'**, **तथा 'घण्टा'**, इतने बन्धों का नामोल्लेख किया गया है।[3] वाग्भट्ट ने अपने 'काव्यानुशासन' की टीका 'अलंकार तिलक' के नाम से स्वयं लिखी है और चित्रों के उदाहरण इसी टीका के अन्तर्गत दिये हैं। उदाहरण स्वतः वाग्भट्ट के द्वारा ही रचे गये हैं। 'काव्यानुशासन' में उदाहृत 'चक्रबन्ध' भी 'कविनामांक षडर' है और केन्द्र की ओर से चतुर्थवलय में न्यस्त वर्णों से 'कविवाग्भटस्य' पद की प्राप्ति होती है। यहाँ हम देखते हैं कि वाग्भट्ट ने आलंकारिक होते हुए भी अपने को कवि कहा है।

बन्धों के अतिरिक्त 'चित्र' के अन्य भेदों के भेदोपभेद के उदाहरण भी वाग्भट्ट ने स्वनिर्मित दिये हैं, इनमें 'स्वरचित्र' के अन्तर्गत केवल एक 'अमात्रिक' श्लोक है, 'वर्ण-चित्र' के अन्तर्गत केवल 'एकाक्षर' तथा 'द्व्यक्षर' के एक-एक श्लोक हैं, किन्तु 'स्थानचित्र' के अन्तर्गत 'अकण्ठ्य', 'अतालव्य', 'अमूर्द्धन्य', 'अदन्त्य' तथा 'निरोष्ठ्य' इन पाँच भेदों के एक-एक श्लोक हैं। 'च्युत' और 'गुप्तचित्रों' के भी कतिपय श्लोक उदाहरणरूप में वाग्भट्ट ने दिये हैं। बन्धों की उपर्युक्त सूची से यह स्पष्ट है कि 'स्वस्तिकबन्ध' का श्लोक सर्वप्रथम हमें यहीं मिलता है। किन्तु साथ ही अन्य आठ बन्धों के उल्लेखमात्र से इसमें भी सन्देह नहीं रहता कि उस समय अन्य अनेक बन्धों का प्रचलन होगा जो सभी हमारे सम्मुख नहीं हैं। उदाहरणार्थ 'सप्तचक्रिका' का न तो स्वरूप हमारे सम्मुख स्पष्ट होता है और न उसका कोई श्लोक ही हमें उपलब्ध है। कवि द्वारा उल्लिखित 'नन्द्यावर्त, 'भृंगार' जैसे

---

१. द्रष्टव्य, द्वितीय अध्याय पृ० ३९, पा० टि० ४

२. द्रष्टव्य द्वितीय अध्याय में वाग्भट्ट के काव्यानुशासन का विवेचन, पृ० ३६

३. द्रष्टव्य, द्वितीय अध्याय, पृ० ३७

अन्य चित्र हमें बाद में अजितसेन रचित 'अलंकार चिन्तामणि' में प्राप्त हो जाते हैं।[१] 'चित्रकाव्य' के स्वरूपविकास में वाग्भट्ट का महत्त्व इन्हीं दृष्टियों से आँका जा सकता है, अन्यथा लक्षण-विवेचन के अन्तर्गत 'काव्यानुशासन' पर विचार किया जा चुका है।[२]

'काव्यानुशासन' के साथ प्रस्तुत शताब्दी की रचनाओं में 'चित्रकाव्य' की दृष्टि से देवेश्वर रचित 'कविकल्पलता' का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। यों प्रस्तुत पुस्तक की रचना का उद्देश्य भी कविशिक्षा था[3] और अपने असल अर्थ में यही पुस्तक कवि-शिक्षा के उपयुक्त भी है। सम्पूर्ण पुस्तक चार अध्यायों में बँटी है, जिन्हें स्तबक कहा गया है। ये हैं (क) शब्दस्तबक, (ख) श्लेष स्तबक, (ग) कथा स्तबक तथा (घ) अर्थस्तबक। इन स्तबकों के भी कई-कई उपविभाग हैं और प्रत्येक उपविभाग में कोई न कोई कवि-शिक्षा का विषय है। उदाहरणार्थ शब्दस्तबक के प्रथम उपविभाग का नाम है 'छन्दोभ्यास' और उसके अन्तर्गत छन्द की रचना के लिये आवश्यक निर्देश दिये गये हैं।

प्रस्तुत पुस्तक के चतुर्थ यानी अर्थस्तबक के तीसरे उपविभाग का नाम 'चित्र' है और इसी के अन्तर्गत चित्ररचनाओं के उदाहरण दिये गये हैं। यह पुस्तक शास्त्र से अधिक काव्य इसलिये है कि यहाँ कवि ने अपने वर्णन में लक्षण-उदाहरण की शैली प्रायः नहीं अपनाई है। 'चित्र' के अन्तर्गत सर्वप्रथम ऐसे शब्दों की विस्तृत सूची है जिनके 'गत' तथा 'आगत' दोनों रूप समान हैं, अथवा वे इन गतियों से पढ़ने पर एकार्थक ही रहते हैं। पुनः एक दूसरी सूची ऐसे शब्दों की भी है जो 'गत' तथा 'आगत' पाठगतियों के अनुसार रूप और अर्थ में परिवर्तित हो जाते हैं। इन सूचियों को कण्ठस्थ कर लेने पर चित्ररचनाओं के निर्माण में कवियों को यथेष्ट सुविधा मिल सकती है। चित्ररचनाएँ शब्दों और वर्णों की क्रीड़ा ही तो हैं और उनका प्रधान लक्ष्य भी कवियों का मनोरंजन तथा अन्यों के लिये कौतूहलोत्पादन ही है। अतः इन रचनाओं की भी कतिपय निश्चित पद्धतियाँ थीं और उनका अनुसरण कर ही सामान्य कवि रचनाएँ किया करते थे।

उपर्युक्त सूचियों के उपरान्त प्रस्तुत पुस्तक में 'क्रियादिगुप्त', 'अक्षरादि च्युतक' तथा 'प्रश्नोत्तर' के श्लोक मिलते हैं। इसके आगे 'पट्त्रिंश', 'अष्टदलपद्म' तथा 'षोडशदलपद्म' के श्लोक हैं।[४] इन बन्धों के चित्र इस पुस्तक में प्राप्त नहीं होते। तदुपरान्त 'पादगतागत', 'अर्द्धगतागत', 'श्लोकगतागत', 'गोमूत्रिका', 'भिन्न छन्द गोमूत्रिका', 'द्व्यक्षर', 'एकाक्षर पाद', 'असंयुक्त' 'अपुनरुक्ताक्षर', 'सर्वतोभद्र' तथा 'स्वजनककविनामांक-चक्र' की रचना है। इन रचनाओं में 'गोमूत्रिका' तथा 'प्रतिलोमानुलोम' अथवा 'गतागत' के एक से अधिक श्लोक हैं। 'द्व्यक्षर' के पाँच श्लोकों की रचना इस क्रम में हुई है।

---

१. द्रष्टव्य, द्वितीय अध्याय, पृ० ४४

२. द्रष्टव्य, द्वितीय अध्याय में काव्यानुशासन (वाग्भट्ट) का विवेचन, पृ० ३६-३८

३. द्रष्टव्य, द्वितीय अध्याय, पृ० ३८-३९

४. कविकल्पलता, स्तबक ४, अध्याय ३, श्लोक क्रमशः २६, २८ तथा २९

चित्ररचनाओं के क्षेत्र में देवेश्वर का सबसे बड़ा योगदान 'पट्टिश बन्ध' की रचना है। अन्यत्र कहीं भी इस बन्ध का उल्लेख नहीं मिलता। किन्तु कठिनाई यह है कि कवि ने न तो इसका कोई चित्र दिया है और न न्यासविधि की ही चर्चा की है। 'कविकल्पलता' के टीकाकार पण्डित श्री रामगोपाल कविरत्न ने अवश्य इस श्लोक की टीका में न्यासविधि के लिये कतिपय संकेत दिये हैं[1], किन्तु इनके अनुकूल जो चित्र बनता है तथा श्लोक का उसमें जैसा न्यास होता है वह बहुत विश्वसनीय नहीं दीख पड़ता। पुस्तक में प्राप्त अन्य सभी बन्ध सामान्य तथा प्रचलित हैं। जिस 'नामांक चक्रबन्ध' की रचना देवेश्वर ने इस पुस्तक में की है, उसमें कवि के अपने नाम के साथ उसके पिता वाग्भट का नाम भी निःसृत होता है। चक्र 'षडर' है और उसकी रचनापद्धति बिलकुल सामान्य है। केन्द्र की ओर से चतुर्थ तथा सप्तम वलयों में न्यस्त वर्णों को साथ लेने से 'वाभटनंदनः देवेश्वर कवि' पद की प्राप्ति होती है।[2] इस प्रकार देवेश्वर ने अपनी कृति के बदले अपने साथ अपने पिता के नाम के निःसरण का आयोजन इस चक्र के अन्तर्गत किया है। देवेश्वर के पूर्व ऐसा कोई भी 'षडरचक्र' प्राप्त नहीं होता जिसमें कवि ने अपने पिता की नामप्राप्ति की योजना की हो। प्रचलित पद्धति के अनुसार ऐसे चित्र से कवि तथा उसकी कृति का नाम ही निःसृत होता रहा है। 'अष्टार' अथवा अधिक बड़े चक्र में अवश्य सम्पूर्ण श्लोक के निःसरण की योजना रही है और श्लोक के अन्तर्गत अधिक परिचय के हेतु अवकाश होता ही है। रुद्रट आदि का विस्तृत परिचय हमें इस रूप में प्राप्त हुआ है।

'कविकल्पलता' को कितनी प्रसिद्धि अपने समय में मिली होगी इसका अनुमान हम इसीसे लगा सकते हैं कि कवि के समकालीन 'शार्ङ्गधर पद्धति' के संकलियता शार्ङ्गधर ने इस पद्धति में देवेश्वर का भी श्लोक उद्धृत किया है।[3] 'शार्ङ्गधर पद्धति' के अधिकांश श्लोकों में उसके रचयिता का नाम नहीं है, किन्तु जिन थोड़े श्लोकों में नाम दिया गया है, उनमें देवेश्वर भी हैं। यह श्लोक 'कविकल्पलता' में भी प्राप्त होता है।[4]

'शार्ङ्गधरपद्धति' के ३४ वें परिच्छेद में 'चित्र' शीर्षक के अन्तर्गत कुछ श्लोक उद्धृत किये गये हैं। किन्तु इस शीर्षक के अन्तर्गत जितनी रचनाएँ हैं उनके अनुसार शार्ङ्गधर ने 'चित्र' की सीमा बड़ी संकुचित कर दी है। 'बन्धचित्र' का एक भी श्लोक प्रस्तुत 'पद्धति'

---

१. पट्टिशस्तु खड्गाकृतिबिशेषः तन्निर्माणप्रकारो यथा—आदौ स्तम्भमेकं निर्म्माय तदुपरि कोष्ठमेकं लिखेत् ॥ ततः स्तम्भस्योभयपार्श्वतः कोष्ठयुगचतुष्टयं लिखित्वा कोष्ठमध्ये मकार चतुष्टयं ऊर्द्ध्वाधःक्रमेण लिखेत्। ततस्तम्भस्योभय पार्श्ववर्त्तिषु कोष्ठाष्टकेषु वर्णद्वयं क्रमेण लिखेत्।

बन्ध का श्लोक निम्न है—

''महेश ! ममता-राम मवमाममरोतम !

महत्तम ! महोधाम ! मतिस्तोम ! मनोरम ॥"२९॥ क०क० ४/३

२. चित्र प्रकरण, श्लोक संख्या ५८

३. शार्ङ्गधर पद्धति, श्लोक संख्या ५४५, पृ० ८५

४. चित्रप्रकरण, श्लोक ५६

में संकलित नहीं है, 'गुप्तचित्रों' के विभिन्न भेदों के श्लोक दिये तो गये हैं पर 'क्रियागुप्त', 'कर्तृगुप्त' आदि शीर्षकों के अन्तर्गत। 'चित्र' के अन्तर्गत उनका आकलन नहीं हुआ है, यद्यपि ये श्लोक पुस्तक के चौतीसवें परिच्छेद के अन्तर्गत ही हैं। इसी प्रकार 'प्रश्नोत्तर' के विभिन्न भेदों के श्लोक 'प्रश्नोत्तराख्यानम्' के नाम से ३५ वें परिच्छेद के अन्तर्गत संगृहीत हैं। 'चित्र' के अन्तर्गत केवल 'द्विश्लोक' अथवा 'द्विसन्धान', 'द्व्यक्षर', 'सानुप्रास', 'कठिनानुप्रास' सहित 'चतुर्थ पादान्तयमक' तथा 'चतुर्मातृक' अथवा 'चतुःस्वरचित्र' के श्लोक हैं।[1] पूर्व विवेचन के आधार पर स्पष्ट है कि इनमें केवल 'द्व्यक्षर' तथा 'चतुःस्वर' ही क्रमशः 'वर्णचित्र' तथा 'स्वरचित्र' की रचनाएँ हैं। अन्य रचनाएँ 'चित्र' की सीमा में नहीं आतीं। 'द्विश्लोक' को यदि हम इसमें गिन भी लें पर 'अनुप्रास' और 'यमक' तो कदापि 'चित्र' के अन्तर्गत परिगणित नहीं हो पाते। यह बात और है कि अधिकांश काव्यकृतियों में 'चित्र विभाग' के अन्तर्गत 'यमक' के श्लोक भी मिलते हैं।

प्रस्तुत स्थल पर उद्धृत 'द्विश्लोक' की विशेषता यह है कि अपने मूल रूप में यह 'वसन्ततिलका वृत्त' है और इसमें दुर्गा की स्तुति की गई है, किन्तु इसके प्रत्येक चरण के छठे, सातवें तथा आठवें वर्णों को यदि छोड़ दिया जाय तो यह वृत्त 'इन्द्रवज्रा' हो जाता है तथा इसमें शिव की स्तुति होती है।[2] इस श्लोक का रचयिता स्वयं संकलनकर्त्ता ही है। इस प्रकार की रचना होने के कारण 'चित्र' की सीमा में इसको रखा जा सकता है। इनके अतिरिक्त 'भाषाचित्र' के नाम से भी शार्ङ्गधर ने दो छन्द दिये हैं जिनमें एक तो संस्कृत तथा फारसी के शब्दों का मिश्रण है जबकि दूसरे में संस्कृत तथा खड़ी बोली के शब्दों का मिश्रण दीख पड़ता है। प्रस्तुत छन्द के रचयिता का नाम श्रीकण्ठ पण्डित कहा गया है। छन्द निम्न है—

"नूनं बादल छाइ खेह पसरी निःश्राण शब्दः खरः
शत्रुपाडि लुटालि तोडि हनिसौं एवं भणन्त्युद्भटाः।
झूठे गर्वभरामघालि सहसा रे कन्त मेरे कहे
कण्ठे पागनिवेश जाह शरणं श्री मल्लदेवं प्रभुम्॥"[3]

---

१. शा० प०, परि ३४, श्लोक ९ से १५ तक, अथवा सम्पूर्ण पुस्तक की श्लोक संख्या ५४२ से ५४८ तक

२. श्लोक निम्न है, यह वसन्ततिलका छन्द में है—

"विश्वस्य हेतुरभरैर्बहु गीयसेत्वं
विश्वम्भरेशवशिवे त्रिगुणात्ममूर्ते।
चिद्वयोमतोपि परमां प्रथमं वदन्ति
त्वां योगिनस्तुतिपराः प्रणिधानदृष्ट्या॥"

प्रस्तुत श्लोक के प्रत्येक पाद के षष्ठ, सप्तम अक्षर को हटा देने से निम्न इन्द्रवज्रा वृत्त बनता है—

"विश्वस्य हेतुर्बहु गीयसे त्वं
विश्वम्भरेश त्रिगुणात्ममूर्ते।
चिद्व्योमतोपि प्रथमं वदन्ति
त्वां योगिनस्तु प्रणिधान दृष्ट्या॥"

—शा० प०, श्लोक ५४२, परि ३४, श्लोक ९

३. शा० प०, श्लोक ५५०, अथवा परि ३४, श्लोक १७

देवेश्वर का जो छन्द प्रस्तुत 'पद्धति' में प्राप्त होता है वह सानुप्रास के उदाहरण के रूप में है। इस क्रम में ध्यातव्य है कि 'कविकल्पलता' में भी यह छन्द 'चित्र' के अन्तर्गत ही परिणणित है यद्यपि वहाँ प्रस्तुत छन्द के शीर्षक के रूप में कुछ भी लिखा नहीं गया है। इस प्रकार 'शार्ङ्गधर पद्धति' से 'चित्र' के स्वरूप के स्पष्टीकरण में हमें बहुत अधिक सहायता नहीं मिलती। यद्यपि यहीं हमें 'द्व्यक्षर' का वह श्लोक भी मिलता है जो कालिदास के नाम पर दिया गया है।

विद्यानाथ रचित 'प्रतापरुद्रीयम्' अथवा 'प्रतापरुद्रयशोभूषण' यद्यपि अलंकारशास्त्र का ग्रन्थ है, किन्तु इसमें जितने भी उदाहरण हैं उनकी रचना लेखक ने स्वयं की है। इसके साथ ही उदाहरण के सभी श्लोक सम्राट् प्रतापरुद्र के जीवन को आधार बनाकर रचे गये हैं। इसी के अनुकरण पर हिन्दी में भी भूषण ने 'शिवराज भूषण' की रचना की है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में 'चित्रालंकार' के उदाहरणस्वरूप केवल तीन बन्धों के छन्द दिये गये हैं। ये तीनों बन्ध हैं—(क) 'अष्टदल-कमल बन्ध,' (ख) 'कविनामांक षडरचक्रबन्ध' तथा (ग) 'नागबन्ध'।[1] इनमें 'पद्मबन्ध' तथा 'चक्रबन्ध' की रचना बिलकुल सामान्य पद्धति पर हुई है, किन्तु 'नागबन्ध' एक बिलकुल नवीन 'बन्ध' दीख पड़ता है। इसके पूर्व न तो किसी काव्यकृति में और न किसी अलंकारशास्त्र के ग्रन्थ में ही इस बन्ध का उल्लेख हो पाया था। इस प्रकार इस रूप में 'चित्रकाव्य' के विकास में विद्यानाथ की एक निश्चित और महत्त्वपूर्ण देन है। 'नागबन्ध' की यह रचना सामान्य नहीं वरन् उत्कृष्ट कोटि के 'बन्धचित्र' के रूप में सिद्ध होती है। तृतीय अध्याय में इसकी न्यासविधि का विवेचन किया जा चुका है।[2] 'चक्रबन्ध' में केन्द्र की ओर से चतुर्थ तथा सप्तम वलयों में स्थित वर्णों के पाठ से 'वैजनाथकृतिवीररुद्रयश' वाक्यांश में कवि तथा काव्य का नाम निःसृत होता है। इसके अतिरिक्त प्रस्तुत ग्रन्थ में चित्र के किसी अन्य प्रकार का न कोई विवेचन है और न कोई उदाहरण ही।

ईसा की चौदहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ही जैन कवि जिनप्रभसूरि ने अपने ग्रन्थ 'वीरस्तवन' की रचना की जिसका दूसरा नाम 'चित्रस्तव' भी है।[3] इस ग्रन्थ में नाम के अनुकूल ही हमें अनेक प्रकार की चित्ररचनाएँ प्राप्त होती हैं। सामान्य रचनाओं के अतिरिक्त प्रस्तुत रचना का विशेष महत्त्व बन्धचित्रों की दृष्टि से है। कवि ने इस छोटे से स्तुतिग्रन्थ में निम्न १५ बन्धों के श्लोक दिये हैं—

१. अष्टदल कमल, २. षोडशदल कमल, ३. खड्गबन्ध, ४. षडर चक्र, ५. चामर ६. त्रिशूल, ७. धनुष, ८. पद, ९. बीजपूर, १०. मुरज, ११. मुसल, १२. शक्ति १३. शर, १४. हल तथा १५. हार।

---

१. प्रतापरुद्रीयम् अथवा प्रतापरुद्रयशोभूषण, प्रकरण ७, श्लोक ६, ७ तथा ८

२. द्रष्टव्य, तृतीय अध्याय, चित्र संख्या ६७ तथा सम्बद्ध विवेचन

३. बम्बई विश्वविद्यालय जरनल, सितम्बर १९५५, कला संख्या ३०, पृ० १०८, प्रो० हीरालाल कपाड़िया का निबन्ध

इन बन्धों में 'बीजपूर' का उल्लेख हम सर्वप्रथम यहीं पाते हैं, किन्तु अन्य सारे बन्ध पूर्व प्रचलित हैं। 'पद' से कवि का तात्पर्य रुद्रट द्वारा उदाहृत 'रथपद' से है क्योंकि दोनों के श्लोकों की रचनाविधि में किसी प्रकार का वैषम्य दृष्टिगोचर नहीं होता। दोनों ही श्लोकों के द्वितीय तथा चतुर्थ पादों के वर्णविन्यास गतागत पद्धति से किये गये हैं जबकि विषम पादों में किसी विशेष प्रकार की वर्णयोजना नहीं है।[१] उपर्युक्त सूची के अन्य सारे बन्धों का उल्लेख पहले भी हो चुका है, इनमें किसी प्रकार की नवीनता नहीं दीख पड़ती। सूची को देखने से ही स्पष्ट हो जाता है कि कवि ने रुद्रट का पर्याप्त अनुकरण किया है। बन्धेतर रचनाओं में भी उन भेदों के श्लोक हमें प्रस्तुत रचना में मिलते हैं जिनका विवेचन रुद्रट ने किया है।

'बीजपूर' का चित्र अथवा उसकी न्यासविधि तो हमें प्रस्तुत पुस्तक में नहीं मिलती किन्तु आगे चलकर दौलतविजयगणि लिखित 'चित्रकाव्य' के एक अज्ञातनाम खण्डित हस्तलेख में इसका 'चित्र' तथा न्यास प्राप्त होता है।[२] 'चक्र' की रचनाविधि यद्यपि सामान्य है किन्तु प्रचलित पद्धति के अनुसार कवि तथा उसकी रचना के नाम उससे निःसृत होते हैं। केन्द्र से परिधि की ओर के तृतीय तथा सप्तम वलयों में न्यस्त वर्णों के पाठ से हमें 'जिनप्रभसूरिकृत चित्रस्तवः' पद की प्राप्ति होती है। अन्य सारे बन्धों के चित्र भी प्रचलित पद्धति के आधार पर बनते हैं।

इसी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कुलमण्डन सूरि नामक जैन कवि की दो रचनाएँ प्राप्त होती हैं। ये रचनाएँ हैं 'वीरजिनस्तवन' तथा 'पंचजिनहारबन्धस्तव'।[3] ये यद्यपि बहुत छोटी हैं, प्रथम में केवल २१ छन्द हैं जबकि द्वितीय में कुल २३ श्लोकों की रचना है, किन्तु 'बन्धचित्र' की दृष्टि से 'चित्रकाव्य' के इतिहास में इनका स्थान बड़े महत्त्व का है। 'वीरजिनस्तवन' के २१ छन्दों में से १७ छन्दों में १७ बन्धों की योजना है पर इसके साथ ही छन्द संख्या २ से १९ तक में अठारह आरों से युक्त एक बृहत् 'चक्रबन्ध' का भी निर्माण होता है।[४] प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रथम छन्द 'षडरचक्र' का उदाहरण है, जिससे कवि के गुरु के नाम चन्द्रशेखर के साथ जयानन्दसूरि तथा देवसुन्दर सूरि दो और नाम निःसृत होते हैं।[५] अपनी दूसरी रचना 'पचजिनहारस्तव' के २३वें श्लोक में कवि ने जयानन्द तथा

---

१. तुलना के लिये दोनों श्लोक द्रष्टव्य हैं—

"तिर्यग् नर सु राकीर्णा भासतेन नते सभा।
त्वन्भाहात्म्यात् कृताश्चर्य ! या श्रिता तततािश्रया ॥९॥"—चित्रस्तव

"इतीक्षिता सुरैश्चक्रे या यमाममभायया।
महिषंपातु वो गौरी सायतासि सितायसा।" काव्यालंकार ५/१४

२. द्रष्टव्य, प्रस्तुत अध्याय के अन्तर्गत प्रस्तुत पुस्तक का विवेचन

३. बम्बई विश्वविद्यालय जरनल, सितम्बर १९५५, कला संख्या ३०, पृ० १११ से ११४ तक, प्रो० कपाड़िया का निबन्ध

४. उपरिवत् पृ० ११३

५. उपरिवत्, पृ० ११२, प्रस्तुत निबन्ध की श्लोक संख्या ९९, प्रस्तुत चक्र के तृतीय (परिधि की ओर से) षष्ठ तथा अष्टम वलयों से क्रमशः 'चन्द्रशेखर' 'जयानन्द सूरि' तथा 'देवसुन्दर सूरि' नाम निःसृत होते हैं।

श्रीदेवसुन्दर सूरि को गणधर कहा है तथा बड़े सम्मान से उन्हें स्मरण किया है। जो १७ बन्ध उपर्युक्त श्लोकों से बनते हैं, उनके नाम निम्न हैं—

चक्र (१), मुसल (२), शूल (३), शंख (४) क्षीकरी (५), चामर (६), हल (७), भल्ल (८), धनुष (९), खड्ग (९-१०), शक्ति (११), छत्र (१२), पूर्णकलश (१४), चतुर्दल कमल (१६), शर (१७), त्रिशूल (१८), तथा वज्र (१९)।[1]

इनके अतिरिक्त छन्द १३ में 'रथपद' तथा १५ में 'अर्धभ्रम' की योजना है। जैसाकि कहा जा चुका है इन श्लोकों में प्रथम श्लोक को छोड़कर अन्य १८ श्लोकों से अठारह आरों से युक्त बृहत् चक्र का निर्माण होता है जिसके गर्भ से श्लोक २० निकलता है। इस श्लोक में हमें कवि तथा उसके गुरु का परिचय प्राप्त होता है।

दुहरी चित्ररचना की प्रस्तुत शैली की प्रेरणा निश्चय ही कवि ने रुद्रट से ली है। रुद्रट ने भी सात बन्धों के आठ श्लोकों से एक अष्टारचक्र का निर्माण किया है और उसके गर्भ से निःसृत होनेवाले श्लोक में अपना परिचय दिया है।[2] प्रस्तुत 'अष्टादशारचक्र' की न्यासविधि भी पूर्णतः रुद्रट की है। अर्थात् उपर्युक्त १८ श्लोकों के प्रथमाक्षर 'त' का न्यास चक्र के केन्द्र में करके प्रत्येक श्लोक के पूर्वार्द्ध को चक्र के आरों में केन्द्र से परिधि की ओर लिखते हैं। इस प्रकार चक्र के सभी आरों का निर्माण होता है। श्लोकों के उत्तरार्द्ध को परिधि में इस प्रकार लिखते हैं कि प्रथम श्लोक का उत्तरार्द्ध प्रथम तथा द्वितीय आरे के बीच पड़नेवाले चाप अथवा परिधिखण्ड में न्यस्त हों। चूंकि प्रथम श्लोक के उत्तरार्द्ध का आदि तथा अन्तिम वर्ण क्रमशः प्रथम तथा द्वितीय श्लोक के पूर्वार्द्ध के अन्तिम वर्ण हैं अतः परिधिखण्ड में न्यस्त इस श्लोकांश का आदि तथा अन्त प्रथम तथा द्वितीय आरों में होगा। यही क्रम सभी आरों के मध्य पड़नेवाले परिधिखण्डों के न्यास का रहेगा। परिधि की ओर से प्रस्तुत चक्र के १३वें, ९वें, पांचवें तथा प्रथम वलयस्थित वर्णों को मिलाने से निम्न श्लोक को प्राप्ति होती है, जिसमें कुलमण्डन सूरि तथा उसके गुरु चन्द्रशेखर का परिचय छिपा है—

यस्ते ऽष्टादशचित्रचक्रविमलंवीर ! स्तवं सश्रियं
भक्त्यैवं कुलमण्डनो ऽतत महाज्ञानातनु श्री शुभ।
मुक्त श्रीयुत चन्द्रशेखरगुरुप्राज्यप्रसादादमुं
तं तातात (न) वरः स शान्ततम ! शंभाषाततःसन्ततम्॥[3]

---

१. कोष्ठक में लिखित संख्या पुस्तक की श्लोक संख्या है।

२. "शतानन्द पराख्येन भट्टवामुकसूनुना।
साधितं रुद्रटेनेदं सामाजा धीमतां हितम्॥"
साथ ही द्रष्टव्य तृतीय अध्याय, पृ० १६०, तथा चित्र संख्या २९

३. बम्बई वि० वि० जरनल, सितम्बर १९५५, कला संख्या ३०, पृ० ११३

कवि द्वारा निर्मित अन्य चित्रबन्धों को देखने से भी यही लगता है कि कवि ने रुद्रट द्वारा निर्मित सभी बन्धों की रचना की है। इनके अतिरिक्त कवि का महत्त्व नवीन बन्धों की रचना की दृष्टि से भी कम नहीं है। इन बन्धों में 'भल्ल', 'शंख', 'श्रीकरी', 'पूर्णकलश' तथा 'वज्र' बिलकुल नवीन हैं, जिनका कोई भी उल्लेख प्रस्तुत पुस्तक के पूर्व नहीं मिलता। इस प्रकार चित्ररचना क्षेत्र में कवि का विशिष्ट स्थान है जो बहुत कम कवियों को प्राप्त है।

दूसरी रचना 'पंचजिनहारस्तव' भी इस क्षेत्र में कवि की एक अनुपम देन है। प्रस्तुत ग्रन्थ के कुल २३ स्तोत्रों में चार भगवान् ऋषभ, चार भगवान् शान्ति, पाँच भगवान् नेमि, चार भगवान् पार्श्व तथा चार भगवान् महावीर के नाम में हैं। इनके अतिरिक्त दो श्लोक फुटकल हैं। विभिन्न भगवानों से सम्बद्ध उपर्युक्त २१ स्तोत्रश्लोक परस्पर एक ही चित्र में आबद्ध हैं। इन सभी श्लोकों से ४२ मणियों से युक्त एक 'हारबन्ध' का निर्माण होता है।[1] 'चित्रकाव्य' के सम्पूर्ण इतिहास में ऐसी रचना बहुत ही अल्प दीख पड़ती है। यों 'हारबन्ध' बाद के चित्ररचयिताओं के लिये एक प्रिय बन्ध रहा है और इसकी एकाधिक न्यासविधियाँ हमें प्राप्त होती हैं, किन्तु प्रस्तुत बन्ध अतुलनीय है। प्रस्तुत श्लोकों के प्रत्येक अर्द्ध में २४ वर्ण हैं जिनमें पहला तथा सतरहवाँ और नौवाँ तथा चौबीसवाँ वर्ण समान हैं। हार की मणियों में इनके न्यास का ढंग यह है कि श्लोकार्द्ध का प्रथम वर्ण मणि के शीर्ष पर न्यस्त होगा तथा द्वितीय से लेकर अष्टम वर्ण तक दक्षिणावर्तक्रम से उसके दक्षिण भाग में किनारे-किनारे। नौवें वर्ण की स्थिति मणि के निचले भाग के बीच में होगी तथा दसवें से सोलहवें वर्ण तक उसके वाम भाग में किनारे-किनारे नीचे से ऊपर की दिशा में न्यस्त होंगे। चूँकि सतरहवाँ वर्ण पहला ही है, अतः इसका न्यास अलग से न होकर प्रथम वर्ण का ही पाठ होगा। इसके आगे न्यास मणि के अन्तर्गत ऊपर से नीचे की ओर बढ़ेगा और मणि के बीच में अठारहवें से तेइसवें वर्ण तक का न्यास होगा। चौबीसवाँ वर्ण चूँकि नौवाँ ही है अतः मणि के निचले भाग के मध्य में स्थित इस वर्ण के पाठ के साथ श्लोकार्द्ध की समाप्ति होगी। इसी क्रम से ४२ श्लोकार्द्धों का न्यास हार की ४२ मणियों में होगा और सम्पूर्ण चित्र हमारे सम्मुख प्रस्तुत हो जायगा।[2]

इन्हीं कवियों के आस-पास आगमिकागच्छ के जयतिलक सूरि ने 'चतुर्हारावली चित्रस्तव' नामक अपने ग्रन्थ की रचना की है।[3] प्रस्तुत ग्रन्थ चार अध्यायों में बँटा है।

---

१. बं॰ वि॰ वि॰ ज॰, कला संख्या ३०, सितम्बर १९५५, पृ॰ ११६ पर कपाड़िया जी ने लिखा है कि इन २३ छन्दों से एक हार का निर्माण होता है, किन्तु उन्होंने इस हार की न्यासविधि की ओर कोई संकेत नहीं किया है। वस्तुस्थिति यह है कि अन्तिम दो फुटकल श्लोकों की रचना अन्य श्लोक से भिन्न प्रकार की है। अन्य सभी श्लोकों का वर्णक्रम एक ही है। इस प्रकार इन २१ श्लोकों से ४२ मणियों से युक्त हार का निर्माण होता है।

२. छन्दों के वर्णक्रम को ध्यान में रखकर प्रस्तुत न्यास की कल्पना प्रस्तुत लेखक की है, उसे कहीं अन्यत्र से कोई संकेत नहीं मिला है।

३. बम्बई विश्वविद्यालय जरनल, कलासंख्या ३०, सितम्बर १९५५, पृ॰ १११, प्रो॰ कपाड़िया का निबन्ध।

इनके अन्तर्गत श्लोकों की इस प्रकार रचना की गई है कि 'आद्यन्त अन्तर्लापिका' की विधि से स्तुति से सम्बद्ध तीर्थंकरों के नाम निकलते हैं। साथ ही इन स्तुतियों से चारों अध्यायों में चार 'हारबन्ध' का भी निर्माण होता है। इनके अतिरिक्त चारों ही अध्यायों के तेरहवें श्लोकों से क्रमशः 'चौबीसदल कमल', 'स्वस्तिक', 'वज्र' तथा 'बन्धूकस्वस्तिक' के चित्र निर्मित होते हैं। इनमें 'चौबीसदल कमल' के चित्र में केवल दलों की संख्या ही चौबीस है, इसका न्यास 'षोडशदल कमल' का है। फलतः इसमें कोई विशेषता नहीं दीख पड़ती। अन्य तीनों बन्ध नवीन हैं और इनका 'चित्रकाव्य' के प्रसार की दृष्टि से पर्याप्त महत्त्व है। जय-तिलक सूरि की प्रस्तुत रचना में अन्य किसी प्रकार के बन्ध अथवा बन्धेतर प्रकार के श्लोक नहीं मिलते। यद्यपि इन्होंने केवल चार ही बन्धों की रचना की है, फिर भी नवीन बन्धों तथा 'आद्यन्तान्तर्लापिका' के प्रथम रचयिता के रूप में इस क्षेत्र में इनके महत्त्व से इनकार नहीं किया जा सकता। ईसा की पन्द्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में मुनिसुन्दर सूरि नामक एक जैन कवि की कई रचनाओं का उल्लेख मिलता है।[1] उनके एक शिष्य हर्ष भूषण गणि ने अपनी रचना 'अंचलमतदलन प्रकरण' में मुनिसुन्दर सूरि रचित 'त्रिदशतरंगिणी' की चर्चा करते हुए लिखा है कि प्रस्तुत ग्रन्थ में कवि ने अनेक 'चित्रकाव्य' की रचनाएँ की हैं, उदाहरणार्थ 'प्रासाद', 'पद्म', 'चक्र' आदि। इसी प्रकार धर्मसागर गणि ने मुनिसुन्दर सूरि के एक दूसरे ग्रन्थ 'गुरुपरिवाडी' (तपागच्छ-पट्टावली) की टीका करते हुए लिखा है कि इन्होंने ३०० नवीन चित्रबन्धों की रचना की है जिनमें 'अशोक', 'चक्र', 'प्रासाद', 'भेरी', 'महाप्रतिहार्य', 'मुरज', 'समवसरण', 'सरोवर' तथा 'सिंहासन' इन नौ बन्धों का उल्लेख उसने विशेष रूप से किया है।[2] निश्चित है कि इन बन्धों में भी 'अशोक', 'प्रासाद', 'भेरी', 'महाप्रतिहार्य', 'समवसरण', 'सरोवर' तथा सिंहासन' नवीन नाम हैं, जिनकी चर्चा हमें अबतक बन्धों के रूप में नहीं मिली थी।

इस प्रकार हम पाते हैं कि ईसा की चौदहवीं-पन्द्रहवीं शती तक आते-आते 'चित्रकाव्य' का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत हो चला था और अनेक नवीन बन्धों की कल्पना तथा रचना की जा रही थी। इन बन्धों में आज हमें बहुत कम उपलब्ध हैं। अनेक बन्धों के नाम के अर्थ से भी आज हम अवगत नहीं हैं, उदाहरणार्थ 'समवसरण' का रूप आज हमारे सम्मुख स्पष्ट नहीं होता। उपर्युक्त बन्धों के अतिरिक्त 'द्व्यक्षर' जैसे 'वर्णचित्र' 'क्रियाकारकादिगुप्त-चित्र', 'पंचवर्गपरिहार' जैसे 'स्थानचित्र', 'प्रतिलोमानुलोम', अर्धभ्रम तथा 'सर्वतोभद्र' जैसे 'गतिचित्रों' की रचना का उल्लेख भी हमें मुनिसुन्दर सूरि के क्रम में मिलता है। हम जैसे-जैसे आधुनिक काल के निकट बढ़ते हैं जैन कवियों द्वारा की गई 'चित्रकाव्य' की रचनाओं की संख्या बढ़ती जाती है और साथ ही चित्रबन्धों की संख्या में भी वृद्धि होती चलती है। जहाँ तक बन्धेतर चित्रों का सम्बन्ध है, उनमें केवल पिष्टपेषण ही दीख पड़ता है। किसी प्रकार की नवीन रचना उस क्षेत्र में नहीं दीख पड़ती।

---

१. बम्बई वि० वि० जरनल, कला संख्या ३०, पृ० ११६-११७

२. उपरिवत्,

प्रस्तुत शताब्दी में ही रचित जिनराजसूरि के शिष्य जयसागर उपाध्याय की रचना 'विज्ञप्तित्रिवेणी' में हमें कई चित्रबन्धों के श्लोक मिलते हैं।[१] प्रस्तुत पुस्तक में एक-एक बन्ध के एकाधिक श्लोक हैं और उनसे अलग-अलग चित्रों की रचना होती है। ये बन्ध निम्न हैं—

आसन (दो श्लोक, पृ० १३ तथा पृ० ६३ पर), अष्टारचक्र (पृ० २५), चामर (चार श्लोक, दो पृ० १३ पर तथा दो पृ० ६३ पर, इनसे दो चित्र बनते हैं।), छत्र (दो श्लोक, पृ० १३ तथा पृ० ६२ पर), षोडशदल विपरीत कमल (पृ० १३), बीजपूर (पृ० (१३) स्वस्तिक (पृ० ६३) तथा हार (चार-चार श्लोकों के चार चित्र।)[२]

उपर्युक्त चित्रबन्धों में हमें किसी नवीन चित्रबन्ध का दर्शन नहीं होता। जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, 'चामरबन्ध' के लिये यहाँ दो-दो श्लोक दिये गये हैं। जहाँ तक 'हारबन्ध' का प्रश्न है प्रस्तुत बन्ध कुलमण्डन सूरि द्वारा रचित ४२ मणियों से युक्त 'हार' की न्यासविधि के अनुकूल निर्मित होता है। यद्यपि प्रो० हीरालाल कपाड़िया ने प्रस्तुत बन्ध के विवेचन में २४ श्लोकों द्वारा निर्मित एक ही हार की बात कही है किन्तु उन्होंने किसी न्यासविधि की ओर संकेत नहीं किया है।[३] ध्यान से देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि 'हारबन्ध' के क्रम में उद्धृत २४ श्लोकों में केवल श्लोक संख्या १, २, ३, ४, ६, ७, ८, ९, १३, १४, १५, १६ तथा १८, १९, २०, २१ का वर्णविन्यास इस प्रकार का है कि इन्हें हार के रूप में न्यस्त किया जा सकता है। अन्य श्लोक ५, १०, ११, १२, १७, २२, २३ तथा २४ के वर्णविन्यास परस्पर किसी क्रम में नहीं दीख पड़ते।[४] फलतः निष्कर्ष यही निकलता है कि कवि ने इन चौबीस श्लोकों से एक ही 'हारबन्ध' निर्मित करने के बजाय, इनमें चार-चार श्लोकों अथवा आठ-आठ मणियों से युक्त चार 'हारबन्धों' की योजना की है। जयसागर उपाध्याय द्वारा रचित अन्य सभी बन्ध प्रचलित विधियों के अनुकूल हैं, केवल 'कमलबन्ध' विपरीत है, अर्थात् यहाँ पाठ तथा न्यास की गति पत्र से कोश की ओर न होकर कोश से पत्र की ओर होगी।

रत्नसिंह सूरि के शिष्य उदयमाणिक्य गणि ने केवल दस श्लोकों में 'चन्द्रप्रभस्तवन' की रचना इसी शताब्दी में की।[५] इन स्तोत्र श्लोकों की विशेषता यह है कि इन में आठों मंगलों से सम्बद्ध वस्तुओं के 'आकारचित्रों' को योजना है। सम्भवतः यह प्रथम रचना है जिसमें आठों मंगलों के 'आकारचित्रों' की रचना हुई है। ये चित्रबन्ध निम्न हैं—

---

१. बम्बई वि० वि० जरनल, कला संख्या ३०, पृ० ११७
२. कोष्ठक में लिखी पृष्ठ संख्या.विज्ञप्ति त्रिवेणी की है जिसका प्रकाशन जैन आत्मानन्द सभा द्वारा १९१६ ई० में हुआ था।
३. ब० वि० वि० ज०, कला संख्या ३०, पृ० १२०
४. उपरिवत्, पृ० ११८ से १२० तक। प्रस्तुत संख्याएँ विज्ञप्तित्रिवेणी के हारबन्ध की छन्द संख्याए हैं।
५. उपरिवत्, पृ० १२१

दर्पण, भद्रासन, शरावसम्पुट, मत्स्ययुगल, कलश, स्वस्तिक, श्रीवत्स तथा नन्द्यावर्त ।

इन बन्धों में प्रथम सात एक-एक श्लोक से बनते हैं किन्तु 'नन्द्यावर्त' के न्यास के लिये दो श्लोकों की रचना हुई है । 'कलशबन्ध' में कवि ने गर्भ से अपने गुरु के नाम के निःसरण की योजना की है ।[1] इस प्रकार यद्यपि यह रचना अत्यन्त लघु है किन्तु उपर्युक्त बन्धरचनाओं की दृष्टि से प्रस्तुत स्थल पर इसका पर्याप्त महत्त्व प्रमाणित होता है ।

ईसा की सोलहवीं शताब्दी में भी 'चित्रकाव्य' की प्रचुर रचना हुई है । इस सदी में जैन कवियों के अतिरिक्त कविकर्णपूर रचित 'चैतन्य चरितामृत' महाकाव्य तथा रूपगोस्वामी रचित 'स्तवमाला' दो ऐसी उल्लेखनीय रचनाएँ हैं जिनमें 'चित्रकाव्य' के पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं । चित्ररचनाओं की दृष्टि से इस युग में एक अन्य प्रकार की रचना भी आरम्भ हुई, जिसका उद्देश्य पाण्डित्य-प्रदर्शन तथा कौतूहलोत्पादन था ।

फलतः ये रचनाएँ भी कवियों के बौद्धिक विलास की प्रतिफलन हैं और इनका आकलन भी चित्र की सीमा में किया जा सकता है । इन रचनाओं में कवियों का उद्देश्य आश्चर्यजनक रूप से एक ही रचना में एक से अधिक कथाओं का सतत निर्वाह था । यद्यपि ये रचनाएँ बहुत बड़ी नहीं हैं, किन्तु जिस लक्ष्य को लेकर ये लिखी गईं उस दृष्टि से इनका अपना महत्त्व है । इनमें दैवत श्री सूर्य कवि रचित 'रामकृष्ण विलोमकाव्य' तथा लक्ष्मण भट्ट के पुत्र रामचन्द्र रचित 'रसिकरंजन' के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं ।[2] यों द्विसन्धान अथवा त्रिसन्धान काव्यों के अन्तर्गत 'राघवयादवीय', 'राघवनैषधीय', 'राघव पाण्डवीय', 'यादवराघवीय', 'यादवराघवपाण्डवीय'[3] जैसी कितनी ही रचनाएँ संस्कृत मे हैं, जिनमें एकाधिक कथाएँ एक साथ चलती हैं, किन्तु इनका परिगणन 'चित्रकाव्य' के बजाय, 'श्लेष-काव्य' के अन्तर्गत होना समीचीन है, कारण इन रचनाओं के वैचित्र्य का मूल आधार श्लेष है । 'रामकृष्ण विलोमकाव्य' तथा 'रसिकरंजन' की पद्धति दूसरी है । इनमें दो कथाओं का मूल आधार श्लेष नहीं वरन् श्लोकों का गतागत पाठ है । 'रामकृष्ण विलोमकाव्य' के प्रत्येक श्लोक के पूर्वार्द्ध में रामकथा चलती है, जबकि उत्तरार्द्ध में कृष्णकथा । किन्तु विचित्रता यह है कि प्रस्तुत ग्रन्थ के श्लोक का उत्तरार्द्ध पूर्वार्द्ध का प्रतिलोम पाठ है ।[4]

---

१. ब० वि० वि० जरनल, कला संख्या ३० पृ० १२१,

२. रामकृष्णविलोमकाव्य, काव्यमाला - ११ (एकादश गुच्छक), १८९५ में प्रकाशित ।

रसिकरंजन, द्रष्टव्य, संस्कृत साहित्य का इतिहास (ए० बी० कीथ), पृ० १३९ तथा संस्कृत साहित्य का इतिहास (कृष्णमाचारियर), अनुच्छेद ९१ (१९२८ संकरण)

३. उपरिवत्, कृष्णमाचारियर, अनुच्छेद क्रमशः ९१, ७८ तथा ९६, ८८, ९०, २५२ तथा ५२९, ९२ तथा ३७९

तथा—**Commemorative Essays—(presented to professor Kashinath Bapuji pathak)**. में संगृहीत संस्कृत साहित्य में द्व्यर्थी तथा त्र्यर्थी काव्य नामक निबन्ध, पृ० ३६७-३८१

४. उदाहरण के लिये प्रस्तुतकाव्य के निम्न श्लोक से कथा आरम्भ होती है—

"कौशिके व्रितपसि क्षरव्रती योऽददाद्वितनय स्वमातुरम् ।
रन्तुमास्वयन तद्विदादयोऽतीव्र रक्षसि पतत्रिकेशिकौ ।।"

प्रस्तुत छन्द के पूर्वार्द्ध का ही विलोम उत्तरार्द्ध है । पूर्वार्द्ध का अर्थ राम के पक्ष में होता है जबकि उत्तरार्द्ध का कृष्ण के पक्ष में ।

इस प्रकार लेखक ने सम्पूर्ण काव्य के गत रूप में एक अर्थ रखा है जबकि उसके आगत रूप में दूसरा अर्थ।

'रसिकरंजन' की भी यही विशेषता है। इस ग्रन्थ के श्लोकों के गत पाठ से शृंगारपरक अर्थ प्राप्त होते हैं जबकि आगत अथवा प्रतिलोमपाठ से वैराग्य परक।[१] यद्यपि इस प्रकार के काव्यों की बहुत अधिक रचनाएँ नहीं हुईं, किन्तु जो दो-चार लिखे गये उनको इस क्षेत्र में बड़ी प्रसिद्धि मिली। गोकि इस प्रकार के पाण्डित्य-प्रदर्शन की राह बहुत पूर्व भट्टि ही अपने 'भट्टिकाव्य' की रचना में दिखा गये थे। इसी काल में हिन्दी में भी नन्ददास की बहुत कुछ इसी प्रकार की एक रचना 'नाममाला' अथवा 'मानमंजरी' के नाम से प्राप्त होती है, जिसका उद्देश्य भी दुहरा है।[२] एक ओर प्रस्तुत पुस्तक शब्दकोश है जहाँ शब्दों के पर्याय दोहों में दिये गये हैं, तो दूसरी ओर यदि दोहों के केवल उत्तरार्द्धों को एक साथ लिया जाय तो उससे राधा के मान और सखी द्वारा मनाये जाने की एक अखण्डित कथा निःसृत होती है।

यों परम्पराप्रचलित 'चित्रकाव्य' की रचना की दृष्टि से भी इस युग का बड़ा महत्त्व है। इस शताब्दी में की गई दो प्रमुख रचना 'चैतन्यचरितामृत' तथा 'स्तवमाला' का उल्लेख किया जा चुका है। 'चैतन्यचरितामृत' एक वृहत् महाकाव्य है जिसके १९वें सर्ग में हमें 'चित्र' की कतिपय रचनाएँ दीख पड़ती हैं। अपने अलंकारग्रन्थ 'अलंकार कौस्तुभ' में कविकर्णपूर ने अनेकों प्रकार के बन्धों तथा बन्धेतर चित्ररचनाओं के उदारण दिये हैं।[३] अतः सैद्धान्तिक और व्यावहारिक अथवा लक्षण तथा उदाहरण दोनों ही रूपों में कर्णपूर का विशिष्ट महत्त्व है। 'चैतन्यचरितामृत' में हमें 'चित्रकाव्य' की निम्न रचनाएँ प्राप्त होती हैं—

एकाक्षर, द्व्यक्षर, निरोष्ठ्य, असंयोग, असन्व्यक्षर, पादप्रतिलोमानुलोम, श्लोक-प्रतिलोमानुलोम, गोमूत्रिका, मुरज तथा पद्म।

प्रस्तुत सूची यद्यपि बहुत छोटी है किन्तु इसमें 'वर्ण', 'स्थान', 'गति' तथा 'आकारचित्र' जैसे 'चित्र' के प्रमुख भेदों के उदाहरण कवि ने दिये हैं। 'अलंकार कौस्तुभ' में उसने चित्ररचनाओं के अधिक उदाहरण दिये हैं, जो निम्न हैं—

---

१. "We find similar result achieved in the curious 'Rasikranjan' of Ramchandra, son of Lakamana Bhatta, who wrote in 1542 at Ayodhya, for the verses of that work oneway give an erotic poem, in another, a eulogy of ascaticism.

A. B. keith in "History of Sanskrit Literature", Page-139

२. द्रष्टव्य, नन्ददास ग्रन्थावली, सम्पादक व्रजरत्नदास (काशी ना० प्र० स०)।

३. अलंकार कौस्तुभ, सप्तम किरण, शब्दालंकार निर्णयके अन्तर्गत

एकाक्षर, द्व्यक्षर, चतुरक्षर अथवा एकाक्षरपाद, पादप्रतिलोमानुलोम, श्लोकप्रतिलोमानुलोम, श्लोकान्तर प्रतिलोमानुलोम, सर्वतोभद्र, महासर्वतोभद्र, गोमूत्रिका, छत्रबन्ध, खड्गबन्ध, मुरजबन्ध, बन्द तथा मुक्त कपाटबन्ध, शृंखलाबन्ध, शंखबन्ध, पताकाबन्ध, गदाबन्ध, पद्मबन्ध, चक्रबन्ध तथा शार्ङ्गबन्ध।'

इन सभी चित्रों के श्लोक 'अलंकारकौस्तुभ' में कवि द्वारा ही रचित हैं। इन चित्रों में 'चक्रबन्ध' (षडर) गर्भांक युक्त है, किन्तु उससे कवि का अपना नाम निःसृत नहीं होता है।[1] अन्य बन्धों में 'गदाबन्ध' तथा 'शंखबन्ध' का उल्लेख सर्व प्रथम यहीं हुआ है।[2] दोनों रचनाओं में रचित चित्र के इन श्लोकों की दृष्टि से इस क्षेत्र में कविकर्णपूर पर्याप्त महत्त्व के अधिकारी सिद्ध होते हैं।

रूपगोस्वामी रचित 'स्तवमाला' में भी 'चित्रकवित्वानि' के नाम से एक अध्याय की रचना की गई है।[3] प्रस्तुत अध्याय में १२ छन्द हैं जिनमें दस प्रकार की चित्ररचनाएँ प्राप्त होती हैं। इनमें तीन छन्द केवल 'द्व्यक्षर' के हैं, एक छन्द 'एकाक्षर' का, एक 'श्लोकप्रतिलोमानुलोम' अथवा 'श्लोकगतागत' का तथा एक-एक छन्द, 'चक्र' (षडर), 'सर्प', 'मुरज', 'अष्टदल पद्म', 'गोमूत्रिका', 'सर्वतोभद्र' तथा 'वृहत्पद्मबन्ध' में से प्रत्येक के लिये है। इन बन्धों अथवा रचनाओं की वर्णयोजना में प्रचलित पद्धति के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार का परिवर्तन लक्षित नहीं होता, केवल 'वृहत्पद्मबन्ध' एक नवीन बन्ध के रूप में हमारे सम्मुख उपस्थित होता है।[4] 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में उद्धृत 'नामांक पद्मबन्ध' की विधि भी इसमें नहीं लगती। इसका एक अपना अलग न्यास है। उपर्युक्त बन्धों में प्रचलित पद्धति के अनुरूप कवि ने 'षडरचक्र' को नामांकयुक्त रखा है, जिसमें केन्द्र की ओर से चतुर्थ तथा सप्तम वलयों में न्यस्त वर्णों से 'रूपविरचित कृष्ण स्तुति' वाक्यांश के रूप में कवि तथा काव्य का नाम निःसृत होता है।[5] इस प्रकार हम पाते हैं कि रूपगोस्वामी ने यद्यपि 'चित्रकाव्य' की रचनाओं में नवीन रचनाएँ बहुत नहीं की हैं, फिर भी प्रचलित रचनाओं के श्लोकों के द्वारा इस परम्परा का निर्वाह किया है। अल्प संख्या में ही सही पर उन्होंने 'वर्णचित्र', 'गतिचित्र' तथा 'बन्धचित्रों' के उदाहरण दिये हैं। 'स्वरचित्र' के साथ ही 'स्थानचित्र' का भी कोई श्लोक हमें 'स्तवमाला' में प्राप्त नहीं होता।

उपर्युक्त कवियों के अतिरिक्त प्रस्तुत शताब्दी में कितने ही जैन कवियों ने भी अपनी स्तोत्ररचनाओं में 'चित्रकाव्य' के विभिन्न बन्धों की रचनाएँ की हैं। विशालराजसूर के शिष्य सुधाभूषण के शिष्य जिनसूर ने अपनी रचना 'प्रियंकरनृपकथा' में दो बन्धों के श्लोक दिये

१. गर्भाङ्क है—"श्रीनाथपाद कौतुकय व्रतामोदी कविः शमी ॥"
—अ० कौ०, सप्तमकिरण, चित्रकाव्य, श्लोक १३

२. उपरिवत्, श्लोक ८ तथा ९

३. काव्यमाला ८४, बम्बई १९०३ ई० का प्रकाशन (निर्णयसागर प्रेस)

४. स्तवमाला, पृ० २६०, छन्द १२

५. उपरिवत्, पृ० २५८, छन्द ५

हैं।[1] ये बन्ध हैं 'स्वस्तिक' तथा 'अष्टदल विपरीत कमल'। ये दोनों ही चित्रबन्ध नामांकयुक्त हैं जिनसे क्रमशः 'प्रियंकर' तथा 'विशालराज' के नाम निःसृत होते हैं। उदयधर्म गणि रचित 'महावीर स्तवन'[2] भी 'चित्रकाव्य' की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण रचना है। इस स्तुतिग्रन्थ में केवल १८ श्लोक हैं और इन सभी श्लोकों से ३२ दलों के एक वृहत् 'कमल' का चित्र बनता है। चित्र में १७ श्लोकों का न्यास दलों में किया जाता है, और सम्पूर्ण १८ वाँ श्लोक उसके दलान्तों अथवा परिधि में न्यस्त होता है। प्रस्तुत ग्रन्थ में कोई अन्य रचना हमें प्राप्त नहीं होती। इसी शताब्दी में समयसुन्दर गणि के 'हारबन्ध स्तोत्र' की रचना भी हुई। प्रस्तुत स्तोत्रग्रन्थ में कुल आठ श्लोक हैं और शीर्षक के अनुकूल इनमें दो 'हारबन्धों' की योजना है। इन में अन्त के दो श्लोकों में किसी प्रकार का चित्र नहीं है, जिनमें अन्तिम इस पुस्तक के उपसंहार के रूप में है। प्रथम छह श्लोकों में से क्रमशः तीन-तीन श्लोकों को लेकर दो हारों की योजना की गई है।

श्री वल्लभ रचित 'अरनाथस्तव' में भी हमें केवल एक ही बन्ध की योजना मिलती है और वह भी 'कमलबन्ध' की। किन्तु इस बन्ध की विशेषता यह है कि इसमें एक हजार दलों की कल्पना की गई है। इसकी न्यासविधि 'षोडशदल कमल' की है, जिसमें कोश में 'र' लिखा जाता है तथा चारों ओर दलों में अन्य दो-दो वर्ण। पाठ की विधि भी वही है।[4]

संस्कृत बन्धचित्रों की रचना की प्रचुरता की दृष्टि से ईसा की सतरहवीं शताब्दी का विशेष महत्त्व है। इस अवधि में जैन तथा जैनेतर 'चित्रकाव्य' के जितने भी कवि हुए हैं लगभग सभी ने काफी अधिक संख्या में चित्रबन्ध के श्लोकों की रचना की है। इनमें अधिकांश पुराने ही बन्ध हैं, किन्तु कतिपय नवीन भी हैं। अबतक बन्धचित्रों की संख्या में इतना अधिक विस्तार हो गया था कि अनेक प्रसिद्ध बन्धों की नई न्यासविधियाँ भी प्रचलित हुईं। बन्धेतर चित्रों का जहाँ तक प्रश्न है, उनकी संख्या में किसी प्रकार का प्रसार हम नहीं पाते। इनके जितने प्रकार पहले से काव्यकृतियों में प्रचलित थे, परम्परा-निर्वाह की दृष्टि से कवियों ने केवल उनकी ही रचना की। अधिकांश जैन कवियों ने बन्धेतर चित्रों की रचना नहीं की है।

संख्या तथा प्रकार दोनों दृष्टियों से इस शताब्दी में काश्मीरिक अवतारकवि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।[5] इनके ग्रन्थ 'ईश्वरशतक' में कुल ११३ श्लोक हैं, जिनमें से प्रायः सभी श्लोकों में या तो 'यमक' के किसी भेद की योजना की गई है अथवा

---

१ बम्बई विश्वविद्यालय जरनल सितम्बर १९५५, कला संख्या ३०, पृ० १२२

२. उपरिवत्, पृ० १२३

३. उपरिवत्, पृ० १२३

४. उपरिवत्, पृ० १२४

५. काव्यमाला, नवमगुच्छक, द्वितीय संस्करण, पृ० ३१, प्रस्तुत संकलन में ही उक्त कवि की रचना ईश्वरशतक संगृहीत है।

'चित्रकाव्य' का कोई न कोई भेद उपस्थित है। जैसाकि नाम से ही प्रकट है प्रस्तुत ग्रन्थ के श्लोकों में महादेव की स्तुति है, और इसी क्रम में 'चित्रकाव्य' की रचना भी है। पूर्व विवेचित आनन्दवर्धन रचित 'देवीशतक' अथवा वेंकटनाथ देशिक रचित 'पादुकासहस्र' की परम्परा में यह रचना भी आती है।

जहाँ तक बन्धेतर चित्रों का प्रश्न है प्रस्तुत रचना में किसी प्रकार की नवीनता देखने में नहीं आती। 'वर्णचित्र', 'स्वरचित्र', 'गूढ़चित्र', 'गतिचित्र' तथा 'भाषाचित्र' के कतिपय भेदों के उदाहरण हमें प्राप्त होते हैं। यह आश्चर्य का विषय है कि 'स्थानचित्र' का कोई श्लोक इस ग्रन्थ में हमें प्राप्त नहीं होता। 'निरोष्ठ्य' तथा 'अतालव्य' जैसी बहुप्रचलित रचना के भी उदाहरण हमें इसमें प्राप्त नहीं होते। किन्तु प्रस्तुत पुस्तक में 'स्वरचित्र' के एकाधिक भेद के श्लोक हमें प्राप्त होते हैं, जो अन्यत्र काव्यकृतियों में कम दीख पड़े हैं। अन्य सभी रचनाएँ सामान्य तथा प्रचलित हैं। इस पुस्तक में प्राप्त बन्धेतर चित्रों की सूची निम्न है—

एकस्वर (दो श्लोक, एक 'इ' का और दूसरा अमात्रिक), द्विस्वर, एकाक्षर, द्व्यक्षर (९ श्लोक), त्र्यक्षर (दो श्लोक), चतुरक्षर, क्रियाकर्मगुप्त, गूढ़चतुर्थ, गाथागर्भ, प्रथम, द्वितीय अथवा तृतीय पादगूढ़, पदप्रतिलोमानुलोम, पाद प्रतिलोमानुलोम, गाथा प्रतिलोमानुलोम, श्लोकान्तर प्रतिलोमानुलोम, गोमूत्रिका, अर्धभ्रम, सर्वतोभद्र, तुरगपद, गजपद तथा भाषाचित्र के अन्तर्गत संस्कृतकाश्मीरापभ्रंश (दो श्लोक) तथा संस्कृतप्राकृत।

इन रचनाओं के अतिरिक्त 'तवर्ग', 'असंयुक्ताक्षर' तथा 'अपुनरुक्तव्यंजन' के भी एक-एक श्लोक हैं, जिनकी गिनती भी 'चित्र' के अन्तर्गत की जा सकती है।

बन्धचित्रों की रचना अवतारकवि ने एक बड़ी संख्या में की है। इनके कतिपय श्लोकों की विशेषता यह है कि एक ही श्लोक में कई बन्धों के चित्रों की योजना है। इन बन्धों में नवीन बन्धों की संख्या भी कम नहीं है। अवतारकवि ने भी रुद्रट के अनुकरण पर कतिपय बन्धों के श्लोकों से 'नामांक अष्टारचक्र' की रचना की है। रुद्रट द्वारा निर्मित 'चक्र' तथा प्रस्तुत स्थल पर निर्मित 'चक्र' में एक अन्तर यह है कि रुद्रट में जहाँ 'चक्र' के श्लोकों से अलग-अलग 'खड्ग', 'मुसल' 'धनुष', 'शर', 'शूल', 'शक्ति' तथा 'हल' का निर्माण होता है, वहाँ प्रस्तुत कवि ने 'शक्ति' के स्थान पर 'डमरूबन्ध' का श्लोक रखा है।[1] अन्य सभी बन्ध वे ही हैं। एक अन्तर दोनों चक्रों में गर्भांक की दृष्टि से भी है। रुद्रट के चक्र से सम्पूर्ण श्लोक की प्राप्ति होती है, जबकि प्रस्तुत चक्र से केवल अवतारकवि का नाम भर निःसृत हो पाता है। गर्भांक का वाक्यांश है- "कृतं चक्रमिदंबंधैरवतारेण-सप्तभिः।" अवतारकवि ने कतिपय बन्धों के एकाधिक श्लोकों की रचना भी प्रस्तुत पुस्तक में की है। उदाहरणार्थ उन्होंने 'अष्टदल कमल' के तीन श्लोक, 'काँची' के दो, 'त्रिशूल' के चार, तथा 'गदाबन्ध' के तीन श्लोकों की रचना की है।[2] इन श्लोकों से इतनी ही संख्या

१. ईश्वरशतक. श्लोक ५४ से ६१ तक

२. अष्टदलकमल, श्लोक ४३, ८१ तथा ८२, कांची १३ तथा ९८, त्रिशूल २४, ३८, ५९ तथा ८०, गदा ३८, ४० तथा ४१

में इन बन्धों के चित्र भी बनते हैं। इनके अतिरिक्त निम्न बन्धों के श्लोकों की रचना प्रस्तुत पुस्तक में की गई है—

१. षोडशदलपद्मबन्ध, २. शृंखलाबन्ध, ३. महादेव अथवा जागेश्वर बन्ध, ४. वज्रबन्ध, ५. परशुबन्ध, ६. क्षुरिकाबन्ध, ७. तूणबन्ध, ८. कविनामांक षडरचक्रबन्ध, ९. खड्गबन्ध, १०. मुशलबन्ध, ११. धनुषबन्ध, १२. शरबन्ध, १३. डमरूबन्ध, १४. हलबन्ध, १५. मत्तमयूरेण नन्दिकावर्तबन्ध, १६. स्फुरबन्ध, १७. अष्टपदान्निर्गत कविनाम्ना कुसुमोच्चय बन्ध, १८. चण्डव्यष्टिप्रातदण्डकेन नन्दिकावर्तबन्ध, १९. छत्रबन्ध, २०. चतुर्महादेवस्वस्तिकबन्ध तथा २१. भद्राकावर्त बन्ध।

इन बन्धों में 'महादेव', 'क्षुरिका', 'डमरू', 'स्फुर' तथा 'कुसुमोच्चयबन्ध' ऐसे बन्ध हैं जिनकी रचना हमें अवतारकवि में ही प्राप्त होती है। अन्य बन्धों के श्लोक इसके पूर्व भी प्राप्त हो चुके हैं। फिर भी 'नन्दिकावर्त' तथा 'स्वस्तिक' बन्धों के जिन चित्रों की योजना प्रस्तुत स्थल पर की गई है वे विशेष प्रकार के चित्र हैं।[1] इनकी न्यासविधि इन बन्धों की सामान्य न्यासविधि से अन्य प्रकार की है। फलतः इन्हें भी हम कवि द्वारा रचित नवीन बन्धों के रूप में देख सकते हैं। उपर्युक्त 'षडरचक्र' से भी केवल कवि तथा काव्य का नाम निःसृत होता है। कवि का अधिक परिचय हमें प्राप्त नहीं होता। चक्रनिर्माण की विधि सामान्य तथा प्रचलित विधि है तथा परिधि की ओर से तृतीय तथा षष्ठ वलयों में न्यस्त वर्णों से 'शिवस्तुतिरियमवतारकृता' वाक्यांश में कवि तथा काव्य का नाम प्राप्त होता है। 'कसुमोच्चयबन्ध' के श्लोक में भी कवि का नाम है किन्तु वहाँ वह गर्भांक न होकर श्लोकांश के रूप में है।[2] अतः 'चित्र' की दृष्टि से उसका कोई महत्त्व नहीं है। अपने विवेचन के क्रम में हमने देखा है कि चित्ररचना और उसके शास्त्रीय विवेचन में काश्मीर की देन सर्वाधिक है और अवतार कवि ने भी इस दृष्टि से काश्मीर के महत्त्व में एक और कड़ी जोड़ी है।

प्रस्तुत शताब्दी के जैन कवियों में इस क्षेत्र में कई बड़े ही महत्त्वपूर्ण कवि हो गये हैं, जिन्होंने परिमाण और प्रकार दोनों ही दृष्टियों से 'चित्रकाव्य' की समृद्धि में पूर्णतः योगदान किया है। किन्तु इन कवियों का मन भी बन्धचित्रों के निर्माण में ही अधिक रमा है। बन्धेतर चित्रों की या तो इन्होंने रचना नहीं की है अथवा एकाध उदाहरण देकर चलता कर दिया है। इस क्रम में कमलविजय के शिष्य हेमविजय गणि ने 'जिनस्तवन चतुर्विंशतिका'[3] के नाम से २४ तीर्थंकरों के नाम में २४ लघुस्तोत्रों की रचना की है। इनमें से प्रत्येक में पाँच छन्द हैं, जिनमें प्रत्येक स्तोत्र के प्रथम चार छन्दों में एक 'षोडशदल

१. ई० श०, श्लोक ६४ मत्तमयूरेण नन्दिकावर्त, श्लोक ८९ चण्डिव्यष्टिदण्डकेन नन्दिकावर्त, श्लोक ११२ चतुर्महादेवस्वस्तिक

२. उपरिवत्, श्लोक ८६

३. बम्बई विश्वविद्यालय जरनल, कला सं० ३०, पृ० १२४-१२५

विपरीतकमल बन्ध' की योजना की गई है। इस प्रकार सम्पूर्ण पुस्तक में २४ पद्मबन्धों की योजना है। इन कमलबन्धों के दलान्तो में न्यस्त वर्णों के पाठ से क्रमशः निम्न चौबीस जैन साधुओं के नाम निःसृत होते हैं—

परमगुरु श्री हीर विजय सूरि, विजयसेन, विजयदान, आनन्दविमल, हेमविमल, सुमतिसाधु, लक्ष्मीसागर, सोमसुन्दर, कुलमण्डन, ज्ञानसागर, देवसुन्दर, सोमतिलक, सोमप्रभ, धर्मघोष, देवेन्द्र, जगच्चन्द्र, धर्मसागर, अमरविजय, महावीर स्वामिन, सुधर्मस्वामिन, कमलविजय तथा हेमविजय।

इसी काल में लोद्रव के पार्श्वनाथ मन्दिर में निर्मित 'सप्तदल कमल' के निर्माता सहजाकीर्तिवाचक ने 'लोद्रपुर पार्श्वनाथ प्रशस्ति' नामक एक लघुपुस्तक की रचना की।

प्रस्तुत पुस्तक में कुल २६ छन्द हैं जिनमें प्रथम २५ छन्दों की वर्णयोजना इस प्रकार है कि उनसे एक 'शतदल कमलबन्ध' की रचना की जा सकती है।[1] प्रस्तुत कमल में छन्दों के प्रत्येक चरण के अन्तिम अक्षर 'मं' की अवस्थिति कोश में की जायगी। स्वयं कवि ने निम्न श्लोक में 'कमलबन्ध' की अपनी इस योजना की ओर संकेत किया है—

> "इत्थं पार्श्वजिनेश्वरोभुवनदिक् कुम्भ्यङ्ग चन्द्रात्मके
> वर्षेवाचकरत्नसारकृपयाराकादिनेकार्तिके,
> मासे लोद्रपुरस्थितः शतदलोपेतेन पद्मेनसन्
> नूतो ऽ यं सहजादिकीर्तिगणिना कल्याणमाला प्रदः।"[2]

उपर्युक्त बन्ध के संकेत के अतिरिक्त प्रस्तुत श्लोक में कवि ने अपने नाम के साथ रचनातिथि का भी उल्लेख किया है।[3]

जैन कवियों में संख्या की दृष्टि से बन्धचित्रों के रचयिताओं में 'विज्ञप्तिपत्र' के लेखक उदयविजय[4] का स्थान पर्याप्त उच्च है। उन्होंने अपनी इस पुस्तक में ६३ बन्धों के श्लोकों की रचना की है। यह सही है कि इनमें कई-कई श्लोक एक ही बन्ध के हैं, अथवा कई-कई चित्र एक ही बन्ध के हैं, फिर भी बन्धों की संख्या की दृष्टि से कवि ने लगभग ३१ बन्धों की रचना की है। इन बन्धों में 'पद्मबन्ध' के छह चित्र हैं किन्तु दलों की संख्या में भिन्नता के आधार पर इनमें पांच प्रकार के बन्ध प्राप्त होते हैं। केवल 'अष्टदल कमल' के दो चित्र हैं अन्यथा अन्य 'पद्म बन्धों' में क्रमशः २०, २८, ५८ तथा ९६ दलों की योजना है।[5] इसी प्रकार 'स्वस्तिक बन्ध' के तीन चित्र हैं जिनमें दो तो समान हैं, पर एक अन्य चित्र 'कंकणमध्यस्थित स्वस्तिक' का है।[6] निश्चय ही यह बन्ध अपने में स्वतन्त्र है। अन्य बन्धों की तालिका उनकी संख्या के साथ निम्न है—

---

१. ब० वि० ज; कला संख्या ३०, पृ० १२५-१२६

२. उपरिवत्, निबन्ध की श्लोक संख्या २९३

३. भुवनदिक्कुम्भ्यंगचन्द्र (१६८३), राकादिने कार्तिके (कार्तिक पूर्णिमा)

४. ब० वि० ज०, कला संख्या ३०, पृ० १२६

५. उपरिवत्

६. उपरिवत्

मुशल-२, त्रिशूल-२, शंख-२, चामर-२, श्रीकरी-२, हल-१, भल्ल-१, धनुष-२, खड्ग-१, शक्ति-१, छत्र-२, रथ-२, कलश-२, शर-२, मुद्गर-२, वज्र-२, पताका-२, अष्टारचक्र-१, दर्पण-२, श्रीवत्स-२, चम्पकमण्डित सिंहासन-१, मत्स्ययुगल-१, शरावसम्पुट-१, नन्द्यावर्त-१, भद्रासन-१, नागपाश-२, बीजपूर-२, स्थपतिका-१ तथा हार-२,

प्रस्तुत तालिका में 'मत्स्ययुगल', 'शरावसम्पुट' तथा 'स्थपतिका' ऐसे बन्ध हैं जिनके निर्माण का श्रेय प्रस्तुत कवि को ही प्राप्त है। 'विज्ञप्तिपत्र' मे कुल ३१७ छन्द हैं और उनमें इतने बन्धों की रचना की गई है। इनके अतिरिक्त बन्धेतर चित्र भी हैं पर अत्यन्त अल्प। स्पष्ट है कि प्रस्तुत पुस्तक में चित्रबन्धों की रचना रचयिता के प्रधान उद्देश्यों में है।

'विज्ञप्तिपत्र' के साथ ही इस क्षेत्र में विनयविजय गणि लिखित 'आनन्दलेख'[1] का महत्त्व भी कम नहीं है। प्रस्तुत पुस्तक की रचना चार अध्यायों में हुई है जिसके प्रथम अध्याय का नाम 'चित्रचमत्कार'[2] है। लेखक ने अध्याय के स्थान में अधिकार शब्द का प्रयोग किया है। प्रस्तुत पुस्तक में हमें १८ बन्धों के श्लोक मिलते हैं। किन्तु ये सभी बन्ध पूर्व प्रचलित हैं। लेखक की अपनी देन १८ आरों का एक चक्र है, जिससे उसके गुरु का नाम निःसृत होता है। किन्तु यहाँ भी चक्र की न्यासपद्धति पूर्व प्रचलित है। इस पुस्तक में रचित चित्रबन्धों के नाम निम्न हैं—

१. चतुर्दलपद्म, २. खड्ग, ३. अष्टादशारचक्र, ४. चामर, ५. छत्र, ६. त्रिशूल, ७. धनुष, ८. पूर्णकलश, ९. भल्ल, १०. मुशल, ११. वज्र, १२. शक्ति, १३. शंख, १४. शर, १५. शूल, १६. श्रीकरी, १७. श्रीवत्स तथा १८. हार।

'आनन्दलेख' के प्रथम अधिकार की श्लोक संख्या १२ से लेकर श्लोक संख्या २९ तक यानी १८ श्लोकों से उपर्युक्त वृहतचक्र की रचना होती है। इन श्लोकों में स्वतन्त्ररूप से अन्य बन्धचित्रों की योजना भी है। यहाँ भी हम निर्माण की पद्धति रुद्रट की ही पाते हैं, जिसका अनुकरण यथेष्ट हुआ है, तथा जिसकी चर्चा पिछले पन्नों में की जा चुकी है।[3] इस चक्र के नवें वलय में स्थित वर्णों के पाठ से 'आनन्दलेख' के लेखक विनय विजय गणि के नाम की प्राप्ति होती हैं। लब्धांक है—

"महामहोपाध्याय श्री कीर्तिविजयमुनि गुरुभ्यो नमः।"

उपर्युक्त बन्धों के अतिरिक्त 'आनन्दलेख' में बन्धेतर चित्रों की रचना भी हुई है। उदाहरणार्थ प्रथम अधिकार के १३वें तथा २२वें श्लोक में क्रमशः 'अर्धभ्रम' तथा 'रथ-पद' की रचना है तथा चौथे अधिकार के ५३वें तथा ५४ वें श्लोक में 'तुरगपद' की।

१. ब० वि० ज०, कला स० ३०, पृ० १२८-१२९

२. उपरिवत्

३. द्रष्टव्य, तृतीय अध्याय, चित्र संख्या २९

'एकाक्षरादि' चित्रों के भी एकाध श्लोक मिल जाते हैं किन्तु कवि का मन प्रमुख रूप से बन्धचित्रों की रचना में ही रमा है।

द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत अजितसेन रचित 'अलंकार चिन्तामणि' का विवेचन हो चुका है।[1] प्रस्तुत पुस्तक यद्यपि अलंकार शास्त्र की है किन्तु उदाहरणों की रचना अजितसेन ने स्वयं की है। हम देख चुके हैं कि अजितसेन ने अपने चित्रविवेचन के अन्तर्गत बन्ध की प्रश्नोत्तर तथा सामान्य दोनों शैलियों का प्रयोग किया है तथा इस प्रकार ३३ बन्धों के उदाहरण दिये हैं। इन बन्धों में अधिकांश प्रचलित बन्ध ही हैं पर कतिपय नवीन भी हैं। 'मुरज' के जो चित्र 'अलंकार चिन्तामणि' में दिये गये हैं, उनके न्यास में किसी प्रकार का चमत्कार नहीं दीख पड़ता। यों 'मुरजबन्ध' के 'सामान्य', 'अनन्तर पाद', 'इष्टपाद' तथा 'अन्तरित' इन चार प्रकारों के चित्र हैं, पर किसी के न्यास में कोई विशेषता अथवा अन्तर नहीं दीखता।[2] मुरजाकार चित्रों में श्लोकों को ऋजुगति से दो अथवा चार पंक्तियों में लिख दिया गया है। 'गोमूत्रिका' 'सर्वतोभद्र' तथा 'अर्धभ्रम' का आकलन भी अजितसेन ने इन बन्धों में ही कर लिया है। 'अलंकार चितामणि' में उदाहृत बन्धों की तालिका निम्न है—

अष्टदलपद्म, चतुररचक्र के दो चित्र, प्रश्नपद्म, नागपाश, मुरज के छह चित्र, षोडशदलपद्म, तालवृन्त, दर्पण, पट्ट, निःसाल, ब्रह्मदीपिका, यान, परशु, षडरचक्र, भृंगार, ब्रह्मदीपक, छत्र तथा हार।

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि 'तालवृन्त', 'पट्ट', 'निःसाल', 'ब्रह्मदीपिका' तथा 'यान' नवीन बन्ध हैं जिनकी रचना पूर्ववर्ती कवियों द्वारा नहीं हुई है।

इन बन्धों के अतिरिक्त 'एकाक्षर', 'द्व्यक्षर' आदि के एकाध उदाहरण भी प्रस्तुत पुस्तक में हैं। किन्तु अधिक उदाहरण 'विदग्धमुखमण्डन' में विवेचित प्रश्नोत्तर के विभिन्न भेदों के हैं। इनका विवेचन द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत किया जा चुका है।

गुणभद्र अथवा गुणभद्रकीर्ति[3] ने सभी (२४) जैनतीर्थंकरों की स्तुति के रूप में २७ छन्दों में 'चित्रबन्धस्तोत्र' नामक एक लघुस्तोत्रग्रन्थ की रचना की है। गुणभद्र स्वयं भी दिगम्बर जैन थे और प्रस्तुत पुस्तक में उन्होंने नाम के अनुकूल ही चित्रबन्धों की रचना की है। पुस्तक के २७ छन्दों में से २४ छन्दों में कुल २४ बन्धों की रचना हुई है। इन बन्धों के नाम निम्न हैं—

---

१. द्रष्टव्य, लक्षण विवेचन क्रम में अजितसेन पृ० ४४।

२. द्रष्टव्य, अलंकार चिन्तामणि के अन्त में निर्मित चित्र (कोल्हापुर जैनेंद्र मुद्रणालय में मुद्रित तथा सोलापुर से प्रकाशित)

३. बम्बई विश्वविद्यालय जरनल, सितम्बर १९५६, कला संख्या ३१, पृ० ८८ प्रो० कपाड़िया के निबन्ध का अन्तिम अंश

अष्टदलकमल (दो), षोडशदलकमल, कलश, खड्ग, चतुररचक्र, चामर, छत्र, त्रिशूल, धनुष, नालिकेर, बीजपूर, मल्ल, मुरज, मुशल, रथ, वज्र, शक्ति, शंख, श्रीकरी, श्रीवृक्ष, स्वस्तिक तथा हल।

इन बन्धों में 'खड्ग' के लिये दो श्लोक हैं, किन्तु 'मुरज' के लिये किसी स्वतन्त्र श्लोक की रचना नहीं हुई है। 'खड्ग' के दूसरे श्लोक का न्यास 'मुरजबन्ध' के रूप में भी होता है।[1] अन्य सभी बन्धों के लिये एक-एक श्लोक हैं और 'श्रीवृक्ष' के अतिरिक्त ये सभी बन्ध पूर्वप्रचलित हैं। 'षडर' अथवा 'अष्टारचक्र' की रचना हमें प्रस्तुत पुस्तक में नहीं मिलती और न अन्य किसी बन्ध से ही कवि के नाम का परिचय प्राप्त होता है। जहाँ तक 'श्रीवृक्ष' का प्रश्न है, इससे कवि का क्या तात्पर्य है कुछ स्पष्ट नहीं होता। न तो कवि ने इसका चित्र दिया है और न इसकी न्यासविधि का ही कोई संकेत दिया है। यों तीन अर्थों में यह शब्द प्रयुक्त होता है—

१. बिल्ववृक्ष, २. अश्वत्थवृक्ष, तथा ३. घोड़े के वक्ष पर का केशगुच्छ।[2] पर इन तीनों में इस बन्ध का चित्र किस रूप में है कुछ स्पष्ट नहीं होता। अन्यत्र भी इस नाम का कोई बन्ध नहीं मिलता।

ईसा की १८वीं शताब्दी में कोई ऐसी काव्यकृति प्राप्त नहीं होती जो चित्ररचना की दृष्टि से उल्लेखनीय हो। केवल दो ग्रन्थ ऐसे हैं जिनमें 'चित्रकाव्य' के कतिपय भेदों की रचनाएँ हुई हैं। ये ग्रन्थ हैं 'नंजराज यशोभूषण' तथा 'कवीन्द्रकर्णाभरण'। किन्तु ये दोनों ही लक्षण ग्रन्थ हैं, अतः प्रस्तुत स्थल पर इनका महत्त्व केवल उदाहरण के श्लोकों की दृष्टि से है, जिनकी रचना ग्रन्थकार ने स्वयं की है।

नंजराज मैसूर के राजा के श्वसुर तथा सर्वाधिकारी थे। राजा तो नाम का ही राजा था, वस्तुतः राज्य में उनका ही प्रभुत्व था। १८३९ ई० से १७५९ ई० तक उनका काफी बोलबाला था। इन्हीं नंजराज की प्रशस्ति में नरसिंह कवि ने 'नंजराजयशोभूषण' की रचना की थी। प्रस्तुत ग्रन्थ की शैली 'प्रतापरुद्रीयम्' अथवा 'प्रतापरुद्रयशोभूषण' की है। अलंकारों के लक्षण के साथ उदाहरण के रूप में जो छन्द दिये गये हैं, उनमें नंजराज की प्रशस्ति गाई गई है। 'चित्रकाव्य' के इसमें केवल तीन श्लोक हैं, जिनमें दो 'अष्टदलकमल' के हैं और एक 'हारबन्ध' का।[3] इन चित्रों में किसी प्रकार की नवीनता नहीं दीख पड़ती। 'कमलबन्ध' के दोनों श्लोकों के न्यास अलग-अलग हैं किन्तु उनमें कोई विशेष अन्तर नहीं दीखता।

'कवीन्द्रकर्णाभरण' के रचयिता विश्वेश्वर पण्डित हैं।[4] प्रस्तुत पुस्तक भी लक्षण ग्रन्थ ही है, किन्तु सामान्य अलंकार की पुस्तक न होकर, इसकी रचना धर्मदास रचित

---

१. चित्रबन्ध स्तोत्र के श्लोक २४ तथा २५ से खड्ग का निर्माण होता है, श्लोक २५ मुरज का भी है।

२. ब० वि० जरनल, कला सं० ३१, पृ० ८८,

३. न० रा० य०, पृ० १५७, १५८ तथा १५९, (गायकबाड़ ओरियन्टल सीरिज संख्या ४७)

४. काव्यमाला सीरिज, अष्टमगुच्छ में संगृहीत प्रस्तुत रचना के आदि में प्रदत्त कवि परिचय

'विदग्धमुखमण्डन' के अनुकरण पर की गई है। इसके अन्तर्गत ५८ प्रकार की प्रश्नोत्तर जातियों के लक्षण तथा उदाहरण हैं।[1] उदाहरण चूँकि कवि के द्वारा ही रचित हैं अतः प्रस्तुत स्थल पर इसका उल्लेख अपेक्षित है, अन्यथा 'विदग्धमुखमण्डन' के अतिरिक्त इसमें कुछ नवीन नहीं है। यहाँ तक कि पुस्तक के प्रारम्भ में, इसके अन्तर्गत विवेचित चित्रभेदों की जो सूची दी गई है, उसका क्रम भी 'विदग्धमुखमण्डन' का ही है।[2] इस पुस्तक में भी प्रश्नों के उत्तरों से निर्मित कतिपय बन्धों की योजना की गई है, जिनमें 'चक्र', 'पद्म', 'काकपद' तथा 'नागपाश' उल्लेखनीय हैं।

१९वीं शताब्दी की रचनाओं में रघुनाथाचार्य के पुत्र वेंकटाचार्य अथवा वेंकटध्वरि लिखित 'लक्ष्मीसहस्र'[3] का नाम उल्लेखनीय है। 'पादुकासहस्र' के समान ही प्रस्तुत ग्रन्थ में भी लगभग १००० श्लोक लक्ष्मी की स्तुति से सम्बद्ध हैं। सम्पूर्ण ग्रन्थ २५ स्तबकों (अध्यायों) में विभक्त है, जिनमें बाइसवाँ स्तबक 'चित्र-स्तबक' है। इस स्तबक के नाम से ही स्पष्ट है कि इसके अन्तर्गत चित्ररचनाएँ हैं। किन्तु लेखक ने सम्भवतः चित्रशब्द का प्रयोग कुछ विस्तृत अर्थ में किया है। प्रस्तुत स्तबक के अन्तर्गत चित्रप्रकारों के श्लोकों के अतिरिक्त ऐसे कितने ही श्लोक हैं जिनमें केवल 'यमक' अथवा 'अनुप्रास' की योजना है।[4] इन श्लोकों के लिये भी कवि ने 'चित्र' शब्द का प्रयोग किया है, जैसे 'अनुप्रासचित्र' अथवा 'यमक चित्र'।

लक्ष्मीसहस्र के कवि ने प्रस्तुत ग्रन्थ में १२ उत्कृष्ट बन्धों के श्लोकों की रचना की है। इन बन्धों में एक 'अष्टदलकमल' तथा दो 'चक्र' क्रमशः 'षडर' तथा 'अष्टार' नामांक

१-२. सूची निम्न है—

"व्यस्तं समस्तं द्विःपूर्वं विशिष्टं च परस्परम्।
एकालापं प्रभिन्नं च भेद्यभेदकमूर्जितम् ॥५॥
सालंकारसकौतुक पृष्टोत्तरपृष्टपूर्वक प्रश्नम्।
भग्नादिमध्यचरमोत्तरं कथितनिह्नुतिविषमम् ॥६॥
वृत्तं नामाख्यातं तार्कं सौत्रं च शब्दशास्त्रीये।
वर्णाद्वाक्याच्छ्लोकादर्धात्पादात्तथोत्तरं परतः ॥७॥
चक्राम्बुज काकपदं गोमूत्रीसर्वतोभद्रम्।
भवतिगतप्रत्यागतमधिकापचिताक्षरं च शृंखलया ॥८॥
अथनागपाशचित्रे प्रहेलिकाहृद्यमथगूढम्
स्तुतिनिन्दा च द्वयर्थकमपह्नुतिबिन्दुमद्गुप्तम् ॥९॥
मात्राबिन्दुविसर्गाक्षरस्थितिव्यंजनच्युतकम्।
च्युतदत्ताक्षरमित्यपि जातय इभबाणसम्मिताः प्रोक्ताः ॥"१०॥

—काव्यमाला, अष्टमगुच्छक द्वितीया वृत्ति (१९११) पृ० ५३

तुलना के लिये द्रष्टव्य द्वितीय अध्याय, पृ० ३९, पा० टि० ४ में उद्धृत विदग्धमुखमण्डन की सूची।

३. रामशास्त्री तैलंग द्वारा सम्पादित तथा चौखम्बा से १९०६ ई० में प्रकाशित

४. द्रष्टव्य, ल० स०, स्तबक २२, श्लोक १, २, २२, ४३, ४४ तथा ४९ से ५७ तक

हैं, जिनसे कवि के पिता, कवि तथा उसके काव्य के नाम निःसृत होते हैं। बन्धों के नाम निम्न हैं—

"**विशृंगाटक, द्विचतुष्कचक्रबन्ध, चतुरस्र (चतुरर) चक्र, षोडशदलपद्म, हार, मुरज, गरुड़गतिचक्र, नामांकअष्टदलपद्म, नामांक षडरचक्र, नामांक अष्टारचक्र, गवाक्षबन्ध तथा अष्टदलपद्म।**

इन बन्धों में 'गवाक्षबन्ध' बिलकुल नवीन है। प्रस्तुत ग्रन्थ के पूर्व किसी भी कृति में यह बन्ध नहीं दीख पड़ता। अन्य बन्ध पहले भी रचे गये हैं। 'विशृंगाटक' बन्ध पूर्व-कथित 'द्विशृंगाटक बन्ध' है। नामांक बन्धों में 'अष्टदल पद्म बन्ध' में पद्मदलों के दलान्तों पर न्यस्त वर्णों के पाठ से कवि के पिता का नाम निःसृत होता है। इस रूप में प्राप्त वाक्यांश है—

"रघुनाथ सुनु कृति"।

किन्तु इससे यह सन्देह भी उत्पन्न होता है कि प्रस्तुत बन्ध का श्लोक वेंकटाचार्य द्वारा रचित न होकर उनके पिता की रचना तो नहीं है? अन्य नामांक चक्रों से कवि का नाम ही निःसृत होता है। 'षडरचक्र' के तृतीय तथा षष्ठ वलयों में न्यस्त वर्णों के पाठ से 'वेंकटयज्वनः कमलासहस्र' गर्भांक की प्राप्ति होती है। 'अष्टारचक्र' से एक सम्पूर्ण श्लोक की प्राप्ति होती है। श्लोक निम्न है—

"आत्रेयवंशपालेन वेंकटाचार्यकवीन्दुना।
मीमांसवतंसेन सा नुता कमलालया॥"[1]

प्रस्तुत श्लोक के उद्धार के हेतु हमें चक्र के प्रथम, तृतीय, षष्ठ तथा अष्टम वलयों में न्यस्त वर्णों का पाठ करना होगा। इस रूप में प्रस्तुत बन्ध से हमें कवि का पूर्ण परिचय प्राप्त होता है।

बन्धेतर चित्र के अन्तर्गत कवि ने 'स्वर', 'स्थान', 'वर्ण', 'गूढ़' तथा 'गतिचित्रों' के कतिपय भेदों के श्लोकों की रचना की है। 'स्वर' के अन्तर्गत 'एक', 'द्वि' तथा 'त्रिस्वर चित्रों' के उदाहरण हमें प्रस्तुत ग्रन्थ में मिलते हैं। 'स्थानचित्र' के अन्तर्गत वेंकटाचार्य ने केवल 'निरोष्ठ्य' की रचना की है। इसके अन्य भेदों के श्लोक हमें 'लक्ष्मीसहस्र' में नहीं मिलते। 'स्वरचित्र' के समान 'वर्णचित्र' के भी 'एकाक्षर', 'द्व्यक्षर' तथा 'त्र्यक्षर' के श्लोक हमें यहां मिलते हैं। किन्तु दो श्लोक ऐसे हैं जिनमें 'वर्ण' तथा 'स्वरचित्रों' की सम्मिलित योजना दीख पड़ती है। एक श्लोक में केवल दो स्वर तथा दो व्यंजनों का प्रयोग हुआ है जबकि दूसरे में एक स्वर तथा दो व्यंजन प्रयुक्त हुए हैं। 'गतिचित्र' के 'अर्धभ्रम', 'गोमूत्रिका', 'पद', 'पाद', 'अर्ध' तथा 'श्लोकान्तर प्रतिलोमानुलोम' की रचना तो हुई ही है, इनके अतिरिक्त 'गोमूत्रिका' के अन्य कई उत्कृष्ट रूपों के तथा 'चतुरंग-

१. लक्ष्मीसहस्र, स्तबक २४, श्लोक ३६

तुरंग' अथवा 'अश्वगति' के उस रूप के श्लोक की रचना भी की गई है, जिसके गर्भ से अन्य श्लोक निःसृत होता है। 'सरस्वतीकण्ठाभरण के अतिरिक्त 'अश्वगति' की यह रचना अन्यत्र बहुत कम दीख पड़ती है। 'गोमूत्रिका' के भेदों में 'भिन्नवृत्त अनुलोम' तथा 'भिन्नवृत्त प्रतिलोम गोमूत्रिका' के साथ 'अयुग्माक्षर गोमूत्रिका' की रचना भी यहाँ हुई है। प्रस्तुत स्तबक के श्लोक ४५, ४६ नथा ४७ की रचना इस प्रकार हुई है कि ४५ तथा ४६ में 'श्लोकगोमूत्रिका' है, किन्तु ४५ तथा ४७ में 'श्लोक विपरीत गोमूत्रिका'। साथ ही 'द्विचतुष्कचक्रबन्ध' का श्लोक भी इस प्रकार रचा गया है कि प्रस्तुत बन्ध के साथ-साथ 'गोमूत्रिका' की योजना भी इस श्लोक में है। 'गूढ़' अथवा 'गुप्तचित्र' के प्रस्तुत स्थल पर चार श्लोक प्राप्त होते हैं। इनमें क्रमशः 'प्रथम' तथा 'चतुर्थपादगूढ़' तथा 'क्रिया' और 'अधिकरणगुप्त' के उदाहरण हैं। कुल मिलाकर प्रस्तुत पुस्तक में बन्ध तथा बन्धेतरचित्रों की जितनी रचनाएँ की गई हैं, उनमें अधिकांश उत्कृष्टकोटि की हैं। कठिन बन्धों के साथ कवि ने अन्यत्र से उनके लक्षणों को भी उद्धृत कर दिया है। इस प्रकार इस क्षेत्र में प्रस्तुत कवि का स्थान पर्याप्त महत्त्व का सिद्ध होता है।

इसी शताब्दी में 'लक्ष्मीसहस्र' के समान वेंकटेश्वर कवि रचित 'चित्रबन्धरामायण' का उल्लेख मिलता है।[1] प्रस्तुत ग्रन्थ में सम्पूर्ण रामायण की कथा 'चित्रबन्धयुक्त' श्लोकों में कही गई है। इन श्लोकों में 'कंकण', 'छत्र', 'अन्दोलिका' आदि बन्धों की योजना की गई है।[2] इसके अतिरिक्त प्रस्तुत ग्रन्थ के सम्बन्ध में अधिक विवरण प्राप्त नहीं होता।

रामकथा का आधार लेकर प्रस्तुत शताब्दी में अन्य कई रचनाएँ की गईं जो चित्र की सीमा में आती हैं। इन रचनाओं में वेंकटेश कवि का 'रामचन्द्रोदय', कृष्णमूर्तिशास्त्री तथा चर्लभाष्यकार शास्त्री के 'कंकणबन्ध रामायण' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।[3] 'रामचन्द्रोदय' की रचना २६ अध्यायों में की गई है जिनके अन्तर्गत अनेक प्रकार की चित्ररचनाएँ भी हैं। 'कंकणबन्ध' का एक श्लोक भी उसमें है, जो निम्न है—

"कामामामायासारामे हामामारा दारागासा।
लापासेनापायासामा यानीष्ठोभादाया दारा॥"[4]

'कंकणबन्ध' के साथ प्रस्तुत श्लोक 'चतुः स्वरचित्र' का भी उदाहरण प्रस्तुत करता है, कारण सम्पूर्ण श्लोक में केवल 'आ', 'ई', 'ए' तथा 'ओ', इन चार स्वरों का प्रयोग किया गया है।

कृष्णमूर्तिशास्त्री तथा चर्लभाष्यकार शास्त्री रचित दोनों ही 'कंकणबन्धरामायण' एक ही शैली में लिखी गई हैं।[5] इन दोनों पुस्तकों में केवल एक-एक श्लोक की ही

१. क्लासिकल संस्कृत साहित्य का इतिहास—कृष्णमाचारियर, अनुच्छेद ३४१
२. उपरिवत्
३. उपरिवत्, अनुच्छेद क्रमशः ३४१ तथा ९७
४. उपरिवत्, अनु० ३४१
५. उपरिवत्, अनु० ९७

रचना की गई है, जो 'कंकण बन्ध' का श्लोक है। किन्तु इस श्लोक की विचित्रता यह है कि कहीं से भी आरम्भ करके ऋजुगति से तथा विपरीतगति से पढ़ने पर हमें क्रमशः ६४ तथा १२८ छन्द प्राप्त होते हैं। इन छन्दों को एक क्रम में सजाकर इस प्रकार टीका की गई है कि इनसे हमें सम्पूर्ण रामकथा की प्राप्ति होती है। यही कारण है कि इस एक श्लोक को ही रामायण की संज्ञा दी गई है। इसे 'कंकणबन्ध' कहने का कारण यह है कि किसी भी स्थान से पाठ आरम्भ करने के लिये यह आवश्यक है कि इन श्लोकों को मण्डलाकार लिखा जाय, फलतः यह न्यास 'कंकण' के आकार के रूप में हमारे सम्मुख प्रस्तुत होता है। दोनों 'कंकणबन्ध रामायण' के श्लोक क्रमशः निम्न हैं—

"नेतादेवालीनामाशाधानाधीनानेकालोकी।
मास्यानंभारव्यायोगीशं पायादेतं रामेराजा॥"[1]

SS SS SS
रामानाथा भारासाराचारावारागोपाधारा।
धाराधाराभीमाकारा पारावारा सीतारामा॥"[2]

साथ ही दूसरे श्लोक में 'त्रिस्वरचित्र' की योजना भी है। इस प्रकार के श्लोक वस्तुतः 'कामधेनु चित्र' के श्लोक हैं। सैद्धान्तिक विवेचन के क्रम में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि 'कामधेनु' के अन्तर्गत इस प्रकार के छन्द भी आते हैं जिनको हम जहाँ से आरम्भ करें हमें एक पूर्ण छन्द की प्राप्ति होती है।[3] हिन्दी के कतिपय कवियों ने इसे 'सर्वतोभद्र' का दूसरा भेद भी कहा है।[4] चूँकि इन 'कंकणबन्ध रामायणों' की रचना १९वीं शताब्दी में हुई है, अतः हिन्दी कवियों द्वारा प्रदत्त 'कामधेनु' शीर्षक इसके लिये सटीक बैठता है। इस प्रकार के छन्दों का अध्ययन सैद्धान्तिक विवेचन के अन्तर्गत किया जा चुका है।

नृसिंहाचार्य के पुत्र वेंकटाचार्य ने भी एक पुस्तक 'कमलमालिका स्तोत्र' की रचना इसी शताब्दी में की।[5] इस पुस्तक का भी चित्ररचना की दृष्टि से पर्याप्त महत्त्व है। शीर्षक के अनुकूल प्रस्तुत ग्रन्थ में लक्ष्मी की स्तुति में 'कमलबन्ध' से युक्त श्लोकों की रचना की गई है। इस प्रकार कवि इन कमलों की मानों एक माला तैयार करता है जो देवी लक्ष्मी को समर्पित है।

---

१. क्लासिकल संस्कृत साहित्य का इतिहास, अनुच्छेद ३४१, पा० टि० ३
२. उपरिवत्, पा० टि० ५
३. द्रष्टव्य, प्रस्तुत ग्रन्थ के चतुर्थ अध्याय में कामधेनु का विवेचन, पृ० ३२९
४. काशिराज, चित्रचन्द्रिका, प्रकाश ५, छन्द २४-२५
केशवदास, कविप्रिया, प्रभाव १६, छन्द ७७ आदि
५. क्लासिकल संस्कृत साहित्य का इतिहास—कृष्णमाचारियर, अनुच्छेद ३४१

उपर्युक्त रचनाओं के अतिरिक्त निट्ठलउपमक वेंकटेश्वर कवि ने एक अन्य प्रकार के 'चित्रकाव्य' की रचना अपनी पुस्तक 'रामायणसंग्रह' में की है।[1] यह ग्रन्थ गद्य-पद्य-मिश्रित है तथा ३० अध्यायों में इसका विस्तार है। प्रस्तुत ग्रन्थ में मूल रूप से 'रामायण' की कथा कही गई है, किन्तु इसके अन्तर्गत छन्दों की रचना इस प्रकार हुई है कि उनके अन्दर से चार अन्य रचनाएँ निकल आती हैं। यही कारण है कि इस पुस्तक को 'चतुष्चित्र गर्भ' भी कहा जाता है।[2] अन्य रचनाओं के नाम, निःसरण का क्रम तथा परिचय निम्न हैं—

प्रस्तुत पुस्तक के अयोध्याकाण्ड से युद्धकाण्ड तक के छन्दों के प्रथम पाद के केवल प्रथम वर्ण यदि हम पढ़ते चलें तो हमें 'गौरी-विवाह' नामक ग्रन्थ की प्राप्ति होती है, जिसका वर्ण्यविषय शिव तथा पार्वती का विवाह होता है।

इसी प्रकार यदि अयोध्याकाण्ड से युद्धकाण्ड तक के इन्हीं छन्दों के दूसरे चरणों के प्रथम वर्ण एक साथ पढ़े जायँ तो जिस रचना की प्राप्ति हमें होती है उसका नाम 'श्रीरंगादिक्षेत्र महात्म्य' है। प्रस्तुत रचना के अन्तर्गत १३ समाधियों का उनके आध्यात्मिक इतिहास तथा महत्त्व के साथ, वर्णन है।

उपर्युक्त छन्दों के तृतीय चरणों के प्रथम वर्णों का पाठ यदि एक साथ हो तो हमें 'भगवदावतारचरित' नामक एक तीसरी रचना की प्राप्ति होती है, जिसका वर्ण्यविषय विष्णु का अवतार है।

चौथी निःसृत रचना का नाम 'द्रौपदीकल्याण' है और पूर्व रचनाओं के समान ही उपर्युक्त छन्दों के चतुर्थ पादों के प्रथम वर्णों को मिलाकर पढ़ने से इसकी प्राप्ति होती है। इसका वर्ण्यविषय द्रौपदीविवाह है।

उपर्युक्त चारों रचनाओं के अतिरिक्त बालकाण्ड के छन्दों के प्रथम वर्णों के पाठ से एक पंचम रचना 'रामकवच' की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार बालकाण्ड से कवि का नाम तथा परिचय भी हमें प्राप्त होता है।

चित्र का यह प्रकार द्वि-त्र्यादिसन्धान काव्यों से कहीं कठिन है। सन्धानकाव्यों में एकाधिक कथाओं का आधार श्लेष होता है, जबकि प्रस्तुत रचना में वैसी कोई बात नहीं है। यहाँ छन्दों के सभी चरणों के प्रथम वर्ण को इस प्रकार सजाया गया है कि उनसे एक नवीन काव्य का निर्माण होता है। यह एक रचना ही कवि की उस योग्यता और महत्त्व का परिचायक है, जो अन्यत्र दुर्लभ है। कौतूहल और आश्चर्योत्पादक तो यह रचना है ही, अपने क्षेत्र में अकेली भी है।

इसी शताब्दी के अन्तर्गत श्रीनिवासकवि सार्वभौम द्वारा रचित ग्रन्थ 'कृष्णराज-जयोत्कर्ष'[3] भी यथेष्ट महत्त्व का है। प्रस्तुत ग्रन्थ भी गद्य-पद्य मिश्रित है। इसका महत्त्व

१. क्लासिकल संस्कृत साहित्य का इतिहास—कृष्णमाचारियर, अनु० ३४०

२. उपरिवत्

३. उपरिवत्, अनु० ३४४

'भट्टिकाव्य' के १३वें सर्ग के समान एक साथ संस्कृत तथा कनारी दोनों भाषाओं की छन्द-रचना की दृष्टि से है। यदि सामान्यरूप से देखा जाय तो इस रचना की भाषा संस्कृत दीख पड़ती है। किन्तु विरामचिह्नों में कतिपय परिवर्तन कर देने से यही रचना कनारी भाषा की बन जाती है।[1]

ईसा की प्रस्तुत शताब्दी में भी कई रचनाएँ ऐसी की गई हैं, जिनमें चित्र की रचनाएँ हैं। आधुनिक युग में संस्कृत में यों भी बहुत कम लिखा जा रहा है, पर चित्र-रचनाओं की ओर आज हमारी प्रवृत्ति बिलकुल नहीं है। फिर भी यदि कतिपय रचनाओं में इसको भी स्थान मिलता है तो यह इसका प्रमाण है कि ये रचनाएँ काव्यजगत् में कितनी प्रिय थीं। बीसवीं शताब्दी में रचित संस्कृत की पाँच पुस्तकों में 'चित्रकाव्य' की रचनाएँ उपलब्ध हुई हैं। इनमें रामरूप पाठक प्रणीत 'चित्रकाव्य कौतुकम्' विशेष उल्लेखनीय है। अन्य चार रचनाओं में भी 'चित्र' के कतिपय श्लोक हैं। नवीनता की दृष्टि से इन पुस्तकों का कोई विशेष महत्त्व नहीं है। इनका महत्त्व इस परम्परा को जीवित रखने की दृष्टि से अधिक है।

श्री अखिलानन्द शर्मा लिखित 'दयानन्ददिग्विजय' एक महाकाव्य है। हेमचन्द्र के अनुसार चूंकि महाकाव्य में चित्र की भी कुछ रचनाएँ आवश्यक हैं,[2] अतः अपने ग्रन्थ को महाकाव्य की दृष्टि से पूर्णतः निर्दोष बनाने के लिये शर्मा जी ने इसके १४वें, १८ वें तथा १९ वें सर्गों में चित्र की कतपिय रचनाएँ भी की हैं।[3] इन रचनाओं के यद्यपि आठ ही श्लोक हमें प्राप्त होते हैं, किन्तु इनमें लेखक ने 'स्वर', 'वर्ण', 'गति' तथा 'बन्ध' चित्रों के उदाहरण दिये हैं। इन श्लोकों में क्रमशः 'षोडशदलकमल', 'छत्र', 'हार', 'चक्र', 'चतुर्दलकमल' तथा 'व्योम' बन्धों की रचना हुई है। अन्य दो श्लोकों में एक 'गोमूत्रिका' है, दूसरे श्लोक की रचना इस प्रकार की गई है कि एक साथ ही वह 'सर्वतोभद्र' अथवा 'सर्वतोगमन', 'त्र्यक्षर' तथा 'द्विस्वरचित्र' के उदाहरणों के रूप में हमारे सम्मुख उपस्थित होता है। इनके अतिरिक्त प्रस्तुत पुस्तक में इस दृष्टि से अन्य कोई उल्लेखनीय वस्तु नहीं है।

महामहोपाध्याय (सी० आइ० ई०) श्री गंगाधरशास्त्री रचित खण्डकाव्य 'अलि-विलासिसंलापो'[4] में भी तीन श्लोक ऐसे हैं जिनमें 'चित्र' की योजना है। इन श्लोकों में कोई उत्कृष्ट चित्ररचना नहीं है, वरन् अपेक्षाकृत गौण भेदों की रचना है। प्रस्तुत पुस्तक के पंचम शतक की श्लोक संख्या १०३ में 'पादगोमूत्रिका', १०५ में 'च्युतदत्त' तथा १०८ में 'क्रियाकर्मकर्तृ गुप्त' की योजना की गई है। इस प्रकार 'चित्रकाव्य' की दृष्टि से

१ संस्कृत साहित्य का इतिहास—कृष्णमाचारियर

२. द्रष्टव्य, पुस्तक की भूमिका, पृ० ७ तथा काव्यानुशासन, कारिका २०१, अध्याय ८, सूत्र ६ की वृत्ति

३. द० दि०, सर्ग १४, श्लोक १९०, १९४, १९५, १९६, ३०१; सर्ग १८, श्लोक ९४ तथा सर्ग १९ श्लोक १६४, २०८

४. संवत् १९६४ में प्रभाकर ऐण्ड कं० से प्रकाशित

प्रस्तुत पुस्तक का कोई महत्त्व नहीं दीखता, यों अत्यल्प मात्रा में ही सही, पर इन रचनाओं में परम्परा का पालन तो हुआ ही है।

इनके अतिरिक्त पण्डित देवदत्तशर्मा विरचित 'बन्धरत्नाङ्कुर', अथवा 'लघुबन्धरत्नावली'[1] नामक लघुपुस्तिका में भी हमें बन्धों के श्लोक तथा चित्र में उनका न्यास मिलता है। प्रस्तुत पुस्तिका में कुल १८ श्लोक हैं, जिनमें अन्त के पाँच श्लोकों का न्यास पाँच बन्धों के चित्र में किया गया है। ये बन्ध हैं—'पद्म', 'हार', 'खड्ग', 'नाग' तथा 'छत्र'। प्रारम्भ के तेरह श्लोकों में अधिकांश लक्षण के श्लोक हैं, किन्तु इनमें भी 'षोडशदल कमल', 'खड्ग' तथा 'हार' के श्लोक हैं। बन्धेतर चित्रों की रचना इस पुस्तिका में नहीं हुई है। किन्तु इसके कलेवर को देखते हुए इस क्षेत्र में इसका योग कम नहीं है, गो कि नवीनता की दृष्टि से इसमें भी कुछ उल्लेखनीय नहीं है।

चित्ररचना की इस परम्परा को आधुनिक काल में सुरक्षित रखनेवाली पुस्तकों में देवी प्रसाद शुक्ल रचित 'चित्रोपहार'[2] भी है। प्रस्तुत पुस्तक की रचना स्वामी गोविन्दानन्द विजय के प्रशस्तिस्वरूप की गई है। पुस्तक के पूर्वार्द्ध में हमें बन्ध तथा बन्धेतर चित्रों के कतिपय श्लोक प्राप्त होते हैं। 'बन्ध' तो केवल दो ही हैं—'अष्टदल कमल' तथा 'नामांकचक्र', जिसके तृतीय तथा सप्तम वलयस्थित वर्णों के पाठ से 'श्री गोविन्दानन्दो-विजयतेतमां' वाक्यांश की प्राप्ति होती है, किन्तु बन्धेतर चित्रों के कई श्लोक दीख पड़ते हैं। इन श्लोकों में 'द्व्यक्षर', 'त्र्यक्षर', 'चतुरक्षर', 'गूढ़ चतुर्थ' तथा 'गतप्रत्यागत' की रचना की गई है। स्पष्ट है कि नवीन चित्रों की रचना अथवा 'चित्रकाव्य' में किसी प्रकार की नवीन देन की दृष्टि से इस पुस्तक का कोई महत्त्व नहीं है। इसका महत्त्व केवल परम्परा के निर्वाह की दृष्टि से ही हो सकता है।

इन पुस्तकों के अतिरिक्त श्री माहेश्वराचार्य साहिबकौल विरचित 'देवीनाम विलास'[3] में भी कतिपय चित्ररचनाएँ प्राप्त होती हैं। प्रस्तुत पुस्तक के रचनाकाल का यद्यपि

---

१. १९२९ ई० में वृन्दावन से प्रकाशित

२. काशी से प्रकाशित। प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशनवर्ष के स्थान में यद्यपि सन् १९२० लिखा है किन्तु रचनातिथियुक्त श्लोक से १९७५ वि० प्राप्त होता है। श्लोक निम्न है—

"शर नग नव भूमी संमिते वैक्रमेऽब्दे।
विलसति सति शुक्ले मासि पक्षे वलक्षे॥
प्रतिपदि हरिदश्वे शुक्ल देवी प्रसादा—
भिध सुकवि कृतोऽयं पूर्तिमापत्प्रबन्धः॥"

इस प्रकार शर—५
नग—७
नव—९
भूमि—१ यानी १९७५

३. १९४२ में जम्मू और काश्मीर राज्य के अनुसन्धान विभाग से प्रकाशित (**Kashmir series of Texts and studies no. 43**)

ठीक पता नहीं चलता, पर पुस्तक देखने से ऐसा लगता है कि यह बहुत पुरानी नहीं है। काश्मीर-संस्कृत ग्रन्थावली के अन्तर्गत प्रकाशित इस पुस्तक में हमें तीन बन्धों के तथा छह बन्धेतर चित्रों के श्लोक मिलते हैं। बन्धों में 'मुरज', 'षडरचक्र' तथा 'अष्टदल पद्म' हैं, बन्धेतर चित्रों में 'एकाक्षर', 'द्व्यक्षर', 'त्र्यक्षर', 'अर्धभ्रम' तथा 'सर्वतोभद्र' की योजना है। इस प्रकार हम पाते हैं कि प्रस्तुत पुस्तक में अत्यन्त प्रचलित चित्रों की रचना की गई है। फलतः इस पुस्तक का महत्त्व भी केवल परम्परा-निर्वाह की दृष्टि से है।

पटना स्थित 'चैतन्य पुस्तकालय' में एक अज्ञातनामा हस्तलिखित पुस्तक की खण्डित प्रति उपलब्ध है, जिसमें २४ बन्धचित्रों के छन्द तथा चित्र दिये गये हैं। प्रस्तुत पुस्तक के केवल छह पत्र प्राप्त हैं और ये सारे चित्र उन्हीं में हैं। इन २४ बन्धचित्रों के अतिरिक्त एक छन्द 'आदि-मध्य-अन्ताक्षरी' का भी है। पुस्तक के लेखक का नाम कुछ स्पष्ट नहीं होता। यो पुस्तक के अन्तर्गत तीन चित्रबन्धों के न्यास से एक नाम 'दौलतविजयगणि' प्राप्त होता है। किन्तु जिस रूप से यह नाम उक्तस्थानों में लिखा गया है, उससे यही पता चलता है कि प्रस्तुत 'गणि' पुस्तक का रचयिता नहीं वरन् लिपिकार है। इन बन्धों में 'कालबन्ध' के बीच में लिखा है—

"कवित कालबन्ध बे-पं।
दौलत विजयगणी लषितं ॥"

इसी प्रकार 'नागबन्ध चित्र' के बीच में लिखा गया है—

"दौलत विजय गणि लषितं श्री श्री श्री जीसत्क
राधनपुर मध्ये।"

'आदि-मध्य-अन्ताक्षरी' कवित्त के नीचे लिखा गया है—

"इति वसता जी कृतयाश्चजिनकवित।
लषीतं दौलतविजे गणी ॥ राधन पुरमध्ये ॥"

इस प्रकार उपर्युक्त वाक्यों से हमें केवल इतना पता चलता है कि राधनपुर में दौलतविजय गणि ने इसे लिखा। अन्तिम कवित्त के सम्बन्ध में स्पष्ट है कि वसताजी नामधारी व्यक्ति का रचा कवित्त है जिसे दौलतविजय गणि ने लिखा है। यदि सभी बन्धों के लिये हम यही मानें तो दौलतविजय गणि केवल लिपिकार ठहरते हैं। साथ ही यह भी सम्भव है कि इनमें से अन्य रचनाओं के रचयिता भी दौलत विजय गणि हों। किन्तु इससे इतना स्पष्ट है कि प्रस्तुत रचना किसी जैन कवि की कृति है। यदि यह पुस्तक खण्डित नहीं होती तो 'चित्रकाव्य' की अधिक सामग्री हमारे सम्मुख आ पाती।

प्रस्तुत पुस्तक में जिन २५ चित्ररचनाओं के छन्द तथा न्यास हैं। वे निम्न हैं—

१. शूलबन्ध, २. छत्रबन्ध, ३. बीजपूर युग्मबन्ध, ४. पादपीठ बन्ध, ५. स्वस्तिक बन्ध, ६. चामरयुग्म बन्ध, ७. दर्पणबन्ध, ८. मुरजबन्ध, ९. मृदंग बन्ध, १०. सिंहासन बन्ध, ११. स्वस्तिक बन्ध, १२. निस्वान युग्म, १३. दम्भिका युग्म श्लोक, १४. नाग बन्ध, १५. कालबन्ध, १६. समसेरबन्ध, १७. जालीबन्ध, १८. चौकीबन्ध, १९. छत्रबन्ध, २०. चामरबन्ध, २१. सांकलबन्ध, २२. जालीबन्ध, २३. मुगतागृहदोहरा, २४. छत्रबन्ध, तथा २५. आदि-मध्य-अन्ताक्षरी।

इनमें से क्रम संख्या १ से १३ तक के चित्रों में संस्कृत श्लोकों का न्यास है जबकि अन्य (१४ से २५ तक) चित्रों में हिन्दी के छन्द हैं। इस प्रकार प्रस्तुत पुस्तक में संस्कृत तथा हिन्दी दोनों में ही चित्ररचनाएँ की गई हैं। लिपि शैली के अनुसार यह अनुमान किया जा सकता है कि प्रस्तुत रचना ईसा की १८वीं शताब्दी की होगी। उपर्युक्त तालिका में जितने संस्कृत बन्धों के नाम हैं, उनमें 'निस्वान' तथा 'दम्भिका' का उल्लेख सर्वप्रथम हमें इसी रचना में मिलता है। अन्य बन्धों का उल्लेख इसके पहले भी हो चुका है। हिन्दी के बन्धों में 'जालीबन्ध' तथा 'मुगतागृह' के उदाहरण अन्यत्र नहीं दीख पड़ते हैं। यदि यह पुस्तक सम्पूर्ण प्राप्त हो सकती तो इससे 'चित्रकाव्य' के विशेषकर बन्धचित्रों के स्वरूपविकास पर अधिक प्रकाश पड़ता। यों भी जिस रूप में यह प्राप्त है, इस क्षेत्र में इसका महत्त्व कम नहीं है। विशेषकर ऐसी रचना सम्भवतः एक भी नहीं है जिसमें संस्कृत तथा हिन्दी दोनों भाषाओं के बन्धों की एक साथ ही और इतनी संख्या में रचना की गई हो।

कहा जा चुका है कि पण्डित रामरूप पाठक प्रणीत 'चित्रकाव्य कौतुकम्' इस परम्परा की उल्खलेनीय रचना है। इस ग्रन्थ का प्रणयन १९५० ई० के आस-पास हुआ। १९५१ में इसके कुछ अंश बिहार के तत्कालीन राज्यपाल श्री एम० एस० (माधव श्रीहरि) अणे को लेखक ने भेंट किया था। पुस्तक में इस सम्बन्ध में राज्यपाल द्वारा लेखक को लिखे गये पत्र की प्रतिलिपि उपलब्ध है जिसमें उन्होंने लेखक की विद्वत्ता एवं रचना की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

इस पुस्तक में ५५ चित्रबन्ध उपलब्ध हैं। इन में से चार—'सर्वतोभद्र', 'अर्धभ्रम', 'शरयन्त्रबन्ध' तथा 'तुरङ्गपदबन्ध' 'गतिचित्र' के अन्तर्गत आते हैं, शेष ५१ 'आकारचित्र' के बन्ध हैं। ये रचनाएँ निम्नलिखित हैं—

१. श्री, २. तिलक, ३. मुरज, ४. मुरजप्रस्तार-१, ५. मुरजप्रस्तार-२, ६. एकाक्षर मुरज, ७. खड्ग, ८. मुसल, ९. धनु, १०. शर, ११. त्रिशूल, १२. शक्ति, १३. हल, १४. महाचक्र, १५. शंख, १६. षडरचक्र-१, (द्वाशाक्षरश्लेष), १७. षडरचक्र-२ (चतुर्विंशत्यक्षर-श्लेष), १८. गदा, १९. पद्म-१ (अष्टदल), २०. अष्टदल पद्म-२ (गर्भांकसहित), २१. अष्टदल-पद्म-३ (गर्भांकसहित), २२. अष्टदल पद्म-४ (गर्भांक सहित), २३. षट्दलपद्म-१ (गर्भांक सहित), २४. षट्दल पद्म-२, २५. अष्टदल पद्म-५, २६. अष्टदल पद्म-६, २७. अष्टदल-पद्म-७ (कवि नामांक युक्त), २८. सर्वतोमुख, २९. सरोवर, ३०. कूप, ३१. उलूखल, ३२. प्रेमलता, ३३. माला, ३४. प्रेममाला (हार), ३५. व्योम, ३६. सूर्य, ३७. चन्द्र, ३८. शिविका, ३९. दर्पण, ४०. छत्र, ४१. मेरु, ४२, वृक्ष, ४३. द्विचतुष्क, ४४. द्विभृङ्गाटक, ४५. विविडित, ४६. ढाल, ४७. कमण्डलु, ४८. सुवर्णचत्वर, ४९. गज. ५०. नन्दि और ५१. फणि।

इन सभी बन्धों के चित्रों की रचना भी इस पुस्तक में हुई है, तथा सभी चित्रों के साथ उनके निर्माण के लक्षण के श्लोक भी दिये गये हैं। सभी चित्रों में न्यस्त श्लोक स्वतः ग्रन्थकार द्वारा रचित हैं किन्तु 'तिलक बन्ध', 'षट्दल पद्म-१' 'षट्दल पद्म-२' तथा 'नन्दिबन्ध' के लक्षण भी ग्रन्थकार ने स्वकृत ही दिये हैं। अन्य बन्धों के लक्षणों में 'सर्व-तोभद्र', 'मुरजबन्ध', 'मुरजप्रस्तार' 'एकाक्षर मुरज', 'पद्मबन्ध' के तीन भेद, 'व्योमबन्ध',

'द्विचतुष्क-बन्ध', 'द्विशृङ्गाटक बन्ध', 'शरयन्त्र बन्ध', तथा 'तुरङ्गपद बन्ध' के लक्षण भोजराज रचित 'सरस्वती कण्ठाभरण' से लिये गये है। शेष सभी बन्धों के लक्षण लेखक ने श्री दामोदर शास्त्री के 'चित्र बन्ध काव्य' नामक ग्रन्थ से लिये हैं। इस सम्बन्ध में पुस्तक में उल्लिखित वाक्य द्रष्टव्य है—"आधुनिक युगे जातस्य चित्रकवि श्री दामोदर शास्त्रिणश्चित्र-बन्ध काव्यमित्याख्यो ग्रन्थः पण्डित रामरूपस्य मुख्योपजीव्यः।"

इस पुस्तक की एक बड़ी विशेषता यह है कि कवि ने रुद्रट के अनुकरण पर एक 'महाचक्र बन्ध' की रचना की है जिसमें उन्हीं आठों श्लोकों का न्यास है जिनसे क्रमशः खड्ग (दो श्लोक), मुसल, धनुः, शर, त्रिशूल, शक्ति तथा हल बन्धों की रचना की गई है। साथ ही यह चक्रबन्ध गर्भांकयुक्त है जिसमें कवि का परिचय निहित है। गर्भांक का श्लोक है—

"सरस्वती प्रसादेन श्री विश्वेश्वर सूनुना।
रामरूपेण चक्रोऽयमाराधि कविनन्दनः॥

कहना नहीं होगा कि इस रचना के उपजीव्य पूर्णतः रुद्रट हैं, क्योंकि उनके द्वारा निर्मित 'चक्रबन्ध' से भी इसी प्रकार उनके परिचय से युक्त श्लोक निःसृत होता है। यहाँ तक कि दोनों गर्भांक-श्लोकों की शब्दावली में भी साम्य है।[1]

प्रस्तुत पुस्तक का प्रकाशन १९६५ ई० में हुआ। इस प्रकार चित्रकाव्य के क्षेत्र में संस्कृत में रचित बीसवीं शताब्दी का यह एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है जो यह सिद्ध करता है कि इस वैज्ञानिक एवं उपयोगितावादी युग में भी चित्ररचना की परम्परा वर्त्तमान है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि काव्यकृतियों में भी चित्ररचनाओं का प्रारम्भ ईस्वी सन् की छठी शताब्दी में ही होता है और उसके उपरान्त चित्ररचनाओं की यह धारा निरन्तर चलती रहती है। प्रारम्भ में यद्यपि काव्यकृतियों में बहुत कम चित्र-रचनाएँ मिलती हैं, किन्तु उत्तरोत्तर इनकी संख्या में वृद्धि होने लगती है, तथा सतरहवीं-अठारहवीं शताब्दी में आकर यह संख्या इतनी अधिक हो जाती है कि सभी चित्रों की रचना किसी एक कवि के लिये सम्भव नहीं दीखती। संख्या की यह वृद्धि केवल बन्धचित्र के क्षेत्र में होती है, जहाँ प्रचलित पद्धतियों के अतिरिक्त प्राचीन बन्धों के भी निर्माण की नई-नई पद्धतियाँ अपनाई जाती हैं। कतिपय बन्धों के अनेक भेदोपभेदों की कल्पना होती है तथा अन्य अनेक नवीन बन्धों का न्यास सम्मुख आता है। प्रारम्भ की काव्यकृतियों में जितने बन्ध प्राप्त होते हैं उनमें से अधिकांश युद्ध के अस्त्र-शस्त्रों के आकार के हैं, उदाहरणार्थ 'खड्ग', 'शूल', 'शक्ति', 'हल', 'चक्र', 'मुशल', 'वाण', 'वाणासन' आदि। आगे चलकर प्रतिदिन के जीवन से सम्बद्ध अन्य अनेक वस्तुओं के आकार के रूप में भी बन्धचित्रों का निर्माण किया गया है। इनमें सबसे अधिक 'चक्र' तथा कहीं-कहीं 'पद्म' के चित्र में गर्भांक के रूप में कवि-काव्य अथवा अन्य प्रकार की सूचनाओं की योजना की जाती रही है।

जहाँ तक बन्धेतर चित्रों का प्रश्न है, इनके प्रकारों में कोई उल्लेखनीय विकास नहीं हुआ। दण्डी ने 'काव्यादर्श' में बन्धेतर चित्रों के जितने भेदों का विवेचन किया था, 'स्थान', 'स्वर' तथा 'वर्ण चित्र' के अन्तर्गत इन काव्यकृतियों में उतने भेदों की भी रचना नहीं की गई। 'स्थानचित्र' के अन्तर्गत अधिकांशतः केवल 'निरोष्ठ्य' और कहीं-कहीं 'अतालव्य' के ही श्लोक प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार 'वर्णचित्र' में 'द्व्यक्षर' की रचना इन

१. द्रष्टव्य, प्रस्तुत पुस्तक का तृतीय अध्याय पृ० १४५ पा० टि० २ और ४

कवियों को बड़ी प्रिय रही है। बन्धेतर चित्र की रचना करनेवाले कवियों ने इसकी रचना अवश्य की है। कहीं-कहीं तो एक ही ग्रन्थ में 'द्व्यक्षर' के पचासाधिक श्लोकों की प्राप्ति हमें होती है। 'शार्ङ्गधरपद्धति' में कालिदास के नाम पर मिलनेवाला श्लोक भी 'द्व्यक्षर' का ही है। इसके अतिरिक्त 'एकाक्षर' तथा 'एकाक्षरपाद' के रूप में 'चतुरक्षर' की रचना भी संस्कृत काव्यकृतियों में हमें पर्याप्त मिलती है। 'वर्णचित्र' के अन्तर्गत 'द्व्यक्षर' की रचना बहुत ही कम कवियों ने की है। 'स्वरचित्र' की रचना कवियों को प्रिय नहीं दीखती। आचार्यों ने जहाँ इसके चारों भेदों का विवेचन किया है तथा उनके लक्षण उदाहरण दिये हैं, वहाँ काव्यकृतियों में बहुत ही अल्पमात्रा में इसकी रचना दीख पड़ती है। 'बन्धेतरचित्रों' में 'गतिचित्र' के 'अर्धभ्रम' 'सर्वतोभद्र', 'गोमूत्रिका' तथा 'प्रतिलोमानुलोम' के प्रायः सभी भेदों की रचना पर्याप्त मात्रा में मिलती है। इस प्रकार के चित्र की रचना करनेवाले प्रायः सभी कवियों ने इनकी रचना अवश्य की है। 'गूढ़' अथवा 'गुप्त चित्र' के भेदों में केवल 'गूढ़ चतुर्थ' की रचना पर्याप्त मात्रा में दीखती है। इसके अतिरिक्त 'क्रियादि गुप्त' अन्य भेदों की रचना हमें किंचित् क्वचित् ही दीख पड़ती है। अतः 'चित्रकाव्य' की धारा में इनका कोई विशेष स्थान नहीं दीखता। 'च्युतादि' अन्य चित्रों के उदाहरण हमें लक्षण ग्रन्थों में ही मिलते हैं, काव्य ग्रन्थों में उनका स्थान नहीं के बराबर है। विकास अथवा संख्यावृद्धि की दृष्टि से बन्धेतरचित्र के इन भेदों का रचना-प्रवाह प्रायः स्थिर रहा है। प्रारम्भ में हमें इनके जितने भेदों के श्लोक मिलते हैं, उनसे अधिक भेदों की न तो कल्पना की गई और न काव्य में उनके श्लोकों की रचना हुई।

बन्ध तथा बन्धेतर चित्रों के अतिरिक्त इन रचनाओं के साथ संस्कृत कवियों ने 'अपुनरुक्ताक्षर' तथा 'असंयोग व्यंजनों' से युक्त श्लोकों की रचनाएँ भी की हैं। 'अर्थत्रय', 'अर्थचतुष्टय' अथवा अधिक अर्थों से युक्त श्लोकों की रचना भी इनके साथ अवश्य हुई है। संस्कृत 'चित्रकाव्य' के रूप में सामान्यतः इन्हीं चित्रभेदों की रचनाएँ की गई हैं।

लक्षणविवेचन के अन्तर्गत यह कहा जा चुका है कि संस्कृत में चित्ररचनाएँ प्रायः दो धाराओं में बँटकर चलती हैं।[1] एक सामान्य 'बन्ध' तथा 'बन्धेतर' वर्णादि चित्रों की धारा है जो सतत प्रवहमान है, किन्तु दूसरी धारा भी इसके समानान्तर आगे बढ़ती हुई हिन्दी 'चित्रकाव्य' में आकर पहली धारा से मिलकर साथ-साथ बहने लगती है। यह धारा है 'प्रश्नोत्तर चित्रकाव्य' की, जिसका प्रारम्भ जिन वल्लभसूरि के 'प्रश्नशतक' से होता है, तथा जो धर्मदास के 'विदग्धमुखमण्डन', अजितसेन के 'अलंकार चिन्तामणि' तथा विश्वेश्वर के 'कवीन्द्रकर्णाभरण' में अपने पूर्ण विकसित रूप में दीख पड़ती है। संस्कृत में यद्यपि बहुत अधिक कवियों ने 'चित्रकाव्य' की इस 'प्रश्नोत्तर शैली' को नहीं अपनाया परन्तु उपर्युक्त जिन कवियों ने इसे प्रश्रय दिया उन्होंने इसे चरम विकास पर पहुँचा दिया। 'चित्रकाव्य' की यह धारा भी कितनी प्रचलित तथा प्रमुख रही इसका अनुमान

१. द्रष्टव्य, द्वितीय अध्याय, संस्कृताचार्यों के विवेचन के अन्त में, पृ० ४४-४५

हम इसी से लगा सकते हैं कि हिन्दी के प्रथम मान्य आचार्य तथा चित्रकवि केशवदास ने अपनी चित्ररचनाओं में इनकी पर्याप्त रचना की है।

'चित्रकाव्य' के अन्तर्गत एक तीसरे प्रकार की रचनाओं का प्रादुर्भाव १६ वीं शताब्दी में हुआ तथा १९ वीं शताब्दी में भी कुछ इस प्रकार की रचनाएँ हुईं। इन रचनाओं के अन्तर्गत आनेवाले 'रामकृष्ण विलोमकाव्य' तथा 'रसिकरंजन' में श्लोकों के गत तथा आगत पाठ के अनुसार विभिन्न अर्थ किये गये। 'रामकृष्ण विलोमकाव्य' में इस प्रकार राम तथा कृष्ण की कथा एक साथ चलती है। 'रामायणसंग्रह' में ऐसी योजना हुई थी कि एक रामकथा से चार अन्य रचनाएँ निःसृत हुईं। किन्तु इस प्रकार की रचना अपवादस्वरूप ही हुई, इनकी कोई धारा हमें नहीं दीख पड़ती। हिन्दी में भी लगभग इसी काल में नन्ददास रचित 'मानमंजरी' में कुछ इसी प्रकार की रचना की गई जिसका विवेचन आगे होगा।

संस्कृत में 'चित्रकाव्य' की रचना में जैन कवियों का बड़ा ही योग रहा। प्रारम्भ में तो हम संस्कृत के 'किरातार्जुनीय' तथा 'शिशुपालवध' जैसे प्रसिद्ध महाकाव्यों में 'चित्र' की रचनाएँ पाते हैं, किन्तु आगे चलकर स्तोत्रग्रन्थों में इनका प्रचलन अधिक हुआ। सम्भवतः अपने पूर्व के महाकाव्यों के प्रायः एक सर्ग में चित्ररचनाओं को देखकर आचार्य हेमचन्द्र ने अपने महाकाव्य-लक्षण में यह व्यवस्था दे दी कि महाकाव्यों में एक सर्ग के अन्तर्गत इस प्रकार की रचनाएँ भी अपेक्षित हैं। ईसवी सन् की बारहवीं शताब्दी से हमें जैनकवियों की रचनाएँ इस क्षेत्र में मिलने लगती हैं। ये रचनाएँ यद्यपि अधिकांश लघुस्तोत्रों के रूप में हैं, किन्तु उनमें चित्ररचनाओं, विशेषकर बन्धचित्रों की प्रधानता है। सतरहवीं शताब्दी में जाकर चित्ररचनाएँ अपने विकास के चरम पर पहुँच जाती हैं, जब कि 'ईश्वर शतक', 'विज्ञप्ति-पत्र' 'आनन्दलेख' आदि पुस्तकों का प्रधान उद्देश्य चित्र-रचना ही हो जाता है और अनेक प्रकार के नवीन बन्ध तथा बन्धेतरचित्रों की रचनाएँ की जाती हैं।

इसके उपरान्त यों भी मुगल साम्राज्य तथा फारसी की प्रधानता पुनः देशभाषा के अधिक प्रसार के कारण संस्कृत का महत्त्व कम होता गया और बीसवीं शताब्दी तक आते-आते संस्कृत में बहुत कम रचनाएँ होने लगीं। फलतः 'चित्रकाव्य' का विकास भी रुक गया। किन्तु हमने अपने विवेचन में देखा है कि जो थोड़ी-बहुत रचनाएँ संस्कृत में हुईं उनमें कतिपय रचयिताओं ने 'चित्र' की कुछ रचनाएँ भी अवश्य कीं। यद्यपि 'चित्रकाव्य' के क्षेत्र में इनका कोई विशेष महत्त्व नहीं है, फिर भी इन रचनाओं के द्वारा परम्परा का पालन हुआ है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि 'चित्रकाव्य' की धारा ईसवी सन् की छठी शताब्दी से लेकर सतत प्रवाहित होती रही है। यद्यपि आज वह अत्यन्त क्षीण है और न उसमें प्रवाह है, न गहराई ही, तो भी वह जीवित अवश्य है।

हिन्दी काव्यकृतियों में

हिन्दी में 'चित्रकाव्य' की रचना स्पष्टरूप में सर्वप्रथम केशवदास में ही मिलती है। केशवदास के पूर्व जो थोड़ी बहुत रचनाएँ मिल पाती हैं, उनका केवल ऐतिहासिक महत्त्व ही हो सकता है। स्वरूपविश्लेषण की दृष्टि से रीतिकवियों द्वारा रचित चित्ररचनाएँ ही उपयोगी सिद्ध होती हैं। यहीं यह बात भी ध्यातव्य है कि संस्कृत में जहाँ कवि और आचार्य में पर्याप्त अन्तर था, और यही कारण है कि आचार्यों को छोड़कर केवल काव्य-कृतियों में 'चित्रकाव्य' का विश्लेषण अलग से सम्भव हो सका है, वहाँ हिन्दी के रीतिकाल में प्राय: सभी रीतिकवि आचार्य भी हैं। फलत: लक्षण विवेचन के अन्तर्गत आचार्य के रूप में जिन कवियों और उनके ग्रन्थों का उल्लेख हो चुका है, प्रस्तुत स्थल पर भी उनका विवेचन अपेक्षित होगा। किन्तु द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत जहाँ उद्देश्य 'चित्रकाव्य' का लक्षण-निर्धारण तथा उसके क्षेत्रविस्तार को देखना था, वहाँ प्रस्तुत स्थल पर उनका उल्लेख 'चित्रकाव्य' के स्वरूपविकास के क्रम में हुआ है। इस प्रकार पुनरुक्ति का आभास देकर भी इन विवेचनों में वास्तविक पुनरुक्ति नहीं होती।

हिन्दी में चित्ररचनाओं की प्रश्नोत्तर शैली के भेदविशेष 'शासनोत्तर' अथवा 'एकानेकोत्तर' तथा 'भाषाचित्र' की कतिपय रचनाएँ हमें अमीर खुसरो की हिन्दी कविताओं में मिल जाती हैं।[1] अमीर खुसरो का काल विक्रम की अथवा ईसा की भी १४वीं शताब्दी में पड़ता है।[2] अबतक प्राप्त हिन्दी 'चित्रकाव्यों' में 'चित्र' का प्रथम रचयिता खुसरो ही ठहरता है। यह सही है कि खुसरो ने उत्कृष्ट चित्रबन्ध की रचनाएँ नहीं की हैं, केवल 'शासनोत्तर' के कतिपय छन्द रचे हैं, किन्तु उनका ऐतिहासिक महत्त्व निर्विवाद है। 'भाषा-चित्र' की रचना की दृष्टि से भी खुसरो पर्याप्त महत्त्व के अधिकारी ठहरते हैं। खुसरो ने 'शासनोत्तर' को 'दो सखुना' अथवा 'सेहसखुना' की संज्ञा दी है। इन 'दो सखुनाओं' की एक विशेषता यह भी है कि इनमें एक प्रश्न की भाषा फारसी है जबकि दूसरे की हिन्दी। दोनों ही प्रश्नों का उत्तर एक ही है। निम्न उदाहरण इस क्रम में द्रष्टव्य हैं—

सौदागर बच: रा चे मी बायद, (व्यापारी को क्या चाहिये ?)

बूचे (कनकटे) को क्या चाहिये ?

इन दोनों ही प्रश्नों के उत्तर हैं 'दोकान'।[3]

इसी प्रकार खुसरो द्वारा रचित कतिपय 'दो सखुना' की भाषा केवल हिन्दी है।

---

१. खुसरो की हिन्दी कविता, ब्रजरत्नदास द्वारा संकलित तथा सम्पादित, १९७८ ई० में छन्द २२३ से २४२, २६५ से २७६ तथा २९३

२. द्रष्टव्य, हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, वीरगाथा-काल की फुटकल रचनाएँ पृ० ५३, (पंचम संस्करण)

३. खुसरो की हिन्दी कविता, पृ० ५९, छन्द २६५

उदाहरणार्थ

राजा प्यासा क्यों ?	उत्तर
गदहा उदासा क्यों ?	लोटा न था ।[१]

'भाषाचित्र' के अन्तर्गत जैसी रचना खुसरो की मिलती है, उसे सैद्धान्तिक विवेचन के क्रम में उद्धृत किया जा चुका है।[२] उसकी उत्कृष्टता के सम्बन्ध में भी उक्त स्थल पर संकेत किया जा का चुका है।

खुसरो के उपरान्त बहुत दिनों तक हमें किसी भी रूप में 'चित्रकाव्य' की रचना के दर्शन नहीं होते। असल में इस काल का हिन्दी साहित्य कबीरादि सन्तों का साहित्य है, फलतः 'चित्रकाव्य' के लिये वहाँ स्थान ही क्या हो सकता था ? ईसा की १६वीं शताब्दी के अन्त में गोलकुण्डा के सुलतान मुहम्मद कुल्ली कुतुब की रचना 'कुल्लियात' में हमें एक इस प्रकार का हिन्दी छन्द प्राप्त होता है, जिसके शब्दों के स्थान परिवर्तन द्वारा, अनेक छन्द निकाले जा सकते हैं। वह छन्द 'चित्रकाव्य' के भेदविशेष 'कामधेनु' का है। 'कामधेनु' की यही विशेषता है कि एक छन्द से अनेक छन्द निःसृत हो सकते हैं। कुल्ली का उक्त छन्द निम्न है—

नहीं कै	तुज ऐसी	सहेली	छबीली
तुज ऐसी	न अछसे	जगत में	रंगीली
सहेली	जगत में	न देख्या	गहेली
छबीली	रंगीली	गहेली	नवेली

प्रस्तुत 'कामधेनु छन्द' से निम्न प्रकार के कितने ही छन्द बनते हैं—

"नहीकैं न अछसे न देख्या नवेली।
छबीली जगत में जगत में छबीली॥
नवेली न देख्या न अछ से नहीं कैं।
नहीं कै न अछसे न देख्या गहेली॥
नहीं कैं न अछसे सहेली रंगीली।
तुज ऐसी जगत में छवीली रंगीली॥
छबीली जगत में गहेली गहेली।
सहेली रंगीली न देख्या नवेली॥

१. खुसरो की हिन्दी कविता, पृ० ५५, छन्द २२९

२. द्रष्टव्य, प्रस्तुत ग्रन्थ का चतुर्थ अध्याय, भाषाचित्र का विवेचन पृ० ३९९ अथवा उपरिवत्, पृ० ६५, छन्द २९३

सहेली न अछसे न देख्या रंगीली ।
तुज ऐसी जगत में जगत में गहेली ॥[1]"

'कामधेनु' की रचना हिन्दी चित्रकवियों को बड़ी प्रिय रही है और लगभग सभी कवियों ने अपनी चित्ररचनाओं में इसकी भी रचना अवश्य की है ।

इसी शताब्दी में आविर्भूत कृष्णभक्तिशाखा के प्रसिद्ध कवि 'नन्ददास' की भी एक ऐसी रचना प्राप्त होती है जिसका आकलन 'चित्रकाव्य' की सीमा में किया जा सकता है । यह सर्व विदित है कि हिन्दी में 'रसमंजरी' के लेखक नन्ददास ही सर्वप्रथम आचार्य कहे जा सकते हैं, यों काव्यशास्त्र की विधिवत् रचना बहुत बाद में शुरू हुई । फलतः पाण्डित्यप्रदर्शन की प्रवृत्ति हमें नन्ददास में प्राप्त होती है । 'नाममाला' अथवा 'मानमंजरी'[2] की रचना कवि की इस प्रवृत्ति की ओर बहुत कुछ संकेत करती है । इस रचना की यह विशेषता है कि एक ओर यह शब्दकोश का काम करती है, जिसका आधार संस्कृत का 'अमरकोश' है, और दूसरी ओर इसमें राधा के मान और कृष्ण की दूती द्वारा उनके मानमोचन की कथा भी अबाध रूप से चलती है । किन्तु संस्कृत के द्विसन्धान अथवा त्रिसन्धान काव्य के समान प्रस्तुत रचना के इस दोहरे अर्थ का आधार श्लेष नहीं है, बल्कि वेंकटेश्वर रचित 'रामायण संग्रह'[3] की पद्धति पर छन्दों की योजना इस प्रकार तथा इस क्रम में की गई है कि प्रत्येक शब्द के लिये प्रदत्त दोहों के उत्तरार्द्ध को एक साथ लेने से राधा के मान की उपर्युक्त कथा निःसृत होती है । स्पष्ट रूप में प्रस्तुत रचना 'नाममाला' अथवा 'शब्दकोश' है और इसमें एक शब्द के विभिन्न अर्थों का उल्लेख करने के लिये सामान्यतः एक दोहे की रचना हुई है । बीच-बीच में कतिपय ऐसे भी शब्द हैं जिनके बहुत अधिक पर्याय होने के कारण कवि को इनके लिये दो या कहीं-कहीं अधिक दोहे देने पड़े हैं ।[4]

किन्तु इन दोहों के उत्तरार्द्धों को, तथा जहाँ दो दोहे की रचना है वहाँ अन्तिम दोहे को, साथ मिलाकर पढ़ने से 'मानमंजरी' की कथा निकलती है । कवि ने स्वयं भी पुस्तक की प्रस्तावना में अपनी इस योजना की ओर संकेत किया है—

"गूंथनि नाना नाम को, अमरकोष के भाय ।
मानवती के मानपर, मिले अर्थ सब आय ॥"[5]

नाममाला में कुल २६४ दोहों की रचना है, और इतनी ही दूर तक 'मानमंजरी' की कथा भी चलती है । कवि, राधिका का मानमोचन कराने के लिये कृष्ण की दूती के,

१. दक्खिनी हिन्दी-काव्यधारा, पृ० १२५-१२६ (राहुल सांकृत्यायन द्वारा संकलित तथा सम्पादित)

२. नन्ददास-ग्रन्थावली, पृ० ७६, सम्पादक व्रजरत्नदास, प्रकाशक काशी नागरी प्रचारिणी सभा

३. द्रष्टव्य, प्रस्तुत अध्याय, पृ० ४६७

४. मानमंजरी, 'पानी' के लिये दोहा ७३-७४, 'स्त्री' के लिये ८३-८४, इसी प्रकार अन्य दोहे भी ।

५. उपरिवत्, प्रस्तावना, दोहा ३

जिसे प्रस्तुत रचना में सखी की संज्ञा दी गई है, प्रयाण से कथा का आरम्भ करता है। सखी वृषभानु के भवन तक जाती है, किन्तु भीतर प्रवेश करने में किसी के देख लेने का भय है। अतः वह लोपांजन का प्रयोग कर अदृश्य हो, महल के अन्दर प्रवेश करती है। पुनः राधा के पास जाकर वह आँखें धोकर लोपांजन हाथ में ले लेती है। इस प्रकार प्रकट होकर वह राधा से मिलती है। उसे देखकर राधा को क्रोध हो आता है और उसका मुँह लाल हो जाता है। राधा के इस क्रुद्ध रूप का वर्णन कवि ने निम्न पंक्तियों में किया है—

"हरदी चूनो परत जिमि इमि देखत भइ बाम ॥
अरुण कमल पर प्रात जनु पंख पसारे भौंर ॥"[1]

पहले बहुत देर तक राधा कुछ बोलती नहीं फिर उसका कुशल पूछती है। इसके उपरान्त सखी उसकी तथा साथ ही कृष्ण की भी प्रशंसा कर उसको प्रसन्न कर देती है और अन्त में कृष्ण से राधा का मिलन करा देती है। कथा के बीच-बीच में वृषभानु के महल, उसकी समृद्धि, पुनः राधा आदि के सम्बन्ध में विस्तृत तथा मनोहर वर्णन भी कवि ने किये हैं।[2] तात्पर्य यह कि प्रस्तुत पद्धति को अपनाकर भी 'मानमंजरी' के रूप में नन्ददास ने एक उत्कृष्ट काव्य की रचना की है। 'नाममाला' के अन्तर्गत 'मानमंजरी' की इस पद्धति को स्पष्टतः समझने के लिये कुछ दोहे द्रष्टव्य हैं। 'नाममाला' में इन दोहों की स्थिति निम्न रूप में है—

मान

"अहंकार, मद, दर्प पुनि, गर्व स्मय, अभिमान।
मान राधिका कुँवरि को, सबको करु कल्यान ॥"

सखी

"बयसा, सुमुखी, सखी पुनि, हितू सहचरी आहि।
अली, कुँवरिवृषभानु की, चली मनावन ताहि ॥"

सरस्वती

"बानी, बाक, सरस्वती, गिरा, शारदा, नाम।
चली मनावन भारती, बचन चातुरी काम ॥"

शीघ्र

"आशु, झटिति, द्रुत, तूर्ण, लघु, छिप्र सत्वर उत्ताल।
तुरत चली चातुर अली, आतुर लखि नन्दलाल ॥"[3]

---

१. मानमंजरी, दोहा ७७-७८

२. उदाहरण के लिये प्रारम्भ में १७ दोहे तक वृषभानु के भवन की शोभा का वर्णन है, पुनः १९वें दोहे से ३५ वें दोहे तक वृषभानु के सिंहपौर की समृद्धि का वर्णन है, ३९ से ४२ तक भवन का वर्णन है आदि।

३. नाममाला, दोहा ५, ६, ८ तथा ९

उपर्युक्त दोहे 'नाममाला' के प्रारम्भिक दोहे हैं, और इसी प्रकार सम्पूर्ण 'नाममाला' की रचना हुई है। इन दोहों के केवल उत्तरार्द्धों को एक स्थान पर लिखने से 'मानमंजरी' की कथा का प्रारम्भ हमारे सम्मुख आयेगा। ये पंक्तियाँ निम्न होंगी—

"मान राधिका कुँवरि को सबको करु कल्यान ॥
अली कुँवरि वृषभानु की चली मनावन ताहि ॥
चली मनावन भारती बचन चातुरी काम ॥
तुरत चली चातुर अली आतुर लखि नन्द लाल ॥"

इस प्रकार 'मानमंजरी' की कथा का प्रारम्भ होता है। वृषभानु के महल के पास पहुँचने पर

"चित में सोचति सहचरी भीतर कैसे जाऊँ ॥३६॥
लोपांजन दृग दै चली ताहि न देखै कोय ॥३७॥"

और आगे

"मनि मय सीढ़ी सखि चढ़ी लखी न.काहू आन ॥४६॥
दुग्धफेन सी सेज पर बैठी तिय. कमनीय ॥४७॥"

SS SS SS

"सुता जहाँ वृषभानु की तहाँ गई सखि सोय ॥४९॥"

इसके उपरान्त राधा का नखशिख वर्णन कुछ दूर तक चलता है—

"फूलमंजरी गेंद कर खेलत छबि सों बाम ॥५०॥
बेसर सो उरझी जो लट मानो बंसी काम ॥५१॥
मन बिबि रूप सु कमल कलि, फूली ससि-मुख-तीर॥५२॥
कुंतल कबरि ललाट जनु चंदहि गई दरार ॥५३॥
मनों भाल तें भाग्य मनि, प्रगटी ,बाहर आय ॥५४॥
कछु रिस राते जैन जनु, जावक भींजे मीन ॥५५॥"

इसके उपरान्त सखी लोपांजन उतार कर प्रगट होती है और 'मानमंजरी' की कथा आगे बढ़ती हुई अन्त में कृष्ण और राधा के मिलन में आकर समाप्त हो जाती है—

"यों राधा माधव मिले परम प्रेम हरषाइ ॥२६१॥"

उपर्युक्त उद्धरणों से 'मानमंजरी' की कथा तथा उसकी रचनापद्धति का बहुत कुछ आभास हमें मिल जाता है। यह निश्चित है कि इस प्रकार की रचना में नन्ददास का उद्देश्य केवल भक्तिपरक तथा काव्यपरक ही नहीं था, वरन् पाण्डित्यप्रदर्शन के साथ कौतूहलोत्पादन भी इसके मूल में अवश्य है। इस प्रकार प्रस्तुत रचना 'चित्रकाव्य' के अन्तर्गत आकलित हो सकती है। नन्ददास की रचना से हमें इस बात का संकेत भी मिलता है कि उस युग में संस्कृत में ही नहीं वरन् हिन्दी में भी काव्यशास्त्र के अध्ययन में निष्णात

तथा पण्डित कवियों की रुचि इस प्रकार की रचनाओं की ओर पर्याप्त थी। यह बात और है कि वे इन रचनाओं को भी अपने पन्थ अथवा विषय से सम्बद्ध कर लेते थे। कृष्णभक्त होने के कारण नन्ददास ने राधा के मान का वर्णन तो इसमें किया ही है, आगे चलकर सुन्दरदास ने भी अपनी आराधना के यानी निर्गुण ब्रह्म के विषय को लेकर 'चित्रकाव्य' की पर्याप्त रचनाएँ कीं।

तुलसीदास ने यद्यपि अधिकांश हिन्दी छन्दों को राममय किया है, और अलंकारों में भी प्रायः सभी अलंकार उनकी रचनाओं में मिल जाते हैं, फिर भी उनका उद्देश्य यह नहीं था, न ही अलंकारों की यह योजना उन्होंने सायास की है। फलतः 'चित्रकाव्य' जैसे बौद्धिक-विलास की ओर उनका ध्यान भी गया होगा, इसकी सम्भावना कदापि नहीं हो सकती। किन्तु आलंकारिकों ने उनकी रचनाओं में 'चित्रकाव्य' के उदाहरण ढूंढ़ लिये हैं। उदाहरणार्थ रामचरिमानस की निम्न पंक्तियों से एकाधिक चित्रबन्धों की रचना की जा सकती है —

"मारु मारु धरु धरु धरु मारू।
सीस तोरि गहि भुजा उपारू ॥"[1]

उपर्युक्त चौपाई की रचना इस प्रकार हुई है कि इससे 'सनालषट्दल पद्मबन्ध', 'खड्गबन्ध' तथा 'चामरबन्ध' की रचना बड़ी आसानी से की जा सकती है। प्रस्तुत चौपाई के पूर्वार्द्ध का प्रत्येक युग्मवर्ण चूँकि एक ही है, साथ ही उत्तरार्द्ध का अन्तिम वर्ण भी वही है, अतः इन बन्धों की रचना में किसी प्रकार का व्याघात नहीं पड़ता। 'चामर' में अवश्य पाठ का आरम्भ केशगुच्छ से करना होगा, जबकि प्रचलित पद्धति में उद्धार का आरम्भ दण्ड के निचले भाग से किया जाता है। किन्तु इस परिवर्तन से बन्ध के निर्माण में किसी प्रकार का अन्तर नहीं आता, क्योंकि 'चित्रकाव्य' के क्षेत्र में परिवर्तन की इतनी स्वतन्त्रता तो कवियों को मिली ही है।

जहाँ तक तुलसीदास और चित्ररचना का प्रश्न है, तथ्य यही है कि तुलसीदास ने 'चित्रकाव्य' की रचनाएँ नहीं की हैं। उपर्युक्त पंक्ति की रचना अनायास हो गई है, अन्यथा 'रु' की आवृत्ति का उद्देश्य वहाँ युद्ध की भयंकरता को ध्वनित करने से है न कि बन्धों की रचना से। फिर भी अनायास ही सही पर तुलसी ने इस क्षेत्र को भी छोड़ा नहीं।

हिन्दी के विख्यात मुसलमान कवि रहीम ने भी कुछ रचनाएँ ऐसी की हैं, जिनमें 'चित्रकाव्य' के एक भेद 'भाषाचित्र' के उदाहरण दीख पड़ते हैं। रहीम के दोहे अधिकतर नीति सम्बन्धी हैं और वे ही अधिक प्रसिद्ध भी हैं। यों रहीम की रची हुई अनेक पुस्तकों के नाम लिये जाते हैं जिनमें अधिकांश अप्राप्य हैं। ये पुस्तकें हैं—

१. सतसई (अप्राप्य), २. बरवै नायिका भेद, ३. मदनाष्टक (तीन मदनाष्टक प्राप्त हैं, जिनमें थोड़ा-बहुत अन्तर है), ४. रासपंचाध्यायी (अप्राप्य), ५. शृंगार सोरठ (इसके

१. रामचरितमानस, लंकाकाण्ड, दोहा ५२ तथा ५३ के बीच की चौपाई (गीता प्रेस)

कुछ ही सोरठे प्राप्त), ६. खेट-कौतुक, ७. नगर शोभा वर्णन, तथा ८. वाकयात बाबरी।[1]

इन पुस्तकों में 'मदनाष्टक' तथा 'खेटकौतुक' का 'चित्रकाव्य' की दृष्टि से अधिक महत्त्व है। रहीम ने न तो किसी बन्धचित्र की रचना की है और न बन्धेतर चित्रों में 'भाषाचित्र' को छोड़कर अन्य चित्रों की ही। किन्तु 'भाषाचित्र' के इन्होंने बड़े हीउत्कृष्ट छन्द रचे हैं। 'मदनाष्टक' के प्रायः सभी छन्दों में संस्कृत तथा रेखता अर्थात् खड़ी बोली का मिश्रण है। उदाहरण के लिये निम्न छन्द को देखा जा सकता है—

"दृष्ट्वा तत्र विचित्रतां तरुलतां, मैं था गयाबाग में।
कांश्चित तत्र कुरंगशाव(क)नयनी, गुल तोड़ती थी खड़ी॥
उन्नद्भ्रूधनुषा कटाक्ष विशिखैः घायल किया था मुझे।
तत्सीदामि सदैव मोहजलधौ, हे दिल गुजारो शुकर॥"[2]

रहीम रचित दूसरा ग्रन्थ 'खेटकौतुक' ज्योतिष की पुस्तक है, किन्तु इसकी भाषा में कवि ने संस्कृत तथा फारसी का मिश्रण किया है। यह मिश्रण केवल शब्दों तक ही सीमित नहीं है, वरन् रहीम ने फारसी शब्दों के साथ संस्कृत विभक्तियों का भी प्रयोग किया है। इस मिश्रण के फलस्वरूप यह सम्पूर्ण रचना 'भाषाचित्र' का उदाहरण हमारे सम्मुख रखती है। उदाहरणार्थ 'खेटकौतुक' के निम्न छन्द से इसकी भाषा के स्वरूप का आभास हम पा सकते हैं—

"कर्मविलाधशालए नरोहि बामुरौवतः।
सदाबली च साबिरः सुकर्मकद्यदाभवेत्॥"[3]

'भाषाचित्र' की इन रचनाओं के अतिरिक्त रहीम ने किसी अन्य चित्रप्रकार की रचना नहीं की है।

चतुर्थ अध्याय के अन्तर्गत 'अंकाक्षरी' के विवेचनक्रम में रहीम के पुत्र जमाल का उल्लेख हो चुका है।[4] जमाल की बहुत थोड़ी रचनाएँ प्राप्त हैं और उनमें भी अधिकांश कूट के दोहे हैं। 'चित्रकाव्य' में जमाल का स्थान 'अंकाक्षरी' के उन पाँच दोहों को लेकर है, जो 'जमालमाला' में संगृहीत हैं। सैद्धान्तिक विवेचन के क्रम में उस तलपट का उल्लेख तथा उसका पूर्ण विवेचन किया जा चुका है, जिसके सहारे जमाल के इन दोहों का अर्थ स्पष्ट हो पाता है।[5] रहीम के समान ही अन्य किसी प्रकार के 'चित्र' की रचना जमाल की रचनाओं में हमें नहीं मिलती। 'अंकाक्षरी शैली' में लिखित जमाल के पाँचों दोहे निम्न हैं—

---

१. रहीमकवितावली (नवल किशोर प्रेस,१९२६ ई०) भूमिका, पृ० २५-२६
२. उपरिवत्, रहीम का परिचय, पृ० ३१, असनी से प्राप्त मदनाष्टक का प्रथम छन्द
३. उपरिवत्, पृ० ६०, खेट-कौतुक, छन्द २
४. पृ० ३६९-७१
५. पृ० ३७१

"तिन तिन सत दुई तीन, चर पाँच छवो सत पाँच ।
विघ्न हरहु कल्यान करु, भज जमाल करि जाँच ॥१॥
तिन तिन सत अठदूइ, सत दुइ अठ दुई पंच एक ।
तीन पुनहिं ममकंठ महँ, कर जमाल करि टेक ॥२॥
तिन तिन सत, सत दूइ इक, छो पाँचो करि ध्यान ।
नासहु दुख दारिद सबै कहत जमाल सुजान ॥३॥
तिन तिन सत, छ पाँच, अठ, तीन एक, पँच तीन ।
छवो सात चर ध्यान धरि कहत जमाल प्रबीन ॥४॥
तिन तिन सत पँच तीन चर, सात दूइ, दुइ तीन ।
एक अंक यहि भाँति लिखि, सुकबि जमाल प्रबीन ॥५॥"[१]

इन दोहों में क्रमशः गणेश, सरस्वती, राम, महादेव तथा दुर्गा की वन्दना की गई है। इनके अर्थ के लिये पूर्व विवेचित तलपट का प्रयोग आवश्यक है। इस प्रकार जमाल ने 'चित्रकाव्य' के क्षेत्र में एक नये प्रकार की रचना की है।

जैसा कि प्रारम्भ में ही कहा जा चुका है हिन्दी में चित्ररचनाओं का वास्तविक आरम्भ केशवदास से होता है। यों शुक्लजी ने कालक्रम के आधार पर केशवदास का विवेचन भक्तिकाल के फुटकल कवि के रूप में किया है,[२] किन्तु सत्य यह है कि हिन्दी के सर्वप्रथम रीतिआचार्य तथा कवि केशवदास ही थे, जिनकी रचनाओं में रीतिकालीन साहित्य की सारी विशेषताएँ वर्त्तमान हैं। 'कविप्रिया' के अन्तिम प्रभाव में केशव ने 'चित्र-काव्य' के अनेक भेदों-उपभेदों की रचना की है और उनके लक्षण भी दिये हैं।[3] द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत लक्षणविवेचन के क्रम में इनका उल्लेख किया जा चुका है।

जहाँ तक 'चित्रकाव्य' के स्वरूप का प्रश्न है, केशव ही हिन्दी के प्रथम कवि हैं जिन्होंने संस्कृत में प्रचलित 'चित्रकाव्य' के सभी भेद 'स्वर', 'वर्ण', 'स्थान' 'गति' तथा 'बन्ध' अथवा 'आकार चित्रों' की रचना की है। 'विदग्धमुखमण्डनादि' में विवेचित 'प्रश्नोत्तर' के कतिपय भेदों की रचना भी केशव ने की है।[४] केशव ने इन चित्ररचनाओं में संस्कृत आचार्यों के द्वारा विवेचित चित्रप्रकारों की अपेक्षा संस्कृत कवियों के मध्य प्रचलित चित्रप्रकारों को स्थान दिया है। संस्कृत काव्यकृतियों में 'चित्रकाव्य' के स्वरूप को देखते हुए हमने पाया है कि आचार्यों ने 'स्थानचित्र' के भले ही 'निरोष्ठ्य', 'अतालव्य', 'अकण्ठ्य', 'अदन्त्य' तथा 'निमूर्द्धन्य' जैसे भेदों के उदाहरण दिये हैं, किन्तु केवल 'निरोष्ठ्य' की रचना ही कवियों को अधिक प्रिय रही है। अन्य भेदों की रचना या तो काव्य में हुई ही नहीं है, अथवा अत्यल्प हुई है। केशवदास ने भी 'स्थानचित्र' के अन्तर्गत केवल

१. हिन्दी साहित्य का अतीत, भाग २, पृ० ७७७
२. हिन्दी साहित्य का इतिहास
३. प्रभाव १६,
४. उपरिवत्

'निरोष्ठ्य' की ही रचना की है। द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत केशवदास द्वारा रचित 'निरोष्ठ' के छन्द का विवेचन करते हुए उसे हमने सदोष पाया है। यहाँ भी केशवदास ने दण्डी आदि आचार्यों का अनुकरण न कर काव्य में प्रचलित पद्धति को ही अधिक अपनाया है। संस्कृत चित्ररचनाओं के स्वरूपविवेचन के अन्तर्गत यह भी स्पष्ट हो चुका है कि माघादि कवियों ने भी 'निरोष्ठ' की रचना में मात्राओं का बन्धन स्वीकार नहीं किया है।[१] केशवदास का प्रस्तुत छन्द भी इन रचनाओं के अनुकूल है और इस दृष्टि से केशवदास ने आचार्यों के उदाहरण नहीं वरन् प्रचलित काव्यशैली को अपनाना श्रेयस्कर समझा है।

यही बात 'स्वरचित्र' के क्रम में भी है। संस्कृत आचार्यों ने यद्यपि 'स्वरचित्र' के सभी भेदों का विवेचन किया है तथा उनके उदाहरण दिये हैं, वहाँ अधिकांश कवियों ने 'स्वरचित्र' की रचना ही नहीं की है। कतिपय परवर्ती कवियों ने यदि अपनी रचना में 'स्वरचित्र' को स्थान दिया भी है तो 'एक स्वर' और उसमें भी 'अमात्रिक' की रचना ही की है। संस्कृत की इस प्रवृत्ति को केशव ने भी अपनी रचना में अपनाया है। 'कविप्रिया' में भी 'स्वरचित्र' का एक ही छन्द है और वह भी 'अमात्रिक' है।[२] 'वर्णचित्र' के अन्तर्गत केशव ने अवश्य केवल 'एकाक्षर', 'द्व्यक्षर' ही नहीं वरन् २६ अक्षरों तक के छन्दों की रचना की है। संस्कृत काव्यसाहित्य में अधिक से अधिक 'चतुरक्षर' तक की रचना ही की गई है। यहाँ केशव ने अपनी ओर से इसमें वृद्धि की है। इसके साथ ही हमने देखा है कि संस्कृत काव्यकृतियों में 'प्रतिलोमानुलोम' की रचना बड़ी प्रिय रही है और उसके प्रायः सभी भेदों की रचना प्रचुर मात्रा में हुई है। इस क्षेत्र में भी केशव ने इनसे प्रेरणा ली है और 'प्रतिलोम-अनुलोम' के 'एकछन्द प्रतिलोमानुलोम' तथा 'भिन्नछन्द प्रतिलोमानुलोम' जैसे दो भेदों के एकाधिक छन्द रचे हैं।[३] 'गतिचित्र' के अन्य भेद 'गोमूत्रिका' तथा 'सर्वतोभद्र' की रचना भी केशव ने की है। कहा जा चुका है कि 'अर्धभ्रम' की रचना हिन्दी में बिलकुल नहीं की गई है,[४] अतः केशव में उसके होने का प्रश्न नहीं उठता।

बन्धेतरचित्रों के सैद्धान्तिक विवेचन के क्रम में हिन्दी में रचित 'प्रश्नोत्तर' के भेदों की चर्चा हो चुकी है और स्पष्ट किया जा चुका है कि 'प्रश्नोत्तर' के कुछ ही भेदों की हिन्दी में रचना हुई है। इस क्षेत्र में केशव ने भी संस्कृत का अन्धानुकरण नहीं किया है। 'अन्तर्लापिका-बहिर्लापिका' जैसे प्रश्नोत्तर के भेद हमें किसी संस्कृत कवि की रचना में नहीं मिले हैं, वरन् सुभाषित ग्रन्थों में ही उनका उल्लेख मिलता है।[५] केशव ने अपने

---

१. द्रष्टव्य, प्रस्तुत अध्याय पृ० ४२२; चतुर्थ अध्याय, पृ० २९३-९४ पा० टि० ५

२. प्रभाव १६, छन्द ८

३. उपरिवत्, छन्द ६७-६८ तथा ७०

४. द्रष्टव्य प्रस्तुत पुस्तक के तृतीय अध्याय का अन्त तथा चतुर्थ अध्याय में विवेचित गतिचित्र का प्रारम्भ

५. द्रष्टव्य, सुभाषित रत्नाकर तथा सुभाषित रत्नभाण्डागार

समय में प्रचलित इन रचनाओं को भी अपनी पुस्तक में स्थान दिया है। यद्यपि उस काल में प्रचलित हिन्दी 'चित्रकाव्य' की बहुत कम रचना उपलब्ध है किन्तु केशव की इन रचनाओं ने हिन्दी के परवर्ती चित्रकवियों को बहुत अधिक प्रभावित किया है और अनेक कवियों ने उनका अनुकरण किया है।

'आकारचित्रों' में केशव ने केवल छह बन्धों के छन्द दिये हैं, किन्तु इनसे कोई उत्कृष्ट चित्र नहीं बन पाता। केशव द्वारा रचित 'चक्र' चतुरर है और उसकी रचना संस्कृत की पद्धति के अनुकूल है[1]। संस्कृत में भी 'चतुरर चक्र' की बहुत अधिक रचना नहीं हुई है। केशव द्वारा रचित 'धनुषबन्ध', शरयुक्त शरासन के आकार का है। संस्कृत चित्रों में प्रायः 'धनुष' की रचना अलग तथा 'वाण' की अलग होती रही है। हिन्दी में परवर्ती कवियों ने 'शरयुक्त धनुषाकारबन्ध' की ही रचना की है। इस प्रकार उन्होंने केशव का अनुकरण किया है। चूँकि चित्र के आकार में अन्तर आ जाता है, अतः प्रस्तुत बन्ध के न्यास की विधि भी केशव की अपनी है और इसीका अनुकरण बाद में भी किया गया है। तीसरा बन्ध, जिसकी रचना केशव ने की है 'कमलबन्ध' है। 'कमलबन्ध' की इस रचना में केशव की अपनी कोई विशेषता नहीं दीखती। पद्म का यह चित्र यद्यपि २० दलों से युक्त है किन्तु इसकी रचनापद्धति संस्कृत के 'षोडशदल कमल' की है[2] और केशव ने उसी पद्धति का पूर्णतः अनुकरण किया है।

संस्कृत में 'पर्वतबन्ध' की कोई रचना हमें प्राप्त नहीं हुई है, किन्तु 'कविप्रिया' में केशवदास ने इसकी भी रचना की है।[3] सैद्धान्तिक विवेचन के अन्तर्गत हमने देखा है कि 'पर्वतबन्ध' का स्थान उन थोड़े से बन्धों में है जिसकी न्यासविधि सम्पूर्ण हिन्दी चित्र साहित्य में प्रायः एक ही है, अन्यथा बन्धों की न्यासविधियों में हिन्दी चित्रकवियों ने बहुधा परिवर्तन किया है और कहीं-कहीं एक ही बन्ध की नितान्त भिन्न न्यासविधियाँ भी मिलती हैं, यद्यपि इस बन्ध के छन्द का जो पाठ हमें प्राप्य है, उसमें अन्तिम पंक्ति में 'जे के स्थान पर 'गे' होना चाहिये, अन्यथा न्यास सदोष हो जाता है।

केशव रचित 'हारबन्ध' अत्यन्त सामान्य कोटि का है। इसमें केवल सात मणियाँ हैं और छन्द की रचना भी संस्कृत के 'षोडशदल कमल' की पद्धति से हुई है,[4] फलतः इसमें केशव की कोई विशेषता नहीं दीख पड़ती। चतुर्थ अध्याय के अन्तर्गत 'गोमूत्रिका', 'त्रिपदी' आदि के विवेचनक्रम में दिखाया जा चुका है कि केशवदास ने इन कई चित्रों के लिये एक ही छन्द की रचना की है। आगे भी कवियों ने इस पद्धति का अधिक अनुकरण किया है। किन्तु इसमें कवि की कोई विशिष्टता इसलिये नहीं दीखती कि 'षोडशदल कमल' की पद्धति पर रचे प्रत्येक छन्द का युग्माक्षर एक होने के कारण इन्हें अनेक चित्रों के रूप में रखा

---

१. द्रष्टव्य, तृतीय अध्याय में विवेचित चतुरर चक्र तथा चित्र संख्या २४, पृ० १५०

२. द्रष्टव्य, कविप्रिया सटीक (सरदार कवि), प्रभाव १६, छन्द ८४ का चित्र; संस्कृत के षोडशदल कमल की पद्धति के लिये द्रष्टव्य भोजराज के सरस्वतीकण्ठाभरण के अन्त में निर्मित चित्र

३. क० प्रि०, प्रभाव १६ छन्द ८१, चित्र के लिये कविप्रिया सटीक (सरदार कवि), पृ० ३४०

४. द्रष्टव्य, कविप्रिया सटीक (सरदार कवि), पृ० ३४३

जा सकता है, फिर बन्धविशेष के निर्माण में जिस चमत्कार की अपेक्षा होती है, वह कहाँ आ पाता है ? प्रस्तुत 'हारबन्ध' में प्रत्येक मणि का आभ्यन्तर वर्ण एक ही 'म' है, जबकि संस्कृत रचनाओं की विशिष्टता यह है कि वहाँ प्रत्येक मणि के अन्दर न्यस्त वर्ण भिन्न होते हैं। हिन्दी में भी आगे चलकर 'हारबन्ध' की सरल किन्तु उत्कृष्ट रचनाएँ प्राप्त होती हैं। सैद्धान्तिक विवेचन के क्रम में इनका विवेचन किया गया है।[1]

केशवदास द्वारा रचित छठा बन्ध 'डमरू बन्ध' है। 'डमरू बन्ध' की रचना संस्कृत में भी अत्यल्प हुई है, केवल अवतार कवि रचित 'ईश्वर शतक' में इसका श्लोक प्राप्त हुआ है।[2] हिन्दी में भी इसकी रचना बहुत अधिक कवियों ने नहीं की है। केशवदास रचित इस बन्ध का छन्द वस्तुतः परवर्ती कवियों द्वारा रचित 'चौकीबन्ध' का है। सरदार कवि ने 'कविप्रिया' की अपनी टीका में इस बन्ध का जो चित्र दिया है, वह 'चौकीबन्ध' का है।[3] आगे चलकर कवि काशिराज द्वारा रचित 'डमरू बन्ध' के छन्द अथवा न्यास से केशव की यह रचना समानता नहीं रखती।[4] फलतः इस बन्ध की रचना में किसी विशेष प्रकार का चमत्कार हमें नहीं दीखता।

कुल मिलाकर केशवदास ने 'चित्रकाव्य' के पर्याप्त विस्तृत क्षेत्र को अपनी रचना के अन्तर्गत स्थान दिया है। यद्यपि केशवदास आचार्य के रूप में हमारे सम्मुख आते हैं, और उनका अध्ययन भी पर्याप्त गम्भीर था, फिर भी उन्होंने इन रचनाओं में संस्कृत कवियों का अधिक अनुकरण किया है तथा प्रायः उन्हीं क्षेत्रों में रचनाएँ की हैं, जिनमें संस्कृत कवियों ने की हैं। बन्धचित्रों में उन्होंने संस्कृत की पद्धति पर भी रचना की है तथा स्वयं भी कतिपय बन्धों की कल्पना की है। इसी प्रकार 'नियमाक्षर' के रूप में जो नवीन रचनाएँ उन्होंने प्रस्तुत की हैं, वह इस बात का परिचायक है कि हिन्दी की प्रवृत्ति को उन्होंने पहचाना है। केशव ने केवल संस्कृत का अन्धानुकरण नहीं किया है, वरन् इस क्षेत्र में अपनी मौलिकता का पर्याप्त परिचय दिया है।

'कविप्रिया' के अतिरिक्त केशव के अन्य ग्रन्थों में 'चित्रकाव्य' की कोई रचना नहीं मिलती। यों संस्कृत के अनुकरण पर उन्होंने 'रामचन्द्रिका' में तीन अर्थों से युक्त कतिपय छन्दों की रचना अवश्य की है।[5] इनके अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार की चित्ररचना 'राम चन्द्रिका' में नहीं है।

ईसा की १६वीं शताब्दी में ही आविर्भूत सेनापति ने भी 'चित्रकाव्य' के कतिपय छन्दों की रचना की है। 'कवित्तरत्नाकर'[6] की पाँचवीं तरंग चित्ररचना के उदाहरण

---

१. द्रष्टव्य, पृ० १७६ से १९२, हारबन्ध का विवेचन तथा विभिन्न चित्र

२. ईश्वरशतक, श्लोक संख्या ६०

३. पृ० ३४७

४. चि० चं०, प्रकाश ५, पृ० ४७

५. रामचन्द्रिका, प्रकाश १५, छन्द ३९

६. सम्पादक उमाशंकर शुक्ल, प्रकाशक, हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय

प्रस्तुत करती है। इनमें तीन छन्द 'प्रश्नोत्तर' के एक भेद 'कमलबन्धोत्तर' के हैं तथा अन्य छन्दों में ७ 'द्व्यक्षर' के, एक 'एकाक्षर' का तथा एक 'अमात्रिक' छन्द है। इस प्रकार सेनापति ने केवल 'वर्णचित्र', 'स्वरचित्र' तथा 'प्रश्नोत्तर' की रचना की है। इनके साथ 'महायमक' के चार छन्द भी प्रस्तुत स्थल पर प्राप्त होते हैं। बन्धचित्र के किसी छन्द की रचना हमें 'कवित्तरत्नाकर' में नहीं मिलती। 'द्व्यक्षर' के सात छन्दों की प्रस्तुत स्थल पर अवस्थिति संस्कृत कवियों की द्व्यक्षरप्रियता की याद दिलाती है। सेनापति ने चूँकि किसी लक्षणग्रन्थ की रचना नहीं की फलतः उनके द्वारा रचित इन चित्ररचनाओं का अधिक महत्त्व है।

सेनापति के समकालीन सन्तकवि सुन्दरदास की रचनाओं में भी हमें 'चित्रकाव्य' के अनेक छन्द प्राप्त होते हैं। सुन्दरदास जैसे सन्तकवियों की रचना में 'चित्रकाव्य' जैसे गोरखधन्धे की उपस्थिति यही सूचित करती है कि उस काल में कवियों के बीच इस काव्य का कितना प्रचलन होगा। हिन्दी के सन्तकवियों में केवल सुन्दरदास ही शिक्षित तथा विद्वान थे और अन्य शास्त्रों के साथ ही 'काव्यशास्त्र' का भी उनका गहरा अध्ययन था। वे सर्वांशतः शुद्धकवित्त लिखने के पक्ष में थे, वैयक्तिक पत्रों में भी अशुद्ध कवित्त उन्हें सह्य न था।[1] उनकी कविता निर्गुण विषयक होकर भी सर्वथा त्रुटिहीन है।

'चित्रकाव्य' में सुन्दरदास ने 'बन्धचित्र', 'स्वरचित्र', 'गतिचित्र', तथा 'प्रश्नोत्तर' के कतिपय भेदों की रचना की है।[2] 'स्वरचित्र' के अन्तर्गत उन्होंने केवल अमात्रिक की रचना की है, यद्यपि एक ऐसा छन्द भी उनकी रचना में प्राप्त होता है जिसके

---

१. नखशिख शुद्ध कवित्त पढ़त अति नीको लग्गै।
अंगहीन जो पढ़े सुनत कविजन उठि भग्गै॥
अक्षर घटिबढ़ि होइ पुड़ावत नर ज्यों चल्लै।
मात घटै बढ़ि कोइ मतौ मतवारो हल्लै॥
औढेर काँण से तुक अमिल, अर्थहीन अंधो यथा।
कहि सुन्दर हरिरस जीव है, हरिजस बिन मृतकहि जथा॥
—सुन्दर ग्रन्थावली, द्वितीय खण्ड, पृ० ९७२

रज्जबदास के शिष्य मोहनदास द्वारा लिखे गये पत्र में अशुद्ध छन्द होने के कारण सुन्दरदास ने उन्हें लिखा था—
"पिंगल तुम कैसो पढ़े शुद्ध न किये कवित्त।
कै ऐसे ही लिखि गये कै थिर भयौ न चित्त॥"
—उपरिवत्, प्रथम खण्ड, सुन्दरदास का जीवन-चरित्र, पृ० ६५

इस सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिये द्रष्टव्य, प्रस्तुत लेखक प्रणीत 'हिन्दीकाव्य : गोरखनाथ से केशवदास तक' शीर्षक ग्रन्थ में संकलित 'सुन्दरदास और उनका काव्य' शीर्षक निबन्ध

२. सुन्दर ग्रन्थावली, खण्ड २

सारे वर्ण दीर्घ हैं और जिसे 'दीर्घाक्षरी' कहा गया है।[1] 'गतिचित्र' के अन्तर्गत उन्होंने केवल 'गोमूत्रिका' की रचना की है, यद्यपि इसके एकाधिक छन्द हमें 'सुन्दरग्रन्थावली' में प्राप्त होते हैं।[2]

'बन्धचित्र' के अन्तर्गत सुन्दरदास ने तेरह बन्धों की रचना की है। ये हैं—

छत्रबन्ध, कमलबन्ध (२), चौकी बन्ध (२), चौपड़ बन्ध, जीनपोशबन्ध, वृक्षबन्ध (२), नागबन्ध, हारबन्ध, तथा कंकणबन्ध (२)।[3]

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि 'कमलबन्ध', 'चौकीबन्ध', 'वृक्षबन्ध' तथा 'कंकणबन्ध' के दो-दो चित्र हमें 'सुन्दरग्रन्थावली' में प्राप्त होते हैं। इनमें केवल 'कमलबन्ध' के दोनों चित्रों का न्यास समान है, अन्यथा अन्य चित्रों के दोनों न्यासों में पर्याप्त भिन्नता है। उदाहरण के लिये 'वृक्षबन्ध' के एक चित्र का आकार जहाँ कदली वृक्ष के समान है, वहाँ दूसरा वृक्ष टहनियों और पत्तियों से युक्त है। आकार में भिन्न होने के कारण इनके न्यास में भी भिन्नता का होना स्वाभाविक है। साथ ही यह भी विचारणीय है कि सुन्दरदास रचित 'वृक्षबन्ध' के इन दोनों ही न्यासविधियों में से बाद के हिन्दी कवियों द्वारा कोई भी गृहीत नहीं हुआ। यों भी इन न्यासों में किसी प्रकार का विशेष चमत्कार नहीं दीखता। 'वृक्षबन्ध' के समान ही 'कमलबन्ध' के चित्रों में भी हमें कोई विशिष्टता नहीं दीखती। सुन्दरदास रचित इन पद्मचित्रों में द्वादशदलों की योजना है और कवि रचित छह पंक्तियों के छप्पय का न्यास इस चित्र में इस प्रकार किया गया है कि चरणार्द्धों का अन्तिम वर्ण कोश में है तथा अन्य वर्णों का न्यास ऋजुगति से दलों में हुआ है। 'कमल-बन्ध' के इन छन्दों की रचना कवि ने 'आद्यक्षरी' तथा 'चरणगुप्त' के सम्मिलित रूप में

---

१. सुन्दर ग्रन्थावली, पृ० ४५६ तथा ९९४

दीर्घाक्षरी का छन्द निम्न है—

झूठे हाथी झूठे घोरा, झूठे आगे झूठे दोरा।
झूठा बन्ध्या झूठा छोरा झूठा राजारानी है।
झूठी काया झूठी माया झूठा झूठे धन्धा लाया
झूठा मूवा झूठा जाया झूठा याकी बानी है॥
झूठा सोवै, झूठा जागै, झूठा झूझै, झूठा भाजै
झूठा पीछै झूठा लागै झूठे झूठी मानी है।
झूठा लीया झूठा दीया झूठा षाया झूठा पीया
झूठा सौदा झूठे कीया ऐसा झूठा प्रानी है॥२५॥

—उपरिवत्, पृ० ४१७ अथवा ९९९

२. उपरिवत्, पृ० ९६७-६८, छन्द ६-७। उद्धार के लिये द्रष्टव्य पृ० ७८०-८१ के मध्य का चित्र

३. उपरिवत्, खण्ड-२

की है। फलतः कमल के दलान्तों में न्यस्त वर्णों के पाठ से छन्द का अन्तिम चरण निःसृत होता है।[1] 'कमलबन्ध' की इस न्यासविधि का अनुकरण हिन्दी में आगे भी पर्याप्त हुआ है।[2]

'चौकीबन्ध' के जो दो चित्र 'सुन्दरग्रन्थावली' में हमें प्राप्त होते हैं, उनके छन्दों की रचना यद्यपि समान है, किन्तु उन्हें चित्र में दो प्रकार से न्यस्त किया गया है। सुन्दरदास रचित ये छन्द परवर्ती हिन्दी 'चित्रकाव्य' में रचित 'चौकीबन्ध' के अनुरूप हैं और इस क्षेत्र में कवि ने आनेवाले कवियों को राह दिखाई है। केशवदास में भी 'चौकीबन्ध' का छन्द मिलता है, किन्तु कवि ने उसे 'डमरूबन्ध' की संज्ञा दी है।

'नागबन्ध' की रचना और न्यास कवि का अपना है,[3] जबकि 'हारबन्ध' का छन्द उन्होंने संस्कृत में प्रचलित 'हारबन्ध' के अनुरूप रचा है।[4] 'नागबन्ध' के भी एकाधिक चित्र हमें संस्कृत में प्राप्त हैं, किन्तु सुन्दरदास ने उनका अनुकरण नहीं किया। आगे चलकर हिन्दी के कतिपय कवियों ने भी सुन्दरदास रचित 'नागबन्ध' की रचना की[5] यद्यपि संस्कृत में प्रचलित 'नागबन्ध' के छन्द तथा न्यास का भी अनुकरण कम नहीं हुआ। तृतीय अध्याय में हिन्दी में प्राप्त 'नागबन्ध' तथा 'हारबन्ध' की विभिन्न न्यासविधियों का विवेचन किया जा चुका है। केशवदास ने भी 'हारबन्ध' के जिस छन्द की रचना की थी वह वाग्भट (प्रथम) द्वारा रचित 'हारबन्ध' के अनुकरण पर है, किन्तु 'षोडशदलकमल' की विधि से रचेजाने के कारण इस न्यास की दृष्टि से उस छन्द में कोई विशेष चमत्कार नहीं रह जाता। सुन्दरदास ने भी यद्यपि संस्कृत की इसी पद्धति का अनुकरण किया है, किन्तु उनका छन्द 'हारबन्ध' की दृष्टि से रचा गया है। फलतः वह पूर्ण उत्कर्ष के साथ चित्र में न्यस्त होता है। 'चौपड़', 'जीनपोश' तथा 'कंकणबन्ध' भी सुन्दरदास ने अपने ढंग से रचे हैं।[6]

---

१. द्रष्टव्य, सुन्दरग्रन्थावली, खण्ड २, पृ० ९०८-९ तथा ९८०-८१ के बीच के चित्र तथा प्रस्तुत ग्रन्थ की चित्र संख्या ११, पृ० १२३-२४ (पा० टि० १)

२. पदुमनदास की काव्यमंजरी, महिरामन सिंह के प्रबीनसागर, दीनदयाल गिरि के बैराग्य दिनेश, गोकुलकवि के चित्र कलाधर आदि में

३. सुन्दर ग्रन्थावली, खण्ड २, पृ० ४०४ तथा ४०५ के मध्य का चित्र

४. उपरिवत्, पृ० ५०८-९ के मध्य का चित्र

५. रामचरण शुक्ल, चरण विनोद, पृ० १७५
दीनदयालगिरि, वैराग्य दिनेश, पृ० १९०
जनराज, क० र० वि०, प्रत्नांक २९७
रसिक बिहारी, काव्यसुधाकर, कला १३, पृ० ३९
साधोगिरि गोस्वामी, कवि शिक्षक ग्रन्थ, पृ० ८१

६. द्रष्टव्य, सुन्दर ग्रन्थावली, खण्ड २
चौपड़, पृ० ८७६-७७ के मध्य का चित्र
जीनपोश, पृ० ८०४-५ के मध्य का चित्र
कंकण, पृ० ४६०-६१ तथा ५७२-७३ के मध्य के चित्र

अन्यत्र रचित इन बन्धों के चित्र से इनकी समानता नहीं मिलती। संस्कृत में यद्यपि 'कंकणबन्ध रामायण' की रचना है,[1] किन्तु सुन्दरदास ने उसका अनुकरण बिलकुल नहीं किया है। कहा जा चुका है कि संस्कृत के उक्त 'कंकणबन्ध' का छन्द हिन्दी में 'कामधेनु' अथवा 'सर्वतो-भद्र' के रूप में गृहीत हुआ है। अतः इन बन्धों की रचना करके सुन्दरदास ने हिन्दी 'चित्र-काव्य' के स्वरूपविकास में यथेष्ट योग दिया है। सुन्दरदास के काल तक यों भी हिन्दी में 'चित्रकाव्य' की बहुत ही अल्प रचना हुई थी। उनके सम्मुख यदि कोई प्राचीन परम्परा थी तो संस्कृत 'चित्रकाव्य' की। केशवदास की 'कविप्रिया' से उनके परिचित होने की सम्भावना की जा सकती है, क्योंकि 'रसिकप्रिया' का उल्लेख उन्होंने प्रसंगवश किया है।[2] फिर भी उनके द्वारा 'कविप्रिया' के देखे जाने की सम्भावना ही की जा सकती है, कारण 'रसिकप्रिया' के पश्चात् 'कविप्रिया' की रचना हुई थी। सम्भवतः हिन्दी का अन्य कोई भी ग्रन्थ उनके सम्मुख नहीं होगा, जिसमें 'चित्रकाव्य' का विवेचन अथवा उसकी रचनाएँ हों। ऐसी स्थिति में सुन्दरदास ने इस क्षेत्र में जो रचनाएँ की हैं, वे यदि संस्कृत की पद्धति पर नहीं हैं, तो निश्चित रूप से इनकी उद्भावना का श्रेय कवि का है।

बन्धेतर चित्र के क्षेत्र में हम देख चुके हैं कि कवि की कोई नवीन रचना हमारे सम्मुख नहीं आती। किन्तु 'प्रश्नोत्तर' के कतिपय भेदों की रचना भी हमें 'सुन्दरग्रन्थावली' में मिलती है। इन रचनाओं के नाम में तथा केशवदास, भिखारीदास प्रभृति आचार्यों के दिये नाम में हम अन्तर पाते हैं। यों 'प्रश्नोत्तर चित्रों' के विवेचन में हमने देखा है कि कतिपय भेदों के नामकरण में केशवदास तथा भिखारीदास भी एक मत नहीं हैं।[3] कहा नहीं जा सकता कि सुन्दरदास द्वारा रची गई इन रचनाओं के ये नाम 'सुन्दरग्रन्थावली' के सम्पादक के दिये हैं, अथवा स्वयं कवि ने ये रचनाएँ इन शीर्षकों के अन्तर्गत की हैं। 'प्रश्नोत्तर' के छन्दों में सुन्दरदास ने 'अन्तर्लापिका' के 'आद्यक्षरी', 'मध्याक्षरी' तथा 'आद्यन्ताक्षरी' प्रभेदों की रचना की है। इनके अतिरिक्त 'बहिर्लापिका' के नाम से 'सुन्दरग्रन्थावली में एक ऐसा छन्द प्राप्त होता है जिसे केशवदास ने 'एकानेकोत्तर' तथा भिखारीदास ने 'कमलबन्धोत्तर' की संज्ञा दी है।[4] 'प्रश्नोत्तर' के अन्य भेदों में सुन्दरदास में 'निगड़बन्धोत्तर', 'सिंघावलोकनी' तथा 'प्रतिलोम-अनुलोम' के नाम से क्रमशः दो तथा एक-एक छन्द की प्राप्ति होती है। आचार्यों के मत में इन रचनाओं के नाम क्रमशः 'क्रमव्यस्त-समस्त', 'शृंखलोत्तर' तथा 'व्यस्तगतागत' हैं। इस प्रकार प्रस्तुत विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि नाम में चाहे जो अन्तर आये, पर सुन्दरदास की देन 'चित्रकाव्य'

---

१. द्रष्टव्य, संस्कृत साहित्य का इतिहास (कृष्ण), अनु० ३४१ तथा ९७

२. सुन्दर ग्रन्थावली, खण्ड २, पृ० ४३९ छन्द ५

३. उदाहरणार्थ केशवदास का शासनोत्तर, भिखारीदास का एकानेकोत्तर है तथा केशव द्वारा कथित एकानेकोत्तर भिखारीदास के अनुसार कमलबन्धोत्तर है। इनका विस्तृत विवेचन चतुर्थ अध्याय में हुआ है।

४. सुन्दर ग्रन्थावली, खण्ड २, पृ० ९९४, छन्द ४६

के इतिहास में बड़े महत्त्व की है, विशेषकर ऐसी स्थिति में जब उनके पूर्व हिन्दी 'चित्रकाव्य' के प्रमुख रचयिताओं में केवल केशवदास थे, और उसका स्वरूप भी कुछ स्पष्ट नहीं हो पाया था।

सुन्दरदास के समय में ही किसी अमृत राय ने 'चित्रविलास' नामक पुस्तक की रचना की है। प्रस्तुत पुस्तक अभी अप्रकाशित है, इसकी हस्तलिखित प्रति नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के पुस्तकालय में याज्ञिक संग्रह के अन्तर्गत प्राप्य है।[1] प्रस्तुत पुस्तक का चूँकि प्रथम पत्र नहीं है. अतः रचना काल अथवा कवि के सम्बन्ध में कुछ ज्ञात नहीं होता। पुस्तक के अन्त में तीन दोहे प्राप्त होते हैं, जिनमें से प्रथम से हमें कवि तथा काव्य के नाम का ज्ञान होता है तथा अन्य दोहों से लिपिकार तथा लिपितिथि का पता चलता है। ये दोहे निम्न हैं—

"चित्र जात अभरन कछू बरनी अमृत राइ।
भरे चित्र की वृत्त अब कहि चतरंग बनाइ॥" इति चित्रविलास अमृतराय कृत समाप्तं॥

अगले दोहे हैं—

"वेद नाग द्विप शीतकर संवत जान सुजान।
सित कुवार एकादशी नीरज अरिदिन मान॥
ता दिन चित्र विलास यह लिख पूरो मैं कीन।
कवि गुलाव ने सोधि के जानहु साच प्रबीन॥"

प्रथम दोहे में कवि तथा काव्य का नाम स्पष्ट है, किन्तु लिपि से सम्बद्ध दोहों में तिथि स्पष्ट नहीं हो पाती। जहाँ तक वेद, नाग तथा शीतकर की संख्या की बात है वहाँ ये संख्यायें क्रमशः ४, ५ तथा १ हैं, किन्तु 'द्विप' के दो अर्थ हो सकते हैं सातद्वीप तथा हाथी के अर्थ में आठ दिग्गज। इस प्रकार प्रस्तुत दोहे से १७५४ तथा १८५४ दो प्रकार की तिथियाँ निकलती हैं। इन लिपितिथियों के निश्चित हो जाने पर ही अमृत कवि के काल के समय में अनुमान लगाया जा सकता है। यदि लिपिकाल हम १७५४ वि० मानें तो शीघ्र से शीघ्र भी रचना के ५० वर्षों के उपरान्त ही प्रतिलिपि हुई होगी और इसके अनुकूल यदि १७०४ सं० रचना काल हम मान लेते हैं, तो कवि की आयु उस समय कम से कम भी तो २० वर्ष की होगी। इस प्रकार १६८४ संवत् के आसपास हम कवि की जन्म तिथि मानेंगे। किन्तु ये तिथियाँ कोरे अनुमान के आधार पर मानी गई हैं। १८५४ वि० लिपिकाल मानने से इस अनुमान के सहारे कवि के काल में १०० वर्षों का अन्तर आ जायगा। निश्चित प्रमाण के बिना कुछ नहीं कहा जा सकता।

लिपिकार का नाम उक्त छन्द के अनुसार गुलाबकवि है। शुक्लजी के हिन्दी साहित्य के इतिहास में गुलाबकवि का नाम दो स्थानों पर आता है, किन्तु ऐसा लगता है कि ये दोनों ही कवि भिन्न-भिन्न व्यक्ति होंगे। सर्वप्रथम गुलाबकवि का नाम महाराज

१. पुस्तकालय की पुस्तक संख्या २२८ है।

जसवन्त सिंह रचित 'भाषाभूषण' के टीकाकार के रूप में है।[1] जसवन्त सिंह का देहान्त शुक्ल जी के अनुसार १७३५ संवत् में हुआ।[2] निश्चित है कि उनकी मृत्यु के उपरान्त ही टीका लिखी गई होगी। इस प्रकार १७५४ वि० में इस कवि का वर्तमान होना असम्भव नहीं है। दूसरे गुलाबकवि का उल्लेख शुक्ल जी ने काशी नरेश महाराज उदित नारायण सिंह के आश्रित कवि गणेश के पिता के रूप में किया है।[3] गणेश ने १८५७ वि० में 'वाल्मीकिरामायण श्लोकार्थ प्रकाश' नाम से 'वाल्मीकि रामायण' के कुछ अंशो का अनुवाद किया। इसके अनुसार भी सम्भव है कि गुलाब कवि ने 'चित्रविलास' की प्रतिलिपि की हो और उसका समय १८५४ वि० माना जा सकता है। यदि दोनों स्थानों पर उल्लिखित गुलाबकवि को अभिन्न माना जाय तो भी प्रतिलिपि की दोनों तिथियों में से किसी एक का निश्चय हम नहीं कर पाते। यदि 'भाषाभूषण' की उक्त टीका की तिथि मिल पाती तो उसके अधार पर कुछ निश्चय किया जा सकता था। किसी पुष्ट प्रमाण के अभाव में सम्भावना के आधार पर ही हम आगे बढ़ सकते हैं।

रचनातिथि चाहे जो हो, चित्ररचनाओं की दृष्टि से प्रस्तुत पुस्तक का स्थान बड़े महत्त्व का है। सामान्यतः इस रचना में चित्रप्रकारों के लक्षण नहीं हैं, किन्तु कतिपय स्थलों पर लक्षण भी दिये गये हैं। इन लक्षणों में केशवदास का अनुकरण किया गया है।[4] 'बन्धचित्र' की रचना अमृतराय ने प्रस्तुत पुस्तक में बिलकुल नहीं की है, यहाँ तक कि 'गोमूत्रिका' तथा 'सर्वतोभद्र' जैसे प्रचलित 'गतिचित्र' के छन्द भी प्राप्त नहीं होते। यों तो पुस्तक में 'विधानवर्णन' तथा 'कूट' के भी बहुत अधिक छन्द हैं जो 'चित्रकाव्य' के अन्तर्गत नहीं आते, किन्तु छन्द संख्या ६५ से लेकर १०८ तक में, पुस्तक के एक बड़े भाग को कवि ने बन्धेतर चित्रों की रचना में लगाया है। इन रचनाओं में निम्न चित्रप्रकारों के छन्द हैं—

अमात्रिक, निरोष्ठ्य (जिसे कवि ने 'अधर विछोह' की संज्ञा दी है), ओष्ठ्य (इसे कवि ने 'अधर-मिलन' कहा है), अन्तर्लापिका, बहिर्लापिका, मध्याक्षरी, अन्ताक्षरी, गुप्तोत्तर, प्रश्नोत्तर, एकानेकोत्तर, व्यस्त-समस्त, शासनोत्तर, व्यस्तोत्तर तथा भिन्न पदार्थउत्तर व्यस्त गतागत।

उपर्युक्त सूची से स्पष्ट है कि कवि ने 'स्वरचित्र,' 'स्थानचित्र' तथा 'गतिचित्र' के भी एक-एक भेद की ही रचना की है। कवि का मन प्रमुखतः 'प्रश्नोत्तर चित्र' के भेदों में अधिक रमा है और उसी की अधिक रचना हमें यहाँ प्राप्त होती है। साथ ही इन चित्ररचनाओं में अमृतराय ने केशवदास का पूर्णतः अनुकरण किया है यहाँ तक कि 'प्रश्नोत्तर,' 'एकानेको-

१. पृ० २४५ (पंचम संस्करण, २००६ वि०)

२. वि० १७३८, उपरिवत्, प्रथम संस्करण पृ० २५२
वि० १७३५, पंचम संस्करण, पृ० २४४

३. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३७७ (पंचम संस्करण)

४. द्रष्टव्य, छन्द ९७, शासनोत्तर का लक्षण

त्तर', तथा 'शासनोत्तर' संज्ञाएँ उन्हीं रचनाओं के लिये यहाँ भी प्रयुक्त हैं।[१] सैद्धान्तिक विवेचन के अन्तर्गत यह स्पष्ट किया जा चुका है कि बाद के चित्रकवियों ने इस प्रकार की रचनाओं के लिये अन्य संज्ञाओं का प्रयोग किया है और उनकी प्रकृति को देखते हुए वे संज्ञाएँ ही अधिक समीचीन ठहरती हैं।[२] कुल मिलाकर मौलिकता की दृष्टि से यद्यपि अमृत कवि ने इस क्षेत्र में बहुत अधिक योग नहीं दिया है, किन्तु 'चित्रकाव्य' के विकास में 'चित्रविलास' का पर्याप्त महत्त्व है।

ईसा की सतरहवीं शताब्दी में पड़नेवाले 'चित्रकाव्य' के अन्य सभी रचयिता कवि के साथ ही आचार्य भी हैं, फलतः लक्षणग्रन्थों में ही उदाहरणस्वरूप उन्होंने चित्ररचनाएँ भी की हैं। चिन्तामणि ने 'कविकुलकल्पतरु' में 'चित्रालंकार' के उदाहरणस्वरूप केवल तीन छन्दों की रचना की है, जिनमें प्रथम में 'आकार चित्र' की योजना है तथा अन्य दो में 'कामधेनु' तथा 'सर्वतोभद्र' की।[३] लक्षण विवेचन के अन्तर्गत इन छन्दों का विवेचन किया जा चुका है। 'चित्रकाव्य' के विकास में चिन्तामणि की यही देन है कि इनके पूर्व 'खड्गबन्ध' का उल्लेख किसी अन्य कवि ने नहीं किया है। यों 'आकारचित्र' के जिस छन्द की रचना चिन्तामणि ने की है वह संस्कृत के 'षोडशदलकमल' की पद्धति पर रचित दोहा है[४] और इस पद्धति से केशवदास ने भी दो दोहों की रचना की है। फलतः 'खड्गबन्ध' के उल्लेख की दृष्टि से ही चिन्तामणि का महत्त्व हो सकता है, रचना की दृष्टि से नहीं। चिन्तामणि के अनुज भूषण ने भी 'शिवराजभूषण' के अन्तर्गत 'चित्रालंकार' के उदाहरणस्वरूप 'कामधेनु चित्र' के एक सवैये की रचना की है।[५] इस एक छन्द के अतिरिक्त 'चित्रकाव्य' की अन्य कोई रचना भूषण ने अन्य ग्रन्थों में भी नहीं की है। इस प्रकार न तो 'चित्रकाव्य' के स्वरूप में और न विकास में ही भूषण का अपना कोई योगदान दीख पड़ता है। लक्षण विवेचन के अन्तर्गत कुलपति मिश्र लिखित 'रस रहस्य' का विवेचन किया जा चुका है। प्रस्तुत पुस्तक में भी चित्रालंकार के उदाहरण के क्रम में छह छन्दों की रचना की गई है, जिनमें प्रथम तीन छन्दों में दो प्रकार के 'खड्गबन्ध' की योजना है तथा अन्य तीन छन्द 'गोमूत्रिका,' 'धेनु' तथा 'रंगबरन चित्र' के नाम में रचित हैं।[६] 'रंगबरन चित्र' के सम्बन्ध में कहा जा

---

१. द्रष्टव्य, छन्द ९१, ९२, ९३, ९४ तथा ९७।

२. द्रष्टव्य, प्रस्तुत ग्रन्थ के चतुर्थ अध्याय में इन चित्रों का विवेचन

३. (क) क० क० क०, प्रकरण २, पृ० २०, छन्द ३० (नवल किशोर प्रेस से प्रकाशित १८७५ ई०)
(ख) उपरिवत् पृ० २०, छन्द ३२
(ग) उपरिवत् पृ० २१, छन्द ३३

४. " जोर घोर पर पीर हर सर वर धर धर धीर।
मेर सूर पर ढेर कर सर कर धर नर धीर॥" उपरिवत् २३६/१

५. शिवराजभूषण, छन्द ३६८ (ना० प्र० स० संस्करण) तथा ३७० (हिन्दी भवन)

६. रसरहस्य, सप्तमवृत्तान्त, पृ० ७६, छन्द ३५-३६ तथा ३७ में क्रमशः दो प्रकार के खड्ग तथा ३८, ३९, ४० में क्रमशः अन्य तीनों चित्रों की योजना है।

चुका है कि यह छन्द 'चित्रकाव्य' की सीमा में नहीं आता। अन्य छन्दों में हम केवल 'आकार' अथवा 'बन्धचित्र' तथा 'गतिचित्र' के उदाहरण पाते हैं। 'आकार चित्र' की रचना से 'चित्रकाव्य' के विकास में कुलपति मिश्र का स्पष्ट योग है। यद्यपि इन्होंने केवल 'खड्गबन्ध' की रचना की है, किन्तु उसके दो चित्र देकर संस्कृत तथा हिन्दी के भेद को स्पष्ट कर दिया है। संस्कृत में 'खड्गबन्ध' की रचना में सर्वदा दो श्लोक लगते रहे हैं, किन्तु हिन्दी में प्रस्तुत चित्र में एक छन्द का भी न्यास होता है। कुलपति मिश्र द्वारा रचित 'खड्गबन्ध' के तीनों छन्दों में, प्रथम दो का न्यास एक चित्र में किया जाता है, जबकि दूसरे चित्र में केवल तीसरे छन्द का न्यास होता है।[1] इस प्रकार कवि ने प्रस्तुत स्थल पर परम्परा से प्राप्त 'खड्गबन्ध' की रचनाविधि के साथ हिन्दी में उद्भूत रचनाविधि का उदाहरण भी प्रस्तुत किया है।

एक अन्य दृष्टि से भी 'रस रहस्य' का महत्त्व है। चिन्तामणि ने 'खड्गबन्ध' का केवल उल्लेख भर किया था, उसकी रचना के लिये जिस छन्द को 'कविकुल कल्पतरु' में रखा गया है वह 'षोडशदल कमलबन्ध' की पद्धति पर रचित है। चूँकि इस छन्द को कई चित्रों में न्यस्त किया जा सकता है, फलतः 'खड्गबन्ध' की रचना की दृष्टि से चिन्तामणि का कोई विशेष महत्त्व नहीं रह जाता। इसके विपरीत 'रसरहस्य' के इन छन्दों की रचना केवल 'खड्गबन्ध' के लिये हुई है और दोनों प्रकार की न्यासविधियों को दिखाने के लिये छन्दों की रचना भी अलग-अलग हुई है। इस प्रकार हिन्दी में 'खड्गबन्ध' की रचना करनेवाले कुलपति मिश्र ही प्रथम कवि सिद्ध होते हैं। यों 'खड्गबन्ध' एक प्रिय बन्ध रहा है और आगे चलकर इसकी प्रचुर रचना हुई है।

बन्धेतर चित्रों में केवल 'धेनु' और 'सर्वतोभद्र' की रचना 'रसरहस्य' में की गई है जिनका विवेचन लक्षण विवेचन के अन्तर्गत किया जा चुका है।

सुन्दरदास के बाद हिन्दी में बन्धचित्रों की सबसे अधिक रचना हमें पदुमनदास रचित 'काव्यमंजरी' में मिलती है। 'काव्यमंजरी' भी लक्षण ग्रन्थ ही है और 'चित्रकाव्य' के छन्द यहाँ भी उदाहरणस्वरूप ही रखे गये हैं। बन्धचित्रों की रचना के साथ पदुमनदास ने कतिपय चित्ररचनाओं की एक सूची भी दी है जिसमें **कमल, मेरु, असि, छत्र, सिंहासन, चामर, मुरज, सुरगवि (कामधेनु), कल्पवृक्ष, अश्वगति, मन्त्रीगति, गतप्रत्यागत, गदा, गोमूत्रिका तथा सर्वतोमुख**, इन पन्द्रह चित्रप्रकारों का उल्लेख है।[2] स्पष्ट है कि प्रस्तुत सूची के लगभग सारे चित्रप्रकार संस्कृत में भी निर्मित हैं। किन्तु पदुमनदास ने इनमें से केवल कुछ ही बन्धों के छन्दों की रचना की है। हिन्दी की पद्धति के अनुकूल 'काव्यमंजरी' में भी 'गोमूत्रिका', 'अश्वगति' तथा 'मन्त्रीगति' के लिये एक ही छन्द की रचना

१. रसरहस्य, वृत्तान्त ७, छन्द ३५-३६ एक खड्ग में तथा ३७ दूसरे में

२. काव्यमंजरी, पृ० १०७, छन्द ४ तथा ५

हुई है।[१] कमल का जो चित्र हमें 'काव्यमंजरी' में प्राप्त होता है, उसमें बारह दल हैं, किन्तु उसकी न्यासविधि में किसी प्रकार का चमत्कार नहीं दीख पड़ता।[२] छह पंक्तियों के छन्द को बारह टुकड़ों में बाँटकर प्रत्येक दल में ऋजुगति से लिख देने में किसी विशेष प्रकार का कौशल नहीं उपस्थित होता। इतना अवश्य है कि छन्द के इन सभी टुकड़ों का अन्तिम वर्ण एक ही है जिसका न्यास कमल के कोश में किया गया है। सुन्दरदास ने भी 'कमलबन्ध' में न्यास की यही विधि अपनाई थी।

अन्य चित्रों में 'काव्यमंजरी' में 'मेरु', 'असि', 'छत्न', 'चामर' तथा 'कपाटबन्ध' के छन्द तथा चित्र प्राप्त होते हैं। इन चित्रों में संस्कृत की न्यासपद्धति से पर्याप्त भिन्नता हमें दीख पड़ती है। 'मेरु' अथवा 'पर्वतबन्ध' की रचना संस्कृत में प्राप्त नहीं होती, किन्तु हिन्दी का यह बहुत ही प्रिय बन्ध है। इस बन्ध के न्यास में भी 'काव्यमंजरी' के न्यास तथा अन्य न्यासों में थोड़ा अन्तर दीख पड़ता है, यद्यपि हिन्दी के उन कतिपय बन्धों में इसका भी स्थान है जिनकी रचना में प्रायः समान न्यासविधि सर्वत्न अपनाई गई है। प्रचलित न्यास तथा प्रस्तुत न्यास में अन्तर केवल यह है कि जहाँ प्रचलित न्यास में छन्द की अन्तिम पंक्ति की रचना गतागतविधि से होती थी वहाँ प्रस्तुत छन्द में प्रथम पंक्ति की रचना गतागतविधि से की गई है।[3] फलतः न्यास में जहाँ शिखर से पर्वतमूल तक कोष्ठकों की मध्यम खड़ी पंक्ति में प्रचलित पद्धति के अनुकूल छन्द की अन्तिम पंक्ति का पूर्वार्द्ध लिखा जाता है, वहाँ प्रस्तुत स्थल पर प्रथम पंक्ति का पूर्वार्द्ध लिखा जायगा और उद्धार का आरम्भ इसी के गतागत पाठ से होगा। तत्त्वतः इस बन्ध के छन्द में कोई अन्तर नहीं है।

'हारबन्ध' की रचना में पदुमनदास ने संस्कृत में प्रचलित बहुत अधिक मणियों वाले हार की पद्धति अपनाई है। इसी पद्धति के अनुकूल प्रस्तुत हार की प्रत्येक मणि में ९ वर्णों का न्यास किया गया है जिनसे ग्यारह वर्णों का उद्धार होता है। असल में उद्धार के क्रम में प्रत्येक मणि में न्यस्त प्रथम तथा पंचम वर्ण का पाठ दुबारा होता है। मणियों में न्यस्त वर्णों की पाठगति दक्षिणावर्त क्रम से है। तृतीय अध्याय के अन्तर्गत प्रस्तुत 'हारबन्ध' का विवेचन पर्याप्त विस्तार से किया जा चुका है तथा इसके न्यास और उद्धारक्रम पर प्रकाश डाला जा चुका है।[४]

'काव्यमंजरी' में नियोजित 'चामरबन्ध' भी संस्कृत में प्रचलित 'चामरबन्ध' से पर्याप्त भिन्न है। संस्कृत में 'चामरबन्ध' के जितने भी चित्र प्राप्त होते हैं, वे सभी खुले हुए चामर के हैं, किन्तु पदुमनदास का यह 'चामर', बन्द यानी सिमटा हुआ केशगुच्छयुक्त है।

---

१. "पीके नीके रुष लगे करी धनै रस ठान।
हीके फीके मुख रंगे करी करै रस मान ॥१३॥" पृ० १२०

२. चित्र पृ० १०९, पृ० ११०, छन्द १, साथ ही द्रष्टव्य, प्रस्तुत ग्रन्थ की चित्र संख्या १२, पृ० १२५

३. काव्यमंजरी, पृ० १२४, छन्द १८ तथा पृ० १२३ का चित्र

४. द्रष्टव्य, चित्र संख्या ४५ का विवेचनक्रम, पृ० १८८-९१

फलतः दोनों प्रकार के न्यास में किसी प्रकार की समानता नहीं दीख पड़ती। हिन्दी में आगे चलकर 'चामर' की जो न्यासविधि प्रचलित हुई, वह संस्कृत की है। पदुमनदास की इस रचना का अनुकरण हिन्दी में नहीं हुआ। 'चामर' के प्रस्तुत चित्र की न्यासविधि का पूर्ण विवेचन तृतीय अध्याय में हो चुका है।[1]

'छत्नबन्ध' की भी पदुमनदास की अपनी न्यासविधि है। 'छत्नबन्ध' की रचना संस्कृत में भी वाग्भट प्रथम के बाद यथेष्ट हुई है, किन्तु संस्कृत में वाग्भट द्वारा नियोजित न्यास-विधि ही इस बन्ध के लिये सर्वत्र अपनाई गई है। हिन्दी में पदुमनदास के पूर्व सुन्दरदास में हमें 'छत्नबन्ध' की रचना मिलती है। किन्तु सुन्दरदास द्वारा नियोजित छन्द का न्यास छत्राकार चित्र में नहीं हो पाता। सुन्दरग्रन्थावली में 'छत्रबन्ध' का जो चित्र मिलता है और उसमें छन्द का जो न्यास दिखाया गया है, वह किसी छत्नाकार चित्र को हमारे सम्मुख नहीं रखता। इस प्रकार की न्यासविधि के अनुसार किसी भी छन्द को किसी चित्र में लिखा जा सकता है।[2] फलतः यह न्यास और आकार विश्वसनीय नहीं दीखता गो कि इसका अनुकरण बाद के एकाधिक कवियों ने किया भी है।[3] इसके विपरीत पदुमनदास का जो न्यास है वह पर्याप्त चमत्कार उत्पन्न करता है, यद्यपि बाद के हिन्दी कवियों ने इस विधि का अनुकरण नहीं किया और न ही संस्कृत में प्रचलित 'छत्नबन्ध' के न्यास से इसकी कोई समता है। 'काव्यमंजरी' में खुले छत्नाकार चित्र में छन्द के पूर्वार्द्ध का न्यास दण्ड के अन्त से आरम्भ कर दक्षिण पट में करते हुए दक्षिणावर्त क्रम से पुनः दण्डान्त में आकर समाप्त करते हैं। उत्तरार्द्ध को दण्डान्त से आरम्भ कर ऊपर से नीचे की ओर चलते हुए दण्डमूल में आकर समाप्त किया जाता है।[4] इस प्रकार यद्यपि यह न्यास अत्यन्त सरल है, फिर भी 'छत्नबन्ध' का प्रथम विश्वसनीय चित्र तथा न्यास होने के कारण इसका पर्याप्त महत्त्व है। 'काव्यमंजरी' में नियोजित 'कपाटबन्ध' सामान्य 'कपाटबन्ध' की विधि पर ही बना है।[5] संस्कृत में इस 'बन्ध' की योजना हमें नहीं मिलती है, किन्तु हिन्दी में इसकी प्रचुर योजना हुई है। असल बात यह है कि 'कपाटबन्ध' का अलग कोई अस्तित्व नहीं है, 'गोमूत्रिका' के छन्द को ही यदि तीन खड़ी कोष्ठक पंक्तियों में इस प्रकार लिखें कि प्रथम पंक्ति में छन्द के पूर्वार्द्ध के विषम वर्ण आवें, मध्यम पंक्ति में समवर्ण तथा तृतीय पंक्ति में उत्तरार्द्ध के विषम वर्ण तो यह 'कपाटबन्ध' का चित्र हो जायगा। इस प्रकार 'कपाटबन्ध' का अलग कोई महत्त्व नहीं रह जाता। यही कारण है कि संस्कृत में इस बन्ध की योजना नहीं की गई है। 'गोमूत्रिका' संस्कृत चित्रकवियों को अत्यन्त प्रिय है ही।

---

१. द्रष्टव्य, चित्र संख्या ८४ का विवेचनक्रम, पृ० २५५-५६
२. सुन्दर ग्रन्थावली, खण्ड २, पृ० ७५६-५७ के बीच का चित्र
३. जनराज—कविता रस विनोद
काशिराज—चित्र चन्द्रिका
रुद्रप्रसाद—रुद्रकौतुक विचित्र
४. द्रष्टव्य, प्रस्तुत ग्रन्थ की चित्र संख्या ८१, पृ० २५१
५. काव्यमंजरी, पृ० १२१

बन्धेतर चित्रों में पदुमनदास ने 'प्रश्नोत्तर' के भेदों के रूप में केवल 'अन्तर्लापिका' तथा 'बहिर्लापिका' की रचना की है।[1] लक्षणविवेचन में कहा जा चुका है कि काव्यमंजरीकार के मत में 'प्रश्नोत्तर' 'चित्र' से स्वतन्त्र अलग अलंकार है 'चित्र' का एक भेद नहीं।[2]

देव कवि रचित 'शब्दरसायन' में भी कतिपय चित्रप्रकारों की रचना हुई है, यद्यपि 'शब्दरसायन' की प्रकाशित प्रति में इन रचनाओं से सम्बद्ध छन्द अत्यन्त भ्रष्ट हैं।[3] 'शब्दरसायन' भी ईसा की १७वीं शताब्दी की रचना है। देव के इन छन्दों में 'चित्रकाव्य' का कोई स्वरूप हमारे सम्मुख स्पष्ट नहीं होता। इस प्रसंग में उनका यदि कुछ महत्त्व है तो केवल उन विविध 'बन्धचित्रों' को लेकर जिनका केवल नामोल्लेख भर देव ने किया है।[4] लक्षणविवेचन के अन्तर्गत 'शब्दरसायन' में रचित चित्ररचनाएँ तथा इस सम्बन्ध में देव के मत के विषय में विस्तार से विचार किया गया है।

'रसिकरसाल' के रचयिता कुमारमणि शास्त्री का आविर्भाव ईसा की १७वीं शताब्दी के अन्तर्गत ही हुआ था यद्यपि 'रसिकरसाल' की रचना विक्रमसंवत् १७७६ में हुई। इस सम्बन्ध में कवि ने पुस्तक के अन्त में लिखा है—

"रस सागर रवि तुरग विधु, संबत मधुर बसंत।
विकस्यो रसिक-रसाल लखि, हुलसत सुहृद व सन्त।"[5]

कवि ने यद्यपि पुस्तक के प्रारम्भ में ही यह बात स्पष्ट कर दी है कि वे 'काव्य-प्रकाश-विचार' की रचना 'भाषा' में करते हैं,[6] किन्तु 'चित्रकाव्य' के सम्बन्ध में वे मम्मट से पूर्ण स्वतन्त्र हैं। 'बन्धचित्र' का कोई छन्द 'रसिकरसाल' में नहीं है और न बन्धेतर चित्र का कोई लक्षण। अपनी चित्ररचनाओं में उन्होंने 'वर्णचित्र,' 'स्थानचित्र,' 'गूढ़' तथा 'प्रश्नोत्तर' के कतिपय भेदों के छन्द रचे हैं। इन चित्ररचनाओं में सबसे महत्त्व की बात प्रस्तुत प्रसंग में 'गूढ़चतुर्थ' की रचना है।[7] 'गूढ़चतुर्थ' की रचना

१. पृ० १३०, छन्द ३५, ३६ तथा ३७

२. द्रष्टव्य, द्वितीय अध्याय में पदुमनदास की काव्यमंजरी का विवेचन, पृ० ५६

३. सम्पादक डॉ० जानकीनाथ सिंह 'मनोज', हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, द्वितीय संस्करण, २००४ वि०; द्रष्टव्य, अष्टम प्रकाश के अन्तर्गत चित्रकाव्य से सम्बद्ध छन्द तथा प्रस्तुत ग्रन्थ, पृ० ६० पा० टि० ३ में उद्धृत कामधेनु के छन्द

४. द्रष्टव्य, श० र०, अष्टम प्रकाश, पृ० ९० तथा प्रस्तुत ग्रन्थ के पृ० ६० पर उद्धृत सूची

५. रसिकरसाल, पृ० २६९, छन्द २

६. काव्यप्रकाश-विचार कछु रचि भाषा में हाल।
पंडित सुकवि 'कुमार मनि' कीन्हौं रसिक रसाल ॥४॥

—उपरिवत्, पृ० २

७. उपरिवत्, पृ० १३७, छन्द ३३

यद्यपि संस्कृत कवियों को बड़ी प्रिय थी किन्तु हिन्दी में उसका प्रचलन प्रायः नहीं के बराबर रहा। इसका स्थान हिन्दी में 'चरणगुप्त' ने ले लिया। यद्यपि ये दोनों रचनाएँ एक ही कोटि की हैं, फिर भी 'चरणगुप्त' में विशेषकर 'घनाक्षरी,' 'छप्पय,' 'दण्डक' जैसे बड़े छन्दों का उपयोग किया जाता है जिनके अन्तिम चरण का उत्तरार्द्ध गुप्त होता है। बड़े छन्दों में गोपन की अधिक सुविधा रहती है। साथ ही इन दोनों में थोड़ी भिन्नता भी है जिसका उल्लेख सैद्धान्तिक विवेचन के क्रम में हो चुका है।[1] अन्य रचनाओं में 'त्र्यक्षर' की रचना भी प्रस्तुत प्रसंग में महत्त्व रखती है।[2] 'एकाक्षर,' 'द्व्यक्षर' तथा 'चतुरक्षर' की रचना हिन्दी और संस्कृत में होती रही है, किन्तु 'त्र्यक्षर' की रचना हिन्दी ही क्या संस्कृत में भी बहुत कम हुई है। 'स्थानचित्र' के अन्तर्गत 'निरोष्ठ' की रचना संस्कृत के कवियों द्वारा तो सर्वाधिक हुई ही है, हिन्दी में भी अन्य स्थानचित्रों के छन्द अपवादस्वरूप ही रचे गये हैं। 'रसिकरसाल' में भी 'स्थानचित्र' के अन्तर्गत इसी परम्परा का पालन हम पाते हैं। इस प्रकार कुमारमणि ने यद्यपि केवल 'बन्धेतर चित्र' के, और वह भी बहुत कम छन्दों की रचना की है, पर हिन्दी 'चित्रकाव्य' के विकास में उन्होंने पर्याप्त योगदान किया है।

चित्ररचनाओं की दृष्टि से ईसा की १८ वीं शताब्दी में केवल पाँच कवियों के नाम अधिक उल्लेखनीय हैं—भिखारीदास, रसरूप, जनराज, हरिकवि तथा महिरामन सिंह। इनमें प्रथम चार आचार्य हैं और इनके लक्षणग्रन्थों में उदाहरणस्वरूप रचे गये छन्दों में इनके काव्य का हमें दर्शन होता है। 'चित्रकाव्य' की रचना भी इन कवियों ने इसी शैली में की है। जैसाकि इन नामों से स्पष्ट है हिन्दीसाहित्य का विद्यार्थी इनमें से केवल भिखारीदास से ही पूर्णतः परिचित है। रसरूप के 'तुलसीभूषण' ग्रन्थ का उल्लेख अवश्य 'हिन्दीसाहित्य के इतिहास' अथवा 'काव्यशास्त्र के इतिहास' में हुआ है,[3] किन्तु इसका बहुत थोड़ा विवेचन 'हिन्दी साहित्य के बृहत् इतिहास' में हुआ है। इसी हस्तलिखित प्रति के आधार पर प्रस्तुत ग्रन्थ का एक छोटा विवेचन डॉ० ओमप्रकाश लिखित 'हिन्दी अलंकार साहित्य' में भी प्राप्त होता है। जनराज रचित 'कवितारस विनोद' का एक अत्यन्त लघु परिचय 'हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास' में प्राप्त होता है। 'हिन्दी साहित्य के बृहत् इतिहास' में इसका अच्छा विवेचन हुआ है।[4] चौथी पुस्तक हरिकवि रचित 'कवि-वल्लभ' अभी तक हिन्दी संसार में अज्ञात है।[5] इन कवियों में केवल भिखारीदास

१. द्रष्टव्य, चतुर्थ अध्याय में गुप्तचित्र का विवेचन पृ० ३४५

२. रसिकरसाल, पृ० १३७, छन्द २८

३. मिश्रबन्धु विनोद, भाग २, पृ० ७०८, कवि० सं० ८५० (द्वितीय संस्करण)
हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास, पृ० १८२ (रामदास के कविकल्पद्रुम के उद्धरण में)
हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, षष्ठ भाग, पृ० ४६५-६६,
हिन्दी अलंकार-साहित्य पृ० १७६

४. हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास, पृ० १५३-५४
हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, षष्ठभाग, पृ० ३६३-६६

५. पुस्तक संख्या ९६३, रत्नाकर संग्रह, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

तथा महिरामन सिंह की रचनाएँ प्रकाशित हैं, उपरिलिखित अन्य तीनों पुस्तकें अभी हस्तलेख के रूप में ही विभिन्न संग्रहालयों में पड़ी हैं।

भिखारीदास ने अन्य अलंकारों के साथ 'चित्रकाव्य' का भी अपने 'काव्यनिर्णय' में विस्तृत विवेचन किया है। कहा जा चुका है कि 'काव्यनिर्णय' के एक सम्पूर्ण परिच्छेद में केवल 'चित्रकाव्य' की रचनाएँ हैं। 'चित्रकाव्य' के 'लक्षण तथा क्षेत्र विस्तार' के अन्तर्गत हमने इस क्षेत्र में भिखारीदास के आचार्यत्व का पर्याप्त विस्तार से विवेचन किया है।[1] प्रस्तुत स्थल पर हम उदाहरणस्वरूप रचित चित्ररचनाओं के छन्द तथा बन्धों में उनके न्यास की दृष्टि से चित्रकाव्य रचना तथा विकास में उनके योग का विवेचन करेंगे।

जहाँ तक चित्रप्रकारों का प्रश्न है भिखारीदास ने हिन्दी में तथा साथ ही संस्कृत कवियों के द्वारा रचित प्रायः सभी प्रचलित चित्रप्रकारों की रचना की है। लक्षणविवेचन के क्रम में यह स्पष्ट हो चुका है कि दास ने 'चित्रकाव्य' के विवेचन में संस्कृत के आचार्यों का बिलकुल अनुकरण नहीं किया है और न उनके वर्गीकरण को स्वीकार किया है। इसके विपरीत हिन्दी में रची जानेवाली चित्ररचनाओं को ध्यान में रखकर उन्होंने स्वतः 'चित्रकाव्य' का वर्गीकरण किया है, जो अत्यन्त वैज्ञानिक है। इसी प्रकार 'चित्रकाव्य' के उदाहरणों में भी उन्होंने संस्कृत आचार्यों अथवा अपने पूर्व के हिन्दी आचार्यों का आँख मूँद कर अनुकरण नहीं किया है, वरन् संस्कृत और हिन्दी काव्यकृतियों में प्रचलित चित्रप्रकारों की ही रचना की है। यही कारण है 'स्वरचित्र' में उन्होंने केवल 'अमात्रिक' तथा 'स्थानचित्र' के केवल 'निरोष्ठ' की रचना की है।[2] 'वर्णचित्र' के अन्तर्गत भले ही उन्होंने 'एकाक्षर' से लेकर 'सप्ताक्षर' तक की रचना की है और अधिक वर्णों से युक्त रचनाओं का होना भी स्वीकार किया है।[3] यहाँ उन्होंने स्पष्टतः केशव का अनुकरण किया है।

सैद्धान्तिक विवेचन के अन्तर्गत यह बात भी आ चुकी है कि 'प्रश्नोत्तर' के कतिपय भेदों के नाम तक में दास ने परिवर्तन किये हैं और 'प्रश्नोत्तर' के भेदविशेष के स्वरूप को देखते हुए ये नाम अधिक सार्थक हैं।[4] 'प्रश्नोत्तर' की इन रचनाओं में भिखारीदास ने संस्कृत के विदग्धमुखमण्डनादि से सहायता अवश्य ली है, किन्तु यहाँ भी उन्होंने अनुकरण नहीं किया है। इस क्रम में यह ध्यातव्य है कि हिन्दी में 'प्रश्नोत्तर' के कतिपय भेदों की ही रचनाएँ हुई हैं, संस्कृत में प्रचलित सभी भेदों की नहीं। चतुर्थ अध्याय के अन्तर्गत इन सभी भेदों का सैद्धान्तिक विवेचन किया जा चुका है।

'चित्रकाव्य' के स्वरूप तथा विकास में भिखारीदास का महत्त्व केवल आचार्य की ही दृष्टि से नहीं वरन् कवि की दृष्टि से भी बहुत अधिक है। सबसे पहली बात तो यही

१. द्रष्टव्य, द्वितीय अध्याय, पृ० ६२
२. काव्यनिर्णय, परि २१ छन्द क्रमशः ४३ तथा ४९
३. उपरिवत्, छन्द ४९ से ५५ तक
४. द्रष्टव्य, चतुर्थ अध्याय के अन्तर्गत प्रश्नोत्तर, शासनोत्तर तथा एकानेकोत्तर अथवा कमलबन्धोत्तर का विवेचन, पृ० ३५३, ३७१, ३९७ तथा ३९३

है कि दास रचित सारी चित्ररचनाएँ पूर्णतः निर्दोष हैं। केशवदास के प्रसंग में हमने पाया है कि आचार्य होने तथा लक्षण देने पर भी 'निरोष्ठ' के उदाहरण के रूप में रचित केशव का छन्द सदोष है। यहाँ केशव ने काव्यकृतियों में प्रचलित पद्धति का अनुकरण किया है और हमने प्रस्तुत अध्याय के प्रारम्भ में देखा है कि संस्कृत में भी कवियों ने 'स्थानचित्र' की रचना के क्रम में मात्राओं के प्रयोग में उच्चारणस्थान का बन्धन स्वीकार नहीं किया है।[1] केशव ने भी केवल इतनी ही स्वतंत्रता ली है। किन्तु भिखारीदास ने निरोष्ठ के अपने छन्द को पूर्णतः दोषमुक्त रखा है।[2] जहाँ तक 'प्रश्नोत्तर चित्र' का प्रश्न है, इस क्षेत्र में भी अपनी रचनाओं में उन्होने कहीं व्यतिक्रम नहीं आने दिया है।

आकार चित्रों के अन्तर्गत कुल १३ बन्धों की रचना भिखारीदास ने की है। इन सभी बन्धों के छन्द अत्यन्त शुद्ध तथा उत्कृष्ट हैं। केवल 'कंकणबन्ध' के न्यास में 'चित्रकाव्य' की दृष्टि से कोई चमत्कार नहीं दीख पड़ता। 'कमलबन्ध' की रचना में भिखारीदास ने परम्परा को ही निभाया है। संस्कृत के 'षोडशदल कमल' की पद्धति पर इस छन्द की रचना है।[3] भिखारीदास तो क्या हिन्दी के किसी भी चित्रकवि ने संस्कृत में प्राप्त 'अष्टदल कमल' की न्यासविधि के अनुकूल 'पद्मबन्ध' की रचना नहीं की है। भिखारीदास की चित्ररचनाओं की उत्कृष्टता हम 'चक्र', 'धनुष', 'मुरज', 'छत्र' तथा 'वृक्ष' बन्धों के निर्माण में पाते हैं। इन बन्धों की न्यासविधि बहुत कुछ भिखारीदास की अपनी है और इनमें से अधिकांश का अनुकरण हिन्दी के परवर्ती चित्रकवियों ने किया है।

'चक्रबन्ध' की दो रचनाएँ भिखारीदास ने की हैं, एक 'अष्टार चक्र' की और दूसरा 'षडर' की। किन्तु इनमें से किसी में भी चक्र की प्रचलित न्यासविधि का अनुकरण नहीं किया है। सिद्धान्ततः संस्कृत में प्रचलित न्यास को स्वीकार करके भी उसमें कतिपय इस प्रकार के परिवर्तन दास ने किये हैं कि चित्र में छन्द के न्यास तथा उद्धार में अधिक चमत्कार आ गया है। उदाहरणार्थ 'अष्टारचक्र' में न्यास का आरम्भ नेमि से न कर केन्द्र से किया है और प्रत्येक आरे में केन्द्र से नेमि की ओर न्यास कर चुकने के उपरान्त, प्रचलित पद्धति से ही छन्द के उत्तरार्द्ध का न्यास नेमि में किया है।[4] इस प्रकार चित्र में कहीं अधिक चमत्कार आ जाता है।

'षडरचक्र' में भी भिखारीदास ने संस्कृत की न्यासपद्धति का आश्रय बिलकुल नहीं लिया है, बल्कि चक्र के चित्र में भी पूर्वप्रचलित चित्रों से विशेषता है। हम देख चुके हैं कि संस्कृत के प्राप्त बन्धचित्रों में 'चक्रबन्ध' ही प्राचीनतम है, जिसकी रचना 'माघ' ने अपने 'शिशुपालवध' में की है।[5] 'चक्रबन्ध' संस्कृत कवियों का अत्यन्त प्रिय बन्ध रहा है

१. द्रष्टव्य, चतुर्थ अध्याय, पृ० २९३ पा० टि० ५
२. द्रष्टव्य, चतुर्थ अध्याय, पृ० २९१
३. द्रष्टव्य, उपरिवत्, चित्र संख्या १९ पृ० १३६
४. द्रष्टव्य, उपरिवत्, चित्र संख्या ३१ पृ० १६४
५. द्रष्टव्य, उपरिवत्, चित्र सख्या २७ पृ० १५७

और इसका उपयोग उन्होंने बहुधा अपने तथा अपने काव्य के नाम को गुप्तरूप से उपस्थित करने में किया है। बड़े चक्रों में गुप्तरूप से एक सम्पूर्ण श्लोक न्यस्त करने की व्यवस्था की जाती रही, जिससे कवि के सम्बन्ध की अधिक बातों का ज्ञान हमें प्राप्त होता रहा है। भिखारीदास रचित 'चक्र' यद्यपि अंकयुक्त नहीं है, फिर भी इसकी अपनी विशेषता हैं। संस्कृत के 'चक्र' में जहाँ एक ही परिधि होती थी वहाँ प्रस्तुत 'षडर चक्र' में एक केन्द्र पर दो परिधियों की योजना की गई है और इन दोनों परिधियों में छन्द का न्यास प्रचलित विधि से ही किया गया है। आरों में भी न्यास की विधि संस्कृत की पद्धति के अनुरूप नहीं, वरन थोड़ी परिवर्तित है।[1]

इसी प्रकार 'छत्रबन्ध' में भी भिखारीदास ने संस्कृत की न्यासपद्धति को स्थान नहीं दिया है। सैद्धान्तिक विवेचन के अन्तर्गत स्पष्ट किया जा चुका है कि भिखारीदास रचित 'छत्रबन्ध' का न्यास संस्कृत में प्रचलित 'चक्रबन्ध' तथा 'हिन्दी चक्रबन्ध' का सम्मिलित रूप है। छत्र का आकार भी बहुत कुछ चक्र से मिलता है, कारण चित्र खुले छाते का है और छत्रपट का गोल आकार वृत्त के एक बड़े टुकड़े का रूप ले लेता है। अतः यहाँ परिधियाँ तो दो हैं, पर 'छत्रदण्ड' को लेकर आरे आठ हैं। फलतः यहाँ भी हम देखते हैं कि प्रस्तुत बन्ध की निर्माणपद्धति भिखारीदास की अपनी है, न तो संस्कृत 'छत्रबन्ध' से इन्होंने कोई सहयता ली है और न सुन्दरदास अथवा पदुमनदास रचित 'छत्रबन्धों' से ही इसकी कोई समानता है।[2]

भिखारीदास के 'धनुषबन्ध' का चित्र हिन्दी में प्रचलित 'शरयुक्तधनुष' का चित्र है और न्यासविधि भी प्रचलित ही है।[3] यहाँ भी कवि ने संस्कृत का बिलकुल अनुकरण नहीं किया है। संस्कृत की पद्धति का अनुकरण भिखारीदास ने थोड़े परिवर्तन के साथ 'खड्गबन्ध' में किया है। किन्तु यहाँ भी उन्होंने केवल एक ही छन्द का न्यास चित्र में किया है जबकि संस्कृत में सामान्यतः दो श्लोकों का न्यास इस बन्ध में किया जाता था।[4]

'मुरजबन्ध' के सम्बन्ध में सैद्धान्तिक विवेचन के अन्तर्गत रेखाचित्रों के सहारे विस्तृत विवेचन किया जा चुका है और वहाँ हमने देखा है कि संस्कृत की पद्धति से भिखारीदास की पद्धति पर्याप्त भिन्न है।[5] 'हारबन्ध' में अवश्य भिखारीदास ने प्रचलित पद्धति को अपनाया है, और उसीके अनुरूप उसकी रचना है।[6]

१. द्रष्टव्य, प्रस्तुत ग्रन्थ की चित्र संख्या २६ तथा सम्बद्ध विवेचन, पृ० १५३-१५५
२. द्रष्टव्य, उपरिवत्, चित्र संख्या ७६, ८१ (पृ० २४१, २५१) तथा सुन्दर ग्रन्थावली, खण्ड २ पृ० ७५६-५७ के बीच का चित्र
३. का० नि०, परि २१, छन्द ६७ तथा सम्बद्ध चित्र, न्यास पद्धति के लिये द्रष्टव्य प्रस्तुत ग्रन्थ की चित्र संख्या ५३ तथा ५५ (पृ० २०६, २०८)
४. द्रष्टव्य, प्रस्तुत ग्रन्थ की चित्र संख्या ४७ (पृ० १९६) तथा रुद्रट के काव्यालंकार के खड्ग का चित्र तथा विवेचन।
५. द्रष्टव्य, उपरिवत्, चित्र संख्या ८५, ८७ (पृ० २५९, २६१) तथा सम्बद्ध विवेचन
६. द्रष्टव्य, उपरिवत्, चित्र संख्या ४२ तथा सम्बद्ध विवेचन (पृ० १८२-८५)

'वृक्षबन्ध' का कोई चित्र हमें संस्कृत में प्राप्त नहीं होता। सुन्दरदास की चित्ररचनाओं के क्रम में हमने देखा है कि उन्होंने 'वृक्षबन्ध' के दो चित्र दिये हैं। किन्तु इन चित्रों में छन्द का जिस प्रकार न्यास हुआ है उसमें किसी प्रकार का चमत्कार हमें दीख नहीं पड़ता। फलतः 'चित्रकाव्य' के अन्तर्गत इन चित्रों का बहुत महत्त्व नहीं हो सकता। इसके विपरीत भिखारीदास रचित 'वृक्षबन्ध' पर्याप्त महत्त्व का अधिकारी है। एक तो असल अर्थ में भिखारीदास ही प्रस्तुत बन्ध के प्रथम निर्माता हैं और द्वितीय उनकी न्यासविधि भी पर्याप्त उत्कृष्ट है। सैद्धान्तिक विवेचन के क्रम में इनका विवेचन किया गया है। प्रस्तुत चित्र में शाखाओं और टहनियों में जो न्यास हुआ है उसमें आवृत्तिगत चमत्कार का प्राचुर्य है।

बन्धचित्रों के अतिरिक्त गुप्तचित्र का वह रूप भी, जिसमें कवि का विस्तृत परिचय छिपा है, कवि की मौलिकता का पुष्ट प्रमाण है। अपना परिचय उपस्थित करने के लिये दास ने 'चक्रबन्ध' का उपयोग नहीं किया है, किन्तु एक नवीन चित्रप्रकार की रचना की है। इनका भी विस्तृत विवेचन चतुर्थ अध्याय में किया जा चुका है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि केवल आचार्य तथा व्यवस्थापक के रूप में ही नहीं वरन चित्रकवि के रूप में भी 'चित्रकाव्य' के इतिहास में भिखारीदास का असाधारण महत्त्व है। उन्होंने कितने ही बन्धों की नवीन न्यासविधियों की कल्पना की है तथा बन्धेतर चित्रों में भी कितने ही नवीन प्रकारों की उद्भावना की है। वर्गीकरण तथा नामकरण की वैज्ञानिकता और 'चित्रकाव्य' के विवेचक की दृष्टि से इनके महत्त्व का मूल्यांकन द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत हो चुका है।

भिखारीदास के उपरान्त रसरूप कवि रचित 'तुलसीभूषण' का स्थान आता है। प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना १८११ संवत् अर्थात् १७५४ ई० में हुई थी। पुस्तक में लेखक ने रचनाकाल निम्न दोहे में दिया है—

"दशवशु शत सम्बत हुतो अधिक और दश एक।
कियो सु कवि रस रूप यह पूरण सहित विवेक।[1]

पुस्तक की जो प्रति प्रस्तुत लेखक को उपलब्ध है वह मन्नूलाल पुस्तकालय, गया (बिहार) की हस्तलिखित प्रति है। प्रस्तुत हस्तलेख के लिपिकार सिंग्रिफलाल हैं और लिपिकाल १९२० वि० है।[2] पुस्तक में 'स' के स्थान पर 'श' का ही अधिक प्रयोग

१. पुस्तक के प्रारम्भ में छन्द ३

२. व्योम नयन निधि इन्दु युत सम्वत विक्रम जान।
फाल्गुण कृष्ण सु सप्तमी चन्द्रवार शुभ मान॥
सिंग्रिफलाल सुजान, तुलसी भूषण ग्रंथवर।
पूर्ण कियो मतिमान, स्वकर लेखि अतिचाव कर।"
व्योम ० नयन २, निधि ९ तथा इन्दु १ इस प्रकार १९२०। पुस्तक के अन्त के दो दोहे

मिलता है, पता नहीं यह परिवर्तन लिपिकार के द्वारा किया गया है अथवा स्वयं लेखक ने इसी रूप में लिखा है।

प्रस्तुत पुस्तक अलंकार की पुस्तक है जिसकी रचना एक निश्चित उद्देश्य को लेकर की गई है। अलंकारों के लक्षण के लिये रचयिता ने 'काव्यप्रकाश', 'कुवलयानन्द', 'चन्द्रालोक', 'कल्पलता' (?) तथा 'चन्द्रोदय' (?) का आधार ग्रहण किया है, किन्तु उदाहरण के छन्द उन्होंने तुलसीदास की रचनाओं से लिये हैं। यही कारण है कि लेखक ने प्रस्तुत पुस्तक का नाम 'तुलसी भूषण' रखा है। इस सम्बन्ध में पुस्तक के निम्न दोहे द्रष्टव्य हैं—

"सम्मत काव्य प्रकास को औरे कुवलयानन्द।
चन्द्रालोक कलपलता चन्द्रोदय शुभकन्द॥
एकादश अरु एक शत मुख्य अलंकृत रूप।
विविध भेद इनको धरे तुलसीदास अनूप॥"[१]

इस प्रकार प्रस्तुत पुस्तक एक सोद्देश्य रचना है जो रीति पुस्तकों की प्रचलित परिपाटी से अलग हटकर निर्मित हुई है।

प्रस्तुत स्थल पर इस पुस्तक का महत्त्व 'चित्रकाव्य' के छन्दों को लेकर है। तुलसीदास में चूँकि लेखक को 'चित्रालंकार' के उदाहरण नहीं मिल सके अतः उन्होंने इसके विभिन्न भेदों के उदाहरण या तो अन्यत्र से लिये हैं अथवा इन उदाहरणों की स्वयं रचना की है। 'चित्रकाव्यरचना' के सम्बन्ध में तुलसीदास की अरुचि का उल्लेख करते हुए रसरूप ने अपने एक अन्य ग्रन्थ 'अलंकार दर्पण' का उल्लेख किया है जिसमें उन्होंने अनेक चित्रों की रचना की थी। प्रस्तुत पुस्तक में उल्लिखित 'चित्रकाव्य' के छन्द सम्भवतः उसी पुस्तक के हैं—

"खड्गाद्याकृत बन्ध बहु कामधेनु दै आदि।
चित्रालंकृति विविध विधि वरणत सुकवि अनादि।
धृष्टकाव्य यासो कहत पण्डित सुमति निवास।
नहिं याको शंग्रह कियो ताते तुलसीदास॥
अलंकार दर्पण विषै मैं वरणे बहु चित्र।
तिन्हे जानिबे हेतु अब रूप देखावत मित्र।"[२]

'तुलसीभूषण' में कवि ने चित्र की बहुत अधिक रचनाएँ नहीं की हैं, किन्तु चित्र के जिन प्रकारों के छन्द इस पुस्तक में उपलब्ध हैं वे निम्न हैं—

खड्गबन्ध, हारबन्ध, त्रिपदी, अश्वगति, गोमूत्रिका, कपाटबन्ध, द्वादशदल पद्मबन्ध, शेषबन्ध (नागबन्ध), छत्रबन्ध, चक्रबन्ध, अन्तर्लापिका, आद्यन्तर्लापिका, बहिर्लापिका,

१. प्रस्तावना, छन्द १ तथा २
२. पत्र ५, दोहा १७, १८ तथा १९

मध्याक्षरी, अनेकार्थ, गतागत, पदलोप, अन्तादिमुख चित्र, अमात्रिक, निरोष्ठ, अदन्त तथा कामधेनु ।[1]

प्रस्तुत सूची से यह ज्ञात होता है कि रसरूप कवि ने 'स्वरचित्र', 'स्थानचित्र', 'गतिचित्र', 'गूढ़', 'प्रश्नोत्तर' के कतिपय भेद तथा कतिपय बन्धचित्रों की योजना की है। यहीं पर यह बात भी ध्यातव्य है कि 'हारबन्ध' 'त्रिपदी', 'अश्वगति', 'गोमूत्रिका' तथा 'कपाट-बन्ध' के लिये 'तुलसीभूषण' में एक ही दोहा दिया गया है और वह भी चिन्तामणि रचित 'कविकुलकल्पतरु' का दोहा है। लेखक ने भी इसे स्वीकार किया है।[2] अन्य चित्रों में 'शेषबन्ध' तथा 'चक्रबन्ध' के लिये संस्कृत के श्लोक दिये गये हैं, किन्तु अन्य सभी छन्द हिन्दी के हैं। 'चक्रबन्ध' का जो चित्र और उसमें छन्द का जो न्यास पुस्तक की प्रस्तुत प्रति में उपलब्ध होता है, वह सदोष है, और उसका बहुत महत्त्व भी नहीं है। इस न्यास में प्रारम्भ नेमि से किया गया है और इसके बाद आरों में श्लोकांश का न्यास होता है। किन्तु एकाएक अन्तिम आरे में न्यास की गतिदिशा विपरीत हो जाती है। इस प्रकार प्रस्तुत चित्र अत्यन्त दोषपूर्ण हो उठता है। यों 'चक्र' चतुरर है।[3]

'शेषबन्ध' अथवा 'नागबन्ध' का चित्र तथा न्यास संस्कृत की प्रचलित पद्धति पर है। चूंकि न्यास का छन्द भी संस्कृत का है अतः इसके सम्बन्ध में अधिक कुछ कहना आवश्यक नहीं। इन बन्धों के अतिरिक्त 'पद्मबन्ध', 'खड्गबन्ध' तथा 'छत्रबन्ध' के छन्द कवि द्वारा रचित जान पड़ते हैं। इनमें 'खड्गबन्ध' के लिये किसी पूर्ण छन्द की रचना नहीं हुई है और न्यास केवल कतिपय शब्दों का हुआ है। ये शब्द हैं—

"कुल कल धौल जल पाल दल शाल खल।"[4]

यों भी इस वाक्य के प्रत्येक शब्द का अन्तिम वर्ण 'ल' है और प्रत्येक शब्द में केवल दो वर्ण हैं। फलतः न्यास की दृष्टि से यह 'खड्गबन्ध' बिलकुल महत्त्वहीन है। जहाँ तक 'कमलबन्ध' और 'छत्रबन्ध' का प्रश्न है इनमें भी किसी प्रकार की विशिष्टता नहीं दीख पड़ती। सुन्दरदास द्वारा रचित 'द्वादशदल पद्म' के समान इस पद्म की रचना है जिसमें छह पंक्तियों के छन्द का न्यास किया गया है। छन्द के प्रत्येक चरण को दो भागों में बाँटा गया है और इनमें से प्रत्येक भाग को क्रमशः कमलदलों में ऋजगति से लिखा गया है। चूंकि इन सभी चरणखण्डों का अन्तिम वर्ण एक ही 'र' है अतः इसका न्यास कमल के कोश में हुआ है। यद्यपि 'कमलबन्ध' की प्रस्तुत न्यासविधि हिन्दी की एक प्रचलित न्यासविधि है, फिर भी यह बहुत उत्कृष्ट कोटि की नहीं है।[5]

---

१. पत्र ५ से पत्र ११ तक

२. पत्र ५, 'हारबन्धादि चिन्तामणिकृत'

३. द्रष्टव्य, प्रस्तुत पुस्तक की पत्र संख्या ९ पर निर्मित चित्र तथा न्यास

४. द्रष्टव्य, उपरिवत्, पत्र ५ पर चित्र

५. सुन्दरदास निर्मित चित्र के समान। न्यासविधि के ज्ञान के लिये द्रष्टव्य प्रस्तुत ग्रन्थ की चित्र संख्या १० तथा १२, पृ० १२१, १२५

अपने 'छत्रबन्ध' में भी रसरूप कवि ने कोई विशेषता नहीं दिखाई है। इस बन्ध के लिये रचित न्यास का छन्द भी अत्यन्त सरल है। छह चरणों के छन्द के प्रथम चार चरणों के पूर्वार्द्धों के अन्तिम तथा उत्तरार्द्धों के आदि अक्षर एक ही हैं। फलतः न्यास में उन वर्णों की आवृत्ति होती है। अन्यथा सम्पूर्ण छन्द ऋजुगति से लिखा जाता है।[1]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट है कि 'तुलसीभूषण' में नियोजित बन्ध-चित्र साधारण कोटि के हैं। बन्धेतर चित्रों में 'स्वरचित्र' का केवल एक छन्द 'अमात्रिक' है[2] किन्तु 'स्थानचित्र' के अन्तर्गत 'निरोष्ठ' तथा 'अदन्त' दो भेदों के दोहे हैं।[3] इन दोहों में कवि ने मात्राओं के क्षेत्र में कोई बन्धन स्वीकार नहीं किया है। कवियों में प्रचलित पद्धति के अनुसार इतनी स्वतन्त्रता बांछनीय है किन्तु 'अदन्त' के छन्द में रसरूप कवि ने 'स' को 'श' बनाकर दन्त्यवर्ण को बचाना चाहा है तो भी अन्य दो शब्दों में दन्त्य वर्ण आ ही गये हैं। यह कवि की असमर्थता और उक्त छन्द की सदोषता का प्रमाण है। 'अदन्त' का दोहा निम्न है—

"शजनी श्याम शरीर में लशै जलज के माल।
यमुना में रसरूप य (ज) णु (नु), यु (जु) रे हंस के जाल ॥"[4]

यहाँ पर 'सजनी' के बदले 'शजनी', तथा 'जनु में 'नु' के बदले में 'णु' लिखने के बाद भी 'शजनी' तथा 'यमुना' में दन्त्यवर्ण 'न' का प्रयोग रह ही जाता है। इस प्रकार यह छन्द 'अदन्त' के उदाहरणस्वरूप लिखा जाकर भी 'अदन्त' का उदाहरण नहीं हो पाता। वर्णचित्र की रचना कवि ने नहीं की है। 'गूढ़' में केवल 'पदलोप' अथवा 'चरणगुप्त' का छन्द है। इसी प्रकार 'गतागतछन्द' में प्रत्येक चरण का गतागत रूप रखा गया है। 'प्रश्नोत्तर' के भेदों में 'तुलसीभूषण' में केवल 'अन्तर्लापिका' तथा 'बहिर्लापिका' की रचना हुई है। इन्हीं के अन्तर्गत 'आद्यन्ताक्षरी' तथा 'मध्याक्षरी' के छन्द भी प्राप्त होते हैं।[5]

कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है कि 'चित्रकाव्य' के क्षेत्र में रसरूप कवि ने परम्परा का निर्वाहमात्र किया है। अपनी ओर से कोई महत्त्वपूर्ण योग नहीं दिया। फिर भी यदि कवि द्वारा रचित पूर्वोक्त 'अलंकारदर्पण' प्राप्त हो जाय तो सम्भव है इस क्षेत्र में कवि को अधिक श्रेय प्राप्त हो।

रसरूप कवि रचित 'तुलसीभूषण' के बाद कालक्रम के अनुसार जनराज कृत 'कविता-रस-विनोद' का स्थान आता है। प्रस्तुत पुस्तक अभी अप्रकाशित है और इसकी एक हस्त-लिखित प्रति काशी नागरी प्रचारिणी सभा के पुस्तकालय में याज्ञिक संग्रह के अन्तर्गत प्राप्य

१. द्रष्टव्य, तुलसीभूषण के पत्र ८ पर निर्मित चित्र तथा न्यास
२. उपरिवत्, पत्र ९, १० तथा ११
३. उपरिवत्
४. उपरिवत्
५. उपरिवत्

है।[1] यह ग्रन्थ चौबीस अध्यायों में, जिनके लिये कवि ने 'विनोद' शब्द का प्रयोग किया है, बँटा हुआ है, जिनमें कुल ४५०० छन्द हैं। इस वृहत्ग्रन्थ में कवि ने काव्यशस्त्र के सभी अंग-उपांगों का वर्णन किया है। इसके अन्तिम अर्थात् चौबीसवें विनोद में राजवंश तथा कविवंश का वर्णन है। इसी विनोद के अन्तर्गत पुस्तक की रचनातिथि का भी उल्लेख हुआ है। इन वर्णनों के अनुसार कवि का असल नाम डेढ़राज था। 'जनराज' नाम उनके काव्यगुरु कृष्ण कवि का दिया हुआ है। ये जयपुर के महाराज पृथ्वीसिंह के आश्रित कवि थे। 'कविता-रस-विनोद' की रचना कवि के अनुसार १८३३ वि० अर्थात् १७७६ ई० में हुई थी। इस सम्बन्ध में कवि का निम्न छन्द द्रष्टव्य है—

"अठारहि सै तीतस भये सुभ संवत जेष्ट सुमास बषांनौ।
सेत सुपक्षि तिथ दसमी अरु बार महावर भौम सुजांनौ॥
हस्त निषत्र जुसिद्ध सुजोग विषै जनराज कहै उर आंनौ।
ये कविता रस ग्रन्थ विनोद सपूरन भेद कियो सुख दांनौ॥"[2]

किन्तु जैसा कि प्रस्तुत छन्द की भाषा से स्पष्ट होता है। पुस्तक की यह प्रति अत्यन्त ही अशुद्ध है। उपलब्ध प्रति का लिपि काल १९०९ वि० है जो पुस्तक के अन्त में दिया गया है।[3]

लक्षणविवेचन के अन्तर्गत हमने देखा है कि शास्त्रीय विवेचन की दृष्टि से प्रस्तुत रचना का कोई बहुत अधिक महत्त्व नहीं है। किन्तु दूसरी ओर 'चित्रकाव्य' की रचना की दृष्टि से यह पुस्तक अत्यन्त अधिक महत्त्व को सिद्ध होती है। पुस्तक के अन्त में २२वें तथा २३वें विनोदों में केवल 'चित्रकाव्य' के विभिन्न भेदों के छन्द तथा चित्र हैं। बन्ध-चित्र के अन्तर्गत कवि ने कितने ऐसे बन्धों की कल्पना की है जो 'चित्रकाव्य' के इतिहास में बिलकुल नवीन हैं और बाद के कवियों में भी उनकी रचना प्राप्त नहीं होती। इस प्रकार 'पायजेब बन्ध,' 'डोरीबन्ध,' 'कलंगीबन्ध,' 'घण्टाबन्ध' तथा 'नागयुग्मबन्ध' की कल्पना जनराज की अपनी है, जिनकी रचना न तो उनके पूर्व हुई थी और न बाद में ही हुई है। इनके अतिरिक्त 'थनबन्ध' की रचना भी 'कविता-रस-विनोद' में हमें प्राप्त होती है, जिसकी आवृत्ति केवल काशिराज ने अपनी 'चित्रचन्द्रिका' में की है।[4] अतः नवीन चित्रबन्धों की उद्भावना की दृष्टि से जनराज के इस ग्रन्थ का पर्याप्त महत्त्व है। प्रचलित बन्धचित्रों की भी प्रचुर रचना 'कविता-रस-विनोद' में हुई है जिनमें **कपाट, चौकी, शतरंज, चतुररचक्र, द्वादशदलकमल, धनुष, हार, बाइसदलकमल, खड्ग, पर्वत, कंकण, वृक्ष, नाग, चौपड़, छत्र तथा मुरज** हैं।[5]

१. हस्तलेख संख्या ९०/२५
२. पत्रांक ३०४, विनोद २४, छन्द ४४
३. "मीती मार्गसिर कृष्णा ॥१२॥ संवत ॥१९०९॥"—पत्रांक ३०५
४. द्रष्टव्य, क० र० वि० के २३वें विनोद के पत्र २९५ तथा २९८ पर बने पायजेब तथा नागयुग्म के चित्र
५. द्रष्टव्य, क० र० वि० का २३वाँ विनोद तथा पत्र २७३ से ३०० तक

इन चित्रबन्धों में से अधिकांश का विवेचन तृतीय अध्याय में किया जा चुका है। जनराज द्वारा रचित बन्धचित्रों के सम्बन्ध में एक बात जो विशेष रूप से ध्यान देने की है, वह है चित्र में न्यास तथा छन्द की अशुद्धता। बहुत सम्भव है कि इसका कारण लिपिकार का अज्ञान हो। भाषा की अशुद्धि के कारण छन्दों के अर्थ में अस्पष्टता आ जाती है, और चित्र में उनका न्यास सही नहीं हो पाता। किन्तु जिस किसी चित्र में शुद्ध छन्द का शुद्ध न्यास हो पाया है, वह उत्कृष्ट बन पड़ा है। जनराज रचित 'शतरंज बन्ध' में हमें कोई विशेषता नहीं मिलती कारण अश्वगति विधि से शतरंज के आकार के चित्र में छन्द का न्यास कर दिया गया है। 'अश्वगति' की दृष्टि से भी इसका कोई महत्त्व नहीं दीखता कारण 'अश्वगति' में मूल छन्द को शतरंज के कोष्ठकों में ऋजुगति से लिखा जाता है, केवल उद्धार में पाठ की गति शतरंज के अश्व की होती है। 'द्वादशदलकमल' तथा 'बाइसदलकमल' के चित्र भी हिन्दी में प्रचलित विधि के अनुरूप हैं। 'बाइसदल' के चित्र में जैसा कि हिन्दी की प्रचलित विधि है, संस्कृत के 'षोडशदलकमल' की विधि से छन्द का न्यास किया गया है। सैद्धान्तिक विवेचन के अन्तर्गत हम देख चुके हैं कि हिन्दी के पद्मबन्धों में दलों की संख्या की कोई निश्चित सीमा नहीं है और साथ ही सभी चित्रों के छन्द की रचना प्रायः एक ही विधि से की गई है।[1] जनराज के प्रस्तुत चित्र में भी केवल दलों की संख्या ही २२ है, अन्य किसी प्रकार की विशेषता इसमें नहीं है।

'कमलबन्ध' में न्यस्त होनेवाले इसी छन्द से 'कविता-रस-विनोद' में 'धनुषबन्ध' तथा 'हारबन्ध' की रचना भी की गई है, फलतः इन बन्धों में भी कोई चमत्कार नहीं है। पूर्व प्रचलित बन्धों में जनराज ने 'खड्गबन्ध' तथा 'वृक्षबन्ध' का अपना न्यास दिया है जो सामान्य न्यासविधि से पर्याप्त भिन्न है। 'खड्गबन्ध' का जो चित्र प्रस्तुत ग्रन्थ में उपलब्ध है वह अन्य चित्रों से दूसरे प्रकार का है। लिपिकार के अज्ञान तथा असावधानी के कारण प्रस्तुत चित्र के न्यास में कतिपय दोष आ गये हैं, अन्यथा यह चित्र अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि का सिद्ध होता।[2] 'वृक्षबन्ध' में चित्र का आकार 'सुन्दरग्रन्थावली' में प्राप्त टहनियों से युक्त वृक्ष का है। किन्तु 'सुन्दरग्रन्थावली' में नियोजित चित्र में जहाँ इस वृक्ष की पत्तियों में सीधे छन्द के वर्णोंको लिख दिया गया है, वहाँ प्रस्तुत छन्द में चित्रात्मकता का विशेष ध्यान रखा गया है। फलतः छन्द की प्रथम पंक्ति के पूर्वार्द्ध का प्रतिलोम ही अन्तिम पंक्ति का उत्तरार्द्ध है। इसके अतिरिक्त भी जहाँ-जहाँ उद्धार में आवृत्ति की अपेक्षा है, वहाँ-वहाँ न्यास में भी इसका पूर्ण ध्यान रखा गया है। जनराज ने 'कंकणबन्ध' के रूप में 'कामधेनु' की ही रचना की है। संस्कृत के 'कंकणबन्ध रामायण' के छन्द की रचनापद्धति से प्रस्तुत 'कंकणबन्ध' की पूर्ण समानता है। कहा जा चुका है कि 'कंकणबन्ध' के इस रूप को हिन्दी के कतिपय कवियों ने 'सर्वतोभद्र' की संज्ञा दी है, (प्रस्तुत कवि ने भी इस नाम का

---

१. द्रष्टव्य, प्रस्तुत ग्रन्थ के तृतीय अध्याय में विभिन्न पद्मबन्धों का विवेचन

२. द्रष्टव्य, क० र० वि०, पत्र २९३

प्रयोग किया है) यद्यपि इस पद्धति पर रचित छन्द वास्तव में 'कामधेनु' का उदाहरण प्रस्तुत करता है।

जनराज द्वारा रचित 'छत्रबन्ध' का 'चित्रकाव्य' की दृष्टि से कोई महत्त्व नहीं दीखता। 'छत्रबन्ध' का प्रस्तुत न्यास सुन्दरदास रचित 'छत्रबन्ध' के न्यास से साम्य रखता है, केवल छन्द का अन्तर है अन्यथा चित्र और न्यासपद्धति बिलकुल अभिन्न है। सुन्दरदास के क्रम में हम देख चुके हैं, इस न्यासपद्धति का कोई महत्त्व 'चित्रकाव्य' के क्रम में नहीं हो पाता।[1]

हिन्दी में केवल जनराज ही ऐसे कवि हैं जिन्होंने 'मुरजबन्ध' की रचना संस्कृत की न्यासपद्धति पर की है। 'मुरजबन्ध' संस्कृत 'चित्र' के सर्वप्रचलित तथा प्राचीन बन्धों में एक है। यों 'मुरजबन्ध' के कई भेद संस्कृत में मिलते हैं, किन्तु इनमें सर्वाधिक प्रचलित न्यासपद्धति जिस बन्ध की है, जनराज ने उसी की रचना की है। इसके हेतु जनराज को संस्कृत श्लोक की रचना करनी पड़ी हैं। श्लोक निम्न है—

"साध संगति संगस्थ बोध संचित संगम।
मगसंत सुसंभ्रत्या जग संगति संभ्रम॥"[2]

उपर्युक्त बन्धों के अतिरिक्त जो नवीन बन्ध हैं, उनमें किसी से समानता अथवा अनुकरण का प्रश्न नहीं उठता। 'चित्रकाव्य' की दृष्टि से इन बन्धों का अपना स्थान है। इतना अवश्य है कि लिपिकार की भूल के कारण छन्द बिलकुल शुद्ध नहीं मिल पाता। फलतः चित्र के न्यास में भी बीच-बीच में क्रमभंग हो जाता है। विशेषकर 'पायजेब बन्ध' में इस प्रकार का क्रमभंग अधिक खटकनेवाला बन गया है।[3]

बन्धेतर चित्र में भी 'कविता-रस-विनोद' में हिन्दी में प्रचलित चित्रप्रकारों के छन्द ही प्राप्त होते हैं। उदाहरणार्थ—'स्वरचित्र' के अन्तर्गत 'अमात्रिक', 'स्थानचित्र' में 'निरोष्ठ्य' तथा 'वर्णचित्र' में 'एकाक्षर' और 'द्व्यक्षर' की रचना जनराज ने की है। गुप्तचित्र में भी केवल 'चरणगुप्त' के छन्द प्रस्तुत पुस्तक में हैं। 'गतिचित्र' के अन्तर्गत 'कामधेनु', 'गोमूत्रिका', 'अश्वगति', 'त्रिपदी', 'सर्वतोभद्र' के गोलचित्र तथा 'गतागत' की रचना की गई है।[4] कहना नहीं होगा कि 'बन्धेतरचित्र' के इन सारे भेदों की रचना हिन्दी में जनराज के पूर्व के चित्रकवियों ने भी की है। इनमें कवि की अपनी कोई विशिष्टता नहीं दीख पड़ती।

'प्रश्नोत्तर' की रचना में जनराज ने तत्कालीन हिन्दी में प्रचलित भेदों की रचना की है, जिनमे केशवदास का अनुकरण स्पष्ट परिलक्षित होता है। 'बहिर्लापिका,'

१. प्रस्तुत अध्याय में सुन्दरदास का विवेचन तथा न्यासपद्धति के लिये द्रष्टव्य सुन्दरग्रन्थावली खण्ड २, पृ० ७५६-५७ के मध्य का चित्र

२. क० र० वि०, पत्र ३०० छन्द ५२ तथा प्रस्तुत ग्रन्थ की चित्र संख्या ८६ पृ० २६०

३. क० र० वि० पत्र २९५ पर प्रदत्त न्यास

४. द्रष्टव्य, क० र० वि० पत्र सख्या २७३ से ३०० तक

'अन्तर्लापिका' के साथ ही 'शासनोत्तर', 'प्रश्नोत्तर', 'अनेकोत्तर', 'शृंखलोत्तर' के छन्द 'कवित्ता-रस-विनोद' में हैं 'आद्यक्षरी' तथा 'अन्ताक्षरी' के छन्द भी हमें प्राप्त होते हैं।[१] इस प्रकार बन्धेतर चित्र के क्षेत्र में जनराज ने केवल हिन्दी में प्रचलित परम्परा का पालन किया है, जबकि बन्धचित्रों के क्षेत्र में नवीन चित्रों की रचना कर 'चित्रकाव्य' के विकास में उन्होंने महत्त्वपूर्ण योगदान किया है।

हरिकवि रचित 'कवि वल्लभ' में भी हमें 'चित्रकाव्य' की कतिपय रचनाएँ प्राप्त होती हैं। प्रस्तुत पुस्तक भी अभी अप्रकाशित है और इसकी एक हस्तलिखित प्रति काशी नागरी प्रचारिणी सभा के पुस्तकालय में रत्नाकर संग्रह के अन्तर्गत प्राप्य है।[२] प्रस्तुत प्रति का लिपिकाल १९६२ वि० है, जो पुस्तक के अन्त में उल्लिखित है।[३] कवि ने पुस्तक के अन्त में अपने परिचय के साथ पुस्तक की रचनातिथि का स्पष्ट उल्लेख किया है। इन वर्णनों से सम्बद्ध छन्द निम्न हैं—

"तनै राम धन सूर को हरि कवि किय मनु वास।
कविवल्लभ ग्रंथहि रच्यो कविता दोष प्रकास"[४]

SS SS SS

"संवत नन्दहुतासन दिग्गज इन्दहु सौ गगणा जु दिखाई।
दूसरो जेठ लसी दशमी तिथि प्राप्त सामरो पच्छ सुहाई॥
तीरथ जग को वो बुधवार विकर्मन की गति लाइ लगाई।
श्री तुलसी उपकंठ तहाँ रन्वन इह पुरी भई सुखदाई।"[५]

इन छन्दों के अनुसार हरिकवि रामधन के पुत्र थे तथा उन्होंने 'कविवल्लभ' नामक ग्रन्थ की रचना की जिसमें उनका प्रमुख उद्देश्य काव्यदोषों का विवेचन है। उपर्युक्त दोहे की क्रम संख्या ३९ है, उसके पूर्व के अन्य दोहों में कवि ने अपने पूर्वजों का तथा उनके निवासस्थान का विस्तृत परिचय दिया है। निचले सवैये में हमें पुस्तक की रचनातिथि प्राप्त होती है।

नन्द अर्थात् ९, हुताशन-अग्नि अर्थात् ३, दिग्गज-८ तथा इन्दु-१, कुल मिलाकर पुस्तक का रचनाकाल विक्रम संवत् १८३९ ठहरता है। इसी वर्ष में द्वितीय ज्येष्ठ की कृष्णा दसमी बुधवार को पुस्तक की रचना हुई। इस प्रकार प्रस्तुत रचना विक्रम की १९वीं शती के पूर्वार्द्ध अथवा ईसा की १८ वीं शताब्दी के अन्त की है।

जैसा कि उपर्युक्त पंक्तियों में कवि ने कहा है, इस रचना का प्रमुख उद्देश्य काव्य-दोषों का वर्णन है। इसी क्रम में कवि ने स्वीकार किया है कि पुस्तक में दिये गये

१. क० र० वि०, पत्र २७३ से ३००
२. सं० २७७
३. इति श्री सं० १९६२। "भाद्रपद कृष्ण एकादशी ११ शनि।" पत्र १२७
४. पत्र १२६, छन्द ३९
५. पत्र १२७

उदाहरण के छन्द प्रायः प्राचीन कवियों से लिये गये हैं, किन्तु उनमें कुछ कवि द्वारा रचित नवीन छन्द भी हैं—

"उदाहरण प्राचीन दै कीन्हें कहूँ नवीन।
रच्यो ग्रंथ को सुलभ करि लहै सुकवि प्रवीन।।"[1]

पुस्तक के अन्त में दोषों के अतिरिक्त नायिकाभेद का भी संक्षिप्त वर्णन है और बिलकुल अन्त में 'चित्रकाव्य' के कुछ छन्द हैं। इन छन्दों के अतिरिक्त पुस्तक में कुछ बन्धों के चित्र भी हैं, जिनमें न्यस्त छन्द चित्र से अलग अन्यत्र कहीं नहीं लिखे गये हैं। 'चित्रकाव्य' के ये छन्द तथा बन्ध स्वतः कवि द्वारा रचित हैं, प्राचीन आचार्यों अथवा कवियों की प्रतिलिपि मात्र नहीं है। 'चित्रकाव्य' के क्षेत्र में 'कविवल्लभ' का सबसे अधिक महत्त्व 'भाषाचित्र' की रचना की दृष्टि से है। अब तक के हिन्दी कवियों में खुसरो तथा रहीम के सिवा किसी ने भी 'भाषाचित्र' की रचना नहीं की थी। केशवदास तथा भिखारीदास अथवा जनराज जैसे कवियों में भी हमें 'भाषाचित्र' के छन्द नहीं मिलते जिन्होंने 'चित्रकाव्य' के पर्याप्त विस्तृत क्षेत्र को अपनी रचना का विषय बनाया है। संस्कृत में हमने देखा है कि बहुधा कवियों ने ऐसे छन्द की रचना की है जिसमें संस्कृत के अतिरिक्त विभिन्न प्राकृत तथा अपभ्रंश के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। हिन्दी में खुसरो और रहीम को छोड़कर सबसे पहले इस प्रकार की रचना हमें हरिकवि के 'कविवल्लभ' में ही प्राप्त होती है। इतना ही नहीं 'भाषाचित्र' के सात छन्दों की रचना हरिकवि ने की है जिनमें कुल मिलाकर सात भाषाओं के शब्दों का प्रयोग हुआ है—

१. फारसी और देशभाषा, २. संस्कृत, फारसी तथा व्रजभाषा, ३. तुर्की, फारसी तथा व्रज, ४. फारसी-तुर्की, ५. फारसी, देशभाषा तथा तुर्की, ६. व्रज तथा गौड़ देश की भाषा (बंगला) तथा, ७. मारवाड़ी तथा देशभाषा।[2]

इसके पूर्व अमीर खुसरो तथा रहीम कवि ने 'भाषाचित्र' के जिन छन्दों की रचना की उनमें इतनी अधिक भाषाओं का समावेश नहीं हो पाया है।

---

१. कविवल्लभ, पत्र १२६ छन्द ४०

२. (क) क० व०, पृ० १२० —फारसी तथा भाषा
(ख) ,, पृ० १२० —संस्कृत, फारसी, व्रजभाषा
(ग) ,, पृ० १२० —तुर्की, फारसी, व्रजभाषा
(घ) ,, पृ० १२१ —तुर्की, फारसी
(ङ) ,, पृ० १२१ —फारसी, देशभाषा, तुर्की
(च) ,, पृ० १२२ —व्रजभाषा तथा गौड़देश की भाषा (बंगला)
(छ) ,, पृ० १२२-१२३ —मारवाड़ी तथा देशभाषा

'भाषाचित्र' के अतिरिक्त अन्य चित्रप्रकारों के छन्द अथवा बन्ध जो 'कविवल्लभ' में हैं, वे सभी सामान्य कोटि के हैं। संस्कृत के 'षोडशदल कमल' की विधि से हरिकवि ने तीन छन्दों की रचना की है, जिनमें एक छन्द का न्यास उन्होंने 'हारबन्ध' में किया है, एक छन्द का 'अष्टादशदल कमल' में और तीसरे छन्द को 'गोमूत्रिका', 'अश्वगति', 'चरणगुप्त' तथा 'कपाटबन्ध' के उदाहरण के रूप में रखा है।[1] चूंकि इन तीनों दोहों की रचना एक ही पद्धति से हुई है अतः इन चित्रों में किसी प्रकार का विशेष चमत्कार नहीं आ पाता। 'चरणगुप्त' के छन्द की रचना भी कवि ने की है किन्तु वह भी हिन्दी में प्रचलित पद्धति पर ही है।[2] बन्धेतर चित्र के अन्तर्गत केवल 'कामधेनु' का छन्द अपना महत्त्व रखता है, यद्यपि इस छन्द से भी केवल ग्यारह अन्य छन्दों का निर्माण हो पाता है। फिर भी वे सभी चूंकि भिन्न-भिन्न छन्द हैं अतः इस प्रकार की रचना का अधिक महत्त्व हो जाता है।[3] अन्यथा जैसा कि हमने सैद्धान्तिक विवेचन के अन्तर्गत देखा है हिन्दी के अधिकांश 'कामधेनु छन्द' से केवल संख्या में ही अनेक छन्द निःसृत होते हैं, प्रकार में नहीं। हरिकवि रचित 'चक्रबन्ध' चतुरर है और उसका न्यास सामान्य पद्धति पर किया गया है।[4] 'हारबन्ध' के चित्र का आकार यद्यपि प्रचलित आकार से इतर प्रकार का है किन्तु इसमें भी कोई विशेष चमत्कार नहीं है।[5] इसका विवेचन भी तृतीय अध्याय में हो चुका है। 'धनुष' तथा 'छत्र-बन्ध' के चित्र तथा छन्द भी सामान्य कोटि के हैं।[6] इस प्रकार 'कविवल्लभ' का असल महत्त्व 'चित्रकाव्य' के क्षेत्र में 'भाषाचित्र' को लेकर है। बन्ध तथा बन्धेतर चित्र की अन्य रचनाओं में परम्परा का निर्वाह मात्र दीख पड़ता है।

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के पुस्तकालय में सभा-संग्रह के अन्तर्गत हस्तलेखों के एक जिल्द में 'चित्रकाव्य' नाम की एक रचना है,[7] जिसके अन्त में लिखा है—

"इतिचित्रकाव्य संपूर्ण सुभमस्तु समत १८६९ समे शावन सुदी १५ बार सनिचर ग्रहन पखे संपुरन।"

---

१. क० व०, पृ० ८१, ८६, ८८ तथा ११८ पर लिखे छन्द तथा चित्र
२. क० व०, पृ० ८४
३. क० व०, पृ० ११७, छन्द ३१, चित्र पृ० ८६ पर
४. क० व०, पृ० ८८ पर निर्मित चित्र
५. कविवल्लभ, पृ० ८१
६. क० व०, पृ० ८४-८५
७. हस्तलेख संख्या ७८६

प्रस्तुत जिल्द में पांच रचनाएँ हैं—१. नवीनाख्य, २. नवरस और चतुरीति वर्णन, ३. चित्रकाव्य, ४. नैतिक-श्लोक, तथा ५. बिहारी सतसई। संकलनकर्त्ता का नाम 'हरिजू कवि' है। इन रचनाओं में 'नैतिक श्लोक' संस्कृत की रचना है तथा अन्य हिन्दी की। सभी रचनाओं में तिथि एक ही है। फलतः यह तिथि रचनाकाल न होकर लिपिकाल जान पड़ती है।

प्रस्तुत 'चित्रकाव्य' एक अत्यन्त लघुपुस्तक है जो जिल्द की पत्र संख्या ४३ से ४७ तक में समाप्त है। इसमें 'चित्रकाव्य' के कुल ४१ छन्द हैं। पुस्तक की लिपि कैथी है और वह भी इतनी दुष्पठनीय कि अनेक स्थलों पर छन्द के रूप स्पष्ट नहीं हो पाते। लेखक का कहीं स्पष्ट नामोल्लेख नहीं है, किन्तु 'चित्रकाव्य' के छन्दों में एक ऐसा छन्द प्राप्त होता है जिससे एक नाम 'रूपप्रधान' की प्राप्ति होती है। यह नाम छन्द में कुछ इस प्रकार आया है कि इसे कवि का नाम मान लेने में सन्देह के लिये स्थान प्रायः नहीं रह जाता। छन्द निम्न है—

"उत्तर एक समस्त में बहुत काव्य में आन।
उत्तर एक अनेक यह बरनत रूप प्रधान॥"[१]

प्रस्तुत छन्द में कवि ने 'एकानेकोत्तर' का लक्षण दिया है। किन्तु इस नाम की प्राप्ति होने पर भी न तो कवि के सम्बन्ध में और न पुस्तक की रचनातिथि के सम्बन्ध में कोई विशेष प्रकाश पड़ता है। रूप प्रधान नामक कोई कवि हिन्दी साहित्य में प्रसिद्ध नहीं है अतः उसके काल का पता भी नहीं है। पुस्तक का लिपिकाल चूँकि १८६९ वि० अथवा १८१३ ई० है अतः इतना अनुमान किया जा सकता है कि इसकी रचना ईसवी सन् की १८वीं शताब्दी में कभी हुई होगी। हमारे अनुमान के लिये इससे अधिक कोई आधार नहीं है।

जहाँ तक 'चित्रकाव्य' की रचना का प्रश्न है प्रस्तुत पुस्तक में हमें कोई नवीन बात नहीं दीखती। सारी रचनाएँ इसके पूर्व भी होती रही हैं। यों 'बन्धचित्र', 'गुप्तचित्र' तथा 'गतिचित्र' के कतिपय भेदों के उदाहरण हमें प्रस्तुत ग्रन्थ में मिलते हैं। 'प्रश्नोत्तर' के भी कतिपय भेदों के छन्द हैं। हिन्दी में प्रचलित रीति के अनुसार यहाँ भी कवि ने 'मंन्त्रीगति', 'अश्वगति' तथा 'त्रिपदी' की रचना एक ही छन्द में की है।[२] 'गतिचित्र' के अन्य भेदों में 'सर्वतोमुख', 'भिन्नार्थगतागत' तथा 'अभिन्नार्थगतागत' के छन्दों की रचना प्रस्तुत पुस्तक में की गई है।[३] 'प्रश्नोत्तर' में 'अन्तर्लापिका', 'बहिर्लापिका' के साथ ही 'व्यस्त-समस्त' की योजना भी है।[४] 'गुप्त' के अन्तर्गत सम्पूर्ण हिन्दी 'चित्रकाव्य' में प्रमुखतः केवल 'चरण गुप्त' का ही विधान हुआ है।[५]

---

१. छन्द ११
२. छन्द संख्या ३२०, लक्षण, दोहा ३१८ तथा ३१९ में
३. छन्द क्रमशः ३२-३३, ७-८, ९-१०, २४-२५
४. छन्द संख्या १५, १६ तथा १७
५. छन्द संख्या २७-२८

बन्धचित्रों में 'पर्वत', 'चतुररचक्र,' 'कमल', 'धनुष' तथा 'डमरू बन्धो' के छन्द तथा चित्र पुस्तक में हैं।[१] ये सभी चित्रप्रकार प्रचलित विधि पर रचे गये हैं। कैथीलिपि में होने के कारण छन्द की भाषा के अशुद्धरूप सामने जो आ जायँ, किन्तु न्यास की दृष्टि से ये सभी चित्र पूर्ण निर्दोष उतरते हैं। किसी भी चित्र में किसी प्रकार का स्खलन दृष्टिगोचर नहीं होता। रूप प्रधान रचित 'कमलबन्ध' भी सामान्य 'कमलबन्ध' है केवल इसमें दलों की संख्या उन्नीस है।[२] 'चतुरर चक्र' का जो न्यास पुस्तक में है, वह सम्भवतः लिपिकार की असावधानी से गलत बन गया है।[3] छन्द न्यास की दृष्टि से पूर्णतः शुद्ध है अतः इसका शुद्ध न्यास आसानी से किया जा सकेगा। कहा जा चुका है कि चित्ररचना के क्षेत्र में किसी प्रकार की नवीनता अथवा कवि की कोई नवीन देन इस पुस्तक में नहीं दीख पड़ती, फिर भी प्रचलित पद्धति पर ही, पर शुद्ध न्यासयुक्त चित्ररचनाओं की दृष्टि से इसका महत्त्व है।

वि० संवत् १८३८ में काठियावार में राजकोट के ठाकुर राजा महिरामन सिंह ने 'प्रबीनसागर' नामक एक वृहत् ग्रन्थ की रचना आरम्भ की। प्रस्तुत ग्रन्थ जायसी आदि कवियों की पद्धति पर रचित प्रेमगाथात्मक है और इसमें 'रससागर' तथा 'कलाप्रबीन' के प्रेम का वर्णन किया गया है। इसकी रचना में राजा महिरामन सिंह ने अपने अन्य छह मित्रों की सहायता भी ली, पर दुर्भाग्यवश ग्रन्थ के केवल ७२ अध्याय ही रचे गये थे कि उनका देहान्त हो गया। पुस्तक की पूर्ति बहुत बाद में, संवत् १९४५ में गोविन्द गिल्लाभाई के द्वारा अन्त के १२ अध्यायों की रचना की जाकर हुई।[४] इस प्रकार यद्यपि पूरी पुस्तक की रचना में एक सौ से अधिक वर्ष लगे, किन्तु पुस्तक के अधिकांश की रचना पहले ही हो गई थी। अतः प्रस्तुत रचना विक्रम की १९ वीं शती के मध्य अथवा ईसा की अठारहवीं शती के अन्त की है।

---

१. छं० सं० क्रमशः २९-३०, ३१, ३६-३७, ३८-३९ तथा ४०-४१

२. छं० सं० ३७

३. छं० सं० ३१ के साथ का चित्र

४. इस सम्बन्ध में गोविन्द गिल्लाभाई ने अपनी रचनाओं के संकलन 'गोविंद ग्रन्थमाला', प्रथम भाग के प्रारम्भ में 'हमारा परिचय' के अन्तर्गत पृ० २३ पर निम्न विवरण दिया है—
"काठियावाड में राजकोट के ठाकुर साहेब श्री महिरामन जी सात मित्रों मिलके सम्वत १८३८ में एक आशक मासुक का सर्वविद्यामय प्रबीनसागर नामक ग्रन्थ बनाने शुरू किया और ७२ लहरी तक बनाये वहाँ राजा का देहान्त हो जाने से ग्रन्थ अपुर्ण रह गया, वह विक्रम सम्वत १९४५ में हमने अन्त की बारह लहरी बनाईके ग्रन्थ पूर्ण किया, और बाकी गूजराती भाषा में 'गोविन्द सुबोधिनी' नाम की टीका रची, वह अहमदावाद में छपा हैं",
पुस्तक में भी ग्रन्थचना के आरम्भ की तिथि के सम्बन्ध में निम्न छन्द है—
"संवत अष्टादश परजंत, तीस आठ साला बरतंत,
सावन सुदि पंचमि कुजवारं, कियो ग्रंथ को मंगलाचारं ॥"
—प्र० सा०, लहर १, पृ० १०

'प्रबीनसागर' में अध्याय के स्थान पर लहर शब्द का प्रयोग किया गया है। इस रचना की १, ६२, ६३, ६४, तथा ६५ वीं लहर में 'चित्रकाव्य' की प्रचुर रचना है। बन्धेतर चित्र के तो बहुत अधिक छन्द प्राप्त नहीं होते पर बन्धचित्रों की लगभग ८० रचनाएँ प्रस्तुत ग्रन्थ में हमें प्राप्त होती हैं। हिन्दी की किसी भी पुस्तक में इतनी चित्ररचनाएँ प्राप्त नहीं होतीं। बन्धेतर चित्रों में केवल 'गतिचित्र', 'गुप्तचित्र' तथा 'प्रश्नोत्तर' के कतिपय भेदों के छन्द हमें प्राप्त होते हैं। प्रथम लहर में एक ही छन्द से 'अश्वगति', 'त्रिपदी' तथा 'गोमूत्रिका' का निर्माण किया गया है।[१] इसके साथ ही 'भिन्नार्थ गतागत' का भी एक छन्द उक्त लहर में मिलता है। बन्धेतर चित्रों की रचनाएँ अधिकतर ६२ वीं तथा ६३ वीं लहर में हैं। वे हैं—

गतागत, सर्वतोभद्र, प्रतिलोमानुलोम, अन्तर्लापिका, आद्यक्षरी, बहिर्लापिका, अंकाक्षरी, चतुरक्षर गुप्त, चरणगुप्त, द्वितीयपाद गुप्त, गुप्तचतुर्थपाद, प्रश्नोत्तर अन्तः बहिर्लापिका तथा गुप्तान्तर्लापिका।

इनमें 'अंकाक्षरी' की रचना एक तो जमाल कवि के द्वारा 'जमालमाला' में हुई है और द्वितीय प्रस्तुत पुस्तक में।[२] अन्यत्र इसकी रचना हमें प्राप्त नहीं होती। चतुर्थ अध्याय में इसका पूर्ण विवेचन हो चुका है। 'चतुरक्षरगुप्त' एक ऐसी रचना है जिसमें छन्द के अन्दर से एक अन्य दोहा निःसृत होता है। चतुर्थ अध्याय में 'चरणगुप्त' के क्रम में इसका भी उल्लेख हो चुका है। इस प्रकार की रचना आगे दीनदयालगिरि में मिलती है। यों भिखारीदास प्रभृति कवियों ने इसी पद्धति से छन्द के अन्तर्गत अपना परिचय छिपाकर रखा है। संस्कृत में प्रचलित 'गूढ़चतुर्थ' अथवा 'गुप्तचतुर्थपाद' की रचना भी प्रस्तुत ग्रन्थ में प्राप्त होती है।[३] ग्रन्थ में प्राप्त अन्य सभी रचनाएँ प्रायः हिन्दी में मिल जाती हैं। केवल 'गुप्तान्तर्लापिका' की रचना अन्यत्र नहीं मिलती।[४] यों भी इसमें कोई विशेष नवीनता नहीं है, 'चरणगुप्त' का ही एक प्रकार यह भी है। केवल क्रम का अन्तर है।

बन्धचित्रों की रचना प्रस्तुत पुस्तक की ६३, ६४ तथा ६५वीं लहर में की गई है। रचनाओं में किसी-किसी बन्ध के कई चित्र हैं, और कहीं-कहीं एक ही बन्ध की एकाधिक न्यासविधियाँ भी अपनाई गई हैं। उदाहरण के लिये विभिन्न 'कमलबन्ध' के १३ चित्र इस पुस्तक में हैं जिनमें चार 'षोडशदल कमल' के, दो 'अष्टदलकमल' के, दो 'सामान्य कमल' के तथा एक-एक 'कर्णिकाद्य मध्यान्त कमल', 'केसराद्यमध्यान्तर्गत चतुर्दलकर्णिका कमल', 'नवदल कमल', 'अष्टादशदल कमल' तथा 'गुप्तकमल' के चित्र हैं। इसी प्रकार अन्य कई बन्ध भी हैं जिनके एकाधिक चित्रों की योजना इस पुस्तक में की गई है। पुस्तक में नियोजित कुल बन्धों की सूची निम्न है—

---

१ लहर १, पृ० ३, छन्द ४

२. द्रष्टव्य, पृ० ३६८-७१ में अंकाक्षरी का विवेचन तथा प्र० सा०, लहर ३१ पृ० ५८२-८४, छन्द ७-८

३. प्र० सा०, लहर ६१, पृ० ५९२, छन्द २८

४. प्र० सा०, लहर ६३, पृ० ६१३, छन्द १२

१. पर्वत, २. त्रिवर्णचक्राकार, ३. कपाट, ४. शिखर, ५. हौज, ६. स्वस्तिक (सामान्य), ७. सरोता, ८. स्वस्तिक (विशेष), ९. षोडशदल कमल, १०. अष्टकोणवर्तुलाकार, ११. चौकी, १२. चौकी (द्वितीय), १३. नाग, १४. चौपड़, १५. कणिकाद्य मध्यान्त कमल, १६. चक्र, १७. नालिकेरवृक्ष, १८. रथचक्र, १९. कमलबन्ध, २०. चतुर्गुच्छ बन्ध, २१. अष्टदलकमल, २२. लहरी, २३. केसराद्यमध्यान्तर्गत चतुर्दलकर्णिका कमल, २४. अष्टदल पुष्प, २५. सुमन, २६. कुसुम, २७. रथचक्र, २८. नागशिशु, २९. नवफणनाग बन्ध (कवित्त मध्ये सोरठा), ३०. केतकी, ३१. त्रिशूल, ३२. चतुःवर्णचक्र, ३३. मुकुट, ३४. नराकारधनुष, ३५. चौकी, ३६. चक्राकृतिभेद, ३७. गजबन्ध, ३८. आद्यन्तमुख सर्पबन्ध, ३९. देवालय, ४० हार, ४१. ताऊस बीण, ४२. बीणा, ४३. सितार, ४४. दर्पण, ४५. चक्र, ४६. अष्टादश कमल, ४७. नवदलकमल, ४८. हल की कुण्डी, ४९. मुष्टिका, ५० हार, ५१. माला, ५२. धनुष, ५३. चामर, ५४. चौकी, ५५. चामर, ५६. खड्ग, ५७. षोडशदल कमल, ५८. अष्टदल कमल, ५९. वर्तुलाकार द्वादश खण्ड स्वस्तिक, ६०. षोडशदल चक्राकृतिवर्तुलाकार, ६६. कमलाकार पुष्पान्तर चक्राकृति, ६७. मणिमाल चौसर, ६८. अष्टदलउछीर, ६९. मयूर, ७०. गोख (गवाक्ष), ७१. षोडशदल कमल, ७२. पुष्पवृक्षप्रहलता, ७३. चक्राकार, ७४. पंखा, ७५. खड्ग, ७६. कटार, ७७. अश्व, ७८. नागपाश, ७९. प्रतिपद आद्यक्षरी अन्ततुकगुप्त कमल तथा ८०. अष्टनागशिशु ।

उपर्युक्त सूची से यह स्पष्ट है कि 'कमलबन्ध' के अरिरिक्त 'चौकी,' 'चक्र', 'नाग', 'स्वस्तिक', 'खड्ग' आदि बन्धों के एक से अधिक चित्र हैं। किन्तु इन चित्रों के सम्बन्ध में यह भी ध्यातव्य है कि इनमें एकाधिक न्यासविधियों का प्रयोग किया गया है। उदाहरण के लिये 'चौकी बन्ध' के पाँच चित्रों में तीन प्रकार की न्यासविधियाँ दीख पड़ती हैं। इसी प्रकार 'स्वस्तिक' के तीनों चित्रों में भी तीन प्रकार की न्यासविधियाँ अपनाई गई हैं। विभिन्न 'चक्रबन्ध' के भी दस चित्र प्रस्तुत पुस्तक में मिलते हैं, किन्तु उनमें भी सात प्रकार से छन्दों के न्यास किये गये हैं। जिन-जिन बन्धों के एक से अधिक चित्रों की योजना पुस्तक में हुई है, प्रायः उन सभी में एक से अधिक न्यासविधियों का प्रयोग किया गया है।

'प्रबीनसागर' का महत्त्व बन्धचित्र के क्षेत्रमें आगे आनेवाले रचयिताओं के पथ-प्रदर्शक के रूप में भी कम नहीं है। काशिराज तथा गोकुलकवि जैसे चित्रकवियों ने कई बन्धों की रचना की प्रेरणा 'प्रबीनसागर' से ग्रहण की है। उदाहरणार्थ 'हल की कुण्डी', 'करमुष्टिका' तथा 'मयूरबन्ध' की रचना सर्वप्रथम 'प्रबीनसागर' में ही की गई है और काशिराज ने इन बन्धों का अनुकरण भी यहीं से किया है।[1] इनमें 'हल की कुण्डी' तथा 'करमु-

१. प्र० सा०, लहर ६५, पृ० ६४९, चित्र सख्या ६९—हल की कुण्डी

प्र० सा०	,,		७०—करमुष्टिका
प्र० सा०	,,	६६५	९१—मयूर

ष्टिका' की न्यासविधि को काशिराज ने ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया है, किन्तु 'मयूरबन्ध' में उन्होंने अपनी न्यासविधि अपनाई है। ये तीनों बन्ध इन पुस्तकों के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं मिलते। इसी प्रकार 'मुकुटबन्ध' तथा 'अश्वबन्ध' की प्रेरणा चित्रकलाधरकार को यहीं से प्राप्त हुई है। यह सही है कि इन बन्धों के न्यास की जो विधि गोकुलकवि ने अपनाई है वह 'प्रबीनसागर' की न्यासविधि से भिन्न है, फिर भी इन बन्धों की योजना प्रस्तुत पुस्तक के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं मिलती। स्पष्ट है कि बन्धों के आकार चित्रकलाधरकार को यहीं से मिले हैं, पर न्यास में उन्होंने अपनी बुद्धि से काम लिया है।

इन बन्धों के अतिरिक्त कितने ही ऐसे बन्ध प्रस्तुत ग्रन्थ में हैं जिनकी रचना अन्यत्र नहीं हो सकी है। ऐसे बन्धों में 'हौज', 'देवालय', 'गोख', 'सरोता,' 'दर्पण', 'जलागार', 'अष्टदल-उछीर', 'लहरी', 'चतुर्गुच्छ', 'पुष्पवृक्षग्रहलता बन्ध', 'नागशिशु', 'आद्यन्त मुखसर्प, 'केतकी', 'नालिकेर' आदि नाम लिये जा सकते हैं। 'प्रबीनसागर' में नियोजित इन सारे बन्धचित्रों में से बहुत कम में न्यास की प्रचलित विधियाँ अपनाई गई हैं। चित्रों के आकार भी सामान्यतः परम्पराप्राप्त चित्रों से भिन्न हैं। 'चक्रबन्ध' में एक भी ऐसा चक्र नहीं दीख पड़ता जो संस्कृत के 'चतुरर', 'षडर' अथवा 'अष्टार' चित्रों के अनुकूल हो किन्तु 'नागबन्ध' तथा 'चामर बन्ध' के कतिपय चित्र अवश्य ही संस्कृत की प्रचलित पद्धति पर रचे गये हैं। उपर्युक्त सूची के अधिकांश चित्रों का विस्तृत अध्ययन सैद्धान्तिक विवेचन के अन्तर्गत किया जा चुका है। कथा के प्रवाह में इन चित्रकवित्तों की रचनाएँ प्रबीन और सागर के पत्रव्यवहार के माध्यम से पुस्तक में उपस्थित की गई हैं। विवाह के उपरान्त जब सागर अपने राज्य में चला जाता है, और प्रबीन मनछापुर ही रह जाती है तो दोनों एक दूसरे के विरह में अत्यन्त व्याकुल हो उठते हैं। विरह की इस अवधि में वे परस्पर सन्देशवाहकों द्वारा पत्रव्यवहार करते हैं, और अपने पत्रों में 'चित्रकाव्य' के उपर्युक्त विभिन्न छन्दों की रचना करते हैं। चित्ररचनाओं के अतिरिक्त प्रस्तुत पुस्तक में श्लेष की भी रचनाएँ हैं। इनमें ऐसे छन्दों की रचना भी है जिनके तीन से लेकर सात अर्थ तक हैं।[१]

'प्रबीनसागर' में रचित छन्दों की भाषा हिन्दी के पाठकों के सम्मुख कुछ अपरिचित सी दीख पड़ती है। साथ ही शब्दों की वर्तनी तथा रूप अत्यन्त ही भिन्न और तोड़े-मरोड़े जैसे दीख पड़ते हैं। इसके प्रमुखतः दो कारण हैं—एक तो कि लेखक के गुजराती होने के कारण भाषा विशुद्ध हिन्दी न होकर गुजराती मिश्रित है। शब्दों की वर्तनी तथा रूप और वाक्यरचना में भी यह मिश्रण स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। दूसरी बात यह कि न्यास की अपेक्षा के फलस्वरूप शब्दों के रूपों में कतिपय परिवर्तन भी करने पड़े हैं। किन्तु इन

---

४. लहर ७२

कतिपय विभिन्नताओं और परिवर्तनों के बाद भी प्रस्तुत पुस्तक हिन्दी की रचना है और हिन्दी 'चित्रकाव्य' के इतिहास में इसका स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। जैसा कि हमने देखा है लेखक ने स्वयं तो इन चित्रों की रचनाएँ की ही हैं, आगे के चित्ररचयिताओं को भी उसने अपनी इस रचना के माध्यम से प्रेरित किया है तथा उनका पथ प्रदर्शन किया है।

ईसवी सन् की उन्नीसवीं शताब्दी का 'चित्रकाव्य' के स्वरूप और विकास की दृष्टि से अपना स्थान है। इसी शताब्दी में हिन्दी साहित्य में रीतिकाल का ह्रास हुआ और सुधारात्मक प्रवृत्ति के साथ भारतेन्दुकाल का आविर्भाव हुआ। चित्ररचनाओं के क्षेत्र में भी नवीन जागरण का प्रभाव पड़ा और प्राचीन रूप के साथ नवीन रूप में भी चित्ररचनाएँ हमारे सम्मुख आईं। इस प्रकार एक ओर भारतेन्दु, महावीर प्रसाद द्विवेदी, श्रीधर पाठक आदि ने 'चित्रकाव्य' के क्षेत्र में नवीन रचनाएँ कीं और दूसरी ओर काशिराज तथा गोकुलकवि जैसे कवियों ने 'चित्रकाव्य' के प्राचीन रूपों की विस्तार से रचनाएँ कीं। 'चित्रकाव्य' के सबसे प्रौढ़ तथा वृहत् लक्षण ग्रन्थ 'चित्रचन्द्रिका'[1] की रचना इसी शताब्दी में हुई। इसी शती में गोकुलकवि ने भी अपने 'चित्रकलाधर'[2] में अनेक मनोरम बन्धचित्रों की रचनाएँ कीं। इनके अतिरिक्त अनेक ऐसे ग्रन्थ भी लिखे गये जिनमें 'चित्रकाव्य' के विभिन्न स्वरूपों की रचनाएँ हुईं। अंग्रेजी के भारत में आ जाने के कारण 'भाषाचित्र' की रचनाओं में एक और भाषा की वृद्धि तो हुई ही, साथ ही भारतेन्दु ने 'लिपिचित्र' तथा 'अंकचित्र' की रचना भी की। विशेषकर प्रस्तुत शताब्दी के उत्तरार्द्ध में 'अमात्रिक' और 'आद्यक्षरी अन्तर्लापिका' की रचनाओं का बड़ा प्रचलन रहा। किसी के स्वागत अथवा बधाई के अवसर के लिये रचित छन्दों में इस 'आद्यक्षरी' का धड़ल्ले के साथ प्रयोग किया जाने लगा। किन्तु इस शताब्दी के पूर्वार्द्ध की रचनाओं में 'चित्रकाव्य' के प्रसिद्ध और प्रचलित भेदों की रचनाएँ ही हुईं। यह बात और है कि काशिराज तथा गोकुलकवि ने कितने ही नवीन बन्धों की उद्भावनाएँ भी की हैं।

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के पुस्तकालय में सभा संग्रह के अन्तर्गत 'चित्रकाव्य' की दो हस्तलिखित पुस्तकें अत्यन्त जीर्ण अवस्था में तथा खण्डित हैं। इनमें एक पुस्तक में केवल दो पत्र हैं और वे भी सम्पूर्ण नहीं हैं।[3] फलतः पुस्तकरचयिता अथवा रचना काल किसी के सम्बन्ध में कुछ ज्ञात नहीं होता। पुस्तक के इन दोनों पत्रों में कुछ छन्द हैं तथा दो चित्र हैं। पत्रों के किनारों के खण्डित होने के कारण ये चित्र भी खण्डित हो गये हैं ओर कुछ छन्द भी पूर्ण प्राप्त नहीं होते। चित्रों के न्यास तथा छन्दों को मिलाकर पढ़ने से कुल पाँच छन्द प्राप्त हो सके हैं, जिनमें एक 'षडरचक्र बन्ध' का, एक 'मर्कटीजाल

---

१. लेखक काशिराज बलवान सिंह, तथा प्रकाशक मुन्शी नवल किशोर, लखनउ, प्रकाशन वर्ष १८७५ ई०

२. लेखक गोकुल कवि 'वृज' तथा जंगबहादुर प्रेस में मुद्रित, सन् १८६६ ई०

३. हस्तलेख संख्या १४२८

बन्ध' का, एक 'चरणगुप्त' का, एक 'कामधेनु' का (जिसे कवि ने 'सर्वतोभद्र' की संज्ञा दी है) तथा एक 'बहिर्लापिका मध्याक्षरी' का है। इनके अतिरिक्त प्रारम्भ में दो छन्द और हैं जिनमें कवि के आश्रयदाता काशिराज उदित नारायण सिंह का वंशवर्णन है। इन दोनों छन्दों में भी प्रथम छन्द खण्डित है। 'चित्रकाव्य' के पाँचों प्राप्त छन्दों में उदित नारायण सिंह का उल्लेख हुआ है। इस प्रकार पुस्तक से यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि महाराज उदित नारायण सिंह का आश्रित था। इन छन्दों में कवि का नाम स्पष्ट रूप से कहीं नहीं दीखता।

महाराज उदित नारायण सिंह बड़े साहित्य प्रेमी थे और उनके आश्रय में कई कवि स्थायी रूप से रहते थे। इन कवियों में गोकुलनाथ, गोपीनाथ, मणिदेव, गणेश तथा रामसहाय दास का विशेष उल्लेख हिन्दी साहित्य के इतिहास में मिलता है।[1] प्रस्तुत रचना इनमें से रामसहाय दास द्वारा निर्मित जान पड़ती है। रामसहाय दास के द्वारा रचित चार पुस्तकों का उल्लेख शुक्ल जी ने किया है। 'वाणीभूषण', 'वृत्त तरंगिणी' (सं० १८७३), 'ककहरा' तथा 'रामसतसई'।[2] कहा नहीं जा सकता कि प्रस्तुत पुस्तक इन्हीं पुस्तकों में किसी का अंश है, अथवा कोई स्वतन्त्र पुस्तक। पुस्तक को देखने से यही अनुमान होता है कि यह 'चित्रकाव्य' की स्वतन्त्र पुस्तक है, कारण प्रारम्भ के दो छन्दों में राजवंश तथा राजा के यशवर्णन के बाद 'चित्र' की रचनाएँ प्रारम्भ होती हैं। साथ ही पुस्तक की शैली अन्य पुस्तकों के समान लक्षणउदाहरण की नहीं है। यदि यह उपर्युक्त पुस्तकों में किसी का अंश होती तो 'वाणीभूषण' का ही अंश हो सकती थी। लेकिन तब इसकी शैली लक्षण ग्रन्थ की अथवा लक्षण उदाहरण की अवश्य होती। 'वाणीभूषण' की उपलब्ध खण्डित हस्तलिखित प्रति से भी इसका कोई संकेत नहीं मिलता कि इसके किसी तरंग में 'चित्रकाव्य' का विवेचन होगा। उपलब्ध अंश से पुस्तक में छन्द विवेचन की प्रमुखता का पता चलता है।[3]

पुस्तक के रचयिता रामसहाय दास हैं, इसका अनुमान पुस्तक में प्राप्त राजयश वर्णन से सम्बद्ध दूसरे छन्द के आधार पर किया जा सकता है। छन्द निम्न है—

"सारद को घन कीधों, पारद को तन कीधों,
नारद को मन कीधों सदन महेस हैं।
भारती दुकूल कीधों, मालती को फूल कीधों
हास को प्रकास कीधों सारदा को केस हैं।।
कीधों है पसार घनसार की असार कीधों
नीर छीर सिंधु कीधों पदिक विसेस हैं।

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ३६७-७०, ३७७-७८ तथा ३८८ (पंचम संस्करण)

२. उपरिवत्, पृ० ३८८

३. हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास, षष्ठभाग, पृ० ४८७-४८८

राम राका चन्द कीधों, इन्द्र को गयंद कीधों,
कीधों जग फैलो जस उदित नरेस हैं ॥"

प्रस्तुत छन्द की सप्तम पंक्ति का प्रथम शब्द 'राम' है और अर्थ को देखने पर कवि के नाम की छाप के अतिरिक्त इस शब्द का अन्य कोई औचित्य नहीं दीखता। साथ ही अपने नाम पर कवि ने जो 'सतसई' बनाई थी, उसका नाम भी 'रामसतसई' दिया है।[१] इस प्रकार तर्क यही बताता है कि 'रामसहायदास' की कविता में उनकी छाप 'राम' रही और प्रस्तुत पुस्तक भी उनकी ही लिखी है। यद्यपि हिन्दी साहित्य के वृहत् इतिहास के अनुसार रामसहाय दास 'भगत' छाप से कविता करते और भगत जी के नाम से ही विख्यात भी थे", किन्तु इस कथन के आधार के सम्बन्ध में लेखक वहाँ पूर्णतः मौन हैं।[२] रामसहायदास को पुस्तक का रचयिता मान लेने के उपरान्त पुस्तक का रचनाकाल स्थिर हो जाता है, क्योंकि उक्त कवि का कविताकाल वि० सं० १८६० से १८८० के बीच माना गया है।[3]

चित्ररचनाओं की दृष्टि से प्रस्तुत पुस्तक के सभी छन्द लगभग परिचित हैं, फिर भी रचनाओं की शुद्धता की दृष्टि से इनका अपना स्थान है। इनमें 'मर्कटीजालबन्ध' बिलकुल नवीन है और इस बन्ध की रचना आगे भी नहीं मिलती, पर 'षडर चक्रबन्ध' भिखारीदास रचित दो वलयों से युक्त चक्र के समान है।[४] इस बन्ध का महत्त्व यही है कि न्यास की दृष्टि से यह बिलकुल निर्दोष चित्र है, कहीं तनिक भी स्खलन नहीं दीखता। इस प्रकार के सर्वांगशुद्ध न्यास हिन्दी में बहुत कम हैं। बन्धेतर चित्रों में एक 'चरणगुप्त' का है तथा एक 'कामधेनु' का। 'प्रश्नोत्तर' में 'बहिर्लापिका मध्याक्षरी' का एक छन्द है, जिसका अंक है 'उदित नारायण भूप'। अनुमान यही होता है कि यदि पुस्तक सम्पूर्ण प्राप्त होती तो अन्य अनेक नवीन चित्रों की उपलब्धि हमें होती और 'चित्रकाव्य' के क्षेत्र में इसका स्थान बड़े महत्त्व का होता।

दूसरी पुस्तक जो उक्त संग्रह में प्राप्त है, जगतसिंह लिखित 'चित्रकाव्य' अथवा 'चित्रमीमांसा' है।[५] प्रस्तुत पुस्तक की दो प्रतियाँ हैं। इनमें एक अत्यन्त ही जीर्ण है और इसके सभी पत्रों के कुछ भाग फटे हुए हैं। कुछ पत्रों के किनारे इतने जीर्ण हो गये हैं कि उनकी सुरक्षा के लिये फटे हुए अंशों पर उजला कागज चिपका दिया गया है। इस प्रकार बहुत सारे छन्द तथा चित्र अपूर्ण रूप में ही हमारे सामने आ पाते हैं। इनमें से छन्द और चित्र के न्यास को मिलाकर पढ़ने से कुछ छन्द तो पूर्ण निकल आते हैं पर अन्य खण्डित ही रह जाते हैं। दूसरी प्रति भी खण्डित है और उसमें केवल ३८ छन्द (४ से ४१ तक) ही

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ३८८
२. हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, षष्ठभाग, पृ० ५३७
३. उपरिवत्, पा० टि० १-२
४. द्रष्टव्य, चित्र सं० २६, पृ० १५५
५. हस्तलेख संख्या २८५ तथा २८७

प्राप्त होते हैं। चूँकि ये छन्द पुस्तक के प्रारम्भिक छन्द हैं अतः इनसे पुस्तक के नाम, इसके वर्ण्यविषय तथा इनमें आये हुए कवि की कतिपय अन्य रचनाओं पर प्रकाश पड़ता है। पुस्तक के प्रारम्भ में सर्वप्रथम लिखा है 'श्रीगणेशायनमः अथ चित्रकाव्य लिख्यते', इस आधार पर स्वभावतः हमारा अनुमान होता है कि पुस्तक का नाम 'चित्रकाव्य' है। पुस्तक का वर्ण्य-विषय शब्दालंकार है और कवि ने शब्दालंकार मात्र को 'चित्रकाव्य' कहा है, जैसा कि पुस्तक की निम्न पंक्तियों से ज्ञात होता है—

'अथ चित्रकाव्य के नाम—

"अति विचित्र रचना वरन चित्र कहत सब कोइ।
अलंकार शब्दा वहे वरनत पंडित लोइ॥"[१]

इस दोहे के बाद कवि ने अलंकार के भेदों का (सामान्य तथा विशिष्ट) उल्लेख कर, कहा है कि विशिष्टालंकार के अन्तर्गत अर्थालंकार का वर्णन तो वह 'सुधानिधि' में कर चुका है, यहाँ शब्दालंकार का वर्णन कर रहा है।[२] पुनः उसने 'छेकानुप्रास,' 'वृत्त्यनुप्रास', 'लाटानुप्रास', 'अस्फुट अनुप्रास', 'अर्थानुप्रास', 'प्रतीकासपुनरुक्त', 'यमक' तथा 'चित्र', शब्दालंकार के इन आठ भेदों का उल्लेख किया है। सम्पूर्ण पुस्तक में इन्हीं आठों का विवेचन है।[3] विवेचन दोहा संख्या २४ से आरम्भ होकर पुस्तक के अन्त तक जाता है। दोनों ही प्रतियों को मिलाकार १५८ छन्दों की सूचना हमें मिलती है, इसके बाद के अंश पुस्तक में नहीं हैं। इन छन्दों में २४ से १०० तक में अन्य अलंकारों का विवेचन है तथा १०० से अन्त तक 'चित्रकाव्य' का विवेचन है।

पुस्तक के नाम के सम्बन्ध में दो दोहे ऐसे हैं जिनके आधार पर इसका नाम 'चित्रमीमांसा' मान लिया जा सकता है। दोहे निम्न हैं—

"बाढ़ो हियो हुलास जब कवित (ज) न ऐसो कह्यो।
करो चित्र परकास ग्रंथ चित्र मीमानसा॥"

× × ×

ग्रन्थ चित्रमीमानसा है विवेक को काम।
कवि कुल को कंठाभरन राषौ दूजो नाम॥"[४]

ऊपर हमने देखा है कि जिस रूप में 'चित्रकाव्य' शब्द का उल्लेख पुस्तक में हुआ है उससे यही अनुमान होता है कि पुस्तक का नाम यही है। पुनः उपर्युक्त दोहों में हमें

१. हस्तलेख, सं० २८५/२८७ छन्द १५
२. उपरिवत्, छन्द १७ से २० तक

मैं अर्थालंकार बहु कही सुधानिधि माह।
अब शब्दालंकार हो कहो सुनो कवि नाह॥२०॥

३. उपरिवत्, छन्द २१ से २३ तक
४. उपरिवत्, छन्द ५ तथा १०

'चित्रमीमांसा' तथा 'कंठाभरन' दो नाम प्राप्त होते हैं और कवि ने स्पष्ट कर दिया है कि 'कंठाभरन' 'चित्रमीमांसा' का ही दूसरा नाम है। इसके अतिरिक्त एक अन्य दोहे में भी कवि ने 'कंठाभरण' संज्ञा का प्रयोग किया है—

"सभा आभरन होन को जो चाहे कोइ आजु।
तो कण्ठाआभरन को कण्ठ करो कविराज॥"[१]

किन्तु इस नाम के मान लेने में एक अड़चन यह है कि जगत सिंह की लिखी हुई एक दूसरी रचना का नाम 'भारतीकण्ठाभरण' है।[२] इस पुस्तक में कवि ने अपना परिचय तथा पुस्तक की रचनातिथि भी दी है। स्वभावतः प्रश्न होता है कि प्रस्तुत पुस्तक में उल्लिखित 'कण्ठाभरन' से कहीं कवि का तात्पर्य 'भारतीकण्ठाभरण' से तो नहीं है। यदि ऐसा हो तो 'चित्रमीमांसा' नाम भी उसी पुस्तक का होगा, क्योंकि कवि ने स्पष्टतः दोनों को अभिन्न माना है किन्तु तब उनके सम्बन्ध में प्रस्तुत पुस्तक में इतना लिखने की आवश्यकता ही क्या थी? फलतः समीचीन यही है कि इसी पुस्तक का नाम 'चित्रमीमांसा' है, और साथ ही कवि ने इसे 'चित्रकाव्य' की संज्ञा भी दी है, कारण इसका प्रमुख उद्देश्य 'चित्रकाव्य' का विवेचन है। हिन्दी साहित्य के वृहत् इतिहास में भी इस पुस्तक का नाम 'चित्रमीमांसा' ही माना गया है।[3] कण्ठाभरण' के सम्बन्ध में विश्वसनीय यही है कि 'भारतीकण्ठाभरण' तो स्वतन्त्र पुस्तक है ही, 'आभरण' का शब्दार्थ लेकर कवि ने इसको भी इस नाम से अभिहित करना उपयुक्त समझा है। राजसभा में सम्मान चाहनेवालों के लिये इस विद्या के ज्ञान की कितनी आवश्यकता थी इसको लक्ष्य कर धर्मदास ने भी उन्हें सलाह दी है कि वे 'विदग्धमुखमण्डन' को ताम्बूल के सदृश ग्रहण करें।[४]

जगतसिंह का, १९वीं शताब्दी के कवियों में महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह बात दूसरी है कि साहित्य के इतिहासों में उनका उल्लेख केवल 'वृहत् इतिहास' में ही हो पाया है[५] और वहाँ भी 'साहित्यसुधानिधि' तथा 'चित्रमीमांसा,' उनकी केवल इन दो रचनाओं के ही उल्लेख हैं। जगत सिंह की तेरह कृतियों का अबतक पता चल सका है जिनमें से एकाधिक कृतियों में उन्होंने अपने सम्बन्ध में भी लिखा है। उनकी कृतियों के नाम हैं—'साहित्य सुधानिधि' (१८५८ वि०), 'रत्नमंजरीकोष' (१८६३ वि०), 'रसमृगांक' (१८६३ वि०) 'अलंकार साठिदर्पण' (१८६४ वि०), 'उत्तममंजरी', 'चित्रमीमांसा', 'जगतविलास', 'नखशिख,' 'भारतीकण्ठाभरण' (लिपिकाल १८६४ वि०), 'जगत प्रकाश' (१८६५ वि०) तथा 'नायिका-दर्शन' (१८७७ वि०)।[६] पुस्तक की दोनों प्रतियों में रचना तिथि का उल्लेख नहीं है। किन्तु

१. हस्तलेख, २८५/२८७, छन्द ९
२. द्रष्टव्य, दिग्विजय भूषण, प्रथम संस्करण (वि०सं०, २०१६), प्रथम खण्ड, कविपरिचय के अन्तर्गत जगतसिंह का परिचय, पृ० ३६-३७
३. हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, भाग ६, पृ० ३६६ की पाद टिप्पणी
४. विदग्धमुखमण्डन, प्रथम अध्याय, श्लोक ८
५. हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, भाग ६, पृ० ३६६
६. द्रष्टव्य, हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास, प्रथम संस्करण, पृ० १५९-६० तथा दिग्विजयभूषण, प्रथमखण्ड, कविपरिचय पृ० ३६-३७

चूँकि पुस्तक में 'साहित्य सुधानिधि' का उल्लेख है, साथ ही 'सुधानिधि' के छन्द भी हैं,[1] अतः इसकी रचना १८५८ वि० के बाद ही हुई होगी। इस प्रकार इसका रचना काल वि० सं० १८६० से १८७० के बीच माना जा सकता है।

पुस्तक के रचयिता जगतसिंह हैं, इसका प्रमाण हमें पुस्तक के ३६वें दोहे में मिल जाता है, जहाँ जगतसिंह का नाम स्पष्टरूप से आया है।[2]

जहाँ तक 'चित्रकाव्य' की रचना का प्रश्न है, जगतसिंह ने 'स्वर', 'स्थान', 'वर्ण', 'गति', 'गुप्त' तथा 'बन्ध' चित्रों के उन्हीं भेदों की रचना की है, जो उस समय हिन्दी में प्रचलित थे। अपनी ओर से किसी नवीन चित्रप्रकार की रचना जगतसिंह ने नहीं की है। बन्धचित्रों के न्यास भी प्रचलित ही हैं, उनमें किसी प्रकार का परिवर्तन कवि के द्वारा नहीं किया गया है। 'स्थान' और 'स्वरचित्र' का एक ही छन्द हमें प्रस्तुत पुस्तक में प्राप्त होता है, जिसमें इन दोनों ही चित्रों का सम्मिलित रूप उपस्थित किया गया है। वह छन्द 'निरोष्ठामत्त' का है।[3] इस छन्द का उस काल के चित्रकवियों में अधिक प्रचलन था और भिखारीदास ने भी इसकी रचना की है।[4] 'वर्णचित्र' के कवि ने चार छन्द रचे हैं और ये चारों ही क्रमशः 'एकाक्षर', 'द्व्यक्षर' तथा 'चतुरक्षर' के छन्द हैं। 'गतिचित्र' के अन्तर्गत भी प्रस्तुत रचना में 'गतागत', 'गोमूत्रिका', 'त्रिपदी', 'कामधेनु' तथा 'अश्वगति' जैसे अत्यन्त प्रचलित भेदों की रचना हुई है। 'प्रश्नोत्तर' के भेदों को देखने से पता चलता है कि जगतसिंह ने केशवदास का अनुकरण किया है और उन्हीं के वर्गीकरण को स्वीकार किया है।[5] अधिक वैज्ञानिक तथा क्रमबद्ध होने पर भी भिखारीदास का अनुकरण बाद में एकाध कवियों ने ही किया है।[6] 'प्रश्नोत्तर' के भेदों में 'गूढ़ोत्तर', 'अनेकानेकोत्तर', 'व्यस्तसमस्तोत्तर', 'व्यस्त-समस्त-गतागतोत्तर', 'शासनोत्तर' तथा 'प्रश्नोत्तर' की रचनाएँ प्रस्तुत पुस्तक में प्राप्त होती हैं, किन्तु इनमें से कितने ही छन्द खण्डित हैं। हिन्दी में प्रचलित परिपाटी के अनुकूल जगतसिंह ने भी 'गुप्तचित्र' के अन्तर्गत केवल 'चरणगुप्त' की रचना की है।

बन्धचित्रों के क्षेत्र में प्रस्तुत पुस्तक में जो चित्र प्राप्त हैं, उनमें कोई उल्लेखनीय विशेषता नहीं दीख पड़ती। एक बात यह है कि जगतसिंह ने इन चित्ररचनाओं में प्रचलित परिपाटी का बड़ा ध्यान रखा है उस समय की एक परिपाटी यह भी थी कि एक ही छन्द की रचना कर उन्हें कई बन्धों के न्यास के उदाहरणस्वरूप उद्धृत किया जाता था। यह परिपाटी हिन्दी में चिन्तामणि से ही चली आ रही थी, जो निश्चय ही

---

१. द्रष्टव्य, चित्रमीमांसा, छन्द ३१

२. "भासै जह पुनरुक्त सो अर्थ नही पुनरुक्त।
जगतसिह तासो कहै प्रतीकास पुनरुक्त॥"

३. छन्द संख्या १०२

४. का० नि०, परि २१, छन्द ४५

५. प्रश्नोत्तर के विभिन्न भेदों के नामों में केशव का अनुकरण है।

६. गोकुलकवि, शंभु कवि आदि

इस क्षेत्र में कवियों की प्रतिभा के ह्रास का द्योतक है। जगतसिंह ने भी ऐसे एक दोहे की रचना के बाद लिखा है—

"गोमूत्रिका, त्रिपदी, कपाटबन्ध, हारबन्ध, अश्वगति, कमलबन्ध, धनुर्बन्ध, तषतबन्ध, एतनेबन्ध एक दोहा में जानिए।"

दोहा निम्न है—

"तोरी डोरी तोरि करि जोरि बोरि सोरि नारि।
चोरी चोरी हरि घरी परी ररी करि कारि॥"[1]

ऐसे दोहे की रचनापद्धति तथा विशेषताओं का विवेचन पूर्व पृष्ठों में किया जा चुका है। इनके अतिरिक्त 'खड्गबन्ध' तथा 'मेरुबन्ध' के चित्र में कोई विशेषता नहीं है और 'डमरूबन्ध' तथा 'चतुर्दलकमलबन्ध' का छन्द एक ही है। केवल 'मुरजबन्ध' के नाम में प्रस्तुत पुस्तक में जो न्यास तथा चित्र का जो आकार प्राप्त है, वह चौंका देने वाला है।[2] न्यास की विधि को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रस्तुत चित्र 'चतुररचक्र' का है, 'मुरज' की कोई न्यासपद्धति ऐसी नहीं है। छन्द की रचना भी 'चतुररचक्र' के अनुकूल है। फलतः 'मुरजबन्ध' की संज्ञा के अन्तर्गत इस चित्र का रखा जाना कवि अथवा लिपिकार की भूल है। उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यही सिद्ध होता है कि जगतसिंह ने अपनी इस रचना में परम्परा का निर्वाहमात्र किया है, उनकी कोई विशेष देन इस क्षेत्र में नहीं है।

लक्षण विवेचन के अन्तर्गत कवि काशिराज बलवान सिंह रचित 'चित्रचन्द्रिका' का विवेचन हो चुका है।[3] हमने देखा है कि 'चित्रचन्द्रिका' की रचना कवि ने 'चित्रकाव्य' के विवेचन तथा उदाहरणों में उसकी रचना की दृष्टि से की है। फलतः 'चित्रकाव्य' का जितना विस्तृत विवेचन तथा उसके जितने भेदों के छन्द और बन्ध हमें प्रस्तुत पुस्तक में प्राप्त होते हैं, अन्य पुस्तकों में नहीं। शास्त्रीय विवेचन की दृष्टि से इस क्षेत्र में 'चित्रचन्द्रिका' का महत्त्व हमारे सम्मुख स्पष्ट हो चुका है। प्रस्तुत स्थल पर 'चित्रकाव्य' के रचयिता के रूप में काशिराज का मूल्यांकन तथा 'चित्रकाव्य' के स्वरूपविकास में इस पुस्तक के योग का विवेचन हम करेंगे।

'चित्रचन्द्रिका' २३३ पृष्ठों की एक पुस्तक है, जो ९ प्रकाशों अथवा अध्यायों में बँटी है। इस पुस्तक की रचना १८८९ वि० सं० में आरम्भ हुई तथा इसकी समाप्ति १९३१ संवत् में हुई। इस प्रकार इसकी रचना ४२ वर्षों की लम्बी अवधि में की गई। पुस्तक के अन्त में कवि ने अपना परिचय दिया है और साथ ही ग्रन्थ की रचना तथा पूर्णाहुति की तिथियों का भी उल्लेख किया है। ग्रन्थ की रचना के प्रारम्भ के सम्बन्ध में कवि ने एक ऐसे छन्द

१. छन्द १४७
२. छन्द १५० तथा सम्बद्ध चित्र
३. द्रष्टव्य प्रस्तुत पुस्तक का द्वितीय अध्याय

की रचना की है जिसमें से श्लेष के सहारे एक ओर ग्रन्थ का 'जन्मदिन' निकलता है और दूसरी ओर उसी छन्द में शिव का वर्णन भी है। छन्द निम्न है—

"देवगुरु वार सोहै लसै प्रिय धृति योग
श्रवण सुखद गुण आगम बखानिये।
आशा तिथि पूरी जहाँ इषु शुक्लपक्षयुत
हरन विघन खल जग में प्रमानिये॥
निधि सिद्धि नागचन्द्र विक्रम सुअब्द अलि
राशि है ललित तहाँ राजै पहिचानिये।
कवि काशीराज मन आनन्द करनहार
ग्रन्थ को जनमदिन किधों शिव जानिये॥"[1]

इस प्रकार ग्रन्थ का प्रारम्भ १८८९ वि० सं० की आश्विन शुक्लादशमी अर्थात् विजयादशमी, गुरुवार को श्रवणानक्षत्र तथा धृति योग में हुआ था। ग्रन्थ की पूर्णाहुति की तिथि हमें निम्न दोहे में प्राप्त होती है—

"इन्दु राम ग्रह शशि वरष मार्ग शुक्ल रविवार।
चित्र चन्द्रिका पूर्ण भो पंचमितिथि सविचार।"[2]

अर्थात् १९३१ वि० सं० के मार्ग शुक्लपंचमी रविवार के दिन ग्रन्थ की रचना पूरी हुई। उसी वर्ष यानी १८७५ ई० में ही ग्रन्थ की पूर्ति के एक महीने बाद प्रस्तुत ग्रन्थ प्रकाशित भी हो गया।[3]

द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत हम देख चुके हैं कि काशिराज ने 'चित्रचन्द्रिका' में 'गुणबन्ध' तथा 'संकरचित्र' के अन्तर्गत कतिपय इस प्रकार की रचनाएँ की हैं जो 'चित्र-काव्य' के अन्तर्गत नहीं आतीं। इनमें प्रमुखतः 'श्लेष' तथा 'यमक' युक्त रचनाएँ हैं। हमने देखा है कि संस्कृत कृतियों में भी चित्ररचनाओं के साथ 'त्र्यर्थी' तथा 'चतुरर्थी' श्लोकों की रचना हुई है। इनके अतिरिक्त कतिपय कृतियों में 'यमक' के विभिन्न प्रकारों से युक्त श्लोकों की योजना भी चित्र प्रसंग में कवियों ने की है। काशिराज ने भी चूँकि संस्कृत आचार्यों तथा संस्कृत ग्रन्थों से अपनी इस कृति में सहायता ली है, अतः उक्त अलंकारों से युक्त छन्द भी रखे हैं। 'श्लेष' के अन्तर्गत उन्होंने दो से लेकर सात अर्थों से युक्त छन्दों की रचना की है। 'गुणबन्ध' के अन्तर्गत उन्होंने अपनी कल्पना से कुछ विशेष प्रकार के छन्द भी रचे हैं किन्तु ये भी 'चित्र' की सीमा में नहीं आते। इनके सम्बन्ध में विवेचन किया जा चुका है।

---

१. चित्र चन्द्रिका, पृ० २३०, छन्द ३२
२. चित्र चन्द्रिका, पृ० २३६, अन्तिम दोहा
३. प्रकाशन तिथि जनवरी १८७५ ई० पुस्तक के मुख पृष्ठ पर

'चित्रकाव्य' के प्रचलित प्रकारों के अन्तर्गत काशिराज ने लगभग सभी चित्रभेदों की रचनाएँ की हैं। इतना ही नहीं संस्कृत आचार्यों के अनुकरण पर 'चित्रचन्द्रिका' में 'चित्र' के उन भेदों के छन्द भी मिलते हैं, जिनकी रचना सामान्यतः काव्यकृतियों में हिन्दी में क्या, संस्कृत में भी या तो नहीं हुई है या अत्यल्प हुई है। ऐसी ही रचनाओं में 'वर्णचित्र' के 'सर्वाक्षर' तथा 'स्वराक्षर' अथवा 'स्वरव्यंजन' की रचना है।[1] 'स्थानचित्र' के अन्तर्गत भी हिन्दी काव्यकृतियों में अधिकतर केवल 'निरोष्ठ' की रचना हुई है, और 'स्वरचित्र' के अन्तर्गत केवल 'अमात्रिक' की अथवा इन दोनों को मिलाकर 'निरोष्ठामत्त' की। इसके विपरीत काशिराज ने क्रमशः पाँचों उच्चारणस्थानों से उच्चरित वर्णों से निर्मित छन्दों की रचना की है और इनसे रहित छन्दों की भी। इस प्रकार 'स्थानचित्र' के दस भेदों की रचना उन्होंने की है।[2] 'स्वरचित्र' में अवश्य उन्होंने संस्कृत का अनुकरण नहीं किया है।

कहा जा चुका है कि 'चित्रचन्द्रिका' में भोजराज के अनुकरण पर 'बन्ध' और 'आकार चित्र' को भिन्न माना गया है। किन्तु सिद्धान्त में चाहे इन्हें अलग मान लिया गया हो, व्यवहार में काशिराज भी विश्वसनीय रूप में इन्हें पृथक् अस्तित्व प्रदान नहीं कर सके हैं। 'आकारचित्र' के केवल दो उदाहरण 'चित्रचन्द्रिका' में हैं और इनमें कोई ऐसी विशिष्टता नहीं है जो इन्हें 'बन्धचित्र' से अलग कर सके। यों काशिराज ने इन दोनों के अन्तर की चर्चा की है और उसका औचित्य भी हम पहले देख चुके हैं।[3]

चित्ररचना के क्षेत्र में काशिराज का असल महत्त्व बन्धचित्रों की रचना में है। इसके अन्तर्गत 'चित्रचन्द्रिका' में यों ३३ बन्धों के छन्द और चित्र हैं किन्तु इनमें 'त्रिपदी' के चार छन्द, 'गोमूत्रिका' तथा 'अश्वगति' को भी रख दिया गया है। ये सभी वस्तुतः 'गतिचित्र' के भेद हैं। इस प्रकार कुल २७ बन्धों की रचना कवि ने 'बन्धचित्र' के अन्तर्गत की है। इनके अतिरिक्त 'डमरू' तथा 'स्वस्तिक बन्धों' का स्थान कवि ने 'गतिचित्र' के अन्तर्गत रखा है।[4] आकार चित्रों की चर्चा हम कर चुके हैं। इन बन्धचित्रों में कतिपय बन्ध ऐसे हैं जिनकी रचना केवल संस्कृत में होती थी, हिन्दी में वे गृहीत नहीं हुए। उदाहरण के लिये 'द्विचतुष्कचक्रबन्ध' 'विवड़ित चक्रबन्ध' तथा 'द्विशृंगाटक बन्ध।'[5] किन्तु इन बन्धों के न्यास में काशिराज ने केवल अनुकरण ही किया हो, ऐसी बात नहीं। इनकी न्यासविधि में कवि ने आवश्यकतानुसार परिवर्तन भी किये हैं।[6] 'चित्रचन्द्रिका' में नियोजित सारे बन्धों में केवल 'द्विशृंगाटक बन्ध' ही एक ऐसा बन्ध है जिसके अन्तर्गत काशिराज ने अपने नाम की योजना की है। संस्कृत में यह कार्य अधिकतर

१. चि० चं०, प्रकाश १, पृ० १५, छन्द २१
२. चि० चं०, प्रकाश २
३. द्वितीय अध्याय, चित्रचन्द्रिका का विवेचनक्रम
४. चित्र चं०, प्रकाश ५, छन्द १६-१७ तथा ४
५. द्रष्टव्य प्रस्तुत ग्रन्थ की चित्र संख्या ३३-३४, पृ० १६८, १७१
६. उपरिवत्

'चक्रबन्ध' अथवा 'कमलबन्ध' से लिया गया है। सैद्धान्तिक विवेचन के अन्तर्गत इन बन्धों पर विस्तार से विचार किया जा चुका है।

'चित्रचन्द्रिका' में रचित केवल १५ बन्ध ही ऐसे हैं जिनकी रचना काशिराज के पूर्व हुई है। ये बन्ध निम्न हैं—

१. **बिंशतिपत्र कमल**, २. **अष्टदलकमल**, ३. **चामर**, ४. **कपाट**, ५. **पर्वत**, ६. **चक्र (चतुरर)**, ७. **छत्र (एकदण्ड)**, ८. **चौपड़**, ९. **मुरज**, १०. **धनुष**, ११. **खड्ग**, १२. **माला अथवा हार**, १३. **हल की कुण्डी**, १४. **करमुष्टिका तथा** १५. **मयूर**

इन छन्दों में 'छत्रबन्ध' में कवि ने छन्द का न्यास पूर्णतः सुन्दरदास द्वारा किये गये न्यास के अनुकूल किया है। सुन्दरदास ने 'छत्रपट' तथा 'छत्रदण्ड' के कोष्ठकों में सर्वत्र 'सुन्दर भजहु निरंजन' के वर्णों का न्यास किया था। प्रस्तुत चित्र में काशिराज ने भी उसी विधि से सम्पूर्ण बन्ध के कोष्ठकों में 'सीया समा रभा सो तासी' के वर्णों को ही न्यस्त किया है।[1] इन दोनों न्यासों में पूर्ण समानता है। न्यास काशिराज का अपना है। काशिराज के पूर्व तथा बाद में भी इस प्रकार का न्यास हमें दीख नहीं पड़ता। 'मुरजबन्ध' संस्कृत के प्राचीनतम और सर्वाधिक प्रचलित चित्रबन्धों में एक है और हिन्दी में भी इसकी रचना पर्याप्त हुई है। इसके न्यास की एकाधिक विधियाँ भी हैं, किन्तु काशिराज ने इनमें से किसी को अपनाया नहीं है। सैद्धान्तिक विवेचन के अन्तर्गत इसके चित्र तथा इसकी न्यास-विधि पर विस्तार से विचार किया जा चुका है। 'हल की कुण्डी' तथा 'करमुष्टिका' बन्धों के चित्र में काशिराज ने पूर्णतः 'प्रबीनसागर' का अनुकरण किया है किन्तु 'मयूरबन्ध' के न्यास में उन्होंने अपनी कल्पना से काम लिया है। यों 'मयूरबन्ध' की रचना प्रबीनसागर-कार ने भी की है।

उपर्युक्त बन्धों के अतिरिक्त 'चटाई', 'अग्निकुण्ड', 'बीढ़ी' अथवा 'विडिका', 'द्विवदण्ड छत्र' 'निर्दण्ड छत्र', 'पताका' तथा 'ध्वजा' बन्धों की रचना हमें 'चित्रचन्द्रिका' में मिलती है जो काशिराज की अपनी कल्पना की सृष्टि कही जा सकती है। इनमें से 'पताका' की योजना विनयविजय गणि के 'विज्ञप्ति पत्र' में मिलती है, किन्तु अन्य किसी भी चित्र का उल्लेख काशिराज के पूर्व नहीं मिलता।

'गतिचित्र' के क्षेत्र में 'चित्रचन्द्रिका' में प्रायः सभी प्रचलित प्रभेदों के साथ संस्कृत के आचार्यों द्वारा विवेचित प्रभेदों की भी रचना की गई है। चूँकि काशिराज का उद्देश्य 'चित्रकाव्य' का सर्वांगपूर्ण विवेचन है अतः उन्होंने सभी सम्भव भेदों के विवेचन की चेष्टा प्रस्तुत पुस्तक में की है। इन रचनाओं के अन्तर्गत 'गतागत' अथवा 'प्रतिलोमानुलोम' के सभी भेदों के साथ 'रथगति', 'अश्वगति', 'सर्वतोभद्र' तथा 'नवकोष्टगति' की रचना भी हुई है। चतुर्थ अध्याय के अन्तर्गत यह स्पष्ट किया जा चुका है कि 'रथगति' की कोई स्वतन्त्र रचना

---

१. प्रस्तुत ग्रन्थ, चित्र ७७, पृ० २४४

'चित्रचन्द्रिका' में नहीं है और न इस संज्ञा की इसके छन्द में कोई सार्थकता है। छन्द वस्तुत: 'अश्वगति' का है और उसी दृष्टि से उसका महत्त्व भी है। अन्य रचनाएँ सामान्य पद्धति पर हैं, केवल 'नवकोष्टगति' कवि की अपनी कल्पना की देन मालूम पड़ती है।[1] 'गतागत' अथवा 'प्रतिलोमानुलोम' के अन्तर्गत केवल 'भिन्नभाषा गतागत छन्द' की रचना काशिराज ने नहीं की है। किन्तु साथ ही यह भी स्मरणीय है कि 'गतागत' के इस प्रभेद की रचना हिन्दी में अन्यत्र भी किसी ने नहीं की है। 'गोमूत्रिका' और 'त्रिपदी' के सम्बन्ध में कहा जा चुका है कि 'चित्रचन्द्रिका' में इनका स्थान 'बन्धचित्र' के अन्दर रखा गया है जबकि ये सभी रचनाएँ 'गतिचित्र' की हैं।

'प्रश्नोत्तर' को काशिराज ने 'अर्थचित्र' के अन्तर्गत रखा है, तथा इसके 'बहिर्लापिका' तथा 'अन्तर्लापिका' भेदों का विवेचन किया है। 'अन्तर्लापिका' के अन्तर्गत ही 'प्रश्नोत्तर' के अन्य भेद जैसे 'शासनोत्तर', 'प्रश्नोत्तर', 'एकानेकोत्तर', 'शृंखलोत्तर' आदि की रचनाएँ हैं। यहाँ पर 'अन्तर्लापिका' के भेदों के रूप में इनकी रचना से जहाँ ऐसा लगता है कि काशिराज ने भिखारीदास से प्रेरणा ली है, वहाँ 'प्रश्नोत्तर' के इन भेदों की संज्ञाएँ निश्चित रूप से यह प्रमाण देती हैं कि ये केशवदास की अनुकरण हैं। काशिराज एक अधीत व्यक्ति थे और उन्होंने काव्यशास्त्र के ग्रन्थों का अध्ययन भी किया था। दूसरी ओर विवेचन और वर्गीकरण को उन्होंने पर्याप्त मौलिक बनाया है। फलत: दास और केशव दोनों से प्रेरणा उन्होंने ली हो, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। 'छत्रबन्ध' के सम्बन्ध में हमने देखा है कि उन्होंने सुन्दरदास जैसे सन्तकवि का भी अनुकरण किया है।

इन चित्रप्रकारों के साथ 'गुणबन्ध' के अन्तर्गत 'भाषाचित्र' के उत्कृष्ट छन्द भी हमें प्राप्त होते हैं। 'कल्पवृक्षबन्ध' के नाम से सैद्धान्तिक विवेचन में हमने देखा है कि काशिराज ने एक ऐसे चित्रप्रकार की रचना की है, जिसकी रचना उनकी अपनी है और जो अत्यन्त कठिन होने के साथ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भी है।[2] पहले से रचे हुए छन्दों के बीच से सुनिश्चित गति अथवा आकार में न्यस्त वर्णों से अन्य छन्दों की प्राप्ति की योजना सामान्य प्रतिभावाले कवि से सम्भव नहीं है।

कुल मिलाकर 'चित्रचन्द्रिका' शास्त्र तथा काव्य दोनों ही दृष्टियों से 'चित्रकाव्य' के क्षेत्र में सर्वश्रेठ ग्रन्थ है। 'चित्रकाव्य' के स्वरूप तथा विकास में प्रचलित रचनाओं की न्यास-विधियों में हिन्दी के अनुरूप परिवर्तन करके तथा नवीन चित्रबन्धों की कल्पना करके काशिराज ने पर्याप्त योगदान किया है। केशवदास, भिखारीदास जैसे कवियों का महत्त्व तो इस क्षेत्र में है ही, किन्तु उन्होंने 'चित्रकाव्य' का विवेचन अथवा उसकी रचना अन्य रचनाओं के साथ की है, जबकि काशिराज ने इस क्षेत्र को ही अपनी रचनाओं का विषय बनाया है और एक सर्वांगपूर्ण ग्रन्थ की रचना की है। अपने ग्रन्थ में यद्यपि उन्होंने 'प्रहेलिका'

१. द्रष्टव्य, चतुर्थ अध्याय के अन्तर्गत गतिचित्र का विवेचन, पृ० ३०१ तथा चि० चं०, प्रकाश ५ छन्द १९, २०, २१

२. द्रष्टव्य, चतुर्थ अध्याय के अन्त में विवेचित कल्पवृक्ष बन्ध, पृ० ४१२

'कूट', 'श्लेष' तथा 'यमक' को भी लेकर चित्र को व्यापक बनाने की चेष्टा की है, पर इनको छोड़कर विशुद्ध 'चित्रकाव्य' की दृष्टि से भी उनकी इस रचना का महत्त्व इस क्षेत्र में सदा अक्षुण्ण रहेगा।

विक्रम की उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तथा बीसवीं शती के आरम्भ में दीनदयाल गिरि नामक एक शैव साधु वर्तमान थे।[१] काशी नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित 'दीनदयाल गिरि ग्रन्थावली' में 'अनुरागबाग', 'दृष्टान्ततरंगिणी', 'वैराग्य दिनेश' तथा 'अन्योक्ति माला' नामक उनके चार ग्रन्थ संगृहीत हैं। इनमें 'वैराग्य दिनेश' के चौथे प्रकाश में हमें 'चित्रकाव्य' की कतिपय रचनाएँ प्राप्त होती हैं, जिनमें बन्ध तथा बन्धेतर दोनों ही प्रकार की रचनाएँ हैं। अन्तर्साक्ष्य के अनुसार 'वैराग्य दिनेश' का रचनाकाल १९०६ संवत् है।

"रितु नभ निधि ससि साल में, माधव कृष्ण रसाल।
वर वैराग्य दिनेस यह उदै भयो तेहि काल।[२]"

प्रस्तुत दोहा पुस्तक का अन्तिम दोहा है और इसके अनुसार उक्त वर्ष के वैशाख कृष्ण पक्ष में पुस्तक की रचना हुई।

'वैराग्य दिनेश' में हमें ७ बन्धों के चित्र प्राप्त होते हैं, जिनमें तीन 'कमल बन्ध' के तथा एक-एक 'डमरू', 'चक्र', 'फणि' तथा 'कपाट बन्ध' के चित्र हैं। इन चित्रों की न्यास-विधि परम्परा से प्राप्त चित्रों के समान है। यदि कहीं कुछ परिवर्तन भी है तो उससे न्यास अथवा चित्र में किसी प्रकार की विशिष्टता नहीं आ पाती। तीनों ही 'कमल बन्धों' में एक ही प्रकार का न्यास अपनाया गया है, जिसके अनुसार छन्द की प्रत्येक पंक्ति के दोनों अर्द्धों का न्यास अलग-अलग दलों में ऋजुगति से किया जाता है। चूँकि इन सभी अर्द्धों के अन्तिम वर्ण एक ही होते हैं अतः उसका न्यास कोश में होता है। इस प्रकार यहाँ 'षोडशदल कमल' में न्यस्त होनेवाले छन्द में आठ पंक्तियाँ हैं जबकि 'द्वादशदल' में न्यस्त होनेवाले छन्द में छह। इसके अतिरिक्त और किसी प्रकार का अन्तर इन बन्धों में नहीं है।[३] 'डमरू बन्ध' और 'कपाट बन्ध' का न्यास बिलकुल सामान्य पद्धति पर है, 'चक्र बन्ध' के न्यास में अन्तर अवश्य दीखता है। असल में पुस्तक में न्यस्त 'चक्रबन्ध' अन्य कवियों का 'कमल बन्ध' है, जिसमें संस्कृत के 'षोडशदल कमल' की न्यासपद्धति के अनुकूल, छन्द का हर युग्म वर्ण एक ही होने से उसका न्यास कोश में होता है और अयुग्म वर्णों का दलों में।[४] प्रस्तुत 'चक्रबन्ध' में न्यास की पद्धति बिलकुल यही है केवल चित्र का आकार चक्र का है। अन्तिम बन्ध 'फणि बन्ध' अथवा 'नागबन्ध' के चित्र में थोड़ी नवीनता बाहर से दीख पड़ती है। पर यह चित्र भी तत्त्वतः पहले से चला आ

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ३९२ (पंचम संस्करण)

२. दीनदयाल गिरि ग्रन्थावली, पृ० १९२ छन्द २५

३. उपरिवत्, पृ० १८४, १८८ तथ १९१

४. उपरिवत्, पृ० १८४

रहा है।[1] सुन्दरदास की 'सुन्दर ग्रन्थावली' में 'नागबन्ध' का जो न्यास प्राप्त होता है, प्रस्तुत न्यास भी उसी के आधार पर बना है। केवल चित्र में एक नाग के स्थान में नाग युग्म को दिखाया गया है। इन नागों के द्वारा कुल उसी प्रकार की तथा उतनी ही कुण्डलियाँ बनती हैं जितनी सुन्दरदास में हैं। सुन्दरदास के चित्र में जहाँ एक ही नाग की पूछ और सिर आपस में मिलते हैं वहाँ प्रस्तुत चित्र में दोनों नागों के सिर परस्पर मिलते हैं। साथ ही दोनों नागों की पूछ के मिलने से वैसी ही कुण्डली बन जाती है जैसी सुन्दरदास के चित्र में है। इस प्रकार ये चित्र तत्त्वतः अभिन्न हैं। सैद्धान्तिक विवेचन के अन्तर्गत इनका विस्तृत विवेचन हो चुका है। बन्धेतर चित्र के अन्तर्गत प्रस्तुत पुस्तक में हमें 'गतिचित्र' तथा 'प्रश्नोत्तर' के कतिपय भेदों के साथ 'गुप्त चित्र' के केवल एक भेद के छन्द प्राप्त होते हैं। 'गतिचित्र' में 'गोमूत्रिका', 'त्रिपदी', 'गतागत' तथा 'अर्धगतागत' की रचनाएँ कवि ने की हैं। 'प्रश्नोत्तर' में भी 'बहिर्लापिका', 'अन्तर्लापिका' की 'मध्याक्षरी', 'व्यस्त समस्तोत्तर', 'शासनोत्तर' तथा 'अनेकानेकोत्तर' के छन्द रचे गये हैं। इन उपभेदों की संज्ञाओं में दीनदयाल गिरि ने अन्य आचार्यों के द्वारा दिये गये नामों से अन्तर कर दिया है, उदाहरणार्थ 'शासनोत्तर' अथवा 'एकानेकोत्तर' का पुस्तक में 'मध्याक्षरी अन्तर्लापिका' के नाम से उल्लेख है।[2] इन रचनाओं में किसी प्रकार की कोई विशिष्टता नहीं दीख पड़ती। पूर्व प्रचलित पद्धति पर ही ये रचनाएँ हुई हैं।

चतुर्थ अध्याय के अन्तर्गत 'गुप्त चित्र' के विवेचन में हमने देखा है कि हिन्दी में भिखारीदास तथा गोकुलकवि ने ऐसे छन्द की रचना की है जिसके अन्दर उन्होंने अपना पूर्ण परिचय छिपाकर रख दिया है। उन छन्दों से एक निश्चित क्रम में वर्ण लेने से इसकी प्राप्ति हमें होती है। उसी स्थल पर यह भी उल्लेख हुआ है कि उपर्युक्त पद्धति से कतिपय कवियों ने अपना परिचय न देकर किसी अन्य छन्द की योजना की है और उस छन्द की प्राप्ति भी उसी प्रकार होती है। ऐसी एक रचना 'वैराग्य दिनेश' में भी है। छन्द के अन्दर से ही निश्चित क्रम में वर्णों का पाठ करने पर दूसरा छन्द निकल आता है।[3] इस छन्द का उल्लेख चतुर्थ अध्याय में उक्त स्थल पर हो चुका है। दीनदयाल गिरि ने उपर्युक्त चित्ररचनाओं के अतिरिक्त 'चित्रकाव्य' के अन्य किसी भेद अथवा उपभेद की रचना नहीं की है।

१८६१ ई० में 'जान कृष्टियन' नामक इसाई पादरी द्वारा रचित इसाई धर्म से सम्बद्ध एक सौ भजनों का संग्रह, 'सत्यशतक' के नाम से मुंगेर (बिहार) से प्रकाशित हुआ। इन भजनों का एकमात्र उद्देश्य ईसाई धर्म का प्रचार है। इनमें दो भजन ऐसे हैं जिनकी रचना 'अमात्रिक विधि' से हुई है, अर्थात् इनमें जितने भी वर्ण प्रयुक्त हैं सभी अकारान्त हैं, कहीं किसी मात्रा का प्रयोग नहीं हुआ है। अमात्रिक के विवेचनक्रम में

१. दी० द० ग्र०, पृ० १९० तथा प्रस्तुत ग्रन्थ की चित्र संख्या ७०, पृ० २२९

२. उपरिवत्, पृ० १७७

३. उपरिवत्, पृ० १७७

ये भजन हमारे सम्मुख आ चुके हैं।[1] यद्यपि इन 'अमात्रिक' भजनों का चित्ररचना की दृष्टि से कोई उल्लेखनीय महत्त्व नहीं है, किन्तु सत्यशतक जैसी पुस्तक में, जिसका उद्देश्य किसी काव्य की रचना नहीं वरन केवल धर्मप्रचार था और जिसकी रचना एक ऐसे ईसाई पादरी के द्वारा हुई थी जो हिन्दी का न तो कोई बड़ा कवि था और न ही काव्य के प्रति जिसका कोई अनुराग था, इन छन्दों का समावेश यही सिद्ध करता है कि उस काल में चित्ररचनाओं का पर्याप्त प्रचार था तथा कवियों और पाठकों के मध्य उसे अधिक आदर प्राप्त था। चित्ररचनाओं का प्रमुख उद्देश्य प्रतिभा तथा विद्वत्ता का प्रदर्शन और कौतूहल तथा चमत्कार का उत्पादन है। ये रचनाएँ अनायास कभी नहीं होतीं, इनके लिये कवियों को भगीरथ प्रयत्न करना पड़ता है। यही कारण है कि आचार्यों ने इन रचनाओं को 'काष्टकाव्य' की संज्ञा दी है।[2] इनका आरम्भिक नाम 'दुष्कर' है।[3] ऐसी स्थिति में प्रस्तुत ग्रन्थ में इन रचनाओं के समावेश का कोई दूसरा कारण सम्भव नहीं दीखता।

'सत्यशतक' के प्रकाशन काल में ही बलरामपुर के महाराज दिग्विजय सिंह के आश्रित कवि गोकुल ने अपने ग्रन्थ 'अष्टयाम प्रकाश' तथा 'चित्रकलाधर' में चित्रकाव्य की रचनाएँ की। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त एक तीसरे ग्रन्थ 'दिग्विजय भूषण' में उन्होंने लगभग प्रत्येक अलंकार के छन्द दूसरे-दूसरे कवियों से लेकर रखे हैं। इस क्रम में 'चित्रालंकार' के छन्द भी हैं, जो प्रमुखतः केशवदास तथा भिखारीदास से लिये गये हैं। 'दिग्विजयभूषण' में कवि की अपनी कोई चित्ररचना नहीं है, फलतः प्रस्तुत स्थल पर उसका विवेचन अपेक्षित नहीं है।

'अष्टयाम प्रकाश' में जैसा कि नाम से ही प्रकट है, दिग्विजय सिंह की दिनचर्या का वर्णन कवि ने किया है। आठों याम महाराज दिग्विजय सिंह किस प्रकार व्यतीत करते थे, इसीका वर्णन प्रस्तुत पुस्तक का उद्देश्य है। किन्तु इसके साथ ही गोकुलकवि ने विभिन्न अलंकारों के लक्षण को ध्यान में रखकर भी इन छन्दों की रचना की है। इस प्रकार इस रचना का दुहरा उद्देश्य दीख पड़ता है। बीच-बीच में अलंकारों के लक्षण भी दीख पड़ते हैं, पर इस दृष्टि से किसी प्रकार के क्रम का निर्वाह नहीं हो सका है। इन छन्दों में 'चित्रकाव्य' की कतिपय रचनाएँ भी हैं, जिनमें 'अन्तर्लापिका', 'बहिर्लापिका' के साथ 'डमरू', 'सिपर' तथा 'खड्ग' जैसे बन्धों के छन्द तथा चित्र हैं। चित्ररचना की दृष्टि से 'अष्टयाम प्रकाश' का कोई स्वतन्त्र स्थान इसलिये नहीं रह जाता कि इनमें रचित चित्र के सारे छन्द कवि की दूसरी पुस्तक 'चित्रकलाधर' में संगृहीत हैं। फिर भी इन दोनों पुस्तकों में रचित चित्ररचनाओं में थोड़ा अन्तर यह है कि जहाँ 'अष्टयाम प्रकाश' में कवि ने केशवदास का अनुकरण किया है, वहाँ 'चित्रकलाधर' में

१. द्रष्टव्य, चतुर्थ अध्याय, पृ० २९८ पाद टिप्पणी १

२. द्रष्टव्य प्रस्तुत ग्रन्थ के द्वितीय अध्याय में संस्कृत आचार्यों का विवेचन, पृ० २८

३. उपरिवत्, दण्डी, अग्निपुराण तथा आनन्दवर्धन का विवेचन, पृ० २०, २२ तथा २३

प्रमुखतः भिखारीदास का आधार लिया है।[1] 'अष्टयाम प्रकाश' की रचना वि० संवत् १९१८ में की गई थी, जिसके सम्बन्ध में पुस्तक में निम्न दोहा प्राप्त है—

"वसु शशि लहि ग्रह कलानिधि सम्बत सावन मास।
बुधवासर सित पंचमी अष्टजाम परकास॥"[2]

अर्थात् वि० संवत् १९१८ की श्रावण शुक्लापंचमी बुधवार को ग्रन्थ का निर्माण किया गया।

'चित्रकलाधर' में कवि ने दो दोहों में दो तिथियों का उल्लेख किया है। यद्यपि दोनों ही दोहों में उल्लिखित मास तथा तिथि एक ही है, किन्तु संवत् में एक वर्ष का अन्तर है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि 'चित्रकलाधर' की रचना में एक वर्ष का समय लगा है। प्रस्तुत पुस्तक में तीन प्रकाश हैं जिनमें प्रथम में मंगलाचरण तथा विभिन्न देवताओं की वन्दना के साथ कवि के आश्रयदाता महाराज दिग्विजय सिंह के पूर्वजों का तथा स्वयं महाराज का वर्णन है। द्वितीय प्रकाश के अन्तर्गत दिग्विजय सिंह के राज्य तथा नगर का वर्णन है। इसी क्रम में मन्त्री, दूत, हाथी, घोड़ा, हथियार, संगीत, कवि आदि का भी वर्णन किया गया है। असल पुस्तक की रचना तीसरे प्रकाश में है जहाँ कवि ने प्रारम्भ में भूमिका भी दी है। इसी भूमिका में ग्रन्थरचना के प्रारम्भ की तिथि का उल्लेख निम्न दोहे में किया गया है—

"चन्द्र उभय निधि कला निधि संवत आश्विन मास।

शशिवासर दशमी विजय तादिन ग्रंथ प्रकास॥"[3]

इस प्रकार प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना का प्रारम्भ संवत् १९२१ की विजयादशमी, चन्द्रवार को किया गया। पुस्तक के अन्त में कवि परिचय के क्रम में ग्रन्थ के पूर्ण होने की तिथि का उल्लेख है जो संवत् १९२२ की विजयादशमी है। इस सम्बन्ध में कवि का दोहा निम्न हैं—

"जुगल जुगल ग्रह चन्द्रमा संवत आश्विन अच्छ।
सित दशमी पूरन कियो चित्र कलाधर स्वच्छ॥"[4]

---

१. अष्टयाम प्रकाश में कवि ने शासनोत्तर, प्रश्नोत्तर आदि नाम का प्रयोग किया है, किन्तु चित्र-कलाधर में केवल नाम ही नहीं वरन् विवेचन का क्रम तथा चित्रों के वर्गीकरण का आधार भी काव्यनिर्णय ही है, यथा प्रश्नोत्तर पाठान्तर, वाणीचित्र तथा लेखनी चित्र। विशेष विस्तार के लिये द्रष्टव्य प्रस्तुत ग्रन्थ का द्वितीय अध्याय, पृ० ७७

२. पृ० ३, छन्द ८

३. चित्रकलाधर, पृ० ५१, ग्रन्थ की भूमिका, दोहा संख्या ५

४. चि० क०, पृ० १४०, कविपरिचय के क्रम में

'चित्रकलाधर' में यद्यपि कवि ने बन्धचित्रों के अतिरिक्त 'गतिचित्र' के कतिपय भेद, 'गुप्तचित्र' 'पाठान्तर', 'वर्ण', 'स्थान', 'स्वर चित्रों' के प्रचलित भेदों के साथ 'प्रश्नोत्तर' के भी कतिपय भेदों की रचना की है, किन्तु प्रस्तुत ग्रन्थ का महत्त्व प्रमुखतः बन्धचित्रों की रचना की दृष्टि से है। यों कवि ने अपनी सूची में ४५ चित्रों के नाम लिये हैं जिनमें कतिपय 'गतिचित्र' भी हैं, किन्तु पुस्तक में कुल ५९ चित्र दिये गये हैं। इन चित्रों में से यदि 'गतिचित्र' तथा 'गुप्तचित्र' के भेदों को हटा दिया जाय तो भी केवल बन्धचित्रों के ४३ उदाहरण हमें प्रस्तुत पुस्तक में मिलते हैं, जिनमें से अधिकांश बन्धों का न्यास कवि का अपना है। बन्धचित्रों के क्रम में रचे जानेवाले 'गतिचित्रों' अथवा 'गुप्त' के निम्न भेद पुस्तक में हैं—

मध्याक्षरी त्रिपदी, अश्वगति, दो प्रकार की गोमूत्रिका, मन्त्रीमति के छह चित्र, मन्त्री अश्वगति, अनाम, मध्याक्षरी, कामधेनु, सर्वतोभद्र तथा वर्णगुप्त अथवा गुप्तवरण।

लक्षण विवेचन के अन्तर्गत कवि द्वारा प्रदत्त बन्धचित्रों की सूची दी जा चुकी है।[1] प्रस्तुत पुस्तक लक्षणग्रन्थ से अधिक लक्ष्यग्रन्थ है, कारण यद्यपि 'प्रश्नोत्तर' के भेदों में तथा 'पाठान्तर' अथवा 'वाणीचित्र' के लक्षण भले ही भिखारीदास के अनुकूल दे दिये गये हैं, किन्तु कवि का महत्त्व उदाहरणों के छन्दों की रचना में है। उपर्युक्त बन्धेतर चित्रों में भी एक-एक चित्र के कई-कई उदाहरण हैं। बन्धचित्रों में कवि ने कोई लक्षण दिया ही नहीं है। कहा जा चुका है कि गोकुल कवि ने, छन्द में जिनकी छाप वृज है, 'चित्रकलाधर' में लक्षण वर्गीकरण के लिये भिखारीदास की व्यवस्था स्वीकार की है, यद्यपि ग्रन्थ के तीसरे प्रकाश के आरम्भ में दी गई भूमिका में उन्होंने 'अग्निपुराण', मम्मट, केशवदास तथा भिखारीदास के कथन साथ ही उद्धृत किये हैं।[2] 'अष्टयामप्रकाश' में 'बहिर्लापिका, 'अन्तर्लापिका' अथवा 'प्रश्नोत्तर' के भेदों की जो रचना कवि ने की है उसमें नामकरण का आधार केशव की 'कविप्रिया' है; किन्तु प्रस्तुत पुस्तक में 'भिखारीदास' का 'काव्यनिर्णय'। यही कारण है कि 'अष्टयाम प्रकाश' में 'प्रश्नोत्तर' के जिस भेद को 'शासनोत्तर' कहा गया है, 'चित्रकलाधर' में उसी को 'एकानेकोत्तर' की संज्ञा मिली है। अन्य चित्रों के सम्बन्ध में भी हम यही पाते हैं।

जहाँ तक बन्धेतर चित्रों की बात है गोकुलकवि ने भिखारीदास के अनुकूल **बहिर्लापिका तथा अन्तर्लापिका के भेदों के रूप में गुप्तोत्तर, व्यस्तसस्तोत्तर, एकानेकोत्तर, नागपाशोत्तर, क्रमव्यस्तसमस्तोत्तर, आद्यन्तवर्ण व्यस्तसमस्तप्रश्नोत्तर, कमलबन्धोत्तर, अन्तादिप्रश्नोत्तर, शृंखलोत्तर, तथा चित्रोत्तर की रचना की है। पाठान्तर के अन्तर्गत वर्णत्याग तथा वर्णपरिवर्तन, स्थानचित्र में निरोष्ठ, अजिह्व, स्वरचित्र में अमात्रिक तथा इन दोनों के सम्मिलित रूप में निरोष्ठामत्त, वर्णचित्र में नियमाक्षर अथवा नियमित के एक से लेकर ८ वर्णों तक से निर्मित छन्द और इनके अतिरिक्त गतिचित्र के एकछन्द प्रतिलोमानुलोम तथा भिन्नछन्द प्रतिलोमानुलोम की रचना चित्रकलाधर में हुई है।**

१. द्रष्टव्य, प्रस्तुत ग्रन्थ का द्वितीय अध्याय, पृ० ७७, ७८

२. चि० क०, पृ० ५१ से ५४ तक

इन रचनाओं में कवि की कोई उल्लेखनीय विशिष्टता नहीं दीखती, कारण ये सभी रचनाएँ प्रचलित पद्धति के अनुकूल हैं।

कवि की विशिष्टता हम बन्धचित्रों में पाते हैं। उपर्युक्त ४३ बन्धों में **खड्ग, धनुष, चक्र (षडर), चक्र (अष्टार), चौकी, पताका, चन्द्र (दो प्रकार के), पर्वत, डमरू (दो), अष्टादश दल कमल, द्वादश दल कमल (दो), छत्र (दो प्रकार के), नाग, हार, चौपड़, वृक्ष, कपाट (दो), सितार, गज तथा अश्व बन्धों की रचना हिन्दी में पहले भी हुई है और पताका, कटार, सितार, गज, अश्व तथा चन्द्रबन्ध के अतिरिक्त अन्य बन्ध अत्यन्त प्रचलित भी रहे हैं, किन्तु इनके अतिरिक्त सिपर, मुद्गर, त्रिशूल, अंकुश, मूसल, महामेरु (दो), बाग (दो), वन, तड़ाग, षटकोण तथा अष्टकोणयन्त्र, दुर्ग, मुकुट तथा मृदंग** की योजना हिन्दी में सर्वप्रथम हमें 'चित्रकलाधर' में प्राप्त होती है। इन नवीन बन्धों में 'दुर्ग', 'मूसल', 'मुद्गर', 'षटकोण यन्त्र', 'वन' तथा 'बाग' बन्धों की रचना हिन्दी में भी नहीं हुई। अन्य बन्धों की रचना यद्यपि आगे की गई किन्तु उनमें भी कतिपय के न्यास भिन्न-भिन्न रहे। जिन बन्धों की रचना गोकुलकवि के पूर्व हमें प्राप्त होती है, उनमें 'चक्र', 'चन्द्र', 'पर्वत', 'डमरू', 'छत्र', 'वृक्ष', 'हार' तथा 'कपाट' में कवि ने भिखारीदास के न्यास से सहायता ली है। 'चक्र', 'चन्द्र', 'छत्र' जैसे चित्रों में गोकुलकवि ने भिखारीदास का पूर्ण अनुकरण किया है। इसके साथ ही 'मूसल', 'त्रिशूल', 'अंकुश' जैसे बन्ध यद्यपि हमें संस्कृत में अधिकता से प्राप्त होते हैं, किन्तु कवि के प्रस्तुत न्यास और संस्कृत में अपनाये जाने वाले इनके न्यास में पर्याप्त भिन्नता दीख पड़ती है। 'सितार', 'कटार', 'गज' तथा 'अश्व' बन्धों के चित्र गोकुलकवि के पूर्व केवल 'प्रबीनसागर' में प्राप्त होते हैं, किन्तु इन चित्रों के न्यास में गोकुलकवि ने प्रबीनसागरकार का अनुकरण बिलकुल नहीं किया है। उपर्युक्त बन्धों में से अधिकांश की न्यासविधि तथा उद्धार का विस्तृत विवेचन तृतीय अध्याय में किया गया है।

गोकुलकवि द्वारा न्यस्त इन बन्धचित्रों की एक विशेषता यह है कि इनमें से अधिकांश बन्धों में कवि के आश्रयदाता महाराज दिग्विजय सिंह का नाम नियोजित है। संस्कृत के सांकचित्र तथा हिन्दी के इन चित्रों में यह अन्तर है कि संस्कृत में जहाँ उद्धार की विशेष विधि से कोई नाम निःसृत होता था, वहाँ हिन्दी में वह नाम छन्द का अंश होता है और इस उद्धार में छन्द के उस अंश की पूर्ति होती है। इस प्रकार की योजना इस क्षेत्र में कवि की विशिष्टता तथा उसके अधिकार की परिचायक है।

भिखारीदास के समान ही गोकुलकवि ने भी 'गुप्तवरण' अथवा 'मध्याक्षर छन्द' की योजना की है, जिसके अन्दर उनका पूर्ण परिचय छिपा हुआ है। प्रस्तुत छन्द का उल्लेख चतुर्थ अध्याय में हो चुका है।[1] इन रचनाओं के आधार पर यह सिद्ध है कि काशिराज के

---

१. द्रष्टव्य, चतुर्थ अध्याय, पृ० ३४९ तथा चित्रकलाधर, प्रकाश ३, पृ० १००, चित्र ६२

समान इस क्षेत्र में गोकुलकवि भी एक विशिष्ट स्थान के अधिकारी हैं किन्तु काशिराज का महत्त्व जहाँ चित्रकाव्य के आचार्य की दृष्टि से भी बहुत अधिक है, वहाँ लक्षण के क्षेत्र में गोकुलकवि की अपनी देन कुछ नहीं है। उनका सारा महत्त्व चित्रकवि के रूप में है और वह बहुत ही कवियों को प्राप्त है।

'अष्टयामप्रकाश' तथा 'चित्रकलाधर' के रचनाकाल के मध्य में ही रामगढ़ के महाराज शम्भुनाथ सिंह ने 'काव्यनिधि अथवा शम्भु प्रकाश' नामक एक लक्षण ग्रन्थ की रचना की। प्रस्तुत ग्रन्थ अभी अप्रकाशित है और महाराज रामगढ़ के पुस्तकालय में इसकी एक प्रति सुरक्षित है।[1] 'काव्यनिधि' एक बृहत् ग्रन्थ है। जिसमें कुल १४५ पत्र हैं और जो १६ तरंगों में बँटा है। इसमें काव्यशास्त्र के प्रायः सभी अंगों का विवेचन है—छन्द, ध्वनि, नायिका-भेद, गुणीभूतव्यंग्य, शब्दालंकार, अर्थालंकार, शब्दशक्तियाँ, तुक आदि। शब्दालंकार में ही 'चित्रालंकार' भी है और उसी के अन्तर्गत 'चित्रकाव्य' के विभिन्न भेदों की रचना हुई है। 'चित्रकाव्य' का क्या स्थान कवि के हृदय में था इसका अनुमान इसी से किया जा सकता है कि अन्य शब्दालंकार—यमक, छेकानुप्रास, वृत्यनुप्राश, लाटानुप्रास तथा पुनरुक्तवदाभास का विवेचन कवि ने जहाँ केवल आठ छन्दों में किया है वहाँ 'चित्रालंकार' में प्रायः ५० छन्द लगे हैं। पुस्तक में कितने ही बन्धचित्रों की योजना भी है। इसकी रचना संवत् १९१९ में हुई थी यद्यपि प्रस्तुत प्रति १९२३ वि० की प्रतिलिपि है। इस रचनातिथि की प्राप्ति हमें पुस्तक के अन्तिम तरंग के निम्न दोहे से होती है—

"रस ससि दुर्गा आतमा सम्बत माधव मास।
सुक्ल पक्ष तिथि द्वादसी गुरु भो ग्रन्थ प्रकास ॥"[2]

इस प्रकार इस पुस्तक की रचना उक्त संवत् में वैशाखशुक्ल द्वादशी, गुरुवार को पूर्ण हुई।

चित्र विवेचन में यहाँ कवि का प्रमुख आधार भिखारीदास का चित्र विवेचन तथा वर्गीकरण है। उन्हीं के अनुकूल प्रस्तुत ग्रन्थ में कवि ने 'चित्रकाव्य' के चार वर्ग 'प्रश्नोत्तर' 'पाठान्तर', 'वाणीचित्र', तथा 'लेखनी चित्र' माने हैं और 'प्रश्नोत्तर' के 'बहिर्लापिका' तथा 'अन्तर्लापिका' भेद किये हैं।

उदाहरणों में रचित 'चित्रकाव्य' की जहाँ तक बात है, बन्धेतर चित्र के अन्तर्गत कवि ने भिखारीदास के ही अनुकरण पर हिन्दी में प्रचलित भेदों के छन्द रचे हैं। इन भेदों में 'प्रश्नोत्तर' के भेद 'बहिर्लापिका' के अतिरिक्त 'नागफाँसोत्तर', 'प्रश्नोत्तर', 'व्यस्त-समस्तोत्तर', 'एकानेकोत्तर' तथा 'गतागतोत्तर' की रचना हुई है, 'पाठान्तर' के अन्तर्गत

१. प्रस्तुत हस्तलेख की एक फोटोस्टेट प्रति बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना के हस्तलेख-संग्रह में प्राप्य है।

२. पत्र-१४५। इसी स्थल पर यानी पुस्तक के अन्त मे लिपिकार तथा लिपिकाल का भी उल्लेख है-'माह वैसाष वदि १० रोज मंगर संवत १९२३ साल। दसषत द्वारिकानाथ…

'वर्णत्याग' अथवा 'वर्णलोप' तथा 'वर्ण परिवर्तन', 'वाणीचित्र' के अन्तर्गत केवल 'निरोष्ठ' तथा 'निरोष्ठामत्त' की ही रचना की गई है। इनके अतिरिक्त बन्धेतर चित्र में 'गतिचित्र' को छोड़कर अन्य चित्रों की रचना अथवा विवेचन 'काव्यनिधि' में नहीं हुआ है।

'लेखनीचित्र' के अन्तर्गत कवि ने १५ चित्रों की निम्न सूची दी है, जिसमें पाँच गतिचित्र के प्रभेद हैं तथा एक गुप्त का। शेष ९ उदाहरण बन्धचित्रों के हैं—

"मंत्रीगति अरु अस्वगति त्रिपदीजुक्त केवार।
षड्गबद्ध औ कमलबन्ध, चन्द्र चक्र वधधार॥
हार छत्र अरु वृक्ष कहि परवतबद्ध बखान।
गुप्त चरन अरु गतागत कामधेनु उर आन॥"[१]

अन्य हिन्दी कवियों के समान शम्भुनाथ ने भी 'त्रिपदी', 'अश्वगति' तथा 'कपाटबन्ध' की योजना एक ही दोहे में की है।[२] यद्यपि उन्होंने उल्लेख नहीं किया है किन्तु उक्त दोहे में 'गोमूत्रिका' भी वर्तमान है। 'खड्गबन्ध' के भी दो चित्र प्रस्तुत पुस्तक में हैं, परन्तु दोनों चित्रों में एक-एक दोहे का ही न्यास किया गया है। संस्कृत में 'खड्गबन्ध' का निर्माण सर्वदा दो श्लोकों से किया गया है, पर हिन्दी में इस बन्ध के दोनों प्रकार के न्यास मिलते हैं। फिर भी अधिक चित्र ऐसे ही हैं जिनमें केवल एक दोहे का न्यास है। 'खड्गबन्ध' के साथ ही 'कमलबन्ध' के भी दो चित्र हमें प्रस्तुत पुस्तक में प्राप्त होते हैं, एक में आठदल हैं तथा दूसरे में दलों की संख्या सोलह है। इनमें प्रथम 'पद्मबन्ध' अर्थात् 'अष्टदल पद्म' की न्यास-विधि हिन्दी में प्रचलित विधि है, जिसके कोश में एक वर्ण तथा दलों में भी एक-एक वर्ण लिखा जाता है, किन्तु 'षोडशदल कमल' का न्यास 'चित्रकलाधर' में न्यस्त 'द्वादशदल कमल' के चित्र के समान है।[३] इस चित्र के लिये एक छप्पय तथा एक दोहे की रचना है और इस प्रकार दोनों ही छन्दों की आठ पंक्तियों को पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध में बाँटकर एक-एक दल में एक-एक टुकड़े का न्यास किया गया है। छन्दरचना की पद्धति यह है कि इन सभी टुकड़ों का अन्तिम वर्ण एक ही 'न' है और इसका न्यास कमल के कोश में किया जाता है। इस प्रकार इन कमलबन्धों में दलों की संख्या में जो अन्तर आवे, न्यासपद्धति प्रचलित ही है। इन बन्धों के अतिरिक्त 'चन्द्रबन्ध', 'चक्रबन्ध', 'हारबन्ध', 'छत्रबन्ध' तथा 'वृक्षबन्ध' पूर्णतः भिखारीदास के अनुकरण पर हैं। 'पर्वतबन्ध' भी सामान्य शैली के ही अनुकूल है तथा 'चौकीबन्ध' का न्यास भी 'चित्रकलाधर' में दिये गये न्यास के समान है। इस प्रकार बन्ध चित्रों के ये सभी न्यास स्पष्टतः प्रचलित पद्धति के अनुकूल हैं और इनमें परम्परा-निर्वाह के अतिरिक्त कवि की कोई अपनी विशेषता दृष्टिगोचर नहीं होती।

१. पत्र ९५, छन्द ३१-३२

२. उपरिवत्, छन्द ३३—"कर्नकलपतरु जगत में भयो उदित नृप राम।
सर्नचलवतव जनित सुभ ध्याउ चित्त जप राम॥

३. द्रष्टव्य, प्रस्तुत ग्रन्थ की चित्रसंख्या १०

प्रस्तुत पुस्तक में रचित 'निरोष्ठ' का छन्द सभी दृष्टियों से अत्यन्त शुद्ध दीख पड़ता है। मात्राओं के प्रयोग में भी यहाँ स्थान नियन्त्रण का पूर्ण ध्यान रखा गया है।[1] इसके साथ 'कामधेनु' का जो छन्द पुस्तक में है, उसकी रचना में विशिष्टता दीख पड़ती है। यों सामान्यत: देखने से ऐसा लगता है कि प्रस्तुत छन्द भी 'कामधेनु' की सामान्य रचना है, किन्तु कवि ने यहाँ निर्देश कर दिया है कि इस छन्द से अन्य अनेक प्रकार के छन्द निकलते हैं, जिनकी वर्णसंख्या अथवा मात्रासंख्या भिन्न-भिन्न है। चतुर्थ अध्याय में इस छन्द का विवेचन हो चुका है।[2] कुल मिलाकर 'काव्यनिधि' में चित्ररचना की परम्परा का निर्वाहमात्र हुआ है। लक्षण ग्रन्थ होने के कारण यह कवि के उद्देश्य के अनुकूल है।

वि० संवत् १९२० में अयोध्या के कनकभवन के महन्थ श्री जानकी प्रसाद ने 'रसिक बिहारी' अथवा 'रसिकेश' के नाम से 'काव्यसुधाकर' की रचना की। पुनः कवि ने स्वयं संवत् १९३७ में प्रस्तुत ग्रन्थ का शोधन किया और इसे प्रकाशित कराया।[3] प्रस्तुत पुस्तक में काव्यशास्त्र के साथ व्याकरण के कतिपय विषयों का भी विवेचन किया गया है। पुस्तक की शैली लक्षण उदाहरण की है। लक्षणविवेचन के अन्तर्गत हमने देखा है कि रसिक बिहारी ने अलंकार के 'चित्रालंकार', 'शब्दालंकार' तथा 'अर्थालंकार' तीन वर्ग किये हैं, जिनमें 'चित्रालंकार' के अन्तर्गत केवल बन्धचित्रों का विवेचन किया गया है और 'शब्दालंकार' के अन्तर्गत 'अन्तर्लापिका', 'बहिर्लापिका' तथा इन दोनों के तीन-तीन भेद 'आद्यक्षरी', 'मध्याक्षरी' तथा 'अन्ताक्षरी' के साथ 'अनेकार्थ' (कमलबन्धोत्तर) तथा 'एकार्थ' (एकानेकोत्तर अथवा शासनोत्तर) भी हैं। इनके अतिरिक्त 'एकाक्षर', 'द्व्यक्षर', आदि की रचना प्रस्तुत पुस्तक में छन्द विवेचन के अन्तर्गत की गई है।[4] केशवदास के समान रसिक बिहारी ने भी 'एकाक्षर' से लेकर २५ वर्णों से युक्त छन्दों की रचना इस क्रम में की है।

चित्रकवि की दृष्टि से रसिक बिहारी का महत्त्व उपर्युक्त रचनाओं में ही है। बन्धेतर चित्रों में इस पुस्तक में भी हमें कोई नवीनता नहीं दीखती, कारण सभी छन्द प्रचलित शैली पर रचे गये हैं किन्तु बन्धचित्रों में कवि ने अनेक स्थल पर प्रचलित न्यासविधियों से अलग अपना न्यास दिया है। यह बात और है कि इन परिवर्तनों से इन चित्रों में किसी प्रकार की उत्कृष्टता नहीं आ पाई है। 'काव्यसुधाकर' का 'पीठबद्ध चित्र' अन्य कवियों द्वारा रचित 'चौकीबन्ध' है।[5] इन दोनों बन्धों में किसी प्रकार का अन्तर

१. काव्यनिधि, पत्र ९५, छन्द २७-२८

२. द्रष्टव्य चतुर्थ अध्याय, पृ० ३२९

३. "नभ दृग ग्रह ससि संवत माधौ मास।
भौम सुक्ल येकादसि भयो प्रकास॥" पृ० ३

इस प्रकार रचना तिथि १९२० की वैशाख शुक्ला एकादशी, भौमवार होती है। साथ ही पुस्तक के पृष्ठ १४१ पर लेखक ने पुस्तक के संशोधन के सम्बन्ध में गद्य में एक वार्ता दी है जिसके अन्तर्गत संशोधन की तिथि माघ सुदी पूर्णिमा सोमवार, संवत् १९३७ दी गई है।

४. द्रष्टव्य, द्वितीय अध्याय, पृ० ७९

५. का० सु०, कला १३, पृ० ३४ छन्द ४, चित्र पृ० ३६ पर

नहीं दीख पड़ता। 'कमलबन्ध' के छन्द की रचना पद्धति के अनुकूल ही है किन्तु जो न्यास हमें पुस्तक में प्राप्त होता है वह विश्वसनीय नहीं दीख पड़ता। प्रस्तुत छन्द का न्यास प्रचलित पद्धति से 'षोडशदल कमल' के चित्र में बिलकुल सटीक बैठेगा, किन्तु पुस्तक में वह 'सनाल अष्टदल कमल' में न्यस्त है।[१] 'छत्रबन्ध' के चित्र और न्यास में यद्यपि कवि ने प्रचलित पद्धति को नहीं अपनाया है, किन्तु इससे चित्र में कोई उत्कृष्टता नहीं आई है।[२] 'काव्यसुधाकर' में रचित 'मेरुबन्ध' का जो चित्र हमें प्राप्त होता है उसमें भी कवि ने छन्द का न्यास अपने ढंग से किया है। हम देख चुके हैं कि हिन्दी के उन थोड़े से बन्धों में 'पर्वत बन्ध' भी एक है, जिनकी न्यासविधि प्रायः सर्वत्र एक है। रसिक बिहारी का जो न्यास हमारे सम्मुख है, उसमें तथा प्रचलित न्यास में थोड़ी भी समता नहीं दीखती। किन्तु प्रस्तुत न्यास में किसी विशेष क्रम का अभाव होने से उद्धार में बड़ी कठिनाई होती है। यों ऊपर से देखने में चित्र के आकार में किसी प्रकार का अन्तर नहीं दीख पड़ता।[३] इस दृष्टि से प्रस्तुत चित्र सदोष कहा जा सकता है। 'त्रिशूल' तथा 'खड्गबन्धों' में भी प्रस्तुत पुस्तक में निर्मित चित्र के न्यास संस्कृत अथवा हिन्दी में प्रचलित इन चित्रों के न्यास से भिन्न हैं। चूँकि इस भिन्नता में किसी प्रकार की विशिष्टता नहीं है अतः 'चित्रकाव्य' की दृष्टि से इनका कोई महत्त्व नहीं दीखता।[४] उपर्युक्त बन्धों के अतिरिक्त 'काव्यसुधाकर' में दो चित्र 'चक्रबन्ध' के तथा एक 'नागबन्ध' का प्राप्त होता है। 'चक्रबन्ध' के दोनों चित्र 'चतुरर' हैं, जिनमें एक में न्यास की प्रचलित विधि अपनाई गई है, किन्तु दूसरे में 'षडर चक्र' की रीति के छन्द का न्यास किया गया है।[५] इन दोनों ही चक्रों का न्यास इस प्रकार पूर्ण शुद्ध है और इनमें कहीं किसी प्रकार का स्खलन नहीं दीखता। 'नागबन्ध' के चित्र में यद्यपि दो ही वलय हैं और इस प्रकार नाग का आकार छोटा है, किन्तु न्यास की पद्धति प्रचलित पद्धति ही है।[६] अन्त में 'सारिकाबन्ध' का भी एक चित्र कवि ने दिया है और उसकी रचना भी पद्धति के अनुकूल की है।[७] इस प्रकार 'काव्यसुधाकर' में कुल दस बन्धों की रचना हुई है, जिनमें कुछ में प्रचलित पद्धति का अनुकरण किया गया है और अन्य में अपनी ओर से न्यास का क्रम दिया गया है। कुल मिलाकर 'चित्रकाव्य' के क्षेत्र में इस पुस्तक से कोई विकास नहीं होता, यों परम्परा का पालन तो हुआ ही है। परिवर्तित न्यास भी चित्र की उत्कृष्टता में कोई योग नहीं देते। बहुत सम्भव है अज्ञान के कारण ये परिवर्तन हो गये हों, अन्यथा इस क्षेत्र में न्यास-परिवर्तन की स्वतन्त्रता कवियों को है ही।

---

१. का० सु०, कला १३, पृ० ३४, छन्द ५, चित्र पृ० ३७
२. उपरिवत्, पृ० ३५, छन्द १२, चित्र पृ० ३९, साथ ही प्रस्तुत ग्रन्थ की चित्रसंख्या ८२, पृ० २५२
३. उपरिवत्, पृ० ३५, छन्द १०, चित्र, पृ० ३८
४. का० सु०, कला १३, छन्द ८-९, पृ० ३८ पर त्रिशूल और खड्ग का चित्र; साथ ही प्रस्तुत ग्रन्थ की चित्रसंख्या ५८, पृ० २११
५. उपरिवत्, छन्द ६ तथा ७, दोनों ही चित्र पृ० ३७ पर, साथ ही प्रस्तुत ग्रन्थ की चित्रसंख्या २५, पृ० १५२
६. उपरिवत्, पृ० ३५ छन्द ११, चित्र पृ० ३९ पर
७. उपरिवत्, छन्द १३, चित्र पृ० ४० पर

रसिक बिहारी के ही समकालीन 'भारतेन्दु' हैं। 'भारतेन्दु' ने यद्यपि किसी 'आकारचित्र' की रचना नहीं की है, किन्तु 'भारतेन्दु ग्रन्थावली' के द्वितीय खण्ड में कई ऐसी रचनाएँ हैं जिनका स्थान बन्धेतर चित्र के अन्तर्गत आता है। 'चित्रकाव्य' के क्षेत्र में इन थोड़े छन्दों का भी अत्यधिक महत्त्व है। 'वर्णचित्र' के जिस 'षडजादिस्वर' का विवेचन हमें संस्कृत में 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में मिलता है तथा हिन्दी में जिसकी रचना 'स्वरव्यंजनचित्र' के नाम से केवल 'चित्रचन्द्रिका' में हुई है उसका एक छन्द हम भारतेन्दु की 'स्फुटकविताएँ' के अन्तर्गत पाते हैं।[1] सैद्धान्तिक विवेचन के क्रम में इस छन्द को उद्धृत किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त 'भारतेन्दु' की रचनाओं में हमें दो 'अन्तार्लापिकाएँ' भी प्राप्त होती हैं जिनमें 'अलवरत' तथा 'श्रीजीवन' शब्दों से क्रमशः ३६ तथा १६ प्रश्नों के उत्तर प्राप्त होते हैं।[2] इस प्रकार यद्यपि संख्या में 'भारतेन्दु' ने 'प्रश्नोत्तर' की दो ही रचनाएँ की हैं, किन्तु वे इतनी उत्कृष्ट हैं कि इस क्षेत्र में 'भारतेन्दु' के महत्त्व से इनकार नहीं किया जा सकता।

'भारतेन्दु' की पद्य रचनाओं में कितने ही छन्द ऐसे हैं जिनकी भाषा को 'भाषाचित्र' के उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है। विशेषकर उनके गजलों की भाषा में 'फारसी' तथा 'हिन्दी' का मिश्रण है। किन्तु 'भारतेन्दु' ने इनकी रचना 'भाषाचित्र' को ध्यान में रखकर नहीं की है। उस समय कचहरी की भाषा फारसी थी और उर्दू का भी पर्याप्त प्रचलन था, फलतः इस प्रकार की भाषा स्वाभाविक रूप में ही प्रयुक्त है, कौतूहलोत्पादन के हेतु सायास नहीं।

इनके अतिरिक्त 'चित्रकाव्य' के क्षेत्र में 'भारतेन्दु' का महत्त्व एक और दृष्टि से भी है और वह है 'लिपिचित्र' तथा 'अंकचित्र' की रचना।[3] सैद्धान्तिक विवेचन के क्रम में यह कहा जा चुका है कि इन चित्रों की कल्पना सर्वप्रथम हिन्दी में 'भारतेन्दु' ने ही की। अनेक भाषाओं के समान ही अनेक लिपियों के वर्णों को मिलाकर अथवा उच्चारण के अनुरूप वर्णों के स्थान में अंकों का प्रयोग कर 'भारतेन्दु' ने 'चित्रकाव्य' के इस रूप को जन्म दिया। इस चित्र में छन्द की भाषा एक ही रहती है किन्तु उच्चारण के अनुकूल विभिन्न लिपियों के वर्णों का प्रयोग इसके लिखित रूप में किया जाता है। अंग्रेजी भाषा के प्रचार से फारसी तथा नागरी के साथ ही रोमन लिपि भी आ मिली। इन चित्रों का विवेचन चतुर्थ अध्याय में हो चुका है।

इस प्रकार 'बन्धचित्र' की रचना न करने पर भी 'वर्णचित्र' के एक विशिष्ट तथा अल्परचित भेद की रचना, संख्या में अत्यल्प होने पर भी 'प्रश्नोत्तर' की उत्कृष्ट रचना तथा 'लिपिचित्र' और 'अंकचित्र' जैसे नवीन चित्रों की रचना के द्वारा 'भारतेन्दु' ने 'चित्रकाव्य' के विकास में पर्याप्त योग दिया है। साहित्य की अन्य विधाओं के रचयिता के रूप में उनका जो महत्त्व है, इस क्षेत्र में भी वह अक्षुण्ण है।

१. भा० ग्र०, भाग २, पृ० ८४२, स्फुट कविताएँ, छन्द-४९

२. उपरिवत्, पृ० ६२३-२४ तथा पृ० ६३४

३. उपरिवत्, मनोमुकुल माला, पृ० ७४२-७४३; प्रस्तुत ग्रन्थ, च० अ०, पृ० ४०३

विक्रम संवत् १९३५ में कविवर लेखराज ने 'गंगाभरण' की रचना की।[1] प्रस्तुत पुस्तक के अन्त में 'चित्रकाव्य' नाम से एक अध्याय है जिसके अन्तर्गत 'प्रश्नोत्तर' के कतिपय भेदों की रचना हुई है। अन्य चित्रों में केवल 'एकाक्षर' का एक छन्द प्रस्तुत पुस्तक में प्राप्त होता है।[2] इस प्रकार कवि ने 'शासनोत्तर', 'कमलवत्प्रश्नोत्तर', 'शृंखलोत्तर', 'व्यस्तसमस्त', 'अन्तादिवर्ण प्रश्नोत्तर' तथा 'एकाक्षर' की रचना इस पुस्तक में की है। कुल मिलाकर इस क्षेत्र में लेखराज का कोई 'महत्त्वपूर्ण' योग नहीं है।

'गंगाभरण' की रचना के कुल दो वर्ष बाद सन् १८८० ई० अथवा वि० सं० १९३७ में 'भुवनेशभूषण' ग्रन्थ की रचना हुई। कवि का पूरा नाम त्रिलोकीनाथ सिंह था, और वे अवध के महाराज दर्शन सिंह के पौत्र थे। पुस्तक में कवि की स्वलिखित एक भूमिका है जिसमें कवि के वंशपरिचय के साथ पुस्तक की रचनातिथि भी है।

प्रस्तुत पुस्तक में बहुत अधिक चित्रों की रचना तो नहीं है, किन्तु अन्त में एक 'उदधिबद्ध चित्र' है जिसमें नौ छन्दों का न्यास किया गया है किन्तु उससे विभिन्न भाषाओं के कुल सात छन्दों का उद्धार होता है। इस प्रकार का एक चित्र काशिराज की 'चित्रचन्द्रिका' में भी 'कल्पवृक्षबन्ध' के नाम से प्राप्त होता है। सैद्धान्तिक विवेचन के क्रम में इन दोनों बन्धों का विस्तार से विवेचन हो चुका है। 'उदधिबन्ध' के अतिरिक्त एक दोहा 'एकाक्षर' का भी इस पुस्तक में है।[3] यों भी पुस्तक अत्यन्त छोटी है और इसमें कुल १०१ छन्दों की ही रचना हुई है। 'उदधिबन्ध' निश्चय ही एक उत्कृष्ट बन्ध है जो छन्दरचना के क्षेत्र में कवि के अधिकार तथा उसकी प्रतिभा का द्योतक है।

अप्रैल १८८२ ई० के 'हिन्दीप्रदीप' में 'विचित्रकाव्य' के नाम से एक दूसरे प्रकार का छन्द छपा था। इस छन्द के रचयिता श्रीमन्महाराज कुमार गुरुप्रसाद सिंह हैं।[4] इस छन्द की विचित्रता यह है कि एक ओर यह हिन्दी का सार्थक दोहा है किन्तु दूसरी ओर इस दोहे में १४ पशु-पक्षियों के नामों की केवल एक सूची दीख पड़ती है। तात्पर्य यह कि इन नामों को ही एक विशेष क्रम से लिखने पर उपर्युक्त दोहा बन जाता है। इसलिये प्रस्तुत पत्र में इस दोहे के वर्ण तथा शब्दों के स्थान पर उपर्युक्त १४ पशु-पक्षियों के चित्र दे दिये गये हैं। एक प्रकार से इसे प्राचीन चित्रलिपि का नवीन रूप कहा जा सकता है। दोहा निम्न है—

---

१. "गंगेशानन गंगमग, निधि दीन्हे शशिगंग।
गंगागति गनि अंक की, संवत लिखहु सुढ़ंग ॥३५८॥"
गंगेशानन—शिवमुख ५, गंगमग—त्रिपथगा ३, निधि ९, शशि १ गंगागति यानी अंक की उलटी गति से १९३५

२. गंगाभरण, पृ० १००, छन्द संख्या ३५६

३. भु० भू०, पृ० २६ दोहा ६५

४. "विचित्रकाव्य (श्रीमन्महाराज कुमार गुरुप्रसाद सिंह प्रेषित)
यह अभी पहले पहल है कि चित्रों ही में काव्य हो अर्थात् अक्षर एक भी न लिखा जाय केवल चित्रों के नामोच्चारण ही से छन्द प्रगट हो। जिन जिन जानवरों के नाम अधोलिखित दोहे में लिखे हैं उनकी तसवीर भी उसी के साथ है जिसे हम धन्यवाद पूर्वक स्वीकार करते हैं ॥" —हिन्दी प्रदीप, अप्रैल १८८२

"नाँह रँगो हिय जासु की जुरा बरी से अछीक।
गजब करी छबि लाइ तू रहा न गरब रतीक॥"

प्रस्तुत दोहे के शब्दों को यदि एक साथ मिला दिया जाय और उनपर ध्यान दिया जाय तो उनसे निम्न १४ पशु, पक्षी अथवा वृक्ष के नाम मिलते हैं—

१. नाहर, २. गौहि, ३. अजा, ४. सुकी, ५. जुराब, ६. रीसे (रीस्य-हरिण) ७. अछीक (वृक्ष विशेष), ८. गज, ९. बक, १० रीछ, ११. बिलाइ, १२. तूरहा, १३. नगर, १४. बरतीक (बटेर)।

अब दोहे के स्थान पर इन चौदह चित्रों के अंकन से दोहे का कार्य पूर्ण हो जाता है।

ऊपर से देखने पर यह विचित्र लगता है किन्तु ध्यान देने से यह रचना 'भारतेन्दु' रचित 'लिपिचित्र' की कोटि की है। दोनों प्रकार की रचनाओं का आधार एक ही है। दोनों स्थान में भाषा एक ही रहती है केवल शब्दों के उच्चारण के अनुसार किसी अन्य लिपि का कोई वर्ण अथवा कोई चित्र दिया जाता है। अन्तर केवल यही है कि 'भारतेन्दु' ने यदि 'जी' ध्वनि के स्थान में अंग्रेजी के 'G' वर्ण को रखा है तो प्रस्तुत छन्द में 'नाहर' शब्द के स्थान पर 'नाहर' का चित्र रखा गया है। यह अन्तर ऊपरी है अन्यथा दोनों प्रकार की रचनाओं का आधार एक है।

१८८२ ई० में ही हफीजुल्लह खाँ का 'नवीन संग्रह' नामक व्रजभाषा के कवित्त, सवैयों आदि का एक संग्रह निकला। प्रस्तुत संग्रह में कवि ने दो ऐसे छन्दों को उद्धृत किया है जो 'कामधेनु' के छन्द हैं।[1] इनमें से प्रथम छन्द से २४ छन्द निकलते हैं तथा द्वितीय से ३६०। यद्यपि इन छन्दों के रचयिता का पता नहीं है, क्योंकि संग्रहकर्ता ने कुछ कहा नहीं है, फिर भी यह संग्रह तत्कालीन लोकरुचि का परिचायक है। पुस्तक की

१:

मोरपखा	बनमाल	विराजत	वेनबजे
गुणभव	सुपरसन	संगसखा	नन्दलाल
यभ्राजत	मोदसजै	जगसेव	तुकरसन
दद्धिचखा	करिख्यान	हिलाजत	पावतजे
अतितेष	तुहरसन	ध्यानरखा	छविजाल
हिछाजत	स्वांतरजे	बलदेव	सुदरसन

प्रस्तुत छन्द से २४ छन्द निकलते हैं।

साजत हैं	सिधिपाय	इहांसवि	मोदरता	शुचिवेश	प्रणावर
आजत हैं	सिधिराय	छजेछवि	हेतरता	बलवेश	सुधाधर
छाजत हैं	बरभाय	मनैकवि	सुष्ठुमता	सुखदेश	गुणाकर
राजत हैं	यशछाय	यथारवि	रुद्रप्रता	पनरेश	कृपाधर

इस छन्द से ३६० छन्द निकलते हैं।

भूमिका में संकलनकर्ता ने स्पष्ट कर दिया है कि पुस्तक के संकलन का उद्देश्य अपने शिष्यों को इन कवित्तों को कण्ठ कराना है, ताकि मेले आदि के अवसरों पर वे कवित्त आदि पढ़ने में अन्य लोगों से बाजी मार सकें।

लक्षण विवेचन के अन्तर्गत लछिराम कृत 'रावणेश्वर कल्पतरु' का उल्लेख हो चुका है। प्रस्तुत पुस्तक की रचना १९४७ वि० में हुई थी, इसका उल्लेख पुस्तक के अन्त में स्वयं कवि ने किया है।[1] चित्ररचना की दृष्टि से यद्यपि लछिराम ने किसी नवीन चित्र-प्रकार की रचना नहीं की है, किन्तु पूर्व प्रचलित पद्धति को अपनाकर जिन चित्रों की रचना उन्होंने की है, वे सर्वथा निर्दोष हैं। 'चतुर्दलकमलबन्ध' की जो रचना लछिराम ने की है, उसका उत्कृष्ट न्यास दिया है।[2] 'चन्द्रबन्ध,' 'खड्गबन्ध,' 'छत्रबन्ध,' 'पर्वतबन्ध.' 'डमरूबन्ध,' तथा 'धनुषबन्ध' के न्यास तथा छन्द की रचना में कवि ने भिखारीदास का आधार ग्रहण किया है। अतः भिखारीदास के न्यास से लछिराम के न्यास पूर्णतः मिलते हैं। 'ढालबन्ध' की रचना यद्यपि गोकुलकवि ने पहले की थी, किन्तु इसके न्यास में लछिराम थोड़ा भिन्न दीख पड़ते हैं और यह भिन्नता चित्र के उत्कर्ष को बढ़ाती है।[3] लछिराम द्वारा रचित 'हारबन्ध' यद्यपि सामान्य पद्धति पर है किन्तु छन्द के छोटा होने के कारण चित्र में सुन्दरता नहीं आ पाती। अन्य बन्धों में जैसे 'एकविंशदलकमल', 'चौकी', 'कपाट', 'धनुष' आदि में भी किसी प्रकार की कोई विशिष्टता नहीं है, केवल पद्धतिनिर्वाह है।[4] 'वृक्षबन्ध' का जो चित्र हमें इस पुस्तक में प्राप्त होता है, उसके न्यास में थोड़ा स्खलन दीख पड़ता है। यद्यपि छन्द अपने आप में ठीक है, किन्तु न्यास थोड़ा गड़बड़ है।[5]

उपर्युक्त बन्धचित्रों के अतिरिक्त 'स्वरचित्र,' 'वर्णचित्र,' 'गतिचित्र' तथा 'प्रश्नोत्तर' के बहुप्रचलित भेदों की रचना प्रस्तुत ग्रन्थ में हुई है। इनकी तालिका लक्षण विवेचन

---

१. "स्वरफल रस इन्दु सम्वत असितपक्ष,
भादौ भौम पंचमी सुयोग सुभ ज्ञानी को।
श्री गिधौर भूप रावणेश्वर प्रसाद हेत,
भाल जा अमर छत्र संकर भवानी को।
देव मानसिंह कवि बन्दीजन लछिराम,
अबध बसैया दसरथ राजधानी को।
बिरच्यौ सफल रावणेश्वर कलपतरु
बिरद बिलास रामकृष्ण बरदानी को ॥१॥"
—रा० क०, पृ० ३३२

यहाँ स्वर—७, फल—४, रस-९, इन्दु—१ अर्थात् १९४७ वि०

२. द्रष्टव्य, प्रस्तुत ग्रन्थ की चित्रसंख्या २, पृ० १०५

३. द्रष्टव्य, उपरिवत् चित्रसंख्या ६० तथा ६२, पृ० २१४, २१६।

४. द्रष्टव्य, पुस्तक के अन्त में प्रदत्त चित्र

५. उपरिवत्,

के क्रम में दी जा चुकी है। इन छन्दों में भी सामान्य पद्धति का ही पालन है, अतः इनके सम्बन्ध में अधिक कहना पिष्टपेषण होगा।

१८९१ ई० में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की एक प्रारम्भिक रचना 'ऋतुतरंगिनी' प्रकाशित हुई। प्रस्तुत पुस्तक में जैसाकि नाम से ही स्पष्ट है छहों ऋतुओं का वर्णन खड़ी बोली पद्य में किया गया है। प्रत्येक ऋतु के लिये तरंग की योजना द्विवेदी जी ने की है। अन्तिम अर्थात् छठे तरंग के २९ से ३१ तक के पद्यखण्डों की रचना कवि ने इस प्रकार की है कि प्रत्येक पंक्ति के आद्यक्षर को साथ लेने से कवि का नाम निःसृत होता है। यह निःसृतांक है 'महावीर प्रसाद द्विवेदी कृत'। इस प्रकार यह रचना 'आद्यक्षरी अन्तर्लापिका' का उदाहरण है। चतुर्थ अध्याय में इस चित्र प्रकार के सैद्धान्तिक विवेचन के क्रम में द्विवेदी जी की यह रचना उद्धृत की जा चुकी है।[1] द्विवेदी जी की अन्य रचनाओं में यद्यपि अन्य कोई चित्ररचना प्राप्त नहीं होती, फिर भी इस एक पद्य से ही इसका संकेत मिल जाता है कि इस काल में इस प्रकार की रचनाओं का कितना प्रचलन था।

१९०० ई० में प्रकाशित श्रीधरपाठक रचित 'मनोविनोद' के द्वितीय खण्ड में 'चित्रकाव्य' शीर्षक के अन्तर्गत चार रचनाएँ प्राप्त होती हैं। इनमें प्रथम रचना 'लिपिचित्र' तथा 'आद्यक्षरी' का सम्मिलित रूप है, किन्तु अन्य तीन रचनाएँ विशुद्ध 'आद्यक्षरी' की हैं, जिनमें कविता की पंक्तियों के आद्यक्षर को साथ मिलाने पर अभीष्ट वाक्य की प्राप्ति होती है। ये रचनाएँ १८८४ ई० से १८९१ ई० के बीच विभिन्न अवसरों पर की गई थीं। यों इनमें से किसी रचना का महत्त्व 'चित्रकाव्य' की दृष्टि से बहुत अधिक नहीं है, फिर भी इनसे इस समय के कवियों की प्रवृत्ति का पता चलता है। निश्चय ही हिन्दी के मूर्द्धन्य कवियों में 'चित्रकाव्य' के प्राचीन स्वरूप का प्रचलन कम हो रहा था और अंग्रेजी के अनुकरण पर इस प्रकार की रचनाएँ अधिक रची जा रही थीं। 'आद्यक्षरी' की तीनों रचनाओं में प्रथम का अभीष्ट वाक्य है—

"श्रीमती महताब कुमारी कू जय श्री सीताराम"[2]

द्वितीय से—

"श्री महाराज रीवाधीश को श्रीधर का आशीर्वाद"[3]

तथा तृतीय से—

"श्री न्याशनेल कानग्रेसोभवतुभारतशुभाय"[4]

वाक्य निःसृत होते हैं। इन निःसृत वाक्यों से स्पष्ट है कि पत्र, स्वागत अथवा ऐसे ही अवसरों के लिये इस प्रकार की रचनाएँ की गई हैं। अंग्रेजी में भी इस प्रकार की

---

१. द्रष्टव्य, चतुर्थ अध्याय, पृ० ३६७, पा० टि० १

२. मनोविनोद, खण्ड २, पृ० ७९

३. उपरिवत्, पृ० ८०

४. उपरिवत्, पृ० ८२

रचनाओं का पर्याप्त प्रचलन था ।[1]

दूसरी कोटि की जो रचना 'मनोविनोद' में हमें प्राप्त होती है और जिसकी ओर ऊपर संकेत किया जा चुका है, उसकी प्रत्येक पंक्ति का प्रथम अक्षर अंग्रेजी का है तथा अन्य वर्ण हिन्दी के हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण रचना की सभी पंक्तियों के आद्यवर्ण को यदि साथ रखा जाय तो उसमें अंग्रेजी वर्णमाला के सभी वर्ण क्रमशः आ जाते हैं। इस प्रकार यह रचना एक ओर 'आद्यक्षरी' के रूप में दीख पड़ती है, किन्तु दूसरी ओर चूंकि केवल वर्ण अंग्रेजी के हैं और उनका तात्पर्य केवल उच्चारण की ध्वनि से है अन्यथा भाषा पूर्णतः हिन्दी है, अतः यह 'लिपिचित्र' का भी उदाहरण है। एक ही रचना में इस प्रकार पाठकजी ने 'लिपिचित्र' तथा 'आद्यक्षरी' दोनों का सम्मिलित रूप उपस्थित किया है। प्रस्तुत रचना के दो भाग हैं और दोनों की रचना क्रमशः दिसम्बर १८८४ ई० तथा जनवरी १८८५ ई० में की गई थी। रचना निम्न है—

A (ए) रे
B (बी) र
C (सी) रे ना परहु रन खेत माहि
D (डी) ल तो निहारो निज, दिग्गज लखात है।
E (इ) स को मनाइ
F G (एफजी) हति बिचारि देस, तुरत विदारि
H (एच) मू कितेक बात है ॥
I J (आई जे) मलेच्छ सेन,

१. आद्यक्षरी को अंग्रेजी में **Acrostic** तथा अन्ताक्षरी को **Telestich** कहा जाता है।

A New English Dictionary of Historical Principles में इन शब्दों के निम्न अर्थ दिये गये हैं—

Acrostic—"A short poem (or other composition) in which the initial letters of the lines taken in order spell a word, phrase, or sentence. Some times the last and middle letters of the lines, or all of them, are similarly arranged to spell words etc. whence a distinction of single, double or triple acrostics.

—Vol. I, Page 90–edited by Sir James Nurray Oxford, 1888

Telestich—

A short poem (or other composition) in which the final letters of the lines taken in order spell a word or words. Vol. IX, Part II, P. 152, Oxford, 1919

इन अर्थों के साथ ही उदाहरणस्वरूप इनसे युक्त कतिपय रचनाओं के उल्लेख भी प्रस्तुत स्थल पर हैं।

K (के) ती हैं विचारी भला, लरि
L (एल) राई भाई प्रजा अकुलात है।
M (एम) दसाने सूर, नाम पै न डारो धूर,
N (एन) युद्ध औसर पै ढील ना सुहात है ॥
(दिसम्बर, १८८४)

O (ओ) खो है समैया नाहि
P (पी) र की सुनैया कोऊ, धीरज धरैया भैया एक ना दिखात है। सर
Q (क्यू) लर देस में फिरायौ कालिराज आज
R (आर) त अवस्था झूठ भारत की बात है।
S (एस) ढील आलस को
T (टी) कौ लगायौ सिर,
U (यू) धन के यूथ, आर्य
V (वी) ज के नसात हैं।
W (डबलू) न पास एक टैक्स
X (एक्स) इज़ अनेक, पोत हू स
Y (वाई) देते देत
Z (जेड) रात हैं ॥[1]

—(जनवरी १८८५, म०वि०, पृ० ७८)

उपर्युक्त रचना में स्पष्ट है अंग्रेजी वर्ण के उच्चारण को मिलाने से छन्द की पूर्ति होती है। भाषा यहाँ सर्वत्र हिन्दी है। इन चार अन्तर्लापिकायुक्त रचनाओं के अतिरिक्त श्रीधर पाठक की कृतियों में 'चित्रकाव्य' की अन्य कोई रचना प्राप्त नहीं होती।

सम्वत् १९५२ में पण्डित गंगाधर अवस्थी 'द्विजगंग' ने अपने आश्रयदाता महाराज महेश्वर बक्स के नाम में 'महेश्वर भूषण' ग्रन्थ की रचना की।[2] प्रस्तुत ग्रन्थ भी लक्षणग्रन्थ है किन्तु ग्रन्थ के अन्तिम अर्थात् पाँचवें प्रकाश में 'चित्रकाव्य' की रचना भी की गई है। इन रचनाओं में हमें 'खड्गबन्ध' तथा 'पर्वतबन्ध' अथवा 'छत्रबन्ध' के चित्र मिलते हैं और 'गतिचित्र' के एक भेद 'कामधेनु' के एक छन्द की रचना भी है। यों 'गूढ़ोत्तर' नाम से 'शासनोत्तर' अथवा 'एकानेकोत्तर' का एक छन्द भी प्रस्तुत ग्रन्थ में प्राप्त होता है, किन्तु

---

१. मनोविनोद, खण्ड २, पृ० ७८

२. "माघ सुदी द्वितीय दृग पंच नौ चन्द्र सु सम्बत श्री गुरुबार को ॥
आयसु सीसधरो द्विजगंग महेन्द्र महेश्वर वक्स उदार को ॥
हेरि अलंकृत ग्रन्थ यथामति मिश्रित निर्णय के कृतकार को।
तेरही भारी भरोस लगावै कृपा करिकै परमेश्वर पार को ॥"
यहाँ दृग-२, पंच-५, नौ-९ तथा चंद्र-१ यानी १९५२
तिथि माघ शुक्ला द्वितीया, गुरुवार—महेश्वरभूषण, पृ० १, छन्द २

यह उत्कृष्ट कोटि का नहीं है। ये रचनाएँ संख्या की दृष्टि से तो अत्यल्प हैं ही, इनमें किसी प्रकार की विशिष्टता भी नहीं दीख पड़ती। 'पर्वतबन्ध' अथवा 'छत्रबन्ध' के नाम से एक दोहे की रचना है, पर इसके लिये जो चित्र दिया गया है और उसमें जिस प्रकार का न्यास है वह अत्यन्त साधारण कोटि का और अधूरा है। 'पर्वतबन्ध' की मान्यविधि को बिलकुल छोड़ दिया गया है। सुन्दरदास द्वारा अपनाये गये छत्र के न्यास के समान केवल 'राजमहेश्वर बक्स यश' के वर्णों को पर्वत के चित्र के कोष्ठकों में लिखा गया है। यदि इसे उक्त आधार पर 'छत्रबन्ध' के रूप में देखें तो भी दोहे के अन्य तीन चरणों का इस न्यास में कहीं स्थान नहीं होता। 'छत्र' के इस चित्र में दण्ड का अभाव तो है ही।[1] इस प्रकार चित्रकाव्य परम्परा में इस चित्र का कोई महत्त्व नहीं दीखता।

'खड्गबन्ध' में न्यास पूर्ण है अवश्य, और परम्परा से प्राप्त न्यास से किंचित भिन्न भी है, किन्तु इसमें भी किसी प्रकार की उल्लेखनीय विशिष्टता दृष्टिगोचर नहीं होती।[2] चित्र में एक ही दोहे का न्यास किया गया है। यह चित्र है तो सामान्य पर निर्दोष है। 'कामधेनु' के छन्द की रचना भी प्रचलित पद्धति पर ही है। कुल मिलाकर द्विजगंग ने केवल परम्परा निभाने के लिये ये रचनाएँ की हैं।

वि० सम्वत् १९५२ में ही रचित 'रहस्यचन्द्रिका'[3] में भी हमें 'अमात्रिक' का एक छन्द प्राप्त होता है।[4] प्रस्तुत पुस्तक के रचयिता बख्शराम पांडे हैं जिनका उपनाम 'सुजान कवि' है। 'अमात्रिक' के इस छन्द के अतिरिक्त अन्य कोई चित्ररचना इस पुस्तक में प्राप्त नहीं होती।

'चित्रकाव्य' के क्षेत्र में साधोगिरी गोस्वामी ने भी अपने 'काव्यशिक्षक ग्रन्थ' में कुछ रचनाएँ की हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना वि० सम्वत् १९५४ में की गई थी।[5] इसमें जितनी चित्ररचनाएँ प्राप्त होती हैं वे सभी प्रचलित प्रणाली पर हैं। पुस्तक का शीर्षक यह स्पष्ट कर देता है कि इस रचना का उद्देश्य स्वतन्त्र रचना नहीं वरन् कवियों को काव्याभ्यास की शिक्षा देना है। फलतः इन चित्ररचनाओं का भी यही उद्देश्य होने के कारण उनमें हम मौलिकता की आशा नहीं कर सकते। 'बन्धचित्र' के अन्तर्गत प्रस्तुत पुस्तक में 'खड्ग,' 'नाग,' 'कपाट' तथा 'कुठार' के चित्र मिलते हैं। इनमें 'खड्ग,' 'नाग' तथा

---

१. महेश्वर भूषण, पृ० ११२, छन्द ११०, चित्र अधूरा

२. महेश्वर भूषण, उल्लास ५, पृ० ११० छन्द ७

३. "सो युग शर निधि शशि वरण निरखि तेष सित पक्ष।
रहस चंद्रिका को करी पंचमि दिन परतक्ष॥"
यानी-युग-२, शर-५, निधि-९, शशि-१ अर्थात् १९५२ संवत्

४. छन्द २

५. संवत् विक्रम वेद अरु बान अंक सह चंद।
फागुन सप्तमि कृष्ण पख पूरन आनंद कंद॥" —काव्य शिक्षक, पृ० ११८
यहाँ वेद-४, बान-५, अंक-९, तथा चंद-१, यानी १९५४ वि०

कपाट तीनों की रचना प्रचलित विधि के अनुसार है। कवि की ओर से किसी प्रकार का परिवर्तन इनकी न्यासविधि में नहीं किया गया है। 'कुठारबन्ध' की रचना अवश्य सर्वप्रथम हमें इसी पुस्तक में प्राप्त होती है।[1] इसी प्रकार 'वर्णचित्र' के रूप में कवि ने 'आद्यक्षरी' की रचना की है। कवि का यह नामकरण इस प्रकार सदोष सिद्ध होता है। 'अन्तर्लापिका' और 'बहिर्लापिका' की रचना भी यद्यपि इस पुस्तक में हुई है, किन्तु इनमें पद्धति निर्वाह ही है।

उपर्युक्त चित्रों के अतिरिक्त एक छन्द 'भाषाचित्र' का भी है, जिसमें हिन्दी और फारसी के साथ अंग्रेजी के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं।[2] 'भाषाचित्र' का यह छन्द इस बात का प्रमाण है कि किस प्रकार 'चित्रकाव्य' के क्षेत्र में कवियों ने सर्वदा अपनी दृष्टि खुली रखी है और जब कभी किसी नवीन तत्त्व के प्रवेश की सम्भावना हुई है, उन्हें इस क्षेत्र में स्वीकार कर अपनी रचनाओं को नवीनता प्रदान की है। इस प्रकार साधोगिरि का महत्त्व 'चित्रकाव्य' के विकास में 'कुठारबन्ध' की नवीन कल्पना के साथ 'भाषाचित्र' के इस छन्द की रचना के कारण बहुत अधिक हो जाता है। 'भाषाचित्र' का यह छन्द अर्थ की दृष्टि से भी काफी उत्तम है। छन्द निम्न है—

१ २ ३
"फेस अति ग्रेसफुल मूनहूँ सो दून दुति,
४ ५
चश्म शरमिंद करैं खंजन गजाल को।
६ ७
कोरल की लाली लिप लाली सम क्यों हू नाहिं,
८ ९ १०
वीनी छवि छीनी शुक दंदा दुर जाल को॥
११ १२
टाक औ वाक करै मात पिक हंस साधो,
१३ १४
नाज़ औ अदा सों फेदा करै मन लाल को।
१५ १६
केम त्यों अकेली अलबेली चलो सून कुंज,
१७ १८
दिलवर गुल्फ़ाम नाम राधे तेहि बाल को॥"[3]

---

१. द्रष्टव्य, प्रस्तुत ग्रन्थ की चित्रसंख्या ५१
२. का० शि०, पृ० ११६, छन्द ८७
३. उपरिवत्,

१. **face**-चेहरा, २. **graceful** सुन्दर, ३. **moon**-चांद, ४. आंख, ५. मृग, ६. **coral**-मूँगा, ७. **lip**-ओठ, ८. नाक, ९. दांत, १०. मोती ११. **talk**-बात, १२. **walk**-चाल, १३. हाव-भाव, १४. मोहित, १५. **came**-आई, १६. **soon**-जल्द, १७. मनोहर तथा १८. फूल की तरह।

साधोगिरि गोस्वामी के उपरान्त हम ईसा की बीसवीं शताब्दी में प्रवेश करते हैं। अंग्रेजी के सम्पर्क तथा खड़ी बोली की रचनाओं के विकास के साथ-साथ हिन्दी में अब व्रजभाषा की रचनाओं का ह्रास होता जा रहा था। साहित्यरचना की नवीन मान्यताएँ स्थापित हो रही थीं और उसी के अनुकूल काव्य का रूप भी परिवर्तित हो रहा था। ऐसी स्थिति में 'चित्रकाव्य' का ह्रास भी अनिवार्य था। इस प्रकार की रचनाओं के लिये जिस समृद्धि और अवकाश की आवश्यकता होती है, जीवन में उसका अभाव होने लगा था। फलतः बीसवीं शताब्दी में इस प्रकार की रचनाओं के लिये वातावरण का पूर्ण अभाव होने लगा। अब न तो कवि को उतनी फुरसत मिल सकती थी कि वह चित्र-रचना के लिये छन्दनिर्माण में घण्टों माथापच्ची करे और न पाठक को इतना समय था कि वह इसे समझकर इसमें से छन्दों का उद्धार कर, इसका आनन्द उठाये। फिर भी इस प्रकार की रचना की धारा बिलकुल सूख गई हो ऐसी बात नहीं, वरन् क्षीण तथा गौण रूप में वह अबतक प्रवाहित हो रही है। बीसवीं सदी के प्रारम्भिक दशकों में इस प्रकार की रचनाएँ कुछ अधिक मात्रा में की गईं किन्तु आगे चलकर यह मात्रा एकदम क्षीण पड़ गई।

इस शताब्दी के प्रारम्भ में ही पण्डित रामचरण शुक्ल की रचना 'चरणविनोद' का प्रकाशन हुआ। प्रस्तुत पुस्तक का असल उद्देश्य भक्ति के छन्दों की रचना है किन्तु उसमें इतने प्रकार के छन्द प्रयुक्त हुए हैं कि केशवदास की 'रामचन्द्रिका' के समान लेखक का एक उद्देश्य सम्भवतः छन्द वैभिन्न्य का प्रदर्शन भी है। 'गजल', 'मुनाजात', 'रेखता' जैसे उर्दू के छन्दों की रचना हमें इसी निष्कर्ष पर पहुँचाती है। इसी प्रकार छन्द वैभिन्न्य के प्रदर्शन के कारण प्रस्तुत पुस्तक के दूसरे खण्ड में एक अक्षर के चरणों वाले छन्द से लेकर ६-७ वर्णों से युक्त चरणों वाले छन्दों की रचना भी हुई है[१]। ये छन्द निश्चित रूप से 'चित्रकाव्य' की सीमा में आते हैं। इन्हें ही केशवदास 'नियमाक्षर' तथा 'भिखारीदास' ने 'नियमित' की संज्ञा दी है। इनके अतिरिक्त प्रस्तुत पुस्तक में हमें एक 'अमात्रिक', 'एक गुप्त चित्र' तथा छह 'बन्धचित्र' की रचनाएँ भी प्राप्त होती हैं। 'गुप्तचित्र' की रचना इस प्रकार की गई है कि छन्द के अन्दर से कतिपय वर्ण लेने से एक दूसरा छन्द निःसृत होता है जिसमें कवि का परिचय छिपा है।

बन्धचित्रों में 'खड्गबन्ध', 'कुठारबन्ध', 'कपाटबन्ध', 'नागबन्ध', 'कमलबन्ध' तथा 'अन्तादिमुख' के चित्र हैं।[२] इन सभी बन्धों के न्यास प्रचलित पद्धति के अनुकूल हैं। किसी विशेष प्रकार की नवीनता इनमें नहीं दीख पड़ती। 'कुठारबन्ध' की न्यासविधि भी

---

१. चरण विनोद, छन्द २

२. उपरिवत्, पृ० १७१, १७३, ७९, १७५ तथा १७६

साधोगिरि गोस्वामी रचित 'कुठारबन्ध' के समान है, केवल क्रम में थोड़ा अन्तर है।[1] इनका विवेचन तृतीय अध्याय के अन्तर्गत हो चुका है।

'चरणविनोद' में न्यस्त 'कमलबन्ध' का चित्र सामान्य 'कमलबन्ध' से भिन्न दृष्टिगोचर होता है। इस चित्र में न्यस्त छन्द की रचना का क्रम भी अन्य छन्दों से भिन्न है। प्रस्तुत छन्द की पंक्तियों के प्रथम तथा अन्तिम वर्ण एक हैं जबकि इस प्रकार के अन्य छन्दों में पंक्तियों के पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध के अन्तिम वर्ण एक होते हैं[2] फिर भी 'अष्टदल कमल' के स्थान में यदि 'षोडशदल कमल' के चित्र में प्रस्तुत छन्द का न्यास होता तो कहीं अधिक स्वाभाविक होता। ऐसी स्थिति में कोश में लिखित वर्ण से पाठ आरम्भ कर प्रथम दल में निर्गत गति से बढ़कर पुन: द्वितीय दल में प्रवेश गति से पाठ करते हुए कोश में छन्द की प्रथम पंक्ति पूर्ण होती। यही क्रम अन्य दलों में भी होता। सम्प्रति प्रस्तुत चित्र में एक ही दल के किनारे-किनारे सम्पूर्ण पंक्ति का न्यास है और पाठ की गति एक ही दल में दोनों रूपों में चलती है। अन्यत्र प्राप्त किसी भी 'कमलबन्ध' का न्यास इस प्रकार का नहीं है। 'नागबन्ध' का न्यास सामान्य है, केवल प्रस्तुत चित्र में कुण्डलियों की संख्या दो है[3] अत: चित्र की लघुता के अतिरिक्त न्यास की पद्धति में कोई अन्तर नहीं है। इस प्रकार पुस्तक में कवि ने बँधी हुई लीक का अनुसरण किया है, अपनी ओर से कुछ नवीन योग नहीं दिया है।

कहा जा चुका है कि ईसा की १९वीं शती के अन्त अथवा विक्रम की बीसवीं शती के प्रारम्भ में अंग्रेजी के आने, गद्य के प्रचलन तथा साहित्य में नवीनता के आगमन के साथ 'चित्रकाव्य' के क्षेत्र में अन्य रचनाओं के स्थान में 'आद्यक्षरी' का प्रचलन बढ़ा। इस 'आद्यक्षरी' का प्रयोग विशेषकर स्वागत, बधाई अथवा विदाई के अवसरों के लिए रचित कविता में किया जाता था ताकि इन कविताओं की पंक्तियों के आद्यक्षरों से इष्ट व्यक्ति के नाम अथवा अन्य वांछित वाक्य नि:सृत हों। अंग्रेज गवर्नर अथवा अफसरों की प्रशंसा में बनायी गई कविताओं में भी जब-तब इस शैली का प्रयोग किया गया। ऐसी ही एक रचना 'एक प्रेमी' द्वारा 'स्फुटकविता' नामक संग्रहग्रन्थ में हमें प्राप्त होती है। लेखक के असल नाम का उल्लेख पुस्तक में कहीं नहीं है। पुस्तक अत्यन्त छोटी है और 'चित्रकाव्य' के अन्तर्गत आनेवाली एक यही रचना उसमें है। प्रस्तुत रचना में 'दोहा', 'सोरठा', 'छप्पय' तथा 'सवैया' छन्दों का प्रयोग हुआ है। इसमें आगरा तथा अवध प्रदेश के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर सर जेम्स जानडिजिस की प्रशंसा की गई है। रचना की पंक्तियों के प्रथमाक्षरों को साथ लेने से उन्हीं का नाम निकलता है, जो निम्न है—

---

१. द्रष्टव्य, चरणविनोद, खण्ड २, पृ० १७१ पर निर्मित चित्र तथा प्रस्तुत ग्रन्थ की चित्र-सख्या ५१, पृ० २०३

२. द्रष्टव्य, उपरिवत्, पृ० १७६ पर का चित्र

३. द्रष्टव्य, उपरिवत्, पृ० १७५ पर का चित्र

"श्रीयुत आनरेबल सर जेमस जानडिजिस लाटूश के० सी० एस० आई० लेफटिनेन्ट गवरनर आगरा व अवध प्रदेश।"[1]

कविता का आरम्भ निम्न दोहे से होता है—

"श्रीपति अति कीन्हीं कृपा मेटे विघ्न कलेश।
युत विधि कीये हिन्द में इंगलैण्डीय नरेश॥[2]"

इस रचना के अतिरिक्त अन्य कोई रचना इस पुस्तक में प्राप्त नहीं होती फलतः 'चित्रकाव्य' के क्षेत्र में तत्कालीन प्रवृत्ति के संकेत के अतिरिक्त इस पुस्तक का और कोई महत्त्व नहीं है।

मुजफ्फरपुर (बिहार) निवासी रुद्र प्रसाद लिखित 'रुद्रकौतुक विचित्र' में भी हमें 'चित्रकाव्य' की कतिपय रचनाएँ प्राप्त होती हैं। पुस्तक की रचना १९६७ वि० के अन्तिम मास अर्थात् फाल्गुन में हुई थी। कवि ने निम्न दोहे में पुस्तक की रचनातिथि का उल्लेख किया है—

"बासर ऋतु ग्रह चंद सम्वत अंतिम मास में।
बिरचित भयो प्रबंध, पूर्ण शुक्लबुध दूज को॥[3]"

इस प्रकार इस पुस्तक की रचनातिथि १९६७ वि० की फाल्गुन शुक्ला द्वितीया, बुधवार है।

प्रस्तुत पुस्तक में 'चित्रकाव्य' के अन्तर्गत बन्धेतर चित्रों में दो छन्द 'व्यस्त-समस्तोत्तर' के तथा तीन दोहे 'आद्यक्षरी' के हैं।[4] 'आद्यक्षरी' से क्रमशः 'राधाश्याम' 'सीताराम' तथा 'रघुवर' नाम निःसृत होते हैं। 'भाषाचित्र' के कतिपय उत्कृष्ट छन्दों की रचना प्रस्तुत पुस्तक में मिलती है। रुद्रकवि रचित 'भाषाचित्र' के इन छन्दों की एक बड़ी विशेषता यह है कि ये छन्द गाने के लिये रचे गये हैं, फलतः विभिन्न रागों में भी बँधे हैं। इनमें प्रथम छन्द में अंग्रेजी, फारसी, संस्कृत, प्राकृत तथा हिन्दी भाषाओं का प्रयोग किया गया है, द्वितीय में अंग्रेजी, फारसी, संस्कृत तथा हिन्दी का, तृतीय में प्राकृत, उर्दू तथा व्रज का, चतुर्थ में फारसी, खड़ी बोली तथा अंग्रेजी का और पंचम में अंग्रेजी तथा हिन्दी का। उदाहरण के लिये निम्न पद द्रष्टव्य हैं—

"Who comes there मुगो (मतकह) मम प्यारे,
Well my dear मकुन (मतकर) पद न्यारे।
I shall not go अज़सरे कूयत (तेरी गली से),

---

१. स्फुट कविता, पृ० १०-१३
२. उपरिवत्
३. रुद्रकौतुक विचित्र, पृ० १३४ छन्द १
४. उपरिवत्, पृ० १०५, छन्द १-२ तथा पृ० १०७, छन्द ९-११

हे मम प्रिय तू मुझे क्यों विसारे ?"
Where shall I go कदमत गुज़ाशते (तेरा चरण छोड़कर),
त्वाम् प्रणमामि, तू रख निज द्वारे ।।
I am servant आक़ायमन (तू मेरा स्वामी है),
किम्बदसि वचन निठुर बिन विचारे ।।
My friend listen you तमन्नाइंरुद्र (इस रुद्र की आकांक्षाओं को),
माम् पाहि शरणागतोस्मि पुकारे ।।"[1]

बन्धचित्र के अन्तर्गत प्रस्तुत पुस्तक में तीन 'चक्रबन्ध' के, दो 'वृक्षबन्ध' के तथा एक-एक 'कमलबन्ध', 'व्यजनबन्ध' तथा 'सरोवर बन्ध' के चित्र हैं।[2] इन बन्धों के केवल चित्र और न्यास ही पुस्तक में हैं, अलग से छन्द कहीं नहीं लिखे गये हैं। इनके साथ ही एक चित्र अनाम है जिसे 'चौकीबन्ध' अथवा 'डमरूबन्ध' कहा जा सकता है। एक अन्यचित्र 'दिनगतिबन्ध' के नाम से है किन्तु वह 'सर्वतोभद्र' का एक रूप है, कोई स्वतन्त्र बन्ध नहीं।

'कमलबन्ध' का जो चित्र प्रस्तुत पुस्तक में है उसमें नाल भी है और उसकी न्यास-पद्धति अन्य 'कमलबन्धों' से किंचित् भिन्न है। इस बन्ध में 'षोडशदल कमल' तथा 'चामर-बन्ध' की न्यासविधियों का मिश्रण कर दिया गया है।[3] इसी प्रकार 'वृक्षबन्ध' के दोनों चित्रों में भी लेखक की कुछ अपनी देन दीख पड़ती है। गमले में उगे पौधे की शाखाओं और प्रमुख तने को मिलाकर छन्द की पंक्तियाँ लिखी गई हैं।[4] 'व्यजन बन्ध' अथवा 'पंखाबन्ध' की रचना हिन्दी 'प्रबीनसागर' के अतिरिक्त प्रस्तुत पुस्तक में ही प्राप्त होती है।[5] किन्तु दोनों ही पुस्तकों में प्रदत्त इस बन्ध की न्यासविधियों में पर्याप्त अन्तर है।

'छत्रबन्ध' की रचना रुद्रकवि ने सुन्दरदास द्वारा अपनाई गई पद्धति पर की है जिसमें छत्राकार चित्र के कोष्ठकों में छन्द के अन्तिम चरण के वर्णों को लिखा जाता है। काशिराज ने भी 'चित्रचन्द्रिका' में इस प्रकार के 'छत्रबन्ध' की रचना की है। तृतीय अध्याय के अन्तर्गत इस प्रकार के 'छत्रबन्ध' का विवेचन हुआ है।[6] 'सरोवरबन्ध' तथा 'चौकीबन्ध' के चित्र में किसी प्रकार की विशेषता नहीं है। 'चक्रबन्ध' के, प्रस्तुत पुस्तक में तीन चित्र हैं, पर वे वस्तुतः 'चक्रबन्ध' का कोई रूप हमारे सम्मुख नहीं उपस्थित करते। यों इन चित्रों में एक 'चतुरर', एक 'षडर' तथा एक 'अष्टार' का प्रतिनिधित्व करता है, किन्तु इनमें किसी प्रकार का चमत्कार नहीं दीख पड़ता। छन्द को आवश्यकतानुसार चार, छह अथवा आठ

१. रु० कौ० वि०, पृ० १२९, राग खेमटा
२. द्रष्टव्य, पुस्तक के अन्त में बने चित्र तथा उनका न्यास
३. उपरिवत्
४. उपरिवत्
५. उपरिवत्
६. प्रस्तुत ग्रन्थ की चित्रसंख्या ७७, पृ० २४४

टुकड़ों में बाँटकर इन टुकड़ों को सीधे आरों के साथ लिख दिया गया है, न केन्द्र में किसी वर्ण का न्यास है, न परिधि में।[1] फलतः आवृत्तिगत अथवा अन्य प्रकार का भी कोई चमत्कार इन चित्रों में कहीं नहीं है।

प्रस्तुत पुस्तक की भूमिका में कवि ने स्वीकार किया है कि इस प्रकार की रचनाओं का पाठक अब नहीं है अतः इनका प्रचलन भी नहीं रहा। फिर भी उसने जो रचनाएँ की हैं वे दूसरों को चमत्कृत करेंगी। इस क्षेत्र में 'भाषाचित्र' तथा 'व्यजनबन्ध' की रचना की दृष्टि से प्रस्तुत कवि का थोड़ा महत्त्व अवश्य है। यों यह युग ही 'चित्रकाव्य' के ह्रास का युग है अतः इस क्षेत्र में नवीन स्फूर्ति की आशा करना व्यर्थ है।

सम्वत् १९७४ विक्रम अथवा १९१८ ई० में किशोरीलाल गोस्वामी लिखित 'अंगूठी का नगीना' नामक एक उपन्यास प्रकाशित हुआ। प्रस्तुत उपन्यास में एक स्थल पर कुछ तुकबन्दी की गई है और उसकी शैली 'आद्यक्षरी' की है।[2] इस प्रकर यह संकेत मिलता है कि 'चित्रकाव्य' के क्षेत्र में इस युग में अन्य रचनाओं की अपेक्षा 'आद्यक्षरी' तथा 'भाषाचित्र' का प्रचलन विशेष हो गया था। अन्यथा उपन्यास में भी इस प्रकार की रचना घुसाने की कोई आवश्यकता न थी।

बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना के हस्तलेखसंग्रह में श्री बाबू नगनारायण सिंह लिखित 'दुर्गाप्रेमतरंगिनी' के नाम से एक जिल्द है। वस्तुतः इस जिल्द में कई व्यक्तियों द्वारा रचित कई रचनाएँ हैं। इन रचनाओं में 'दुर्गाप्रेमतरंगिनी' भी एक रचना है जिसकी भाषा संस्कृत है। जिल्द में संगृहीत रचनाओं के स्पष्टतः तीन खण्ड हैं। प्रथम खण्ड की पृष्ठ संख्या ४६ है, जिसमें प्रथम ३३ पृष्ठों में नगनारायण सिंह कृत संस्कृत में 'दुर्गास्तोत्र' है। पुनः ३६ से ४६ तक में विभिन्न रचयिताओं द्वारा रचित हिन्दी के छन्द हैं। इन्ही में नगनारायण सिंह कृत 'दुर्गानामार्थ दोहावली' भी है। द्वितीय खण्ड का विस्तार २५ पृष्ठों में है तथा इसके अन्तर्गत हिन्दी के स्फुट छन्द हैं। इनमें 'चित्रकाव्य' के भी छन्द हैं। इसी प्रकार तृतीय खण्ड की रचना १०८ पृष्ठों में हुई है और इनमें भी विभिन्न व्यक्तियों

---

१. द्रष्टव्य, पुस्तक के अन्त में निर्मित चित्र

२.

मा	न किएँ पौढी क्यों ? जा	गु।
ल	ड़िकइयां करि, जनि मच	ला।
ती	खे नैन, दिखावति रो	ब।
प	री धरी करती निज हा	नि।
तु	व, पत्थर सों है, हिय	रा।
रि	स माती, या महँ का ला	भ।
या	तरियां को, ठनगन छा	डु।
है	मेरी का नहिं पर	वा।

यह आद्यन्ताक्षरी है जिससे "मालती पतुरिया है" तथा "गुलाब निरा भडुवा" वाक्य निःसृत होते हैं। लेखक ने इसे बेतुकी कहा है।

—अंगूठी का नगीना, पृ० १९८ (प्रथम आवृत्ति)

द्वारा रचित फुटकल छन्द हैं जिनमें 'चित्रकाव्य' की भी कतिपय रचनाएँ हैं। अतः प्रस्तुत पुस्तक में एकाधिक रचयिताओं के छन्द प्राप्त होते हैं।

नग नारायण सिंह रचित 'दुर्गास्तोत्र' के अन्तर्गत हमें 'नामांक अष्टदल कमल', 'अष्टदल पंचकमल' तथा 'हारबन्ध' के श्लोक प्राप्त होते हैं।[1] इन रचनाओं में 'हारबन्ध' की रचना प्रचलित पद्धति पर ही की गई है, किन्तु 'कमलबन्ध' में थोड़ा अन्तर है। संस्कृत में रचा जाकर भी 'कमलबन्ध' का न्यास हिन्दी की पद्धति के अनुकूल है। एक छन्द के आठ टुकड़े बनाकर प्रति दल एक टुकड़े को ऋजुगति से लिखा गया है। इन टुकड़ों का अन्तिम वर्ण एक ही है और उसका न्यास कोश में किया गया है। इस प्रकार विभिन्न दलों में न्यस्त सभी श्लोकांशों के प्रथम वर्णों को साथ मिलाकर पाठ करने से कवि नग नारायण सिंह का नाम निःसृत होता है। 'अष्टदल पंचकमल' में एक वृक्ष में पाँच कमलाकार चक्र दिखाया गया है तथा उपर्युक्त विधि से इन कमलों में अलग-अलग श्लोकों का न्यास किया गया है।

जिल्द के दूसरे खण्ड में भी नग नारायण सिंह की रचनाएँ हैं जिनकी भाषा हिन्दी है। इन रचनाओं में दो 'अमात्रिक' छन्द, दो 'कंकणबन्ध', चार 'डमरूबन्ध' अथवा 'चौपड़बन्ध', दो 'धेनुबन्ध' तथा दो 'वृक्षबन्ध' की रचनाएँ हैं। इनके अतिरिक्त कतिपय 'अमात्रिक' तथा 'कंकणबन्ध' के छन्द अन्य लोगों के भी हैं।[2] प्रस्तुत पुस्तक में रचित 'अमात्रिक' छन्द सर्वथा निर्दोष नहीं है, इनमें 'इ' 'ई' और 'उ' को स्वर मानकर मात्राओं से इतर माना है, किन्तु उनकी यह मान्यता भी दोषपूर्ण है।[3] 'कंकणबन्ध' के जो चित्र प्रस्तुत पुस्तक के अन्तर्गत हमें प्राप्त होते हैं, उनमें किसी प्रकार का चमत्कार नहीं है। एक वृत्त को विभिन्न प्रखण्डों में विभाजित कर छन्द को उनमें इस विधि से लिखा गया है कि प्रत्येक प्रखण्ड में चार वर्ण हों। पुनः विभिन्न पंक्तियों में इसी को दुहराया गया है, किन्तु इससे कंकण की कोई विशेषता हमारे सम्मुख नहीं आती। बन्धरचना की दृष्टि से इन चित्रों में किसी प्रकार के बन्ध का न्यास नहीं हो पाता है। 'डमरूबन्ध' के यद्यपि चार चित्र यहाँ मिलते हैं किन्तु सभी की न्यासविधि एक ही है। डमरूबन्ध की इसी न्यासविधि को कतिपय कवियों ने 'चौपड़बन्ध' की संज्ञा दी है। प्रस्तुत पुस्तक में रचयिता ने इन दोनों नामों का साथ प्रयोग कर स्पष्ट कर दिया है कि ये दोनों बन्ध एक ही हैं। कवि द्वारा रचित 'वृक्षबन्ध' का न्यास बिलकुल निर्दोष है। इसी पद्धति पर 'रुद्रकौतुक विचित्र' में भी 'वृक्षबन्ध' के दो चित्र बने हैं। इस न्यास के अन्तर्गत छन्द की प्रथम पंक्ति का न्यास वृक्ष के तने में जड़ से शिखर तक किया जाता है। अन्य पंक्तियों का न्यास तने के दोनों ओर निकली शाखाओं में होता है। छन्द की विभिन्न

१. दु० प्रे० त०, प्रथम खण्ड, पृ० ३७, २७ तथा ४०

२. ये छन्द राजेंद्र प्रसाद सिंह तथा भैरो प्रसाद सिंह द्वारा रचित हैं।

३. खण्ड २, पृ० ५८

पंक्तियों की रचना इस प्रकार होती है कि तने के जितने ऊपर से शाखाएँ निकलती हैं, उतनी दूर तक तने में न्यस्त छन्द का ही भाग होता है, किन्तु उसके आगे का अंश नवीन होता है, जिसे शाखाविशेष में लिखा जाता है। धेनु के अन्तर्गत कामधेनु के छन्द हैं और वे सामान्य ही हैं।

जिल्द के तृतीत खण्ड में 'चित्रकाव्य' के अन्तर्गत 'अमात्रिक', 'डमरूबन्ध' अथवा 'चौपड़ बन्ध' तथा 'आद्यक्षरी', 'मध्याक्षरी' और 'आद्यन्ताक्षरी' के छन्द हैं। इस खण्ड मे रचित 'अमात्रिक' के दो छन्द पूर्णतः निर्दोष हैं। 'आद्यक्षरी', 'मध्याक्षरी' अथवा 'आद्यन्ताक्षरी' का प्रयोग पत्रों के रूप में भी हुआ है जिनसे इष्टनाम निःसृत होते हैं। 'मध्याक्षरी अन्तर्लापिका की भी रचना इस खण्ड में है। एक ऐसी ही रचना से 'श्रीधर बाबू' निःसृत होता है। ये रचनाएँ राजेंद्र प्रसाद सिंह, भैरो प्रसाद सिंह, नग नारायण सिंह आदि द्वारा रचित हैं। कुल मिलाकर 'दुर्गाप्रेमतरंगिनी' का पर्याप्त महत्त्व इस क्षेत्र में है, विशेष कर इसकी रचना उस काल में हुई है जब इस विद्या की ओर से पाठकवर्ग विमुख हो रहा था। प्रस्तुत पुस्तक के विभिन्न अंशों का रचनाकाल भिन्न-भिन्न है। संस्कृत में लिखित अंश की रचना यद्यपि १९४८ संवत् की है किन्तु हिन्दी के अंश १९१८ ई० तथा १९२५ ई० के बीच रचे गये हैं।

इसी काल में रचित बिहारीलाल भट्ट के 'साहित्यसागर' में भी हमें 'चित्रकाव्य' की कतिपय रचनाएँ प्राप्त होती हैं।[१] 'साहित्यसागर' लक्षणग्रन्थ है और लक्षणविवेचन के अन्तर्गत इसका उल्लेख हो चुका है। चित्ररचनाओं की दृष्टि से इस ग्रन्थ का महत्त्व इसमें नियोजित कतिपय बन्धों से है। इनमें 'कमल', 'धनुष', 'चामर' तथा 'असि' में तो कवि ने परम्परा का पालन किया है, किन्तु 'व्याघ्र' और 'आग्नेयास्त्र' अथवा 'बन्दूक' के आकार में बन्ध की रचना कवि की अपनी देन है।[२] इन बन्धों का विस्तृत विवेचन तृतीय अध्याय में हो चुका है। इनके अतिरिक्त 'कामधेनु' तथा 'सर्वतोभद्र' की योजना भी प्रस्तुत पुस्तक

---

१. द्रष्टव्य, साहित्यसागर, खण्ड २ के अन्त में निर्मित चित्र तथा न्यास—

साहित्यसागर की रचना १९८१ सम्वत् में हुई थी। इस सम्बन्ध में पुस्तक में निम्न पंक्तियाँ मिलती हैं—

"सम्बत ससि बसु अंक चक्ररवि विक्रमाब्द भल,
आस्विन सुदि विजयोदसम्मि दिन दिव्य सुखदथल।
सिंहासन आसीन अवनिपति अति छबि छाइय,
तदिन ग्रन्थ परिपूर्ण स्रवन कर सरुचि सराइय।
हौं हर्ष सहित सम्मुख भयव अर्पण कर आसिस दियव,
धन धन्य सिंह सावंत नृप सानुराग स्वीकृत कियव।"

अर्थात् शशि-१, वसु-८, अंक-९ तथा रविचक्र-१, इस प्रकार १९८१

२. द्रष्टव्य, प्रस्तुत ग्रन्थ की चित्रसंख्या ६६, पृ० २२१

में है। भट्टजी ने 'सर्वतोभद्र' के छन्द को वलयाकार चित्र में उपस्थित किया है, 'सर्वतोभद्र' की यह पद्धति भी पूर्व प्रचलित है।

इस प्रकार आधुनिक काल के लक्षणग्रन्थ होने के कारण यद्यपि 'साहित्यसागर' में 'चित्रकाव्य' की अधिक रचनाएँ नहीं हैं, फिर भी भट्ट जी का स्थान चित्ररचयिताओं में 'व्याघ्रबन्ध' तथा 'बन्दूक बन्ध' को लेकर अक्षुण्ण रहेगा। उन्होंने केवल लीक ही नहीं पीटी वरन् युग के अनुकूल नवीन वस्तुओं के आकार को भी बन्धचित्र में समाहित किया है।

महाराजा रामगढ़ के पुस्तकालय में 'कुर्सीकल्पद्रुम' अथवा 'लवंगलता' नामक एक हस्तलिखित पुस्तक प्राप्य है, जिसमें रामगढ़ के महाराजाओं की तालिका दी गई है। इस जिल्द के अन्तर्गत ९० छन्दों में, जिनमें कतिपय श्लोक भी हैं, 'दुर्गापंचख' नामक एक रचना संगृहीत है। इस रचना में दो छन्द बन्धेतर चित्र के प्राप्त होते हैं। दोनों छन्द 'प्रश्नोत्तर' के क्रमशः 'कमलबन्धोत्तर' तथा 'मध्याक्षरी अन्तर्लापिका' से युक्त हैं। दोनों छन्दों की संख्या पुस्तक में क्रमशः ४० तथा ४५ है। 'अन्तर्लापिका' के उत्तरों के मध्याक्षर से 'राधावर माधव शरण' वाक्य की प्राप्ति होती है। इन छन्दों के अतिरिक्त उक्त पुस्तक में 'चित्रकाव्य' की अन्य कोई रचना प्राप्त नहीं होती। इस रचना की रचनातिथि का पता नहीं चलता, किन्तु 'कुर्सीकल्पद्रुम' में १८८८ सम्वत् तक के महाराज का उल्लेख है, फलतः इसे हम इस तिथि के आस-पास की रचना मान सकते हैं। हालाँकि सम्भावना इसकी भी हो सकती है कि 'दुर्गापंचख' की रचना पहले ही हुई हो और इस संग्रह में इसकी भी प्रतिलिपि को स्थान मिला हो। किन्तु निश्चित प्रमाण के अभाव में इसी तिथि को रचनाकाल मान लेना भी असंगत नहीं दीखता। चाहे जो भी हो उक्त दोनों छन्दों के आधार पर 'चित्रकाव्य' के क्षेत्र में इस पुस्तक का कोई महत्त्वपूर्ण योग नहीं माना जा सकता।

२०१८ वि० अथवा १९६२ ई० में दुर्वासा आश्रम (इलाहाबाद) के 'रामसुन्दरदास' लिखित एक पुस्तक 'सुन्दरचित्रकाव्य' प्रकाशित हुई।[1] प्रस्तुत पुस्तक की रचना पुस्तक के ही अनुसार वि० सं० २०१६ की चैत्र शुक्ल नवमी को पूर्ण हुई।[2] इस प्रकार यह पुस्तक इस क्षेत्र की नवीनतम रचना है। पुस्तक में यों ६० बन्धों के नाम तथा छन्द हैं किन्तु ये सभी छन्द 'बन्धचित्र' के अन्तर्गत नहीं आते। इनमें कतिपय रचनाएँ बन्धेतर चित्रों की हैं जिन्हें लेखक ने बन्ध की संज्ञा दी है। उदाहरण के लिये **सर्वत्तोभद्र, मानसचौपाई, स्वस्तिक, विनय, 'शिवलिंग' 'मात्राहरण', युगलांक, छन्दावली, सरसी, अमात्रिकसाठमुखी, विचित्र चौपाई, कामधेनु, विचित्र सवैया, विनय विद्यालय, संकटमोचन तथा पितुभक्ति बन्धों के छन्द गति, स्वर, गुप्त अथवा आद्यक्षरी, मध्याक्षरी** आदि के अन्तर्गत आते हैं। इनमें 'मात्राहरण' स्पष्टतः 'अमात्रिक' छन्द है तथा 'विचित्र सवैया' 'भिन्नछन्द प्रतिलोमानुलोम'। 'विचित्र चौपाई' भी 'गुप्तचित्र'

१. प्रकाशक, शंकरबन्धु प्रकाशन, शंकर-भवन, तिवारीपुर, पोस्ट दुबावल, जिला इलाहाबाद

२. "नयन सहस नव सत समत, गमकत चमकत पक्ष।
दशरथ तनय जनम जगत, मनहर मदन समक्ष ॥" —पृ० १००, दोहा १७१

का ही एक भेद है। 'सर्वतोभद्र', 'स्वस्तिक', 'शिवलिंग', 'सरसी', 'कामधेनु' तथा 'साठमुखी' भी 'गतिचित्र' के ही प्रकार हैं। इनके अतिरिक्त 'मानस चौपाई', 'विनय', 'छन्दावली', 'विनयविद्यालय', 'संकटमोचन' तथा 'पितुभक्ति' के छन्द 'आद्यक्षरी' अथवा 'मध्याक्षरी' के रूप में उपस्थित किये गये हैं। अन्य छन्दों में 'विचित्र शीश' तथा उपसंहार के छन्द में किसी प्रकार के 'चित्रकाव्य' की योजना नहीं है, ये सामान्य छन्दमात्र हैं[1] तथा 'कल्पवृक्ष' और 'नक्षत्रबन्ध' के नाम में दिये गये चित्र अथवा छन्दों की योजना इस प्रकार की गई है कि ये बुझौवल बनकर रह गये हैं।[2] किन्तु कवि ने इन सभी छन्दों तथा उनके न्यास को बन्ध की संज्ञा से अभिहित किया है। उपर्युक्त बन्धेतर अथवा अन्य छन्दों को छोड़कर बन्धचित्र के अन्तर्गत आ सकने वाली रचनाओं की सूची निम्न है—

१. ओंकारबन्ध, २. कपाटबन्ध, ३. सरस्वती सरोजबन्ध, ४. बिजनबन्ध, ५. कुठारबन्ध, ६. पद्मनालबन्ध, ७. छत्रबन्ध, ८. मुकुटबन्ध, ९. असिबन्ध, १०. वृश्चिकोंकारबन्ध, ११. कालियदमनबन्ध, १२. शीशफूलबन्ध, १३. पुष्पहारबन्ध, १४. मयूरबन्ध, १५. सांकलबन्ध, १६. बेणुबन्ध, १७. पद्मसम्पुटबन्ध, १८. कल्पबल्लीबन्ध, १९. भक्तमालबन्ध, २०. अहिशूलबन्ध, २१. कैलास शिखरबन्ध, २२. कंकणबन्ध, २३. रत्नहारबन्ध, २४. सूर्यबन्ध, २५. सूर्यमुखीबन्ध, २६. वृक्षव्यूहबन्ध, २७. चतुर्थाङ्कबन्ध, २८. मत्स्यबन्ध, २९. चक्रबन्ध, (षडर), ३०. नाराचबन्ध, ३१. अलसी-पुष्पबन्ध, ३२. धर्म-किवारबन्ध, ३३. ध्वजबन्ध, तथा ३४. अष्टादशदल (पुष्प अथवा पद्म) बन्ध।[3]

इन बन्धों में केवल 'कपाटबन्ध', 'पुष्पहारबन्ध', 'कैलाश शिखरबन्ध', 'चक्रबन्ध' तथा 'अष्टादशदल (पद्म) बन्ध' का न्यास ही पूर्व प्रचलित सामान्य न्यासविधि के अनुकूल है, अन्यथा कोई भी न्यास प्रचलित पद्धतियों से समता नहीं रखता। इन चार चित्रों में भी 'चक्रबन्ध' का न्यास भिखारीदास रचित 'षडरचक्र' के समान है और 'अष्टादशदल' (पद्म) का संस्कृत के षोडशदल पद्म की विधि पर। यों भी हिन्दी के पद्मबन्धों में अधिकांशतः यही विधि अपनाई गई है। 'पुष्पहारबन्ध' में भी न्यास की पद्धति सामान्य 'हार' की है, केवल 'हार' के चित्र में चार लड़ियाँ हैं। 'कपाटबन्ध' और 'शिखर' अथवा 'पर्वतबन्ध' के लिये लगभग सभी प्रमुख चित्ररचयिताओं ने एक ही न्यासविधि का प्रयोग किया है। प्रस्तुत पुस्तक में भी उन्हीं का अनुकरण किया गया है। अन्य बन्धों में कतिपय चित्र ऐसे हैं जिनमें एक से अधिक चित्रों की न्यासविधियों के सम्मिश्रण से एक नवीन विधि उपस्थित की गई है। ऐसे बन्ध हैं—'पद्मनालबन्ध', 'मुकुटबन्ध', 'कल्पबल्लीबन्ध', 'पद्मसम्पुटबन्ध', 'भक्तमालबन्ध',

---

१. पुस्तक की चित्रसंख्या १३, तथा ६०, पृ० ३७ तथा ९९

२. उपरिवत्, चित्रसंख्या ४१ तथा ४३, पृ० ८० तथा ८३

३. पुस्तक में इन बन्धों के चित्र की संख्या क्रमशः निम्न हैं—

१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, १४, १५, १६, १७, १८, १९, २०, २१, २२, २५, २६, २७, २९, ३१, ३३, ३४, ३५, ३७, ४२, ४४, ४७, ५३, ५६, ५७ तथा ५९

'सूर्यमुखीबन्ध' तथा 'धर्मकिवारबन्ध'। इन बन्धों में 'पद्मनाल' में 'चतुररचक्र' में अपनाई जाने वाली न्यासविधि का पूर्णतः अनुसरण किया गया है, केवल छन्द के कतिपय अन्तिम शब्दों को नाल में ऋजुगति से लिख दिया गया है। किन्तु चूँकि नाल का आकार एक कुण्डली के आकार का है अतः न्यास वहाँ स्वतः 'नागबन्ध' की विधि धारण कर लेता है। फलतः इस बन्ध के न्यास में हम 'चतुररचक्र' तथा 'नागबन्ध' की न्यासविधियों का मिश्रण पाते हैं। 'मुकुटबन्ध' में भी मुकुट की मणि में तो न्यास की विधि सामान्य कमल की है, किन्तु निचले भाग में छन्द को 'गोमूत्रिकागति' के आधार पर लिखा गया है। इस प्रकार इस बन्ध में 'कमलबन्ध' तथा 'गोमूत्रिका' दोनों ही पद्धतियों का उपयोग किया गया है। 'कल्पबल्लीबन्ध' में भी छन्द का न्यास 'गोमूत्रिका विधि' से ही किया गया है, किन्तु उसके पाठ में गतागत की विधि को अपनाया गया है। अतः इस बन्ध के न्यास में 'गोमूत्रिका' तथा 'गतागत' दो 'गतिचित्रों' का आधार ग्रहण किया गया है। 'पद्मसम्पुट' के न्यास में 'त्रिपदी गति' को ही खड़े रूप में लिख दिया गया है। यह छन्द चूँकि 'षोडशदल कमल' की विधि से रचित है अतः बीच की पंक्ति में केवल एक ही वर्ण की आवृत्ति हुई है। 'भक्तमाल' के न्यास में भी 'गोमूत्रिका' के खड़े आकार तथा 'गतागत' का सम्मिश्रण है। 'सूर्यमुखी बन्ध' में, पुष्प में 'षोडशदल कमल' की विधि अपनाई गई है किन्तु वृक्ष में 'गोमूत्रिका' की विधि से न्यास किया गया है। अतः 'मुकुट बन्ध' के न्यास तथा प्रस्तुत बन्ध के न्यास की पद्धति एक ही है। अन्तर केवल यह है कि 'मुकुट' के निचले भाग में न्यस्त छन्द में जहाँ 'गोमूत्रिका' की स्थिति स्वाभाविक रूप में है, वहाँ 'सूर्यमुखी' के वृक्ष तथा पत्तियों में वह खड़ी 'त्रिपदी' का रूप धारण कर लेती है। अन्तिम बन्ध 'धर्मकिवार' में न्यास तो सामान्य कपाट की पद्धति से है, जिसमें 'गोमूत्रिका' अथवा 'त्रिपदी' रहती है, किन्तु उद्धार में यह 'विपरीत गोमूत्रिका' का रूप धारण कर लेता है। अर्थात् किवार के एक ओर न्यस्त छन्दांश का पाठ 'गोमूत्रिकाक्रम' से ऊपर से नीचे की ओर होता है, जबकि दूसरी ओर के छन्दांश का पाठ नीचे से ऊपर की ओर। इस प्रकार प्रस्तुत बन्ध में थोड़े परिवर्तन के साथ न्यास की सामान्यविधि ही अपनाई गई है।

प्रस्तुत पुस्तक में 'कंकणबन्ध', 'शीशफूलबन्ध' तथा 'सूर्यबन्ध' के नाम से जिन चित्रों की रचना की गई है, उनकी न्यासविधि को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि ये बन्ध क्रमशः 'विपरीत कमलबन्ध', काशिराज द्वारा रचित 'निर्दण्ड छत्रबन्ध' तथा 'एकाक्षर मण्डलाकार सर्वतोभद्र' हैं। केवल इनकी संज्ञा बदल दी गई है अन्यथा इनकी न्यासपद्धति तथा उद्धारविधि में कोई अन्तर नहीं दीखता। इन बन्धों के अतिरिक्त जितने बन्ध पुस्तक में नियोजित हैं उनकी कल्पना निश्चितरूपेण कवि की अपनी है, किन्तु इसी क्रम में यह भी उल्लेखनीय है कि ये बन्ध 'चित्रकाव्य' का उत्कृष्ट रूप हमारे सम्मुख नहीं रखते। अधिकांश बन्धों में न्यास के छन्द 'अमात्रिक' हैं अथवा 'षोडशदल कमल' की पद्धति पर रचित हैं जिनमें सभी युग्म वर्ण एक ही होते हैं। फलतः इनके उद्धार में बहुत अधिक चमत्कार नहीं आता।

उदाहरण के लिये 'ओंकारबन्ध' में एक दोहे का न्यास ऋजुगति से किया गया है, केवल दोहे के द्वितीय चरण का प्रतिलोम तृतीय चरण होने से पाठ में इसकी आवृत्ति होती है। न्यास में इसे एक ही बार लिखा जाता है।[1] 'सरस्वतीसरोजबन्ध' में छन्द के स्थान पर गणों के नाम हैं अतः इनका न्यास 'पद्मबन्ध' की विधि से सरल है। इस प्रकार चित्र अत्यन्त सामान्य कोटि का बनकर रह जाता है।[2] 'बिजनबन्ध' में भी पाठ की गति बिलकुल सीधी चारों किनारों में तथा दोनों कर्णों में चलती है। चित्र का आकार वर्ग के समान है।[3] हिन्दी में इसके पूर्व प्राप्त 'व्यजनबन्धों' से इस बन्ध की तनिक भी समता नहीं दीखती। यही दशा 'कुठार बन्ध' की है। दण्ड से आरम्भ कर फल में आते तो हैं, पर फल में तीन पंक्तियों में न्यस्त दोहे का उत्तरार्द्ध 'त्रिपदी' का रूप ले लेता है और 'कुठार' का अपना कोई चमत्कार नहीं रह जाता।[4] 'छत्रबन्ध' का यह चित्र राजसिंहासन युक्त छत्र का है, जिसमें छत्रपट में न्यस्त छन्दांशों का पाठ गतागत विधि से होता है और सिंहासन में न्यस्त छन्दांश ऋजुगति से पढ़े जाते हैं।[5] 'असिबन्ध' की जो न्यास-विधि प्रस्तुत पुस्तक में प्राप्त है वह हिन्दी में प्रचलित 'खड्गबन्ध' के बहुत निकट आ जाती है। अन्तर केवल यही है कि प्रस्तुत चित्र में न्यास के दोहे का प्रथम चरण मूठ से आरम्भ होकर फल की ओर सीधे नहीं बढ़ता वरन् मूठ में लगे अर्धमण्डलाकार हत्थे से होते हुए फल की जड़ में जाकर समाप्त होता है।[6] पुनः द्वितीय चरण को मूठ से ही आरम्भ करके ऋजुगति से फल तक ले जाते हैं। इस प्रकार प्रथम तथा द्वितीय चरण के आदि दो वर्ण एक ही होते हैं और प्रथम चरण के दो उपान्त्य तथा द्वितीय चरण के दो अन्त्यवर्ण भी एक ही हैं। अतः चित्र में इन वर्णों को एक ही बार लिखा जाता है, केवल पाठ में ही उनकी आवृत्ति होती है। दोहे के उत्तरार्द्ध का न्यास 'असि' के फल में सामान्य ढंग से किया जाता है। इस प्रकार 'खड्गबन्ध' की प्रचलित सामान्य पद्धति तथा प्रस्तुत न्यासपद्धति में बहुत थोड़ा अन्तर दीख पड़ता है। 'वृश्चिकोंकार बन्ध' में बिच्छे के चित्र में अर्धचन्द्र लगाकर उसे ऐसा रूप दिया गया है कि वह 'ॐ' का आकार पकड़ लेता है। इस बिच्छे के चित्र में सवैया के केवल एक चरण का न्यास किया गया है और उस चरण की रचना 'गतागत विधि' से हुई है। वह चरण है—

"एहिं रहो रहिए नंद नंदन, नंदन नंद एहिं रहो रहिए।"

प्रस्तुत चरण ही स्पष्ट कर देता है कि इसके अर्द्ध का न्यास चित्र में होगा और उसी का पाठ ऊपर से नीचे तथा नीचे से ऊपर करके छन्द की प्राप्ति की जायगी। प्रस्तुत बन्ध का कोई महत्त्व इसलिये नहीं दीखता कि इसमें किसी पूर्ण छन्द का न्यास अथवा उद्धार

१. पुस्तक की चित्रसंख्या १
२. उपरिवत् ३
३. उपरिवत् ५
४. पुस्तक की चित्रसंख्या ६
५. उपरिवत् ८
६. उपरिवत् १० साथ ही द्रष्टव्य प्रस्तुत ग्रन्थ की चित्रसंख्या ४६-४७, पृ० १९४, १९६

नहीं होता है। यों छन्दांश को लेकर कोई भी चित्र बनाया जा सकता है, किन्तु उसमें अपेक्षित चमत्कार का अभाव रहेगा। इस चमत्कार के अभाव में प्रस्तुत चित्र भी महत्त्व-शून्य है।[१]

सुन्दर चित्रकाव्य में नियोजित 'कालियदमन बन्ध' भी बहुत हद तक चमत्कार रहित है। चित्र देखने से यह 'प्रबीनसागर' के 'नवफणनागबन्ध' के समान दीख पड़ता है किन्तु इसमें छन्द का न्यास बिलकुल सामान्य ढंग से किया गया है। एक के अन्दर एक की रीति से तीन वृत्तों के आकार की कुण्डलियों में लिपटे नाग के फणों के ऊपर एक कृष्ण की मूर्त्ति है। छन्द का न्यास गले के भाग से आरम्भ होता है और पूँछ के अन्त में समाप्त होता है। छन्द सीधे लिख दिया गया है, इसमें कोई कला नहीं है। केवल ध्यान रखा गया है कि 'मध्याक्षरी' के समान ऊपर से नीचे तथा बायीं से दायीं ओर कुण्डलियों के बीच में वर्ण इस प्रकार लिखे जायँ कि क्रमशः 'कृष्ण कन्हइया' तथा 'निरत करइया' चतुरर रूप में परस्पर 'क' को केन्द्र बनाकर स्पष्ट हों। इस लेखन में छन्द की योजना का भी महत्त्व तब होता जब इन वर्णों से बनने वाले टुकड़ों में समान वर्ण होते पर ऐसा कुछ नहीं है। फलतः प्रस्तुत न्यास में कविकौशल का पूर्ण अभाव है।[२]

रामसुन्दरदास रचित 'मयूरबन्ध' की न्यासविधि न तो 'प्रबीनसागर' की न्यास-विधि से मिलती है और न ही 'चित्रचन्द्रिका' में नियोजित 'मयूरबन्ध' से इसकी कोई निकटता है।[3] प्रस्तुत चित्र में दो दोहों का न्यास किया गया है, प्रथम दोहे का आरम्भ मयूर के पंख में एक-एक वर्ण के न्यास से होता है। इस प्रकार धब्बों की दो समानान्तर पंक्तियों में दोहे के पूर्वार्द्ध के वर्ण लिखे जाते हैं, उत्तरार्द्ध के वर्ण ऋजुगति से गले से आरम्भ होकर पक्षमूल तक न्यस्त होते हैं। चित्र में असल न्यास इसी दोहे का है। दूसरे दोहे के पूर्वार्द्ध का न्यास ऋजुगति से मयूर की चोंच में पड़ी सुमरनी के दानों में किया गया है तथा उत्तरार्द्ध को आँख की दोनों पलकों और पीठ पर लिखा गया है। इस बन्ध में चित्रत्व केवल पंख में न्यस्त प्रथम दोहे के पूर्वार्द्ध में है, जिसके उद्धार के लिये पाठ की गति 'गोमूत्रिका' की होती है। अन्य सारे न्यास ऋजुगति से होने के कारण अत्यन्त सरल हैं।

पुस्तक में 'साँकलबन्ध' तथा 'वेणुबन्ध' के जो चित्र तथा न्यास दिये गये हैं उनमें भी चमत्कार बहुत अधिक नहीं है।[४] 'वेणुबन्ध' के अन्तर्गत एक वंशी के चित्र में छिद्रों के स्थान पर 'सा' 'रे' 'ग' 'म' 'प' 'ध' 'नी' 'सा' अक्षर लिखे गये हैं। छन्द को इस प्रकार यहाँ लिखा गया है कि प्रत्येक अयुग्म चरण का अन्तिम वर्ण तथा प्रत्येक युग्म चरण का प्रथम वर्ण क्रमशः वेणु में ऊपर से नीचे की ओर लिखे जायँ। किन्तु चूँकि छन्द को चित्र से बाहर लिखा गया है अतः इस बन्ध का कोई महत्त्व नहीं। बन्धचित्र में यह अनिवार्य

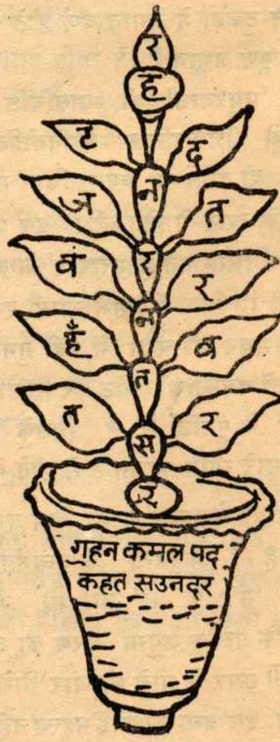
१. पुस्तक की चित्रसंख्या १४
२. उपरिवत् १५
३. उपरिवत् १८
४. पुस्तक की चित्रसंख्या १९ तथा २०

है कि छन्द का न्यास चित्र में ही हो। 'साँकल बन्ध' में वृत्ताकार कड़ियों में छन्द के चरणों को प्रति शृंखला एक चरण की रीति से लिखा गया है। दो कड़ियों में परस्पर कटने के स्थान दो हैं अतः इन उभयनिष्ठ स्थानों में लिखे दोनों वर्ण भी छन्द के दोनों चरणों में, जिनका न्यास इन कड़ियों में होता है, उभयनिष्ठ होंगे। इस प्रकार छन्द के प्रथम और द्वितीय चरणों में दो वर्ण उभयनिष्ठ होंगे, पुनः द्वितीय तथा तृतीय चरणों में भी दो वर्ण उभयनिष्ठ होंगे, और यह क्रम आगे भी चलता रहेगा।

चित्र संख्या-६६

न्यास का छन्द

रस सरसत सत जब तहँ तन तर
नवतर रत रज रननद नटहर।
रह नर नत सर रसत नरन हर
गहत कमल पद कहत सउनदर।



वृक्ष व्यूह बन्ध

'वृक्षव्यूहबन्ध' के नाम से जो उपर्युक्त चित्र इस पुस्तक में है उसका न्यास उत्कृष्ट कोटि का दीख पड़ता है। न्यास कवि का अपना है, इसके पूर्व के चित्रकवियों में इस न्यास का प्रयोग

नहीं मिलता। चित्र का आकार एक गमले में छोटे पौधे का है जिसके बीच के डंठल के दोनों ओर पाँच-पाँच पत्तियाँ हैं तथा ऊपर चोटी पर एक कली और एक पत्ती। जड़ से आरम्भ करके डंठल में पत्तियों के उद्‌गमस्थान तथा पत्तियों में छन्द के वर्णों का न्यास किया गया है। दो दोहे प्रस्तुत चित्र में न्यस्त हैं और ये दोनों ही दोहे 'अमात्रिक' हैं। न्यास का आरम्भ पौधे की जड़से होता है तथा पत्ती की जड़ में पहुँचता है फिर वहाँ से दायीं पत्ती, पुनः मूल, पुनः बायीं पत्ती, इसके बाद अगला पल्लवमूल, पुनः दायीं पत्ती, पुनः मूल, पुनः बायीं पत्ती, इसी क्रम से अन्तिम दोनों वर्णों का न्यास कली तथा चोटी की पत्ती में किया गया है। उद्धार में प्रथम दोहे का उद्धार न्यासक्रम से ही होता है किन्तु दूसरे दोहे का उद्धार पल्लवमूलों तथा कली और चोटी की पत्ती में लिखित वर्णों के गत तथा आगत पाठ से होता है। दोहे के शेष अंश का न्यास गमले की पेंदी में किया गया है। इस प्रकार प्रस्तुत चित्रबन्ध में न्यास की सारी उत्कृष्टता वर्तमान है।[1]

इन बन्धों के उपरान्त 'रत्नहारबन्ध' में भी न्यास कवि की अपनी कल्पना का ही प्रतिफलन है।[2] प्रस्तुत बन्ध में जिस कवित्त का न्यास किया गया है उसकी रचना 'गुप्तचित्र' की विधि से हुई है। प्रत्येक चरण का हरेक चौथा वर्ण इस प्रकार नियोजित है कि चारों चरणों को ऊपर नीचे लिखकर केवल इन्हीं वर्णों को ऊपर-नीचे पढ़ा जाय तो कविपरिचय निःसृत होता है।[3] स्पष्ट है कि भले ही इस छन्द का न्यास इस बन्ध में किया गया है, पर यह 'गुप्तचित्र' के अन्तर्गत 'मध्याक्षरी क्रम' में ही रचित है।

आगे के बन्धों में 'मत्स्य' तथा 'नाराच बन्धों' का उल्लेख प्रस्तुत स्थल पर आवश्यक है। इन बन्धों की न्यासपद्धति अत्यन्त सीधी है। 'मत्स्यबन्ध' का कोई अन्य चित्र हिन्दी में प्राप्त नहीं होता अतः यही इस बन्ध की प्रथम योजना कही जा सकती है। मछली के एक चित्र में मुँह से आरम्भ करके न्यास के दोहे के प्रथम चरण के वर्णों को दायें किनारे-किनारे लिखकर पूछ तक आते हैं। इसी प्रकार दोहे के तृतीय चरण के वर्णों को मछली के मुँह से आरम्भ कर बाँये किनारे-किनारे पूछ तक लिखा जाता है। दोहे के द्वितीय तथा चतुर्थ चरणों की प्राप्ति क्रमशः इन्हीं प्रथम तथा तृतीय चरणों के वर्णों को पूछ से आरम्भ कर मुँह तक पढ़ते जाने से होती है। न्यास का प्रस्तुत दोहा 'अमात्रिक' के साथ ही 'गतागत' का उदाहरण भी उपस्थित करता है।[4] 'नाराच बन्ध' के अन्तर्गत वाण चढ़ाये हुए धनुषाकार चित्र में एक छन्द के तीन चरणों को इस प्रकार लिखा गया है कि प्रथम चरण धनुष के एक किनारे से आरम्भ होकर धनुष और वाण के मिलनस्थल पर समाप्त हो, द्वितीय

१. पुस्तक की चित्र संख्या ३५ तथा प्रस्तुत स्थल पर संलग्न चित्र संख्या ९९

२. पुस्तक की चित्र संख्या ३१

३. कवि परिचय है—"रामसुन्दर दास, सराफ, घड़ीसाज, मैनेजर सुन्दर कम्पनी।"

४. पुस्तक की चित्रसंख्या ४२

चरण भी इसी प्रकार दूसरे किनारे से आरम्भ होकर वहीं समाप्त हो तथा तीसरे चरण का न्यास बाणमूल से आरम्भ कर उपर्युक्त स्थल तक किया गया है। इस प्रकार छन्द के तीनों चरण एक ही स्थल पर समाप्त होते हैं और उस स्थल पर न्यस्त वर्ण तीनों में समान रूप से हैं। चूँकि चरणों की समाप्ति इस स्थल पर होती है अतः यह वर्ण निश्चय ही चरणों का अन्तिम वर्ण है। फलतः प्रस्तुत बन्ध पूर्णतः चमत्कार हीन है।[1] हिन्दी के छन्दों के सभी चरणों के अन्तिम वर्ण प्रायः समान ही होते हैं, फिर न्यास का महत्त्व ही क्या रह जाता है ?

इस क्रम में विवेच्य प्रस्तुत पुस्तक का अन्तिम बन्ध 'अलसी पुष्प बन्ध' है। प्रस्तुत बन्ध की योजना भी न तो संस्कृत में और न हिन्दी में ही हुई है। इस बन्ध में भी एक दोहे का ही न्यास है। यह दोहा वस्तुतः 'एकाक्षर वर्णचित्र' का है और इसे ही एक बन्ध का आकार दे दिया गया है। प्रस्तुत दोहे में केवल 'क' अक्षर का प्रयोग है। पुष्प के आकार के चित्र में कोश में 'क' लिखा गया है, और उसके दलों में दोहे में प्रयुक्त मात्राओं को। किन्तु इस बन्ध का चमत्कार इसके छन्द में है और वह 'एकाक्षर' का है,[2] जिसकी रचना दण्डी तथा माघ से ही मिलती है। बन्ध के रूप में इसका कोई महत्त्व नहीं है।

उपर्युक्त चित्रबन्धों के अतिरिक्त प्रस्तुत पुस्तक में अन्य जो भी चित्ररचनाएँ हैं उनमें किसी प्रकार की विशिष्टता नहीं है। उनमें से अधिकांश इस सीमा में आतीं भी नहीं। कवि का महत्त्व इन बन्धों में कतिपय नवीन रचनाओं में ही है। सम्पूर्ण पुस्तक को ध्यान से देखने पर लगता है कि कवि को न तो संस्कृत चित्रकाव्यों का परिचय है और न हिन्दी चित्रकाव्यों का अध्ययन। इतने सारे बन्धों में संस्कृत के अनुकूल एक भी बन्ध नहीं दीखते। हिन्दी में भी, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, केवल 'कपाट' और 'चक्रबन्ध' ही स्पष्टतः प्रचलित बन्धों के न्यास के अनुकूल हैं। इन बन्धों के नाम भी कवि ने अपनी ओर से दिये हैं। चित्रों के आकार भी प्राचीन चित्रों के आकारों से एकदम भिन्न हैं। अध्ययन के अभाव में ये चित्रबन्ध उत्कृष्ट नहीं बन पड़े हैं। यदि कवि ने प्राचीन कवियों की चित्ररचनाओं का अध्ययन ध्यान से किया होता तो 'प्रश्नोत्तर' की रचना भी वह अवश्य करता। फिर भी २०वीं शताब्दी के इस उपयोगितावादी युग में समाप्तप्राय इस विद्या को जीवित बनाये रखने की यह चेष्टा कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। यद्यपि यह भी निश्चित है कि आज के युग में इस प्रकार की रचनाओं के लिये कोई स्थान नहीं रह गया है।

१९६० ई० में ही महेशचन्द्र प्रसाद ने 'गाँधीभूषण' नामक एक अलंकार ग्रन्थ लिखकर प्रकाशित किया है, जिसके अन्तर्गत अलंकारों के उदाहरणस्वरूप दिये गये छन्दों में

१. पुस्तक की चित्र संख्या ४७

२. उपरिवत् ५३, न्यास का एकाक्षर छन्द निम्न है—

"काका काकी काक के, केकें कोकौं कूक।
को काको काकी कका, का काको कः कीक ॥"१४९॥ पृ० ९२

'महात्मागाँधी' के चरित्र का वर्णन है। शिवराज भूषण की पद्धति पर लिखे गये इस ग्रन्थ में भी 'चित्रालंकार' के उदाहरण में एक दोहे की रचना है जो 'विंशतिदलकमल' में न्यस्त हो सकता है।[1] दोहे की रचना संस्कृत के 'षोडशदल कमल' की पद्धति पर की गई है। इसके अतिरिक्त इस पुस्तक में और कुछ नहीं है। फलतः इस पुस्तक से 'चित्रकाव्य' के स्वरूप अथवा विकास, किसी क्षेत्र में कोई प्रकाश नहीं पड़ता है।

इन पुस्तकों के अतिरिक्त दो ऐसी पुस्तकें प्राप्त होती हैं जिनके रचनाकाल के सम्बन्ध में कुछ ज्ञात नहीं होता। अतः इन पुस्तकों का उल्लेख प्रस्तुत स्थल पर किया जा रहा है। इन पुस्तकों में प्रथम पुस्तक एक हस्तलेख है और काशी नागरी प्रचारिणी सभा के संग्रह में प्राप्य है।[2] यह एक संग्रह ग्रन्थ है जिसके अन्तर्गत केशव, रघुनाथ, मण्डन, देवराम, ताज, ब्रह्म, आलम, माधव, महाकवि, जगदीश, गंग आदि के छन्द संगृहीत हैं। इन कवियों में से लगभग आधे कवि के सम्बन्ध में ही इतिहास मुखर है अन्य कवियों का कोई उल्लेख नहीं प्राप्त होता। जिन कवियों का उल्लेख हमें मिलता है, वे प्रमुखतः विक्रम की १६वीं तथा १७वीं शती के हैं। चूँकि प्रस्तुत पुस्तक के आरम्भिक ६१ पत्र नहीं हैं, अतः संग्रहकर्ता का नाम, लिपितिथि अथवा संग्रहतिथि का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। ग्रन्थ के अन्त में 'चित्रकाव्य' के छन्द तथा चित्र हैं। इन छन्दों में केवल केशवदास के छन्द का ही पता लगता है, अन्य छन्दों के रचयिताओं का पता नहीं लगता। इसका कारण यह है कि 'चित्रकाव्य' के छन्द चूँकि एक निश्चित क्रम के अनुसार रचे गये होते हैं अतः कवि की छाप के लिये उसमें बहुत कम अवकाश रह जाता है। केशवदास रचित ये छन्द चूँकि बहुत अधिक प्रचलित हैं, अतः वे पकड़ में आ जाते हैं।

इस संग्रह के अन्तर्गत चित्ररचनाएँ प्रायः प्रचलित और सामान्य कोटि की हैं। पत्र संख्या ७४ से ७९ के बीच ये रचनाएँ संगृहीत हैं। इनमें 'बाईस दल कमलबन्ध', 'चतुरर-चक्र', 'पर्वत', 'धनुष', 'डमरू', 'कपाट', 'शतरंज' तथा 'हारबन्धों' के छन्द तथा न्यास हैं। 'बन्धचित्र' के इन सभी भेदों के न्यास सर्वाधिक प्रचलित विधि के अनुकूल हैं। 'गतिचित्र' के अन्तर्गत प्रस्तुत संग्रह में 'अश्वगति', 'सर्वतोभद्र', 'सर्वतोमुख' अथवा 'सर्वतोभद्र' का गोल चित्र (प्रस्तुत स्थल पर अण्डाकार है), 'त्रिपदी' तथा 'मन्त्रीगति' के छन्द हैं। इस प्रकार इस पुस्तक में केवल 'बन्धचित्र' तथा 'गतिचित्र' के उपर्युक्त भेदों की रचनाएँ हैं। इन चित्र-रचनाओं के छन्दों में संग्रहकर्ता ने 'अश्वगति' तथा 'सर्वतोभद्र' के छन्द केशवदास रचित रखे हैं। चूँकि ये रचनाएँ सामान्यतः प्रचलित चित्र की रचनाएँ हैं, अतः इनका कोई विशिष्ट स्थान 'चित्रकाव्य' के स्वरूप विकास में नहीं होता। किन्तु 'स्फुट संग्रह' नामक इस ग्रन्थ में

१. गाँधीभूषण, पृ० ३३, दोहा निम्न है—

"दिन-दिन छन-छन छीन तन, दीन खीन धनहीन।
शान मान घन रैन हन चैन लीन तन पीन।"

२. याज्ञिक संग्रह, ह० सं० ७१८

इनके संग्रह से यह संकेत तो मिलता ही है कि कवियों तथा काव्य रसिकों के बीच 'चित्र-काव्य' का क्या स्थान था ? इस दृष्टि से इस संग्रह का पर्याप्त महत्त्व है।

दूसरी पुस्तक देवी प्रसाद मिश्र रचित 'रामभक्ति विलास' है। यह पुस्तक यद्यपि प्रकाशित है,[1] किन्तु न तो इसमें रचनातिथि है और न प्रकाशनतिथि ही। हिन्दी साहित्य के विभिन्न इतिहासों में भी न लेखक के सम्बन्ध में कोई उल्लेख है और न पुस्तक के सम्बन्ध में ही। प्रस्तुत पुस्तक में केवल एक ही 'चतुर्दलपद्मबन्ध' की रचना हुई है। छन्द के साथ चित्र में उसका न्यास भी है। किन्तु इस छन्द का वर्णक्रम ऐसा है कि इसको 'चौकीबन्ध', 'सरोवरबन्ध', 'डमरूबन्ध' अथवा 'चौपड़बन्ध' में भी न्यस्त किया जा सकता है।[2] इस प्रकार प्रस्तुत पुस्तक का कोई स्थान 'चित्रकाव्य' के विकासक्रम में नहीं होता।

प्रस्तुत अध्याय में संस्कृत काव्यकृतियों के क्रम में उस अज्ञात नाम हस्तलेख का उल्लेख किया जा चुका है जिसमें संस्कृत तथा हिन्दी दोनों भाषाओं की चित्ररचनाएँ एक साथ हैं।[3] इन रचनाओं में 'चामरबन्ध' तथा 'छत्रबन्ध' के चित्र और न्यास हिन्दी में प्राप्त, इन बन्धों के अन्य चित्र अथवा न्यास से भिन्न हैं। किन्तु इस अन्तर से चित्र में कोई उत्कृष्टता नहीं आती। 'जालीबन्ध' तथा 'मुगतागृहदोहरा' के सम्बन्ध में कहा जा चुका है कि हिन्दी में अन्यत्र ये चित्र नहीं मिलते। 'समसेर बन्ध' भी हिन्दी अथवा संस्कृत में अन्यत्र प्राप्त नहीं होता। 'नागबन्ध' में संस्कृत की पद्धति अपनाई गई है तथा 'कालबन्ध' में संस्कृत के 'व्योमबन्ध' का अनुकरण है। अन्यबन्ध सामान्यतया प्रचलित हैं। प्रस्तुत हस्तलेख का महत्त्व प्रस्तुत क्रम में नवीन रचनाओं की दृष्टि से निर्विवाद है। विवशता यही है कि पुस्तक के रचयिता तथा रचनाकाल का कोई उल्लेख न होने से इसका विवेचन तथा मूल्यांकन उचित मात्रा में नहीं हो पाता।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि संस्कृत में जैन आचार्यों ने अपने लक्षण ग्रन्थों में भी उदाहरणस्वरूप चित्रकाव्य की, विशेष कर बन्धचित्र की प्रचुर रचनाएँ की हैं। संस्कृत काव्य में भारवि से प्रारम्भ होकर 'बन्धचित्र' की संख्याओं में निरन्तर वृद्धि होती रही ओर बाद में प्राचीन बन्धों की भी नवीन न्यासविधियाँ कल्पित हुई। इस प्रकार १६वीं-१७वीं शती में आकर बन्धों की संख्या इतनी हो गई कि किसी एक कवि

---

१. पुस्तक के मुखपृष्ठ पर लिखा है—"भागलपुर, व्यास प्रेस में छपा।"

२. छन्द निम्न है—

"सरद चंद्र सुशोभ आनन अमिय निशिदिन बरस।
सरव रण को करत छवि यह हृदय मन मम तरस॥
सरत करिकै नाम सुमिरत रूप जौं अस परस।
सरप पति जेहि सतत चाहत देवी दीजै दरस॥"

—पृ० ३३

३. द्रष्टव्य, प्रस्तुत अध्याय में संस्कृत काव्यकृतियों के विवेचन का अन्तिम भाग (चैतन्य पुस्तकालय, पटना में प्राप्य हस्तलेख)।

के लिये सभी की रचना असम्भव थी। किन्तु इन बन्धों के न्यास में संख्यावृद्धि के साथ ही अधिक ऋजुता आती गई और उनकी उत्कृष्टता का ह्रास होने लगा। बन्धेतर चित्रों की रचना काव्य में प्रायः स्थिर रही। विवेचन के क्रम में हमने देखा है कि 'वर्णचित्र' में 'द्व्यक्षर' तथा 'एकाक्षरपाद', 'गतिचित्र' में 'गोमूत्रिका', 'सर्वतोभद्र' तथा 'प्रतिलोमानुलोम', 'स्थानचित्र' में 'निरोष्ठ्य' तथा 'गूढ़' में 'गूढ़ चतुर्थ' की अधिक रचनाएँ की गईं। अन्य चित्रों की रचनाएँ किंचित्-क्वचित् ही हुई। चित्र के क्रम में 'प्रश्नोत्तर' की रचनाएँ यद्यपि अपेक्षाकृत कम कवियों ने कीं, किन्तु धर्मदास, देवेश्वर, अजितसेन तथा विश्वेश्वर ने इसका बहुत अधिक विस्तार से विवेचन किया और इसके बहुत अधिक भेदों के छन्द रचे। इस प्रकार आचार्यों द्वारा विवेचित 'चित्र' के सभी भेदों की रचनाएँ काव्यकृतियों में प्रचलित नहीं रहीं। यह बात और है कि रुद्रट ने 'चित्र' के उदाहरणों की रचना भी स्वयं ही की।

हिन्दी चित्रकवियों में रीतिकाल के पूर्व केवल 'भाषाचित्र' की रचनाएँ ही मिलती हैं किन्तु वास्तविक रूप में 'चित्रकाव्य' का प्रारम्भ केशवदास से होता है। हमने देखा है कि बन्धचित्रों के साथ ही 'वर्ण', 'स्थान', 'स्वर' तथा 'गतिचित्रों' के अतिरिक्त 'प्रश्नोत्तर' के कतिपय भेदों की रचना भी हिन्दी कवियों ने की है। जहाँ तक 'बन्धचित्र' का प्रश्न है हमारे सम्मुख स्पष्ट हो चुका है कि हिन्दी के बन्धों में ऋजुता अधिक है फलतः उनके न्यास में उस उत्कृष्टता का अभाव है जो हमें संस्कृत में प्राप्त होती है। बन्धेतर चित्रों की रचना प्रायः सीमित है। उनकी पद्धति भी सामान्य है। 'प्रश्नोत्तर' के भी केवल दस-बारह भेदों की ही रचना हिन्दी में हुई है और उनमें भी अन्तर नहीं होता। चूँकि आधुनिक काल में 'चित्रकाव्य' का कोई महत्त्व नहीं रह गया है, फलतः रीतिकाल या बाद के 'चित्रकाव्य' के ग्रन्थों का प्रकाशन तथा अध्ययन बिलकुल नहीं किया गया है। ये रचनाएँ हस्तलेखों के रूप में ही बिखरी हैं। भारतेन्दुकाल में अंग्रेजी के प्रवेश तथा गद्य के प्रसार से एक ओर तो 'चित्रकाव्य' में परम्परा से प्रचलित चित्रों के बदले केवल 'आद्यक्षरी' को ही प्रधानता मिलती है तथा दूसरी ओर इस प्रकार की रचनाओं का प्रचलन भी कम हो जाता है। फिर भी अत्यन्त उपेक्षित तथा महत्त्वहीन रूप में ही पर इसकी रचनाएँ आधुनिक कालतक होती रही हैं, गोकि आज के साहित्य में इनके लिये कोई स्थान नहीं है।

षष्ठ अध्याय

चित्रकाव्य : साहित्यिक महत्त्व

पिछले अध्यायों के अपने विवेचन में हमने देखा है कि संस्कृत के परवर्ती आचार्यों ने चित्र को कष्टकाव्य[1] अथवा गडुभूत[2] कहकर तथा रस का परिपन्थी बताकर यद्यपि अलंकार भी नहीं मानना चाहा है और अधमाधम काव्य[3] की संज्ञा देकर इसकी उपेक्षा की है, किन्तु काव्यरचना के क्षेत्र में ईसवी सन् की छठी शताब्दी से अद्यावधि इसकी रचना पर्याप्त मात्रा में होती रही है। इस प्रकार संस्कृत तथा हिन्दी साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण अंश 'चित्रकाव्य' की रचनाओं से भरा है। हमने देखा है कि 'शाङ्गर्धर पद्धति' जैसे प्राचीन संग्रह ग्रन्थ से लेकर 'सुभाषित रत्नाकर' तथा 'सुभाषित रत्नभाण्डागार' जैसे हाल के संकलन में भी चित्ररचनाओं से युक्त एक अध्याय अवश्य है। लक्षण विवेचन के अन्तर्गत यह भी स्पष्ट किया जा चुका है कि दण्डी, रुद्रट, अग्निपुराणकार, भोज जैसे पूर्ववर्ती तथा वाग्भट (द्वय), अजितसेन, कृष्णकवि जैसे उत्तरवर्ती काव्याचार्यों ने चित्र-रचनाओं का विस्तार से विवेचन किया है। धर्मदास, देवेश्वर, विश्वेश्वर पण्डित जैसे लेखकों की पोथियाँ, जो काव्यशिक्षा की दृष्टि से लिखी गई हैं, प्रमुखतः चित्ररचनाओं के ही कतिपय भेदों का विवेचन करती हैं। 'दशकुमार चरित', 'किरातार्जुनीय', 'शिशुपालवध', 'कप्फिणाभ्युदय', 'हरविजय', 'धर्मशर्माभ्युदय', 'सुरथोत्सव' जैसे महाकाव्यों में एक अथवा एकाधिक सर्ग अवश्य ऐसे हैं जिनके अन्तर्गत चित्ररचनाओं से युक्त श्लोक हैं तथा 'देवीशतक', 'ईश्वर शतक', 'पादुकासहस्र', 'लक्ष्मीसहस्र' जैसे प्रसिद्ध मुक्तक ग्रन्थों में भी 'चित्र' की प्रचुर रचनाएँ की गई हैं। निश्चित है कि संस्कृत के इन लब्धप्रतिष्ठ महाकवियों ने इन रचनाओं में तथा उपर्युक्त महान् आचार्यों ने इनके विवेचन में समय का अपव्यय नहीं किया है। हेमचन्द्र जैसे आचार्य जब महाकाव्य के लक्षणनिरूपण के क्रम में एक ऐसे सर्ग का होना भी अनिवार्य बतलाते हैं जिसमें 'दुष्कर चित्रादि' की योजना हो[4], तथा वाग्भट् (द्वितीय)

१. "कष्टकाव्यमेतदिति दिङ्मात्रं प्रदर्श्यते।"

मम्मट, काव्यप्रकाश, उल्लास ९, कारिका ८५ की वृत्ति

२. "काव्यान्तर्गडुभूततया तु नेह प्रपञ्च्यते।"

विश्वनाथ, सा० द०, परि १०, चित्रालंकार की वृत्ति

३. "यद्यपि यत्रार्थचमत्कृतिसामान्यशून्याशब्दचमत्कृतिस्तपञ्चम मध्यमाधममपि काव्यविधासु गणयितु-मुचितंयथेकाक्षरपदार्धावृत्ति यमक पद्मबन्धादि · · · · "

—रसगङ्गाधर, पृ० ३४

४. काव्यानुशासन, अ० ८, सूत्र ६ अथवा कारिका २०१ की वृत्ति—

"— — — शब्दार्थवैचित्र्योपेतं महाकाव्यम्। शब्द वैचित्र्यं यथा — — —
— — — दुष्कर चित्रादिसर्गत्वम् — — — — — — — — — —।"

भी अपने 'काव्यानुशसन' में उसका समर्थन करते हैं[1] तो निश्चय ही उनका यह कथन निरर्थक नहीं माना जा सकता। 'चित्रकाव्य' के इस महत्त्व को समझने के लिये हमें तत्कालीन कविसमाज तथा पाठकों की रुचि और स्तर पर विचार करना होगा।

संस्कृत के प्राचीन कवियों का जीवन कैसा होता था, उसे कितनी सुविधाएँ प्राप्त थीं तथा वह किस प्रकार कालयापन करता था, इसका आभास हमें राजशेखर की 'काव्य मीमांसा' से मिलता है। कविचर्या के अन्तर्गत राजशेखर ने एक आदर्श कवि के उपयुक्त वातावरण तथा उसके कालयापन की व्यवस्था दी है। अपने विवेचन के अन्तर्गत उसने बतलाया है कि कवि को वह सारी सामग्री सदा सुलभ रहनी चाहिये जो काव्यरचना में सहायक होती है।[2] उसका घर इस प्रकार सज्जित हो तथा उसकी गृहवाटिका में वे सारी प्राकृतिक वस्तुएँ अथवा उनकी प्रतिकृति उपलब्ध हों, जिनसे कवि को काव्यरचना में प्रेरणा मिले।[3] उसके सेवक अथवा उसके घर की दासियाँ तथा उसकी रचनाओं की प्रतिलिपि करनेवाले लेखक सभी चतुर, प्रवीण तथा अपने-अपने कार्य में पटु हों।[4]

ऐसे परिवेश में निवास करनेवाले कवि के कालयापन की व्यवस्था भी राजशेखर ने दी है। उनके अनुसार कवि को रात्रि के चतुर्थ प्रहर में शय्या छोड़ देनी चाहिये। नित्यक्रिया, सन्ध्यापूजा तथा सरस्वती स्तोत्र के पाठ के उपरान्त उसे काव्य की विद्याओं तथा उपविद्याओं का अभ्यास करना चाहिये। दिन के दूसरे प्रहर में काव्यरचना में प्रवृत्त होना चाहिये तथा मध्याह्न के कुछ पूर्व ही स्नान तथा अनुकूल भोजन कर पुनः काव्य-गोष्ठी में सम्मिलित होकर 'प्रश्नोत्तर', 'समस्या', 'मातृकाभ्यास' तथा 'चित्रकाव्य' की रचनाएँ करनी चाहिये। दिन के चतुर्थ प्रहर में प्रातः काल लिखी रचनाओं को पुनः देखना चाहिये तथा उनके दोषों को दूर कर भली भाँति शुद्ध कर लेना चाहिये। रात्रि के प्रथम

---

१. काव्यानुशासन, अध्याय १, पृ० १५—
काव्य के भेद से सम्बद्ध सूत्र की वृत्ति में महाकाव्य के लिये एक सर्ग का चित्रकाव्य से युक्त होना भी बतलाया गया है— "— — दुष्करचित्राद्येकसर्गाङ्कितम् — —"

२. "तस्य सम्पुटिका सफलकखटिका समुद्गकः, सलेखनीकमषीभाजनानि, ताडिपत्राणि भूर्जत्वचो वा, सलोहकण्टकानि तालदलानि, सुसम्मृष्टाभित्तयः, सततसन्निहिताः स्युः।"
—काव्यमीमांसा, अध्या० १०, पृ० १२३-२४ (रा० भा० प०)

३. "तस्यभवनं सुसम्मृष्टं, ऋतुषट्कोचित विविध स्थानम्, अनेक तरुमूलकल्पितापाश्रयवृक्षवाटिकं, सक्रीडापर्वतकं, सदीर्घिकापुष्करिणीकं, ससरित्समुद्रावर्त्तकं, सकुल्याप्रवाहं, सबर्हिणहरिणहारीतं, ससारसचक्रवाकहंसं, सचकोर क्रौञ्चकुररशुकसारिकं, घर्मक्लान्ति चौरं, सभूमिधारागृहयन्त्रलता-मण्डपकं, सदोलाप्रेंखं च स्यात्।" —उपरिवत्, पृ० १२२

४. "काव्याभिनिवेशखिन्नस्य मनसस्तद्विनिर्वेदच्छेदायाज्ञामूकपरिजनं विजनं वा तस्य स्थानम्। अपभ्रंशभाषणप्रवणः परिचारकवर्गः, समागधभाषाभिनिवेशिन्यः परिचारिकाः। प्राकृतसंस्कृत भाषाविद आन्तःपुरिका, मित्राणि चास्य सर्वभाषाविन्दिभवेयुः सदः संस्कारविशुद्धयर्थं सर्वभाषाकुशलः, शीघ्रवाक्, चार्वक्षरः, इंगिताकारवेदी, नानालिपिज्ञः, कविः, लाक्षणिकश्च लेखकः स्यात्।"
—उपरिवत्, पृ० १२२-१२३

प्रहर में शुद्ध की हुई इन रचनाओं को विधिवत् लिख लेना चाहिये। पुनः द्वितीय तथा तृतीय प्रहर में शयन करना चाहिये।[1]

राजशेखर वर्णित प्रस्तुत कविचर्या से स्पष्ट है कि आदर्श कवियों के लिये 'प्रश्नोत्तर', 'समस्या' तथा 'चित्ररचनाओं' का अभ्यास तथा नियोजन एक प्रकार से अनिवार्य था। चित्ररचनाओं के लिये राजशेखर ने 'चित्रा योगा' शब्द का प्रयोग किया है।[2] इस स्थल पर यह भी ध्यातव्य है कि राजशेखर ने 'काव्य मीमांसा' के प्रारम्भ में काव्यविद्या के जिन अठारह भागों तथा उनके प्रणेताओं के नाम दिये हैं उनमें भी 'चित्र' का स्वतन्त्र स्थान है जिसके प्रणेता 'चित्रांगद' हैं।[3] इसके अतिरिक्त 'वैनोदिक' नामक एक अन्य काव्यविद्या का उल्लेख भी इस क्रम में हुआ है जिसका प्रणेता 'कामदेव' को कहा गया है।[4] बहुत सम्भव है कि 'चित्रयोग' से सम्बन्धित रचनाओं का विवेचन 'चित्र' के अन्तर्गत किया गया हो और 'प्रश्नोत्तर', 'समस्या', 'मातृकाभ्यास' आदि को 'वैनोदिक' की संज्ञा मिली हो। द्वितीय अध्याय में स्पष्ट किया जा चुका है कि रुद्रट ने अपने चित्रविवेचन के अन्तर्गत 'च्युत', 'प्रहेलिका', 'गूढ़', तथा 'प्रश्नोत्तरादि' को क्रीड़ामात्र के उपयुक्त कहा है।[5] साथ ही काव्यालंकार में पंचम अध्याय के प्रारम्भ में दी गई चित्ररचनाओं की सूची में इनको सम्मिलित नहीं किया गया है।[6]

इस प्रकार स्पष्टतः रुद्रट ने 'च्युतकादि' उपर्युक्त रचनाओं को 'चित्र' का गौण भेद माना है। बहुत सम्भव है 'प्रश्नोत्तरादि' के आदि से रुद्रट का तात्पर्य 'समस्या' से हो जिसका विवेचन उन्होंने नहीं किया है। दण्डी ने भी 'प्रहेलिका' का विवेचन 'दुष्कर' से

---

१. स प्रातरुत्थाय कृतसन्ध्यावरिवस्यः सारस्वतंसूक्तमाधीयीत। ततो विद्यावसथे यथासुखमासीनः काव्यस्य विद्या उपविद्याश्चानुशीलयेदाप्रहरात्। — — — द्वितीयेकाव्यक्रियाम्। उपमध्याह्नं स्नायादविरुद्धं भुञ्जीत च। भोजनान्ते काव्यगोष्ठीं प्रवर्त्तयेत्। कदाचिच्च प्रश्नोत्तराणि भिन्दीत। काव्यसमस्याधारणा, मातृकाभ्यासः चित्रायोगा इत्यायामत्रयम्।

चतुर्थ एकाकिनः परिमित परिषदो वा पूर्वाह्नभागविहितस्य काव्यस्य परीक्षा। — — — सायं सन्ध्यामुपासीत सरस्वतीं च। ततो दिवाविहित परीक्षितस्याभिलेखनमाप्रदोषात्। — — — द्वितीयतृतीयौ साधु शयीत। — — — चतुर्थे सप्रयत्नं प्रतिबुध्येत।

—उपरिवत्, पृ० १२७-१२८

२. उपरिवत्, "चित्रायोगा इत्यायामत्रयम्।"

३. काव्यमीमांसा, अध्याय १, पृ० ३-४

"— — — — चित्रं चित्रांगदः — — — — वैनोदिकं कामदेवः — —।"

४. उपरिवत्

५. "मात्राबिन्दुच्युतके प्रहेलिका कारक क्रिया गूढ़े।
प्रश्नोत्तरादि चान्यत्क्रीडामात्रोपयोगमिदम्॥"

—काव्यालंकार' अध्याय ५, श्लोक २४

६. काव्यालंकार, अध्याय ५, श्लोक २-३

अलग ही किया है और उसे क्रीडागोष्ठी के विनोद के उपयुक्त बताया है।[1] हेमचन्द्र ने भी "गूढ़ादोत्यादिपदेन प्रश्नोत्तर प्रहेलिका दुर्वचाकादि ग्रहः। एतच्च कष्टकाव्यत्वात्क्रीडामात्रफलत्वाच्च न काव्यरूपतां दधातीति न प्रतन्यते"[2] कहकर दण्डी और रुद्रट का ही समर्थन किया है। इस प्रकार 'वैनोदिक' तथा 'चित्र' की सीमाएँ लगभग स्पष्ट हो जाती हैं यद्यपि दोनों के उद्देश्य प्रायः समान हैं। चित्ररचनाओं के इन दोनों वर्गों का अन्तर 'अग्निपुराण' में और अधिक स्पष्ट रूप से दीख पड़ता है जहाँ लेखक ने 'वर्ण' 'स्थान', 'स्वर', 'गति' तथा 'आकार चित्र' की रचनाओं को 'दुष्कर' के अन्तर्गत रखा है तथा 'चित्र' के अन्तर्गत 'प्रश्नोत्तर', 'प्रहेलिका', 'गुप्त', 'च्युत' 'दत्त', 'च्युतदत्त' तथा 'समस्या' का विवेचन किया है।[3] किन्तु यहाँ इतना अवश्य है कि इन गौण अथवा 'वैनोदिक' के अन्तर्गत आनेवाली रचनाओं को ही 'चित्र' की संज्ञा दी गई है। आगे चलकर ये सारी रचनाएँ 'चित्र' के अन्तर्गत ही आकलित हुईं।

राजशेखर द्वारा वर्णित उपर्युक्त कविचर्या से इस सम्बन्ध में दो महत्त्वपूर्ण बातें ज्ञात होती हैं, एक तो यह कि 'चित्रकाव्य' की इन रचनाओं का अभ्यास यद्यपि कवि के लिये अनिवार्य था किन्तु उनका उपयोग भोजनोपरान्त की विनोदगोष्ठियों में होता था। दूसरी यह कि काव्यरचना का असल समय राजशेखर के अनुसार भोजन के पूर्व तथा काव्यविद्याओं के अभ्यास के बाद था। निश्चय ही इस काल में रचा जानेवाला काव्य उत्तम कोटि का होता होगा जिसमें चित्ररचनाओं के लिये अवश्य स्थान नहीं है। यों महाकाव्य के अन्तर्गत रचित चित्रश्लोकों पर यह बात लागू नहीं होती।

यह तो हुई कविचर्या की बात, किन्तु 'चित्रकाव्य' के वास्तविक महत्त्व को जानने के लिये हमें इस पर ध्यान देना होगा कि कवि अपने काव्य की रचना क्यों और किसके लिये करता था? काव्यशास्त्र के ग्रन्थों में काव्यरचना के जो प्रयोजन बताये गये हैं, उनके अनुसार काव्य की रचना धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष—चतुर्वर्ग की प्राप्ति[4] अथवा यश, अर्थ, व्यवहार-ज्ञान, अमंगल-नाश, सहज-मुक्ति अथवा कान्तासम्मित उपदेश के लिये की

---

१. क्रीडागोष्ठी विनोदेषु तज्ज्ञैराकीर्णमन्त्रणे।
परव्यामोहने चापि सोपयोगाः प्रहेलिकाः॥"
—काव्यादर्श, परि ३, श्लोक ९७

२. काव्यानुशासन, कारिका १०८ की वृत्ति का अन्त

३. अग्निपुराण, अध्याय ३४३, श्लोक ३२ से ३६ तथा श्लोक २२-२३; दुष्कर के भेदों के नाम अग्निपुराण में नियम, विदर्भ तथा बन्ध हैं।

नियम के तीन भेद हैं, वर्ण, स्थान तथा स्वर; विदर्भ के अन्तर्गत प्रतिलोमानुलोम है और बन्ध स्पष्ट ही है। विस्तृत विवेचन के लिये द्रष्टव्य द्वितीय अध्याय में अग्निपुराण का विवेचन, पृ० २२

४. "धर्मार्थकाममोक्षेसु वैचक्षण्यंकलासुच।
करोति कीर्ति प्रीतिं च साधुकाव्यनिबन्धनाम्॥"
—भामह, काव्यालंकार

"चतुर्वर्ग फलप्राप्तिः सुखादल्पधियामपि।
काव्यादेव यतस्तेन तत्स्वरूपं निरूप्यते॥"
—विश्वनाथ, सा० द०, परि १, श्लोक २

जाती थी।[१] तात्पर्य यह कि जीवन की समस्त इहलौकिक अथवा पारलौकिक आवश्यकताओं की पूर्ति काव्यरचना का उद्देश्य था। काव्य के ये प्रयोजन सिद्धान्त रूप में तो सही हैं किन्तु तत्कालीन कवियों के सम्बन्ध में उपलब्ध वर्णनों के आधार पर हमें सन्देह नहीं रह जाता कि व्यावहारिक रूप में 'यश' तथा 'अर्थ' ही काव्यरचना के प्रमुख उद्देश्य थे।

उस समय इन उद्देश्यों की सिद्धि का एक मात्र स्थान राजसभा थी। तत्कालीन राजा स्वयं भी विद्वान, कवि अथवा सहृदय होते थे और अपनी सभाओं में बड़े-बड़े कविरत्नों को आश्रय प्रदान करते थे। इस तथ्य से हम भलीभाँति परिचित हैं कि संस्कृत के लगभग सभी प्रमुख काव्याचार्य तथा महाकवि किसी न किसी राजसभा से सम्बद्ध अवश्य थे जिनमें काश्मीर, कन्नौज, गुजरात की राजसभाएँ प्रमुख हैं। राजसभाओं में स्थान पाने के लिये कवि को कम परिश्रम नहीं करना पड़ता होगा। सर्वप्रथम यह आवश्यक होगा कि उसकी कविता राजा की रुचि के अनुकूल हो, पुनः सभासदों की रुचि के अनुकूल भी उनका होना अनिवार्य होगा। उत्तम काव्य का आनन्द शान्तचित्त से अथवा व्यक्तिगत रूप से ही उठाया जा सकता है। राजसभा के विशाल जनसमूह के बीच निश्चय ही मुक्तक से उत्पन्न क्षणिक चमत्कार का जितना प्रभाव होता होगा, महाकाव्य की रसोत्पत्ति का नहीं। कवियों को किस प्रकार की कविता करनी चाहिये इस सम्बन्ध में राजशेखर ने बड़े ही स्पष्ट शब्दों में कहा है कि काव्यरचना के पूर्व कविविशेष को निश्चित कर लेना चाहिये कि कितना उसका अध्ययन है, किस भाषा पर उसका अधिकार है, लोक तथा राजा (उसके स्वामी) की रुचि किस ओर है, किस प्रकार की गोष्ठी वह (राजा) पसन्द करता है, किस विषय में शिक्षित है तथा किस ओर उसका मन अधिक आकृष्ट होता है। इन बातों का निश्चय कर ही उसे इनके अनुकूल काव्य की रचना करनी चाहिये।[२] यहाँ 'लोकरुचि' से राजशेखर का तात्पर्य सभासदों से है, सामान्य जनता का स्थान उस समय साहित्य के क्षेत्र में था ही कहाँ?

सभासदों की रुचि का अनुमान हम बाण की 'कादम्बरी' में राजा शूद्रक तथा राजा तारापीड़ की राजसभाओं के वर्णन से कर सकते हैं। स्वयं राजाओं की रुचि का भी बहुत कुछ पता बाण के वर्णनों से लगता है। राजसभा में राजा की अनुपस्थिति में बड़ा ही कोलाहल रहता था, कोई शतरंज खेलता था, कोई नर्तकियों से बातचीत करने में व्यस्त

१. "काव्यं यशसे ऽ र्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मितयोपदेशयुजे॥"
मम्मट, काव्य प्रकाश, उल्लास १, श्लोक २

२. "कविः प्रथममात्मानमेव कल्पयेत्। कियान्मे संस्कारः, क्वभाषाविषये शक्तो ऽस्मि, किरुचिर्लोकः परिवृढो वा, कीदृशि गोष्ठ्यां बिनीतः, क्वास्य बाचेतः संसजत इति बुद्ध्वा भाषाविशेषमाश्रयेत"
—काव्यमीमांसा, अध्याय १०, कविचर्या

था, कोई 'मात्रादिच्युतक', 'बिन्दुमती', 'प्रहेलिका' आदि की रचना करता था।[1] शूद्रक के सम्बन्ध में भी बाण ने कहा है कि वह 'बिन्दुमती', 'प्रहेलिका' आदि में मन लगाया करता था।[2] तात्पर्य यह कि तत्कालीन राजसभा के सभासद 'प्रश्नोत्तर', 'समस्या', 'चित्र' आदि काव्यविनोदों में पर्याप्त रुचि रखते थे। इस प्रकार की राजसभाओं में प्रतिष्ठा और सम्मान पाने के लिये निश्चय ही कवियों के लिये इन विद्याओं में पारंगत होना आवश्यक था, अन्यथा क्षणविशेष में राजा अथवा सभासदों की माँग की पूर्त्ति में असमर्थ होने से अपना स्थान खो देने का उन्हें पूर्ण भय रहता होगा।

इतना ही नहीं वरन् राजशेखर ने राजचर्या के अन्तर्गत राजसभा का जैसा वर्णन किया है उससे पता चलता है कि राजाओं के दरबार में अनेक भाषाओं के अनेक कवि रहते थे और सभा में उनके बैठने का स्थान भी अलग-अलग था।[3] अवश्य ही इन कवियों में सदा ही प्रतिस्पर्द्धा की भावना रहती होगी और ये सर्वदा एक दूसरे को काव्यरचना के क्षेत्र में नीचा दिखाकर राजा तथा सभा की दृष्टि में अधिक ऊँचा उठ जाने की चेष्टा में रहते होंगे। इसकी पुष्टि राजसभा से सम्बद्ध उन अनेक किम्बदन्तियों से होती है जिनमें बहुधा ही कोई अन्य कवि अपनी नवीन रचना को उपस्थित कर राजकवि को नीचा दिखाने की चेष्टा करता है। इस सम्बन्ध में गुजरात के राजा वरधवल के प्रधान मन्त्री वस्तुपाल की सभा के हरिहर तथा मदन नामक दो कवियों की आपसी होड़ की कथा अत्यन्त प्रसिद्ध है।[4] इस कथा से इतना स्पष्टतः सूचित होता है कि किस प्रकार कवियों को किसी भी विषय पर काव्यरचना करने के लिये सदा तत्पर रहना आवश्यक था तथा दरबार में सफलता प्राप्त करने के लिये उनमें वाग्वैदग्ध्य तथा प्रत्युत्पन्नमतित्व का पूर्ण मात्रा में होना अनिवार्य था। दरबार में लम्बी कविता सुनाने का न अवकाश होता था और न अवसर ही। आज भी कविसम्मेलनों में वही कवि वाहवाही लूटता है जो अपने पाठ

---

१. द्रष्टव्य, कादम्बरी में राजा तारापीड़ की राजसभा का वर्णन चन्द्रापीड़ के विद्यालय से आगमन के अवसर पर—

"………प्रसारयता दुरोदर क्रीडामभ्यस्यताष्टापदव्यापारमास्फालयता परिवादिनीमालिखता चित्रफलके भूमिपाल प्रतिबिम्बमाबध्नता काव्यगोष्ठीमातन्वता परिहास कथां विन्दता बिन्दुमतींचिन्तयता प्रहेलिकां भावयता नरपतिकृतकाव्य सुभाषितानि पठता द्विपदीं गृह्णता कविगुणानुत्किरता पत्रभङ्गानालपता वारिविलासिनीजनमाकर्णयता वैतालिक गीतम्……" आदि।

२. द्रष्टव्य, कादम्बरी में राजा शूद्रक की दिनचर्या अथवा कालयापन का वर्णन।

३. "तस्य (राजासनस्य) चोत्तरतः संस्कृताः कवयो निविशेरन्। … … …· …पूर्वेण प्राकृताः कवयः ….. — …पश्चिमेनापभ्रंशिनः कवयः ….. ….. दक्षिणतो भूतभाषाकवयः ….. —।"

—काव्यमीमांसा, अ० १०, राजचर्या

४. द्रष्टव्य, "साहित्य का मर्म" : हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० १२–१३ तथा साहित्यशास्त्र, प्रथम खण्ड, बलदेव उपाध्याय, पृ० ३४४–३४५

की भंगिमा तथा उक्तिचमत्कार के द्वारा समूह को तत्क्षण प्रभावित कर पाता है। रसास्वादन के लिये समूह के पास अवकाश नहीं होता। लोग कविसम्मेलनों में मनोरंजन तथा विनोद का ही अधिक उद्देश्य लेकर जाते हैं।

इस प्रकार राजसभा में सम्मान प्राप्त करने तथा उसे बनाये रखने के लिये आशु-कवित्व तथा पर्याप्त अभ्यास की आवश्यकता थी ताकि किसी भी क्षण किसी विषय पर कवि श्लोकों की रचना कर सके। राजसभा में केवल कवि ही नहीं होते थे बल्कि पण्डित, भाट, गायक, मसखरा, इतिहासवेत्ता तथा पुराणों के ज्ञाता का भी स्थान था।[१] साथ ही समय-समय पर कविसभाओं का आयोजन भी होता था और कवियों की परीक्षाएँ भी होती थीं।[२] इसके अतिरिक्त किसी नवीन राजसभा में जाने पर वहाँ के पण्डित तथा कविगणों का सामना भी करना पड़ता था अथवा किसी राजसभा के कवियों को भी किसी आगत विद्वान अथवा कवि के द्वारा रखे गये प्रश्नों का हल कर अपनी तथा सभा की प्रतिष्ठा बचानी होती थी। ऐसे अवसरों पर बहुधा 'समस्या', 'प्रश्नोत्तर', 'बिन्दुमती' तथा 'प्रहेलिकादि' का ही उपयोग किया जाता था। प्रायः ऐसी समस्याएँ दे दी जाती थीं जिनका शाब्दिक अर्थ कुछ नहीं होता था और सुनने में भी वे बेतुकी होती थीं। उदाहरणार्थ "ठठंठठंठः ठठंठठंठः" अथवा "हुहुंहुहुंहुः हुहु हुहु हुः" जैसी समस्याओं की कथाएँ प्रसिद्ध हैं। जिनवल्लभ सूरि के सम्बन्ध में प्रचलित है कि वे समस्यापूर्त्ति में बड़े ही दक्ष थे। एक बार धारानगरी में नरवर्मा की राजसभा में बाहर से दो पण्डित आये और उन्होंने राजसभा के पण्डितों तथा कवियों के सम्मुख एक समस्या रखी। समस्या थी—"कण्ठे कुठारः कमठे ठकारः"। राजसभा का कोई भी कवि इसकी पूर्ति से आगत विद्वानों को सन्तुष्ट न कर सका। ऐसी स्थिति देखकर राजा बड़े चिन्तित हुए। अन्त में जिनवल्लभ सूरि के एक शिष्य के द्वारा उनकी विद्वत्ता के सम्बन्ध में सुनकर चित्रकूट में उनके पास दूत भेजा और उनसे उसकी पूर्ति की प्रार्थना की। जिनवल्लभ सूरि ने समस्या देखते ही उसकी पूर्ति कर दी। रातोंरात वह श्लोक धारा लाया गया। दूसरे दिन सभा में उस श्लोक को सुनकर आगत सज्जन सन्तुष्ट हुए तथा सभा की कविप्रतिभाओं की सराहना की। इस प्रकार राजसभा की प्रतिष्ठा बची।[३]

हम अनुमान कर सकते हैं कि ऐसी राजसभाओं का सामना करना तथा उनमें अपनी कविता पढ़कर कीर्ति तथा अर्थ अर्जित करना कितना दुष्कर कार्य था। इस प्रकार

---

१. द्रष्टव्य, 'साहित्य का मर्म', पृ० १२

"विद्वांसः कवयो भट्टा गायकाः परिहासकाः
इतिहास-पुराणज्ञः सभा सप्ताङ्ग संयुता ॥"

२. उपरिवत् तथा राजशेखर की कविमीमांसा, अध्याय १०, राजचर्या

३. द्रष्टव्य, अपभ्रंश काव्यत्रयी, भूमिका, पृ० १५-१६। श्लोक निम्न है—

"रे रे नृपाः ! श्री नरवर्मभूप-प्रसादनाय क्रियतां नताङ्गैः।
कण्ठे कुठारः कमठे ठकारश्चक्रे यदश्वोग्रखुराग्रघातैः ॥"

की परिस्थिति में ठहरने के लिये अभ्यास कितना अनिवार्य था इसका पता इसीसे चलता है कि राजशेखर ने कवियों के लिये नित्यप्रति प्रातःकाल एक प्रहर तक काव्य की विद्याओं तथा उपविद्याओं का अभ्यास करना आवश्यक बतलाया है, क्योंकि प्रतिभा बढ़ाने के लिये अभ्यास के अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं है।[1] दण्डी ने तो यहाँ तक स्वीकार किया है कि प्रतिभा के अभाव में भी कवित्व की प्राप्ति सम्भव है। कीर्त्येच्छु जनों को परिश्रम-पूर्वक काव्यविद्या का अभ्यास करना चाहिये। इस प्रकार परिश्रम करने पर कवित्व के कृश अथवा क्षीण होने पर भी विदग्धगोष्ठियों में वे विहार कर सकते हैं।[2]

जैसाकि पूर्वपृष्ठों में हमने देखा है विदग्धगोष्ठियों तथा राजसभाओं में कीर्ति अर्जित करने के लिये जिस प्रकार की रचनाओं की आवश्यकता होती थी और जिनकी ओर दण्डी, रुद्रट, राजशेखर तथा हेमचन्द्र ने इंगित किया है, वे 'प्रश्नोत्तर', 'समस्या', 'प्रहेलिका', 'गुप्त' तथा 'च्युतकादि' हैं। इन रचनाओं की शिक्षा के उद्देश्य से ही 'कविकल्पलता' तथा 'विदग्धमुखमण्डन,' जैसे ग्रन्थ लिखे गये ताकि इनका अनुशीलनकर कवि लोग शीघ्रातिशीघ्र श्लोकों की रचना करने में समर्थ हो सकें और कठिन श्लोकों का अर्थ भी शीघ्रता से समझ सकें। धर्मदास ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि यदि कोई कवि सभाओं में ठहरने और बोलने की इच्छा करता है तो उसे चाहिये कि वह 'विदग्धमुखमण्डन' को ताम्बूल के समान ग्रहण करे—

"यद्यस्ति सभामध्ये स्थातुं वक्तुं मनस्तदा सुधियः।
ताम्बूलमिव गृहीत्वा विदग्धमुखमण्डनं विशत॥"[3]

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि इन चित्ररचनाओं का तत्कालीन दरबारी जीवन में कवियों के बीच तथा राजसभाओं में अत्यधिक महत्त्व था तथा इनके द्वारा ही अधिकांश कवियों को राजसभा में कीर्ति तथा अर्थ की प्राप्ति होती थी।

किन्तु अबतक के विवेचन में हमने केवल 'मात्राच्युतकादि', 'प्रश्नोत्तर', 'प्रहेलिका', 'समस्या' जैसी क्रीड़ामात्र के उपयुक्त रचनाओं के महत्त्व पर ही विचार किया है। लक्षण-विवेचन में हमने देखा है कि ये रचनाएँ 'चित्रकाव्य' की गौण रचनाएँ हैं और काव्याचार्य अपने विवेचन में इनको प्रधानता नहीं देते। 'चित्रकाव्य' की प्रमुख रचनाओं में 'वर्णचित्र',

---

१. काव्यमीमांसा, अध्याय १०, कविचर्या—
"ततो विद्यावसथे यथासुखमासीनः काव्यस्य विद्या, उपविद्याश्चानुशीलयेदाप्रहरात्।
न ह्येवंविधमन्यत्प्रतिभाहेतुर्यथा प्रत्यग्र संस्कारः।"

२. काव्यादर्श परि १—
"न विद्यते यद्यपिपूर्ववासनागुणानुबन्धिप्रतिमानमद्भुतम्।
श्रुतेन यत्नेन च वागुपासिता ध्रुवं करोत्येव कमप्यनुग्रहम्॥१०४॥
तदस्ततन्द्रैरनिशं सरस्वति श्रमादुपास्या खलुकीर्तिमीप्सुभिः
कृशे कवित्वेऽपि जनाः कृतश्रमा विदग्धगोष्ठीषु विहर्तुमीशते॥१०५॥

३. विदग्धमुखमण्डन, अध्याय १, श्लोक ८

'स्थानचित्र' 'स्वरचित्र', 'गतिचित्र', तथा 'बन्ध' अथवा 'आकार चित्र' का स्थान है, जिनका विवेचन संस्कृत के पूर्ववर्ती आचार्यों ने शब्दालंकार के अन्तर्गत 'चित्रालंकार' के नाम से किया है। भूमिका में स्पष्ट हो चुका है कि दण्डी तथा अग्निपुराणकार ने इनको 'दुष्कर' की संज्ञा से अभिहित किया है जबकि रुद्रट, भोज, हेमचन्द्र आदि आचार्यों ने इनका विवेचन 'चित्र' के नाम से किया है। 'चित्रकाव्य' के स्वरूपविकास के क्रम में भी हमने पाया है कि संस्कृत की महत्त्वपूर्ण तथा प्रमुख काव्यकृतियों के अन्तर्गत भी इन्हीं चित्रभेदों के श्लोक प्राप्त होते हैं। 'प्रश्नोत्तर', 'प्रहेलिका' तथा 'समस्या' की रचना इन पुस्तकों में बिलकुल नहीं हुई है, 'च्युत' तथा 'गुप्त' अथवा 'गूढ़' के भी एकाध श्लोक ही कहीं-कभी प्राप्त होते हैं। 'गूढ़ चतुर्थ' अवश्य एक अपवाद है, जिसकी रचना प्रायः सर्वत्र की गई है।

दण्डी ने केवल 'वर्ण' अथवा 'व्यंजन', 'स्वर', 'स्थान' तथा 'गतिचित्र' के कतिपय भेदों को ही अपने विवेचन में स्थान दिया है। 'आकार' अथवा 'बन्ध चित्र' का कोई विवेचन हमें 'काव्यादर्श' में नहीं मिलता। साथ ही दण्डी ही प्रथम आचार्य हैं जिन्होंने इन रचनाओं का विवेचन किया है। उन्होंने इन्हें शब्दतः शब्दालंकार कहा तो नहीं है, किन्तु शब्दालंकारों के क्रम में विवेचन करके उन्होंने किसी प्रकार के सन्देह के लिये स्थान नहीं छोड़ा है कि वे इन्हें शब्दालंकार ही मानते हैं। काव्य में शब्दालंकार की स्थिति वहीं होती है जहाँ चमत्कार शब्दगत होता है। अर्थात् यदि हम अर्थ को अक्षुण्ण रखते हुए शब्दों को परिवर्तित कर दें तो चमत्कार का भी लोप हो जाता है। इस प्रकार शब्दालंकार का चमत्कार प्रमुखतः ध्वन्यात्मक होता है। चूँकि 'वर्ण', 'स्थान', 'स्वर' अथवा 'गतिचित्रों' के चमत्कार का आधार भी ध्वनि (साउन्ड) ही है, अतः दण्डी को इन्हें शब्दालंकार मान लेने में कोई कठिनाई नहीं हुई। 'वर्णचित्र' के अन्तर्गत जब सम्पूर्ण छन्द में केवल एक या दो ही व्यंजन का प्रयोग होता है तो उसके पाठ से निश्चय ही कुछ ऐसी ध्वनि (साउन्ड) पैदा होती है, जिससे पाठक अथवा श्रोता चमत्कृत हो उठता है। यही बात 'स्वरचित्र' तथा 'स्थानचित्र' के सम्बन्ध में भी है। सम्पूर्ण छन्द में केवल एक या दो स्वरों के ही प्रयोग से अथवा केवल एक या दो उच्चारण स्थानों से उच्चरित होने वाले वर्णों के प्रयोग से भी इसी प्रकार के ध्वनिगत चमत्कार की उत्पत्ति होती है। 'गतिचित्र' के सम्बन्ध में भी यही बात है। ऐसे छन्द का चमत्कार भी इसी कोटि का होगा जिसे चाहे हम जिधर से पढ़ें, छन्द वही रहेगा। 'प्रतिलोमानुलोम' को दण्डी ने 'यमक' के अन्तर्गत रखा है।[1] इस प्रकार ये रचनाएँ यदि शब्दालंकार के अन्तर्गत परिगणित हुई हैं तो इसका पूर्ण औचित्य है। बाद के अन्य आचार्यों ने भी 'चित्र' के उपर्युक्त भेदों के शब्दालंकारत्व पर कोई आपत्ति नहीं की। रुय्यक तथा विश्वनाथ ने प्रश्न उठाया भी तो केवल 'बन्धचित्र' को सम्मुख रखकर।[2] शब्दालंकार के औचित्य को लेकर 'चित्र' के इन

१. "आवृत्तिः प्रातिलोम्येन पादार्ध श्लोक गोचरा।
यमकं प्रतिलोमत्वात् प्रतिलोममिति स्मृतम्॥"—काव्यादर्श, ३/७३

२. चित्रालंकार से सम्बद्ध कारिका की वृत्ति

भेदों की ओर केवल विद्याधार की दृष्टि गई। विद्याधर ने भी अपने विश्लेषण में 'गति-चित्र' तथा 'स्थानचित्र' की संज्ञा में 'चित्र' शब्द की सार्थकता पर विचार किया और 'चित्र' शब्द के तीन भिन्न-भिन्न अर्थों को लेकर क्रमशः 'बन्ध' 'गति' तथा 'स्थान' के 'चित्र' कहे जाने के कारण को स्पष्ट किया।[1] इनके शब्दालंकारत्व के सम्बन्ध में उन्होंने कोई प्रश्न नहीं उठाया। किन्तु 'वर्णचित्र' तथा 'स्वरचित्र' के शब्दालंकारत्व का उन्होंने स्पष्टतः खण्डन किया। उनके अनुसार 'वर्णचित्र' में चूँकि एक या अधिक सीमित वर्णों का ही प्रयोग सम्पूर्ण छन्द में होता है, अतः यहाँ प्रमुख रूप से **'स्वरविरहित व्यञ्जनमात्र सादृश्य'** के आधार पर प्रयोग में आनेवाले इन वर्णों की आवृत्ति होती है और इस प्रकार यह रचना वृत्य-नुप्रास की सीमा में आ जाती है।[2] अतः इन्हें अलग से शब्दालंकार मानने में कोई औचित्य नहीं है। 'स्वरचित्र' के लिये उनका कथन है कि सम्पूर्ण छन्द में एक या अधिक सीमित स्वरों का (मात्राओं के रूप में भी) प्रयोग 'बन्ध-शैथिल्य' का ही उदाहरण होगा, और इस प्रकार यह 'दोष' है, अलंकार इसे नहीं माना जा सकता।[3]

विद्याधर चूँकि परवर्ती काल में हुए हैं अतः उन्होंने ऐसा कहा है। हमने देखा है कि मम्मट, रूय्यक, विश्वनाथ आदि परवर्ती आचार्यों ने 'चित्र' के अन्तर्गत 'बन्ध' के अति-रिक्त अन्य रचनाओं का विवेचन नहीं किया है।[4] दण्डी ने अनुप्रास नामक कोई अलंकार माना ही नहीं और रुद्रट तथा अग्निपुराणाकार ने अनुप्रास का जैसा विवेचन

१. "आकारचित्रइवेह बन्धचित्रेऽपि वर्णानामाकारोल्लासकत्वात् पद्मादिरूपतयाक्षराणां लिख्यमानत्वेन चित्रसादृश्याच्चित्रमिदमुच्यते। अहोयेनक्रमेणगता वर्णपङ्क्तिस्तेनैव क्रमेण प्रत्यागतेत्याश्चर्य-कारित्वाद्वा चित्रमित्यन्वर्थबलाद्वर्णानामाकारानुल्लासकत्वेनाव्याप्तावपि गतप्रत्यागतार्धभ्रम-सर्वतोभद्रधेनुप्रभृतिगतिचित्रमत्र संगृहीतम्। अभिनव पदपदार्थपर्यालोचनेन मन्दबुद्धीनां चित्तो ज्ञानस्य त्राणाद्वा चित्रमित्यन्वर्थमहिम्ना निष्कण्ठ्य निरोष्ठ्यनिस्तालव्यादि स्थानचित्रं च स्वीकृतम्।"

—एकावली, सप्तम उन्मेष, चित्र से सम्बद्ध कारिका की वृत्ति।

यहाँ पर बन्धचित्र के लिये 'चित्र' का अर्थ 'आलेख्य' लिया गया, गतिचित्र के लिये विचित्रताधायक अथवा आश्चर्यकारक तथा स्थानचित्र के लिये 'चित्र' का अर्थ 'ज्ञान की रक्षा करनेवाला' (चित्तं ज्ञानंत्रायते इतिचित्रम्) लिया गया है। लेखक का कहना है कि मन्दबुद्धिवाले व्यक्ति स्थानचित्रों की रचना तथा अभ्यास द्वारा (विस्मृति से) अपने ज्ञान की रक्षा करते हैं। इस प्रकार प्रस्तुत स्थल पर लेखक ने इन तीनों ही चित्रभेदों में 'चित्र' संज्ञा की सार्थकता बताने के लिये 'चित्र' शब्द की तीन व्याख्यायें ली हैं।

२. "यत् पुनः स्वरविरहित व्यञ्जनमात्रसादृश्य प्रयुक्तं वर्णचित्रमपरैरभ्यधायि तदस्मिन् दर्शने वृत्त्यनुप्रास एव।" उपरिवत्.

३. "स्वरचित्रं तु बन्धशैथिल्यकारितया दोष एवेति नालङ्कारतया स्वीकृतम्।"

४. "तच्चित्रंयत्र वर्णानांखड्गाद्याकार हेतुता"

—मम्मट; कारिका १२९, का० प्र०,उल्लास ९

"वर्णानां खड्गाद्याकृति हेतुत्वे चित्रम्।"

—रुय्यक, अ० स०

"पद्ममाद्याकार हेतुत्वे वर्णानां चित्रमुच्यते।"—विश्वनाथ, सा० द०, परि० १०

किया है, उसमें इन रचनाओं के लिये अवश्य ही स्थान नहीं है।[1] इसके अतिरिक्त इन रचनाओं की संज्ञा के रूप में दण्डी ने 'दुष्कर' शब्द का प्रयोग साभिप्राय किया है। वे 'वर्ण', 'स्थान' तथा 'स्वरनियमों' की सीमा क्रमशः चार वर्णों, चार स्वरों तथा चार उच्चारणस्थान से उच्चरित अक्षरों के प्रयोग तक ही निश्चित कर देते हैं। इनसे अधिक संख्या में व्यंजनों अथवा स्वरों का प्रयोग सुकर होता है अतः उनकी रचना इष्ट नहीं है—

"यः स्वर स्थान वर्णानां नियमो दुष्करेष्वसौ।
इष्टः चतुः प्रभृत्येषु दर्श्यते सुकरः परः॥"[2]

इस प्रकार यह ध्यातव्य है कि सुकरता अन्य रचनाओं के लिये जहाँ गुण समझी जाती है वहाँ चित्ररचनाओं का श्रेय उनके दुष्कर होने में है। दुष्कर होने के कारण ये रचनाएँ नीरस तो हो जाती हैं किन्तु इनकी योजना से कविशक्ति का पता चलता है अतः विदग्धों को इस प्रकार की रचनाएँ पर्याप्त रुचिकर होती हैं। अग्निपुराणकार ने 'दुष्कर' के सम्बन्ध में इन तथ्यों का उल्लेख बड़े ही स्पष्ट शब्दों में किया है—

"दुःखेन कृतमत्यर्थं कविसामर्थ्यसूचकम्।
दुष्करं नीरसत्वेऽपि विदग्धानां महोत्सवः॥"[3]

रुद्रट ने 'वर्ण', 'स्थान' तथा 'स्वरचित्र' का न तो कोई विवेचन किया न उदाहरण ही दिया है। 'बन्धचित्र' तथा उपर्युक्त गौणचित्रों के अतिरिक्त उन्होंने केवल 'गतिचित्र' का ही विवेचन किया है। उन्होंने भी इन चित्रों के लिये 'विचित्र' शब्द का प्रयोग किया है जैसा नमिसाधु की टीका से स्पष्ट होता है।[4] इस प्रकार 'वर्ण', 'स्थान', 'स्वर' तथा 'गतिचित्रों' का महत्त्व इनकी दुष्करता, क्लिष्टता तथा विचित्रता में है, जो कविसामर्थ्य की सूचक होती हैं और जिनके कारण पाण्डित्य-प्रदर्शन का अवसर मिलता है। इस विशिष्ट उद्देश्य से रचित होने के कारण ही आचार्यों ने इनकी स्वतन्त्र सत्ता मानी और इनका अन्तर्भाव अनुप्रास में नहीं किया, न उन्हें 'बन्धशैथिल्य' का उदाहरण कहकर दोष में गिना। यों 'क्लिष्टता' को आचार्यों ने स्वतन्त्र दोष माना ही है[5], किन्तु चित्र का वही विशिष्ट गुण है।

---

१. द्रष्टव्य काव्यालंकार, अध्याय २, श्लोक १९ से ३१ तक
अग्निपुराण, अध्याय ३४३, श्लोक १ से ११ के पूर्वार्द्ध तक

२. काव्यादर्श, ३/८३

३. अग्निपुराण' ३४३/३२

४. "भङ्ग्यन्तरकृत तत्क्रमवर्णनिमित्तानि वस्तुरूपाणि।
साङ्कानि विचित्राणि च रच्यन्ते यत्र तच्चित्रम्॥"

—काव्यालंकार, /१

'विचित्राणि'-की व्याख्या नमिसाधु के अनुसार—
तथा विचित्राणि चान्यानि च सर्वतोभद्रानुलोमप्रतिलोमादीनि।
चकारो वस्तुरूपेषु मध्ये सर्वतोभद्रादि समुच्चयार्थः॥"

५. द्रष्टव्य, मम्मट तथा विश्वनाथ

'चित्रकाव्य' का जो सबसे महत्त्वपूर्ण वर्ग है वह है 'बन्धचित्र'। दण्डी ने यद्यपि किसी बन्ध का विवेचन नहीं किया है किन्तु रुद्रट, अग्निपुराणकार, भोज, हेमचन्द्र जैसे चित्र का सर्वांगपूर्ण विवेचन करनेवाले आचार्यों ने अपने विवेचन में 'बन्धचित्र' को ही प्रमुखता दी है। द्वितीय अध्याय में हम देख चुके हैं कि रुय्यक, मम्मट, जयदेव तथा विश्वनाथ जैसे संस्कृत के परवर्ती आचार्यों ने प्रायः चित्र का अर्थ 'बन्धचित्र' ही लिया है। उनके लक्षणों अथवा विवेचन में बन्धेतरचित्रों का उल्लेख भी नहीं है केवल मम्मट ने उदाहरण के अन्तर्गत 'सर्वतोभद्र' का भी एक श्लोक दिया है। इन आचार्यों ने भी चित्र का विवेचन शब्दालंकार के अन्तर्गत किया है, यद्यपि रुय्यक तथा विश्वनाथ ने प्रश्न उठाया है कि 'बन्धचित्र' का आनन्द दृष्टिगत होता है क्योंकि इसका महत्त्व वस्तुविशेषाकार चित्रों में छन्दों के न्यास में है, जबकि शब्द आकाश का गुण है और इसका महत्त्व कान से सुने जाने में है, फिर इस बन्धचित्र को 'शब्दालंकार' कैसे कहा जा सकता है? इस प्रश्न का समाधान भी वे स्वयं ही यह कहकर देते हैं कि वर्णमाला के ककारादि वर्ण, जिनका न्यास इन वस्तु-विशेषाकार चित्रों में किया जाता है, तथा आकाशगुण से सम्पन्न शब्द के प्रतीक स्वरूप वर्ण अभिन्न होते हैं, अतः इस बन्धचित्र को शब्दालंकार कहना उचित ही है।[१] तात्पर्य यह कि यद्यपि 'बन्धचित्र' हमारे सम्मुख चित्र के आकार में उपस्थित होता है किन्तु इसका चमत्कार शब्दगत ही होता है, कारण चित्र में न्यस्त छन्दों के पाठ में वर्णों की विभिन्न प्रकार की आवृत्ति में ही चित्रत्व की स्थिति होती है।[२] इस प्रकार शब्दगत चमत्कार से युक्त होने के कारण आचार्यों ने इसका स्थान शब्दालंकार के अन्तर्गत रखा है, जिसका पूर्ण औचित्य है। फिर भी बन्धों में न्यस्त होनेवाले छन्दों का चमत्कार तभी उत्कर्ष प्राप्त करता है जब ये छन्द वस्तुरूपाकार चित्रों में न्यस्त होकर दृश्यरूप में सहृदय के सम्मुख उपस्थित होते हैं। तभी छन्दों में नियोजित वर्ण-पद-पादाद्यावृत्ति स्पष्ट हो पाती है। यों 'अनुप्रास' अथवा 'यमक' के रूप में ये आवृत्तियाँ छन्द में रहती ही हैं। 'बन्ध-चित्र' की रचना का अलंकार की दृष्टि से यही महत्त्व है।

४. "यद्यपि लिप्यक्षराणां खड्गादि सन्निवेश विशिष्टत्वम् तथापि श्रोत्राकाशसमवेतवर्णात्मक शब्दा-भेदेन तेषां लोके प्रतीतेर्वाचिक शब्दालंकारोऽयम्।"

—रुय्यक, अलंकारसर्वस्व

"अस्य च तथाविधि लिपिसन्निवेशविशेषवशेन चमत्कारविधायिनामपि वर्णानां तथाविधश्रोत्राकाश-समवायविशेषवशेन चमत्कारविधायिभिर्वर्णैरभेदेनोपचाराच्छब्दालङ्कारत्वम्।"

—विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, परि १०

५. "श्लेषार्थोपसंगृहीतैरन्त्यादिसदृशाक्षरैः।
प्रतिलोमानुलोमस्थैः शब्दैश्चित्र समुद्भवः ॥१८५॥"

—काव्यकल्पलतावृत्तिः, प्रतान ३, स्तवक ५

"अनेकधावृत्तवर्णविन्यासैः शिल्पकल्पना ॥३५॥
तत्तत्प्रसिद्ध वस्तूनां बन्ध इत्यभिधीयते।
....॥३६॥"— अग्निपुराण, अ० ३४३

उपर्युक्त पृष्ठों में हमने 'बन्ध' तथा 'बन्धेतर चित्र' के महत्त्व पर अलंकार की दृष्टि से विचार किया है। आचार्यों ने इन्हें शब्दालंकार माना और हमने देखा है कि उसका औचित्य भी है। किन्तु 'चित्रकाव्य' का केवल इतना ही महत्त्व नहीं है। इसके पूर्ण महत्त्व को समझने के लिये हमें इस प्रकार की काव्यरचना की उत्पत्ति के कारणों का अनुमान करना होगा। प्रस्तुत अध्याय में ही अपने विवेचन में हमने देखा है कि 'प्रश्नोत्तरादि' 'चित्रकाव्य' के गौण भेदों की रचना क्रीड़ागोष्ठियों के लिये ही अधिक हुई है। प्रश्न उठता है कि तब 'चित्र-काव्य' के प्रमुख भेदों की रचना क्या केवल शब्दालंकार के रूप में ही की गई है? जहाँ कहीं भी क्रीड़ागोष्ठियों के विनोद के रूप में चित्ररचनाओं का उल्लेख मिलता है वहाँ बन्धादि 'चित्र' के प्रमुख भेदों का उल्लेख बिलकुल नहीं है।

इसमें दो मत नहीं हो सकते कि इन चित्ररचनाओं का एक प्रमुख उद्देश्य कुतूहलोत्पादन है जैसा कि अग्निपुराणकार ने स्पष्ट रूप से कहा है—

"गोष्ठ्यां कुतूहलाध्यायी वाग्बन्धश्चित्रमुच्यते।"[१]

यह स्वयं सिद्ध है कि मनुष्य कौतूहलप्रेमी होता है, साथ ही प्रत्येक मनुष्य के लिये कुछ न कुछ मनोरंजन भी आवश्यक है। हम जहाँ भी जिस स्थिति में होते हैं वहीं अपने मनोरंजन का साधन जुटा लेते हैं। ये चित्ररचनाएँ भी कवियों की इसी प्रवृत्ति को द्योतित करती हैं।

मनोरंजन के साथ ही प्रदर्शन की भावना भी मनुष्य में स्वाभाविक रूप से रहती है। विशेषकर पाण्डित्य की तो यह माँग ही होती है कि व्यक्तिविशेष अपने क्षेत्र में दूसरों के सम्मुख अपनी योग्यता प्रदर्शित करे। राजसभाओं के जिस रूप का हमने ऊपर विवेचन किया है, उससे यह स्पष्ट है कि प्राचीन सम्राट् की राजसभाओं में रहनेवाले कवियों और पण्डितों में इस प्रदर्शन की भावना रहती थी। सम्राट् अवन्तिवर्मा की राजसभा के कवि शिवस्वामी तथा रत्नाकर की 'ग्रन्थकर्तुः प्रशस्ति' के अन्तर्गत की गर्वोक्तियाँ इसी प्रवृत्ति को द्योतित करती हैं।[२] एक प्रकार से यह अनिवार्य भी था क्योंकि बिना इसके कवि अथवा पण्डितविशेष को किसी राजसभा में अपना स्थान बनाने अथवा बनाये रखने में यथेष्ठ बाधाओं का सामना करना पड़ सकता था। सामान्य जनता काव्य से ऐसा चमत्कार चाहती है जिससे उसका मनोरंजन हो सके जैसा कि डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है "आलंकारिकों ने जो काव्य के उद्देश्य बताये हैं वह कवि को दृष्टि में रखकर, पाठक को नहीं। पाठकों की ओर से भी यदि उन्हें काव्य की बात कहनी होती तो वे निश्चय ही बताते कि काव्य दिल बहलाने के लिये, चतुर होने के लिये और नैतिक बल के दृढ़ीकरण के लिये बनते हैं।"[३]

---

१. अ० पु०, अ० ३४३, श्लोक २२

२. कप्फिणाभ्युदय, सर्ग २०, श्लोक ४३–४७

हरविजय, पुस्तक के अन्त में श्लोक १ से ७

३. हिन्दी निबन्धावली (बिहार विश्वविद्यालय) में संगृहीत निबन्ध—"रस का व्यावहारिक अर्थ"

'वर्ण', 'स्थान', 'स्वर' तथा 'गतिचित्र' की रचना में निश्चित रूप से कवियों के पाण्डित्यप्रदर्शन की प्रवृत्ति निमित है। शब्द तथा अर्थज्ञान का प्रदर्शन इससे अधिक और कहाँ होगा जहाँ सम्पूर्ण छन्द में केवल एक ही व्यंजन का प्रयोग हो और छन्द भी सार्थक हो। यही बात 'स्वर' तथा 'स्थान चित्रों' के सम्बन्ध में भी है। 'गतिचित्र' की रचनाएँ तो और भी अधिक चमत्काराधायक होती हैं। एक ही छन्द गत रूप में भी पढ़ा जाय और आगत रूप में भी पढ़ा जा सके, तथा उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन भी न हो, कवि की शब्दगुम्फनशक्ति का परिचायक है। इसी के दूसरे प्रकार की रचना जिसमें छन्द के गत तथा आगत पाठ के दोनों रूपों से भिन्न-भिन्न सार्थक छन्द निकलें अथवा छन्द तो दो हों किन्तु उनके अर्थ एक ही हों, सामान्य प्रतिभा तथा पाण्डित्य के लिये सम्भव नहीं है।[१] ये रचनाएँ निश्चय ही कवि को अपने आश्रयदाता की आँखों में ऊँचा उठा देती होंगी, कारण ये उसकी शक्ति की परिचायक हैं। इस प्रकार इन रचनाओं के मूल में कवियों का मनोरंजन तथा पाण्डित्यप्रदर्शन ही है।[२] कुल मिलाकर ये रचनाएँ कवियों के बौद्धिकविलास की प्रतिफलन हैं।

'बन्धचित्र' के मूल में भी प्रायः कवियों की उपर्युक्त प्रवृत्तियाँ ही काम करती हैं। किन्तु इसके अतिरिक्त 'बन्धचित्र' की रचना प्राचीन भारत की उस कलात्मक समृद्धि की भी द्योतक है, जो आज भी विश्व के लिये ईर्ष्य है। उस समय हमारी कलात्मक भावना तथा कला का हमारा ज्ञान कितना सूक्ष्म और किस चरम पर पहुँचा हुआ था इसका अनुमान हम आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के निम्न कथन से लगा सकते हैं—

"आपने आशा की होगी कि मैं··· ···· ··· ··· ····वाराणसी की किसी शिल्पी की मरकतमणियों की उस मूर्त्ति की चर्चा करूँगा जो दिन और रात के भिन्न-भिन्न समयों में भिन्न-भिन्न रंग की विचित्रता से समृद्ध हो उठती थीं, या कान्यकुब्ज की किसी नगर-सभा में आयोजित उस मयूर या कमलनृत्य की बात करूँगा जिसमें कुंकुम और अबीर बिछा दिये जाते थे और नृत्य के तालों के साथ उठते-पड़ते पद-संचार मयूर या कमल की प्रतिकृति बना देते थे।"[3]

प्रस्तुत कथन के अनुसार शिल्पी की मूर्ति में मुद्राओं की सजीवता तथा आकार की स्वाभाविकता के साथ ही मणियों की उस अनेक आभाओं का भी ध्यान रखा जाता था, जो दिन और रात के प्रकाश के विभिन्न परिमाणों में मिलकर अद्भुत छटा उत्पन्न करती होंगी। इससे भी अधिक कलात्मक समृद्धि तथा कलाज्ञान का उदाहरण तो वह नृत्य उपस्थित करता है जिसमें नृत्य की सारी विशिष्टताओं के साथ ही ताल पर उठते-गिरते

१. द्रष्टव्य, प्रस्तुत ग्रन्थ के अन्तर्गत वर्ण, स्वर, तथा गतिचित्रों का सैद्धान्तिक विवेचन

२. अग्निपुराणकार ने स्पष्टतः कहा है कि यदि इन रचनाओं से कीर्ति न भी मिले तो भी इनसे मित्रगण प्रसन्न होते हैं तथा शत्रुओं को किसी प्रकार का खेद नहीं होता—

"नामधेयं यदि न चेदमीषु कविकाव्ययोः।
मित्रधेयानि तुष्यन्ति नामित्रः खिद्यते तथा॥" —अ० पु० ३४३/६३

३. हिन्दी निबन्धावली (बिहार विश्वविद्यालय), पृ० ३१

पदसंचार के स्थाननियमन द्वारा तत्सम्बन्धी चित्र भी प्रस्तुत कर दिया जाता था। हमारी कलाभावना तथा कलाज्ञान कितना विकसित था इसका आभास इससे हम सहज ही पा सकते हैं।

राजशेखर द्वारा वर्णित जिस कविचर्या का उल्लेख हमने इसके पूर्व किया है, उसमें हमने देखा है कि राजशेखर ने कवि के लिये प्रत्येक दिन प्रथम प्रहर में काव्य की विद्याओं और उपविद्याओं का अभ्यास अनिवार्य बताया है।[1] ये 'उपविद्याएँ' गीत, वाद्यादि ६४ कलाएँ ही हैं।[2] इस प्रकार प्राय: प्रत्येक कवि इन कलाओं का ज्ञाता होता था। उनका यह कलाज्ञान उनकी रचनाओं में बड़ा सहायक होता था। ऊपर जिस नृत्य की चर्चा हुई है उसमें हमने देखा है कि एक साथ ही नृत्य तथा चित्र, दो कलाओं की सफल योजना उस समय की जा सकती थी। 'बन्धचित्र' की रचना में इसी प्रकार काव्य और चित्र दोनों कलाओं का सम्मिश्रण किया गया है। एकाधिक कलाओं की एकसाथ रचना निश्चय ही दु:साध्य कार्य है। फलत: आगे चलकर जब हमारा यह कलाज्ञान शिथिल पड़ने लगा तो 'बन्धचित्र' का एक मात्र उद्देश्य बौद्धिकविलास ही रह गया। यही कारण है कि संस्कृत में भी परवर्ती काल में एक तो महाकाव्य लिखे ही बहुत कम गये और जो लिखे भी गये उनमें चित्र की रचनाएँ प्राय: नहीं की गईं।

पंचम अध्याय में हमने देखा है कि परवर्ती संस्कृत साहित्य में चित्र की रचनाएँ अधिकतर जैन कवियों ने की हैं। ये कवि अधिकतर जैन साधु थे और राजसभा से इनका कोई विशेष सम्पर्क नहीं होता था। अत: इनके द्वारा की गई रचनाओं में परिपाटी का निर्वाह तथा पाण्डित्यप्रदर्शन अथवा बौद्धिकविलास की प्रवृत्ति अधिक दृष्टिगोचर होती है। ये रचनाएँ अधिकतर स्तोत्रग्रन्थों में हुई हैं।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यही निश्चित होता है कि चित्ररचनाएँ प्रमुखत: यद्यपि कवियों के बौद्धिकविलास तथा पाण्डित्यप्रदर्शन की प्रतिफलन हैं, किन्तु इनका किंचित् साहित्यिक तथा कलात्मक महत्त्व भी है। साहित्य के क्षेत्र में आचार्यों ने इन्हें अलंकार माना है तथा 'बन्धचित्र' में हम प्राचीन भारत के उन्नत कलाज्ञान का परिचय भी पाते हैं। प्रश्नोत्तरादि चित्रभेदों का महत्त्व गोष्ठी की दृष्टि से निर्विवाद है। काव्य के दो प्रमुख प्रयोजन 'यश' तथा 'अर्थ' की पूर्ति इन रचनाओं से होती थी और पाठकों की दृष्टि से भी ये रचनाएँ उन्हें चमत्कृत कर उनका मनोरंजन कर सकने में पूर्णत: समर्थ थीं।

हिन्दी की चित्ररचनाओं के भी उद्देश्य ये ही थे। रीतिकाल के पूर्व हिन्दी 'चित्र-काव्य' की रचना प्राय: नहीं हुई और जो थोड़ी-बहुत हुई भी उनका उद्देश्य मनोरंजन अथवा पाण्डित्यप्रदर्शन ही था। खुसरो तथा रहीम रचित 'भाषाचित्र' के छन्दों का एकमात्र उद्देश्य जहाँ मनोरंजन है वहाँ नन्ददास की 'मानमंजरी' में प्रमुखत: उनके पाण्डित्य का प्रदर्शन ही हमें मिलता है। 'चित्रकाव्य' की विधिवत् रचना केशवदास से ही आरम्भ

१. द्रष्टव्य, प्रस्तुत अध्याय, पृ० ५७१, पा० टि० १

२. कविरहस्य (गंगानाथ झा), द्वितीय मुद्रण, १९५०, पृ० ५१

होती है। रीतिकाल का साहित्य भी प्रमुखतः दरबारी साहित्य है और इस काल में भी कवियों का प्रमुख उद्देश्य लगभग वही था जो संस्कृत के कवियों का था, अर्थात् अपने आश्रयदाता तथा दरबार के दरबारियों को प्रसन्न तथा चमत्कृत कर उनकी आँखों में ऊपर उठना। यश की उतनी आकांक्षा इन कवियों को नहीं थी जितनी अर्थ की। किन्तु प्राचीन राजसभाओं और रीतिकालीन दरबारों में जो सबसे बड़ा अन्तर था वह आश्रयदाताओं की स्थितियों में। प्राचीन सम्राट्, राजा अथवा सामन्त जहाँ स्वयं भी विद्वान होते थे, उनकी रुचि पर्याप्त परिष्कृत होती थी तथा उनकी राजसभाओं में विभिन्न शास्त्रों में पारंगत पण्डित होते थे वहाँ रीतिकालीन आश्रयदाता बिलकुल सामान्य कोटि का मनुष्य होता था जिसका एकमात्र उद्देश्य विलास अथवा ऐयाशी में कालयापन करना था। सामान्य स्तर के व्यक्ति होने के कारण उनके विलास के साधन भी निम्नकोटि के ही होते थे, जिनमें स्त्रियों का बहुत अधिक स्थान था। 'कादम्बरी' में वर्णित राजा शूद्रक जहाँ विभिन्न कलाओं में व्यस्त रहकर 'वनिता सम्भोगपराङ्गमुख' हो सका था, वहाँ इन रीतिकालीन शासकों का प्रधान विलास वनितासम्भोग ही था। इनके दरबारियों का मानसिक स्तर भी यही था जिसमें तीतर-बटेरों की लड़ाइयों, स्त्रियों के नंगे वर्णनों, जूआ आदि के खेलों के लिये ही स्थान हो सकता था। फलतः नग्नशृंगार का ही अधिक वर्णन हमें रीतिकालीन साहित्य में मिलता है। काव्यशास्त्र के ग्रन्थों की रचना भी इस काल में इस उद्देश्य से ही की गई कि कवियों के आश्रयदाताओं को थोड़ा काव्यांग का परिचय भी हो जाय। इसके अभाव में हिन्दी कवियों की कविताओं में उन्हें कुछ भी चमत्कार न मिलता और इन कवियों की ये रचनाएँ व्यर्थ हो जातीं।

यही कारण है कि हिन्दी के रीतिकवियों ने 'चित्रकाव्य' की जो रचनाएँ की हैं उनमें ऋजुता अधिक है और वे अत्यन्त ही सामान्य कोटि की हैं। यदि उत्कृष्ट रचनाएँ ये कवि कर भी पाते तो इन आश्रयदाताओं तथा दरबारियों के लिये इनका समझना तथा इनसे आनन्द उठाना अत्यन्त कठिन होता। पाठकों तथा इन आश्रयदाताओं के स्तर के कारण ही हम पाते हैं कि 'चित्रकाव्य' की रचना करनेवाले हिन्दी के प्रायः सभी कवियों ने 'प्रश्नोत्तर' की रचना भी अवश्य की है। 'प्रश्नोत्तर' के 'शासनोत्तर', 'शृंखलोत्तर' 'चित्रोत्तर' जैसे भेदों का चमत्कार उस कोटि का होता है जिससे इन सामान्य स्तरवाले दरबारियों का भी पर्याप्त मनोरंजन हो जाता था। 'समस्या' तथा 'पहेलियों' की रचना तो पर्याप्त हुई ही, किन्त 'चित्र' के अन्तर्गत नहीं वरन् स्वतन्त्र रूप में ही ये रचनाएँ की गईं।

समस्त रीतिसाहित्य में केवल केशवदास तथा भिखारीदास में ही, चित्ररचनाओं में हम पर्याप्त विस्तार पाते हैं। केशवदास पण्डित व्यक्ति थे और पाण्डित्यप्रदर्शन की प्रवृत्ति भी उनमें थी ही। यहाँ तक कि 'भाषा' में रचना करने का उन्हें अत्यन्त खेद है।[1] अतः उनके लिये चित्ररचनाओं को विस्तार देना स्वाभाविक है। भिखारीदास ने काव्य-

१. "भाषा बोलि न जानहीं जिनके कुल के दास।
भाषा कवि भो मन्दमति तेहि कुल केसवदास॥" — कविप्रिया, प्रभाव २, छन्द १७

शास्त्र का विधिवत् और वैज्ञानिक विवेचन किया है और इसी क्रम में उन्होंने चित्ररचनाओं का भी विवेचन किया है। लक्षणविवेचन तथा स्वरूपविकास के अन्तर्गत हम इनका विवेचन कर चुके हैं।

इस काल में तीन कवि ऐसे हैं जिन्होंने अत्यन्त विस्तृत रूप में चित्ररचनाएँ की हैं। ये हैं- राजा महिरामन सिंह, काशिराज बलवान सिंह तथा गोकुलकवि।[१] इनमें दो तो राजा ही थे और गोकुलकवि को भी महाराज दिग्विजयसिंह के आश्रय में सारी सुविधाएँ प्राप्त थीं। इन रचयिताओं का उद्देश्य अर्थ की प्राप्ति नहीं वरन् मात्र मनोरंजन तथा पाण्डित्यप्रदर्शन था।

आधुनिक काल में 'चित्र' की रचनाएँ कम होती गईं। चूँकि आधुनिक समय में जीवन इतना अधिक व्यस्त हो गया है कि मनोरंजन के लिये भी हमारे पास अवकाश नहीं रह गया है। 'चित्रकाव्य' की रचनाएँ वस्तुतः समृद्ध समाज की रचनाएँ हैं, जबकि जीवन में मनोविनोद के लिये पर्याप्त अवकाश हो। आज के जीवन में अभावों का ही साम्राज्य है. अतः इन रचनाओं का सम्मान भी जाता रहा है।

रस को काव्य की आत्मा स्वीकार कर लिये जाने के उपरान्त हमने देखा है कि चित्ररचनाओं का महत्त्व कम होने लगा था। पण्डितराज ने इसे अधमाधम की संज्ञा देकर भी इसे काव्य में गिनना स्वीकार नहीं किया है।[२] आधुनिक काल में हिन्दी में भी इसे 'गोरखधन्धा' भर ही समझा गया है और रसाल जी ने इसे 'वर्णकौतुक' कहना अधिक उपयुक्त समझा है।[3] किन्तु रत्नाकर जी ने स्पष्ट शब्दों में पण्डितराज जगन्नाथ का खण्डन करते हुए लिखा है—

"जबकि यह देखा जाता है कि चित्रकाव्यादि से भी एक प्रकार का टूटा-फूटा आनन्द प्राप्त होता है और स्वयं पण्डितराज ही के लेख से विदित है कि कविलोग इनको परम्परा से बनाते आते हैं, तो इनको भी एक प्रकार का काव्य मानना चाहिये, हाँ यह दूसरी बात है कि आप इनको अधमाधम नहीं वरन् यदि हो सके तो और भी कई श्रेणी नीचे मानिये।"[४]

इस प्रकार शुद्धकाव्य के रूप में यद्यपि 'चित्रकाव्य' का कोई महत्त्व नहीं है, किन्तु विनोद, पाण्डित्यप्रदर्शन, कौतूहलोत्पादन के द्वारा चमत्कार के सन्निवेश से सभाकाव्य के रूप में इसका पर्याप्त महत्त्व है। 'सभाशृंगार' की पुस्तकों में भी अन्य साधनों के साथ चित्ररचनाओं के नाम अवश्य ही आते हैं।[५]

●

---

१. द्रष्टव्य, पंचम अध्याय के अन्तर्गत इन कवियों का विस्तृत विवेचन

२. रसगङ्गाधर, पृ० ३४,

३. अलंकारपीयूष, पूर्वार्द्ध, पृ० १६७,

४. साहित्यरत्नाकर, पृ० २४

५. सभाशृंगार, सम्पादक-अगर चन्द नाहटा, पृ० १४२, विभाग ५

सप्तम अध्याय

निष्कर्ष

पूर्व अध्यायों में किये गये विवेचन के आधार पर निम्न तथ्य निष्कर्ष रूप में हमारे सम्मुख स्पष्ट होते हैं—

१. काव्य से सम्बद्ध 'चित्र' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग महाक्षत्रप रुद्रदामा के गिरनार शिलालेख में हुआ है, किन्तु उसका अर्थ स्पष्ट नहीं होता।[1] 'चित्रकाव्य' के अर्थ में इस शब्द का प्रथम प्रयोग रुद्रट के 'काव्यालंकार' में मिलता है।[2] दण्डी के 'काव्यादर्श' में चित्ररचनाओं को 'दुष्कर' कहा गया है।[3] 'अग्निपुराण' में 'चित्र' और 'दुष्कर' को अलग-अलग शब्दालंकार माना गया है।[4] रुद्रट के 'काव्यालंकार' में 'अग्निपुराण' में विवेचित 'चित्र' और 'दुष्कर' के अन्तर्गत परिगणित सभी रचनाओं का आकलन 'चित्र' के अन्तर्गत ही हुआ है।[5] भोजराज के 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में 'दुष्कर' के अन्तर्गत परिगणित रचनाओं का विवेचन 'चित्र' के अन्तर्गत हुआ है।[6] इसके उपरान्त इस प्रकार की रचनाओं के लिये 'चित्र' शब्द का ही प्रयोग हुआ, 'दुष्कर' का प्रयोग हेमचन्द्र ने किया भी तो विशेषण के रूप में।[7]

२. संस्कृत के लक्षणग्रन्थों में 'चित्ररचनाओं' का विवेचन 'दुष्कर' अथवा 'चित्रालंकार' के नाम से शब्दालंकार के एक भेद के रूप में किया गया। हिन्दी में भी कतिपय आचार्यों ने संस्कृत के अनुकरण पर इनको 'चित्रालंकार' की संज्ञा दी और शब्दालंकार के भेद के रूप में इनका विवेचन किया।[8] किन्तु हिन्दी के अधिकांश आचार्यों ने इन्हें 'चित्रकवित्त' अथवा 'चित्रकाव्य' कहा और इनका विवेचन अलंकार से इतर स्वतन्त्र रूप में किया।[9] हिन्दी के प्रथम मान्य आचार्य केशवदास ने 'चित्रकवित्त' के नाम से इन रचनाओं का स्वतन्त्र अध्याय में विवेचन किया है।[10]

---

१. प्रस्तुत ग्रन्थ, अ० १, पृ० १-२
२. उपरिवत्, अ० १, पृ० ३ तथा अ० २, पृ० २०
३. उपरिवत्, अ० १, पृ० ४ तथा अ० २, पृ० २०
४. उपरिवत्, अ० १, पृ० ५ तथा अ० २, पृ० २२
५. उपरिवत्, अ० २, पृ० २०-२२
६. उपरिवत्, अ० १, पृ० ६ तथा अ० २, पृ० २५
७. उपरिवत्, अ० १, पृ० ७
८. चिन्तामणि, कुलपतिमिश्र, पदुमनदास, भूषण, लछिराम आदि, द्रष्टव्य, प्रस्तुत ग्रन्थ के द्वितीय अध्याय में इनका विवेचन
९. केशवदास, भिखारीदास, जगत सिंह, काशिराज, गोकुलकवि, जनराज प्रभृति, साथ ही द्रष्टव्य, प्रस्तुत ग्रन्थ के द्वितीय अध्याय में इनका विवेचन
१०. प्रस्तुत ग्रन्थ, अ० १, पृ० १०

३. चित्ररचनाओं के लिये 'चित्रकाव्य' संज्ञा का प्रयोग ईसा की ९वीं शताब्दी में शिवस्वामी रचित 'कप्फिणाभ्युदय' में मिलता है।[१] दसवीं शताब्दी में आनन्दवर्धन रचित 'देवीशतक' के टीकाकार कैयट ने भी इस शब्द का प्रयोग इन रचनाओं के लिये ही किया है।[२] आगे चलकर 'चित्रंकाव्यम्' पद का प्रयोग इसी अनुबन्ध में मम्मट भी करते हैं।[३] अलंकारशेखरकार केशव मिश्र तथा 'अलंकार कौस्तुभ' में कविकर्णपूर ने भी इन रचनाओं के लिये 'चित्रकवित्त' संज्ञा का प्रयोग किया है।[४] हिन्दी में प्रारम्भ से ही इन रचनाओं के लिये 'चित्रकवित्त' तथा 'चित्रकाव्य' शब्द का प्रयोग बहुलता से होने लगा था, यद्यपि 'चित्रालंकार' शब्द का प्रयोग भी किसी-किसी ने किया।[५] आगे चलकर जब उत्तर अलंकार के एक भेद 'चित्रोत्तर' को भी अर्थालंकार के अन्तर्गत 'चित्रालंकार' की संज्ञा मिल गई तो इन रचनाओं के लिये 'चित्रकाव्य' शब्द ही रूढ़ होने लगा। आज इस प्रकार की रचनाओं की एकमात्र संज्ञा 'चित्रकाव्य' है।

४. संस्कृत में 'चित्रकाव्य' का विवेचन करने वाले आचार्यों के तीन वर्ग हैं—

(क) प्रथम वर्ग में दण्डी, रुद्रट, अग्निपुराणकार, भोजराज, हेमचन्द्र आदि आते हैं जिन्होंने 'वर्ण', 'स्थान', स्वर', 'गति' तथा 'बन्ध' जैसे 'चित्र' के प्रमुख तथा 'प्रश्नोत्तर,' 'प्रहेलिका', 'गूढ़', 'च्युतादि' गौण भेदों के लक्षण-उदाहरण दिये हैं, और इस प्रकार 'चित्र' का सर्वाङ्गपूर्ण विवेचन किया है।

(ख) द्वितीय कोटि में मम्मट, रुय्यक, जयदेव, विद्याधर, विश्वनाथ जैसे परवर्ती आचार्य हैं, जिन्होंने केवल 'आकार' अथवा 'बन्ध चित्र' का विवेचन किया है।

(ग) तृतीय वर्ग में उन आचार्यों का स्थान है जिन्होंने रुद्रटादि द्वारा कथित 'चित्र' के गौण भेद 'प्रश्नोत्तरादि' का ही विस्तार से विवेचन किया है। इस कोटि में धर्मदास, देवेश्वर तथा विश्वेश्वर का नाम प्रमुख है। इनके अतिरिक्त अजितसेन ने 'प्रश्नोत्तरादि' का भी विस्तृत विवेचन किया है और 'बन्धचित्र' का भी। वर्णस्वरादि 'चित्र' के अन्य भेदों का विवेचन उन्होंने नहीं किया।

५. किन्तु संस्कृत काव्यकृतियों में 'चित्र' के उपर्युक्त प्रमुख भेदों की ही रचना हुई। उनमें भी 'बन्धचित्र' की रचना ही प्रमुख रही। बन्धेतरचित्रों में 'गतिचित्र' के अन्तर्गत 'गोमूत्रिका', 'सर्वतोभद्र', 'अर्धभ्रम', 'प्रतिलोमानुलोम' के विभिन्न भेद, 'वर्णचित्र' में 'द्व्यक्षर,' 'स्थानचित्र' में 'निरोष्ठ्य' तथा 'गूढ़' में 'गूढ़चतुर्थ' की रचना कवियों को बड़ी प्रिय रही। इनमें भी 'द्व्यक्षर' के श्लोक हमें सर्वाधिक प्राप्त होते हैं। 'एकाक्षरपाद', 'अतालव्य' के श्लोक भी

---

१. प्रस्तुत ग्रन्थ, अ० १, पृ० ९, पा० टि० ३ तथा अ० ५ पृ० ४२६

२. उपरिवत्, अ० १, पृ० ९, पा० टि० ३

३. उपरिवत्, अ० १, पृ० ९

४. उपरिवत्, अ० १, पृ० ९

५. चिन्तामणि, भूषण, कुलपति मिश्र, लछिराम आदि

कुछ अधिक मिलते हैं। अन्य भेदों की रचनाएँ क्वचित्-किंचित् ही प्राप्त होती हैं। 'प्रश्नोत्तरादि' की रचना जिनवल्लभ सूरि तथा कुछ जैन कवियों के अतिरिक्त संस्कृत के प्रमुख काव्यग्रन्थों में बिलकुल नहीं हुई है। धर्मदास आदि आचार्यों ने उदाहरण के रूप में इनकी रचनाएँ भी कीं। इस प्रकार संस्कृत 'चित्रकाव्य' की दोनों धाराएँ लगभग अलग-अलग रहीं।[१]

६. हिन्दी के सभी आचार्य चूँकि कवि भी हैं अतः हिन्दी में लक्षण में भी, और उदाहरणों के रूप में कविता में भी, संस्कृत में प्रचलित 'चित्रकाव्य' की उपर्युक्त विभिन्न धाराएँ एक में मिल गईं। चित्ररचयिताओं ने बन्धादिचित्रों के साथ 'प्रश्नोत्तर' के कतिपय भेदों की रचनाएँ भी अनिवार्य रूप से कीं।[२] आचार्यों ने 'चित्र' के अन्य भेदों के साथ 'प्रश्नोत्तरादि' का भी विवेचन किया।[३] किन्तु हिन्दी में 'चित्रकाव्य' के क्षेत्र में संस्कृत का बहुत कम अनुकरण हुआ। 'बन्धचित्र' में विभिन्न बन्धों के संस्कृत नाम को अपनाकर भी कवियों ने न्यास तथा निर्माणविधि अपनी रखी।[४] 'प्रश्नोत्तर' के जो भेद हिन्दी में प्रचलित रहे उनमें भी संज्ञा तथा विषय दोनों में हिन्दी कवियों अथवा आचार्यों ने पर्याप्त परिवर्तन किये।[५] साथ ही 'नियमाक्षर', 'नवकोष्ठगति', 'मध्याक्षरगुप्त', 'लिपि' तथा 'अंक-चित्र' जैसे नवीन भेदों की कल्पना भी की गई।[६] इन परिवर्तनों, रचनाओं तथा यहाँ तक कि जिन चित्रभेदों में संस्कृत का अनुकरण किया भी गया, उनके विवेचन में कवियों तथा आचार्यों ने हिन्दी की प्रकृति, प्रवृत्ति तथा तत्कालीन युग की माँग का सर्वदा ध्यान रखा।

७. संस्कृत में प्रारम्भ में 'समस्या' तथा 'प्रहेलिका' को भी 'चित्र' के भेदों में रखा गया था[७] किन्तु बाद में इन्हें 'चित्र' की सीमा के अन्तर्गत स्थान न मिला। हिन्दी में भी यद्यपि 'प्रहेलिका' तथा 'समस्या' की रचना प्रचुर परिमाण में हुई; किन्तु 'चित्र' के अन्तर्गत इनका आकलन नहीं हुआ। चित्रकवियों ने भी अपनी रचनाओं में इन्हें सम्मिलित नहीं किया।[८]

---

१. द्रष्टव्य, प्रस्तुत ग्रन्थ के पंचम अध्याय में संस्कृत काव्यकृतियों का विवेचन विशेषतः पृ० ४७२-७४

२. उपरिवत्, अ० २, पृ० ९३-९६

३. उपरिवत्, अध्याय २, विभिन्न आचार्यों का विवेचन

४. द्रष्टव्य, प्रस्तुत ग्रन्थ के तृतीय अध्याय में बन्धचित्रों का सैद्धान्तिक विवेचन

५. द्रष्टव्य, प्रस्तुत ग्रन्थ के चतुर्थ अध्याय में प्रश्नोत्तर के विभिन्न भेदों का विवेचन

६. द्रष्टव्य, चतुर्थ अध्याय में इन चित्रों का विवेचन; नियमाक्षर की रचना केशवदास, नवकोष्ठगति की काशिराज, मध्याक्षरगुप्त की भिखारी दास तथा गोकुल कवि तथा लिपि और अंकचित्र की रचना भारतेन्दु ने की है।

७. द्रष्टव्य, प्रस्तुत ग्रन्थ, अ० २, पृ० २२, अग्निपुराण का विवेचन

८. उपरिवत्, द्वितीय अध्याय में हिन्दी आचार्यों का विवेचन

८. न तो संस्कृत में और न हिन्दी में ही 'चित्रकाव्य' का कोई ऐसा लक्षण दिया जा सका है जो इन रचनाओं की प्रकृति तथा प्रवृत्ति का पूर्ण संकेत दे सके। भोज तथा हेमचन्द्र जैसे आचार्यों ने लक्षण के स्थान पर 'चित्रकाव्य' के प्रमुख भेदों का उल्लेख किया है।[१] रुद्रट तथा 'अग्निपुराण' में अवश्य इन रचनाओं की विशेषताओं की ओर थोड़ा संकेत किया गया है।[२] हिन्दी में भी भूषण तथा कुलपति मिश्र जैसे एकाध आचार्यों द्वारा प्रदत्त लक्षणों में चित्ररचनाओं की प्रकृति की ओर थोड़ा संकेत मिलता है।[3] हिन्दी के अधिकांश आचार्यों ने या तो कोई लक्षण ही नहीं दिया या फिर संस्कृत के अनुकरण पर चित्ररचनाओं के भेदों का ही उल्लेख किया।

लक्षण के उपरान्त संस्कृत तथा हिन्दी के लगभग सभी प्रमुख आचार्यों ने 'चित्रकाव्य' के क्षेत्र के अतिविस्तार का उल्लेख करते हुए स्वीकार किया है कि उन्होंने इसका दिङ्मात्र प्रदर्शन किया है।[४]

९. 'बन्धचित्र' के सिवा संस्कृत के आचार्यों ने लगभग सभी चित्रों की सीमा निर्धारित कर दी है। 'वर्ण', 'स्थान' तथा 'स्वर' नियमों की रचना एक प्रकार से चार की संख्या तक निश्चित थी।[५] अर्थात् 'वर्णचित्र' में एक, दो, तीन अथवा चार व्यंजनों का प्रयोग ही किसी श्लोक में स्वीकृत था। इसी प्रकार 'एक', 'द्वि', 'त्रि' अथवा 'चतुः स्थान' से उच्चरित वर्णों से निर्मित छन्द ही 'स्थानचित्र' के अन्तर्गत परिगणित होते थे तथा 'स्वरचित्र' में भी चार स्वरों तक का प्रयोग ही वांछनीय था। हिन्दी में 'स्थानचित्र' में अधिकांश आचार्यों ने 'निरोष्ठ' का विवेचन किया है। केवल काशिराज ने इसके दस भेदों का विवेचन किया, जिनमें संस्कृत के 'चतुःस्थान नियम' तक का अनुकरण है।[६] 'स्वरचित्र' में भी केवल 'अमात्रिक' को रखा गया।[७] काशिराज ने 'सर्वलघुस्वर' तथा 'सर्वगुरुस्वर' नाम से 'स्वरचित्र' के दो अन्य भेदों का विवेचन अवश्य किया, किन्तु इनमें संस्कृत का अनुकरण नहीं है।[८] 'वर्ण' अथवा 'व्यंजनचित्र' के क्षेत्र को हिन्दी में चार की सीमा से बढ़ाकर केशवदास ने २६ वर्णों से युक्त छन्द तक ला दिया।[९] भिखारीदास ने यद्यपि रचना सात वर्णों से युक्त छन्द तक ही की, किंतु सिद्धान्त में केशवदास के २६ वर्णों के प्रयोग तक को स्वीकार किया।[१०] गोकुलकवि ने भी रचना आठ वर्णों से युक्त छन्द तक की ही की,

---

१. द्रष्टव्य, प्रस्तुत ग्रन्थ, अ० २, पृ० २५ तथा २९
२. उपरिवत्, अ० २, पृ० २० तथा २२
३. उपरिवत्, अ० २, पृ० ५५
४. उपरिवत्, अ० २,
५. द्रष्टव्य, प्रस्तुत ग्रन्थ, अ० ४, पृ० २७९-८४
६. उपरिवत्, अ० २, पृ० ७०
७. उपरिवत्, अ० २, पृ० ९४
८. उपरिवत्, अ० २, पृ० ७४
९. द्रष्टव्य, प्रस्तुत ग्रन्थ, अ० २, पृ० ५२ तथा अ० ४, पृ० २८७-८८
१०. उपरिवत्, अ० २, पृ० ६५ तथा अ० ४, पृ० २८७—८८

किन्तु सिद्धान्त में केशवदास तथा भिखारीदास से भी एक कदम आगे बढ़कर ३६ वर्णों से निर्मित छन्द तक को भी 'वर्णचित्र' के अन्तर्गत स्थान दिया।[1] 'स्थानचित्र' तथा 'स्वर चित्र' को मिलाकर 'निरोष्ठामत्त' नाम से एक ऐसे छन्द की रचना हिन्दी के अधिकांश कवियों ने की जिसमें न तो किसी ओष्ठ्य वर्ण का प्रयोग हुआ और न किसी मात्रा का।[2] संस्कृत में इस प्रकार का छन्द प्राप्त नहीं होता। 'गतिचित्र' की सीमा संस्कृत में एक प्रकार से निश्चित रही। इसके अन्तर्गत 'गोमूत्रिका', सर्वतोभद्र; 'अर्धभ्रम' (अग्निपुराण ने इन्हें बन्धचित्र के अन्तर्गत रखा है)[3] 'पद', 'पाद', 'अर्ध', 'श्लोक' तथा 'श्लोकान्तर गतागत' अथवा 'अनुलोमप्रतिलोम', 'रथगति', 'अश्वगति' तथा 'गजबन्ध' को स्थान मिला।[4] भोज ने 'धेनु' का विवेचन भी 'गोमूत्रिका' के साथ किया।[5] हिन्दी में इनमें से 'अर्धभ्रम', 'रथगति' तथा 'गजपद' का विवेचन अथवा रचना बिलकुल नहीं हुई। अन्य सभी भेदों की रचना हिन्दी में भी हुई। 'धेनु' में यद्यपि केवल 'कामधेनु' को ही हिन्दी में स्थान मिला, पर वह कवियों को अत्यन्त प्रिय रहा। 'सर्वतोभद्र' के एक अन्य भेद की कल्पना भी हिन्दी में की गई जिसे मण्डलाकार उपस्थित किया गया।[6] यहाँ 'सर्वतोभद्र' संज्ञा की सार्थकता इसमें देखी गई कि मण्डलाकार चित्र में निर्मित कोष्ठकों में हम चाहे जिस कोष्ठक से पाठ आरम्भ करें हमें अन्त में एक पूर्ण छन्द की प्राप्ति होती है। किन्तु 'सर्वतोभद्र' के इस रूप में और हिन्दी में गृहीत 'कामधेनु' के छन्द में किसी प्रकार का अन्तर न रहा; फलतः ये दोनों अभिन्न हैं। हिन्दी में 'कामधेनु' को दो अर्थों में ग्रहण किया गया। एक में छन्द की रचना इस प्रकार की रही कि उनसे संख्या में अनेक छन्द निःसृत हुए तथा दूसरे में संस्कृत के समान ऐसे छन्दों की रचना हुई जिनसे प्रकार में अनेक छन्द निःसृत होते थे।[7]

'गतागत' अथवा 'अनुलोमप्रतिलोम' के सभी भेदों की रचना हिन्दी में भी हुई है। 'अश्वगति' की रचना भी हिन्दी चित्रकवियों ने पर्याप्त मात्रा में की। 'गतिचित्र' के अन्तर्गत इन चित्रों के साथ हिन्दी में 'त्रिपदी' तथा 'मन्त्रीगति' नाम से नवीन भेदों की कल्पना की गई।[8] किन्तु इन चित्रभेदों का कोई विशेष महत्त्व इसलिये नहीं हुआ कि हिन्दी के अधिकांश कवियों ने 'गोमूत्रिका', 'त्रिपदी', 'अश्वगति' तथा 'मन्त्रीगति' के लिए एक ही छन्द की रचना की जिसका वर्णक्रम संस्कृत में प्रचलित 'षोडशदल पद्मबन्ध' का रहा। फलतः इन चित्रों में न कोई चमत्कार आ सका और न इनका कोई महत्त्व ही रहा। 'नवकोष्ठगति'

१. प्रस्तुत ग्रन्थ, अ० २, पृ० ७९
२. उपरिवत्, अ० ४, पृ० ३००
३. उपरिवत्, अ० २, पृ० २३
४. उपरिवत्, अ० ४, पृ० २७८-७९
५. उपरिवत्, अ० २, पृ० २५ तथा २७
६. उपरिवत्, अ० ४, पृ० ३२६
७. उपरिवत्, अ० ४, पृ० ३२९
८. उपरिवत्, अ० ४, पृ० ३०८ तथा ३१३

नाम की रचना केवल काशिराज की 'चित्रचन्द्रिका' में प्राप्त होती है,[१] संस्कृत में इस प्रकार की कोई रचना नहीं दीखती।

चित्र के गौण भेदों में 'गुप्त' अथवा 'गूढ़' तथा 'च्युत', 'दत्त' और 'च्युतदत्त' में से संस्कृत में प्रत्येक के चार-चार भेद किये गये। इस प्रकार 'गुप्त' की रचना 'क्रिया', 'कारक', 'सम्बन्ध' तथा 'पादगुप्त' नाम से चाररूपों में की गई जिनमें 'कारकगुप्त' के अन्तर्गत विभिन्न कारकों के आधार पर 'कर्तृ', 'कर्म' आदि उपभेद स्वीकृत हुए।[२] हिन्दी में इनमें से केवल 'पादगूढ़' की रचना गृहीत हुई। 'चरणगुप्त' के नाम से हिन्दी में जो छन्द रचे गये उनमें संस्कृत के 'पादगूढ़' से अतिरिक्त चमत्कार का भी सन्निवेश हुआ। इन छन्दों में 'सर्वतोभद्र' के समान प्रतिकोष्ठक एक वर्ण की रीति से न्यास की पद्धति अपनाई गई। कोष्ठकों की संख्या उतनी ही रहती थी जिनमें छन्द के अन्तिम चरण के अतिरिक्त अन्य चरणों के वर्णों का न्यास हो सके। छन्द के अन्तिम चरण के वर्ण विशेषपद्धति से कोष्ठकों में न्यस्त वर्णों में से ही प्राप्त होते थे।[३] संस्कृत के 'पादगूढ़' में भी 'गुप्तपाद' के वर्ण श्लोक के अन्य पादों से ही निकलते थे, किन्तु उनका कोई क्रम नहीं होता था — लिखित पादों में 'गुप्तपाद' के सारे वर्ण बिखरे होते थे। इसके विपरीत हिन्दी में 'गुप्तपादों' के उद्धार का एक सुनिश्चितक्रम होता था।

'चरणगुप्त' के अतिरिक्त 'गुप्तवरण' के नाम से एक अन्य प्रकार के छन्द भी हिन्दी में रचे गये जिसे मैंने 'मध्याक्षरगुप्त' कहना अधिक समीचीन समझा है।[४] इस छन्द की विशेषता यह है कि एक निश्चित क्रम से वर्ण लेने पर कवि का नाम तथा परिचय निःसृत होता है। इस प्रकार के किसी छन्द की रचना संस्कृत में नहीं मिलती।

'च्युत', 'दत्त' तथा 'च्युतदत्त' के चारों प्रकारों के नाम क्रमशः 'मात्राच्युत', 'अर्धमात्रा-च्युत' 'बिन्दुच्युत' तथा 'वर्णच्युत' हैं।[५] किसी-किसी आचार्य ने 'विसर्गच्युत' को भी एक भेद माना है।[६] 'दत्त' तथा 'च्युतदत्त' के भी ये ही चार प्रकार संस्कृत में माने गये हैं। हिन्दी में सामान्यतः 'च्युतादि' का कोई भेद गृहीत नहीं हुआ। केवल भिखारीदास ने तथा उन्हीं के अनुकरण पर गोकुलकवि ने 'वर्णच्युत', 'वर्णदत्त' अथवा 'वर्णच्युतदत्त' के स्थान पर 'वर्णवृद्धि' (वर्णागम), 'वर्णलोप' तथा 'वर्णपरिवर्तन' के रूप में 'पाठान्तर' नाम से 'चित्र' के एक प्रकार का विवेचन किया तथा उदाहरण के रूप में छन्दों की रचनाएँ कीं।[७] 'पाठान्तर' वस्तुतः

---

१. प्रस्तुत ग्रन्थ, अ० ४, पृ० ३३४

२. उपरिवत्, अ० २, पृ० ३१ तथा अमरचन्द्र की काव्यकल्पलतावृत्ति, प्रतान ३, स्तबक ५

३. द्रष्टव्य, प्रस्तुत ग्रन्थ, अ० ४, पृ० ३४६

४. द्रष्टव्य, प्रस्तुत ग्रन्थ, अ० ४, पृ० ३४९

५, उपरिवत्, अ० २, पृ० ३१

६. द्रष्टव्य, काव्यकल्पलतावृत्ति (अमरचन्द्र), प्रतान ३, स्तबक ५

७. द्रष्टव्य, प्रस्तुत ग्रन्थ, अ० २, पृ० ६४ तथा अ० ४, पृ० ३४२

संस्कृत का 'वर्णच्युतादि' है, किंचित् अन्तर केवल 'वर्णच्युतदत्त' तथा 'वर्णपरितंन' में है। 'वर्णच्युतदत्त' में 'च्युत' और 'दत्त' का संयोग तो रहता है, किन्तु श्लोक में 'च्युत' और 'दत्त' वर्णों के स्थान भिन्न भी हो सकते हैं, जबकि पाठान्तर के अन्तर्गत 'वर्णपरिवर्तन' में किसी विशेष वर्ण का ही परिवर्तन होता है। इन दोनों कवियों के अतिरिक्त हिन्दी में अन्यत्र कहीं 'पाठान्तर' की रचना अथवा विवेचन नहीं किया गया।

संस्कृत में धर्मदास ने 'विदग्धमुखमण्डन' में 'प्रश्नोत्तर' की ४३ जातियों के लक्षण-उदाहरण दिये।[१] हिन्दी में 'प्रश्नोत्तर' के केवल ९ भेदों की रचना की गई।[२] इन भेदों में संस्कृत से केवल प्रेरणा ली गई है, अनुकरण बिलकुल नहीं किया गया। स्वयं हिन्दी के विभिन्न आचार्यों ने 'प्रश्नोत्तर' की कतिपय रचनाओं के लिये भिन्न संज्ञाओं का प्रयोग किया। इस प्रकार 'अन्तर्लापिका' तथा 'बहिर्लापिका' का उल्लेख यद्यपि संस्कृत के किसी लक्षणग्रन्थ में प्राप्त नहीं होता किन्तु सुभाषितग्रन्थों में इस नाम की रचनाएँ प्रचुर परिमाण में संकलित हैं। इन दोनों ही प्रश्नोत्तरप्रकारों के क्रमशः तीन-तीन भेदों की रचना 'आद्यक्षरी', 'मध्याक्षरी' तथा 'अन्ताक्षरी' के नाम से हिन्दी में पर्याप्त हुई हैं। भिखारीदास द्वारा रचित 'बहिर्लापिका' का भेदविशेष, जिसे मैंने 'सर्वतोभद्रबहिर्लापिका' की संज्ञा दी है, केवल 'काव्यनिर्णय' में ही प्राप्त होती है।[३] संस्कृत अथवा हिन्दी में अन्यत्र इसका कोई उदाहरण नहीं मिलता।

हिन्दी में रचित 'प्रश्नोत्तर' के अन्य भेदों—'प्रश्नोत्तर' अथवा 'चित्रोत्तर', 'व्यस्त-समस्तोत्तर', 'शृंखलोत्तर', 'गूढ़ोत्तर' अथवा 'गुप्तोत्तर', 'नागपाशोत्तर', 'कमलबन्धोत्तर' तथा 'शासनोत्तर' की रचना संस्कृत में प्राप्त नहीं होती किन्तु उर्दू-फारसी में 'दो सखुना' अथवा 'सेहसखुना' के नाम से इस प्रकार की रचनाएँ हुई हैं।[४] स्वतः हिन्दी में केशवदास तथा उनका अनुकरण करनेवाले आचार्यों अथवा कवियों ने जहाँ इस रचना को 'शासनोत्तर' की संज्ञा से अभिहित किया है वहाँ भिखारीदास तथा उनका अनुकरण करनेवाले आचार्यों ने इसके लिये 'एकानेकोत्तर' संज्ञा का प्रयोग किया है।[५] रचना की प्रकृति को देखते हुए ये दोनों ही नाम सार्थक हैं। किन्तु केशवदास तथा इस क्षेत्र में उनके अनुयायियों ने 'एकानेकोत्तर' संज्ञा का प्रयोग 'प्रश्नोत्तर' के उस भेद के लिये किया है जिसे भिखारीदास तथा उनका अनुकरण करनेवाले कवियों तथा आचार्यों ने 'कमलबन्धोत्तर' कहा है।[६] 'प्रश्नोत्तर' के इस भेदविशेष को संस्कृत में 'पद्मोत्तर' की संज्ञा मिली है,[७] यद्यपि धर्मदास के 'पद्मोत्तर' तथा

१. प्रस्तुत ग्रन्थ, अ० २, पृ० ३९
२. उपरिवत्, अ० ४, पृ० ३५३
३. उपरिवत्, अ० ४, पृ० ३५७
४. द्रष्टव्य, प्रस्तुत ग्रन्थ, अ० ५, पृ० ४७५
५. उपरिवत्, अ० ४, पृ० ३९०
६. उपरिवत्, अ० ४, पृ० ३९३
७. उपरिवत्, अ० ४, पृ० ३९३

हिन्दी के 'कमलबन्धोत्तर, में एक अन्तर यह है कि जहाँ हिन्दी में सभी उत्तरों के अन्तिम-वर्ण एक ही हैं और उसका न्यास कमल के कोश में होता है, वहाँ संस्कृत में सभी उत्तरों के आदि वर्ण समान हैं और वही कोश में न्यस्त होता है। तत्त्वतः ये दोनों अभिन्न हैं। यही कारण है कि 'प्रश्नोत्तर' के इस भेदविशेष के लिये मैंने 'कमलबन्धोतर' संज्ञा रखी है।

संस्कृत में 'व्यस्तसमस्त' का विवेचन पर्याप्त विस्तार से हुआ है। हिन्दी में केशव-दास द्वारा प्रस्तुत 'व्यस्तसमस्तोत्तर' की कोई समता संस्कृत में विवेचित 'व्यस्तसमस्त' से नहीं है, बल्कि केशवदास की यह रचना 'विदग्धमुखमण्डन' का 'वर्द्धमानाक्षर' है।[1] भिखारीदास ने 'व्यस्तसमस्त' के भी दो भेद किये और एक का नाम 'व्यस्तसमस्त' ही रखा किन्तु दूसरे को 'क्रमव्यस्तसमस्त' कहा।[2] भिखारीदास द्वारा कथित 'व्यस्तसमस्त' तथा संस्कृत के 'व्यस्तसमस्त' में तात्त्विक अभिन्नता है और साथ ही उनका 'क्रमव्यस्तसमस्त' केशवदास के 'व्यस्तसमस्त' तथा धर्मदास के 'वर्द्धमानाक्षर' से अभिन्न है।[3] इस प्रकार हिन्दी में रचित 'व्यस्तसमस्तोत्तर' की पूर्ण परम्परा संस्कृत में प्राप्त होती है।

केशवदास ने 'प्रश्नोत्तर' के जिस भेदविशेष को 'प्रश्नोत्तर' कहा है भिखारीदास ने उसे 'चित्रोत्तर' कहा है।[4] धर्मदास ने इसी प्रकार की रचना को संस्कृत में 'प्रश्नोत्तरसम जाति' की संज्ञा दी है। केशवदास ने अपने नामकरण में धर्मदास का अनुकरण किया है। भिखारीदास ने 'चित्रोत्तर' संज्ञा अप्पय दीक्षित के 'कुवलयानन्द' से ली। अप्पय दीक्षित ने अर्थालंकार के अन्तर्गत उत्तर अलंकार के भेदविशेष के रूप में 'प्रश्नोत्तर' के इस भेदविशेष का उल्लेख किया है। केशवदास द्वारा गृहीत नाम अतिव्याप्ति दोष से दूषित है, कारण इस प्रकार की सभी रचनाओं का सामान्य नाम भी 'प्रश्नोत्तर' है। भिखारी-दास ने अपने नामकरण में इस दोष को दूर कर दिया है।

हिन्दी में विवेचित तथा रचित 'शृंखलोत्तर' की परम्परा संस्कृत में धर्मदास तथा विश्वेश्वर द्वारा विवेचित 'शृंखला' में प्राप्त होती है तथा हिन्दी के 'गूढ़ोत्तर' अथवा 'गुप्तोत्तर' की समानता कुछ दूर तक 'विदग्धमुखमण्डन' की 'कथितापह्नुति' में मिलती है।[5] 'नागपाशोत्तर' के नाम से हिन्दी में रचित 'प्रश्नोत्तर' के भेदविशेष की समानता संस्कृत की 'नागपाशजाति' से न होकर बहुत कुछ 'शृंखला' के एक भेद 'एकान्तरित शृंखला' से है,[6] किन्तु बिलकुल अभिन्नता संस्कृत के किसी भी भेद से नहीं है। संस्कृत में विवेचित 'प्रश्नोत्तर' के अन्य भेदों की रचना हिन्दी में नहीं हुई।

१. प्रस्तुत ग्रन्थ, अ० ४, पृ० ३७५
२. उपरिवत्, अ० ४, पृ० ३७८
३. उपरिवत्, अ० ४, पृ० ३७५-७८
४. उपरिवत्, अ० ४, पृ० ३७१
५. उपरिवत्, अ० ४, पृ० ३८१, ३८८
६. उपरिवत्, अ० ४, पृ० ३९०

१०. 'प्रश्नोत्तर' के क्षेत्र में संस्कृत तथा हिन्दी में नाम तथा विषय की उपर्युक्त भिन्नताओं के अतिरिक्त सबसे बड़ा अन्तर यह है कि संस्कृत श्लोकों में रखे गये प्रश्नों के 'उत्तर-शब्द' जहाँ बाहर से ढूँढ़ने पड़ते हैं, वहाँ हिन्दी में 'बहिर्लापिका' के अतिरिक्त ये 'शब्द' सम्बद्ध छन्द के अन्तिम अंश में ही नियोजित होते हैं।[१] यही कारण है कि भिखारीदास ने 'बहिर्लापिका' के अतिरिक्त 'प्रश्नोत्तर' के अन्य सभी भेदों को 'अन्तर्लापिका' के भेदों के रूप में रखा है।[२] 'प्रश्नोत्तर' की यह रचनाविधि हिन्दी की ऋजुता की द्योतक है, कारण उत्तरदाता को उत्तर का शब्द प्राप्त करने के लिये परिश्रम नहीं करना पड़ता।

११. बन्धेतर चित्र के अन्तर्गत 'अंकाक्षरी', 'लिपिचित्र' (अंकचित्र), 'नियमाक्षर' तथा 'कल्पवृक्ष' अथवा 'उदधिबन्ध चित्र' की रचना हिन्दी की अपनी विशेषता है।[3] इन चित्रों की कल्पना में हिन्दी किसी की ऋणी नहीं है। अन्य प्रचलित चित्रों के अन्तर्गत जिन नवीन उपभेदों की रचना हिन्दी में हुई है, उनका उल्लेख ऊपर हो चुका है।

१२. 'भाषाचित्र' के क्षेत्र में हिन्दी ने संस्कृत का अनुकरण नहीं किया है, वरन् युग की प्रवृत्ति तथा पाठकों की आवश्यकता के अनुकूल छन्दों की रचना हुई है। संस्कृत के श्लोकों में संस्कृत, विभिन्न प्राकृत तथा अपभ्रंश के शब्दों का प्रयोग होता था, हिन्दी में प्रारम्भ में संस्कृत, अरबी, फारसी, तुर्की, व्रज, मारवाड़ी, बंगाली तथा खड़ी बोली आदि के, जिन्हें 'देशभाषा' अथवा 'भाषा' कहा जाता था, शब्दों का प्रयोग हुआ, किंतु अंगरेजी शब्दों तथा मुहावरों को भी अपनाया गया।[४] इस प्रकार हिन्दी में रचित 'भाषाचित्र' के छन्द कहीं अधिक चमत्कार पैदा करने में समर्थ सिद्ध हुए।

१३. 'स्थानचित्र' के अन्तर्गत संस्कृत में यद्यपि कतिपय आचार्यों ने अपने उदाहरणों में वर्णों के साथ ही मात्राओं के प्रयोग में भी स्थानविशेष का बन्धन स्वीकार किया है, किन्तु अन्य आचार्यों तथा लगभग सारे कवियों ने मात्राओं के प्रयोग में स्वतन्त्रता बरती है।[५] हिन्दी में भी स्थानचित्र के छन्दों में मात्राओं के प्रयोग में कोई बन्धन नहीं रखा गया है। यह बात और है कि भिखारीदास जैसे एकाध कवियों के छन्द मात्राओं के क्षेत्र में भी छन्द में प्रयुक्त उच्चारणस्थानविशेष की सीमा में ही रचे गये हैं।[६]

१४. संस्कृत में भोजराज ने और हिन्दी में काशिराज ने 'बन्धचित्र' तथा 'आकार-चित्र' को भिन्न मानकर विवेचन किया है।[७] किन्तु ये दोनों चित्र अभिन्न हैं।[८] न

१. द्रष्टव्य, प्रस्तुत ग्रन्थ के चतुर्थ अध्याय में विवेचित विभिन्न प्रश्नोत्तर तथा वि० मु० मं० में विवेचित प्रश्नोत्तर के उदाहरण पृ० ३५३-३९७

२. द्रष्टव्य, प्रस्तुत ग्रन्थ अ० ४, पृ० ३५४ अथवा अ० २, पृ० ६४

३. उपरिवत्, अ० ४, पृ० क्रमशः ३६८, ४०३, २८७, ४०४

४. उपरिवत्, अ० ४, पृ० ३९९

५. उपरिवत्, अ० ४, पृ० २९३ पा० टि० ५

६. उपरिवत्, अ० ४, पृ० २८८

७. द्रष्टव्य, प्रस्तुत ग्रन्थ, अ० २, पृ० २५, ७०

८. उपरिवत्, पृ० २५ तथा ३४

संस्कृत में और न हिन्दी में ही अन्य किसी आचार्य ने इन्हें भिन्न माना है। इन्हें भिन्न मानने का कोई संगत आधार नहीं है।

१५. न तो संस्कृत में और न हिन्दी में 'बन्ध' अथवा 'आकारचित्र' की कोई ऐसी परिभाषा दी गई है जिससे इनकी सीमा स्पष्ट हो। 'अग्निपुराण' में दिये गये 'बन्धचित्र' के लक्षण से इनकी प्रकृति के स्पष्टीकरण में सहायता अवश्य मिलती है।[१]

१६. 'बन्धचित्र' की न तो सीमा और न संख्या ही निर्धारित की जा सकती है। बन्धों की न्यासविधियों के सम्बन्ध में भी यही बात सत्य है। इस क्षेत्र में आचार्यों ने कवियों के ऊपर कोई बन्धन नहीं रखा है। साथ ही संस्कृत तथा हिन्दी में भी कवियों ने अपनी इस स्वतन्त्रता का पूर्ण उपयोग किया है। फिर भी कतिपय बन्धचित्रों की कुछ विशेष न्यासविधियाँ अधिक प्रचलित रही हैं और कवियों ने उनकी रचना में प्रचलित परिपाटी अपनाई है।[२]

१७. विभिन्न बन्धों के लिये उन्हीं संज्ञाओं का प्रयोग किया गया, जिन वस्तुओं के आकार में उनकी रचना की गयी। इस सृष्टि में प्राप्त प्रत्येक वस्तु के आकार के रूप में बन्धों की रचना की जा सकती है। संस्कृत में प्रारम्भ में इन बन्धों की संख्या बहुत थोड़ी थी, धीरे-धीरे इनकी संख्या में विकास होता गया और १७वीं-१८वीं शताब्दी में यह संख्या इतनी अधिक हो गई कि किसी एक कवि के लिये इन सभी की रचना सम्भव न रही। साथ ही एक ही बन्ध की विभिन्न न्यासपद्धतियाँ भी अपनाई गई।[3]

हिन्दी में केशवदास ने केवल छह बन्धों के छन्द दिये हैं, किन्तु धीरे-धीरे इन बन्धों की संख्या में वृद्धि होती गई है। हिन्दी के 'बन्धचित्र' के सम्बन्ध में ध्यातव्य है कि हिन्दी के बन्धों में संस्कृत का अनुकरण एकाध बन्ध को छोड़कर प्रायः नहीं हुआ। हिन्दी-बन्धों की न्यास तथा उद्धारविधियाँ अपनी हैं, किन्तु यहाँ भी एक ही बन्ध के लिये विभिन्न कवियों द्वारा एकाधिक न्यासविधियाँ अपनाई गई हैं।[४]

१८. संस्कृत तथा हिन्दी दोनों में सबसे अधिक 'कमलबन्ध' की रचना हुई है। दलों की संख्या के आधार पर इन कमलबन्धों की संज्ञा तथा न्यासविधि में भिन्नता आती है। संस्कृत में 'चतुर्दल', 'अष्टदल', 'द्वादशदल', 'षोडशदल' के अतिरिक्त २४, ३२, ४८ तथा ९६ दलों से युक्त 'कमलबन्ध' का भी निर्माण हुआ है। किन्तु सर्वाधिक प्रचलित केवल 'अष्टदल' तथा 'षोडशदलपद्म' हैं।[५] हिन्दी में भी 'कमलबन्ध' में दलों की संख्या ४, ८, ९, १०, १२, १६, १८, १९, २० २१, २४ तक जाती है।[६] संस्कृत तथा हिन्दी में रचित 'पद्मबन्धों' में

१. प्रस्तुत ग्रन्थ, अ० ३, पृ० ९९

२. उपरिवत्, अ० २, पृ० ४५ तथा ९५-९६

३. उपरिवत्, अ० ३, पृ० ९९ तथा अ० ५ में विवेचित चित्रकाव्य : स्वरूप और विकास

४. उपरिवत्, अ० २, पृ० ५३ तथा ९४-९६ और अ० ३ में विभिन्न बन्धों का सैद्धान्तिक विवेचन

५. उपरिवत्, अ० ५, के अन्तर्गत विवेचित संस्कृत काव्यकृतियों में चित्रकाव्य का स्वरूप और विकास

६. उपरिवत्, अ० २, पृ० ९४-९६ तथा अ० ३ की चित्रसंख्या १-३ तथा ५-२३

दलों की संख्या के सम्बन्ध में एक स्पष्ट अन्तर यह है कि संस्कृत में दलों की संख्या जहाँ सर्वदा युग्म है, वहाँ हिन्दी में इस प्रकार का कोई बन्धन नहीं है। इसका कारण यह है कि संस्कृत के 'पद्मबन्धों' में न्यस्त श्लोक के वर्णवृत्त होने के कारण उनमें वर्णों की संख्या युग्म होती है। किन्तु हिन्दी में दोहा तथा छप्पय का ही प्रयोग 'पद्मबन्ध' के लिये किया गया है। दोहा चूँकि मात्रिक छन्द है अतः इसमें वर्णों की संख्या निश्चित नहीं होती, फलतः न्यास में दलों की संख्या विषम भी हो जाती है।[१]

संस्कृत में 'चतुर्दलकमल' की रचना रुद्रट के 'काव्यालंकार' में मिलती है।[२] हिन्दी में 'चतुर्दलकमल' में एक न्यासविधि तो रुद्रट की अपनायी गई है,[३] किन्तु 'प्रबीनसागर' में रचित 'चतुर्दलकमल' की न्यासविधि हिन्दी की अपनी है।[४] 'अष्टदलकमल' के लिये संस्कृत में भी एकाधिक न्यासविधियाँ प्रचलित हैं, किन्तु हिन्दी में इनमें से किसी का अनुकरण नहीं किया गया है। आठ से लेकर २४ दलों से युक्त 'कमलबन्ध' के लिये हिन्दी में अधिकतर एक ही प्रकार के न्यास का प्रयोग किया गया है और उसमें संस्कृत में सर्वाधिक प्रचलित 'षोडशदल कमल' की न्यासविधि को अपनाया गया है। इस न्यास के लिये जिस छन्द का निर्माण होता है उसमें प्रत्येक युग्मवर्ण को एक ही रखा जाता है। चित्र में इस वर्ण का न्यास कोश में होता है तथा अन्य वर्ण क्रमशः दलों में न्यस्त होते हैं।[५]

'द्वादश' तथा 'षोडशदल कमलबन्धों' के लिये हिन्दी में एक अन्य न्यासविधि का भी प्रयोग पर्याप्त मात्रा में किया गया है। इसके अनुसार इन बन्धों में न्यस्त होनेवाले छन्द छप्पय होते हैं, जिनकी छहों पंक्तियों के मध्यम तथा अन्तिम वर्ण एक ही होते हैं, जिनका न्यास कोश में किया जाता है तथा उनके पूर्व के अंशों को क्रमशः ऋजुगति से दलों में लिख दिया जाता है।[६] 'षोडशदल कमलबन्ध' में न्यास के लिये इस छप्पय की अन्तिम दोनों पंक्तियों को चार टुकड़ों में बाँट दिया जाता है, जिनके अन्तिम वर्ण एक ही होते हैं। इन टुकड़ों को क्रमशः कमल के दलों में लिख दिया जाता है।[७]

संस्कृत में भी 'षोडशदल कमल' की एकाधिक न्यासविधियाँ हैं, किन्तु हिन्दी में उनका अनुकरण नहीं किया गया है। 'प्रबीनसागर' में 'अष्टदल', 'षोडशदल' तथा अन्य कई 'कमलबन्धों' की रचना की गई है, किन्तु उनमें संस्कृत का अनुकरण नहीं है।

सामान्य 'कमलबन्ध' के साथ 'नामांककमलबन्ध' की रचना भी संस्कृत में हुई है।[८] हिन्दी में 'चित्रकलाधर' में 'नामांककमलबन्ध' का चित्र प्राप्त होता है,[९] किन्तु दोनों

१. द्रष्टव्य, प्रस्तुत ग्रन्थ, अ० ३, चित्रसंख्या ८-९ तथा १९

२. काव्यालंकार, अ० ५, श्लोक २१, तथा प्रस्तुत ग्रन्थ, पृ० २०

३. द्रष्टव्य, प्रस्तुत ग्रन्थ, अ० ३, चित्रसंख्या १

४. उपरिवत्, अ० ३, चित्रसंख्या २

५. उपरिवत्, अ० ३, चित्रसंख्या ८, ९, १३, १७, १८ तथा १९

६. उपरिवत्, अ० ३, चित्रसंख्या १०-१२

७. उपरिवत्, अ० ३, चित्रसंख्या १४-१५

८. द्रष्टव्य, प्रस्तुत ग्रन्थ, अ० २, पृ० २७ तथा अ० ५, पृ० ४४०-४१

९. द्रष्टव्य, प्रस्तुत ग्रन्थ, अ० ३, चित्रसंख्या ११

स्थानों में न्यास तथा उद्धार की पद्धति भिन्न-भिन्न है। इसके अतिरिक्त 'प्रबीनसागर' में नियोजित एक 'षोडशदलपद्म' से गर्भाङ्क के रूप में एक सोरठा निःसृत होता है।[1] इस प्रकार की योजना संस्कृत में कहीं प्राप्त नहीं होती। कुल मिलाकर हिन्दी में 'चतुर्दलकमल' तथा 'षोडशदलकमल' की एक-एक न्यासविधि संस्कृत से ली गई है, अन्य सारे न्यास हिन्दी के कवियों की अपनी कल्पना हैं।

१९. 'कमलबन्ध' में संस्कृत तथा हिन्दी में अपनायी जानेवाली छन्दरचना तथा न्यासविधियों से स्पष्ट है कि हिन्दी 'कमलबन्धों' के न्यास अधिक सरल हैं और उनमें संस्कृत से अधिक ऋजुता है।

२०. 'कमलबन्ध' के बाद संस्कृत में जो 'बन्ध' सर्वाधिक प्रिय रहा है, वह है 'चक्रबन्ध'। आरों की संख्या के अनुसार 'चक्रबन्ध' का न्यास भी बदलता है। संस्कृत में 'चक्रबन्ध' के 'चतुरर', 'षडर' तथा 'अष्टार' सर्वाधिक प्रचलित भेद हैं। इनके अतिरिक्त १८ तथा ३२ आरों से युक्त 'चक्रबन्धों' की रचना भी संस्कृत में हुई है।[2] एकाध कवियों ने 'द्विचतुष्कचक्र' तथा 'विवडितचक्र' का निर्माण भी किया है।[3] हिन्दी में 'द्विचतुष्कचक्र' तथा 'विवडित चक्रबन्ध' की रचना केवल काशिराज ने की है और उनमें संस्कृत का अनुकरण है।[4]

अन्य भेदों में हिन्दी में केवल 'चतुरर', 'षडर' तथा 'अष्टार' की रचना ही हुई है। संस्कृत में 'चतुरर चक्र' की रचना भी कम ही मिलती है किन्तु हिन्दी में इसकी रचना पर्याप्त मात्रा में हुई है। 'षडर चक्र' का संस्कृत में विशेष महत्त्व है, इसका कारण यह है कि संस्कृत काव्य में नियोजित प्रायः सभी 'षडरचक्र' 'कविकाव्यनामांक' है। 'शिशुपालवध' में जिन दो बन्धों की रचना हमें संस्कृत में सर्वप्रथम प्राप्त होती है, उनमें एक 'षडर चक्र' ही है और उससे कवि तथा काव्य से नाम निःसृत होते हैं।[5] संस्कृत में प्रायः कवियों ने अपने सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा है। अपने सम्बन्ध में कुछ कहना उस काल में वांछनीय नहीं माना जाता था। ऐसी स्थिति में कवि के नाम तथा अन्य परिचय की योजना के कारण इस बन्ध का अत्यधिक महत्त्व हो जाता है। रुद्रट ने भी 'काव्यालंकार' में तथा आनन्दवर्धन ने 'देवीशतक' में जिन चक्रों की योजना की है, उनसे भी उनका परिचय प्राप्त होता है।[6] किन्तु ये चक्र क्रमशः अष्टार तथा ३२ आरों के हैं। 'अष्टार चक्र' की रचना संस्कृत में पर्याप्त प्रिय रही है, किन्तु इसमें गर्भाङ्क की योजना बहुत कम कवियों ने की है।

---

१. प्रस्तुत ग्रन्थ, अ० ३, चित्रसंख्या १६
२. द्रष्टव्य, प्रस्तुत ग्रन्थ, अ० ५, पृ० ४४८ चित्रसंख्या ९७, पृ० ४२८
३. उपरिवत्, अ० ५, पृ० ४४१ तथा अ० २, पृ० २७
४. उपरिवत्, अ० ३, चित्रसंख्या ३२, ३३ तथा ३४
५. द्रष्टव्य, प्रस्तुत ग्रन्थ, अ० ५, पृ० ४२२ तथा चित्रसंख्या २७, पृ० १५७
६. उपरिवत्, चित्रसंख्या २९ तथा ९७

संस्कृत में 'षडरचक्र' की एक ही न्यासविधि सर्वत्र अपनाई गई है किन्तु 'अष्टारचक्र' की एकाधिक पद्धतियाँ हैं इसका कारण यह है कि 'षडरचक्र' में जहाँ एक ही बड़े श्लोक की आवश्यकता होती है वहाँ 'अष्टारचक्र' में एकाधिक श्लोकों का न्यास होता है।

हिन्दी में 'चतुरर चक्र' की दो न्यासविधियाँ मिलती हैं। इनमें एक न्यासविधि संस्कृत की है, जबकि दूसरी हिन्दी की अपनी कल्पना है।[1] 'षडरचक्र' में संस्कृत की विधि हिन्दी में बिल्कुल नहीं अपनाई गई है। हिन्दी में 'षडरचक्र' के दो प्रकार के चित्र मिलते हैं, एक में परिधि के अतिरिक्त केन्द्र और परिधि के मध्य में आरों को काटता हुआ एक दूसरा मण्डल भी होता है, दूसरे प्रकार का चित्र संस्कृत के चित्र के समान होता है, किन्तु हिन्दी में इस चित्र को 'चक्रबन्ध' के स्थान में 'चन्द्रबन्ध' कहा गया है।[2] चक्र की इस संज्ञा की कोई सार्थकता नहीं दीख पड़ती, पर 'काव्यनिर्णय', 'चित्रकलाधर' तथा 'रावणेश्वर कल्पतरु' में, जहाँ इस बन्ध की योजना है, यही संज्ञा दी गई है। दोनों प्रकार के चित्रों की न्यासविधियाँ अलग-अलग हैं, किन्तु उनमें भी संस्कृत का अनुकरण नहीं है। हिन्दी के 'अष्टारचक्र' में अवश्य अमरचन्द्र की 'काव्यकल्पलतावृत्ति' में रचित 'अष्टारचक्र' की न्यासपद्धति अपनाई गई है,[3] किन्तु संस्कृत 'चक्रबन्धों' में यह पद्धति प्रचलित नहीं रही है। हिन्दी 'चक्रबन्ध' में न्यास की पद्धति इसी के अनुकूल है। हिन्दी में 'चक्रबन्धों' में छन्दों का जैसा न्यास होता है, इसमें बहुधा स्खलन दीख पड़ता है। संस्कृत के 'चक्रबन्धों' में विभिन्न आरों तथा परिधिखण्डों में न्यस्त वर्णों की संख्या परस्पर समान होती है, किन्तु हिन्दी में इसमें अक्सर व्यतिक्रम आ जाता है। यह हिन्दी में 'बन्धचित्र' के चमत्कार के ह्रास का सूचक है। फिर भी भिखारीदास तथा कतिपय अन्य कवियों द्वारा नियोजित 'षडरचक्र' संस्कृत की तुलना में तनिक भी कम उत्कृष्ट नहीं हैं, बल्कि यदि संस्कृत के 'षडरचक्र' से नामांक को छोड़ दिया जाय तो हिन्दी के ये 'षडरचक्र' उनसे कहीं अधिक उत्कृष्ट सिद्ध होंगे। 'अष्टारचक्र' में यह उत्कृष्टता हिन्दी में नहीं रहती।

२१. हिन्दी 'षडरचक्र' में सामान्यतः छप्पय छन्द का न्यास किया जाता है, तथा छन्द के अन्तिम चरण का उत्तरार्द्ध अन्य चरणों के न्यासों से ही विशेषक्रम से स्वतः निःसृत होता है। न्यास की यह योजना हिन्दी की अपनी कल्पना है।

२२. आयुधाकार बन्धों में 'खड्गबन्ध' की रचना संस्कृत में अधिकता से हुई है। संस्कृत में 'खड्गबन्ध' में न्यास के लिये दो श्लोकों की रचना सर्वदा हुई है।[4] 'खड्गबन्ध' की रचना हिन्दी में भी कम नहीं हुई है, किन्तु हिन्दी के 'खड्गबन्ध' में दो छन्दों का न्यास कम चित्रों में हुआ है, अधिक चित्रों में एक ही छन्द का न्यास है।[5] 'खड्गबन्ध' के न्यास का

---

१. प्रस्तुत ग्रन्थ, चित्रसंख्या २४ तथा २५

२. उपरिवत्, चित्रसंख्या ३७-३८

३. द्रष्टव्य, प्रस्तुत ग्रन्थ, चित्रसंज्या ३०-३१

४. उपरिवत्, अ० ३, पृ० १९२ तथा अ० २ और अ० ५ में संस्कृत चित्रकाव्य का विवेचन

५. उपरिवत्, चित्रसंख्या ४६-४७

छन्द हिन्दी में सामान्यतः दोहा है। न्यास की पद्धति यद्यपि संस्कृत से समानता रखती है, किन्तु मूठ में वर्णों के न्यासक्रम में थोड़ा-बहुत अन्तर भी पड़ता है।

'मुशल' तथा 'शूल' के जो चित्र हिन्दी में मिलते हैं, संस्कृत से उनकी किसी प्रकार की समता नहीं है। हिन्दी में 'शूलबन्ध' की एकाधिक न्यासविधियाँ हैं, जिनमें परस्पर बहुत थोड़ा अन्तर है।[1]

'धनुषबन्ध' की रचना सम्पूर्ण हिन्दी 'चित्रकाव्य' में प्रायः एक ही पद्धति पर की गई है। हिन्दी में यह बन्ध प्रिय रहा है और प्रायः सभी चित्रकवियों ने इसकी रचना की है। किन्तु यह बन्ध तथा इसकी न्यासविधि हिन्दी की अपनी कल्पना है। संस्कृत में भी 'धनुषबन्ध' की पर्याप्त रचना हुई है किन्तु वहाँ धनुष को अलग और बाण को अलग 'बन्ध' माना गया है। हिन्दी के सभी 'धनुषबन्ध' शरयुक्त हैं, अतः हिन्दी और संस्कृत में इस बन्ध के न्यास में किसी प्रकार की समता नहीं है।[2] 'अंकुश' तथा 'मुद्गर' बन्धों का केवल उल्लेख भर 'अग्निपुराण' में मिलता है, उनके बन्ध प्राप्त नहीं होते।[3] अतः हिन्दी में प्राप्त ये बन्ध हिन्दी के हैं।

इनके अतिरिक्त 'कुठार', 'कटार', 'ढाल' तथा 'बन्दूक' बन्धों की रचना हिन्दी की अपनी है। 'ढाल' की एकाधिक न्यासविधियाँ प्राप्त हुई हैं।[4] 'कुठार' तथा 'कटार' के सभी चित्र एक ही न्यासविधि के अनुकूल हैं।[5] 'बन्दूक' का केवल एक ही चित्र प्राप्त होता है।

२३. 'हारबन्ध' की रचना हिन्दी में यथेष्ट हुई है।[6] यह बन्ध हिन्दी कवियों के अनुकूल दीखता है। संस्कृत में भी 'हारबन्ध' की बहुत अधिक रचनाएँ हुई हैं। किन्तु हिन्दी कवियों में केवल पदुमनदास ने अपने 'हारबन्ध' में संस्कृत की केवल एक न्यास-पद्धति अपनाई है[7] अन्यथा 'हारबन्ध' में छन्दों के न्यास की सभी विधियाँ हिन्दी की अपनी कल्पना हैं। संस्कृत में भी 'हारबन्ध' की एकाधिक न्यासविधियाँ हैं, यहाँ तक कि 'पंचजिनहारबन्धस्तव', 'चतुर्हारावली स्तव', 'हारबन्ध स्तोत्र' आदि ग्रन्थों की रचना 'हारबन्ध' को लेकर ही हुई।[8]

२४. 'नागबन्ध' के सात प्रकार के चित्रबन्धों की रचना हिन्दी में प्राप्त होती है।[9] इनमें से केवल एक बन्ध संस्कृत में रचित 'नागबन्ध' के अनुकूल है।[10] अन्य सभी बन्ध

---

१. प्रस्तुत ग्रन्थ, चित्रसंख्या ५६, ५७, ५८ तथा ५९
२. उपरिवत्, चित्रसंख्या ५२, ५३ तथा ५५
३. उपरिवत्, अ० २, पृ० २३
४. उपरिवत्, चित्रसंख्या ६०-६१
५. उपरिवत्, चित्र स० ५१ तथा ४८-४९
६. द्रष्टव्य, प्रस्तुत ग्रन्थ, चित्र स० ३९-४५
७. उपरिवत्, चित्रसंख्या ४४-४५
८. उपरिवत्, अ० ५, पृ० ४४८-४५० तथा ४५६
९. उपरिवत्, चित्रसंख्या ६८ से ७४ तक
१०. उपरिवत्, चित्रसंख्या ६७ तथा ६८

हिन्दी के अपने हैं। 'नागबन्ध' का जो चित्र संस्कृत के समान है उसके न्यास में एक अन्तर यह है कि संस्कृत में जहाँ नाग की कुण्डली से निर्मित कोष्ठकों में प्रतिकोष्ठक एक वर्ण ही लिखा जाता है वहाँ हिन्दी में न्यस्त वर्णों की संख्या अधिक हो जाती है। किन्तु इससे न्यासपद्धति में किसी प्रकार का अन्तर नहीं आता। हिन्दी में छन्द के आग्रह से प्रतिकोष्ठक वर्णों की संख्या बढ़ जाती है।

२५. 'छत्रबन्धों' में भी सात प्रकार की न्यासविधियाँ हिन्दी में अपनाई गई हैं,[1] किन्तु वे सभी हिन्दी की अपनी हैं। संस्कृत में भी 'छत्रबन्धों' की रचना हुई है और उनके एकाधिक न्यास भी हैं। पर उनसे किसी प्रकार की समानता हिन्दी के किसी 'छत्रबन्ध' में नहीं है। 'काव्यनिर्णय' तथा 'चित्रकलाधर' में नियोजित 'छत्रबन्ध' के न्यास की पद्धति इन कवियों द्वारा नियोजित 'षडरचक्र' की है, अन्तर केवल इतना है कि चक्र के छह आरों के स्थान में छत्र में सात कमानी तथा एक दण्ड हैं। इस प्रकार उपर्युक्त 'षडरचक्र' की न्यास-विधि पर रचित 'अष्टारचक्र' को ही छत्र के रूप में उपस्थित किया गया है।[2] हिन्दी की अन्य सभी न्यासविधियाँ सामान्य कोटि की हैं।

२६. 'चामरबन्ध' की रचना संस्कृत में अधिकता से हुई है। हिन्दी में 'चामरबन्ध' बहुत अधिक नहीं रचा गया पर इसमें न्यास की एकाधिक विधियाँ अपनाई गईं।[3] संस्कृत में 'चामरबन्ध' की एक ही न्यासविधि सर्वमान्य रही।[4] हिन्दी के चित्रकवियों ने भी 'चामरबन्ध' में अधिकतर संस्कृत की न्यासविधि का ही अनुकरण किया है। तुलसीदास के 'रामचरितमानस' में जो एक चौपाई मिलती है उससे 'चामरबन्ध' की भी रचना होती है। 'चामरबन्ध' की अन्य न्यासविधियाँ बहुत प्रचलित न रहीं। एकाध कवियों ने ही उनको अपनाया भी।

२७. संस्कृत के प्राचीनतम बन्धों में 'मुरजबन्ध' का स्थान है।[5] यह बन्ध संस्कृत में अत्यन्त प्रिय रहा और प्रायः सभी कवियों ने इसके छन्द रचे हैं। यद्यपि इसकी एक ही रचनाविधि सर्वाधिक प्रचलित रही, किन्तु अजितसेन ने अपनी 'अलंकार चिन्तामणि' में 'मुरजबन्ध' की अन्य न्यासविधियाँ भी उपस्थित की हैं। हिन्दी चित्रकवियों को 'मुरजबन्ध' बहुत अधिक प्रिय न रहा। फिर भी हिन्दी में 'मुरजबन्ध' के चार प्रकार की रचनाएँ प्राप्त होती हैं।[6] किन्तु इनमें से किसी में संस्कृत की कोई भी न्यासविधि गृहीत नहीं हुई है। भिखारीदास तथा गोकुलकवि द्वारा रचित 'मुरजबन्ध' के चित्र अत्यन्त ही उत्कृष्ट कोटि के हैं।

---

१. उपरिवत्, चित्रसंख्या ७६ से ८२ तक
२. उपरिवत्, चित्रसंख्या ७६ तथा ३१
३. उपरिवत्, चित्रसंख्या ८३ तथा ८४
४. उपरिवत्, अ० ३, पृ० २५२
५. द्रष्टव्य, प्रस्तुत ग्रन्थ, अ० ५, पृ० ४२२ तथा चित्रसंख्या ८५
६. उपरिवत्, चित्रसंख्या ८६, ८७, ८९ तथा ९०

२८. हिन्दी में रचित अन्य सारे चित्र हिन्दी कवियों की अपनी कल्पना के द्वारा निर्मित हैं। केवल 'द्विशृंगाटकबन्ध' की रचना संस्कृत में भी हुई है। फिर भी काशिराज ने इस बन्ध में अपने नाम को गर्भांक के रूप में उपस्थित कर एक विशेषता ला दी है। 'कंकणबन्ध' की एक न्यासविधि में संस्कृत की विधि से प्रेरणा ग्रहण की गई है, किन्तु इस प्रकार यह चित्र हिन्दी के द्वितीय 'सर्वतोभद्र' का हो जाता है तथा छन्द कामधेनु' का।

२९. हिन्दी में बहुत सारे बन्ध ऐसे हैं जिनकी रचना हिन्दी में भी केवल एक ही कवि ने की है।[1] ऐसे बन्ध भी कम नहीं हैं जिनकी रचना एकाधिक कवियों ने की है किन्तु उनके न्यास की सारी विधियाँ अलग-अलग हैं। संस्कृत में भी इस सम्बन्ध में यह बात सत्य है। इस प्रकार चित्रकवियों को यह स्वतन्त्रता रही कि वे चाहे जिस वस्तु के आकार के रूप में बन्धों की रचना करें। साथ ही इन बन्धचित्रों में प्रयुक्त न्यासविधियों पर भी कोई बन्धन न रहा।

३०. बन्धचित्रों की रचना में सामान्यतः हिन्दी में सरलता की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। संस्कृत की तुलना में हिन्दी के बन्धों के न्यास में ऋजुता अधिक रही। 'चक्रबन्ध' 'नागबन्ध', 'छत्रबन्ध', 'हारबन्ध' तथा 'मुरजबन्ध' के कतिपय चित्र अवश्य अत्यन्त उत्कृष्ट सिद्ध हुए।

३१. बन्धों की उत्कृष्टता आवृत्ति की जटिलता पर निर्भर करती है। वस्तु-रूपाकार चित्र में छन्द के न्यास में प्रधान चमत्कार यही है कि स्थानविशेष पर न्यस्त वर्ण पाठ की विभिन्न गतियों के अनुकूल अनेकबार आवृत्त होते हैं।[2] हिन्दी के बन्धचित्रों में यह आवृत्तिगत चमत्कार संस्कृत की तुलना में बहुत कम है। संश्लेषणात्मक भाषा होने के कारण विभिन्न प्रकार के वांछित वर्णों से युक्त शब्दों के निर्माण की जो सुविधा संस्कृत में है, हिन्दी में उसका अभाव है। फलतः उत्कृष्ट बन्धों का निर्माण हिन्दी में कठिन हो जाता है।

३२. 'चित्रकाव्य' का विवेचन करनेवाले प्रथम आचार्य दण्डी हैं तथा 'चित्रकाव्य' की रचना करनेवाले प्रथम कवि भारवि। इस प्रकार संस्कृत में 'चित्रकाव्य' की रचना तथा विवेचन ईसवी सन् की छठी शताब्दी से आरम्भ होता है। बन्धचित्रों के प्रथम विवेचक रुद्रट हैं और काव्य में सबसे पहले बन्धचित्रों की रचना माघ कवि के 'शिशुपालवध' में

---

१. व्याघ्र, दुर्ग, बीटिका, चटाई, घण्टा, कलँगी, डोरी, मर्कटीजाल, जीनपोश, देवालय, सरोता, गोखा, नराकारधनुष, अष्टदल उछीर, पुष्पवृक्षग्रहलता, चतुर्गुच्छ, लहरी, जलागार, षट्कोणयन्त्र, अष्टकोणयन्त्र तथा अग्निकुण्ड।

२. द्रष्टव्य, प्रस्तुत ग्रन्थ, अ० ३, पृ० ९९

मिलती है। इस प्रकार संस्कृत में प्राप्त प्राचीनतम बन्ध 'मुरज' तथा 'नामांकचक्र' (षडर) हैं।

३३. सम्पूर्ण संस्कृत 'चित्रकाव्य' में बन्धेतर चित्रों की संख्या लगभग स्थिर रही है।[1] उनके भेदों-उपभेदों में भी किसी प्रकार का विकास नहीं हुआ। किन्तु बन्धचित्रों की संख्या में ईसा की छठी शताब्दी से लेकर शनैः-शनैः विकास होता गया और १७वीं-१८वीं शताब्दी तक आते-आते यह संख्या इतनी बड़ी हो गई कि इसका अनुमान करना दुस्तर कार्य है। इसका एक कारण यह भी है कि आगे चलकर जब रस को काव्य की आत्मा मान लिया गया तो इस प्रकार के काव्य का महत्त्व बिलकुल न रहा। फलतः इन रचनाओं से युक्त अधिकांश ग्रन्थ या तो हस्तलेख के रूप में ही पड़े हैं, जिनपर किसी का ध्यान नहीं गया है, अथवा महत्त्वहीन होने के कारण नष्ट हो गये हैं। 'अग्निपुराण' में जो बन्धचित्रों की एक सूची प्राप्त होती है,[2] उसमें से 'मुद्गर', 'त्रि' तथा 'चतुर्थ शृंगाट', 'अंकुश', 'नागपद', 'पुष्पकरिणी' तथा 'असिपुत्रिका' के चित्र तथा न्यास संस्कृत में कहीं प्राप्त नहीं होते। रुद्रट ने भी 'चित्र' के लक्षण में 'भङ्ग्यन्तर कृत तत्क्रम' पद का प्रयोग किया है। नमिसाधु ने 'कृततत्क्रम' पद का अर्थ 'सकल लोकप्रसिद्ध रचनापरिपाटी' किया है।[3] इस प्रकार उस काल में बन्धचित्रों की रचना की अधिकता का संकेत मिलता है, जिनमें से अनेक 'बन्ध' आज हमारे सम्मुख नहीं हैं।

काव्यग्रन्थों के साथ-साथ 'चित्रकाव्य' की बहुत अधिक रचनाएँ प्रारम्भ से ही स्तोत्रग्रन्थों में हुई हैं। जैन कवियों ने कितने ही ऐसे स्तोत्रग्रन्थों की रचनाएँ की हैं, जिनके सभी अथवा अधिकांश श्लोक चित्ररचनाओं, विशेषतः किसी न किसी 'बन्ध' से युक्त हैं।[4] बन्धचित्रों की संख्या तथा न्यास की विधियों में अतिशय विस्तार का प्रमुख श्रेय इन जैन कवियों को है। ईसा की चौदहवीं शताब्दी से लेकर १७वीं शताब्दी तक के चित्रसाहित्य का प्रमुख भाग जैन कवियों द्वारा रचित है।

३४. संस्कृत में चित्ररचनाओं की यह परम्परा अत्यन्त क्षीण रूप में, किन्तु आज भी वर्तमान है। बीसवीं शताब्दी में भी कतिपय लघुग्रन्थ ऐसे लिखे गये हैं,[5] जिनमें कतिपय चित्ररचनाएँ भी नियोजित हैं।

३५. संस्कृत में द्व्यर्थी, त्र्यर्थी तथा विलोम काव्यों की भी रचनाएँ की गई हैं, जो आचार्यों द्वारा दिये गये 'चित्रकाव्य' के लक्षण की सीमा में नहीं आते किन्तु उनकी रचना-

---

१. द्रष्टव्य, प्रस्तुत पुस्तक, अ० ५, पृ० ४७२

२. उपरिवत्, अ० २, पृ० २३

३. उपरिवत्, अ० २, पृ० २०

४. उपरिवत्, अ० ५ के अन्तर्गत संस्कृत काव्यकृतियों का विवेचन

५. उपरिवत्, अ० ५, पृ० ४७०-७२

पद्धति तथा उनका उद्देश्य उन्हें 'चित्रकाव्य' के क्षेत्र में समाहित कर देता है। ये रचनाएँ ईसा की १६वीं शताब्दी में अधिकांशतः हुई हैं।[1]

३६. हिन्दी में 'चित्रकाव्य' का वास्तविक आरम्भ केशवदास से हुआ है। केशवदास के पूर्व खुसरो तथा रहीम रचित 'भाषाचित्र' के कतिपय छन्द, जमाल की 'अंकाक्षरी' तथा 'द्विसन्धान काव्य' के रूप में नन्ददास की 'मानमंजरी' प्राप्त होती है। साथ ही दक्खिनी हिन्दी के कवि मुहम्मद कुल्ली कुतुब द्वारा रचित 'कामधेनु' का एक छन्द भी मिलता है।[2] 'रामचरितमानस' की पंक्ति "धरु धरु मारु मारु धरु मारू। सीस तोरि गहि भुजा उपारू॥" की रचना 'चित्रकाव्य' की दृष्टि से अयत्नज है, यद्यपि इनसे कतिपय बन्धों का निर्माण हो सकता है।[3]

केशवदास आचार्य और कवि दोनों थे। उन्होंने 'चित्रकाव्य' के विवेचन में प्रमुखतः संस्कृत का आधार लिया है, किन्तु अनुकरण नहीं किया है। 'प्रश्नोत्तर' के भेदों के नामकरण, उनके छन्दों की रचना में उन्होंने हिन्दी की प्रवृत्ति का पूरा ध्यान रखा है। इसी प्रकार 'नियमाक्षर शब्दरचना' नामक 'चित्र' के द्वारा अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। अन्य चित्रभेदों में भी उन्होंने उनका विवेचन किया है जिनकी रचना संस्कृत-कवियों ने की है तथा हिन्दी में भी उनकी ही रचनाएँ हुई हैं। केशव द्वारा विवेचित बन्धों के न्यास अत्यन्त सरल हैं। अनेक बन्धों के लिये एक ही छन्द की रचना की परिपाटी, जो हिन्दी में अधिक अपनाई गई, केशवदास से चलती है। उदाहरण के छन्दों में केशवदास ने संस्कृत के आचार्यों से नहीं, बल्कि संस्कृतकवियों से प्रेरणा ग्रहण की है।[4]

३७. संस्कृत की तरह हिन्दी में भी 'चित्रकाव्य' की रचनाएँ केशवदास से लेकर अद्यावधि होती रही हैं। युग की परिस्थितियों के अनुकूल उनमें परिवर्तन अवश्य हुए। रीतिकाल में 'चित्रकाव्य' के क्षेत्र में अन्य कवियों ने केशवदास का अनुकरण अधिक किया। उस काल में चित्ररचनाएँ इतना अधिक प्रचलित थीं कि सुन्दरदास (छोटे) जैसे सन्तकवि ने भी उनके भेदोपभेदों के काफी अधिक छन्द रचे हैं।[5] आगे चलकर बाबा दीनदयाल गिरि तथा महन्थ रसिक बिहारी की रचनाओं में भी 'चित्र' के छन्द एक बड़ी संख्या में प्राप्त होते हैं।[6]

३८. 'चित्रकाव्य' के विवेचन के क्षेत्र में केशवदास तथा भिखारीदास ये दो मौलिक आचार्य हिन्दी में हैं। केशवदास ने अपने विवेचन में संस्कृत का आधार लिया है, किन्तु भिखारीदास का विवेचन उनका अपना है।[7] 'चित्रकाव्य' का वर्गीकरण, उनके भेदों-उप-

---

१. प्रस्तुत पुस्तक, अ० ५, पृ० ४५३

२. द्रष्टव्य, प्रस्तुत पुस्तक, अ० ५, पृ० ४७५-७९ तथा ४८१-८२

३. उपरिवत्, अ० ५, पृ० ४८०

४. द्रष्टव्य, प्रस्तुत पुस्तक, अ० ५, पृ० ४८२

५. उपरिवत्, अ० ५, पृ० ४८६

६. उपरिवत्, अ० ५, पृ० ५२७ तथा ५३५

७. उपरिवत्, अ० २, पृ० ४७-५३ तथा ६२-६७

भेदों का नामकरण, उनके उदाहरणों की रचना सभी भिखारीदास का अपना है। उन्होंने अपने विवेचन में हिन्दी में रचे जानेवाले 'चित्रकाव्य' के समस्त भेदों को स्थान दिया है। उनका वर्गीकरण पूर्णतः वैज्ञानिक है तथा नामकरण बिलकुल सटीक। हिन्दी के अन्य चित्र-रचयिताओं ने इन्हीं दोनों में से किसी एक का अनुकरण किया है। भिखारीदास का विवेचन अधिक वैज्ञानिक होने पर भी अनुकरण अधिक केशवदास का हुआ है।

३९. रीतिकालीन कविता भी अधिकांशतः संस्कृत के समान दरबार से ही सम्बद्ध रही। रीतिकालीन कवियों का प्रधान उद्देश्य भी अपने आश्रयदाता को प्रसन्न करना था। किन्तु रीतिकाल के दरबार का स्तर प्राचीनकाल की राजसभा की तुलना में इतना निम्न होता था कि उत्कृष्ट काव्य के लिये वहाँ स्थान न था। 'चित्रकाव्य' का आनन्द उठाने के लिये भी पर्याप्त सोचने-समझने की आवश्यकता होती है। रीतिकालीन आश्रयदाता तथा दरबारी इसमें असमर्थ थे। फलतः हिन्दी 'चित्रकाव्य' में उस उत्कृष्टता तथा चमत्कार का अनिवार्य अभाव है जो संस्कृत में हमें प्राप्त होता है। हिन्दी की विश्लेषणात्मक प्रकृति भी चित्ररचनाओं की उत्कृष्टता में बाधक सिद्ध हुई। हिन्दी चित्रों की सरलता तथा न्यास की ऋजुता का यही कारण है।

४०. हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल के आरम्भ के साथ 'चित्रकाव्य' की रचनाओं में भी परिवर्तन हुए। 'बन्ध' अथवा पूर्व कथित 'बन्धेतर चित्रों' की रचना अब कम हो गई और उनके स्थान पर 'आद्यक्षरी अन्तर्लापिका' की रचना अधिक होने लगी। अंग्रेजी के प्रचार से 'भाषाचित्र' के छन्दों में अंग्रेजी के शब्दों को स्थान मिला।[1] भारतेन्दु ने परम्परा से आती हुई चित्ररचनाओं के छन्द तो लगभग नहीं रचे, किन्तु इस क्षेत्र में 'लिपिचित्र' तथा 'अंकचित्र' जैसे नवीन चित्रप्रकारों की रचना की।[2] 'षडजादिस्वरचित्र' का एक पद भी भारतेन्दु ने उपस्थित किया, जिसका विवेचन संस्कृत में केवल 'सरस्वतीकण्ठाभरण' तथा हिन्दी में केवल 'चित्रचन्द्रिका' में प्राप्त होता है।[3] इनके अतिरिक्त 'प्रश्नोत्तर' की भी दो रचनाएँ उन्होंने कीं।[4] इसी काल में महावीर प्रसाद द्विवेदी, श्रीधर पाठक जैसे कवियों ने भी 'आद्यक्षरी' की रचना की।[5] स्वागत अथवा विदाई के अवसर पर की जानेवाली कविताओं में इस प्रकार की रचनाएँ अधिक प्रचलित हुईं।

४१ आधुनिक काल में और विशेषतः ईसा की बीसवीं शताब्दी में काव्य और आलोचना के क्षेत्र में नई मान्यताएँ स्थापित हुईं। व्रजभाषा का ह्रास हुआ और उसके स्थान पर खड़ी बोली काव्य की भाषा हुई। राजदरबार की अनुपस्थिति में दरबारी मनोवृत्ति

---

१. द्रष्टव्य, प्रस्तुत पुस्तक, अ० ५, पृ० ५१६, ५४०-४८ तथा ५६३

२. उपरिवत्, अ० ५, पृ० ५३०

३. उपरिवत्, अ० ५, पृ० ५३० तथा अ० ४, पृ० २८५-८६

४. उपरिवत्, अ० ५, पृ० ५३०

५. उपरिवत्, अ० ५, पृ० ५४१-४२

भी न रही। जीवन इतना अधिक व्यस्त हो गया कि मनोरंजन के लिये अवकाश मिलना दूभर सिद्ध हुआ। समृद्धि और अवकाश के अभाव में विलास के लिये भी स्थान न रहा। जीवन और काव्य का मूल्य भौतिक उपयोगिता की कसौटी पर आंका जाने लगा। ऐसी दशा में 'चित्रकाव्य' की रचना के लिये भला क्या अवसर हो सकता था? यहाँ तक कि आधुनिक आलोचकों की दृष्टि में चित्रकवि अथवा 'चित्र' का विवेचन करनेवाले आचार्य अत्यन्त हेय दीख पड़े।[१]

४२. 'चित्रकाव्य' कवियों के बौद्धिकविलास का प्रतिफलन है। इसकी रचना विशेषकर गोष्ठियों तथा विनोद के लिये होती थी।[२] इन रचनाओं का प्रधान गुण कुतूहलोत्पादन है।[3] साथ ही ये रचनाएँ कविसामर्थ्य यानी कवि की शब्दगुम्फनशक्ति की सूचक भी हैं।[४] इन रचनाओं में निहित कवियों का उद्देश्य मनोरंजन के साथ-साथ पाण्डित्यप्रदर्शन भी रहा है।[५] द्विसन्धान, त्रिसन्धान तथा विलोमकाव्यों का प्रधान उद्देश्य पाण्डित्यप्रदर्शन ही है। संस्कृत में 'चित्रकाव्य' का विवेचन शब्दालंकार के रूप में हुआ।[६] हेमचन्द्र तथा वाग्भट (द्वितीय) के अनुसार महाकाव्य के एक सर्ग को विभिन्न चित्ररचनाओं से युक्त होना चाहिये।[७] बन्धचित्रों की योजना में हमें प्राचीन भारत की विकसित कलाभावना का परिचय मिलता है। एक साथ ही एकाधिक कलाओं की रचना उस काल की विशेषता थी।[८] चित्र और काव्य दोनों का मिश्रण ही 'बन्धचित्र' के रूप में हमारे सम्मुख उपस्थित होता है। फिर भी 'चित्रकाव्य' की रचना का प्रधान उद्देश्य मनोरंजन तथा विनोद ही है।[९]

हिन्दी 'चित्रकाव्य' का एकमात्र उद्देश्य मनोरंजन ही रहा है। यही कारण है कि हिन्दी में 'चित्रकाव्य' के अधिकांश रचयिता या तो आश्रित दरबारी कवि रहे हैं अथवा स्वयं कोई राजा। महिरामन सिंह, बलवान सिंह (काशिराज), भुवनेश कवि प्रभृति राजा ही हैं।

SS SS SS

१. द्रष्टव्य, प्रस्तुत ग्रन्थ, अ० २, पृ० ८५, पाद टिप्पणी १

२. उपरिवत्, षष्ठ अध्याय

३. उपरिवत्, अ० ६, पृ० ५७६

४. उपरिवत्, अ० ६, पृ० ५७७

५. उपरिवत्, अ० ६, पृ० ५७६-७८

६. उपरिवत्, अ० २, संस्कृत आचार्यों के मत तथा अ० ६ में चित्ररचनाओं का साहित्यिक महत्त्व

७. उपरिवत्, अ० ६, पृ० ५६४

८. उपरिवत्, अ० ६, पृ० ५७८

९. उपरिवत्, अ० ६, पृ० ५७६-७७

मेरा विश्वास है कि संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओं में 'चित्रकाव्य' का विशाल-साहित्य है, जो अभी हस्तलेखों के रूप में यत्र-तत्र बिखरा पड़ा है। संस्कृत-हिन्दी के अतिरिक्त कम से कम संस्कृत से निकलने वाली अन्य भारतीय भाषाओं में भी इस काव्य की रचना अवश्य हुई होगी। गुजराती तथा मराठी में इन रचनाओं की प्रचुरता के सम्बन्ध में मुझे निश्चित उल्लेख मिले हैं,[1] भारतीयेतर भाषाओं में भी इस प्रकार की रचना सम्भव है। अंग्रेजी में ठीक इसी प्रकार की नहीं परन्तु छन्दयोजना के क्षेत्र में कुछ ऐसी रचनाएँ अवश्य हुई हैं जिनका उद्देश्य वही है जो 'चित्रकाव्य' का है।[2] चीनी भाषा में भी इसी कोटि की कतिपय छन्दयोजनाओं के उल्लेख मिलते हैं।[3]

---

१. जे० यू० बी०, कला सं० ३१, पृ० ९२ तथा ९५; महाराष्ट्रीय ज्ञनकोश, खण्ड-१३, पृ० १३०

२. जौर्ज हरबर्ट की कविताएँ तथा **Acrostic** और **Telestich** के नाम से आद्यक्षरी तथा अन्ताक्षरी की रचनाएँ

३. **The Arte of English poesie-by George puttenham, Chapte XI-XII (of proportion in figure),**

परिशिष्ट-१

चित्र सूची

परिशिष्ट-२

आकर ग्रन्थ सूची

संस्कृत

१. अग्निपुराण—सं० हरिनारायण आप्टे, आनन्दाश्रम, सन् १९०० ई० (आनन्दाश्रम ग्रन्थावली -४१)

२. अग्निपुराण—सं० मनसुखराय मोर, ५ क्लाइव रो, कलकत्ता, सन् १९५७ ई०

३. अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय भाग—सम्पादक तथा अनुवादक—राम लाल वर्मा शास्त्री, हिन्दी अनुसन्धान परिषद्, दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण, सन् १९५९ ई०

४. अजिय सन्ति थय (अजित शान्तिस्तव—नन्दिषेण, पंचप्रतीक रमण सूत्र (प्रबोध टीका), सन् १९५३ ई०

५. अपभ्रंश काव्यत्रयी—प्र० सम्पादक—बी० भट्टाचार्य, सम्पादक—लालचन्द्र भगवानदास गाँधी, गायकवाड़ ओरियन्टल सीरिज-३७, ओरियन्टल इन्स्टिट्यूट बरौदा, १९३७ ई०

६. अभिज्ञान शाकुन्तलम्—कालिदास, कालिदास ग्रन्थावली—सं० सीताराम चतुर्वेदी, अखिल भारतीय विक्रम परिषद्, काशी, द्वितीय संस्करण, सं० २००७ वि०

७. अभिधान रत्नमाला (हलायुद)—सम्पादक TH, AUFRECHT, Williams and Norgate 14 Heurictta Street, convent Garden, London and 20 South Frederich Street, Edinburgh, BOHN A. Marcus, Paris B. DUPART 1861. A. D.

८. अभिधान राजेन्द्र, भाग-३, प्रणेता—विजय राजेन्द्र सूरि, सं० १९७० वि० (१९१३ ई०)

९. अरनाथस्तव—श्रीवल्लभ, Descriptive Catalogue of the Government Collections of Mss. (Vol-XIX, Pt.-I, P.P. 12-13), Bombay, edited by H. R. Kapadia.

१०. अर्थरत्नावली—समयसुन्दर गणि, जिनदत्त सूरि पुस्तकोद्धार फण्ड, सं० ३०, बम्बई-१९३२ ई०

११. अलंकार कौस्तुभ—कविकर्णपूर गोस्वामी, सं० श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती, राधारमण प्रेस, बहरामपुर, मुर्शिदाबाद १३०५ बंगाब्द (बंगला लिपि में मुद्रित)

१२. अलंकार कौस्तुभ—कविकर्णपूर, सं० शिवप्रसाद भट्टाचार्य, वरेन्द्र रिसर्च सोसाइटी, राजशाही (बंगाल), प्रथम संस्करण, १९२६ ई०

१३. अलंकार चन्द्रिका (काव्यचन्द्रिका)—न्यायवागीश शर्मा, प्रकाशक—क्षेमराज, श्रीकृष्णदास श्रेष्ठि, बम्बई, सं० १९६९ वि०

१४. अलंकार चिन्तामणि—अजितसेन अथवा जिनसेन, सम्पादक—सखाराम नेमिचन्द, सोलापुर, मुद्रक—जैनेन्द्र मुद्रणालय, कोल्हापुर, शकाब्द १८२९

१५. अलंकारप्रदीप—विश्वेश्वर पण्डित, सम्पादक—विष्णु प्रसाद भण्डारी, हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला, काशी संस्कृत सीरिज, सं० ८, चौखम्बा, सन् १९२३ ई०

१६. अलंकार मणिहार—श्रीकृष्णब्रह्मतन्त्र परकालस्वामी, सम्पादक—एस० श्री निवासाचार्य, मैसूर, १९१७ ई०

१७. अलंकार महोदधि—नरेन्द्रप्रभसूरि, सम्पादक—लालचन्द्र भगवानदास गाँधी, गायकवाड़ ओरियन्टल सीरिज, ९५, बरोदा, सन् १९४२ ई०

१८. अलंकार मुक्तावली—विश्वेश्वर पाण्डेय, सम्पादक—विष्णुप्रसाद भण्डारी, हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला, काशी संस्कृत सीरिज-५४, चौखम्बा, सं० १९९४ वि०

१९. अलंकार शेखर—केशब मिश्र, सम्पादक—पण्डित शिवदत्त तथा काशीनाथ पाण्डुरंग, काव्यमाला ५०, १८९५ ई०

२०. अलंकार शेखर—केशव मिश्र, सम्पादक—अनन्तराम शास्त्री, काशी संस्कृत सीरिज-५६, चौखम्बा, सं० १९८४ वि०

२१. अलंकार सर्वस्व—राजानक रुय्यक, सम्पादक—म० म० पं० दुर्गाप्रसाद तथा काशीनाथ पाण्डुरंग परब, काव्यमाला-३५, सन् १८९३ ई०

२२ अलंकार सर्वस्व—राजानक रुय्यक, सम्पादक—गौरीनाथ पाठक, काशी, सं० १९९३ वि०

२३. अलिविलासि संलापो—म० म० गंगाधर शास्त्री, काशी, सं० १९६४ वि०

२४. आनन्दलेख—विनयविजय गणि, प्रशस्ति संग्रह (पृ० ९६-११९) में संकलित, प्रकाशक—देशविरति धर्माराधक समाज, अहमदाबाद, सं० १९९३ वि०

२५. ईश्वरशतक—अवतार कवि, काव्यमाला—गुच्छक ९ में संकलित, सम्पादक—म० म० पं० शिवदत्त वथा वासुदेव लक्ष्मण शास्त्री पणशीकर, द्वि० सं० १९१६ ई०

२६. एकावली—विद्याधर, सम्पादक कमलाशंकर प्राणशंकर त्रिवेदी, बम्बई संस्कृत सीरिज, गवर्नमेंट बुक डिपो, बम्बई, सन् १९०३ ई०

२७. कंकणबन्ध रामायण—कृष्णमूर्ति शास्त्री, History of Classical Sanskrit Literature by M.Krishnamachariar, Para-97

२८. कंकणबन्ध रामायण—चर्लभाष्यकार शास्त्री—History of Classical Sanskrit Literature by M. Krishnamachariar, Para-943.

२९. कप्फिणाभ्युदय—शिवस्वामी, सम्पादक—गौरीशंकर, प्रकाशक—पंजाब विश्वविद्यालय, लाहौर, सन् १९३७ ई०

३०. कमलमालिकास्तोत्र—वेंकटाचार्य—History of Classical Sanskrit Literature by M. Krishnamachariar, Para-34

३१. कप्पूरमंजरी—राजशेखर, सं० जीवानन्द विद्यासागर, कलकत्ता।

३२. कर्पूर मंजरी—राजशेखर, सं० Sten Konow, Harward University, 1901 A. D.

३३. कविकल्पलता—देवेश्वर, सम्पादक—रामगोपाल कविरत्न, सिद्धेश्वर प्रेस, कलकत्ता, सन् १९०० ई०

३४. कवीन्द्रकर्णाभरणम्—विश्वेश्वर, काव्यमाला, गुच्छक-८ में संकलित, सम्पादक पं० दुर्गा प्रसाद तथा काशीनथ पाण्डुरंग परब, द्वितीयावृत्ति, सन् १९११ ई०

३५. कादम्बरी—बाणभट्ट, सम्पादक—काशीनाथ पाण्डुरंग परब, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, नवम् संस्करण, १९४८ ई०

३६. कादम्बरी (हिन्दी)—बाणभट्ट, भाषान्तरकार—भगवत शरण उपाध्याय, राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली-६

३७. कादम्बरी (अंग्रेजी)—बाणभट्ट, भाषान्तरकार—एम० आर० काले, नारायण एण्ड कं० बम्बई, १९२४ ई०

३८. कालिदास ग्रन्थावली—सीताराम चतुर्वेदी, अखिल भारतीय विक्रम परिषद्, काशी, द्वि० सं० २००७ वि०

३९. काव्य कल्पलता वृत्ति—अमरचन्द्रयति, काश्मीर संस्कृत सीरिज ९०, चौखम्बा, १९३१ ई०

४०. काव्यदर्पण—राजचूड़ामणि दीक्षित, सम्पादक—पं० एस० सुब्रह्मण्यशास्त्री, श्री वाणीविलास प्रेस, श्रीरंचम

४१. काव्यदीपिका—कान्तिचन्द्र भट्टाचार्य, सम्पादक (व्याख्याकार) परमेश्वरानन्द शर्मा, मोतीलाल बनारसी दास, प्रथम संस्करण, १९९५ वि०

४२. काव्यप्रकाश—मम्मट, व्याख्याकार—डॉ० सत्यव्रत सिंह, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, द्वि० सं० १९६० ई०

४३. काव्यप्रदीप—गोविन्दकवि, काव्यमाला-२४, द्वि० सं०, सन् १९१२ ई०

४४. काव्यमीमांसा—राजशेखर, अनु० पं० केदारनाथ वर्मा सारस्वत, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, प्र० सं०, सन् १९५४ ई०

४५. काव्यविलास—चिरंजीव, सम्पा० गोपीनाथ कविराज, सरस्वतीभवन टेक्सट्स-१६, बनारस, १९२५ ई०

४६. काव्यादर्श — दण्डी, टीकाकार तथा सम्पादक — श्रीरामचन्द्र मिश्र, चौखम्बा, वाराणसी, सं० २०१५ वि०

४७. काव्यदर्श—दण्डी, सम्पादक नृसिंहदेव शास्त्री, लाहौर, द्वितीयावृत्ति, सं० १९९० वि०

४८. काव्यादर्श—दण्डी, सम्पादक—एस० के० वेलवलकर, पूना, सन् १९२४ ई०

४९. काव्यानुशासन —हेमचन्द्र, सम्पादक—रसिकलाल चन्द्र पारिख, श्री महावीर जैन विद्यालय, वम्बई, प्र० सं०, सन् १९३८ ई०

५०. काव्यानुशासन — वाग्भट (द्वितीय)—सम्पादक — पं० शिवदत्त तथा काशीनाथ पाण्डुरंग परब, काव्यमाला-४३, सन् १८९४ ई०

५१. काव्यालंकार—रुद्रट (नमिसाधु की टिप्पणी सहित)—सम्पा० म० म० पं० दुर्गाप्रसाद तथा वासुदेव लक्ष्मण शास्त्री पणशीकर, काव्यमाला-२, सन् १९२८ ई०

५२. काव्यालंकार—भामह, काशी संस्कृत सीरिज-६१, चोखम्बा, १९९५ वि०

५३. काव्यालंकार—भामह, सम्पा० तथा अनु० आचार्य देवेन्द्र नाथ शर्मा, बिहार राष्ट्भाषा परिषद, पटना, प्र० सं०, सन् १९६२ ई०

५४. काव्यालंकार-सार-संग्रह—उद्भटभट्ट, सम्पा० नागेशरामकृष्ण तेलंग, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, प्र० सं० सन् १९१५ ई०

५५. किरातार्जुनीय—भारवि, सम्पादक म० म० पं० दुर्गाप्रसाद तथा काशीनाथ पाण्डुरंग परब, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, द्वादश संस्करण, सन् १९३३ ई०

५६. कुमारसम्भव—कालिदास, कालिदास ग्रन्थावली (सीतारामचतुर्वेदी) में संकलित।

५७. कुवलयानन्द—अप्पय दीक्षित—व्याख्याकार—डॉ० भोलाशंकर व्यास, चौखम्बा, बनारस, प्र० सं०, १९५६ ई०

५८. कुवलयानन्द—अप्पयदीक्षित, अलंकार चन्द्रिका व्याख्या सहित—वासुदेव शर्मा, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, पंचम संस्करण, १९२५ ई०

५९. कुवलयानन्द कारिका—अप्पय दीक्षित, टीकाकार—आशाधर भट्ट, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, तृ० सं०, १९२७ ई०

६०. कृष्णराज विजयोत्कर्ष—श्रीनिवास कवि सार्वभौम, History of Classical Sanskrit Literature by M. Krishnamachariar, para—344

६१. चन्द्रप्रभस्तवन—उदयमाणिक्य गणि—हस्तलेख— Journal of the University of Bombay, Art No. 30, sept. 1955, P. P.-121

६२. चन्द्रालोक—जयदेव, सम्पादक—महादेव गंगाधर वक्रे, मणिलाल इतचरम देशाई बम्बई, १९२३ ई०

६३. चन्द्रालोक—जयदेव, सम्पादक—पण्डित अनन्तराम शास्त्री वेताल, चौखम्बा, बनारस, १९३८ ई०

६४. चतुर्हारावली चित्रस्तव—जयतिलक सूरि, स्तोत्र रत्नाकर में संगृहीत, पृ० ३४ ए—५४ बी

६५. चर्चरी—जिनदत्त सूरि, अपभ्रंश काव्यत्रयी में संकलित, गायकवाड़ ओरियन्टल सीरिज न० ३७, १९२७ ई०

६६. चित्रकाव्य—दौलत विजयगणि लिखित—हस्तलेख, चैतन्य पुस्तकालय, पटना

६७. चित्रकाव्यसार—जिनवल्लभ सूरि, भूमिका, अपभ्रंश काव्यत्रयी, गायकवाड़ ओरियन्टल सीरिज नं० ३७, १९२७ ई०

६८. चित्रबन्ध रामायण—वेंकटेश्वर—History of classical sanskrit Literature, M. Krishnamachariar, para—341

६९. चित्रबन्ध स्तोत्र—गुणभद्र, सिद्धान्त सारादि संग्रह में संकलित (पृ० १५१-१५५) माणिकचन्द्र दिगम्बरजैन ग्रन्थमाला २१, हीराबाग, बम्बई सं० १९७९ वि०

७०. चित्रमीमांसा—अप्पयदीक्षित, सम्पादक पं० शिवदत्त तथा वासुदेव लक्ष्मण शास्त्री पणशीकर, काव्यमाला ३८, तृतीय संस्करण, सन् १९२६ ई०

७१. चित्रस्तव (वीर स्तवन)—जिनप्रभसूरि, जैन स्तोत्र समुच्चय में संकलित (पृ० ९२-९७)

७२. चित्रोपहार—देवीप्रसाद शुक्ल, प्रकाशक बाबूलाल गुप्त, काशी, १९२० ई०

७३. चैतन्यचरितामृत—कवि कर्णपूर गोस्वामी—सम्पा० तथा अनु० श्रीरामनारायण विद्यारत्न, मुर्शिदाबाद, १३३२ साल (बंगाब्द), बंगला लिपि में मुद्रित

७४. जिनशतक (स्तुतिविद्या)—सामन्तभद्र अथवा शान्तिवर्मा, स्यादवाद ग्रन्थमाला, सन् १९१८ ई०

७५. जिनशतक (स्तुतिविद्या)—सामन्तभद्र, वीर सेवा मन्दिर, सन् १९५० ई०

७६. जिनस्तवन चतुर्विंशतिका—हेमविजयगणि, जैन स्तोत्र समुच्चय में संकलित (पृ० १६७-२८४)

७७. त्रिदशतरंगिणी—मुनिसुन्दर सूरि, पट्टावली समुच्चय में संकलित (भाग-१, पृ० ४१-७७)

७८. दयानन्द दिग्विजय—अखिलानन्द शर्मा, प्रथम संस्करण, इंडियन प्रेस, प्रयाग, सं० १९६७ वि०

७९. दशकुमारचरित—दण्डी, सम्पादक—एम० आर० काले, बम्बई

८०. देवीनाम विलास—महेश्वराचार्य साहिबकौल, सम्पादक–मधुसूदन कौल शास्त्री Kashmir series of Texts and Studies No. LXIII SRINAGAR—1942

८१. देवीशतक—आनन्दवर्धन, काव्यमाला, गुच्छक ९ में संकलित, सम्पादक म० म० पं० शिवदत्त तथा वासुदेव लक्ष्मण शास्त्री पणशीकर, द्वि० सं० १९१६ ई०

८२. धर्मशर्माभ्युदय—हरिचन्द्र, काव्यमाला ८, सम्पादक—पं० दुर्गाप्रसाद तथा काशीनाथ पाण्डुरंग परब, १८८८ ई०

८३. धर्मशिक्षा प्रकरण—वैराग्यशतकादिग्रन्थपंचकम्, सन् १९४१ ई०

८४. ध्वन्यालोक—आनन्दवर्धन, व्याख्याकार विश्वेश्वर, सम्पादक–डा० नगेन्द्र, गौतमबुक डिपो, दिल्ली, प्र० सं० १९५२ ई०

८५. ध्वन्यालोक—आनन्दवर्धन, सम्पादक—पट्टाभिरामशास्त्री, काशीसंस्कृत सीरिज न० १३५, चौखम्बा, सं० १९९७ वि० (१९४० ई०)

८६. ध्वन्यालोक लोचन—अभिनवगुप्त, चौखम्बा

८७. नञ्जराजयशोभूषण—नरसिंह कवि (अभिनव कालिदास), सम्पादक— एम्बर कृष्णमाचार्य, गायकवाड़ ओरियन्टल सीरिज न० ४७, १९३० ई०

८८. नरनारायणानन्द—वस्तुपाल, सम्पादक—सी० डी० दलाल तथा आर० अनन्त-कृष्णशास्त्री, गायकवाड़ ओरियन्टल सीरीज न० २

८९. नानार्थार्णव संक्षेप—केशवस्वामी, सं० त० गणपति शास्त्री, १९१३ ई०

९०. नामलिंगानुशासन (अमरकोश)—अमरसिंह, सम्पादक—पण्डित शिवदत्त, निर्णयसागर प्रेस, १९४४ ई०

९१. नीतिप्रकाशिका—सम्पादक—Gustar Oppert, Madras & Messrs Higgin Botham & Co. London—Messrs. Trucbner & Co. 1882 A. D.

९२. नैषधीयचरित—श्री हर्ष, सम्पादक—म० म० पण्डित शिवदत्त, निर्णयसागरप्रेस, बम्बई, पंचम संस्करण, १९१९ ई०

९३. पंचजिनहार स्तव—कुलमण्डन सूरि, श्री पयरणसंदोह में संकलित, प्रकाशक—ऋषभदेवजी, केसरीमल जी, जैन श्वेताम्बर पीढ़ी, १९२९ ई०

९४. पादुका सहस्र—वेंकटरंगनाथ देशिक, काव्यमाला ९२, सम्पादक—पण्डित केदारनाथ तथा वासुदेव लक्ष्मण शास्त्री पणशीकर, बम्बई, सन् १९११ ई०

९५. प्रतापरुद्रीयम्—विद्यानाथ, श्री बालमनोरमा सीरिज न० ३, सम्पादक सी० शंकरराम शास्त्री, द्वितीय संस्करण, १९३१ ई०

९६. प्रतापरुद्रयशोभूषण—विद्यानाथ, सम्पादक कमलाशंकर प्राणशंकर त्रिवेदी, बम्बई संस्कृत एवं प्राकृत सीरिज न० ६५, प्र० सं० १९०९ ई०

९७. प्रश्नशतक—जिनवल्लभसूरि, स्तोत्ररत्नाकर, यशोविजय जैन संस्कृत पाठशाला, म्हेसन, १९१४ ई०

९८. प्रियंकरनृपकथा—जिनसूर, सम्पादक—हीरालाल आर० कपाड़िया, डी० एल० जे० पी० एफ० सीरिज, १९३२ ई०

९९. बन्धरत्नांकुर (लघुबन्ध रत्नावली)—पण्डित देवदत्त शर्मा, वृन्दावन, सन् १९२९ ई०

१००. भट्टिकाव्य—भट्टि (जयमंगला टीका), सम्पादक—विनायक नारायण शास्त्री तथा वासुदेव लक्ष्मण शर्मा, तृ० सं०, १९०६ ई०, निर्णय-सागर प्रेस

१०१. भट्टिकाव्य —भट्टि, हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला, व्याख्याकार—शेषराज शर्मा, चौखम्बा, १९५१ ई०

१०२. मंखकोश (टीकासार सहित) – सम्पादक—Theodor Zachariae, Bombay Educatton Society press, Byculla, 1897 A. D.

१०३. मन्त्राधिराजकल्प—सागरचन्द्र, जैन स्तोत्र सन्दोह, भाग-२ में संकलित (पृ० २६९-७०) प्रकाशक—एस० एम० नवाब, सन् १९३६ ई०

१०४. मन्दारमरन्द चम्पू—कृष्णकवि, काव्यमाला—५२, सम्पादक—पं० केदारनाथ तथा वासुदेव लक्ष्मण शास्त्री पणशीकर, द्वि० सं० १९२४ ई०

१०५. महापुराण —जिनसेन सूरि तथा गुणभद्र सूरि।

१०६. महावीर स्तवन – उदयधर्मगणि, जैन स्तोत्र समुच्चय में संकलित— (पृ० २६५-२६६)

१०७. मालविकाग्निमित्र—कालिदास, कालिदास ग्रन्थावली में संकलित— सीताराम चतुर्वेदी, काशी, २००७ वि०

१०८. मेघदूत —कालिदास, कालिदास ग्रन्थावली में संकलित— सीताराम चतुर्वेदी, काशी, २००७ वि०

१०९. यादवराघवपाण्डवीय—चिदम्बर, History of Classical Sanskrit Literature M. Krishnamachariar, Para 92.

११०. यादवराघवीय—वेंकटध्वरि, History of Classical Sanskrit Literature M. Krishamachariar Para 90

१११. रघुवंश —कालिदास, कालिदास ग्रन्थावली, सीताराम चतुर्वेदी, काशी २००७ वि०

११२. रसगंगाधर—पण्डित राजजगन्नाथ (नागेशभट्ट की व्याख्या के साथ), बी० एस० एस० १९०३ ई०

११३. रसगंगाधर (हिन्दी) ,, सम्पादक—महादेव शास्त्री, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

११४. रसगंगाधर ,, ,, सम्पादक—बदरीनाथ झा तथा मदनमोहन झा, चौखम्बा, सन् १९५५

११५. रसिकरंजन—रामचन्द्र, कायव्माला भाग-४, गुच्छक-५, निर्णयसागर प्रेस।

११६. रसिकरंजन—रामचन्द्र R. Schmidt Stuttgart, 1896 A. D

११७. राघवनैषधीय—हरदत्त सूरि—Commemorative Essay Presented to Professor Kashinath Bapuji Phthak, Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona, 1934 A. D. P.P. 376

११८. राघव पाण्डवीय—श्रुतिकीर्ति, Commemorative Essay Preseted to Professor Kashinath Bapuji Pathak, Bhandarkar Oriental Reserch Institute Poona, 1934 A. D. P. P. 380

११९. राघवयादव पाण्डवीय—राजचूड़ामणि दीक्षित ,, P. P. 379

१२०. राघव यादवीय—विज्ञानमूर्ति सोमेश्वर कवि—,, P. P. 380

१२१. राघव यादवीय—विज्ञानमूर्ति सोमेश्वर कवि–History of Classical Sanskrit Lite rature, M. Krishnamachariar, Para-91

१२२. राजतरंगिनी—कल्हण, एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता, १८३५ ई०

१२३. राजतरंगिणी—कल्हण, सम्पादक—एम० ए० स्टाइन, मोतीलाल बनारसीदास, १९६१ ई०

१२४. रामकृष्णविलोमकाव्य—दैवत श्रीसूर्यकवि—काव्यमाला, गुच्छ-११, सम्पादक —पण्डित केदारनाथ तथा काशीनाथ शर्मा, १८९५ ई०

१२५. रामचन्द्रोदय— वेंकटेशकवि—History of Classical Sanskrit Literature M. Krishnamachariar, Para 156.

१२६. रामायण संग्रह—निट्ठल उपमक वेंकटेश्वर ,, Para 340

१२७. लक्ष्मीसहस्र—वेंकटाध्वरि, सम्पादक—रामशास्त्री तैलंग, चौखम्बा संस्कृत सीरिज -१९०६ ई०

१२८. लोद्रपुर पार्श्वनाथ प्रशस्ति-सहजाकीर्तिवाचक— A Catalogue of Mss. In the Jain Bhandar at Jesalmere.

१२९. लोद्रपुर पार्श्वनाथ प्रशस्ति—Jain Inscriptions Vol. III P. P. 160-166, by Puran Chand Nahar

१३०. वाग्भाटलंकार—वाग्भट (प्रथम)—सम्पादक तथा व्याख्याकार—पं० ईश्वरी दत्त शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास

१३१. वाग्भटालंकार—वाग्भट (प्रथम)—काव्यमाला—४८, श्री केदारनाथ शास्त्री तथा वासुदेव लक्ष्मणशास्त्री पणशीकर, च० सं०, १९२८ ई०

१३२. विज्ञप्तित्रिवेणी—जयसागर उपाध्याय, जैन आत्मानन्द सभा, सन् १९१६ ई०

१३३. विज्ञप्ति पत्र—उदयविजयगणि, हस्तलेख Journal of the University of Bombay, Art No. 30 P. P. 126, Sept. 1955

१३४. विदग्धमुखमण्डन—धर्मदास, चौखम्बा संस्कृत सीरीज।

१३५. विदग्धमुखमण्डन—धर्मदास, सम्पादक—पण्डित जीबानन्द विद्यासागर, काव्य-संग्रह—भाग-३, सरस्वती प्रेस, कलकत्ता १८८८ ई०

१३६. विश्वप्रकाश (कोश) —सम्पादक—श्री महेश्वर सूरि—चौखम्बा संस्कृत सीरिज न० १६० तथा १६८, १९११ ई०

१३७. वीरजिनस्तवन—कुलमण्डन सूरि, जैन स्तोत्र समुच्चय में संकलित (पृ० ८७-९१)

१३८. वैजयन्ती (कोश)—यादव प्रकाश—सम्पादक—Gustav Oppert, Madras Sanskrit and Vernacular Text Publication Society, 1893 A. D.

१३९. शब्दकल्पद्रुम —भाग-२, स्याररराजा राधाकान्तदेव बहादुर, चौखम्बा, बनारस, १९६१ ई०

१४०. शब्दरत्नसमन्वय कोश—तंजोर के राजा शाह जी, सम्पादक—विट्ठलरम लल्लूराम शास्त्री, गायकवाड़ ओरियन्टल सीरिज नं० ५९, १९३० ई०

१४१. शब्दस्तोममहानिधि (कोश)—तारानाथ तर्कवाचस्पति भट्टाचार्य, कलकत्ता, स० १९२५ वि० (१८६९ ई०)

१४२. शार्ङ्गधर पद्धति—भाग–१ —शार्ङ्गधर, सम्पादक—पीटर पीटरसन, बम्बई संस्कृत सीरिज न० ३७, १८८८ ई०

१४३. शाश्वतकोश —सम्पादक —कृष्णजी गोविन्दजी ओका, ओरियण्टल बुक सप्लाइंग एजेन्सी, पूना, प्र० सं०, १९१८ ई०

१४४. शिशुपालवध -माघ, सम्पादक—हरिदास सिद्धान्त वागीशभट्टाचार्य, प्रकाशक—नकीपुर हरिचरण चतुष्पाठी, सं०, १८४७ शक

१४५. संघपट्टक—जिनवल्लभ सूरि—अपभ्रंश काव्यत्रयी के परिशिष्ट में प्रकाशित, गायकवाड़ ओरियन्टल सीरिज न० ३७, २००७ वि०

१४६. सरस्वतीकण्ठाभरण—धारेश्वर भोज, काव्यमाला-९५, सम्पादक—पं० केदारनाथ दुर्गाप्रसाद तथा वासुदेव लक्ष्मण शास्त्री पणशीकर, १९२५ ई०

१४७. सर्वजिनस्तवन—धर्मघोषसूरि, जैन स्तोत्र सन्दोह में संकलित (पृ० २४७-२४८)

१४८. साहित्य दर्पण—विश्वनाथ कविराज, व्याख्याकार—डॉ० सत्यव्रत सिंह, चौखम्बा, १९५७ ई०

१४९. सिद्धिप्रियास्तोत्र—देवनन्दि, काव्यमाला-गुच्छक–७, चतुर्थ संस्करण १९२६ ई०

१५०. सुभाषितरत्नभाण्डागार—संकलनकर्त्ता—काशीनाथ पाण्डुरंग परब, निर्णय सागर प्रेस १९०५ ई०

१५१. सुभाषित रत्नाकर " " चतुर्थ संस्करण, १९१३ ई०

१५२. सुरथोत्सव—सोमेश्वर देव—काव्यमाला ७३, सम्पादक—पण्डित शिवदत्त तथा काशीनाथ पाण्डुरंग परब, बम्बई, १९०२ ई०

१५३. सेतुबन्ध—प्रवरसेन, काव्यमाला-४७, सम्पादक—पं० शिवदत्त तथा काशीनाथ पाण्डुरंग परब, १८९५ ई०

१५४. सेतु बन्ध (रावणबहो) Gigfrid Goldsmidt, London, Truebnere and Co. 1880 A. D.

१५५. स्तवमाला—रूपगोस्वामी, काव्यमाला—८४, सम्पादक—पं० वासुदेव शास्त्री काशीनाथ पाण्डुरंग परब, निर्णयसागर प्रेस, १९०३ ई०

१५६. स्तुतिविद्या (जिनशतक)—सामन्तभद्र, टीकाकार—पं० पन्नालाल जैन, वीरसेवा मन्दिर, बम्बई, १९५० ई०

१५७. हरविजयम्—राजानक रत्नाकर, काव्यमाला-२२, सम्पादक–पण्डित दुर्गाप्रसाद काशीनाथ पाण्डुरंग परब, निर्णयसागर प्रेस, १८९० ई०

१५८. हारबन्ध स्तोत्र—समयसुन्दरगणि, प्रकाशक—जिनदत्त सूरि पुस्तकोद्धारफण्ड नं० ३०, बम्बई, १९३२ ई०

हिन्दी

१. अंगूठी का नगीना—किशोरीलाल गोस्वामी, प्र०—छबीलेलाल गोस्वामी, सुदर्शन प्रेस, वृन्दावन, प्रथम संस्करण, सं० १९७४ वि० (सन् १९१८ ई०)।

२. अलंकार कौमुदी—पं० परमेश्वरानन्द शास्त्री, लाहौर, प्र० सं० १९९० वि०।

३. अलंकार चन्द्रिका—लाला भगवानदीन, पुस्तकभण्डार, लहेरियासराय, सं० १९९४ तथा १९८७ वि०।

४. अलंकार दर्पण—रसरूप कवि, केवल उल्लेख।

५. अलंकार दर्पण–रामसिंह, भारतजीवन प्रेस, काशी, प्रथम संस्करण, सं० १९५६ वि०।

६. अलंकार प्रवेशिका—रघुनन्दन शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, लाहौर, प्र० सं०, सन् १९४० ई०।

७. अलंकार प्रवेशिका–चन्द्रशेखर, रामनारायण लाल, इलाहाबाद, प्र०सं०, १९३१ ई०।

८. अलंकार प्रश्नोत्तरी—भानु कवि (जगन्नाथ प्रसाद 'भानु'), बी० जगन्नाथ प्रसाद, बिलासपुर, म० प्र०।

९. अलंकार पीयूष-भाग-१—रामशंकर शुक्ल 'रसाल', रामनारायण लाल, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९२९ ई०

१० अलंकार पीयूष-२—रामशंकर शुक्ल 'रसाल', रामनारायण लाल इलाहाबाद प्र० सं०, १९३० ई०

११. अलंकार मंजूषा—लाला भगवान दीन, सं० १९७७ वि०।

१२. अलंकार मणिमंजरी—ऋषिनाथ, आर्ययन्त्र, वाराणसी, सं० १९३९ वि०।

१३. अलंकार मुक्तावली—देवेन्द्र नाथ शर्मा, ग्रन्थमाला कार्यालय, पटना-४, प्रथम-संस्करण, २००५ वि०।

१४. अष्टयाम प्रकाश,—गोकुल कवि, जंगबहादुरी यन्त्रालय, सन् १८६३ ई०।

१५. आचार्य केशवदास—हीरालाल दीक्षित, लखनऊ विश्वविद्यालय, सं० २०११ वि०।

१६. आचार्य भिखारीदास—नारायण दास खन्ना " " सं० २०१२ वि०।

१७. आदि खेंगारजी चरित्र चन्द्रिका—दीवान बहादुर मणिभाई, कच्छ गवर्नमेंट प्रेस, भुजनगर, सं० १९५१ वि०।

१८. आधुनिक हिन्दी-मराठी में काव्यशास्त्रीय अध्ययन—डॉ० मनोहरकाले, हिन्दी ग्रन्थ-रत्नाकर प्रा० लि०, गिरगाँव, बम्बई ४, प्र० सं० १९६३ ई०।

१९. ऋतुतरंगिनी—महावीर प्रसाद द्विवेदी, आर्यावर्त प्रेस, १०६ कौटन स्ट्रीट, कलकता, १८९१ ई०।

२०. कर्णाभरण—गोविन्द कवि, सम्पादक-नकछेदी तिवारी, भारतजीवन प्रेस, काशी, प्र० सं०, १८९४ ई०।

२१. कविकुलकण्ठाभरण—दूलह, सम्पादक-जगन्नाथ दास रत्नाकर, भारतजीवन, प्रेस काशी, प्र० सं०, १८८९ ई०।

२२. कविकुलकण्ठाभरण—दूलह-पं० शुकदेव बिहारी मिश्र तथा प्रताप नारायण मिश्र सम्पादक-देव सुकविसुधा कार्यालय, कविकुटीर, लखनऊ, सं० १९९२ वि०।

२३. कविकुल कल्पतरु—चिन्तामणि, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, जनवरी, सन् १८७५ ई०।

२४. कवित्तरत्नाकर—सेनापति, सम्पादक-उमाशंकर शुक्ल, हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्व-विद्यालय, १९४८ ई०।

२५. कवितारसविनोद—जनराज, हस्तलेख, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

२६. कविप्रिया—केशवदास, टीकाकार-सरदार कवि, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, प्र० सं० १८८६ ई०।

२७. कविप्रिया—केशवदास, टीकाकार–लाला भगवान दीन, संस्करण-२, २०१४ वि०।
२८. कविरहस्य—गंगानाथ झा, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, उत्तरप्रदेश, इलाहाबाद, प्र० सं० १९२९ ई०, द्वि० सं० १९५० ई०।
२९. कविवल्लभ—हरिकवि, हस्तलेख, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
३०. कविशिक्षक (काव्यशिक्षकग्रन्थ)—साधोगिरि गोस्वामी, रचनाकाल सं० १९५४ वि०।
३१. कादम्बरी—बाण, भाषान्तरकार—भगवत शरण उपाध्याय, राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली–६।
३२. काव्यकलाप—गोपाल लाल खन्ना, इण्डियनप्रेस, प्रयाग, सन् १९४२ ई०।
३३. काव्यकल्पद्रुम—कन्हैयालाल पोद्दार, श्री नागरी प्रचारिणी सभा, आगरा, द्वि० सं०, १९९३ वि०।
३४. काव्यनिधि (शम्भु प्रकाश)—शम्भुनाथ सिंह, हस्तलेख, महाराजा रामगढ़ (बिहार) का पुस्तकालय।
३५. काव्यनिर्णय—भिखारीदास (भिखारीदास ग्रन्थावली, भाग-२) सम्पादक-विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
३६. काव्यनिर्णय—भिखारीदास, वेंकटेश्वर प्रेस प्रयाग।
३७. काव्यनिर्णय—भिखारीदास, भारत जीवन प्रेस, काशी।
३८. काव्यनिर्णय—भिखारीदास, वेलवेडियर प्रेस।
३९. काव्यनिर्णय—भिखारीदास, सम्पादक-जवाहरलाल चतुर्वेदी, कल्याणदास एन्ड ब्रदर्स, वाराणसी, प्रथमसंस्करण, १९५६ ई०।
४०. काव्यप्रदीप (दो भाग)—राम बहोरी शुक्ल, हिन्दी भवन, लाहौर।
४१. काव्यप्रबन्ध—जगन्नाथ प्रसाद भानु, जगन्नाथ प्रेस विलासपुर, प्र० सं० १९२० ई०।
४२. काव्यप्रभाकर " "
४३. काव्यमंजरी—पदुमनदास, सम्पादक—पं० बक्सी ईश्वरदयाल, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, कल्याण, बम्बई, १९५४ वि०।
४४. काव्यशिक्षक ग्रन्थ—साधोगिरि गोस्वामी, रचनाकाल-सं० १९५४ वि०।
४५. काव्य सुधाकर—श्री जानकी प्रसाद 'रसिक बिहारी' अथवा 'रसिकेश', यूनाइटेड प्रिंटिंग प्रेस, मामा की हवेली, अहमदाबाद।
४६. काव्यालोक—गोपीनाथ शर्मा, किताब महल, इलाहाबाद, प्र० सं० १९५० ई०।
४७. कुरसीकल्पद्रुम (लवंगलता)—महाराजा रामगढ़ (बिहार) का पुस्तकालय।
४८. कूटकाव्य एक अध्ययन—डॉ० रामधन शर्मा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्र० सं० १९६३ ई०।
४९. केशव ग्रन्थावली—सम्पादक-विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद, प्रथमसंस्करण—१९५४ ई०।

५०. खुसरो की हिन्दी कविता—सम्पादक तथा संकलनकर्त्ता—व्रजरत्नदास, नागरी प्र० सभा, काशी, सं० १९७८ वि०

५१. गंगाभरण—लेखराज, (पं० नन्दकिशोर मिश्र), प्रकाशक-कृष्ण बिहारी मिश्र, प्र० सं० १९११ ई०

५२. गाँधी भूषण—महेशचन्द्र प्रसाद, प्रथम संस्करण, सम्वत् १८८२ शक।

५३. गोविन्दग्रन्थमाला (भाग-१) गोविन्द गिल्लाभाई, अहमदाबाद।

५४. चन्द्रचूड़विलास—राजा चन्द्रचूड़ सिंह, बम्बई भूषण प्रेस, मथुरा।

५५. चमत्कार चन्द्रिका—हरिचरणदास, कच्छ दरबारी छापाखाना, भुजनगर, सं० १९४३ वि०।

५६. चरणचन्द्रिका—रामचन्द्र पण्डित, सम्पादक—नकछेदी तिवारी, भारतजीवन प्रेस, काशी १८९० ई०।

५७. चरणविनोद (खण्ड—१)—रामचरण शुक्ल, इन्डियन प्रेस, प्रयाग, १९०१ ई०।

५८. चित्रकलाधर—गोकुल प्रसाद 'वृज', जंगबहादुरी यन्त्रालय, बलरामपुर, सं० १९२३ वि०।

५९. चित्रकाव्य (चित्र मीमांसा)—जगतसिंह, आर्यभाषा पुस्तकालय, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी,—हस्तलेख।

६०. चित्र काव्य—रूपप्रधान, ,, ,, ,,

६१. चित्र काव्य—रामसहायदास, ,, ,, ,,

६२. चित्रचन्द्रिका—काशिराज (बलवान सिंह), नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, जनवरी १८७५ ई०।

६३. चित्रमीमांसा—जगतसिंह, हस्तलेख, आर्यभाषा पुस्तकालय, ना० प्र० स०, काशी।

६४. चित्रविलास—अमृतराय, हस्तलेख, आर्यभाषा पुस्तकालय, ना० प्र० स०, काशी।

६५. चेत चन्द्रिका—गोकुलनाथ, सम्पादक-नकछेदी तिवारी, भारतजीवन प्रेस, काशी, सन् १८९४ ई०

६६. जमालमाला—जमाल कवि, हिन्दी साहित्य का अतीत—विश्वनाथ प्रसाद मिश्र।

६७. जसवन्तभूषण—मुरारिदान, मारवाड़ स्टेट प्रेस, जोधपुर, सम्बत् १९५४ वि०।

६८. जातक कालीन भारतीय संस्कृति—मोहनलाल महतो 'वियोगी', बिहार राष्ट्र-भाषा परिषद्, पटना, प्रथम संस्करण, १९५८ ई०।

६९. तुलसीभूषण—रसरूप कवि, हस्तलेख, मन्नूलाल पुस्तकालय, गया।

७०. दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा—सम्पादक-राहुल सांकृत्यायन, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, प्रथम संस्करण, १९५८ ई०।

७१. दिग्विजय भूषण—गोकुल प्रसाद 'वृज', जंगबहादुर यन्त्रालय, बलरामपुर, सं० १९२५ वि०।

७२. दिग्विजय भूषण—गोकुल प्रसाद 'वृज', सम्पादक—डॉ० भगवती प्रसाद सिंह, अवध साहित्य मन्दिर, बलरामपुर, प्रथम संस्करण, सं० २०१६ वि०।

७३. दीनदयालगिरि ग्रन्थावली—दीनदयालगिरि, सम्पादक-श्यामसुन्दर दास, ना० प्र० सभा, काशी, सं० १९७६ वि०।

७४. दुर्गाप्रेम तरंगिनी—नगनारायण सिंह, हस्तलेख, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना।

७५. ध्वनिसम्प्रदाय और उसके सिद्धान्त (भाग-१)—डॉ० भोलाशंकर व्यास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं० २०१३ वि०।

७६. नन्ददास ग्रन्थावली—सम्पादक-ब्रजरत्नदास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं० २००६ वि०।

७७. नवीन संग्रह—हफीजुल्लह् खाँ, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, बीसवीं आवृत्ति, सन् १९३४ ई०।

७८. पजनेश प्रकाश—पजनेश कवि, सम्पादक-नकछेदी तिवारी, भारतजीवन प्रेस, काशी, प्र० सं० १८९४ ई०।

७९. प्रबीन सागर—राजा महिरामन सिंह, प्रकाशक-हरिशंकर करुणाशंकर पाठक, यूनियन प्रिंटिंग प्रेस, अहमदाबाद, सम्वत् १९६४ वि० (१९०८ ई०)।

८०. प्रबीन सागर (आदि के तीन लहर)—टीकाकार—लाला भगवान दीन, साहित्य भूषण प्रेस, बनारस।

८१. प्रबीन सागर (आदि के तीन लहर)—हस्तलेख, आर्य भाषा पुस्तकालय, ना० प्र० सभा, काशी।

८२. प्रयाग नारायण विलास—बन्दीदीन दीक्षित, नवल किशोर प्रेस लखनऊ, प्रथम संस्करण, १९०६ ई०।

८३. प्रश्नोत्तर रत्नमाला—अयोध्या प्रसाद, सरस्वती प्रेस, इटावा, प्रथम संस्करण, सम्वत् १९५० वि०।

८४. प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद—हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, १९५२ ई०।

८५. प्राचीन भारतीय मनोरंजन—मन्मथ राय, भारतीय विद्याभवन, इलाहाबाद, प्र० सं०, सं० २०१३ वि० ।

८६. वाणीभूषण (खण्डित)—रामसहाय दास, हस्तलेख, आर्यभाषापुस्तकालय, ना० प्र० सभा, काशी ।

८७. भारतेन्दु ग्रन्थावली—सम्पादक-ब्रजरत्न दास, ना० प्र० सभा, काशी, संस्करण-२, सं० २०१० वि० ।

८८. भारती भूषण—अर्जुनदास केडिया, भारतीभूषण कार्यालय, काशी, प्रथम संस्करण, १८९७ वि० ।

८९. भारती भूषण—गिरिधर दास, चौखम्बा, बनारस ।

९०. भारती भूषण—गिरिधर दास, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ, तृतीय संस्करण, १९०२ ई० ।

९१. भाषा-भूषण—जसवन्त सिंह, सम्पादक-ब्रजरत्न दास, १, २ तथा ३ संस्करण, प्र० सं० १९२४ ई० ।

९२. भाषा-भूषण—जसवन्त सिंह, सम्पादक गुलाब राय, संस्करण-२, १९३५ ई०, साहित्य रत्न भण्डार, आगरा ।

९३. भिखारीदास ग्रन्थावली (खण्ड-२), सम्पादक-विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०, सं० २०१४ वि० ।

९४. भुवनेश भूषण—भुवनेश कवि, (त्रिलोकी नाथ सिंह), नवल किशोर प्रेस, लखनउ, १८८२ ई० ।

९५. भूषण ग्रन्थावली—सम्पादक-श्याम बिहारी मिश्र, तथा शुकदेव बिहारी मिश्र, ना० प्र० सभा, काशी, षष्ठ संस्करण, सम्वत् २००५ वि० ।

९६. मतिराम ग्रन्थावली—सम्पादक-कृष्ण बिहारी मिश्र, द्वितीय संस्करण, सम्वत् १९९१ वि० ।

९७. मनोविनोद (खण्ड-२)—श्रीधर पाठक, हरिप्रकाश प्रेस, बनारस, सन् १९०० ई० ।

९८. महेश्वर भूषण—द्विजगंग, भारत जीवन प्रेस, काशी सम्वत् १९५४ वि० ।

९९. मानमंजरी (नाममाला)—नन्ददास, नन्ददास ग्रन्थावली, सम्पादक-ब्रजरत्न दास, ना० प्र० सभा, काशी ।

१००. मिश्रबन्धु विनोद (चारों भाग)—मिश्रबन्धु, हिन्दीग्रन्थ प्रसारक मण्डली, खण्डवा व प्रयाग । (तृतीय तथा चतुर्थ भाग-प्र० सं० क्रमशः १९७० तथा १९९१ वि०, भाग-२ द्वितीय संस्करण, सं० १९८४)

१०१. रमेश रत्नाकर—व्रजेश कवि, हनुमत्प्रेस, कालाकांकर, प्रथम संस्करण, १९१४ ई०।

१०२. रसगंगाधर का शास्त्रीय अध्ययन—डॉ० प्रेम स्वरूप गुप्त, भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़, प्र० सं० १९६२ ई०।

१०३. रस प्रबोध—गुलामनबी, भारतजीवन प्रेस, काशी, प्रथमावृत्ति-१८९५ ई०।

१०४. रस रहस्य—कुलपति मिश्र, सम्पदक-बलदेव प्रसाद मिश्र, इन्डियन प्रेस, प्रयाग, सं० १९५४ वि०।

१०५. रससिन्धु विलास—कृष्णलालाजी, अंजुमन प्रेस, बनारस, सम्वत् १८४० वि०।

१०६. रसिकमोहन—रघुनाथ, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, प्रथम संस्करण, सन् १८९० ई०।

१०७. रसिक रसाल—कुमारमणि शास्त्री, सम्पादक—कण्ठमणि शास्त्री, श्रीविद्या भवन, कांकरोली, प्र० सं०, सम्वत् १९९४ वि०।

१०८. रहस्यचन्द्रिका—बख्शराम पांडे (सुजान कवि), नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, प्र० सं० १८९६ ई०।

१०९. रहीम कवितावली—सम्पादक-सुरेन्द्रनाथ तिवारी, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ, प्र० सं० १९२६ ई०।

११०. रहिमन लालित्य—सम्पादक-अनन्त शरण ओझा 'ललित', वर्म्मन प्रेस, कलकत्ता, सं० १९८४ वि०।

१११. रामचन्द्रिका—केशवदास, सम्पादक-लाला भगवान दीन, रामनारायण लाल, इलाहाबाद, सप्तमावृत्ति, सं २००९ वि०।

११२. रामचरित मानस (मूल मझली साइज), गीताप्रेस, गोरखपुर, अष्टम संस्करण, २०१५ वि०।

११३. रामभक्तिविलास—देवीप्रसाद मिश्र, व्यासप्रेस, भागलपुर।

११४. रावणेश्वर कल्पतरू—लछिराम, भारतजीवन प्रेस, काशी, १८९२ ई०।

११५. रीति रत्न—वनमाली शर्मा, प्रथम संस्करण, सम्वत् १९९० वि०।

११६. रुद्र कौतुक विचित्र—रुद्र प्रसाद, रत्नाकर प्रेस, मुजफ्फरपुर, प्रथम संस्करण, १९१६ ई०।

११७. लक्ष्मीश्वरभूषण—शिवप्रसाद, प्रथम संस्करण, सम्वत् १९४१ ई०।

११८. ललित ललाम—मतिराम, टीकाकार-राव गुलाब सिंह, भारत जीवन प्रेस, काशी, प्र० सं० १९५४ वि०।

११९. वाणीभूषण—उमेद राम, राजस्थान यन्त्रालय, अजमेर, प्रथम संस्करण, १८९१ ई०।

१२०. वैराग्य दिनेश—दीन दयाल गिरि, दी० द० गि० ग्रन्थावली, सम्पादक-श्यामसुन्दर दास, ना० प्र० स० काशी

१२१. व्यंकट विहारि तुलसीभूषण—बिहारी लाल चौबे सी० पी० प्रेस, बनारस, १९०७ ई०।

१२२. शब्दरसायन—देव; सम्पादक—डॉ० जानकीनाथ सिंह मनोज, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, द्वितीय संस्करण, सम्वत् २००४ वि०।

१२३. शिवराज भूषण—भूषण, टीकाकार-पं० राजनारायण शर्मा, हिन्दीभवन जालन्धर और इलाहाबाद, पंचम संस्करण, १९५८ ई०।

१२४. सन्त परम्परा और साहित्य (धर्मेन्द्र अभिनन्दन ग्रन्थ), सम्पादक-नलिनविलोचन शर्मा तथा राम खेलावन राय, धर्मेन्द्र अभिनन्दन ग्रन्थ समिति पटना, १९६० ई०।

१२५. सत्यशतक—जौन क्रृष्टियन, मुंगेर, बैप्टिस्ट मिशन प्रेस, कलकत्ता, १८६१ ई०।

१२६. सभा श्रृंगार—अगरचन्द नाहटा, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, प्रथम संस्करण, २०१९ वि०।

१२७. साहित्य का मर्म—हजारी प्रसाद द्विवेदी, लखनऊ विश्वविद्यालय व्याख्यानमाला—१।

१२८. साहित्य रत्नाकर—जगन्नाथदास रत्नाकर, हरिप्रकाश प्रेस, बनारस, १८९४ ई०।

१२९. साहित्य शास्त्र—बलदेव उपाध्याय, प्रसाद-परिषद्, काशी, सम्वत् २००७ वि०।

१३०. साहित्य सागर (दो भागों में)—बिहारी लाल भट्ट, सम्पादक-लोकनाथ द्विवेदी, गंगा ग्रन्थागार, लखनऊ, सम्वत् १९९४ वि०।

१३१. साहित्यालंकार—रामदहिनमिश्र, ग्रन्थमाला कार्यालय, बांकीपुर, प्रथम-संस्करण-१९२२ ई०।

१३२. सितारमार्ग—श्रीपद बन्द्योपाध्याय, वाणीमन्दिर, प्रेमनगर, सब्जीमण्डी, दिल्ली संस्करण-३, १९५२ ई०।

१३३. सुन्दर ग्रन्थावली (दो भाग)—सुन्दरदास, सम्पादक-पुरोहित हरिनारायण शर्मा, राजस्थान रिसर्च सोसाइटी कलकत्ता, प्रथमावृत्ति, सम्वत् १९९३ वि०।

१३४. सुन्दर चित्रकाव्य—रामसुन्दर दास, दुर्वासा आश्रम, तिवारीपुर, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९६२ ई० ।

१३५. सूर के सौ कूट—चुन्नीलाल शेष, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी-१, सं०-२, सं० २०१६ वि० ।

१३६. स्फुट कविता—एक प्रेमी, प्रकाशक ऐतिहासिक तत्त्व आविष्कारक समिति, मुरादाबाद, १९६४ वि० ।

१३७. स्फुट कविता—हस्तलेख, आर्य भाषा पुस्तकालय, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ।

१३८. हिन्दी अलंकार साहित्य—डॉ० ओमप्रकाश, भारती साहित्य मन्दिर, फव्वारा, दिल्ली ।

१३९. हिन्दी काव्यशास्त्र—शान्तिलाल जैन 'बालेन्दु', साहित्य भवन, लि०, इलाहाबाद, प्र० सं० १९५३ ई० ।

१४०. हिन्दी काव्यशास्त्र काइतिहास—डॉ० भगीरथ मिश्र, लखनऊ विश्वविद्यालय, प्र० सं० २००५ वि० ।

१४१. हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास—डॉ० भगीरथ मिश्र, लखनऊ विश्वविद्यालय, द्वि० सं० २०१५ वि० ।

१४२. हिन्दी काव्यालंकार—जगन्नाथ प्रसाद भानु, जगन्नाथ प्रेस, बिलासपुर, प्र० सं० १९१८ ई० ।

१४३. हिन्दी छन्दप्रकाश—रघुनन्दन शास्त्री, राजपाल एण्ड सन्स, काश्मीरी गेट, दिल्ली,, प्र० सं० १९५२ ई० ।

१४४. हिन्दी निबन्धावली (बी० ए० कक्षाओं के लिये)—बिहार विश्वविद्यालय प्रकाशन ।

१४५. हिन्दी प्रदीप—अप्रैल, १८८२ ई० ।

१४६. हिन्दी साहित्य—हजारी प्रसाद द्विवेदी, अत्तरचन्द कपूर एन्ड सन्स, दिल्ली, २००९ वि० ।

१४७. हिन्दी साहित्य का अतीत (भाग-२)—विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, वाणीवितान प्रकाशन, ब्रह्मनाल, वाराणसी, प्रथम संस्करण, सम्वत् २०१७ वि० ।

१४८. हिन्दी साहित्य का इतिहास—रामचन्द्र शुक्ल, ना० प्र० स०, काशी की ओर से इन्डियन प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०, सं० १९८६ वि० ।

१४९. हिन्दी साहित्य का इतिहास—रामचन्द्र शुक्ल, ना० प्र० स०, पंचम संस्करण, सं० २००६ वि० ।

१५०. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (भाग-६), सम्पादक—डॉ० नगेन्द्र, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं० २०१५ वि० ।

अन्य भाषाओं में लिखित ग्रन्थ

मराठी

महाराष्ट्रीय ज्ञानकोश (शरीर खण्ड),— भाग १३, सम्पादक-व्यंकटेश केतकर, प्रकाशक महाराष्ट्रीय ज्ञानकोशमण्डल, नागपुर, १९२५ ई० ।

अंग्रेजी (ENGLISH)

2. Selections from Sanskrit Inscriptions by D. B. Diskalkar, 1925.

3. Indian Antiquary, Vol. XIV—1885 (Curiosities of Indian Literature by G. A. Grierson)

4. Indian Antiquary, Vol. XLII—1913 (Indian Inscriptions and artificial poetry by Buehler)

5, Journal of the University of Bombay, Vol. (new series) 23,24 & 25, Art Nos—29, 30 & 31 of 1954-55-56.

6. A History of Sanskrit Literature, by A. B. Keith, 1928 (Oxford).

7. History of Classical Sanskrit Literature by M. Krishn amachariar, 1937 (Madras).

8. Commemorative Essays—presented to Professer Kashinath Bapuji Pathak, Bhandarkar Oriental Research Institue, Poona, 1934.

9. Complete works of George Herbert.

10. The Arte of English Poesie—George Puttenham, edited by G.D. Willcock and A. Walker, Cambridge, 1936.

11. A New English Dictionary of Historical Principles edited, by Sir James Murrey, Oxford, Vol. I 1888 & Vol. IX 1919.

12. A History of Sanskrit Poetics by P. V. Kane, 1928 A. D.

13. Kalhan' Rajtarangini (A chronical of kings of Kashmir) by M. A. Stien, 1961.

14. Ksemendra Studies-by Dr. Suryakant, Oriental Book Agency, Poona, 1954.

15. Kavyalankar Sutra-vritti of Bamen, Translated by-Ganganath Jha Oriental Book Agency, Poona, 2nd. edn. 1928.

हस्तलेख

संस्कृत

१. चन्द्रप्रभ स्तवन—उदयमाणिक्य गणि, बम्बई विश्वविद्यालय जरनल, कला संख्या—३०, पृ० १२१।

२. चित्रकाव्य—दौलत विजयगणि, चैतन्य पुस्तकालय, पटना।

३. विज्ञप्तिपत्र—उदयविजय गणि, बम्बई विश्वविद्यालय जरनल, कला संख्या—३०, पृ० १२६।

हिन्दी

४. कवितारसविनोद—जनराज, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, याज्ञिक संग्रह सं०—९०/२५।

५. कविवल्लभ—हरि कवि, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, रत्नाकर संग्रह,—२७३।

६. काव्यनिधि अथवा शम्भु प्रकाश—शम्भुनाथ सिंह, राजपुस्तकालय, रामगढ़ (बिहार)।

७. कुरसी कल्पद्रुम अथवा लवंगलता—अज्ञात, राजपुस्तकालय, रामगढ़ (बिहार)।

८. चित्रकाव्य—जगत सिंह, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सभा संग्रह—२८५।

९. चित्रकाव्य—रूपप्रधान, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सभा संग्रह—७८६।

१०. चित्रकाव्य—रामसहाय दास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सभा संग्रह—१४२८॥

११. चित्रकाव्य—दौलत विजय गणि, चैतन्य पुस्तकालय, पटना।

१२. चित्रमीमांसा—जगत सिंह, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सभा संग्रह—२८७।

१३. चित्रविलास—अमृतराय, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, याज्ञिक संग्रह—२२८/२५।

१४. तुलसी भूषण—रसरूप कवि, मन्नूलाल पुस्तकालय, गया।

१५. दुर्गा प्रेम तरंगिनी—नग नारायण सिंह, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना।

१६. स्फुट संग्रह—अज्ञात, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी। याज्ञिक संग्रह—७१८/४४।

परिषद् के अभिनव गौरव-ग्रन्थ

१. एलिफैण्टा : श्री हरिनन्दन ठाकुर, आई० ए० एस्० — २१·००

२. उर्दू कविता पर एक दृष्टि (भाग १) : मूल ले० : कलीमुद्दीन अहमद :
अनु० प्रो० रामप्रसाद लाल — २०·००

३. पहेली कोष : सं० श्री विक्रमादित्य मिश्र — २०·००

४. मुद्रण-कला (द्वितीय संस्करण) : पं० छविनाथ पाण्डेय — २५·००

५. नाटक और रंगमंच : डॉ० सीताराम झा 'श्याम' — ३५·००

६. भारतीय नाट्य सिद्धान्त : उद्भव और विकास : डॉ० रामजी पाण्डेय — ५०·००

७. लीलारसतरंगिणी : सं० डॉ० परमानन्द पाण्डेय — ४५·००

८. स्वसंवेदन : ले० म० म० पं० गोपीनाथ कविराज;
अनु० : पं० हंसकुमार तिवारी — ४०·००

९. उपन्यास की भाषा : डॉ० जगदीशनारायण चौबे — २५·००

१०. कीर्तिलता : सं० डॉ० वीरेन्द्र श्रीवास्तव — १७·००

११. साहित्य-सिद्धान्त (द्वि० सं०) : डॉ० रामअवध द्विवेदी — २५·००

१२. भारतीय साधना की धारा : ले० म० म० पं० गोपीनाथ कविराज;
अनु० पं० हंसकुमार तिवारी — २५·००

१३. अखण्ड महायोग का पथ और मृत्यु विज्ञान : ले० म० म० पं० गोपीनाथ कविराज
अनु० पं० हंसकुमार तिवारी — १५·००

१४. गोरक्ष विजय : सं० डॉ० हरिमोहन मिश्र — १०·००

१५. हिन्दी साहित्य और बिहार (चतु० खं०) : सं० डॉ० बजरंग वर्मा।
श्री कामेश्वर शर्मा 'नयन' — ४२·००

१६. भोजपुरी भाषा और साहित्य (द्वि० सं०) : डॉ० उदयनारायण तिवारी — ४६·००

१७. काव्यालंकार : भाष्यकार : प्रो० देवेन्द्रनाथ शर्मा — ३०·००

१८. मध्य एशिया का इतिहास (प्र० खं० : द्वि० सं०) : महापं० राहुल सांकृत्यायन — ५५·००

१९. ज्योतिर्दर्शन : म० म० पं० मुरलीधर ठक्कुर — १५·००

२०. वेमन और कबीर की सामाजिक विचार धारा : डॉ० ताटि सुब्बय्या — २०·००

२१. मैथिली संस्कार गीत : सं० श्री राधावल्लभ शर्मा — ३०·००

२२. परमार्थ दर्शन : सं० प्रो० हरिमोहन झा — १२·००

२३. आधुनिक हिन्दी के विकास में खड्गविलास प्रेस की भूमिका :
डॉ० धीरेन्द्रनाथ सिंह — ४०·००

२४. पाञ्चरात्रागम : डॉ० राघवप्रसाद चौधरी — ५०·००

२५. भूपरिक्रमण : सं० डॉ० वासुकीनाथ झा — २०·००

२६. राष्ट्रभाषा हिन्दी : समस्याएँ और समाधान (विभागीय) — २७·००

२७. शैवमत (द्वि० सं०) : डॉ० यदुवंशी — ४७·००

२८. चित्रकाव्य सैद्धान्तिक विवेचन एवं ऐतिहासिक विकास : डॉ० रामदीन मिश्र — ८३·००

प्राप्ति-स्थान : बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्,
आचार्य शिवपूजन सहाय मार्ग, पटना-८००००४